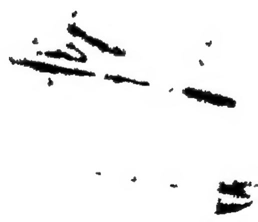












RAO SAHEB SETH VUSSONJI TRICUMJI MOOLJI, J.P.

राव साहेब शेठ वसनजी त्रीकमजी मूलजी, जे. पी

जन्म-सं० १९२२.



SETH VEERCHUND DEEPCHUND J P, C I E





शेठ मगनभाई कपुरचंद-पुना.(जन्म सं० १८९३)

Supplied by
A P PARMAR



शेठ माणेकचंद कपुरचंद-(मुंबई जन्म सं० १९०८)

वाले, संसारसमुद्रके पारंगामी, और अति कुशल (प्रविशारद=केवल ज्ञान, केवल दर्शन करके संयुक्त) ऐसे, हे, प्रथम तीर्थके करनेवाले (श्री आदीश्वर–ऋषभदेव भगवान्) भव्य जिवोंको भला सुख देनेवाले हो॥२॥

(२. यह श्लोकमें इस अवसर्पिणीके चौवीस तीर्थंकरोमें प्रथम तीर्थंकर श्री युगादि देवकी स्तुति है.)

ये पूजितास्सुरगिरौ विविधैः प्रकारैः
क्षीरोदसागरजलैरमरासुरेशैः ॥
जन्माभिषेकसमये वरभक्तियुक्तै-
स्ते श्रीजिनाधिपतयो भविकान् पुनन्तु ॥ ३ ॥

जन्माभिषेक समयमें, सुमेरु पर्वतपर उत्कृष्ट भक्तिवान चार जातिके (भुवनपति, वाणव्यंतर, ज्योतिषि, वैमानिक) देवेंद्रोंने, क्षीर समुद्रके जलसें नाना प्रकारका पूजन किया, ऐसे श्री जिनाधिपति भव्य जीवोंको पवित्र करो ॥ ३ ॥

(३. यह श्लोकमें बावीस तीर्थंकरकी समुच्चय स्तुति है.)

गतौ रागद्वेषौ विविधगतिसंचारजनकौ
महामल्लौ दुष्टावतिशयबलौ यस्य बलिनः ॥
प्रभोर्देवार्यस्य प्रचुरतरकर्मारिविकलं
नमामो देवं तं विबुधजनपूजाभिकलितम् ॥ ४ ॥

जीन बलवान, देव प्रधान (चौवीसमे तीर्थंकर श्री महावीर) प्रभुके, नाना प्रकारकी गतिओंमे (चार गति, चौरासी लक्ष जीवाजून) भ्रमण करानेवाले दुष्ट महामल्ल समान अतिशय बलवाले राग द्वेष नाशको प्राप्त हुए. उन बडे भारी कर्म शत्रु करके रहित, और देवसमूह करके पूजित. श्री जिनेश्वरदेवको (श्री महावीर–वर्द्धमान स्वामिको) हम नमस्कार करते हैं ॥ ४ ॥

(४. यह काव्यमें निकटोपकारी शासननायक श्री महावीर, चौवीसमे तीर्थंकरकी स्तुति व नमस्कार है.)

॥ ॐ ॥

॥ नमः श्री परमात्मने ॥

अथ तत्वनिर्णयप्रासादप्रारम्भः ॥

अथ श्रीमत्तपगच्छाचार्य श्री श्री श्री १००८ श्रीम-
द्विजयानंदसूरीश्वर "आत्माराम" कृत श्री
तत्वनिर्णयप्रासादनामग्रंथप्रारंभः ।

तत्रादौ मंगलाचरणम् ॥

प्राकारैस्त्रिभिरुत्तमा सुरगणैस्संसेविता सुन्दरा
सर्वाङ्गैर्मणिकिङ्किणीरणरणज्झाङ्काररावैर्वरा ॥
यस्यानन्यतमा सुभूमिरभवद् व्याख्यानकाले ध्रुवं
स श्रीदेवजिनेश्वरोभिमतदो भूयात्सदा प्राणिनाम् ॥ १ ॥

जीन प्रभुकी सभा (सुभूमि) निश्चय करके व्याख्यान समयमें (रजत, कनक, रत्नके बने) तीन कोट करके उत्तम, देव समुदायसें संसेवित, सर्वांगोंसें मनोहर, मणिमय घुंघरूओंके रणरणत् झणकार करके श्रेष्ठ, ओर अनुपम होती हुई,—ऐसे श्री जिनेश्वर देव प्राणिओंको सदा वांछित फलके देनेवाले हो ॥ १ ॥

(१. यह श्लोकमें समुच्चय राग द्वेपादि अंतरंग शत्रुओंको जितनेवाले श्री जिनेश्वर देवकी स्तुति है.)

नमितनम्रसुरासुरकिन्नरचरणपङ्कजबोधिदपारग ॥
प्रथमतीर्थकरप्रविशारद प्रभव भव्यजनाय सुसौख्यदः ॥२॥

नम्रीभूत देव, असुर, और किन्नर करके नमस्कार किये गये हैं चरणकमल जिनके, बोधबीज (समकित–रत्नत्रय) की प्राप्तिके कराने-

श्री महावीर स्वामीके शासनकी रक्षा करनेवाले मातंग यक्ष देवता और सिद्धायिका देवीकी, विघ्नोंकी शांतिके लिये, स्तुति करता हुं ॥ ७ ॥

अन्यानपि सुरान् स्मृत्वा जैनधर्मैकतत्परान्
तत्त्वनिर्णयप्रासादग्रन्थोऽस्माभिः प्रतन्यते ॥ ८ ॥

जैन धर्ममें तत्पर सम्यग् दृष्टि दुसरे देवोंका स्मरण करके, तत्वनिर्णय प्रासाद नामा ग्रंथको हम विस्तार करते हैं ॥ ८ ॥

(७, ८, यह दो श्लोकमें सम्यग् दृष्टि देवोंका स्मरण करके शास्त्रका प्रारंभ सूचन किया है.)

अथ प्रथमस्तम्भप्रारम्भः

विदित होवे के संप्रति कालमें कितनेक लोक संसारिक विद्याका अभ्यास करके अपने आपकों सर्वसें अधिक अकलवंत मानने लग जाते हैं, और ऐसे घमंडमें बूट पहने फिरते हैं कि घोडोंकों भी मात करते हैं. और कितनेक तो नास्तिकही बन जाते हैं. कितनेक नवीन मिथ्यामतके पक्षी हो जाते हैं. परंतु पक्षपात छोडके सत्य धर्मका निश्चय करके स्वीकार करना दुर्लभ है. हम वहुत नम्रतासें सर्व मतवालोंसें विनती करते हैं कि, हे प्रिय मित्रो! यद्यपि अपने अपने पितामह प्रपितामहादिकी परंपरायसें अपने अपने कुलमें जो जो धर्मव्यवहार चला आता है, तिसकोंही सत्यधर्म मान रहे हैं, चाहे वो असत्यही होवे; और अन्य धर्मावलंबियोंकों मिथ्या मतवाले मान रहे हैं, चाहो वो सत्य मतही होवे: पर यह सुज्ञ जनोंका लक्षण नही है. क्योंकि, इस भरतखंडमें जैनमत, वेदमत और बौद्धमत ये तीन मत वहुत कालसें प्रचलित हैं. तिनमेंसें वेदमतवाले कहते हैं, कि हमारा वेदमतही सबसें पुराना है: इसवास्ते सत्यधर्मका प्रतिपादक है. और जैनमतवाले अपने मतकों सर्व मतोंसें प्राचीन मानते हैं; ऐसेही बौद्धमतवाले मानते हैं. इन तीनो मतोंमेंसें वेदकी रचनाकों यूरोपियन पंडित पुरानी मानते हैं.

ये नो पण्डितमानिनः शमदमस्वाध्यायचिन्ताचिताः
रागादिग्रहवञ्चिता न मुनिभिः संसेविता नित्यशः ॥
नाकृष्टा विषयैर्मदैर्न मुदिता ध्याने सदा तत्परा-
स्ते श्रीमन्मुनिपुङ्गवा गणिवराः कुर्वन्तु नो मङ्गलम् ॥ ५ ॥

जे पांडित्यमद रहित, क्रोधादिको शांत करनेमें, इंद्रियोंका दमन करनेमें, स्वाध्याय ध्यान करनेमें लीन, रागादि ग्रह करके अवंचित, (नही ठगाये हुवे,) मुनियों करके नित्य संसेवित, विषयों करके अलिप्त, (पांच इंद्रियोंके तेवीस विषयोंसें पराङ्मुख) अष्टमद (जातिमद, कुलमद, बलमद, रुपमद, तपमद, ज्ञानमद, लाभमद, ऐश्वर्यमद,) रहित, और ध्यानमें सदा तत्पर हैं, वे श्रीमान मुनियोंमें प्रधान गणधर और पूर्वाचार्य हमारें मंगल करो ॥ ५ ॥

(५. यह काव्यमें जिनके किये शास्त्रोंसें शास्त्रकारको बोध प्राप्त हुआ तिनका बहुमान किया है.)

कलमकलितपुस्तन्यस्तहस्ताग्रमुद्रा
दिशतु सकलसिद्धिं शारदा सारदा नः ॥
प्रतिवदनसरोजं या कवीनां नवीनां
वितरति मधुधारां माधुरीणां धुरीणाम् ॥ ६ ॥

जो कवियोंके मुखकमलमें नवीन (अपूर्वही) श्रेष्ठ और मधुर मधुधारा देती है, लेखनी संयुक्त पुस्तक धारण किया है हस्ताग्र भागमें जिसने ऐसी मुद्रामूर्त्तिको धारण करनेवाली, और सारवस्तुको देनेवाली श्री सरस्वती देवी (श्री भगवतकी वाणीकी अधिष्ठायिका देवी) सकल सिद्धि देओ ॥ ६ ॥

(६. यह श्लोकमें श्रुत देवकी स्तुति करी है.)

श्रीवीरशासनाधिष्ठं यक्षं मातङ्गनामकम् ॥
सिद्धायिकां त्वहं देवीं स्तुवे विघ्नोपशान्तये ॥ ७ ॥

धान करके एकादशांग तो पूरे करे, और बारमे अंगके पढनेवास्ते श्री संघने तीक्ष्ण बुद्धिवाले श्री स्थूलभद्रादि ५०० साधु नैपाल देशमें श्री भद्रबाहुस्वामीके पास भेजे. तिनमेसें एक श्री स्थूलभद्रजीनेही दश पूर्व सूत्रार्थसें और चार पूर्व सूत्र मात्र पढे. श्री स्थूलभद्रजीके शिष्य श्री आर्यमहागिरि और श्री आर्यसुहस्तिने दश पूर्वाहि सूत्रार्थसें पढे. तहांसे लेके वज्रस्वामी तक दश पूर्वके कंठाग्र ज्ञानवाले आचार्य रहे; परंतु अर्थांश तो क्रमसें न्यून न्यूनतर होता चला गया. और वज्रस्वामी दश पूर्वधरने सर्व शास्त्रोंका उद्धार अर्थात् किसी जगे प्राचीन नाम निकालके नवीन नाम प्रक्षेप करे; अस्तोव्यस्त हुए आलापकोंको न्यूनाधिक करके स्थापन करे; इत्यादि उद्धार करा. तिनके पीछे दशमा पूर्व पूर्ण व्यवच्छेद हूआ, अर्थात् श्री आर्यरक्षितसूरि साढे नव पूर्व कंठाग्र ज्ञानवाले हूए, संपूर्ण दशमा पूर्व नही पढ सके.

पीछे स्कंदिलाचार्यके समयमें बारां वर्षीय पुनः काल पडा; तिसमें भिक्षाके न मिलनेसें क्षुधादोषसें साधुयोंको अपूर्वार्थ ग्रहण १, अपूर्वार्थ स्मरण २, और श्रुतपरावर्त्तन ३, ये तीनो मूलसेंही जाते रहे. और जो अतिशायी अर्थात् चमत्कारी लोकोंमें चमत्कार दिखलानेवाले बहुत शास्त्र नष्ट हो गए. और, अंगोपांगादिमें जो ज्ञान था, सो भी पठन पाठन परावर्त्तनादिके न होनेसें भावसें नष्ट हो गया.

बारां वर्ष पीछे सुभिक्ष होनेसें मथुरा नगरीमें स्कंदिलाचार्य प्रमुख श्रमण संघने एकत्र मिलके जो जिसके याद था, सो सर्व अनुपांगादि एकत्र करके, ऐसेंहि कालिक, उत्कालिक, श्रुत, और पूर्वगत किंचित् संधान करके रचे. मथुरा नगरीमें पुस्तक जोडे गए, इस वास्ते इसकों जैन मतमें 'माथुरी वाचना' कहते हैं.

कितनेक आचार्य ऐसें कहते हैं, कि पीछले बारांवर्षीय दुर्भिक्षकालमें श्रुत नष्ट नहीं हूआ था, किंतु तिस समयमें तितनाहि ज्ञान रह गया था, शेष पहिलाही कंठसें भूल गया था. केवल अन्य जे युगप्रधान सूत्रार्थके धारक थे, वे सर्व दुर्भिक्षमें मृत्युधर्मको प्राप्त हो गए थे,

मोक्षमूलर भट्ट अपने रचे संस्कृत साहित्य ग्रंथमें यह भी लिखते हैं, कि वेदके छंदोमंत्र ऐसे हैं, जैसें अज्ञानीयोंके मुखसें अकस्मात् वचन निकले हों. और यह भी कहते हैं, कि जरथोस्ती धर्मपुस्तककी रचना वेदरचनासें पहिली वा वेदरचनाके समान कालकी है.

अब सोचना चाहिये कि, वेदमत और जरथोस्तीमतके पुस्तकोंसें पहिले कोई मत और कोई मतके पुस्तक भी अवश्य होने चाहिये. क्योंकि, मोक्षमूलरके लिखने मूजब वेदके छंदोभाग मंत्रभागकी रचनाको २९०० वा ३१०० वर्षके लगभग हूए हैं. फेर मोक्षमूलरजी कहते हैं, कि २२००० वर्ष पहिलें एशियाके अमुक अमुक हिस्सेमें अमुक अमुक जातिके लोक वस्ते थे तो क्या तिनके समयमें कोइ भी पुस्तक, कोइ भी धर्म, इस खंडमें नही था? यह कैसें माना जावे? इस हेतुसें यह कोइ भी नही कह सक्ता है, कि यही पुस्तक पहिला है, अन्य नही. इसवास्ते वेद सर्व पुस्तकोंसें पहिला पुस्तक सिद्ध नही होता है. हां, संप्रति कालमें जो वेदके पुस्तक हैं, वे जैनमतके संप्रति कालके पुस्तकोंसें प्राचीन रचनाके हैं. क्योंकि, वर्त्तमान कालमें जे जैनमतके पुस्तक हैं वे सर्व श्री महावीर अर्हन्के समयसें लेके पीछेही रचे गए हैं. क्योंकि, श्री महावीर भगवान्के, (११) इग्यारह बडे शिष्योंने नव वाचनामें द्वादशांगकी रचना करी थी. अर्थात् नव तरेंके आचारांग, नव तरेंके सूत्रकृतांग, यावत् नव तरेंके दृष्टिवाद. तिनमेसें पांचवे गणधर श्री सुधर्मस्वामीकी वाचना विना, आठ वाचनाका व्यवच्छेद श्री महावीर और श्री गौतमगणधरके पीछेही हो गया था. संप्रति कालमें जे पुस्तक जैनमतमें प्रचलित हैं, वे सर्व श्री सुधर्मस्वामीकी वाचनाके हैं. इस वाचनाके पुस्तकोंको भी बहुत उपद्रव हो गुजरे हैं.

प्रथम तो नंद राजाके समयमें इस खंडमें बारां वर्षका प्रथम काल पडा, तिसमें भिक्षाके न मिलनेसें एक भद्रबाहूस्वामीकों वर्जके सर्व साधुयोंके कंठाग्रसें द्वादशांगके पुस्तक सर्व विस्मृत हो गये थे. जब बारां वर्षका दुर्भिक्षकाल गया, तब पाटलीपुत्र नगरमें सर्व साधु एकठे हूए; जिस जिस साधुको जो जो पाठ कंठ रह गया था, सो सो सर्व सं-

१४, आदर्श लिपि १५, माहेश्वर लिपि १६, दामा लिपी १७, और वो-लिदि लिपि १८; ये अठारह प्रकारकी लिपि श्री ऋषभदेवजीने ब्राह्मी नामा निज पुत्रीकों सिखलाई, इस वास्ते ब्राह्मी लिपि अथवा ब्राह्मी संस्कृतादि भेदवाली वाणी, भाषा, तिसकों आश्रित्य श्री ऋषभदेवजीने, या दिखलाई अक्षर लिखनेकी प्रक्रिया, सा ब्राह्मी लिपि, तिसके अठारह भेद. पीछेसें देशांतर कालांतर पुरुषांतरके भेद पाकर ये अठारह प्रकारकी लिपि अनेक रूपसें प्रचलित हो गई; परं मूल सर्व लिपियोंका यह अठारह भेदवाली ब्राह्मी लिपीही है. इस वास्ते जे कोइ कहते हैं, कि प्राचीन आर्य लोक लिखनाही नहीं जानते थे, ये कहना प्रमाणिक नही है. और लिखना तो जानते थे, परंतु कल्पसूत्रकी भाष्यवृत्तिमें लिखा है, कि जो साधु सूत्र लिखे वा पास रक्खे तो तिसकों प्रायश्चित्त लेना पडता है; क्योंकि, पुस्तक लिखेगा तब स्याही, पट्टी, बंधन, दोरे, वगैरे रखने, रस्तेमें बोझ उठाना, पुस्तकके पत्रोंमें अनेक सूक्ष्म जीव उत्पन्न होते हैं, इत्यादि अनेक दूषण होनेसें लिखनेका निषेध है. और श्री देवर्द्धिगणिक्षमाश्रमणजीने जो पुस्तक लिखे, सो अन्यगतिके न होनेसें, और सर्व ज्ञान व्यवच्छेद होनेके भयसें, और प्रवचनकी भक्तिसें लिखे हैं. क्योंकि, जैनमतमें मैथुन वर्जी किसी वस्तुका एकांत निषेध नही है. इस वास्ते अपवाद पदावलंबके सूत्र सर्व लिखे. और अब भी वोही रीति प्रचलित है. और वर्त्तमान कालमें जे जैनमतके पुस्तक विद्यमान हैं, उनोंसें जैनमतके आचार्य सत्यवादी और भवभीरु भी सिद्ध होते हैं. क्योंकि, अपने मतके पुस्तकोंका जेसा वृत्तांत वीता था, तैसाही लिख गए. और अपनी कल्पनासें कोइ पाठ उलट पुलट नही करा; सो महानिशीथादि शास्त्रोंमें प्रगट देखनेमें आता है.

---

१ इन अठारह प्रकारकी लिपिका स्वरूप किसी जगे भी नही देखा, इस वास्ते नही लिखा है, ऐसें टीकाकार लिखते है.

२ जैसे वैदिक मतवालोंने वेद, उपनिषद्, महाभारत, भागवत, पुराणादिमें करा है, जो पाठ आगे लिखे जावेंगे.

एक श्री स्कंदिलाचार्यहि रह गये थे, तिनोंने मथुरा नगरीमें फेर अनुयोग प्रवर्त्तन करा, इस वास्ते 'माथुरी वाचना' कहते हैं.

जो सूत्रार्थ श्री स्कंदिलाचार्यने संधान करके कंठाग्र प्रचलित करा था, सोही श्री देवर्द्धिगणिक्षमाश्रमणजीने, एक कोटी (१०००००००) पुस्तकोंमें आरूढ करा. सो ज्ञानमतोंके झगडोंसें और मुसलमानोंके राज्यके जुलमोंसें लाखों ग्रंथ जलाए गए. और लाखों ग्रंथ जैनी लोकोंकी अज्ञानतासें उद्धारके विना कराए, पाटणादि नगरोंमें भुसकी तरे ताडपत्रके पुस्तकोंके चूरेसें कोठे कीतने भरे हैं.

इतिहासतिमरनाशकके रचनेवालेका ऐसा कथन है, कि अब भी जो पुस्तक जैसलमेर, खंभात, पाटण, अहमदावादादि स्थानोंमें विद्यमान हैं, वे पुस्तक देखने वैदिक मतवालोंके नसीबमें भी नही हैं.

पूर्वपक्षः—जब जैनमतके चौदह पूर्वधारी, दश पूर्वधारी, विद्यमान थे, तबसेंही जेकर ग्रंथ लिखे जाते तो जैनमतका इतना ज्ञान काहेको नष्ट होता ? क्या तिस समयमें लोक लिखना नही जानते थे ?

उत्तरपक्षः—हे प्रियवर! पूर्वोक्त महात्माओंके समयमें किसीकी भी शक्ति नही थी, जो संपूर्ण ज्ञान लिख सक्ता. और ऐसे ऐसे चमत्कारी विद्याके पुस्तक थे, जे गुरु योग्य शिष्योंके विना कदापि किसीकों नही दे सक्ते थे; वे पुस्तक कैसें लिखे जाते? और बीजक मात्र किंचित् लिखे भी गए थे. यह नही समजना कि तिस समयमें लोक लिखना नही जानते थे. क्योंकि, (७२) बाहत्तर कलाओंमें प्रथम कला लिखतकी है. और वे बाहत्तर (७२) कला इस अवसर्प्पिणी कालमें प्रथम श्री ऋषभदेवजीने अपने पुत्र और प्रजाकों सिखलाई. जिसमें लिखत भी श्री ऋषभदेवजीने, (१८), अष्टादश प्रकारकी सिखलाई. वे अठारह भेद लिपिके आगे लिखते हैं.

ब्राह्मी लिपि १, यवन लिपि २, दोषऊपरिका लिपि ३, वरोट्टिका लिपि ४, खरसापिका लिपि ५, प्रभारात्रिका लिपि ६, उच्चतरिका लिपि ७, अक्षरपुस्तिका लिपि ८, भोगयवत्ता लिपि ९, वेदनतिका लिपि १०, निन्हतिका लिपि ११, अंक लिपि १२, गणित लिपि १३, गांधर्व लिपि

करणे, तिसका नाम देशी प्राकृत है. जैनमतके चौदह (१४) पूर्व तो प्रायः संस्कृत भाषामेंही रचे जाते हैं. और अंगादि शास्त्र प्रायः प्राकृत भाषामेंही रचे जाते हैं. तिसका कारण संस्कार वर्णनमें लिखेंगे.

और प्राकृत भाषा प्रायः विद्वज्जनमानभंजिका भी है. जैसें वृद्धवादीसूरिजीने, श्री सिद्धसेनदिवाकरकों एक गाथा प्राकृतकी पूछी; तिसका अर्थ तिनकों नही आया. तथा जितने अर्थांशकों प्राकृत दे सक्ती है, तितने अर्थांश प्रायः संस्कृत नही दे सक्ती है[1]. इस वास्ते प्राकृत भाषा बहुत गहनार्थवालीहै. और इसी हेतुसें, जैनोंने अंगोपांगादिकी रचनामें प्राकृत भाषाही ग्रहण करी है.

और दयानंदसरस्वतिजी जो लिखते हैं कि, जैनाचार्योंने अपने तत्वोंकों छाना रखनेके वास्ते धूर्त्ततासें प्राकृत भाषामें रचना करी है, इसका उत्तर, वाहजी वाह! खूब विद्वत्ता दिखलाई! आपकों जो भाषा न आवे, उस भाषाके पुस्तक बनानेवाले वा लिखनेवाले धूर्त्त हैं. इस्सें तो दयानंदस्वामीके लेखानुसार जिसकों संस्कृत भाषा नही आती है उसके वास्ते तो जितने वैदिकमतके, तथा और मतके पुस्तक, जो कि संस्कृतादिमें बने हुए हैं, वे सर्व धूर्त्तोंके बनाए सिद्ध होवेंगे. बलके वेद तो महा धूर्तोंके बनाए सिद्ध होवेंगे. क्योंकि उनकी रचना तो सर्व संस्कृत ग्रंथोंसें प्रायः विलक्षणही है. यदि कहोगे कि, वैदिक शब्दोंकों सिद्ध करनेवाला व्याकरण विद्यमान है, तिस्सें वेदकी रचना सिद्ध हो सक्ती है; तो क्या प्राकृत शब्दोंकों सिद्ध करनेवाला व्याकरण नही है? यदि है, तो आपही धूर्त्त ठहरेंगे, जो कि सत्य शास्त्रोंकों असत्य और असत्यकों सत्य बनानेका उद्यम कर रहे हैं, वा करते थे. यदि दयानंदसरस्वतिजीने प्राकृत, शौरसेनी, मागधी, पिशाची, चूलिकापिशाची इत्यादि भाषायोंके व्याकरण पढे होते वा देखे होते तो कदापि ऐसा लेख नही लिखते; परंतु वे तो सिवाय अष्टाध्यायीके कुछ भी नही जानते थे, जो कि, उनोंके बनाए ग्रंथोंसें विद्वज्जन आपही जान

१ देखो अर्थदीपिका श्राद्धप्रतिक्रमणवृत्तिमें.

२ अन्य भी कोई अजाण कदाग्रही ऐसे ही कहते है.

इस पूर्वोक्त सर्व लेखसें यही सिद्ध हुआ, कि जैनमतके सर्व सूत्र श्री महावीरजीसेंही प्रचलित हूए हैं; परंतु यह नही समझना कि शेष त्रेवीस (२३) तीर्थंकरोंके समयमें जैनमतके शास्त्र नही थे.

पूर्वपक्षः—त्रेवीस तीर्थंकरोंके समयमें किस किस नामके शास्त्र जैनमतके थे?

उत्तरपक्षः—जो नाम संप्रति कालमें आचारादि द्वादशांगोंका[1] है, सोही नाम शेष तीर्थंकरोंके समयमें था.

पूर्वपक्षः—श्री ऋषभदेवके समयकेही शास्त्र श्री महावीरजीतांई तथा संप्रति कालमें भी क्यों नही रहे? और अजितादि त्रेविस तीर्थंकरोंको अपने अपने शासनको प्रचलित करने वास्ते नवीन नवीन द्वादशांगकी रचना करनेका क्या प्रयोजन था?

उत्तरपक्षः—हे भव्य! जे अनंत तीर्थंकर अतीत कालमें हो गए है, और जे अनंत तीर्थंकर आगामि कालमें होवेंगे, तिन सर्वके द्वादशांगी रचनाके तत्वमें किंचित्मात्रभी अंतर नही; किंतु पुरुष स्त्रीयोंके नाम, और गद्य पद्यादि रचना इत्यादिमें अंतर है, शेष तत्वस्वरूप एकसरीखा है; इस वास्ते जो श्री महावीरजीके समयकी रचना शास्त्रोंकी है, सोही श्री ऋषभदेवजीके समयमें थी. इस वास्ते जैनमतके पुस्तक सर्व मतोंके पुस्तकोंसें पुराने सिद्ध होते हैं.

और जो तीर्थंकर अपने अपने तीर्थमें नवीन उपदेश द्वादशांगीका करते हैं, वे अपना अपना तीर्थंकर नाम पुण्य प्रकृति रूप कर्मके क्षय करने वास्ते. क्योंकि, विना उपदेशके तीर्थ नही होता है; तीर्थके करे विना तीर्थंकर नाम कर्मका फल नही भोगा जाता है, और तीर्थंकर नाम कर्मके फल भोगे विना मुक्ति नही होती है; इस वास्ते उपदेश करते हैं. और इसी हेतुसें नवीन शास्त्र रचे जाते हैं, परंतु हकीकतमें पुरानेही हैं.

---

[1] आचारांग १, सूत्रकृतांग २, स्थानांग ३, समवायांग ४, विवाहप्रज्ञप्ति ५, ज्ञाताधर्मकथा ६, उपासक दशांग ७, अंतगड ८, अनुत्तरोववाइ ९, प्रश्न व्याकरण १०, विपाकश्रुत ११, और दृष्टिवाद १२.

मिरभास्कर ग्रंथसें देख लेना. जुगुप्सनीय, उपहास्यजनक बातों लिखनी हम अछा नही समझते हैं[२]. और स्तुति प्रार्थना विषयक जो लेख है, नीचे लिखते हैं.

॥ ऋग्वेद । मंडल १, अष्टक १, अनुवाक १. ॥

प्रथम नवऋचामें–अग्नि, वा, अग्निदेवताकी स्तुति है.

तदनु तीन ऋचार्चे–वायु, वा, वायु देवताका वर्णन है. और आमंत्रण स्तुति है.

तदनु तीन ऋचामें–ऐंद्रवायु देवताका आमंत्रण है.

तदनु तीन ऋचामें–ऐंद्रवायु देवताका आमंत्रण है.

तदनु तीन ऋचामें–मैत्रावरुण दो देवताका सामर्थ्य कथन है.

त० ती०–अश्विनौ देव वैद्योंके गुण कथन, और उनोंका आमंत्रण है.

त० ती०–इंद्रकों आमंत्रण, और तिसके हरित् घोडेका वर्णन है.

त० ती०–विश्वेदेवास इस नामके देवताका सामर्थ्य, और आमंत्रण है.

त० दो०–सरस्वती देवीका सामर्थ्य कथन है.

त० एक०–सरस्वती नदीका वर्णन, और उपकार कथन है.

॥ ऋ० अ० १ मं० १ अ० २ ॥

प्रथम तीन ऋचामें–इंद्रकों सोम रस पीनेके वास्ते आमंत्रण; सोमरस पीनेसें इंद्र हमकों गौआं देवेगा.

तदनु एक ऋचामें–यज्ञ करानेवाला यजमानकों कहता है, तूं जा कर

---

१ मणिलाल नभुभाइ अपने बनाए सिद्धातसार पुस्तकमें लिखते है कि—यज्ञसंबंधी एकवात बहुत मुख्य रीतिसे विचारने जैसी है. बहुत बडे यज्ञोंमे एक दोसें सौ सौ तक पशु मारनेका संप्रदाय नजरे आता है. बकरे घोडे इत्यादि पशु मात्रका बलि दिया जाता था इतनाही नही परंतु अपनेकों आश्चर्य लगता है कि मनुष्योंका भी भोग देनेमे आता था! पुरुषमेध इस नामका यज्ञही वेदमे स्पष्ट कहा हुआ है; और शुन: शेपादि वृत्तांत भी इसी बातकी साक्षी देता है. और इस रक्तस्रावमें आनंद मानने उपरांत, सोम पानसें, और आखीरके वखतमे तो सुरा (मदिरा) पानसें भी, आर्यलोक मत्त होते मालुम पडते है.

२ जिसकों देखनेकी इछा होवे ऋगवेद अष्टक आठ (८) में और यजुर्वेद अध्याय तेवीस (२३) मे देख लेवे.

सक्के हैं. अब सोचना चाहिये कि, प्राकृतमें जो रचना करी है सो धूर्त्ततासें करी है. यह लिखना सिवाय निर्विवेकी, कदाग्रहीसें और किसीका हो सक्ता है? यदि कोई किसी अपठित जाटके आगे सुंदर संस्कृत वेद, जिनशतक काव्यादि ग्रंथ रख देवें तो, क्या वो जाट तिसकों पढ सक्ता है? नही. जेकर वो जाट कहै, इन पूर्वोक्त शास्त्रोंके रचनेवाले धूर्त्त और अपंडित थे, तो क्या तिस जाटका वचन बुद्धिमान् सत्य मानेंगे? कदापि नही. ऐसेंही दयानंदसरस्वतिजीका कहना है. जितनाचिर षड्भाषाके व्याकरण और न्यायादि न पढे, तब तक वो पूर्ण विद्वानोंकी पंक्तिमें नही गिना जाता है.

और दयानंदसरस्वतिजीने जो वेदों ऊपर भाष्य रचा है, सो निःकेवल स्वकपोलकल्पित है. जो कोई विद्वान् देखता है, तो मुह मचकोडता है. और दयानंदस्वामीने जो वेदोंके स्वकपोलकल्पित अर्थ लिखे हैं, वे केवल वेदोंका बिहूदापण छिपानेके वास्ते है. सज्जनोंकों ऐसा काम करणा उचित नही है, कि वेश्याकों सती सिद्ध करना; परंतु सतीकों झूठा कलंक लगा होवे तो सज्जन तिसको दूर करणेका यत्न करते हैं. और अपने अपने संप्रदायमें अपने अपने मतके पुस्तकोंके पूर्व पुरुषोंके करे अर्थोंसे अपना स्वकपोलकल्पित मत सिद्ध न होनेसें अक्षरोंके अनुसार जो स्वकपोलकल्पित अर्थ करते हैं, वे महा मिथ्यादृष्टियोंके लक्षण है; जैसें, जैनमतके नामसें अपठित, जैनाभास, ढुंढक साधु करते हैं. तैसेंही दयानंदस्वामी पंडित कहलाके करते थे.

क्योंकि, ऋग्वेदादि चारों वेदोंमें जीवहिंसा और इंद्र, वरुण, कुवेर, नक्त, पूषा, यम, अश्विनौ, उषा, नदी इत्यादिकी स्तुति, और प्रार्थनाके सिवाय, और कितनीक जुगुप्सनीय, उपहास्यजनक वातोंके सिवाय जीवोंके कल्याणकारी मोक्ष मार्गका किंचित् भी उपदेश नही है. और न कोइ संसारकी उपकारिणी विद्याका कथन है. सो वाचक वर्गको मालुम होनेके वास्ते थोडासा लिख दिखाते हैं.

प्रथम वेदोंका हिंसकपणा देखना होवे तो हमारे बनाए अज्ञानति-

। ऋ० अ० १ मं० १ अ० ३ ।

प्रथम पांच ऋचामें–शत्रुकों जीतने वास्ते इंद्रकी प्रार्थना, और धनादिका मांगना.

तदनु दश ऋचामें–इंद्रकों धनके वास्ते प्रेरणा, हे इंद्र! हमकों धन, गौआं, अन्न संयुक्त कीर्ति, हजारां संख्याका धन, व्रीहि, जव, बहुत रथ सहित अन्न दे! अपने धनकी रक्षा वास्ते हम इंद्रकों बुलाते हैं; स्तुति करते हूए सर्व यजमान इंद्रके सामर्थ्यकी प्रशंसा करते हैं.

तदनु नव ऋचामें–इंद्रकी महिमा, धन, गौआं, दुग्ध दे! वर्षा प्रेरो! दुग्धवाली गौआं दे! हमारी स्तुति सुणो! इत्यादि.

त० २३ ऋ०–हे इंद्र! हम तुजकों जानते हैं, तूं संग्राममे हमारा बुलाना सुणता है, हजारोंका धन देनेवाला है. इत्यादि इंद्रकी स्तुति हमारी स्तुति तुमकों पहुचे.

त० ३ ऋ०–हे इंद्र! तेरे अनुग्रहसें हम शत्रुयांसें भय न पावेंगे, इंद्र धनदाता है.

त० ३ ऋ०–इंद्रके गुणोंका कथन, बल नामक असुर देव संबंधिनी गौआं चुरायके, किसी बिलमें गुप्त करी, फिर इंद्र, सैन्य सहित बिलसें निकाल लाया तिसका कथन, और यजमान इंद्रकी स्तुति कर्त्ता है.

त० २ ऋ०–इंद्रने शुष्ण असुरकों मारा, और इंद्रकी स्तुति.

। ऋ० अ० १ मं० १ अ० ४ ।

१२ ऋ०–देव दुत, अग्नि, सर्व देवताओंकों बुलानेवाला है, इस यज्ञमें यजमानकी करी आहुति सर्व देवताओंकों पहुचानेवाला है, स्तुति योग्य है. हे अग्ने! तूं देवताओंकों बुलाके इस यज्ञ कर्ममें आके बैठ! तूं हमारे शत्रुयांकों भस्म कर! इत्यादि.

८ ऋ०–अग्नि विशेषका वर्णन.

३ ऋ०–अग्नि विशेषका वर्णन.

१ ऋ०–हे इंद्रादि देवो! तुमारे वास्ते तृप्तिकारिका, सोमा, संपादन करी है.

इंद्रकों पूछ कि यज्ञ करानेवालेने इंद्रकी स्तुति ठीक करी है, कि नही? यह सुण कर इंद्र तेरेकों श्रेष्ठ धन पुत्रादि सर्व ओरसें देवेगा.

तदनु एक ऋचामें—हमारे ऋत्विज इंद्रकों कहे, हमारे निंदक इस देशमें, तथा अन्य देशोंमें भी न रहे.

त० एक०—हे इंद्र! तेरे अनुग्रहसें हमारे शत्रु भी मित्रभूत हूए बोलते हैं.

त० तीन०—इंद्रकों सोमवल्लीका रस देवो, जिसकों पीके इंद्र वृत्रनामारि असुर शत्रुयांकों हननेवाला होवे, और संग्राममें, हे इंद्र! तूं अपने भक्तकी रक्षा करनेवाला हो, हे इंद्र! तेरेकों अन्नवाला करते हैं.

तदन एक ऋचामें—इंद्र धनकी भूमिका रक्षक है, इस वास्ते हे ऋत्विजो! तुम इंद्रकी स्तुति करो.

त० एक०—हे ऋत्विजो! शीघ्र इस कर्ममें आवो! आवो! आ कर बैठो; बैठ कर इंद्रकी स्तुति करो.

त० एक०—हे ऋत्विजो! तुम सर्व एकठे होकर इंद्रकों गावो.

त० एक०—पूर्व मंत्रोक्त गुणवाला इंद्र हमकों पूर्व अप्राप्त पुरुषार्थकों प्राप्त करो! और, सोइ इंद्र धन, स्त्री, अथवा बहुत प्रकारकी बुद्धियांकों सिद्ध करो.

त० नव०—इंद्रके रथ घोडोंका कथन, और इंद्रकी प्रार्थना.

त० एक०—इंद्रही अग्नि, वायु, सूर्य, नक्षत्रके रूपसें रहा हूआ है.

त० एक०—इंद्रके घोडे रथका वर्णन.

त० एक०—सूर्यका वर्णन.

त० पांच०—मरुतका वर्णन, पणि नामक असुरोंने स्वर्गसें गौआं चुरायके अंधकारमें छिपा रखी. पीछे इंद्र मरुतोंके साथ तिनकों जीतता हूआ, इंद्र मरुतकी स्तुति, और आमंत्रण.

त० एक०—इंद्र आकाशादिकोंसें ल्याके हमकों धन देवो.

त० नव०—इंद्रकी अनेक रूपसें स्तुति.

३ ऋ०—अग्निकों आमंत्रण, अग्निकी स्तुति, अग्निके रथके घोडे पुष्ट-शरीरवाले हैं, अग्निसें प्रार्थना, यज्ञ करनेवालोंकों पत्नीयुक्त कर.

१ ऋ०—हे अग्ने! तेरी जिव्हा करके देवते सोमका भाग पीवो.

१ ऋ०—देवताकों स्वर्गलोकसें यज्ञमें बुलाना.

३ ऋ०—हे अग्ने! तूं देवताओं सहित सोमसंबंधी मधुर भाग पी. हे अग्ने! तूं हमारे यज्ञकों निष्पादन कर. हे देवाग्ने! तूं अपने रोहित नामा घोडेकों जोडके इस यज्ञमें देवताओंकों बुलाव.

१२ ऋ०—हे इंद्र! ऋतुदेवसहित सोम पी. हे मरुत! तूं सोम पी. ऋतुके साथ हमारे यज्ञकों सोध. हे अग्नादेवते! तूं रत्नोंका दाता है, इस वास्ते सोम पी. हे अग्ने! तूं देवताकों बुलवाव. हे इंद्र! तूं ऋतुसहित धनभूतपात्रसें सोम पी. हे मित्रनामक और वरुणनामक देव! तुम ऋतुके साथ हमारे यज्ञमें व्याप्त हुओ. अग्निदेवकी धनके अर्थी ऋत्विज स्तुति करते हैं. द्रविणोदा देवता हमकों धन देवो. द्रविणोदा देव ऋतुयांके साथ नेष्टृसंबंधि पात्रसें सोम पीनेकी इच्छा करता है, इस वास्ते हे ऋत्विज! तुम होमके स्थानपर जाकर होम करो. हे द्रविणोदा देव! ऋतुयां सहित तेरेकों हम पूजते हैं. तूं हमकों धन दे. हे अश्विनौ देवते! तुम ऋतु सहित यज्ञके निर्वाहक हो. हे अग्निदेव! तूं गृहपतिके रूप करके ऋतु सहित यज्ञका निर्वाहक है.

९ ऋ०—हे इंद्र! सोम पीनेके वास्ते अपने घोडोंकों बुलाव. वेदीके पास इंद्रकों आहुति—हे इंद्र! तूं घोडोंसहित आव, हम आहुति देते हैं. हे इंद्र! तूं गौर मृगकी तरें तृषित (प्यासा) हुवा इस सोमकों पी. हे इंद्र! तिस तिस पात्रगत तिन तिन सोमोंकों वलके वास्ते तूं पी. हे इंद्र! यह जो श्रेष्ठ स्तोत्र हम करते हैं, सो तेरे हृदयकों सुखदायि होवे; स्तुति अनंतर तूं सोम पी. इंद्रकों यज्ञमें आमंत्रण—हे शतक्रतो! तूं हमकों वांछित फल, गौआं, घोडे सहित पूरण कर. हम भी ध्यान करके तेरी स्तुति करते हैं.

९ ऋ०–में अनुष्ठाता समीचीनराज्यसंयुक्त, सम्यग् दीप्यमान वा ऐसें इंद्रवरुणोंसंबंधी रक्षाकी प्रार्थना करता हूं. हे इंद्रवरुणौ! तुम अनुष्ठान करनेवालेके रक्षक हो. इत्यादि–हे इंद्रवरुणौ! यदा यदा हम धन चाहते हैं, तदा तदा तुम देते हो. हे इंद्रवरुणौ! तथाविध हविः ग्रहण करनेवाले तुह्मारे दोनोंके प्रसादसें हम अन्न देनेवाले पुरुषोंमें मुख्य होते हैं. यह इंद्र धन देनेवालोंमेंसें प्रभूतधन देता है, वरुण स्तुति करने योग्य है, इंद्र वरुणके रक्षक होनेसें हम धनकों प्राप्त होते हैं, निधि भी करते हैं, हे इंद्रवरुणौ! हम तुमकों आहुति देते हैं, मणि आदि विचित्र धनके वास्ते, और शत्रुयोंमें हमकों जययुक्त करो. हे इंद्रवरुणौ! तुम हमारी बुद्धियांमें सुख दो, हे इंद्रवरुणौ! तुम श्रेष्ठ स्तुतिकों प्राप्त हो.

॥ ऋ० अ० १ मं० १ अ० ५ ॥

१ ऋ०–हे ब्रह्मणस्पते देव! मुजे अनुष्ठानकर्त्ताकों देवोंके विषे प्रकाशवाला कर, कक्षीवान् नामक ऋषिकी तरें.

१ ऋ०–धनवान्, रोगोंकों हननेवाला, धनप्राप्तिवाला, पुष्टिकी वृद्धि करनेवाला, शीघ्र फलका देनेवाला, ऐसा ब्रह्मणस्पति देव, हमकों अनुग्रह करो.

१ ऋ०–हे ब्रह्मणस्पते! शत्रुकों दूर कर, हमकों पाल.

१ ऋ०–यह इंद्रदेव यक्ष्यमाण मनुष्यकों वर्द्धमान करता है, तथा ब्रह्मणस्पति, और सोम करते हैं सो यजमान विनाशकों प्राप्त नहीं होता है.

१ ऋ०–हे ब्रह्मणस्पते! तूं अनुष्ठान करनेवाले मनुष्यकी पापसें रक्षा कर, तथा सोम, इंद्र, दक्षिण, यह सर्व देव रक्षा करो.

सदसस्पति नाम देवता, इंद्रका प्यारा, धनका दाता, इत्यादि चतुर्दश (१४) ऋचामें अनेक प्रकारके देवताओंका सामर्थ्य और आमंत्रणादि वर्णन है.

८ ऋ०–मनुष्य तप करके देवते हूए, तिनकों ऋभु कहते हैं. तिनोंको प्रीति उत्पन्न करने वास्ते ऋत्विजोंने अपने मुखकरके स्तोत्र उत्पन्न करा, तिस स्तोत्रका वर्णन.

प्रकाशता है, तीसरा यमलोक है, जिसमें प्रेतपुरुष आकाशमार्गसें जाते हैं. सूर्यके किरण तीन लोककों प्रकाश करते हैं, ऐसे किरणोंवाला सूर्य रात्रिमें कहां है? यह रहस्य कोइ नहीं जानता है. सूर्य आठों दिशा और गंगादि सात नदीयों वा सात समुद्रांकों प्रकाशता है, सो यहां यज्ञमें आवो, सोनेके हाथोंवाला सूर्य स्वर्ग और पृथ्वीके बीचमें चलता है. सूर्यकी स्तुति. हे सूर्य! तेरे चलनेका मार्ग निर्मल है. आज तूं आ कर हमारी रक्षा कर–इत्यादि.

॥ ऋ० अ० १ मं० १ अ० ८ ॥

२० ऋ०–अग्निकी स्तुति, अग्निकों आमंत्रण,–हे अग्ने! तूं हमारे शत्रुओंकों मार, भस्म कर, राक्षसोंकों भस्म कर–इत्यादि.

४० ऋ०–काण्व ऋत्विक्का वर्णन, मरुत् देवताका सामर्थ्यवर्णन, काण्वकों यज्ञमें आमंत्रण, पुनः मरुत् देवताका सामर्थ्यवर्णन, उनकों विनती और आमंत्रण–४९ प्रकारके मरुत् देवताओंका सामर्थ्यवर्णन, यज्ञमें आमंत्रण और उनोंसें याचना करनी–इत्यादि.

८ ऋ०–ब्रह्मणस्पति देवताका सामर्थ्यवर्णन, उनकों आमंत्रण और उनसें अनेक वस्तुओंकी याचना–इत्यादि.

९ ऋ०–वरुण, मित्र और अर्यमा, इन तीनों देवताओंका कथन, और उनोंसें प्रार्थना, धन देवो, यजमानकी रक्षा करो, शत्रुओंकों मारो–इत्यादि.

१० ऋ०–पूषन् देवताका वर्णन, तिसका सामर्थ्य, तिसकों आमंत्रण और तिससें धनादिकी याचना–इत्यादि.

५ ऋ०–रुद्रनामक देवका वर्णन स्तोत्रद्वारा–

१ ऋ०–हमारे घोडे, मेष, मेषी, पुरुष, स्त्री, गौआदिके तांइ देव सुख करता है.

३ ऋ०–हे सोम! हमकों धन दे. इत्यादि वर्णन.

॥ ऋ० अ० १ मं० १ अ० ९ ॥

२४ ऋ०–अग्निकी स्तुति, अग्निका विचित्र प्रकारके विशेषणां सं-

१ ऋ०—अग्निकी प्रेरणासें शुनःशेपने विश्वेदेवताकी स्तुति करी.

८ ऋ०—उखल मूसलकी स्तुति है; क्योंकि, उखल मूसल सोमको कूटके इंद्रके पीने योग्य रस काढते हैं.

१ ऋ०—ऋत्विग्विशेष हे हरिश्चंद्र देवता! पक्षे हे हरिश्चंद्र! तूं सोमको गाडीऊपर लाद दे.

२२ ऋ०—विश्वेदेवोंकी प्रेरणासें शुनःशेपने इंद्रकी स्तुति करी. हे इंद्र! हमकों गालीयां देनेवाले हमारे शत्रुयांकों तूं मार इत्यादि.

१ ऋ०—इंद्रने तुष्टमान होके शुनःशेपकों हिरण्यरथ दिया.

३ ऋ०—इंद्रकी प्रेरणासें शुनःशेपने इंद्रके घोडोंकी स्तुति करी.

३ ऋ०—इंद्रके घोडोंकी प्रेरणासें शुनःशेपने उषःकालाभिमानिनी देवताकी स्तुति करी.

॥ ऋ० अ० १ मं० १ अ० ७ ॥

१८ ऋ०—अग्निकी स्तुति, अग्निके कर्त्तव्य, हे अग्ने! नहुषनामा राजाका तूने सेनापतिपणा करा; किसी लडकी छोकरीका तूं उपदेशक था,—इत्यादि.

१५ ऋ०—इंद्रके पराक्रमोंका वर्णन, मेघकों मारा, जलकों भूमिमें गेरा, पर्वतोंकों तोडके नदीओंकों ले आया, अनेक असुरोंकों मारे, वृत्रनामा असुरने मेघकों रोक रक्खा था जिसकों इंद्रने मारा—इत्यादि.

१५ ऋ०—पणिनामा असुर देवताओंकी गौआंकों हरके ले गया, देवताओंने परस्पर सलाह करके इंद्रके पास पुकार करा; इंद्र गौआंकों ले आया, वृत्रके अनुचरोंकों मारा, मेघ वर्षाया, दैत्य मारे, कुत्सनामा ऋषिकी रक्षा करी, वशाश्रु ऋषिकी रक्षा करी, शत्रुओंके भयसें जलमें मग्न हुआ, इंद्रके अनुग्रहसें बहार निकला, और उसकी रक्षा करी—इत्यादि.

१२ ऋ०—अश्विनीकुमारोंका सामर्थ्य, उनोंकी प्रार्थना, रथके गर्दभोंका वर्णन, और यज्ञमें आमंत्रणादि.

११ ऋ०—सूर्यका वर्णन, सूर्य बहुत देशोंसें आता है, सूर्यके रथका वर्णन, सूर्यके घोडोंका वर्णन, सोऽयावीनामा घोडा सूर्यका रथ वहता है, लोक स्वर्गोपलक्षित तीन है, दो लोक सूर्यके समीप होनेसें सूर्य उनकों

कर क्रोधित हुआ, उसकों इंद्र पीछा ल्याया, फेर तिसके तांइ सोम-दिया, इस अर्थका वर्णन है.

१ ऋ०–अंगराज किसी दिनमें अपनी राणीयांके साथ गंगामें जल-क्रीडा करता हुआ; तिस समयमें दीर्घतमा नाम ऋषिकों अपने स्त्री, पुत्र, नौकरादिकोंने दुर्बल होनेसें कुछभी नही कर सक्ता है, ऐसे द्वेषसे गंगामें वहा दिया; सो ऋषि वहता हुआ अंगराजके क्रीडाप्रदेशमें आ लगा. राजाने सर्वज्ञ जाणके तिस ऋषिकों बहार निकाला, और कहा कि, हे भगवन्! मेरे पुत्र नही हैं; यह पट्टराणी है, इसके विषें किसी पुत्रकों उत्पन्न कर. ऋषिनें मान लिया. पट्टराणीने भी राजाकेपास मान लिया. पीछे यह अतिशय वृद्ध जुगुप्सित मेरे योग्य नही है, ऐसी अपनी बुद्धिकरके विचारके राणीने अपनी उशित् नामा दासीकों भेजी. तिस सर्वज्ञ ऋषिने मंत्रपवित्र पानी करके दासीकों सिंचन करी; सो दासी ऋषिपत्नी हुई; तिसविषे कक्षीवान् नाम ऋषि उत्पन्न हुआ, सोही राजाका पुत्र हुआ. उसने बहुविध राजसूयादि यज्ञ करे, तिसके करे यज्ञोंसें तुष्टमान होके इंद्रने वृचया नामा स्त्री तिसके तांइ दीनी. तथा हे इंद्र! तूं वृषणश्व नाम राजाकी कन्या होता भया, जिसका नाम मेना था.–इत्यादि वर्णनका संक्षेप है.

इत्यादि प्रायः सारा ऋग्वेद इसीसें परिपूर्ण है. यजुर्वेदादिमें भी सिवाय हिंसा और प्रार्थनाके और कुछभी प्रायः नहीं है. और जो ऋग्वेदके सातमे मंडलमें ईश्वरकी स्तुति और स्वरूप लिखा है, सो सर्व सूक्त नवीन हैं. क्योंकि, तिनकी संस्कृत अन्य अष्टक मंडल सूक्तोंसें अन्य तरेकी शुद्ध मार्जन करी हुई मालुम होती है. दयानंदस्वामीजीने इन सूक्तोंके अर्थभी प्राचीन अर्थोंसें उलटे करे हैं; परंतु इससें कुछ पंडिताई हांसल नहीं होती है. भवभीरु और पंडितोंका तो यही काम होता है, सत्यकों ग्रहण करना, असत्यकों त्याग करना. और असत्यकों जो मनःकल्पित अर्थ हेतु–युक्तिद्वारा सत्य सिद्ध करना है, सो तो कदाग्रहीका काम है. और असल प्राचीन वेदमंत्रोंमें अनीश्वरी, पूर्वमीमांसा, अर्थात् जैमनीय मतका प्रतिपादन है, इस वास्तेही मीमांसक विधि-

युक्त वर्णन, हे अग्ने! तूं धूमरूप चिन्हवाला है, तूं यहां आव, हमकों धन दे–इत्यादि.

१५ ऋ०–उषो देवता तथा अश्विनौ देवता इन्होंका वर्णन, उन्होंकों आमंत्रण, आवो, सोम पीवो–इत्यादि.

१० ऋ०–हे अश्विनौ देवते! तुम सोम पीवो यजमानकों रत्नादि धन देवो इत्यादि प्रार्थना और आमंत्रणादि.

२० ऋ०–हे द्यु देवताकी पुत्रि उषः! अश्ववती, गोमती, तूं धनवानोंका धन हमारे वास्ते प्रेरय, सोम पीने वास्ते सर्व देवोंकों बुलवा, इत्यादि प्रार्थना, अनेक प्रकारसें उषः देवताकी स्तुति, और आमंत्रण यज्ञके वास्ते–इत्यादि.

१३ ऋ०–सूर्यकी स्तुति, सूर्यकों आमंत्रण यज्ञके वास्ते–हे सूर्य! तूं और कोइ जानेकों समर्थ नहीं तिस रस्तेकरके जानेवाला है[1], सोइ दिखाते हैं; दो हजार दोसौ और दो (२२०२), योजन अर्द्ध निमेषमात्रमें चलता है. इस वास्ते तेरे तांइ नमस्कार हो. हे सूर्य! तूं आकाशमें चलता है, यह सूर्य मेरे उपद्रव करनेवाले रोगोंकों नाश करता हुआ उदय हुआ–इत्यादि.

॥ ऋ० अ० १ मं० १ अ० १० ॥

१ ऋ०–इंद्र आपही किसीका पुत्र हुआ, यद्वा, काण्वपुत्र, मेधातिथि यजमानका सोम, इंद्र, मेषका रूप करके पीता हुआ, वो ऋषि उसकों मेष कहता हुआ, इसी वास्ते अबभी इंद्रकों मेष कहते हैं. उस मेषरूप इंद्रका वर्णन.

१ ऋ०–वरुणकी स्तुति और तिसका वर्णन.

८ ऋ०–विचित्र कर्त्तव्यों सहित इंद्रकी स्तुति.

१ ऋ०–शर्यात नामा राजऋषिके यज्ञमें भृगुगोत्रका उत्पन्न हुआ च्यवन महाऋषि आश्विनग्रहकों ग्रहण करता हूआ, इंद्र उसकों देख

---

१ हे सूर्य त्वं तरणिः तरिता अन्येन गन्तुमशक्यस्य महतोऽध्वनो गन्ताऽसि तथा च स्मर्यते 'योजनानां सहस्रे द्वे द्वे शते द्वे च योजने ॥ एकेन निमिषार्धेन क्रममाण नमोऽस्तु ते' इति भाष्यकारः ॥

यथासंख्य उत्तर करके पूर्वतर नित्यही एक है, सो ऐसें ज्ञापन करता है कि, जो अनित्य है सो भी कथंचित् नित्यही है. और जो नित्य है, सो भी कथंचित् अनित्यही है. एकांतवादीयोंने भी एकही पृथ्वीमें नित्यानित्यत्व माना है. " तथा च प्रशस्तकारः ' पृथिवी दो प्रकारकी है. नित्या और अनित्या, परमाणु लक्षणा नित्या है, और कार्यलक्षणा अनित्या है. और ऐसें भी न कहना कि यहां परमाणुकार्य द्रव्यलक्षणाविषय दो भेदोंसें एकाधिकरण नित्यानित्य नही है. क्योंकि, पृथिवीत्वका दोनों जगे अव्यभिचार होनेसें. ऐसें अप् आदिकमें भी जानना. आकाशसें भी तिनोने संयोगविभाग अंगीकार करनेसें अनित्यत्व युक्तिसें मानाही है. तथा च स एवाह ' शब्दकारणत्व वचनसें संयोगविभाग है. ऐसें नित्यानित्य दोनों पक्षोंको संवालितत्व है. और यह स्वरूप लेशमात्रसें ऊपर लिख आए हैं. प्रलापप्रायत्व परवादीयोंके वचनोंका इस प्रकारसें समर्थन करना योग्य है. वस्तुका प्रथम तो अर्थक्रियाकारित्व लक्षण है, सो लक्षण एकांत नित्य अनित्य पक्षोंमें घटता नही है. अप्रच्युत अनुत्पन्न स्थिरैकरूप जो नित्य है, सो क्रमकरके अर्थक्रिया करता है, वा अक्रम करके. परस्पर व्यवच्छेद रूपोंको प्रकारांतरके असंभव होनेसे तहां क्रम करके अर्थक्रिया तो नही करता है. क्योंकि, सो कालांतरभाविनी क्रिया प्रथम क्रिया कालमेंही जबरदस्तीसें करे समर्थको कालक्षेप करना अयोग्य है; कालक्षेपिको असमर्थ प्राप्ति होनेसें. जेकर कहेंगे समर्थ भी तिस तिस सहकारिके समवधानके हुए तिस तिस अर्थको करता है. तब तो सो समर्थ नही है. अपर सहकारिकी सापेक्षवृत्ति होनेसें. सापेक्ष जो है, सो समर्थ नही. इस न्यायसें जेकर कहोगे वो तो सहकारिकी अपेक्षा नही करता है. किंतु कार्यही सहकारिके न हुए, नही होता है, इस वास्ते तिनकी अपेक्षा करता है. तब तो सो भाव समर्थ है वा असमर्थ है? जेकर समर्थ है तो काहेको सहकारीयोंके मुखको देखता है? जलदीही क्यों नही करता है?

पूर्वपक्षः—समर्थ भी बीज, पृथिवी, जल पवनादि सहकारीयोंकेसहितही अंकुरको करता है, अन्यथा नही.

उपचारको भी किंचित् साधर्म्यद्वारसें मुख्यार्थका स्पर्शि होनेसें प्रमाणता है. आकाशका जो सर्वव्यापकत्व मुख्य प्रमाण है सो तिस तिस आधेय घटपटादि संबंधि नियत प्रमाणके वशसें कल्पित भेदके हुए प्रतिनियत देशव्यापि करके व्यवहार करते हुए घटाकाश पटाकाशादि तिस तिस व्यपदेशका निबंधन होता है. और तिस तिस घटादि संबंधके हुए व्यापकपणे करके अवस्थित आकाशको अवस्थांतरकी आपत्ति है, तब तो अवस्थाके भेद हुए. अवस्थावालेका भी भेद है. अवस्थाको तिससें अविष्वगुभाव होनेसें सिद्ध हुआ कि, नित्यानित्य आकाश है. स्वयंभूमतवाले भी नित्यानित्यही वस्तु मानते हैं. 'तथा चाहुस्ते' तीन प्रकारका निश्चय यह परिणाम है. धर्मिका धर्मलक्षण अवस्यारूप है. सुवर्ण धर्मि, तिसका धर्म परिणाम वर्द्धमान रुचकादि. धर्मका लक्षण परिणाम अनागतादि है. यदा यह हेमकार वर्द्धमानकको भांगके रुचककी रचना करता है, तदा वर्द्धमानक वर्त्तमानता लक्षणको छोडके अतीतताल‌क्षणको प्राप्त होता है. और रुचक तो अनागतता लक्षणको त्यागके वर्त्तमानताको प्राप्त होता है; और वर्त्तमानताको प्राप्त हुआ भी, रुचक नव पुराणादि भावको प्राप्त होता हुआ अवस्था परिणामवान् होता है. सो यह तीन प्रकारका परिणाम धर्मिके धर्मलक्षण अवस्था जे हैं, सो धर्मिसें भिन्न भी हैं, और आभिन्न भी हैं; ते धर्मिसें अभेद होनेसें नित्य हैं. और भेद होनेसें उत्पत्तिविनाशविषयत्व है. ऐसें दोनोही उपपन्न होते हैं.

अथ इस काव्यके उत्तरार्द्धका विवरण करते हैं. तन्नित्यमेवैकम्-इत्यादि—ऐसें उत्पादव्ययध्रौव्यात्मकत्व सर्व भावोंके सिद्ध हुआ भी, एक आकाशादिक नित्यही है; और अन्यत् प्रदीप घटादिक अनित्यही है; इस प्रकारसें दुर्नयवादापत्ति होवे है. अनंतधर्मात्मक वस्तुमें स्वाभिप्रेतनित्यत्वादिधर्मके सिद्ध करनेमें तत्पर होना, और शेष धर्मोंके तिरस्कार करनेमें प्रवर्त्त होना दुर्नयोंका लक्षण है. इस उल्लेखकरके तेरी आज्ञाके द्वेषी तेरे कथन करे शासनके विरोधियोंके प्रलापाः प्रलपितानि असंबद्धवाक्य तिनके हैं. यहां प्रथम आदीपमिति इससें परप्रसिद्धिकरके अनित्यपक्ष उल्लेखके हुए भी जो आगे

महाज्ञानं भवेद्यस्य लोकालोकप्रकाशकम् ॥
महादया दमो ध्यानं महादेवः स उच्यते ॥ ३ ॥

भाषा—वडा ज्ञान, अर्थात् केवलज्ञान, लोकालोकके स्वरूपका प्रकाशक होवे, जिसकों और जीवनमोक्षावस्थामें महादया, महादम और महाध्यान, शुक्लध्यान होवे जिसकों सो महादेव कहा जाता है ॥ ३ ॥

महांतस्तस्करा ये तु तिष्ठन्तः स्वशरीरके ॥
निर्जिता येन देवेन महादेवः स उच्यते ॥ ४ ॥

भाषा—जे वडे भारी तस्कर छद्मस्थावस्थामें अपने शरीरमें रहे हुए अष्टादश (१८) दूषणरूप, वे सर्व जिस देवने अपुनर्भवरूपसें जीते हैं, सो महादेव कहा जाता है ॥ ४ ॥

रागद्वेषौ महामल्लौ दुर्जयौ येन निर्जितौ ॥
महादेवं तु तं मन्ये शेषा वै नामधारकाः ॥५॥

भाषा—राग अभिष्वंगरूप, द्वेष अप्रीतिरूप, ये दोनो महामल्ल दुर्जय हैं; जीतने कठिन हैं. परं जिसने ये पूर्वोक्त दोनो मल्ल जीते हैं, तिसकों लो मैं सच्चा महादेव मानता हूं. और जो रागी द्वेषीकों लोक महादेव मानते हैं, सो नाममात्रसें महादेव है; नतु यथार्थ स्वरूपसें. होलिके बादशाहवत् ॥ ५ ॥

शब्दमात्रो महादेवो लौकिकानां मते मतः ॥
शब्दतो गुणतश्चैवार्थतोपि जिनशासने ॥ ६ ॥

भाषा—शब्दमात्र (कथनमात्र) महादेव तो लौकिक मतवालोंके मतमें मान्य है, और जैसा शब्द तैसाही अर्थ होवे, अर्थात् शब्दसें जो अर्थ निकले तिस अर्थरूप गुणसंयुक्त जो होवे, तिसकों जैन मतमें महादेव मानते हैं ॥ ६ ॥

शक्तितो व्यक्तितश्चैव विज्ञानं लक्षणं तथा ॥
मोहजालं हतं येन महादेवः स उच्यते ॥ ७ ॥

भाषा—शक्ति क्षायकज्ञानलब्धिरूप और व्यक्ति ज्ञानउपयोग लक्षण,

उत्पत्ति होवें ? अहो स्वपक्षपाती देवानांप्रिय बौद्धो! जो वस्तु स्वयं एक निरंशरूपादिक्षण लक्षणकारणसें युगपत् अनेक कारणसाध्य अनेक कार्योंको अंगीकार करता हुआ भी परपक्षे नित्य भी वस्तुमें क्रमकरके नाना कार्य करनेमें भी विरोध उद्भावन करता है. तिस वास्ते, क्षणिक भावको भी अक्रमकरके अर्थक्रिया दुर्घट है. इस वास्ते एकांत अनित्यसें भी क्रमाक्रम व्यापकोंकी निवृत्ति होनेसें व्याप्य अर्थक्रिया भी निवृत्त होवे है. और तिसकी निवृत्तिके हुए सत्व भी व्यापकानुपलब्धि-बलकरकेही निवर्त्तता है. इससें एकांत अनित्यवाद भी रमणीय नही है. और स्याद्वादमें तो पूर्वोत्तराकार परिहार स्वीकार स्थिति लक्षण परिणाम करके भावोंको अर्थक्रियाकी उपपत्ति अविरुद्ध है. ऐसें भी न कहना कि, एकत्र वस्तुमें परस्पर विरुद्ध धर्माध्यासयोगसें स्याद्वाद असत् है. क्योंकि, नित्य पक्ष अनित्य पक्षसें विलक्षण पक्षांतरके अंगीकार करनेसें. और तैसेंही सर्व जनोने अनुभव करनेसें ॥ १ ॥

तथाच पठंति ॥ भागे सिंहो नरो भागे योर्थो भागद्वयात्मकः ॥
तमभागं विभागेन नरसिंहं प्रचक्षते ॥ २ ॥

भावार्थः—तथा वैशेषिकोंने भी चित्ररूप एक अवयवीके माननेसें एकही पटादिके चलाचल रक्तारक्त आवृतानावृतत्वादि विरुद्ध धर्मोंकी उपलब्धिसें और सौगतोंने भी एकत्र चित्रपटी ज्ञानमें नील अनीलके विरोधको अनंगीकार करनेसें स्याद्वाद मानाहै. यहां यद्यपि अधिकृतवादी प्रदीपादिकको कालांतर अवस्थायि होनेसें क्षणिक नही मानते हैं. तिनके मतमें पूर्वापर तावत् छिन्नसत्ताकोंही अनित्यता लक्षणतें. तो भी बुद्धिसुखादिकको वे भी क्षणिकताकरकेही मानते हैं. तिनके अधिकारमें भी क्षणिकवाद चर्चा अनुपपन्न नही हैं. और जो भी कालांतरावस्थायि वस्तु है, सो भी नित्यानित्यही है. क्षण भी ऐसा कोइ नही है. जहां वस्तु उत्पादव्ययध्रौव्यात्मक नही है. इति काव्यार्थः ॥ २ ॥

महेश्वरका स्वरूप कथन करके महादेवका स्वरूप श्लोक ११ करके कथन करते हैं.

जबतांइ चौथा गुणस्थान प्राप्त नही होता, तबतांइ बाह्यात्मा कहा जाता है. और चौथे गुणस्थानसें लेकर बारमे गुणस्थानतांइ देहमें रहे, तिसकों अंतरात्मा कहते हैं. यह तीनो प्रकारका शिव कहा जाता है॥१८॥

सकलो दोषसंपूर्णो निष्कलो दोषवर्जितः ॥
पञ्चदेहविनिर्मुक्तः संप्राप्तः परमं पदम् ॥ १९ ॥

भाषा–जबतांइ सकल है, अर्थात् घातिकर्मचतुष्टयकी उत्तरप्रकृतियां ४७ रूप कलाकरके संयुक्त है तबतांइ सदोष है, ओर जगत्में भ्रमण करता है. और जब निष्कल होता है, पूर्वोक्त उपाधियोंसें रहित होता है तब दोषविवर्जित है. और पंच देह (औदारिक, वैक्रिय, आहारक, तैजस, कार्मण,) इन पांचप्रकारके शरीरोंसे मुक्त होता है, तब परमपदकों प्राप्त होता है ॥ १९ ॥

एकमूर्त्तिस्त्रयो भागा ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ॥
तान्येव पुनरुक्तानि ज्ञानचारित्रदर्शनात् ॥ २० ॥

भाषा–एकमूर्ति द्रव्यार्थिकनयके मतसें, परंतु एकही मूर्त्तिके पर्यायार्थिक नयके मतकरके तीन भाग ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वररूपसें कहे हैं, वे ऐसें हैं. ज्ञानस्वरूपकों विष्णु, चारित्रस्वरूपकों ब्रह्मा और सम्यग्दर्शनस्वरूपकों महेश्वर कहते हैं. पर्यायार्थिकनयके ये तीनो गुण आविरोधिपणे एक द्रव्यमें रहते हैं. जैसें अग्निमें उष्णता, पीतता, रक्तता रहती है. तैसें एक आत्माद्रव्यमें तीन गुण एकमूर्त्तिमें रहतेहैं. इस हेतुसें तीनोंकी एक मूर्त्ति है ॥ २० ॥

अब लौकिक मतमें जो तीन देवोंकी एकमूर्त्ति मानते हैं, सो संभव नही होती है, सोही दिखाते हैं.

एकमूर्त्तिस्त्रयो भागा ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ॥
परस्परं विभिन्नानामेकमूर्त्तिः कथं भवेत् ॥ २१ ॥

भाषा–एकमूर्त्ति, तीन भाग, ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर, इन तीनो परस्पर विशेष भिन्नोंकी एकमूर्त्ति कैसें होवे? अपि तु न होवे ॥ २१ ॥

कहते हैं. "त्वं शंकरोऽसि भुवनत्रयशंकरत्वात्" इतिवचनात् । भगवंतके दोही आसन हैं, कायोत्सर्गासन वा पर्यंकासन. पुनः भगवंतकी मुद्रा, स्त्री और चक्र त्रिशूलादि, आदिशब्दसें जपमाला, यज्ञोपवीत, कमंडलु इत्यादिसें रहित होतीहै. क्योंकि, इनके रखनेसें भगवान् कामी, क्रोधी, अज्ञानी, अशुची इत्यादि दूषणोंवाला सिद्ध होता है. यदुक्तं "स्त्रीसंगः काममाचष्टे द्वेषं चायुधसंग्रहः॥ व्यामोहं चाक्षसूत्रादिरशौचं च कमण्डलुः" इति ॥ १५ ॥

साकारोऽपि ह्यनाकारो मूर्त्तामूर्त्तस्तथैव च ॥
परमात्मा च बाह्यात्मा अन्तरात्मा तथैव च ॥ १६ ॥

भाषा—देहसंयुक्त तेरमे चौदमे गुणस्थानमें जबतांइ औदारिक, तैजस, कार्मण शरीरोंकेसाथ संबंधवाला है, तबतांइ ईश्वर साकारस्वरूपवाला है; और जब सिद्धपदकों प्राप्त होताहै, तब निराकारस्वरूप कहा जाता है. ईश्वर साकारावस्थामें मूर्तिमान् है, और सिद्धपदकी अपेक्षा अमूर्त्त-स्वरूप है, परमात्मा है, बाह्यात्मस्वरूपवाला है, और अंतरात्मास्वरूपवाला भी है. कथंचित् भगवंतमें पूर्वोक्त सर्वस्वरूप घटे हैं, सोही स्याद्वाद शैलीकरके दिखाते हैं ॥ १६ ॥

दर्शनज्ञानयोगेन परमात्मायमव्ययः ॥
परा क्षान्तिरहिंसा च परमात्मा स उच्यते ॥ १७॥

भाषा—दर्शनज्ञानके योगकरके अर्थात् ज्ञानदर्शनस्वरूपकरके जो परमात्मास्वरूपकों प्राप्त हुआ है. । 'नाणदंसणलक्खणं' इतिवचनात् । और जो अव्ययरूपवाला है. "तद्भावाव्ययं नित्यम्" इतिवचनात् । और उत्कृष्ट क्षमा और अहिंसा इनकरके जो संयुक्त है, सो परमात्मा कहा जाताहै ॥ १७ ॥

परमात्मासिद्धिसंप्राप्तौ बाह्यात्मा तु भवान्तरे ॥
अन्तरात्मा भवेद्देह इत्येषस्त्रिविधः शिवः ॥ १८ ॥

भाषा—जब सिद्धिमुक्तिकों प्राप्त होवे तब परमात्मा जानना, अर्थात् तेरमें चौदमें गुणस्थानसें सिद्धिपदप्राप्तितक परमात्मा कहा जाताहै. और

राशि है, और गायत्री उसकी अधिष्ठात्री है, इस हेतुसें गायत्रीके संग गमन करनेमें ब्रह्माजीको कुछ दोष नहीं है. ऐसा होनेपर भी पूर्वके प्रजापति ब्रह्माजी अपनी पुत्रीके साथ संगम करनेसें बडे लज्जित हुए, और क्रोधसें कामदेवको यह शाप देते भये कि, जो तैंने मेरा भी मन अपने बाणोंसे चलायमान कर दिया, इसहेतुसे शीघ्रही तेरे शरीरको—शिवजी भस्म करेंगे.—इत्यादि—तथा च नवषष्टितमेऽध्याये ॥

॥ ब्रह्मोवाच ॥

वर्णाश्रमाणां प्रभवः पुराणेषु मया श्रुतः ॥
सदाचारस्य भगवन् धर्मशास्त्रविनिश्चयः ॥
पुण्यस्त्रीणां सदाचारं श्रोतुमिच्छामि तत्वतः ॥१॥

॥ ईश्वर उवाच ॥

तस्मिन्नेव युगे ब्रह्मन् सहस्राणि तु षोडश ॥
वासुदेवस्य नारीणां भविष्यन्त्यम्बुजोद्भव ॥ २ ॥
ताभिर्वसन्तसमये कोकिलालिकुलाकुले ॥
पुष्पिते पवनोत्फुल्लकह्लारसरसस्तटे ॥ ॥ ३ ॥
निर्भरापानगोष्ठीषु प्रसक्ताभिरलंकृतः ॥
कुरंगनयनः श्रीमान् मालतीकृतशेखरः ॥ ४ ॥
गच्छन् समीपमार्गेण सांबः परपुरंजयः ॥
साक्षात्कन्दर्परूपेण सर्वाभरणभूषितः ॥ ५ ॥
अनंगशरतप्ताभिः साभिलाषमवेक्षितः ॥
प्रवृद्धो मन्मथस्तासां भविष्यति यदात्मनि ॥ ६ ॥
तदावेक्ष्य जगन्नाथः सर्वतो ध्यानचक्षुषा ॥
शापं वक्ष्यति ताः सर्वा वो हरिष्यंति दस्यवः ॥
मत्परोक्षं यतः कामलौल्यादीदृग्विधं कृतम् ॥७॥

आधे शरीरको स्त्रीरूप और आधेको पुरुषरूप करते भये. इस सावित्रीको शतरूपा कहते हैं. और इसीको गायत्री और ब्रह्माणी भी कहते हैं. फिर वह ब्रह्माजी अपने देहसें उत्पन्न हुई उस स्त्रीकों अपनी आत्मजा (पुत्री) मानने लगे. तदनंतर उसकों देखकर कामदेवके बाणोंसें महापीडित हुए ब्रह्माजी आश्चर्यपूर्वक यह कहने लगे कि, अहो बडा आश्चर्य है कि, इसका कैसा सुंदर चित्तरोचक रूप हैं. फिर वसिष्ठादिक जो ब्रह्माके पुत्र थे, वह उसको अपनी बहन समझने और कहने लगे. और ब्रह्माजी सबकों त्याग कर उसके मुखकीही ओर देखने लगे. अर्थात् उस नम्रमुखी सावित्रीके रूपको वारंवार देख कर कहने लगे कि, इसका रूप कैसा आश्चर्यकारी सुंदर है. इसके पीछे वह सुंदर रूपरंगवाली सरस्वती अपने पिताकी प्रदक्षिणा करती भई. उस समय पुत्रोंसे लज्जित होकर ब्रह्माजीका मुख उसके देखनेकी इच्छाकरके दाहिनी ओरसें पीला हो गया, और ओष्ठ भी फुरने लगे; तब तो आश्चर्य करनेसे अपने मुखकों पीछे करलिया. इसके अनंतर कामदेवकी पीडासें युक्त होकर ब्रह्माजीका मुख महाकामातुरतासें उसके देखनेकों आश्चर्यित होके शोभित हुआ. उस समयपरही सरस्वतीकेही समानरूपवाली एक दूसरी स्त्री उत्पन्न हो गई. और जो कि ब्रह्माजीने सृष्टि रचनेकेलिये बडा दारुण तप किया था, वह ब्रह्माजीका किया हुआ तप अपनी पुत्रीके संभोग करनेकी इच्छा करनेसें नष्ट हो गया था, इस हेतुसें ब्रह्माजीके ऊपरकी ओर पांचवां मुख उत्पन्न होता भया. तब उस समर्थ ब्रह्माजीने उस पांचवें मुखको अपनी जटाओंसे ढककर अपने पूर्वोक्त पुत्रोंसे कहा कि, तुम देवता, राक्षस और मनुष्यादि सब प्रकारकी प्रजाको रचो. उनकी आज्ञा पातेही वह सब ब्रह्माके पुत्र अनेक प्रकारकी प्रजाओंकी सृष्टि रचनेको चले गये. उनके चलेजानेके पीछे कामके बाणोंसे महापीडित ब्रह्माजी नम्रमुखी और अनिंदित अपनी शतरूपानाम स्त्रीको ग्रहणकरके बडी लज्जासें युक्त होकर देवताओंके सो वर्षपर्यंत अन्य अज्ञानी मनुष्योंकेसमान उससें रमण करते भये—फिर बहुत कालपीछे उसको मनु नाम पुत्र हुआ—इत्यादि तथा अध्याय चौथे अध्यायमें लिखाहै कि, ब्रह्माजी वेदकी

कस्मादीशेन संयोगं प्राप्य वेश्यात्वमागताः ॥ १८॥
वेश्यानामपि यो धर्मस्तन्नो ब्रूहि तपोधन ॥
कथयिष्यत्यतस्तासां स दाल्भ्यश्चैकितायनः ॥ १९ ॥
॥ दाल्भ्य उवाच ॥
जलक्रीडा विहारेषु पुरा सरसि मानसे ॥
भवतीनां च सर्वासां नारदोभ्यासमागतः ॥ २० ॥
हुताशनसुता सर्वा भवन्त्योऽप्सरसः पुरा ॥
अप्रणम्यावलेपेन परिपृष्टः स योगवित् ॥
कथं नारायणोऽस्माकं भर्त्ता स्यादित्युपादिश ॥ २१ ॥
तस्माद्वरप्रदानं वः शापश्चायमभूत्पुरा ॥
शय्याद्वयप्रदानेन मधुमाधवमासयोः ॥ २२ ॥
सुवर्णोपस्करोत्सर्गाद्द्वादश्यां शुक्लपक्षतः ॥
भर्त्ता नारायणो नूनं भविष्यत्यन्यजन्मनि ॥ २३ ॥
यदकृत्वा प्रणामं मे रूपसौभाग्यमत्सरात् ॥
परिपृष्टोऽस्मि तेनाशु वियोगो वा भविष्यति ॥
चौरैरपहृताः सर्वा वेश्यात्वं समवाप्स्यथ ॥ २४ ॥
एवं नारदशापेन केशवस्य च धीमतः ॥
वेश्यात्वमागताः सर्वा भवन्त्यः काममोहिताः ॥
इदानीमपि यद्वक्ष्ये तच्छृणुध्वं वरांगनाः ॥ २५ ॥

भाषा–ब्रह्माजी बोले, हे शिवजी! मैनें पुराणोंमें वर्णआश्रमोंकी उत्पत्ति और धर्मशास्त्रका निश्चय सुना है. अब उत्तम स्त्रियाओंके सदाचारको सुनना चहाता हूं. शिवजी बोले, हे ब्रह्माजी! इसी द्वापरयुगमें श्रीकृष्णके सोलह हजार स्त्रियां होंगी तब एक समय वसंतऋतुमें कोकिला-भ्रमरादिकोंसे कूजित, खिलेहुए कमलोंसें शोभित सरोवरोंवाले पुष्पित-वनमें एकांत स्थानोंके सरोवरोंके तटोंपै विराजमान हुई वह स्त्रियां अपने

तत: प्रसादितो देव इदं वक्ष्यति शार्ङ्गभृत् ॥
ताभिः शापाभितप्ताभिर्भगवान् भूतभावनः ॥८॥
उत्तारभूतं दासत्वं समुद्राद्ब्राह्मणप्रियः ॥
उपदेक्ष्यत्यनन्तात्मा भाविकल्याणकारकम् ॥ ९ ॥
भवतीनामृषिर्दाल्भ्यो यद्व्रतं कथयिष्यति ॥
तदेवोत्तारणायालं दासत्वेऽपि भविष्यति ॥
इत्युक्त्वा ताः परिष्वज्य गतो द्वारवतीश्वरः ॥ १० ॥
ततः कालेन महता भारावतरणे कृते ॥
निवृत्ते मौसले तद्वत् केशवे दिवमागते ॥ ११ ॥
शून्ये यदुकुले सर्वैश्चौरैरपि जितेऽर्जुने ॥
हृतासु कृष्णपत्नीषु दासभोग्यासु चाम्बुधौ ॥ १२ ॥
तिष्ठन्तीषु च दौर्गत्यसंतप्तासु चतुर्मुखः ॥
आगमिष्यति योगात्मा दाल्भ्यो नाम महातपाः ॥१३॥
तास्तमर्घेण संपूज्य प्रणिपत्य पुनः पुनः ॥
लालप्यमाना बहुशो बाष्पपर्याकुलेक्षणाः ॥ १४ ॥
स्मरन्त्यो विपुलान् भोगान् दिव्यमाल्यानुलेपनम् ॥
भर्तारं जगतामीशमनन्तमपराजितम् ॥ १५ ॥
दिव्यभावान् तां च पुरीं नानारत्नगृहाणि च ॥
द्वारकावासिनः सर्वान् देवरूपान् कुमारकान् ॥
प्रश्नमेवं करिष्यन्ति मुनेराभिमुखं स्थिताः ॥१६॥

॥ स्त्रिय ऊचुः ॥

दस्युभिर्भगवन् सर्वाः परिभुक्ता वयं बलात् ॥
स्वधर्माच्च्यवतेऽस्माकमस्मिन् वः शरणं भव ॥ १७॥
आदिष्टोऽसि पुरा ब्रह्मन् केशवेन च धीमता ॥

धर्म कहेंगे कि, हे स्त्रियो! पूर्वकालमें तुम सब किसी समय मानससरोवरमें क्रीडा कर रही थीं, उस समय तुह्मारे समीप नारद मुनि आगये थे, उस कालमें तुम अग्निकी पुत्री अप्सरारूप थीं, उस समय तुमने नारदजीको प्रणाम नही किया था, और विना प्रणाम कियेही तुमने उस योगीसे यह प्रश्न किया था कि, हे मुने! हमको जगन्नाथ श्रीकृष्ण भर्त्ता कैसे प्राप्त होय उसको कहिये. उस समय तुमको नारद मुनिने श्रीकृष्णजीके मिलनेका वर दिया था, और प्रणाम नही करनेसे शाप भी दिया था, अर्थात् यह कहा था कि चैत्र वैशाख इन दोनों महीनोंकी शुक्ल पक्षकी द्वादशीके दिन दो शय्यादान और सुवर्णका दान करनेसे दूसरे जन्ममें तुह्मारा निश्चयकरके नारायण पति होगा, और जो कि, तुमने अपने रूप और सौभाग्यके अभिमानसे मुझको प्रणाम विना कियेही प्रथम प्रश्न किया है इस हेतुसे तुह्मारा इस प्रकारसे वियोग भी होगा कि, तुम चोरोंसे हरी जाओगी, और वेश्याभावको प्राप्त हो जाओगी. इसीसे तुम सब नारदजीके और श्रीकृष्णजीके शापसे कामसे मोहित होकर वेश्यापनेको प्राप्त होगई हो ॥ इत्यादि–

॥ पुनरपि मत्स्यपुराणे ॥

ज्वलत्फणिफणारत्नदीपोद्योतितभित्तिके ॥
शयनं शशिसंघातशुभ्रवस्त्रोत्तरच्छदम् ॥ ५८६ ॥
नानारत्नद्युतिलसच्छक्रचापविडम्बकम् ॥
रत्नकिङ्किणिकाजालं लम्बमुक्ताकलापकम् ॥५८७॥
कमनीयचलल्लोलवितानाच्छादिताम्बरम् ॥
मन्दिरे मन्दसंचारः शनैर्गिरिसुतायुतः ॥ ५८८ ॥
तस्थौ गिरिसुताबाहुलतामीलितकन्धरः ॥
शशिमौलिसितजोत्स्नाशुचिपूरितगोचरः ॥ ५८९ ॥
गिरिजाप्यसितापाङ्गी नीलोत्पलदलच्छविः ॥

समीपमें मृगकेसें नेत्र, चमेलीके सुगंधित पुष्पोंकों धारण किये उत्तम आभूषणोंसे शोभित, साक्षात् मानों कामदेवही रूपको धारण किये चले आते हुए श्रीमान् सांबको देख कर, कामदेवके बाणोंसे पीडित हो कर, भोगकी इच्छासें उसको देखेगी, तब उनके चित्तमें कामकी वृद्धि होवेगी. उस वार्त्ताको अंतर्यामी श्रीकृष्णजी जान कर उन सब स्त्रियोंकों यह शाप देंगे कि, जो तुमने मेरे पीछे ऐसी कामदेवकी चंचलता करी है इस हेतुसे तुम सबकों चोर हरेंगे. फिर इस शापसें दुःखित हो कर वह स्त्रियां श्रीकृष्णकों प्रसन्न करेगी. उस समय श्रीकृष्णजी उनके दासपनेका शाप दूर करनेवाले, और आगे होनेवाले मनुष्योंके कल्याण करनेवाले इस व्रतको कहेंगे कि, हे स्त्रियों! तुह्मारे आगे जो दाल्भ्यऋषि व्रत कहेंगे वही व्रत तुह्मारे दासभावको दूर करेगा. ऐसा कहकर श्रीकृष्णजी उन स्त्रियोंसें मेलमिलाप करके चले जायंगे. अर्थात् बहुत काल व्यतीत हो जानेपर पृथ्वीका भार उतारनेके पीछे श्रीकृष्णचंद्रजी परमधामकों चले-जायंगे. इनके चले जानेकेपीछे जब मुसलयुद्ध होकर यादव नष्ट हो-जायंगे, उस समय अर्जुनकी रक्षित की हुई कृष्णकी स्त्रियांओंको अर्जुनके समीपसें शूद्रलोक छीन कर समुद्रपार ले जाकर भोग करेंगे. वहां उन-केपास महातपस्वी योगात्मा दाल्भ्यऋषि आवेंगे. तब वह स्त्रियांओं उन ऋषिको अर्घदानसें पूजन कर प्रणाम करके अश्रुओंसे व्याकुल अनेक भोग दिव्यमाला पुष्पचंदनादिकोंको स्मरण करती हुई जगतोंके पति अपने भर्त्ताका, अनेक प्रकारके रत्नोंसे युक्त द्वारकापुरीका, अपने उत्तम २ स्था-नोंका, देवताओंके समान रूपवाले द्वारकावासिओंका और अपने पुत्रभ्रा-ताआदि सुहृदोंका स्मरण करती हुई दाल्भ्यमुनिके समीप सन्मुख खडी होके यह प्रश्न करेंगी कि, हे भगवन्! हम सबोंको चोरधाडियोंने बलकर छीन लिया, और घरोंपर ले जाकर भोग किया. अब हम अपने धर्मसें हीन हो गई हैं; सो आपके शरण हैं. हे महात्मन्! प्रथम श्रीकृष्णजीके दिये हुए शापसे हम वेश्याभावको प्राप्त हो गई हैं. हमारे उपदेशकर्त्ता आपही नियत किये गयेहैं, हे तपोधन! आप कृपा करके वेश्याओंका धर्म वर्णन कीजिये—इसप्रकारसे पूछे हुए दाल्भ्यऋषि उन—स्त्रियोंसे वेश्याओंके

नैवास्मि कुटिला शर्व! विषमा नैव धूर्जटे! ॥
सविषस्त्वं गतः ख्यातिं व्यक्तं दोषाकराश्रयात् ॥ ६ ॥
नाहं पूष्णोपि दशना नेत्रे चास्मि भगस्य हि ॥
आदित्यश्च विजानाति भगवान् द्वादशात्मकः ॥ ७ ॥
मूर्ध्नि शूलं जनयसि स्वैर्दोषैर्मामधिक्षिपन् ॥
यस्त्वं मामाह कृष्णेति महाकालेति विश्रुतः ॥ ८ ॥
यास्याम्यहं परित्यक्ता चात्मानं तपसा गिरिम् ॥
जीवन्त्या नास्ति मे कृत्यं धूर्तेन परिभूतया ॥ ९ ॥
निशम्य तस्या वचनं कोपतीक्ष्णाक्षरं भवः ॥
उवाचाधिकसंभ्रान्तः प्रणयेनेन्दुमौलिना ॥ १० ॥

॥ शर्व उवाच ॥

अगात्मजासि गिरिजे! नाहं निन्दापरस्तव ॥
त्वद्भक्तिबुद्ध्या कृतवांस्तवाहं नामसंश्रयम् ॥ ११ ॥
विकल्पः स्वस्थचित्तेपि गिरिजे! नैव कल्पना ॥
यद्येवं कुपिता भीरु! त्वं तवाहं न वै पुनः ॥ १२ ॥
नर्मवादी भविष्यामि जहि कोपं शुचिस्मिते ॥
शिरसा प्रणतश्चाहं रचितस्ते मयाऽञ्जलिः ॥ १३ ॥
स्नेहेनाप्यवमानेन निन्दितेनैति विक्रियाम् ॥
तस्मान्न जातु रुष्टस्य नर्मस्पृष्टो जनः किल ॥ १४ ॥
अनेकैः स्वादुभिर्देवी देवेन प्रतिबोधिता ॥
कोपं तीव्रं न तत्याज सती मर्मणि घट्टिता ॥ १५ ॥
अवष्टब्धमथास्फाल्य वासः शंकरपाणिना ॥
विपर्यस्तालका वेगाद्यातुमैच्छत शैलजा ॥ १६ ॥

विभावर्या च संपृक्ता बभूवातितमोमयी ॥
तामुवाच ततो देवः क्रीडाकेलिकलायुतम् ॥ ५९० ॥

इति श्री मत्स्यपुराणे त्रिपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१५३॥

भाषा—फिर प्रकाशित हुए रत्नोंकी भीतोंवाले स्थानमें चंद्रमाके समान श्वेत वस्त्रसें शोभित हुई अनेक प्रकारके रत्नोंकी किंकिणी और मोतीयोंकी जालीसे जडी हुई कांतिवाली सुंदर चांदनी जिसके ऊपर तनी हुई ऐसी उत्तम शय्यापर शिवजी महाराज पार्वतीको साथ लेके शयन करते भये, जब पार्वतीकी भुजाओंमें अपनी ग्रीवा लगाकर शयन करते भये, तब शिवजीकी श्वेत कांति अत्यंत सुंदर लगती भई, और नीले कमलके समान कांतिवाली पार्वती भी रात्रिके अंधकारमें अतिकाली विदित होती भई. उस समय शिवजी पार्वतीसे हास्यके वचन बोले. ॥ इतिश्रीमत्स्यपुराणभाषाटीकायां त्रिपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५३ ॥

॥ शर्व उवाच ॥

शरीरे मम तन्वङ्गि! सिते भास्यसितद्युतिः ॥
भुजङ्गीवासिताऽशुद्धा संश्लिष्टा चन्दने तरौ ॥ १ ॥
चन्द्रातपेन संपृक्ता रुचिराम्बरया तथा ॥
रजनीवासिते पक्षे दृष्टिदोषं ददासि मे ॥ २ ॥
इत्युक्ता गिरिजा तेन मुक्तकण्ठा पिनाकिना ॥
उवाच कोपरक्ताक्षी भ्रुकुटीकुटिलानना ॥ ३ ॥

॥ देव्युवाच ॥

स्वकृतेन जनः सर्वो जाड्येन परिभूयते ॥
अवश्यमर्थात् प्राप्नोति खण्डनं शशिमण्डलम् ॥ ४ ॥
तपोभिर्दीर्घचरितैर्यच्च प्रार्थितवत्यहम् ॥
तस्या मे नियतस्त्वेष ह्यवमानः पदेपदे ॥ ५ ॥

सोऽहं पतिष्ये शिखरात्तपोनिष्ठे त्वयोज्झितः॥
उन्नाम्य वदनं देवी दक्षिणेन तु पाणिना॥ २८॥
उवाच वीरकं माता मा शोकं पुत्र! भावय॥
शैलाग्रात्पतितुं नैव न चागन्तुं मया सह॥२९॥
युक्तं ते पुत्र वक्ष्यामि येन कार्येण तच्छृणु॥
कृष्णेत्युक्ता हरेणाहं निन्दिता चाप्यनिन्दिता॥ ३०॥
साहं तपः करिष्यामि येन गौरीत्वमाप्नुयाम्॥
एष स्त्रीलम्पटो देवो यातायां मय्यनन्तरम्॥ ३१॥
द्वाररक्षा त्वया कार्या नित्यं रन्ध्रान्ववेक्षिणा॥
यथा न काचित् प्रविशेद्योषिदत्र हरान्तिकम्॥ ३२॥
दृष्ट्वा परस्त्रियश्चात्र वदेथा मम पुत्रक!॥
शीघ्रमेव करिष्यामि यथायुक्तमनन्तरम्॥ ३३॥
एवमस्त्विति देवीं स वीरकः प्राह सांप्रतम्॥
मातुराज्ञामृतह्रदे प्लाविताङ्गो गतज्वरः॥ ३४॥
जगाम कक्ष्यां संद्रष्टुं प्रणिपत्य च मातरम्॥ ३५॥

इति श्रीमत्स्यपुराणे चतुःपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः॥ १५४॥

भाषा–शिवजी कहते हैं कि, हे तन्वंगि! मेरे शरीरमें श्वेत कांति झलक रही है, और तू ऐसे मुझसे लिपट रही है जैसे कि चंदनके वृक्षमें सर्पिणी लिपट रही हो, चंद्रमाकी किरणोंके समान सुंदर वस्त्रोंसे युक्त हुई ऐसी विदित होती हुई जैसे कि कृष्ण पक्षमें रात्रि दिखाई देती है, ऐसे कही हुई पार्वती शिवजीके कंठको छोडकर क्रोधसे लाल नेत्र कर भ्रुकुटी चढाकर बोली कि, अपने ही अवगुणोंसे सब लोगोंका तिरस्कार होता है, प्रयोजन होनेसे चंद्रमाका मंडल भी ग्रहणके समयमें अवश्य खंडित हो जाता है, बहुतसी तपस्याओंसे जो मैंने तुह्मारी प्रार्थना करी तो, उसका मुझको

तस्या व्रजन्त्याः कोपेन पुनराह पुरान्तकः ॥
सत्यं सर्वैरवयवैः सुतासि सदृशी पितुः ॥ १७ ॥
हिमाचलस्य शृङ्गैस्तैर्मेघजालाकुलैर्नभः ॥
तथा दुरवगाह्येभ्यो हृदयेभ्यस्तवाशयः ॥ १८ ॥
काठिन्यांकस्त्वमस्मभ्यं वनेभ्यो बहुधा गता ॥
कुटिलत्वं च वर्त्मभ्यो दुःसेव्यत्वं हिमादपि ॥ १९ ॥
संक्रान्ति सर्वदैवेति तन्वाङ्गि! हिमशैलराट् ॥
इत्युक्ता सा पुनः प्राह गिरिशं शैलजा तदा ॥ २० ॥
कोपकम्पितमूर्द्धा च प्रस्फुरद्दशनच्छदा ॥

॥ उमोवाच ॥

मा सर्वान् दोषदानेन निन्दान्यान् गुणिनो जनान्॥२१॥
तवापि दुष्टसंपर्कात् संक्रान्तं सर्वमेव हि ॥
व्यालेभ्योऽधिकजिह्वात्वं भस्मना स्नेहबन्धनम् ॥ २२ ॥
हृत्कालुष्यं शशाङ्कात्तु दुर्बोधित्वं वृषादपि ॥
तथा बहु किमुक्तेन अलं वाचा श्रमेण ते ॥ २३ ॥
श्मशानवासान्निर्भीत्वं नग्नत्वान्न तव त्रपा ॥
निर्घृणत्वं कपालित्वाद्दया ते विगता चिरम् ॥ २४ ॥
इत्युक्त्वा मन्दिरात्तस्मान्निर्जगाम हिमाद्रिजा ॥
तस्यां व्रजन्त्यां देवेशगणैः किलकिलो ध्वनिः ॥ २५ ॥
क्व मातर्गच्छसि त्यक्त्वा रुदन्तो धाविताः पुनः ॥
विष्टभ्य चरणौ देव्या वीरको बाष्पगद्गदम् ॥ २६ ॥
प्रोवाच मातः! किं त्वेतत् क्व यासि कुपितान्तरा ॥
अहं त्वामनुयास्यामि व्रजन्तीं स्नेहवर्जिताम् ॥ २७ ॥

आपकेभी दुष्टोंके संपर्कसे सब दोष है, तुम सर्पसे भी कठिन हो, भस्मके समान स्नेह नही करते, चंद्रमाके कलंकसे भी बुरा तुम्हारा हृदय है, इस वृषभसे भी कम निर्बुद्धि हो, इससे अधिक बकझक करनेसे क्या प्रयोजन है? श्मशानमें वास करनेसे तुम भय नही करते, नंगे रहनेसे तुमको लज्जा नही है, कपाल धारण करनेसे तुम्हारी दया चली गई है, ऐसा कहकर पार्वती उस स्थानसे चलती भई. तब चलनेके समय शिवके गणोंका किलकिल शब्द हुआ. वीरभद्र रोकर उसदेवीके संग भाग २ कर यह कहने लगा कि, हे माता! तू मुझको छोडकर कहां जाती है, ऐसे कहकर पैरोंमें लौट गया, और कहने लगा कि, मैं स्नेहको त्यागकर तुझजानेवालीके संग चलूंगा, और जिस पर्वतमें तू तप करेगी वहांसे तुझसे त्यागा हुआ मैं पर्वतके शिखरपर चढकर गिरूंगा. जब उसने ऐसी बातें कही तब पार्वती दक्षिण हाथसे उसके मुखको प्यार करके बोली हे पुत्र! तू शोच मत कर, पर्वतसे नही गिरना चाहिये, और मेरेसाथ भी तुझको नही चलना चाहिये. हे पुत्र! तेरे करनेके योग्य कामको मैं बताती हूं, सो तू सुन. शिवजीने मुझको कृष्णा बताकर मेरी बडी निंदा करी है, सो मैं ऐसा तप करूंगी जिस्से कि गौरवर्ण हो जाऊं. यह शिवजी स्त्रीके लालची हैं. जब मैं चली जाऊं उस समय तू इस स्थानके द्वारपर रक्षा करियो कि, कोई अन्य स्त्री इनकेपास न आने पावे. हे पुत्र! जो अन्यकोई स्त्री इनके समीप आती हुई देखे तो, अवश्य मुझसे कह दीजो, मैं शीघ्रही उसका प्रबंध करदूंगी. यह बात सुनकर वीरभद्र बोला कि, ऐसाही करूंगा. यह कहकर माताकी आज्ञा रूप अमृत हृदमें स्नान करनेसे आनंदयुक्त होता भया. और अपनी माताको प्रणाम करके पर्वतकी कक्षामें चला जाता भया.

इति श्रीमत्स्यपुराणे भाषाटीकायां चतुःपंचाशदधिकशततमोऽध्यायः १५४

॥ सूत उवाच ॥

देवीं सापश्यदायान्तीं सतीं मातुर्विभूषिताम् ॥
कुसुमामोदिनीं नाम तस्य शैलस्य देवताम् ॥ १ ॥

यह फल प्राप्त हुआ कि, पद २ में मेरा तिरस्कार होता है. हे शिवजी! मैं, विषम और कुटिल नही हूं. हे धूर्जटे! दोषोंके सेवन करनेवालेके आश्रय होकर मुझमें विष उत्पन्न हो गया है. हे शिव! मैं पूषाके दांत नही हूं. इंद्र नहीं हूं. मुझको सूर्य भगवान् देखता है. मेरा तिरस्कार करनेवाला पुरुष अपने दोषोंकरके अपनेही मस्तकमें शूल चुभोता है. जो तुम मुझको कृष्णा और महाकाली यह जो कहते हो, इसलिये मैं अपने आत्माको त्यागकर पर्वतमें तप करने जाती हूं. धूर्त्तके साथ लगकर मुझ जीवती हुईका क्या प्रयोजन है?

पार्वतीके ऐसे वचनोंको सुनकर शिवजी संभ्रमको प्राप्त होकर बडी विनयसे यह वचन बोले, हे पार्वती! तूं मेरी प्यारी है, मैंने तेरी निंदा नही करी है, मैंने तो तेरी बुद्धि जानकर कृष्णा, कालिका यह तेरे नाम निकाले हैं. हे गिरिजे! स्वस्थचित्तवालोंके विकल्प नही होता है, हे भीरु! जो तू ऐसी कुपित होती है तो, तेरा हास्य मैं फिर अब कभी न करूंगा. अब तो कोपको दूर कर. हे सुंदरहास्यवाली! मैं तुजको शिरसे प्रणाम करता हूं, और सूर्यकी ओर हाथ जोडता हूं. स्नेहसे, अपमानसे, अथवा निंदा करनेसे जो रूस जाता है उसके साथ हास्य कभी न करना चाहिये. इस प्रकारके अनेक विनयके वचनोंसे शिवजीने पार्वतीको समझाया, परंतु मर्ममें भिदी हुई पार्वती अपने महाक्रोधको नही त्यागती भई. शिवजीके हाथसे अपने वस्त्रको छुटाकर शीघ्रही गमन करनेकी तैयारी करती भई. तब उसके गमनहीके विचारको देखकर शिवजी क्रोधपूर्वक फिर बोले कि, सत्य है! तू सबप्रकारसे अपने पिताकेही समान है.

हिमाचलके शिखरोंपर जैसे मेघोंसे व्याकुल हुआ आकाश दुर्लभ हो जाता है, इसीप्रकार तेरा भी हृदय कठिन है. तू ऐसी कठिण है तभी तो हमको छोडकर वनोंमें जाती है. पर्वतमें जैसे कि भयंकर मार्ग रहते हैं उनसे भी तू कुटिल है. और तेरा सेवन करना हिमाचलसे भी कठिन है, ऐसे कही हुई पार्वती क्रोधकरके मस्तकको कंपाकर और दांतोंको चबाकर फिर बोली कि, आप अन्य गुणी लोगोंको दोष लगाकर उनकी निंदा मत करो.

आजगामामररिपुः पुरं त्रिपुरघातिनः ॥
स तत्रागत्य ददृशे वीरकं द्वार्यवस्थितम् ॥ १३ ॥
विचिन्त्यासीद्वरं दत्तं स पुरा पद्मजन्मना ॥
हते तदान्धके दैत्ये गिरीशेनामरद्विषि ॥ १४ ॥
आडिश्चकार विपुलं तपः परमदारुणम् ॥
तमागत्याब्रवीद्ब्रह्मा तपसा परितोषितः ॥ १५ ॥
किमाडे! दानवश्रेष्ठ! तपसा प्राप्तुमिच्छसि ॥
ब्रह्माणमाह दैत्यस्तु निर्मृत्युत्वमहं वृणे ॥ १६ ॥

॥ ब्रह्मोवाच-॥

न कश्चिच्च विना मृत्यं नरो दानव! विद्यते ॥
यतस्ततोपि दैत्येन्द्र! मृत्युः प्राप्यः शरीरिणा ॥ १७ ॥
इत्युक्तो दैत्यसिंहस्तु प्रोवाचाम्बुजसंभवम् ॥
रूपस्य परिवर्तो मे यदा स्यात्पद्मसंभव! ॥ १८ ॥
तदा मृत्युर्मम भवेदन्यथा त्वमरो ह्यहम् ॥
इत्युक्तस्तु तदोवाच तुष्टः कमलसंभवः ॥ १९ ॥
यदा द्वितीयो रूपस्य विवर्तस्ते भविष्यति ॥
तदा ते भविता मृत्युरन्यथा न भविष्यति ॥ २० ॥
इत्युक्तोऽमरतां मेने दैत्यसूनुर्महाबलः ॥
तस्मिन् काले त्वसंस्मृत्य तद्वधोपायमात्मनः ॥ २१ ॥
परिहर्तुं दृष्टिपथं वीरकस्याभवत्तदा ॥
भुजङ्गरूपी रन्ध्रेण प्रविवेश दृशः पथम् ॥ २२ ॥
परिहृत्य गणेशस्य दानवोऽसौ सुदुर्जयः ॥
अलक्षितो गणेशेन प्रविष्टोऽथ पुरान्तकम् ॥ २३ ॥

सापि दृष्ट्वा गिरिसुतां स्नेहविक्लवमानसा ॥
क्व पुत्रि! गच्छसीत्युच्चैरालिङ्ग्योवाच देवता ॥ २ ॥
सा चास्यै सर्वमाचख्यौ शंकरात्कोपकारणम् ॥
पुनश्चोवाच गिरिजा देवतां मातृसम्मताम् ॥ ३ ॥

॥ उमोवाच ॥

नित्यं शैलाधिराजस्य देवता त्वमनिन्दिते! ॥
सर्वतः सन्निधानं ते मम चातीव वत्सला ॥ ४ ॥
अतस्तु ते प्रवक्ष्यामि यद्विधेयं तदा धिया ॥
अन्यस्त्रीसंप्रवेशस्तु त्वया रक्ष्यः प्रयत्नतः ॥ ५ ॥
रहस्यत्र प्रयत्नेन चेतसा सततं गिरौ ॥
पिनाकिनः प्रविष्टायां वक्तव्यं मे त्वयानघे! ॥ ६ ॥
ततोहं संविधास्यामि यत्कृत्यं तदनन्तरम् ॥
इत्युक्ता सा तथेत्युक्त्वा जगाम स्वगिरिं शुभम् ॥ ७ ॥
उमापि पितुरुद्यानं जगामाद्रिसुता द्रुतम् ॥
अन्तरिक्षं समाविश्य मेघमालामिव प्रभा ॥ ८ ॥
ततो विभूषणान्यस्य वृक्षवल्कलधारिणी ॥
ग्रीष्मे पञ्चाग्निसंतप्ता वर्षासु च जलोषिता ॥ ९ ॥
वन्याहारा निराहारा शुष्का स्थण्डिलशायिनी ॥
एवं साधयती तत्र तपसा संव्यवस्थिता ॥ १० ॥
ज्ञात्वा तु तां गिरिसुतां दैत्यस्तत्रान्तरे वशी ॥
अन्धकस्य सुतो दृप्तः पितुर्वधमनुस्मरन् ॥ ११ ॥
देवान् सर्वान् विजित्याजौ वृकत्राता रणोत्कटः ॥
आडिर्नामान्तरप्रेक्षी सततं चन्द्रमौलिनः ॥ १२ ॥

इति चिन्त्य हरस्तस्य अभिज्ञानं विधारयन् ॥
नापश्यद्वामपार्श्वे तु तदङ्कं पद्मलक्षणम् ॥ ३५ ॥
लोमावर्त्तं तु रचितं ततो देवः पिनाकधृक् ॥
अबुध्यद्दानवीं मायामाकारं गूहयंस्ततः ॥ ३६ ॥
मेढ्रे वज्रास्त्रमादाय दानवं तमशातयत् ॥
अबुध्यद्वीरको नैव दानवेन्द्रं निषूदितम् ॥ ३७ ॥
हरेण सूदितं दृष्ट्वा स्त्रीरूपं दानवेश्वरम् ॥
अपरिच्छिन्नतत्त्वार्था शैलपुत्र्यै न्यवेदयत् ॥ ३८ ॥
दूतेन मारुतेनाशुगामिना नगदेवता ॥
श्रुत्वा वायुमुखाद्देवी क्रोधरक्तविलोचना ॥
अशपद्वीरकं पुत्रं हृदयेन विदूयता ॥ ३९ ॥

इतिश्रीमत्स्यपुराणे पञ्चपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५५ ॥

भाषा–सूतजी बोले इसके अनंतर वह पार्वती कुसुमामोदिनीनामवाली उस पर्वतकी देवता सतीको सन्मुख आती हुई देखती भई, वह सती देवता भी पार्वतीको देखकर स्नेहपूर्वक बोली कि, हे पुत्री! तू कहां जाती है, तब पार्वती उस अपने शिवजीके प्रभावसे उत्पन्न हुए अपने क्रोधरूप कारणको कहती भई, और अपनी माताकेही समान उस सतीको मानकर यह वचन बोली. हे अनिंदिते! तू इस पर्वतकी देवता है, सदैव यहां रहती है, और मेरी बडी प्यारी है, इस हेतुसे मैं तेरे आगे जो कहती हूं वह तुझको करना चाहिये. इस पर्वतमें जो अन्य कोई स्त्री आवे, अथवा शिवजी एकांतमें किसी अन्य स्त्रीसे वतरावे तो, तू मुझको अवश्य खबर दीजो, उसकेपीछे मैं प्रबंध करलूंगी. ऐसा कहकर पार्वती अपने हिमालयं पर्वतमें जाती भई. पार्वती अपने पिताके बगीचेमें ऐसे जाती भई जैसे कि, आकाशमें मेघमाला चली जाती है, ऐसे प्रकारसे आकाशमार्ग होकर उसने गमन किया, और वहां जाकर वृक्षोंके वल्कल

भुजङ्गरूपं संत्यज्य बभूवाथ महासुरः ॥
उमारूपी छलयितुं गिरिशं मूढचेतनः ॥ २४ ॥
कृत्वा मायां ततो रूपमप्रतर्क्यमनोहरम् ॥
सर्वावयवसंपूर्णं सर्वाभिज्ञानसंवृतम् ॥ २५ ॥
कृत्वा मुखान्तरे दन्तान् दैत्यो वज्रोपमान् दृढान् ॥
तीक्ष्णाग्रान् बुद्धिमोहेन गिरिशं हन्तुमुद्यतः ॥ २६ ॥
कृत्वोमारूपसंस्थानं गतो दैत्यो हरान्तिकम् ॥
पापो रम्याकृतिश्चित्रभूषणाम्बरभूषितः ॥ २७ ॥
तं दृष्ट्वा गिरिशस्तुष्टस्तदालिङ्ग्य महासुरम् ॥
मन्यमानो गिरिसुतां सर्वैरवयवान्तरैः ॥ २८ ॥
अपृच्छत् साधु ते भावो गिरिपुत्रि! न कृत्रिमः ॥
या त्वं मदाशयं ज्ञात्वा प्राप्तेह वरवर्णिनि! ॥ २९ ॥
त्वया विरहितं शून्यं मन्यमानो जगत्त्रयम् ॥
प्राप्ता प्रसन्नवदना युक्तमेवंविधं त्वयि ॥ ३० ॥
इत्युक्तो दानवेन्द्रस्तु तदाभाषत् स्मयञ्छनैः ॥
न चाबुध्यदभिज्ञानं प्रायस्त्रिपुरघातिनः ॥ ३१ ॥

॥ दे०युवाच ॥

यातास्म्यहं तपश्चर्त्तुं वलभ्यायतवातुलम् ॥
रतिश्च तत्र मे नाभूत्ततः प्राप्ता त्वदन्तिकम् ॥ ३२ ॥
इत्युक्तः शंकरः शङ्कां कांचित् प्राप्यावधारयत् ॥
हृदयेन समाधाय देवः प्रहसिताननः ॥ ३३ ॥
कुपिता मयि तन्वङ्गी प्रकृत्या च दृढव्रता ॥
अप्राप्तकामा संप्राप्ता किमेतत् संशयो मम ॥ ३४ ॥

नहीं जानता हुआ, धीरे धीरे यह वचन बोला, अर्थात् वह पार्वतीरूप दैत्य बोला कि, मैं तप करनेकेनिमित्त गई थी, वहां तुम्हारे विना मेरा चित्त नहीं लगा, इस कारण तुम्हारे पास आई हूं. ऐसे वचन सुनकर शिवजी कुछेक शंका विचार कर हृदयमें समाधान कर हंसकर बोले हे तन्वंगि! तू मेरे उपर क्रोधित हो गई थी, और दृढ विचार करके चली थी, अब विना प्रयोजन सिद्ध किये हुए कैसे चली आई? यह मुझको संदेह है. यह कहते हुए शिवजी उसके लक्षणोंको देखते भये. तब उसकी बाईं पांशूमें कमलका चिन्ह नहीं पाया, उस समय महादेवजी उस दानवी मायाको जानकर अपने लिंगपर बज्रास्त्रको रखकर उसके संग रमण करके उसको मारते भये. इस प्रकारसे उस मारे हुए दानवको वीरभद्रने नहीं जाना. और वह पर्वतकी देवता स्त्रीरूपवाले दानवको शिवजीसे मारा हुआ देख उस प्रयोजनको अच्छे प्रकारसे विना समझेही, वायुको दूत बनाकर पार्वतीकेपास भेजती भई. तब पार्वती वायुकेद्वारा उस वृत्तांतको सुन क्रोधसे लाल नेत्र कर बड़े दुःखित हुए हृदयसे वीरभद्रको शाप देती भई.

इति श्रीमत्स्यपुराणभाषाटीकायां पञ्चपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः १५५

॥ देव्युवाच ॥

मातरं मां परित्यज्य यस्मात्त्वं स्नेहविक्लवात् ॥
विहितावसरः स्त्रीणां शंकरस्य रहोविधौ ॥ १ ॥
तस्मात्ते पुरुषा रूक्षा जडा हृदयवर्जिता ॥
गणेशक्षारसदृशी शिला माता भविष्यति ॥ २ ॥
निमित्तमेतद्विख्यातं वीरकस्य शिलोदये ॥
सोभवत्प्रक्रमेणैव विचित्राख्यानसंश्रयः ॥ ३ ॥
एवमुत्सृष्टशापाया गिरिपुत्र्यास्त्वनन्तरम् ॥
निर्जगाम मुखात् क्रोधः सिंहरूपी महाबलः ॥ ४ ॥
स तु सिंहः करालास्यो जटाजटिलकंधरः ॥

शरीरपर धारण किये, ग्रीष्मऋतुमें पंचाग्नि तपी, वर्षाऋतुमें जलमें निवास किया, कभी वनके फलोंका आहार किया, कभी निराहार रही, और पृथ्वीपर शयन किया, ऐसे प्रकारोंसे तपस्या करती भई. इसपीछे अंधक दैत्यका पुत्र उस पार्वतीको जानकर अपने पिताके वधका स्मरण कर वदला लेनेका उपाय करता भया, वह अंधकका पुत्र आडि नाम दैत्य रणमें देवताओंको जीतकर शिवजीके समीप आता भया. वहां आकर द्वार-पर खडे हुए वीरभद्रको देख प्रथम ब्रह्माजीके दिये हुए वरका चिंतवन कर वहां वहुतसा तप करता भया. तव तपसे प्रसन्न हुए ब्रह्माजी उस आडि दैत्यके समीप आकर वोले कि, हे दानव! इस तपकरके तू किस वातकी इच्छा करता है, यह सुनकर वह दैत्य वोला कि, मैं कभी न मरूं यह वर मांगता हूं. ब्रह्माजीने कहा, हे दानव! मृत्युके विना तो कोई भी नही है, इस हेतुसे तू किसी कारणसे अपनी मृत्युको मांग ले, यह सुनकर वह दानव ब्रह्माजीसे वोला कि, जव मेरा रूप वदल जावे, तभी मेरी मृत्यु हो, अन्यथा अमर ही रहूं. यह सुन ब्रह्माजी प्रसन्न होकर वोले कि, जव तेरा दूसरा रूप वदलेगा उसी समय तेरी मृत्यु होगी. यह वर पाकर वह दैत्य अपनी आत्माको अमर मानता भया. इसके अनं-तर वीरभद्रकी दृष्टि चुरानेके निमित्त सर्पका रूप धारण कर वीरभद्रके विना देखे शिवजीके पास जाता भया; फिर वह मूढचित्तवाला दैत्य शिवजीके छलनेके निमित्त पार्वतीजीका रूप वना लेता भया, मायासे मनोहर, संपूर्ण अंगोंकी शोभासे युक्त ऐसे रूपको वनाकर मुखमें वडे २ तीक्ष्ण वज्रके समान दांतोंको लगाके अपनी बुद्धिके मोहसे शिवजीके मारनेका उद्योग करता भया. पार्वतीका रूप धारण कर सुंदर अंगोंमें आभूषण और कृत्रिम वस्त्रोंको पहर शिवजीके समीप जाता भया. तव उस महाअसुरको देखकर शिवजी प्रसन्न होकर पार्वती समझकर यह वचन वोले कि, हे पार्वती! तेरा स्वभाव अच्छा है? कुछ छल तो नही है? क्या तू मेरा मनोरथ जानकर मेरेपास आई है? तेरे विरहसे मैंने सव जगत् शून्य मान रक्खा है, अव तू मेरे पास आगई यह तैंने वहुत अच्छा किया. ऐसे कहा हुआ वह दैत्य हंसकर शिवजीके प्रभावको

संप्राप्ता कृतकृत्यत्वमेकानंशा पुरा ह्यसि ॥
य एष सिंहः प्रोद्भूतो देव्याः क्रोधाद्वरानने! ॥ १६ ॥
स तेऽस्तु वाहनं देवि! केतौ चास्तु महाबलः ॥
गच्छ विन्ध्याचलं तत्र सुरकार्यं करिष्यसि ॥ १७ ॥
पञ्चालो नाम यक्षोऽयं यक्षलक्षपदानुगः ॥
दत्तस्ते किंकरो देवि! मया मायाशतैर्युतः ॥ १८ ॥
इत्युक्ता कौशिकी देवी विन्ध्यशैलं जगाम ह ॥
उमापि प्राप्तसंकल्पा जगाम गिरिशान्तिकम् ॥ १९ ॥
प्रविशन्तीति तां द्वारि ह्यपकृष्य समाहितः ॥
रुरोध वीरको देवीं हेमवेत्रलताधरः ॥ २० ॥
तामुवाच च कोपेन रूपात्तु व्यभिचारिणीम् ॥
प्रयोजनं न तेऽस्तीह गच्छ यावन्न भेत्स्यसि ॥ २१ ॥
देव्या रूपधरो दैत्यो देवं वञ्चयितुं त्विह ॥
प्रविष्टो न च दृष्टोऽसौ स वै देवेन घातितः ॥ २२ ॥
घातिते चाहमाज्ञप्तो नीलकंठेन कोपिना ॥
द्वारेषु नावधानं ते यस्मात्पश्यामि वै ततः ॥ २३ ॥
भविष्यसि न मद्द्वाःस्थो वर्षपूगान्यनेकशः ॥
अतस्तेऽत्र न दास्यामि प्रवेशं गम्यतां द्रुतम् ॥ २४ ॥

इतिश्रीमत्स्यपुराणे षट्पञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५६ ॥

भाषा—पार्वती कहती है हे वीरभद्र! तू स्नेहरहित हो मुझ माताको त्याग कर शिवजीके ओर अन्य स्त्रियोंके एकांत समयमें सावधान नहीं रहा, इस हेतुसे तेरी माता रूखी जडहृदयसे वर्जित काली शिलाके समान हो जायगी इस प्रकारसे यह वीरभद्रके शिलामेंसे उदय होनेका निमित्त होता भया; तब वह वीरभद्र विचित्र २ कथाओंको सुन रहा था और पार्वतीने

प्रोद्भूतलम्बलाङ्गूलो दंष्ट्रोत्कटमुखातटः ॥ ५ ॥
व्यावृत्तास्यो ललज्जिह्वः क्षामकुक्षिः शिरादिषु ॥
तस्याशुवर्तितुं देवी व्यवस्यत सती तदा ॥ ६ ॥
ज्ञात्वा मनोगतं तस्या भगवांश्चतुराननः ॥
आगम्योवाच देवेशो गिरिजां स्पष्टया गिरा ॥ ७ ॥

॥ ब्रह्मोवाच ॥

किं पुत्रि! प्राप्तुकामासि किमलभ्यं ददामि ते ॥ ८ ॥
विरम्यतामतिक्लेशात् तपसोस्मान्मदाज्ञया ॥
तच्छ्रुत्वोवाच गिरिजा गुरुं गौरवगर्भितम् ॥ ९ ॥
वाक्यं वाचाचिरोद्गीर्णवर्णनिर्णीतवाञ्छितम् ॥

॥ देव्युवाच ॥

तपसा दुष्करेणाप्तः पतित्वे शंकरो मया ॥ १० ॥
स मां श्यामलवर्णेति बहुशः प्रोक्तवान् भवः ॥
स्यामहं काञ्चनाकारा वाल्लभ्येन च संयुता ॥ ११ ॥
भर्त्तुर्भूतपतेरङ्कमेकतो निर्विशेङ्कवत् ॥
तस्यास्तद्भाषितं श्रुत्वा प्रोवाच कमलासनः ॥ १२ ॥
एवं भव त्वं भूयश्च भर्तृदेहार्धधारिणी ॥
ततस्तस्याजभृङ्गाङ्गं फुल्लनीलोत्पलत्वचम् ॥ १३ ॥
त्वचा सा चाभद्दीप्ता घंटाहस्ता विलोचना ॥
नानाभरणपूर्णाङ्गीपीतकौशेयधारिणी ॥ १४ ॥
तामब्रवीत्ततो ब्रह्मा देवीं नीलाम्बुजत्विषम् ॥
निशे भूधरजादेहसंपर्कात्त्वं ममाज्ञया ॥ १५ ॥

उसको भीतर जाते हुए मैंने नहीं देखा था, वह शिवजीने मार डाला. उसको मारकर मुझसे क्रोधपूर्वक कहने लगे कि तुम द्वारपर सावधान नहीं रहते हो इस हेतुसे मैं अब सबकी चौकसी करता हूं; सो तुझको भीतर नहीं जाने दूंगा, तू शीघ्रही उलटी चली जा.

इति श्रीमत्स्यपुराणभाषाटीकायां षट्पञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः॥१५६॥

॥ वीरक उवाच ॥

एवमुक्ता गिरिसुता माता मे स्नेहवत्सला ॥
प्रवेशं लभते नान्या नारी कमललोचने! ॥ १ ॥
इत्युक्ता तु तदा देवी चिंतयामास चेतसा ॥
न सा नारीति दैत्योसौ वायुर्मे यामभाषत ॥ २ ॥
वृथैव वीरकः शप्तो मया क्रोधपरीतया ॥
अकार्यं क्रियते मूढैः प्रायः क्रोधसमीरितैः ॥ ३ ॥
क्रोधेन नश्यते कीर्तिः क्रोधो हन्ति स्थिरां श्रियम् ॥
अपरिछिन्नतत्त्वार्था पुत्रं शापितवत्यहम् ॥ ४ ॥
विपरीतार्थबुद्धीनां सुलभो विपदोदयः ॥
संचिन्त्यैवमुवाचेदं वीरकं प्रति शैलजा ॥ ५ ॥
लज्जासज्जविकारेण वदनेनाम्बुजत्विषा ॥

॥ देव्युवाच ॥

अहं वीरक! ते माता मा तेऽस्तु मनसो भ्रमः॥ ६ ॥
शंकरस्यास्मि दयिता सुता तु हिमभूभृतः ॥
मम गात्रछविभ्रान्त्या मा शङ्कां पुत्र! भावय ॥ ७ ॥
तुष्टेन गौरता दत्ता ममेयं पद्मजन्मना ॥
मया शप्तोस्यविदिते वृत्तान्ते दैत्यनिर्मिते ॥ ८ ॥

ऐसा शाप देदिया उस समय पार्वतीके मुखसे सिंहरूप होकर क्रोध निकलता भया. उस विकरालमुख जटाधारी लंबी पूंछयुक्त कराल डाढोंसमेत मुख फाडे जिव्हा निकाले और पतली कटिवाले सिंहको देखकर उसकी वार्त्ताको पार्वती जब चिंतवन करने लगी तब उस पार्वतीके मनकी वार्ताको जानकर ब्रह्माजी आए और बडी स्पष्ट वाणीसे बोले कि हे पुत्रि! तू क्या चाहती है? मैं कौनसी अलभ्य वस्तु तुझको दूं? तू इस बडे क्लेशवाले तपको समाप्त कर और मेरी आज्ञाको मान ले. यह सुनकर पार्वती बहुत दिनके विचारे हुए मनोरथके वचनको बोली कि, मैंने बडे दुर्लभ व्रत और तपोंसे महादेवजीको प्राप्त किया था, उन्होंने मुझको बहुतवार काली २ ऐसा शब्द कहा, सो मैं चाहती हूं कि, मेरा शरीर कांचनके समान वर्णवाला हो जाय. जिस्से कि, अपने पतिकी गोदीमें सुशोभित रहूं. यह उसके वचनको सुनकर ब्रह्माजी बोले कि, तेरा शरीर ऐसाही हो जायगा, और अपने भर्त्ताके आधे शरीरके धारण करनेवाली भी हो जायगी. इसके अनंतर नीले कमलके समान पार्वतीकी त्वचा कांचनके वर्णसमान तत्काल हो गई और जो उसकी नीली त्वचा थी वह देवी रात्रिका स्वरूप पीत और कसूमे वस्त्रोंसे युक्त होकर अलग हो गया. तब ब्रह्माजी नीले कमलके सदृश वर्णवाली उस रात्रीसे बोले हे रात्री! तू मेरी आज्ञासे पार्वतीके शरीरके स्पर्श करनेसे कृतकृत्य हो गई. और हे वरानने! इस पार्वतीके क्रोधसे जो सिंह निकला है वही तेरा वाहन होगा और तेरी ध्वजामें भी यही सिंह रहेगा तू विंध्याचलमें चली जा वहां जाकर तू देवताओंके कार्योंको करेगी. और हे देवि! यह पांचालनाम यक्ष तेरे निमित्त अनुचर देता हूं. इस यक्षको हजारों माया आती हैं. ऐसे कही हुई कौशिकी देवी विंध्याचल पर्वतमें जाती भई, और पार्वती भी अपने मनोरथको सिद्ध करके शिवजीके समीप जाती भई. तब उस भीतर जाती हुईको द्वारपर सावधान हो हाथमें वेत ले खडा हो कर वीरभद्र रोकता भया, और व्यभिचारिणीका रूप जानकर उस्से क्रोधपूर्वक बोला कि, यहां तेरा कुछ प्रयोजन नहीं, जो तू नहीं डरती है तो चली जा, यहां पार्वतीजीका रूप धरके महादेवके छलनेके निमित्त एक दैत्य आया था,

करणजातमिहास्तु ममाचलन्नुतिलवाप्तिफलाशयहेतुतः ॥
प्रशममेहि ममात्मजवत्सले! नमोऽस्तु ते देवि! जगत्त्रयाश्रये १९

॥ सूत उवाच ॥

प्रसन्ना तु ततो देवी वीरकस्येति संस्तुता ॥
प्रविवेश शुभं भर्त्तुर्भवनं भूधरात्मजा ॥ २० ॥
द्वारस्थो वीरको देवान् हरदर्शनकाङ्क्षिणः ॥
व्यसर्जयत् स्वकान्येव गृहाण्यादरपूर्वकः ॥ २१ ॥
नास्त्यत्रावसरो देवा देव्या सह वृषाकपिः ॥
निर्भृतः क्रीडतीत्युक्ता ययुस्ते च यथागतम् ॥ २२ ॥
गते वर्षसहस्रे तु देवास्त्वरितमानसः ॥
ज्वलनं चोदयामासुर्ज्ञातुं शंकरचेष्टितम् ॥ २३ ॥
प्रविश्य जालरन्ध्रेण शुकरूपी हुताशनः ॥
ददृशे शयने शर्वं रतं गिरिजया सह ॥ २४ ॥
ददृशे तं च देवेशो हुताशं शुकरूपिणम् ॥
तमुवाच महादेवः किंचित्कोपसमन्वितः ॥ २५ ॥
यस्मात्तु त्वत्कृतो विघ्नस्तस्मात्त्वय्युपपद्यते ॥
इत्युक्तः प्राञ्जलिर्वह्निरपिबद्वीर्यमाहितम् ॥ २६ ॥
तेनापूर्यत तान् देवांस्तत्तत्कायविभेदतः ॥
विपाट्य जठरं तेषां वीर्यं माहेश्वरं ततः ॥ २७ ॥
निष्क्रान्तं तप्तहेमाभं वितते शंकराश्रमे ॥
तस्मिन् सरो महज्जातं विमलं बहुयोजनम् ॥ २८ ॥
प्रोत्फुल्लहेमकमलं नानाविहगनादितम् ॥
तच्छ्रुत्वा तु ततो देवी हेमद्रुममहाजलम् ॥ २९ ॥

ज्ञात्वा नारीप्रवेशं तु शंकरे रहसि स्थिते ॥
न निवर्तयितुं शक्यः शापः किंतु ब्रवीमि ते ॥ ९ ॥
शीघ्रमेष्यसि मानुष्यात् स त्वं कामसमन्वितः ॥
शिरसा तु ततो वन्द्य मातरं पूर्णमानसः ॥
उवाचार्चितपूर्णेन्दुद्युतिं च हिमशैलजाम् ॥ १० ॥

॥ वीरक उवाच ॥

नतसुरासुरमौलिमिलन्मणिप्रचयकान्तिकरालनखाङ्किते ॥
नगसुते! शरणागतवत्सले! तव नतोऽस्मि नतार्त्तिविनाशिनि ११
तपनमण्डलमण्डितकन्धरे! पृथुसुवर्णसुवर्णनगद्युते! ॥
विषभुजङ्गनिषङ्गविभूषिते! गिरिसुते! भवतीमहमाश्रये ॥ १२ ॥
जगति कः प्रणताभिमतं ददौ झटिति सिद्धनुते भवती यथा ॥
जगति काञ्चनवाञ्छतिशंकरो भुवनधृतनये! भवतीं यथा ॥ १३ ॥
विमलयोगविनिर्मितदुर्जयस्वतनुतुल्यमहेश्वरमण्डले! ॥
विदलितान्धकबान्धवसंहतिः सुरवरैः प्रथमं त्वमभिष्टुता ॥ १४ ॥
सितसटापटलोद्धतकंधराभरमहामृगराजरथा स्थिता ॥
विमलशक्तिमुखानलपिङ्गलायतभुजौघविपिष्टमहासुरा ॥ १५ ॥
निगदिता भुवनैरिति चण्डिका जननि! शुम्भनिशुम्भनिषूदनी ॥
प्रणतचिन्तितदानवदानवप्रमथनैकरतिस्तरसा भुवि ॥ १६ ॥
वियति वायुपथे ज्वलनोज्ज्वलेऽवनितले तव देवि! चयद्वपुः ॥
तदजितेप्रतिमे प्रणमाम्यहं भुवनभाविनि! ते भववल्लभे ॥ १७ ॥
जलधयो ललितोद्धवतीचयो हुतवहद्युतयश्च चराचरम् ॥
फणसहस्रभृतश्च भुजङ्गमास्त्वदभिधास्यति मय्यभयंकरा ॥ १८ ॥
भगवति! स्थिरभक्तजनाश्रये! प्रतिगतो भवतीचरणाश्रयम् ॥

दीप्तो मारयितुं दैत्यान् कुत्सितान् कनकच्छविः ॥
एतस्मात्कारणाद्देवः कुमारश्चापि सोऽभवत् ॥ ४१ ॥

इति श्रीमत्स्यपुराणे सप्तपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः॥१५७॥

भाषार्थः—वीरभद्रने कहा हे कमललोचने! मेरी स्नेह करनेवाली माताने भी मुझसे यही आज्ञा करी है, और कह गई है कि, किसी अन्य स्त्रीको भीतर मत जाने देना. यह सुनकर पार्वती देवी चिंतवन करने लगी कि, अहो जो वायु मुझसे कह आया था वह तो दैत्य था, स्त्री नहीं थी; मुझ क्रोधयुक्तने वीरभद्रको वृथाही शाप दिया; विशेषकरके क्रोधसे भरेहुए मूर्ख बुरा कार्य करडालते हैं, क्रोधसे कीर्ति नष्ट हो जाती है, क्रोधसे स्थिर लक्ष्मीका नाश होजाता है, मैंने विनाही विचारेहुए पुत्रको शाप देदिया. विपरीतबुद्धिवालोंको सहजहीमें विपत्ति प्राप्त होजाती है. ऐसे चिंतवन करके वह पार्वती लज्जापूर्वक वीरभद्रसे कहनेलगी; हे वीरभद्र! मैं तेरी माता हूं, तू चित्तमें संदेह मत करे, मैं शिवजीकी प्यारी स्त्री हूं, हिमाचलकी पुत्री हूं; हे पुत्र! मेरे शरीरकी कांतिकरके तू शंका मत करे, मुझको ब्रह्माजीने प्रसन्न होकर गौरवर्ण देदिया है. हे पुत्र! उस दैत्यके वृत्तांतसे मैंने तुझको विना समझे हुए शाप देदिया है वह तो दूर नहीं होसकेगा; परंतु यह कह देती हूं कि तुम मनुष्यके प्रभावसे शापसे निवृत्त होकर शीघ्रही आओगे. इसके पीछे वीरभद्र पूर्ण चंद्रमाके-समान कांतिवाली अपनी माता पार्वतीको शिरसे प्रमाण करने लगा. वीरभद्र कहता है, हे शरणागतवत्सले! देवतादैत्योंके प्रणाम करते हुए मुकुटोंकी मणियोंसे शोभित चरणारविंदवाली! मैं तुझको प्रणाम करता हूं. हे सूर्यमंडलकेसमान शोभित शिरवाली, पर्वतके समान कांतिवाली, सर्पाकार टेढी भृकुटियोंवाली! ऐसी जो आप हैं उनकेही मैं आश्रय हूं हे पार्वती! प्रणाम करते हुएको जैसे तुम शीघ्रही वर देती हो ऐसा दूसरा वर देनेवाला तेरेसिवाय कौन है? और शिवजी भी तेरे विना जगत्में किसीकी इच्छा नहीं करते हैं. हे निर्मलयोगके द्वारा अपने शरीरको महादेवजीके शरीरमंडलके समान करनेवाली! और दैत्योंका नाश करने

तत्र कृत्वा जलक्रीडां तदब्जकृतशेखरा ॥
उपविष्टा ततस्तस्य तीरे देवी सखीयुता ॥ ३० ॥
पातुकामा च तत्तोयं स्वादुनिर्मलपङ्कजम् ॥
अपश्यन् कृत्तिकाः स्नाताः षडर्कद्युतिसन्निभम् ॥ ३१ ॥
पद्मपत्रे तु तद्वारि गृहीत्वोपस्थिता गृहम् ॥
हर्षादुवाच पश्यामि पद्मपत्रे स्थितं पयः ॥ ३२ ॥
ततस्ता ऊचुरखिलं कृत्तिका हिमशैलजम् ॥

॥ कृत्तिका ऊचुः ॥

दास्यामो यदि ते गर्भः संभूतो यो भविष्यति ॥ ३३ ॥
सोऽस्माकमपि पुत्रः स्यादस्मन्नाम्ना च वर्तताम् ॥
भवेल्लोकेषु विख्यातः सर्वेष्वपि वरानने! ॥ ३४ ॥
इत्युक्तोवाच गिरिजा कथं मद्गात्रसंभवः ॥
सर्वैरवयवैर्युक्तो भवतीभ्यः सुतो भवेत् ॥ ३५ ॥
ततस्तां कृत्तिका ऊचुर्विधास्यामोऽस्य वै वयम् ॥
उत्तमान्युत्तमाङ्गानि यद्येवं तु भविष्यति ॥ ३६ ॥
उक्ता वै शैलजा प्राह भवत्वेवमानिन्दिताः ॥
ततस्ता हर्षसंपूर्णाः पद्मपत्रास्थितं पयः ॥ ३७ ॥
तस्यै ददुस्तया चापि तत्पीतं क्रमशो जलम् ॥
पीते तु सलिले तस्मिंस्ततस्तस्मिन् सरोवरे ॥ ३८ ॥
विपाट्य देव्याश्च ततो दक्षिणां कुक्षिमुद्गतः ॥
निश्चक्रामाऽद्भुतो बालः सर्वलोकविभासकः ॥ ३९ ॥
प्रभाकरप्रभाकारः प्रकाशकनकप्रभः ॥
गृहीतनिर्मलोदग्रशक्तिशूलः षडाननः ॥ ४० ॥

और उस जलके पीनेकी भी इच्छा करी. उस समय स्नान करती हुई कृत्तिकाभी छह सूर्योंके समान उस जलको देखती भई. तव पार्वती कमलके पत्तेपर स्थित हुए उस जलको ग्रहण करके आनंदसे बोली कि, कमलपत्रपर स्थित हुए इस जलको मैं देखती हूं. ऐसे पार्वतीके वचनको सुन कर कृत्तिका पार्वतीसे बोली कि, हे शुभानने! इस जलसे जो तुह्मारे गर्भ रह जावे तो वह हमारे नामसे प्रसिद्ध हमाराही पुत्र संसारमें प्रसिद्ध होवे ऐसी प्रतिज्ञा करे तो, हम इस जलको देवें. यह सुनकर पार्वतीजी बोली कि, मेरे अवयवोंसे युक्त हुआ बालक तुह्मारा पुत्र होवेगा? जब पार्वतीनें यह वचन कहा, तब कृत्तिका बोली कि, हम इसके उत्तम २ अंगोंका विधान कर देवेंगी. यह बात सुनकर पार्वतीजीने कहा कि, अच्छा इसी प्रकार होजागया. तब कृत्तिका प्रसन्न होकर उस जलको पार्वतीके निमित्त देती भई. तब पार्वतीने भी वह जल पीलिया. इसकेअनंतर उस जलका गर्भ पार्वतीकी दाहिनी कोखको फाडकर बाहर निकला. और उसमेंसे सब लोकोंको प्रकाशित करनेवाला अद्भुत बालक निकला, सूर्यके समान तेजस्वी, कंचनके समान देदीप्य, शक्ति और शूलको ग्रहण किये हुए, छ मुखवाला, वह अद्भुत बालक होता भया. सुवर्णकीसी कांतिवाला यह बालक दुष्ट दैत्योंको मारनेवाला होता भया. इस प्रकारसे स्वामी कार्तिककी उत्पत्ति हुई है.

इति श्रीमत्स्यपुराणभाषाटीकायां सप्तपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः॥१५७॥

पुनरपि मत्स्यपुराणे चतुर्नवत्यधिकशततमेऽध्याये यथा—

महादेवस्य शापेन त्यक्त्वा देहं स्वयं तथा ॥
ऋषयश्च समुद्भूताश्च्युते शुक्रे महात्मनः ॥ ६ ॥
देवानां मातरो दृष्ट्वा देवपत्न्यस्तथैव च ॥
स्कन्नं शुक्रं महाराज! ब्रह्मणः परमेष्ठिनः ॥ ७ ॥
तज्जुहाव ततो ब्रह्मा ततो जाता हुताशनात् ॥
ततो जातो महातेजा भृगुश्च तपसां निधिः ॥ ८ ॥

वाली! तुझको सब देवता लोगभी शिरसे प्रणाम करते हैं. हे जननी! तुम श्वेतकेश और वडेमुखवाले सिंहपर सवारीकरके अपनी निर्मलशक्तिसे जब असुरोंको मारती हो तव संसार तुमको चंडिका कहता है, तुमहीं शुंभनिशुंभको मारती और भक्तजनोंके मनोरथोंको सिद्ध करती हो. हे देवि! आकाशमें वायुके मार्गमें जलती हुई अग्निमें और पृथ्वीतलमें जो तेरा रूप है उसको मैं नमस्कार करता हूं, और ललितरंगोंवाले समुद्र, अग्नि और हजारों सर्प यह सब तेरे प्रभावसे मुझको भय नहीं देसक्ते हैं, मैं आपके चरणोंके आश्रय होगया हूं, अब किसी फलकी इच्छा नहीं करता हूं. हे देवि! मुझपर शांत होकर कृपा करो, मैं आपको प्रणाम करता हूं. सूतजी कहते हैं जब वीरभद्रने इस प्रकारसे स्तुति करी तब प्रसन्न होकर पार्वतीजी अपने पति शिवजीके मंदिरमें प्रवेश करती भई. फिर द्वारपर खडा हुआ वीरभद्र शिवजीके दर्शन करनेकेलिये आये हुए देवताओंको अपने २ घरोंको भेजता भया; यह कहने लगा, हे देवताओ! अब दर्शन करनेका अवसर नहीं है, शिवजी पार्वतीकेसंग रमण कर रहे हैं. ऐसे वचनोंको सुनकर देवता स्थानोंको चलेगये. जब हजार वर्ष व्यतीत होचुके तब देवता शीघ्रताकरके शिवजीके समाचार लेनेकेनिमित्त अग्निदेवताको भेजते भये. अग्नि तोतेका रूप धारण करके स्थानके किसी छिद्रके द्वारा स्थानमें प्रवेश करके पार्वतीकेसंग रमण करते हुए महादेवजीको देखता भया. तब कुछेक क्रोध करके महादेवजी उस तोतेसे बोले कि, तेरा किया हुआ यह विघ्न है इस लिये यह विघ्न तुझीमें प्राप्त होगा. ऐसा कहा हुआ अग्नि अंजली बांधकर महादेवजीके वीर्य्यको पीता भया. फिर उस वीर्यसे तृप्त हुआ अग्नि देवताओंको तृप्त करता भया. उस समय वह शिवजीका वीर्य उन देवताओंके उदरको फाडकर बहार निकलता भया, और शिवजीके आश्रमके समीप प्राप्त होता भया. वहाँ एक सरोवर बनगया. वडा, स्वच्छ और बहुत योजन विस्तृत, सुवर्णकीसी कांतिवाला, फूले हुए कमलोंसे शोभित उस सरोवरको सुनकर पार्वतीदेवी सखियोंसे युक्त हो उसके जलमें क्रीडा करती हुई तीरपर स्थित होगए,

रागी द्वेषी देव मुक्तिकेवास्ते नही होते हैं. यदुक्तं ॥ "ये स्त्रीशस्त्राक्षसूत्रादिरागाद्यङ्ककलङ्किताः ॥ निग्रहानुग्रहपरास्ते देवाः स्युर्न मुक्तये ॥ १ ॥ नाट्याट्टहाससंगीताद्युपप्लवविसंस्थुलाः ॥ लंभयेयुः पदं शान्तं प्रसन्नान् प्राणिनः कथम् ॥ २ ॥" इतिकलिकालसर्वज्ञश्रीमद्धेमचंद्रसूरिकृतयोगशास्त्रे- यद्यपि इन श्लोकोंका अर्थ जैनतत्त्वादर्श ग्रंथमें लिखा है तथापि भव्य जीवोंके उपकारार्थ लिखते हैं.

जिस देवकेपास स्त्री होवे, तथा तिसकी प्रतिमाकेपास स्त्री होवे, क्योंकि, जैसा पुरुष होता है, उसकी मूर्ति भी प्रायः वैसीही होती है. आजकाल सर्व चित्रोमें वैसाही देखनेमें आता है. सो मूर्तिद्वारा देवकाभी स्वरूप प्रगट हो जाता है. तथा शस्त्र, धनुष्य, चक्र, त्रिशूलादि जिसके पास होवे, तथा अक्षसूत्र जपमालादि आदि शब्दसे कमंडलु प्रमुख होवे, फेर कैसा वो देव है? रागद्वेषादि दूषणोंका जिनमें चिन्ह होवे? क्योकि, स्त्रीकों जो पास रक्खेगा वो जरूर कामी और स्त्रीसें भोग करनेवाला होगा. इस्से अधिक रागी होनेका दूसरा कौनसा चिन्ह है? इसी कामरागके वश होकर कुदेवोंने परस्त्री, स्वस्त्री, बेटी, माता, बहिन, और पुत्रकी वधू, प्रमुखसे अनेक कामक्रीडा कुचेष्टा करी है. और इसीका नाम लोकोंने भगवान्‌की लीला धारण किया है!!!

अब जो पुरुषमात्र होकर परस्त्री गमन करता है, उसको आज कालके मतावलंबियोंमेंसे कोइभी अच्छा नहीं कहता तो, फेर परमेश्वर होकर जो परस्त्रीसे कामकुचेष्टा करे, उसके कुदेव होनेमें कोईभी बुद्धिमान् शंका कर सक्ता है? नहीं. और जो अपनी स्त्रीसे काम सेवन करता है, और परस्त्रीका त्यागी है, उसकोंभी परस्त्रीका त्यागी धर्मी गृहस्थलोक कह सक्ते हैं, परंतु उसको मुनि वा ऋषि वा ईश्वर कभी नहीं कहे सकेंगे. क्योंकि, जो आपही कामाग्निके कुंडमें प्रज्वलित हो रहा है, तिसमें कभी ईश्वरता नहीं हो सक्ती; इस हेतुसे जो राग रूप चिन्ह करके संयुक्त है, सो देव नही हो सक्ता है. पुनः जो द्वेषके चिन्हकरके संयुक्त है, वोभी देव नहीं हो सक्ता है. द्वेषके चिन्ह शस्त्रादिकोंका धारण करना, क्योंकि, जो शस्त्र, धनुष्य, चक्र, त्रिशूल

१०

भाषार्थः—प्रथम महादेवजीके शापसे सब ऋषि अपने २ शरीरको आपही त्याग कर स्वर्गलोकमें जाते भये, वहां ब्रह्माजीके वीर्यसे फिर ऋषि उत्पन्न हुए हैं. तब देवताओंकी माता, और देवताओंकी स्त्रियां, ब्रह्माजीके वीर्यको स्खलित हुआ जानकर ब्रह्माजीके समीपसे उस वीर्यको अग्निमें हवन करवा देती भई. जब ब्रह्माजीने वीर्यका हवन किया, तब अग्निमेंसे महातेजवाले भृगुऋषि उत्पन्न हुए. मत्स्यपुराण अध्याय ॥१९४॥

तथा ब्रह्मवैवर्त्तपुराणेऽपि चतुर्थाऽध्याये ॥
रतिं दृष्ट्वा ब्रह्मणश्च रेतःपातो बभूव ह ॥
तत्र तस्थौ महायोगी वस्त्रेणाच्छाद्य लज्जया ॥१३॥
वस्त्रं दग्ध्वा समुत्तस्थौ ज्वलदग्निः सुरेश्वरः ॥
कोटितालप्रमाणश्च सशिखश्च समुज्ज्वलन् ॥ १४ ॥
कृष्णस्य कामबाणेन रेतःपातो बभूव ह ॥
जले तद्रेचनं चक्रे लज्जया सुरसंसदि ॥ २३ ॥
सहस्रवत्सरान्ते तद्डिम्भरूपं बभूव ह ॥
ततो महान् विराट् जज्ञे विश्वौघाधार एव सः ॥२४॥

भाषार्थः—रतिको देखकर ब्रह्माजीका वीर्यपात होता भया, तब वो महायोगी ब्रह्मा लज्जाकरके वस्त्रकेसाथ आच्छादन करके खडा होता भया, तब वो वीर्य वस्त्रको जालकर जाज्वल्यमान, कोटिताल प्रमाण, शिखावाला, देदीप्यमान, अग्निदेवता उत्पन्न होता भया. — कामके बाणोंकरके देवसभामें कृष्णजीका वीर्यपात होता भया, तब लज्जाकरके कृष्णजी उस वीर्यको जलमें निकालते भये, वहां वो वीर्य हजार वर्ष व्यतीत हुए तब बालकरूप होता भया, तिस्से जगत् समूहको आधार-भूत महान् विराट् उत्पन्न होता भया. ब्रह्मवैवर्त्त पुराण अध्याय ॥ ४ ॥

इत्यादि प्रायः सर्व पुराणादिके लेखोंसे, ब्रह्मा, विष्णु, महादेव, जो कि लोकोंने कल्पन किये हैं उन्होंमें ज्ञानदर्शन चारित्र नहीं सिद्ध होते हैं. किंतु, काम, क्रोध, ईर्षा, रागादि दोष सिद्ध होते हैं. और ऐसे

देव, वासुदेव, महामंडलिक, मंडलिकादिकोंको राज्यादि पदवीका वर देवे; तथा सुंदर देवांगनासदृश स्त्रीका संयोग, पुत्रपरिवारादिकोंका संयोग जो करे, ऐसा रागी, द्वेषी, देव मोक्षके तांइ कभी नहीं हो सक्ता है. सो तो भूत प्रेत पिशाचादिकोंकी तरह क्रीडाप्रिय देवता मात्र है. ऐसा देव अपने सेवकोंको मोक्ष कैसे दे सक्ता है? आपही यदि वो रागी द्वेषी कर्मपरतंत्र है तो, सेवकोंका क्या कार्य सार सक्ता है?

तथा जो नाद, नाटक, हास्य, संगीत, इनके रसमें मग्न है, वादित्र, (वाजा) बजाता है, नृत्य करता है, औरांको नचाता है, हसता और कूदता है, विषयी रागोंको गाता है, संगीत बोलता है, स्त्रीके विरहसे विलाप करता है, इत्यादिक अनेक प्रकारकी मोहकर्मके वश संसारकी चेष्टा करता है, और स्वभाव जिसका अस्थिर हो रहा है, सोभी परमेश्वर नहीं कहा जाता है; यदि परमेश्वर आपही ऐसा है तो फेर वो परमेश्वर सेवकोंको शांतिपद कैसे प्राप्त करा सक्ता है? यदि किसी पुरुषने एरंडवृक्षको कल्पवृक्ष मानलिया तो, क्या वो कल्पवृक्ष हो सक्ता है? वा कल्पवृक्षका सारा काम दे सक्ता है?

अब भगवान्में अष्टगुण होते हैं सो लिखते हैं.

॥ मूलम् ॥ आर्यावृत्तम् ॥

क्षितिजलपवनहुताशनयजमानाकाशसोमसूर्याख्याः ॥
इत्येतेष्टौ भगवति वीतरागे गुणा मताः ॥ ३४ ॥

भाषार्थ–क्षिति १ जल २ पवन ३ अग्नि ४ यजमान ५ आकाश ६ सोम ७ और सूर्य ८ ऐसे आठ गुण भगवान् वीतरागमें माने है. ॥३४॥

क्षितिरित्युच्यते क्षांतिर्जलं या च प्रसन्नता ॥
निःसंगता भवेद्वायुर्हुताशो योग उच्यते ॥ ३५ ॥
यजमानो भवेदात्मा तपोदानदयादिभिः ॥
अलेपकत्वादाकाशः संकाशः सोभिधीयते ॥ ३६ ॥

व्याख्या–क्षितिशब्दकरके क्षमा कहिए है, जल कहनेसे निर्मलता, और पवन कहनेसे निःसंगता–प्रतिबंधरहित, अग्नि कहनेसे योग, अर्थात्

प्रमुख रक्खेगा, उसने अवश्य किसी वैरीकों मारणा है; नही तो, शस्त्र रखनेसे क्या प्रयोजन है? जिसकों वैर विरोध लगा हुवा है, सो परमेश्वर नहीं हो सक्ता है; जो ढाल वा खड्ग रक्खेगा वह अवश्यमेव भयसंयुक्त होगा, और जो आपही भयसंयुक्त है तो, उसकी सेवा करनेवाले निर्भय कैसें हो सकते हैं? इस हेतुसे द्वेषसंयुक्तको परमेश्वर कौन बुद्धिमान् कह सक्ता है? परमेश्वर जो है, सो तो वीतराग है; सिवाय वीतरागके अन्य कोइ, रागी, द्वेषी, परमेश्वर कभी नहीं हो सक्के हैं.

तथा जिसके हाथमें जपमाला है, सो असर्वज्ञताका चिन्ह है; जेकर सर्वज्ञ होता तो मालाके मणियोंके विनाभी जपकी संख्या कर सक्ता; और जो जपको करता है सोभी अपनेसे उच्चका करता है, तो, परमेश्वरसे उच्च कौन है? जिसका वो जप करता है.

तथा जो शरीरको भस्म लगाता है, और धूणी तापता है, नंगा होके कुचेष्टा करता है, भांग, अफीम, धत्तूरा, मदिरा प्रमुख पीता है, तथा मांसादि अशुद्ध आहार करता है, वा, हस्ति, ऊंट, गर्दभ, बैल प्रमुखकी जो असवारी करता है, सोभी सुदेव नही हो सक्ता है; क्योंकि, जो शरीरको भस्म लगाता है, और धूणी तापता है, सो किसी वस्तुकी इच्छावाला है, सो जिसका अभीतक मनोरथ पूरा नहीं हुआ, सो परमेश्वर कैसे हो सक्ता है? और जो नशे, अमलकी चीजें, खाता पीता है, सो तो नशेके अमलमें आनंद और हर्ष ढूंढता है, और परमेश्वर तो सदा आनंद और सुखरूप है; परमेश्वरमें वो कौनसा आनंद नहीं था जो नशा पीनेसे उसकों मिलता है? और जो असवारी है सो परजीवोंको पीडाका कारण है, और परमेश्वर तो दयालु है, वो परजीवोंको पीडा कैसे देवे? और जो कमंडलु रखता है सो शुचि होनेके कारण रखता है, और परमेश्वर तो सदाही, पवित्र है उनको कमंडलुसे क्या काम है?

तथा निग्रह, जो जिसके उपर क्रोध करे, तिसकों बध, बंधन, मारण, रोगी, शोकी, अतीष्टवियोगी, नरकपात, निर्धन, हीन, दीन, क्षीण करे; और अनुग्रह, जिसके ऊपर तुष्टमान होवे, तिसकों इंद्र, चक्रवर्ती, बल-

रूपि द्रव्यस्वरूपं वा दृष्ट्वा ज्ञानेन चक्षुषा ॥
दृष्टं लोकमलोकं वा रकारस्तेन उच्यते ॥ ४१ ॥

व्या०–रूपी द्रव्य, वा शब्दसे अरूपी द्रव्य, ज्ञाननेत्रकरके जिसने देखा है, तथा लोकालोक जिसने देखा है, इसवास्ते रकार कहते हैं.॥४१॥

हता रागाश्च द्वेषाश्च हता मोहपरीषहाः ॥
हतानि येन कर्माणि हकारस्तेन उच्यते ॥ ४२ ॥

व्या०–राग, द्वेष, अज्ञान, परीषह और अष्टकर्म हनन किये हैं, अर्थात् नष्ट किये हैं, इसवास्ते हकार कहते हैं. ॥ ४२ ॥

संतोषेणाभिसंपूर्णः प्रातिहार्याष्टकेन च ॥
ज्ञात्वा पुण्यं च पापं च नकारस्तेन उच्यते ॥ ४३ ॥

व्या०–संतोषकरके जो सर्वतरेसें संपूर्ण है, और अष्ट प्रातिहार्यकरके संपूर्ण है, सो अष्ट प्रातिहार्य लिखते हैं–

"किंकिल्लि कुसुमवुट्ठि देवज्झुणि चामरासणाइं च ॥
भावलय भेरि छत्तं जयति जिणपाडिहेराई" १ ॥

व्या०–भगवंतके सहचारि होनेसें प्रातिहार्य कहे जाते हैं, अथवा इंद्रके आदेश करनेवाले देवताओंका जो कर्म उसकों प्रातिहार्य कहते हैं, वे आठही प्रातिहार्य देवताके करे जाणने.

किंकिल्ली०–अशोकवृक्ष–सो जहां श्रीभगवंत विचरे समवसरे, वहां महाविस्तीर्ण कुसुमसमूह लब्धभ्रमरनिकर शीतलसच्छाय मनोहर विस्तीर्ण शाखावाला भगवान्के देहमानसें बारां गुणा अशोकवृक्ष देवता करते है, तिसके नीचे बैठके भगवान् देशना (धर्मोपदेश) देते हैं, ॥ १ ॥

कुसुमवुट्ठि–पुष्पवृष्टिः–जलस्थलके उत्पन्न हुये, श्वेत, रक्त, पीत, नील, श्याम, ऐसे पांच वर्णोंके विकस्वर सरस सुगंधमय फूलोंकी वर्षा समवसरणकी पृथ्वीमें देवता करते हैं; जिसमें फूलोंके वींट नीचेपासे, और मुख ऊंचेपासे होते है, तथा वर्षा गोडेप्रमाण होती है; अर्थात् पुष्पवृष्टिसें समवसरण भूभागमें जानुप्रमाण उंचा पुष्पसमूह होता है.॥ २ ॥

देवज्झुणि–दिव्यध्वनिः–भगवान् जिस वखत अत्यंत मधुर स्वरकरके

जैसे अग्नि इंधनको भस्म करके जाज्वल्यमान रूपवाला होता है, तैसे भगवंत कर्मवनको दाहके निर्मळ योगरूपको प्राप्त हुये हैं, इसवास्ते भगवान् अर्हन्को योगरूप कहते हैं. यजमान अर्थात् यज्ञ करनेवाला आत्मा है, तपदानदयादिसें यज्ञ करता है. निर्लेप लेपरहित होनेसें आकाशसमान भगवंतको कहते हैं. ॥३५–३६ ॥

सौम्यमूर्त्तिरुचिश्चंद्रो वीतरागः समीक्ष्यते ॥
ज्ञानप्रकाशकत्वेन आदित्यः सोऽभिधीयते ॥ ३७ ॥

व्याख्या—सौम्यमूर्ति मनोहर होनेसे भगवंत चंद्रवत् चंद्र वीतराग होनेसे देखते है, और ज्ञानप्रकाशकरने करके सो भगवंत अर्हतको आदित्य (सूर्य) कहिये है. ॥ ३७ ॥

पुण्यपापविनिर्मुक्तो रागद्वेषविवर्जितः ॥
श्रीअर्हद्भ्यो नमस्कारः कर्त्तव्यः शिवमिच्छता ॥ ३८ ॥

व्या०–पुण्यपापकरके विनिर्मुक्त (रहित) है, और रागद्वेषकरके विवर्जित है, ऐसे श्रीअर्हतको मुक्तिइच्छक पुरुषोंनें नमस्कार करणे योग्य है. ॥ ३८ ॥

अकारेण भवेद्विष्णू रेफे ब्रह्मा व्यवस्थितः ॥
हकारेण हरः प्रोक्तस्तस्यान्ते परमं पदम् ॥ ३९ ॥

व्या०–अब अर्हन् शब्दका स्वरूप कथन करते हैं. आदिमें जो अकार है, सो विष्णुका वाचक है, और रकारमें ब्रह्मा व्यवस्थित है, और हकार करके हर (महादेव) कथन करा है, और अंतमें नकार परमपदका वाचक है. ॥ ३९ ॥

अकार आदिधर्मस्य आदिमोक्षप्रदेशकः ॥
स्वरूपे परमं ज्ञानमकारस्तेन उच्यते ॥ ४० ॥

व्या०–अकार करके आदिधर्म, और मोक्षका प्रदेशक है, तथा स्वरूपविषे परम ज्ञान है, इसवास्ते अर्हन् शब्दकी आदिमें जो अकार है, तिसका यह अर्थ होनेसे अकार कहते हैं. ॥ ४० ॥

नगरीमें पहुंचानेको सार्थवाहतुल्य है," ऐसी दुंदुभि अर्थात् आकाशमें दिव्यानुभावकरके क्रोडोंही देववाजित्र बजते हैं. ॥ ७ ॥

छत्तं–तीन भवनमें परमेश्वरत्वके ज्ञापक, शरत्कालके चंद्रमा और मुचकुंदके समान उज्वल मुक्ताफलकी मालाकरके विराजमान, ऐसें तीन छत्र भगवान्के मस्तकोपरि छत्रातिछत्रप्रत्यें धारण करते हैं.

यह आठ प्रातिहार्य श्री जिनेश्वर भगवत्संबंधि जयवंते वर्त्तो !

इन पूर्वोक्त अष्ट प्रातिहार्यकरके संपूर्ण हैं, और पुण्य पाप उपलक्षणसें नव तत्व जाणता है तिस हेतुसे नकार अंत्याक्षर कहते हैं. यह अर्हन् शब्दके अक्षरोंका अर्थ है. ॥ ४३ ॥

अब स्तवनकर्त्ता पक्षपातसें रहित होके अंतका आर्यावृत्त कहते हैं.

भवबीजाङ्कुरजनना रागाद्याःक्षयमुपागता यस्य ॥
ब्रह्मा वा विष्णुर्वा हरो जिनो वा नमस्तस्मै ॥ ४४ ॥

इति श्रीमद्धेमचंद्रसूरिविरचितं श्रीमहादेवस्तोत्रम् ॥

व्या०–संसाररूप बीजके चार गतिरूप अंकुरके उत्पन्न करनेवाले राग, द्वेष, अज्ञानादि अठारह दूषण जिसके क्षयभावको प्राप्त हुए हैं, तिसका नाम ब्रह्मा हो, वा विष्णु हो, वा हर, (महादेव) हो, वा जिन हो, तिसकेतांइ नमस्कार हो ॥ ४४ ॥ इति श्रीम० श्रीमहादेव स्तोत्रम् ॥

इन पूर्वोक्त विशेषणोंवाले ब्रह्मा, विष्णु, महादेवकोंही जैनमतवाले अर्हन्, अरिहंत, अरुहंत, अरह, जिन, तिर्थंकर, इत्यादि नामोसें मानते हैं. क्योंकि, जैनमतमें अरिहंत है, सोही ब्रह्मा, विष्णु, महादेव है. "यदुक्तं श्रीमन्मानतुङ्गसूरिप्रवरैः—'

बुद्धस्त्वमेव विबुधार्चितबुद्धिबोधा-
त्वं शंकरोऽसि भुवनत्रयशंकरत्वात् ॥
धातासि धीरशिवमार्गविधेर्विधाना-
द्व्यक्तं त्वमेव भगवन् पुरुषोत्तमोऽसि ॥ २५ ॥

टीका ॥ अर्थान्तरकरणेनान्यदेवनाम्ना जिनं स्तुवन्नाह । बुद्धस्त्वमिति ॥ हे नाथ ! त्वमेव बुद्धः असि वर्त्तसे । असीति क्रियापदं । कः कर्त्ता । त्वं ।

सरस अमृतरससमान समस्त लोकोंको प्रमोद देनेवाली वाणीकरके धर्म-देशना देते हैं, तिस वखत देवता तिस भगवंतके स्वरको अपनी ध्वनि-करके अखंड (पूर्ण) करते हैं. यद्यपि मधुरमें मधुर पदार्थसेंभी भग-वान्की वाणीमें अधिक रस है, तथापि भव्य जीवके हितवास्ते भगवान् जो देशना देते हैं सो मालवकोश रागमें देते हैं; जिस वखत भगवान् मालवकोश रागकरके देशना आलापते हैं, तिस वखत भगवान्के दोनों तरफ रहे हुए देवता मनोहर वेणु वीणादिके शब्दकरके तिस भगवान्की वाणीको अधिकतर मनोज्ञ करते हैं. जैसें कोई सुस्वर करके गयन करता होवे, उसके पास वीणादिके शब्दकरके ध्वनि पूर्ण करें. ॥ ३ ॥

चामर-केलिस्तंभमें लगे हुए तंतु निकरके समान मनोहर दंडमें लगे हुए अनेक रत्नोंकी किरणोंकरके मानो इंद्रधनुष्यकाही विस्तार न होता होय? ऐसे रत्नोंकरके जडित सुवर्णदांडीसहित श्वेत चामर भगवान्के दोनोंपासे देवता करते हैं, तथा इंद्रभी करते हैं ॥ ४ ॥

आसणाइं च-आसनानि च-अनेक रत्नचूनीयांकरके विराजमान सुवर्णमय मेरुशृंगकीतरह ऊंचा और अनेक कर्मरूप वैरिके समूहकों मानो डराते न होय? ऐसें साक्षात् सिंहरूपकरके शोभायमान ऐसा सुवर्णमय सिंहासन देवता करते हैं, तिसके ऊपर बैठके भगवान् देशना देते हैं. ॥ ५ ॥

भावलय-भामंडल-भगवंतके पीछे शरदृतु संबंधि सूर्यकी किरणों कीतरह दुर्दर्श अत्यंत देदीप्यमान श्री वीतरागके मस्तकके पीछले भागमें भामंडलकीतरह भामंडल होता है. "भा" नाम कांति, तिसका मंडल अर्थात् मांडला सो भामंडल. विनाभामंडलके भगवान्के मुखसन्मुख अतिशय तेजोमयि होनेसें, कोइ देख नही सक्ता है. इस वास्ते, देवता भामं-डलकी रचना करते हैं. ॥ ६ ॥

भेरि-भेरी ढका दुंदुभिरिति यावत्-जिसने अपने भोंकार शब्दकरके विश्वका विवर भरा है ऐसी भेरी शब्दायमान करते हैं. मानो भेरीका शब्द तीन जगत्के लोकोंको ऐसें कहता न होय? कि "हे जनो! तुम प्रमादको छोडके श्री जिनेश्वर देवको सेवो, यह जिनेश्वर देव मुक्तिरूपी

तूं ही व्यक्त (प्रगट) पुरुषोंमें उत्तम है. पक्षमें पुरुषोत्तम, कृष्ण, सो तो, सर्वत्र कपटवशसें यथार्थ पुरुषोत्तम नही है ॥ २९ ॥

और अज्ञ लोकोंनें, जो ब्रह्मा, विष्णु, महादेवके नामोंको कलंकित करे है, और तिनके असभ्यतारूप चरित लिखे हैं, वे देव यथार्थ ब्रह्मा विष्णु, महादेव नही माने जाते हैं. क्योंकि उन देवोंका चरित, और स्वरूप, जो परमतवालोंने लिखा है, तिस चरितस्वरूपसेही सिद्ध होता है कि वे यथार्थ ब्रह्मा, विष्णु, महादेव नही थे.

तथाचाह भर्तृहरिः-॥

शंभुस्वयंभुहरयो हरिणेक्षणानां
येनाक्रियंत सततं गृहकुंभदासाः ॥
वाचामगोचरचरित्रपवित्रिताय*
तस्मै नमो भगवते मकरध्वजाय+ ॥ ४८ ॥

भावार्थः-जिस कामदेवने, शंभु (महादेव), स्वयंभु (ब्रह्मा), और हरि (विष्णु), इन्होंकों, हरिणसमान, ईक्षण (नेत्र) है जिनोंके, ऐसी स्त्रियोंके निरंतर घरके कुंभदास, अर्थात् पानी भरनेवाले करे हैं [दूसरी परतमें, 'गृहकर्मदासाः' ऐसा पाठ हैं. उसका अर्थ घरके काम करनेवाले दास, अर्थात् नौकर] वचनके अगोचर चरित्र उन्होंकरके पवित्र, ऐसा जो भगवान् मकरध्वज (कामदेव) तिसकेतांइ नमस्कार हो.

तथा भोजराजाकी सभाके मुख्य पंडित धनपालजी कहते हैं.

दिग्वासा यदि तत्किमस्य धनुषा तच्चेत्कृतं भस्मना
भस्माथास्य किमङ्गना यदि च सा कामं प्रति द्वेष्टि किम् ॥
इत्यन्योन्यविरुद्धचेष्टितमहो पश्यन्निजस्वामिनो
भृङ्गी सान्द्रसिरावनद्धपरुषं धत्तेस्थिशेषं वपुः ॥ १ ॥

---

* प्रत्यंतरे 'वाचामगोचरचरित्रविचित्रिताय'-अर्थः-वाणीयोंके अगोचर अर्थात् वचनोंसें न कहे जावें ऐसे विचित्र, अद्भुत, आश्चर्यकारी, चरित्र है जिसके, ऐसा जो कामदेव भगवान् तिसकेतांइ नमस्कार हो.
+ प्रत्यंतरे 'कुसुमायुधाय' यह कामदेवकाही पर्यायनाम है.

कथंभूतस्त्वं। बुद्धः ज्ञाततत्त्वः। कस्मात् विबुधार्चितबुद्धिबोधात्। विबुधैः गणधरैर्देवैर्वा अर्चितः पूजितो बुद्धेः केवलज्ञानस्य बोधो वस्तुस्तोमपरिच्छेदो यस्य स विबुधार्चितबुद्धिबोधस्तस्मात् विबुधार्चितबुद्धिबोधात् इति बहुव्रीहिः। पक्षे बुद्धः। सप्तानामन्यतमः सुगतः केवलज्ञानाभावेन ज्ञाततत्त्वो नास्तीति भावः। हे नाथ! त्वमेव शंकरोऽसि। असीति क्रियापदं। कः कर्त्ता। त्वं। कथंभूतस्त्वं। शंकरः। कस्मात्। भुवनत्रयशंकरत्वात्। भुवनत्रयस्य जगत्त्रीतयस्य शंकरत्वात् सुखकारित्वात्। भुवनानां त्रयं भुवनत्रयं इति तत्पुरुषः। भुवनत्रयस्य शं सुखं करोतीति भुवनत्रयशंकरस्तस्य भावस्तत्त्वं तस्मात् भुवनत्रयशंकरत्वात्। इति तत्पुरुषः। पक्षे शंकरो महादेवः स तु कपाली नग्नो भैरवः संहारकः तेन यथार्थनामा शंकरो नास्तीति भावः। हे धीर! धियं बुद्धिं राति ददातीति धीरस्तस्य संबोधनं हे धीर! धाता त्वं असि। कस्मात्। निष्पादनात्। कस्य शिवमार्गविधेः। शिवस्य मोक्षस्य मार्गः पंथा। तस्य विधिः रत्नत्रयरूपयोगस्तस्येति तत्पुरुषः। एतावता मोक्षमार्गविधेर्विधानात् त्वमेव धातासीत्यर्थः संपन्नः। पक्षे धाता ब्रह्मा स तु जडो वेदोपदेशान्नरकपथमुदजीघटत्तेन शिवमार्गविधेर्विधायको नास्तीति भावः। हे भगवन्! त्वमेव व्यक्तं स्पष्टं पुरुषोत्तमः असि। पुरुषेषु उत्तमः पुरुषोत्तम इति तत्पुरुषः। पक्षे पुरुषोत्तम कृष्णः। स तु सर्वत्र कपटप्रकटनात् यथार्थां पुरुषोत्तमतां न धत्ते इति भावः॥ २९॥

भावार्थः–यह है कि, हे नाथ! विबुधों, वा गणधरों, वा देवोंकरके पूजित केवलज्ञानके बोध वस्तु स्तोमके प्रगट करनेवाला होनेसें, तूंही बुद्ध है. पक्षमें सातों बुद्धोंमेंसे अन्यतम सुगत केवलज्ञानके अभावकरके ज्ञाततत्त्व नही है. हे नाथ! तीन भुवनकों, शं (सुख) करनेसे तूं शंकर है. पक्षमें शंकर, महादेव, सो तो, कपाली, नग्न, भैरव संहारक होनेकरके यथार्थनामा शंकर नही है. हे धीर! ज्ञानदर्शनचारित्ररूप मोक्षमार्गके विधिकों करनेसे तूंही धाता है. पक्षमें धाता, ब्रह्मा, सो तो, जड है. वेदोपदेश (हिंसकशास्त्रोपदेश) सें नरकपथकों प्रगट करता भया, तिसकरके शिवमार्गके विधिको करनेवाला नही है. हे भगवन्!

किसतरह हुआ? जेकर सर्वज्ञ है तो, आत्माकी अंतराय क्यों नही देखता? अर्थात् घरघरमें भीख मांगता है, तब किसी घरसें भीख मिलती है. और किसी घरसें नही मिलती है; जिस घरसें भीख नही मिलती है, तिस घरमें भीख मांगनेको क्यों जाता है? यह संक्षेपसें सम्यक् प्रकारसें कथन करा है. ऐसे पशुपति (महादेव) की, अपशु अर्थात् बुद्धिमान् मनुष्य कौन सेवा कर सक्ता है? ॥ १ ॥ इस हेतुसें, जो कल्पित ब्रह्मा, विष्णु, महादेव हैं, वे जैनमतवालोंके उपास्य नही है. और जो यथार्थ ब्रह्मा, विष्णु, महादेव है, वे जैनोंके उपास्य है.

"इति श्रीविजयानन्दसूरिकृते तत्वनिर्णयप्रासादे किंचिद्वस्वरूपवर्णनो नाम द्वितीयः स्तम्भः ॥ २ ॥"

अथ तृतीयस्तम्भप्रारम्भः

द्वितीयस्तंभमें यथार्थ ब्रह्मा विष्णु, महादेवका किंचिन्मात्र स्वरूप लिखा. अथ तृतीयस्तंभमें तिन यथार्थ ब्रह्मा, विष्णु, महादेवमें जे जे अयोग्य बातें हैं, तिनके व्यवच्छेदरूप श्रीमन्महावीरस्वामी स्तोत्र लिखते हैं.

इहां निश्चय विषमदुःषमअररूप रात्रितिमिरके दूर करनेको सूर्यसमानने, और पृथिवीतलमें अवतार लेके अमृतसमान धर्मदेशनाके विस्तारसें परमार्हत हुआ श्री कुमारपाल भूपालसें प्रवर्त्तित कराई अभयदान जिसका नाम ऐसी संजीविनी औषधिकरके जीवित करे नाना जीवोंने दीनी आशीर्वादरूप महात्म्यकल्प अर्थात् पंचम अरेपर्यंततांइ स्थिर रहनेहारा स्थिर करा है विशद (निर्मल) यशःशरीरकरके जिन्होंने, और चातुर्विद्यके निर्माण करनेमें एक ब्रह्मारूप श्रीहेमचंद्रसूरिने, जगत्में प्रसिद्ध श्रीसिद्धसेनदिवाकरविरचित वत्तीस वत्तीसियोंके अनुसारि श्रीवर्द्धमानजिनकी स्तुतिरूप, अयोग्यव्यवच्छेद और अन्य योग्यव्यव-

भावार्थः—एकदा अवसरमें भोजराजा शिवालयके द्वारमें अति दुर्बल भृंगीगणकी मूर्ति देखके, पंडित श्रीधनपालजीकों पूछते भए कि, "हे पंडित! यह भृंगीगण अति दुर्बल किस कारणसें है?" तब श्रीपंडित धनपालजीने कहा, "हे राजन्! यह भृंगीगण, अपने स्वामी शंकरका असमंजस स्वरूप देखके चिंताकरके दुर्बल हो गया है;" सोही दिखाते हैं. भृंगीगण यह चिंता करता है कि, यदि महादेव, दिगंबर (दिशारूप वस्त्रका धारी) है, तो फेर इनकों धनुष काहेकों रखना चाहिये? क्योंकि, दिगंबर, निःकिंचन, होके धनुष रखना यह परस्पर विरुद्ध है. ॥ १ ॥ यदि, धनुषही रखना था, तो फेर शरीरको भस्म लगानेसें क्या लाभ है? क्योंकि, धनुषधारी होना यह योद्धे और अहेडी शकारीयोंका काम है, और भस्म शरीरको लगाना यह संतोंका काम है, जिसका किसीकेभी साथ वैर विरोध नही है. यह दूसरा विरोध. ॥ २ ॥ अथ जेकर भस्मही शरीरके लगाये संत बने, तो फेर स्त्रीकों संग काहेकों रखनी चाहिये? ॥ ३ ॥ जेकर स्त्रीही संग रखनी थी, तो फेर कामके ऊपर द्वेष करके उसकों भस्म क्यों करना था? ॥ ४ ॥ ऐसें परस्पर अपने स्वामीके विरुद्ध लक्षण देखके भृंगीगण दुर्बल हो गया है.

॥ अकलंकदेवोप्याह ॥

ईशः किं छिन्नलिङ्गो यदि विगतभयः शूलपाणिः कथं स्या-
न्नाथः किं भैक्ष्यचारी यतिरिति च कथं सांगनः सात्मजश्च ॥
आर्द्राजः किंत्वजन्मा सकलविदिति किं वेत्ति नात्मान्तरायं
संक्षेपात्सम्यगुक्तं पशुपतिमपशुः कोत्र धीमानुपास्ते ॥ १ ॥

भावार्थः—जे कर शंकर, आप ईश्वर सर्व वस्तुका कर्त्ता, हर्त्ता है तो, ऋषिके शापसें उसका लिंग किस वास्ते टूट गया? और ईश्वर होके ऋषिके आगे नग्न होके काहेकों नाचा? और जेकर ईश्वर भयरहित है तो, शूलपाणि क्यों है? जे कर त्रिभुवननाथ है तो, क्यों भीख मांगके खाता है? जे कर यति है तो, किसतरें स्त्रीसहित और पुत्रसहित है? जे कर आर्द्रा नक्षत्रसें जन्म लिया तो, अजन्मा (जन्मरहित)

सततं निरंतर अवगच्छाति जानता है: अत 'सात्यतगमने' इस बचनसें, अत धातुकों गत्यर्थ होनेसें, और गत्यर्थ सर्व धातुयोंकों ज्ञानार्थत्व होनेसें, तब तो, अनवरत निरंतर जो जानें ऐसें निपातसें, आत्मा, जीव, उपयोग, लक्षण होनेसें, आत्मा सिद्ध होता है. और सिद्ध मोक्षावस्था संसारी अवस्था दोनोंमेभी, उपयोगके भाव होनेकरके निरंतर अवबोधके होनेसें, जेकर निरंतर अवबोध न होवे, तब तो अजीवत्वका प्रसंग होवेगा; और अजीवको फेर जीव होनेके अभावसें, जेकर, अजीवभी जीव हो जावे, तब तो, आकाशादिकोंकोभी जीवत्व होनेका प्रसंग होवेगा. तब तो, जीवादि व्यवस्थाकाही भंग होवेगा. इसवास्ते, निरंतर अवबोधरूप होनेसें, आत्मा कहते हैं. अथवा, अतति सततं निरंतरं गच्छति प्राप्त होता है, अपनी ज्ञानादिपर्यायांकों जो, सो आत्मा है.

पूर्वपक्षः–ऐसें तो आकाशादिकोंको भी, आत्मशब्दके व्यपदेशका प्रसंग होवेगा. क्योंकि, वेभी अपनी अपनी पर्यायांकों प्राप्त होते हैं; अन्यथा अपरिणामी होनेकरके, अवस्तुत्वका प्रसंग होवेगा.

उत्तरपक्षः–जैसें तुम कहते हो, तैसें नही है. क्योंकि, दो प्रकारके शब्द होते हैं. व्युत्पत्तिमात्रनिमित्तरूप, और प्रवृत्तिनिमित्तरूप; तिसमें यह तो व्युत्पत्तिमात्रही है, और प्रवृत्तिनिमित्तसें तो जीवही आत्मा है. न आकाशादि. अथवा, संसारी अपेक्षा नानागतियोंमें निरंतर गमन करनेसें, और मुक्तात्माकी अपेक्षाभूततद्भावसें आत्मा कहते हैं. यह आत्मा शब्दका अर्थ है. सो आत्मा, तीन प्रकारका है, बाह्यात्मा १, अंतरात्मा २, परमात्मा ३. तिनमें जो परमात्मा है, तिसका स्वरूप ऐसा है, जो शुद्धात्मस्वभावके प्रतिबंधक कर्म शत्रुयोंकों हणके निरूपमोत्तम केवलज्ञानादि स्वसंपद पाकरके, करतलामलकवत् समस्त वस्तुके समूहकों विशेष जानते और देखते हैं; और परमानंदसंपन्न होते हैं; वे तेरमें चौदमें गुणस्थानवर्त्ती जीव, और सिद्धात्मा, शुद्धस्वरूपमें रहनेसें, परमात्मा कहे जाते हैं. ऐसा परमात्मास्वरूप है, जिसका ॥ १ ॥

इस काव्यका भावार्थ यह है कि, सपाद लक्ष पंचांगव्याकरणादि साढेतीन कोटि श्लोकोंके कर्त्ता, श्रीहेमचंद्राचार्य, अपने आपकों श्रीवर्द्ध-

च्छेद नाम कियां दो बत्तीसियां पंडितजनोंके मनके तत्वबोध हेतुभूत रचीयां है. तिनमेंसें, प्रथम द्वात्रिंशिका सुगमार्थरूप है, इसवास्ते इसकी व्याख्या नही करते हैं, ऐसें श्रीमल्लिषेणसूरि कहते हैं. परंतु इस कालके हमारे सरीखे मंदबुद्धियोंकों तो, प्रथम द्वात्रिंशिकाका अर्थ जानना बहुतही कठिन हो रहा है; तथापि, शिष्यजनोंकी प्रार्थनासें, और श्रीहेमचंद्रसूरिजीकी भक्तिके मिससें किंचिन्मात्र अर्थ लिखते हैं.

अगम्यमध्यात्मविदामवाच्यं वचस्विनामक्षवतां परोक्षम्
श्रीवर्द्धमानाभिधमात्मरूपमहं स्तुतेर्गोचरमानयामि ॥ १॥

व्याख्याः–(अहं) मैं हेमचंद्रसूरि (श्रीवर्द्धमानाभिधम्) श्रीवर्द्धमान नाम भगवंतकों (स्तुतेः) स्तुतिका (गोचरम्) विषय (आनयामि) करता हूं. कैसा है श्रीवर्द्धमान भगवंत (अध्यात्मविदाम्) अध्यात्मवेत्तायोंके (अगम्यम्) अगम्य है, अर्थात् अध्यात्मज्ञानीभी जिसका संपूर्ण स्वरूप नही जान सक्के हैं. जे आत्माका, मनका और देहका, यथार्थ स्वरूप जानते हैं, तिनकों अध्यात्मवित् कहते हैं. तिनोंकेभी ज्ञानकरके श्रीवर्द्धमान भगवंतका स्वरूप अगम्य है. तथा (वचस्विनाम्) वचस्वी पंडितकों कहते हैं, मनःपर्यायज्ञानी, अवधिज्ञानी, पूर्वधर, गणधरादि सर्व शास्त्रोंका वेत्ता. ऐसें सद्बुद्धिमान् सर्व पापोंसें दूर वर्त्तनेवाले ऐसें पंडितोंके वचनों करके श्रीवर्द्धमान भगवंतका स्वरूप (अवाच्यम्) अवाच्य है, अर्थात् ऐसें पंडितभी जिनका संपूर्ण स्वरूप नही कह सक्के हैं. क्योंकि, श्रीवर्द्धमान भगवंत अनंतस्वरूप गुणवान् है; और छद्मस्थके तो ज्ञानमेंही वे सर्वगुण नही आ सक्के हैं तो, तिन सर्वका स्वरूप कथन करना तो दूरही रहा. तथा (अक्षवताम्) नेत्रोंवालोंके (परोक्षम्) परोक्ष है; यद्यपि संप्रति कालके नेत्रोंवालोंके तो भगवंतका स्वरूप देखना परोक्षही है, परंतु भगवंतके जीवनमोक्षके समयमें भी नेत्रोंवालोंकेभी श्रीभगवंतका स्वरूप परोक्षही था. क्योंकि, समवसरणमेंभी विराजमान भगवंतका अनंत गुणात्मक स्वरूप, नेत्रोंवाले नही देख सक्ते थे. तथा कैसे है श्रीवर्द्धमानाभिध भगवंत (आत्मरूपम्) आत्मरूप है. आत्मा शब्दका अर्थ ऐसा है कि, अतति

व्याख्या-हे भगवन्! (क) कहां तो (महार्थाः) अति महा अर्थ संयुक्त (सिद्धसेनस्तुतयः) सिद्धसेनदिवाकरकी करी हुई स्तुतियां, और (क) कहां (एषा) यह (अशिक्षितालापकला) नही सीखा है अब तक पूरा पूरा बोलनाभी जिसने, तिसके कहनेकी स्तुतिरूप कला; अर्थात् कहा श्रीसिद्धसेनदिवाकररचित महा अर्थवालिया बत्तीस बत्ती-सियां, और कहां मेरे अशिक्षित आलापकी यह स्तुतिरूप कला; (तथापि) तोभी, (यूथाधिपतेः) हाथियोंके यूथाधिपके (पथस्थः) पथ मार्गमें रहा हुआ (स्खलद्गतिः) स्खलित गतिभी, अर्थात् पथसें इधर उधर गति स्खलायमान् भी (तस्य) तिस यूथाधिपका (शिशुः) बालक कलभ (न शोच्यः) शोचनीय नही है. ऐसेंही श्री सिद्धसेनादिवाकर गच्छा-धिप है, और मैं तिनका (बालक) बच्चा हूं. जिस रस्तेपर वे चले हैं, मैंभी तिसही रस्तेमें रहा हुआ, अर्थात् तिनकी तरहही स्तुति करता हुआ, जेकर स्खलायमानभी होजावुं, तोभी शोचनीय नही हूं.

अथाग्रे श्रीहेमचंद्रसूरि अयोग व्यवच्छेदरूप भगवंतकी स्तुति रचते हैं.

जिनेंद्र यानेव विबाधसे स्म दुरंतदोषान् विविधैरुपायैः ॥
त एव चित्रं त्वदसूययेव कृताः कृतार्थाः परतीर्थनाथैः ॥६॥

व्याख्या-हे जिनेंद्र! (यानेव) जिनही (दुरंतदोषान्) दुरंतदूषणाकों (विविधैः) विविध प्रकारके (उपायैः) उपायोंकरके (विबाधसे) तुम बाधित करते हुए हैं, अर्थात् जिन दुरंतदूषण राग, द्वेष, मोहादिकोंको नाना प्रकारके संयम, तप, ज्ञान, ध्यान, साम्यसमाधि, योग, लीनतादि उपायोंकरके दुर करे हैं; (चित्रम्) मुझकों बडाही आश्चर्य है कि, (त एव) वेही दुरंतदूषण (परतीर्थनाथैः) परतीर्थनाथोंने (त्वदसूययेव) तेरी असूया करकेही (कृतार्थाः) कृतार्थ (कृताः) करे हैं, अर्थात् अच्छे जानके स्वीकार करे हैं; सोही दिखाते हैं.

हे भगवन्! प्रथम रागकों तैंने दूर करा, तिस रागकोंही परतीर्थनाथों-ने स्वीकार करा है. क्योंकि, रागका प्रायः मूल कारण स्त्री है, सो तो, तीनोंही देवने अंगीकार करी है. ब्रह्माजीने सावित्री, शंकरने पार्वती,

मान भगवंतकी संपूर्ण स्तुति करनेकी सामर्थ्य न देखते हुए, अपने आपकों कहते हैं कि, जो वर्द्धमान भगवंत परमात्मरूप है, जो अध्यात्म ज्ञानियोंके अगम्य है, जो वचस्वियोंके अवाच्य है, और जो नेत्रवालोंके परोक्ष है, तिनकों मैं स्तुतिका विषय करता हूं, यह बडाही मेरा साहस है. तब मानूं श्री वर्द्धमान भगवंत साक्षात्ही श्री हेमचंद्राचार्यकों कहते हैं कि, "हे हेमचंद्र! जेकर तूं मेरी स्तुति करनेकों शक्तिमान् नही है तो, तूं किसवास्ते मेरी स्तुति करनेकों उद्यम करता है?" तब श्री हेमचंद्राचार्य भगवतको मानूं साक्षात्ही कहते हैं.

स्तुतावशक्तिस्तव योगिनां न किं गुणानुरागस्तु ममापि निश्चलः
इदं विनिश्चित्य तव स्तवं वदन्न बालिशोऽप्येष जनोऽपराध्यति २

व्याख्या-"हे भगवन्! (तव) तेरी (स्तुतौ) स्तुति करनेमें (किम्) क्या (योगिनाम्) योगियोंकों (अशक्तिः) असमर्थता (न) नही है? अपितु है; अर्थात् हे भगवन्! तेरी स्तुति करनेकी योगियोंमेंभी शक्ति नही है, परंतु तिनोंनेभी तेरी स्तुति करि है." तब मानूं भगवान् फेर साक्षात् श्री हेमचंद्रजीकों कहते है कि, "हे हेमचंद्र! योगियोंकों मेरे गुणोंमें अनुराग है, इस वास्ते तिनोंने मेरी स्तुति करी है. जो गुण रागी करेगा सो समीची नही करेगा" तब श्रीहेमचंद्रजी कहते हैं (गुणानुरागस्तु ममापि निश्चलः) "गुणानुराग तो मेरा भी निश्चल है; अर्थात् हे भगवन! तेरे गुणोंका राग तो मेरेभी अति दृढ है. (इदम्) यही वार्त्ता (विनिश्चित्य) अपने मनमें चिंतन करके अर्थात् निश्चय करके (तव स्तवं वदन्) तेरी स्तुति कहता हुआ (बालिशः अपि) मूर्ख भी (एष जनः) यह हेमचंद्र (नअपराध्यति) अपराधका भागी नही होता है.

अथ स्तुतिकार अपनी निरभिमानता और पूर्वाचार्योंकी बहुमानता सूचन करते हैं.

क्व सिद्धसेनस्तुतयो महार्था अशिक्षितालापकला क्व चैषा ॥
तथापि यूथाधिपतेः पथस्थः स्खलद्गतिस्तस्य शिशुर्न शोच्यः॥३॥

तुस्का स्वरूप (दिशन्) कथन करता हूआ (तादृशं) तैसी (कौशलं) कौशलता–चातुर्यताकों (न) नही (आश्रितोसि) आश्रित–प्राप्त हूआ है, जैसी चातुर्यताकों असद्रूप पदार्थकों, सद्रूप कथन करते हूए परवादी प्राप्त हूए हैं, अर्थात् जीव १, अजीव २, पुण्य ३, पाप ४, आस्रव ५, संवर ६, निर्ज्जरा ७, वंध ८, और मोक्ष ९, यह नव पदार्थ हैं. तिनमें जो जीव है, सो ज्ञानादि धर्मोंसें कथंचित् भिन्नाभिन्न रूप है, शुभाशुभ कर्मोंका कर्त्ता है, अपने करे कर्मोंका फल अपने अपने निमित्तों द्वारा भोक्ता है, नरक, तिर्यंच, मनुष्य, देव रूप चार गतिमें अपने कर्मोंके उदयसें भ्रमण करता है, सम्यग् दर्शन, ज्ञान, चारित्र रूप साधनोंसें निर्वाण पदकों प्राप्त होता है, चैतन्य अर्थात् उपयोगही जिसका लक्षण है, अपने कर्मजन्य शरीर प्रमाण व्यापक है, द्रव्यार्थिक नयके मतसें नित्य है, पर्यायार्थिक नयके मतसें अनित्य हैं, द्रव्यार्थ स्वरूपसें अनादि अनंत है, पर्यायार्थे सादि सांत है, और कर्मोंके साथ प्रवाहसें अनादि संयोग संबंधवाला है, इत्यादि विशेषणोंवाला जीव है. ॥ १॥

चैतन्यरहित, अज्ञानादि धर्मवाला, रूप, रस गंध, स्पर्शादिकसें भिन्नाभिन्न, नरामरादि भवांतरमें न जानेवाला, ज्ञानावरणादि कर्मोंका अकर्त्ता, तिनोंके फलका अभोक्ता, जड स्वरूप, इत्यादि विशेषणोंवाला रूपी, अरूपी, दो प्रकारका अजीव है. तिनमें परमाणुसें लेके जो वस्तु वर्ण गंध रस स्पर्श संस्थानवाला दृश्य है, वा अदृश्य है, सो सर्व रूपी अजीव है. तथा धर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, और काल, ये चारों अरूपी अजीव है. धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, यह तीनों द्रव्यसें एकैक द्रव्य है, क्षेत्रसें धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय यह दोनों लोकमात्र व्यापक है, आकाशास्तिकाय, लोकालोक व्यापक है, कालसें तीनों ही द्रव्य अनादि अनंत है, और भावसें वर्ण गंध रस स्पर्शरहित, और गुणसें धर्मास्तिकाय चलनेमें सहायक है, और अधर्मास्तिकाय स्थितिमें सहायक है, और आकाशास्तिकाय सर्व द्रव्योंका भाजन विकाश देनेमें सहायक है. काल, द्रव्यसें एक वा अनंत है, क्षेत्रसें अढाइ द्वीप प्रमाण व्यावहारिक काल है, कालसें अनादि अनंत है, भावसें वर्ण गंध रस

और विष्णुने लक्ष्मी. और पुत्र पुत्रीयां साम्राज्य परिग्रहादिकी ममताभी सर्व देवोंके तिनके शास्त्रोंके कथनानुसारही सिद्ध हे. और अप्रीतिलक्षणद्वेषभी पूर्वोक्त देवोंमें सिद्ध है. क्योंकि, जो शस्त्र रखेगा सो यातो वैरीके भयसें अपनी रक्षाकेवास्ते रखेगा, यातो अपने वैरियोंको मारने वास्ते रखेगा; शंकर धनुष, बाण, त्रिशूलादि; और विष्णु चक्र, धनुष, बाण, गदादि; और ब्रह्मादि तीनो देवोंने अनेक पुरुषोंकों शाप दिये महाभारतादि ग्रंथोंमें प्रसिद्ध है; और शंकर विष्णुने अनेक जनोंके साथ युद्ध करे है; इत्यादी अनेक हेतुयोंसें, तीनो देव, द्वेषी सिद्ध होते हैं. और मोह, अज्ञानभी, तीनो देवादिक परतीर्थनाथोंने स्विकार करा है. क्योंकि, जपमाला रखनेसें अज्ञानी सिद्ध होते है, जपमाला जपकी गिणती वास्ते रखते हैं, जपमालाविना जपकी गिणती (संख्या) न जाननेसें, अज्ञानिपणा सिद्ध है. और महाभारत, रामायण, शिवपुराणादि ग्रंथोंके कथनसें, तीनो देव, असमदादिकोंकी तरह अज्ञानी सिद्ध होते हैं. जैसें, शिवके लिंगका अंत ब्रह्मा विष्णुकों न मिला, इत्यादि अनेक उदाहरण है. तिससें, तीनो देव अज्ञानी सिद्ध होते हैं. तथा हास्य, रति, अरति, भय, जुगुप्सा, शोक, काम, मिथ्यात्व, निद्रा, अविरति, पांच विघ्नादि दूषणभी, तीनो देवादिकोंमें तिनके कथन करे शास्त्रोंसेंही सिद्ध होते हैं.

इस वास्ते मानूं हे जिनेंद्र! तीनो देवोंने तेरी ईर्षा करकेही पूर्वोक्त दूषण अंगीकार करे हैं. यह प्रायः जगत्में प्रसिद्धही है कि, जो निर्द्धन धनाढ्यका स्पर्धी, जब धनाढ्यकी बराबरी नही करसक्ता है, तब धनाढ्यकी ईर्षासें विपरीत चलना अंगीकार करता है. तैसेंही, परतीर्थनाथोंने हे भगवन्! तेरेकों सर्व दूषणोंसें रहित देखके तेरी इर्षासेंही मानूं सर्व दूषण कृतार्थ करे हैं, यह मेरेकों वडाही आश्चर्य है. ॥ ४ ॥

अथ स्तुतिकार भगवंतमें असत् उपदेशकपणे काव्य वछेद करते हैं.

यथास्थितं वस्तु दिशन्नधीश न तादृशं कौशलमाश्रितोऽसि ॥
तुरंगशृंगाण्युपपादयद्भ्यो नमः परेभ्यो नवपण्डितेभ्यः ॥५॥

व्याख्या–हे अधीश! हे जिनेंद्र! तूं (यथास्थितं) यथास्तित (वस्तु) व-

जगत्वासी मनुष्यांको मिथ्यात्व अंधकार संसारकी वृद्धिके हेतुभूत मार्गमें प्रवर्त्तन कराया है, तिनोंकेतांइ हम नमस्कार करते हैं. ये तुरंगश्रृंग समान पदार्थ यह है. एकही ब्रह्म है, अन्य कुछभी नही है, १. पूर्वोक्त ब्रह्मके तीन भाग सदाही निर्मल है और एक चौथा भाग मायावान् है, २. ब्रह्म सर्वव्यापक है, ३. सक्रिय है, ४. कूटस्थ नित्य है, ५. अचल है, ६. जगत्की उत्पत्ति करता है, ७. जगत्का प्रलय करता है, ८. ऊर्णनाभकीतरें सर्व जगत्का उपादान कारण है, ९. सदा निर्लेप सदा मुक्त है,१०. यह जगत् भ्रमंमात्र है, ११. इत्यादि तो वेद और वेदांत मतवालोंने तुरंगश्रृंग समान वस्तुयोंका कथन करा है.

और सांख्य मतवालोंने एक पुरुष चैतन्य है, नित्य है, सर्वव्यापक है, एक प्रकृति जडरूप नित्य है, तिस प्रकृतिसें बुद्धि उत्पन्न होती है, बुद्धिसें अहंकार, अहंकारसें षोडशकागण, पांच ज्ञानेंद्रिय, (पांच कर्मेंद्रिय, इग्यारमा मन, और पांच तन्मात्र, एवं षोडश) पांच तन्मात्रसें पांच भूत एवं सर्व, २५ प्रकृति जडकर्त्ता है, और पुरुष तिसका फल भोक्ता है, पुरुष निर्गुण है, अकर्त्ता है, अक्रिय है, परंतु भोक्ता है, इत्यादि सर्व कथन तुरगशृंगकीतरें असद्रूप करा है.

नैयायिक वैशेषिक यह दोनों ईश्वरको सृष्टिका कर्त्ता मानते हैं, ईश्वर नित्य बुद्धिवाला है, सर्वव्यापक और नित्य है, ईश्वरही सर्व जीवोंका फलप्रदाता है, आत्मा अनंत है परंतु सर्वही आत्मा सर्वव्यापक है, मोक्षावस्थामें ज्ञानके साथ समवायसंबंधके तूटनेसें आत्मा चैतन्य नही रहता है, और तिसकों स्वपरका भान नही होता है, इत्यादि सर्व कथन तुरंगशृंग उपपादनवत् है.

पूर्व मीमांसावाले कहते हैं कि ईश्वर सर्वज्ञ नही है, मोक्ष नही है, वेद अपौरुषेय और नित्य है, वेदका कोई कर्त्ता नही है, इत्यादि सर्व कथन तुरंगशृंग उपपादनवत् असत् है.

बौद्ध मतके मूल चार संप्रदाय है,—योगाचार (१), माध्यमिक (२), वैभाषिक (३), सौतांत्रिक (४); इनमें योगाचार मतवाले विज्ञानाद्वैतवादी हैं, आत्माको नहीं मानते हैं, एक विज्ञान क्षणकोही सर्व कुछ

स्पर्श रहित, गुणसें नव पुराणादि करनेका हेतु है. और रूपी अजीव पुद्गल रूप द्रव्यसें पुद्गल द्रव्य अनंत है, क्षेत्रसें लोकप्रमाण है, कालसें अनादि अनंत है, भावसें वर्ण गंध रस स्पर्श वाला है. मिलना और विच्छड जाना यह इसका गुण है; इन पूर्वोक्त पांचों द्रव्योंका नाम अजीव है. २.

तथा पुण्य जो है, सो शुभ कर्मोंके पुद्गल रूप है, जिनके संबंधसें जीव सांसारिक सुख भोगता है. ३. इससें जो विपरीत है सो पाप है, ४. मिथ्यात्व (१) अविरति (२) प्रमाद (३) कषाय (४) और योग (५) यह पांच बंधके हेतु है; इस वास्ते इनकों आस्रव कहते हैं, ५. आस्रवका निरोध जो है सो संवर है, अर्थात् सम्यग्‌दर्शन, विरति, अप्रमाद, अकषाय, और योगनिरोध, यह संवर है. ६. कर्मका और जीवका क्षीरनीरकी तरें परस्पर मिलना तिसका नाम बंध है. ७. बंधे हूए कर्मोंका जो क्षरणा है सो निर्ज्जरा है. ८. और देहादिकका जो जीवसें अत्यंत वियोग होना और जीवका स्वस्वरूपमें अवस्थान करना तिसका नाम मोक्ष है. ९. *

इन पूर्वोक्त नवही तत्त्वोंका स्याद्वाद शैलीसें शुद्ध श्रद्धान करना तिसका नाम सम्यग्‌दर्शन है; और इनका स्वरूप पूर्वोक्त रीतिसें जानना तिसका नाम सम्यग्‌ज्ञान है; और सत्तरें भेदें संयमका पालना तिसका नाम सम्यक्‌चारित्र है; इन तीनोंका एकत्र समावेश होना तिसका नाम मोक्षमार्ग है; जड, और चैतन्यका जो प्रवाहसें मिलाप है, सो संसार है; यह संसार प्रवाहसें अनादि अनंत है, और पर्यायोंकी अपेक्षा क्षण विनश्वर है. इत्यादि वस्तुका जैसा स्वरूप था, तैसाही, हे जिनाधीश ! तैंने कथन करा है, ऐसे कथन करनेसें तैंने कोई नवीन कुशलता—चातुर्यता नही प्राप्त करी है, क्योंकि, जेसें अतीतकालमें अनंत सर्वज्ञोंने वस्तुका स्वरूप यथार्थ कथन करा है, तैसाही तुमने कथन करा है, इस वास्ते, (तुरंगशृंगाण्युपपादयद्भ्यः) घोडेके शृंग उत्पन्न करनेवाले (परेभ्यःनवपंडितेभ्यः) पर नवीन पंडितोंकेतांइ (नमः) हमारा नमस्कार होवे, अर्थात् जिनोंने तुरंगशृंग समान असत् पदार्थ कथन करके

* जीवाजीवादि नव पदार्थोका स्वरूप जैनतत्त्वादर्श ग्रंथमें विस्तारसे लिखा है, इस वास्ते यहां नही लिखा है.

करना व्यर्थ सिद्ध होवेगा; इस वास्ते ईश्वरकी यही दयालुता है, जो भव्य जनोंकों उपदेश द्वारा मोक्षमार्ग प्राप्त करना सो, तो आप निरंतर जगत्में करही रहे हैं, ऐसे आप परम कृपालुकों छोडके (अन्यैः) अन्य परवादीयोंनें (त्वदन्यः) तुमारेसें अन्यकों (शरणं) शरणभूत (किम्) किसवास्ते (आश्रितः) आश्रित किया है—माना है ? कैसा है वो अन्य? (स्वमांसदानेन वृथा कृपालुः)अपना मांस देने करके जो वृथा कृपालु है; आत्माका घात, और परकों अपना मांस देके तृप्त करना, यह वृथाही कृपालुका लक्षण है, क्योंकि, ऐसी कृपालुतासें परजीवका कल्याण नही होता है, असद्धर्मोपदेशरूप होनेसें. बुद्धका यह कहना है कि, मेरे सन्मुख कोइ व्याघ्र सिंहादिक भूखसें मरता होवे तो, मैं अपना मांस देके तिसकी क्षुधा निवारण करुं, मैं ऐसा दयालु हूं. और क्षेमेंद्रकविविरचित बोधि सत्व-अवदान कल्पलतामें बोधि सत्वने पूर्व जन्मांतरमें अपना शरीर सिंहको भक्षण करवाया था ऐसा कथन है, इस वास्ते बुद्ध अपने आपकों स्वमांसके देनेसें कृपालु मानता था, परंतु यह कृपालुता व्यर्थ है. ॥ ६ ॥

अथाग्रे आचार्य असत्यपक्षपातीयोंका स्वरूप कहते हैं.

स्वयं कुमार्गं लपतां नु नाम प्रलम्भमन्यानपि लम्भयन्ति ॥
सुमार्गगं तद्विदमादिशन्तमसूयान्धा अवमन्वते च ॥ ७ ॥

व्याख्या-(असूययांधाः) ईर्षा करको जे पुरुष अंधे है वे (स्वयं) आपतो (कुमार्गं) कुमार्गकों (लपतां) कथन करो ! प्रबल मिथ्यात्व मोहके उदय होनेसें जैसें मद्यप पुरुष मदके नशेमें, जो चाहो सो असमंजस वचन बोलो तैसेंही मिथ्यात्वरूप धतूरेके नशेसें ईर्षांध पुरुष कुमार्ग, अर्थात् अश्वमेध, गोमेध, नरमेध, अजामेध, अंत्येष्टि, अनुस्तरणि, मधुपर्क, मांस आदिसें श्राद्ध करना, ब्राह्मणोंके वास्ते शिकार मारके लाना, परमेश्वरकों जीव वध करके बलिका देना, मोक्ष प्राप्तकों फेर जगत्में जन्म लेना, तीर्थोंमें स्नान करनेसें सर्व पापोंसें छूटना, काशीमें मरणेसें मोक्षका मानना, अरूपी, अशरीरी, सर्वव्यापक, मुखादि अवयव रहित, ऐसें परमेश्वरकों वेदादि शास्त्रोंका उपदेष्टा मानना, अग्निमें

मानते हैं; कितनेक विज्ञान क्षणोंके संतानके नाशकोही निर्वाण मानते हैं; कितनेक शून्यवादी सर्व शून्यही सिद्ध करते हैं, इत्यादि सर्व कथन तुरंगशृंग उपपादनवत् है.

इन पूर्वोक्त, सर्वदादियोंका कथन जिस रीतिसें तुरंगशृंग उपपादनवत् असत् है, सो कथन अन्य योग्य व्यवच्छेदक द्वात्रिंशिकावृत्ति, (स्याद्वाद मंजरी,) षट्दर्शनसमुच्चय बृहद्वृत्ति, प्रमाणनयतत्त्वालोकालंकार सूत्रकी लघु वृत्ति (रत्नाकरावतारिका,) बृहद्वृत्ति (स्याद्वाद रत्नाकर,) धर्म संग्रहणी, अनेकांत जयपताका, शब्दांभोनिधि, गंधहस्तिमहाभाष्य, (विशेषावश्यक,) वादमहार्णव, (सम्मतितर्क,) इत्यादि शास्त्रोंसें जानना.

इन पूर्वोक्त वादियोंने असत् वस्तुकों सत् करके कथन करनेमें जैसी कुशलता प्राप्त करी है, तैसी, हे जिनाधीश! तैंने नही पाई है इस वास्ते, तिन परपंडितोंकेतांइ हमारा नमस्कार होवे. इहां जो नमस्कार करा है, सो उपहास्य गर्भित है, नतु तत्वसें ॥ ५ ॥

अथ स्तुतिकार भगवंतमें व्यर्थ दयालुपणेका व्यवच्छेद करते हैं.

जगत्यनुध्यानबलेन शश्वत् कृतार्थयत्सु प्रसभं भवत्सु ॥
किमाश्रितोन्यैः शरणं त्वदन्यः स्वमांसदानेन वृथा कृपालुः॥६॥

व्याख्या—हे भगवंतः! (जगति) जगत्में (शश्वत्) निरंतर (प्रसभं) यथास्यात् तैसें हठसें (भवत्सु) तुमारेकों (कृतार्थयत्सु) जगत्वासी जीवांकों कृतार्थ करते हूआं, किस करके (अनुध्यान बलेन) अनुध्यान शब्द अनुग्रहका वाचक है, अनुग्रहके बल करके, अथात् सद्धर्मदेशनाके बल करके भव्य जीवोंके तारने वास्ते निरंतर जगत्में प्रसभसें—हठसें देशनाके बलसें जनोंकों कृतार्थ करते हूए, क्यौंकि परोपकार निरपेक्ष अर्थात् बदलेके उपकारकी अपेक्षा रहित जो अनुग्रहके बलसें भव्य जनोंकों मोक्षमार्गमें प्रवर्त्त करना है, इसके उपरांत अन्य कोइभी ईश्वरकी दयालुता नही है, जे कर विनाही उपदेशके दयालु ईश्वर तारने समर्थ है, तो फेर द्वादशांग, चार वेद, स्मृति, पुराण, वैबल, कुरानादि पुस्तकों द्वारा उपदेश प्रगट

व्याख्या—हे जिनेंद्र! (परशासनेभ्यः) पर शासनोंसें, कैसें पर शासनोंसें? (प्रादेशिकेभ्यः) प्रमाणका एक अंश माननेसें जे मत उत्पन्न हूए है, अर्थात् एक नयको मानके जे परमत वादीयोंने उत्पन्न करे हैं, तिनका नाम प्रादेशिक मत है. आत्मा एकांत नित्यही है, वा क्षणनश्वरही है, वस्तु सामान्य रूपही है, वा विशेष रूपही है वा सामान्य विशेष स्वतंत्रही पृथक् २ है, कार्य सत्ही उत्पन्न होता है, वा असत्ही उत्पन्न होता है, गुण गुणीका एकांत भेदही है, वा एकांत अभेदही है, एकही ब्रह्म है, इत्यादि प्रादेशिक परमतोंसें (यत्) जो (तव शासनस्य) तेरे शासनका (पराजय) पराजय है, सो, ऐसा है, जैसा (खद्योतपोतद्युतिडम्बरेभ्यः) खद्योतके बच्चेकी पांखोंके प्रकाश रूप अडंबरसें (हरि मंडलस्य) सूर्यके मंडलकी (इयं) येह (विडम्बना) विटंबना अर्थात् पराभव करना है, भावार्थ यह है कि, क्या खद्योतका बच्चा अपनी पांखोंके प्रकाशसें सूर्यके प्रकाशकों पराभव कर सक्ता है? कदापि नही कर सक्ता है. तैसेंही, हे जिनेंद्र ! एक नया भास मतके माननेवाले वादी, खद्योत पोतवत् तेरे अनंत नयात्मक स्याद्वाद मतरूप सूर्यमंडलका पराभव कदापि नही कर सक्ते हैं ॥ ८ ॥

भगवंतका शासन सर्व प्रमाणोंसें सिद्ध है. अथ, जो ऐसे शासनमें संशय करता है, क्या जाने यह भगवंत अर्हन्का शासन सत्य है, वा नही? अथवा, जो भगवंतके शासनमें विवाद करता है कि, यह शासन सत्य नही है, ऐसे पुरुषकों स्तुतिकार उपदेश करते हैं.

शरण्यपुण्ये तव शासनेऽपि संदेग्धि यो विप्रतिपद्यते वा ॥
स्वादौ सतथ्ये स्वहिते च पथ्ये संदेग्धि वा विप्रति पद्यते वा॥९॥

व्याख्या—हे जिनेंद्र ! (शरण्यपुण्ये) शरणागतकों जो त्राण करणे योग्य होवे तिसकों शरण्य कहते हैं तथा पुण्य पवित्र ऐसे (तव) तेरे (शासनेपि) शासनके हूएभी (यो) जो पुरुष तेरे शासनमें (संदेग्धि) संदेह करता है (वा) अथवा (विप्रतिपद्यते) विवाद करता हैं, सो पुरुष (स्वादौअत्यंत) स्वादवाले (तथ्ये) सच्चे

घृतादि द्रव्योंके हवन करनेसें पवन सुधरता है, तिससें मेघ शुद्ध वर्षता है, तिससें मनुष्य निरोग्य रहते हैं, यह अग्निके हवन करनेसें महान् उपकार है ऐसा मानना, वेदोंमें ईश्वरने मांस खानेकी आज्ञा दीनी है, वेदमंत्र पवित्रित मांस खानेमें दूषण नही, निरंतर मांससें हवन करना, केवल क्रियासेंही मोक्ष मानना, केवल ज्ञानसेंही मोक्ष मानना, रागी, द्वेषी, अज्ञानी, कामीकों परमेश्वर कथन करना, सारंभी, सपरिग्रहीकों साधु मानना, पशुयोंकों मारना चाहिये, नही तो येह बहुत हो गए तो, मनुष्योंकी हानि करेंगे, स्त्रीकों इग्यारह खसम करने, ऐसे नियोगकी ईश्वरकी आज्ञा है, इत्यादि कुमार्गका उपदेश करो! कर्मके उदयकों अनिवार्य होनेसें (नु) अव्यय है, खेदार्थमें तिससें बडा खेद है (नाम) कोमलामंत्रणमें है वा प्रसिद्धार्थमें है तब तो ऐसा अर्थ हुवा कि, बडाही खेद है कि ऐसे असूया करके अंध पुरुष (अन्यानपि) अन्य जगत्‌वासी मनुष्योंकोंभी (प्रलम्भं) कुमार्गके लाभ–प्राप्तिकों (लम्भयन्ति) प्राप्ति कराते हैं, अर्थात् आप तो कुमार्गकी देशना करनेसें नाशकों प्राप्त हुए हैं, परं अन्य जनोंकाभी कुमार्गमें प्रवर्त्तके नाश करते हैं. इतना करकेभी संतोषित नही होते हैं, बलकि वे, असूया इर्षा करके अंधे (सुमार्गगं) सुमार्ग गत पुरुषकों, (तद्विदं) सुमार्गके जानकारकों और (आदिशन्तं) सुमार्गके उपदेशककों (अवमन्वते) अपमान करते हैं. जैसें यह ईश्वरकों जगत्कर्त्ता नही मानते हैं, वेदोंके निंदक हैं, वेद बाह्य है, नास्तिक हैं, जगत्‌कों प्रवाहसें अनादि मानते हैं, कर्मका फलप्रदाता निमित्तकों मानते हैं, परंतु ईश्वरको फलप्रदाता नही मानते हैं, आत्माकों देहमात्र व्यापक मानते हैं, षट्कायको जीव मानते हैं, इत्यादि अनेक तरेसें अपना मत चलाते हैं; इस वास्ते अहो लोको! इनके मतका श्रवण करना तथा इनका संसर्ग करना, अछा नही है, इत्यादि अनेक वचन बोलके पूर्वोक्त तीनोंका अपमान करते हैं. ॥ ७ ॥

अथाग्रे भगवत्‌के शासनका महत्त्व कथन करते हैं.

प्रादेशिकेभ्यः परशासनेभ्यः पराजयो यत्तव शासनस्य
खद्योतपोतद्युतिडम्बरेभ्यो विडम्बनेयं हरिमण्डलस्य ॥ ८ ॥

को अरिहंतका उपदेश कौन प्राप्त करता ? और साधु न होते तो जगत्-वासीयांको मोक्षमार्ग पालन करके कौन दिखाता ? और मोक्षमार्गमें प्रवर्त्त हुए भव्य जनोंकों साहाय्य कौन करता ? इस वास्ते साधु शरणभूत है. । ३ ।

चौथा शरण केवल ज्ञानीका कथन करा हुआ धर्म है; क्योंकि विना धर्मके पूर्वोक्त वस्तुयोंका अस्मदादिकांकों कौन बोध करता ? इस वास्ते सर्व शरणभूतोंसें अधिक शरण्यभूत, हे भगवन् ! तेरा शासन है । ४ ।

तथा हे जिनेंद्र ! तेरा शासन पुण्य पवित्र है, सर्व दूषणोंसें मुक्त होनेसें, प्रमाण युक्ति शास्त्रसें, अविरोधि वचन होनेसें, तथा दृष्टसेंभी अविरोधि होनेसें, ऐसे शरण्य और पवित्र तेरे शासनके हुएभी, जो कोइ इसमें संशय करता है, वा विवाद करता है, सो पुरुष, अत्यंत स्वादु, तथ्य, स्वहितकारि, पथ्य भोजनमें संशय करनेवाला है, अर्थात् वो अत्यंतही मूर्ख है, जो ऐसी वस्तुमें संशय वा विवाद करता है ॥ ९ ॥

अथ स्तुतिकार अन्य आगमोंके अप्रमाण होनेमें हेतु कहते हैं.

हिंसाद्यसत्कर्मपथोपदेशादसर्वविन्मूलतया प्रवृत्तेः
नृशंसदुर्बुद्धिपरिग्रहाच्च ब्रूमस्त्वदन्यागममप्रमाणम् ॥ १० ॥

व्याख्या–हे जिनेंद्र ! (त्वदन्यागमम्) तेरे कथन करे हुए आगमोंसें अन्य आगम (अप्रमाणम्) प्रमाण नही, अर्थात् सत्पुरुषांकों मान्य नही है, ऐसें (ब्रूमः) हम कहते हैं. अन्य आगमोंकों प्रमाणता किस हेतुसें नही है ? सोइ दिखाते हैं (हिंसाद्यसत्कर्मपथोपदेशात्) वे, अन्य वेदादि आगम, हिंसादि असत् कर्मोंके पथके उपदेशक होनेसें, और (असर्वविन्मूलतयाप्रवृत्तेः) असर्ववित्, असर्वज्ञोंके मूलसें प्रवृत्त होनेसें, अर्थात् असर्वज्ञोंके कथन करे हुए होनेसें, और (नृशंसदुर्बुद्धिपरिग्रहात्) निर्दय, उपलक्षणसें मृषा, चोरी, स्त्री, परिग्रहके धारनेवाले दुर्बुद्धि, अर्थात् कदाग्रही असत्पक्षपातीयोंके ग्रहण करे हुए होनेसें; भावार्थ ऐसा है कि, जे आगम, निर्दयी, मृषावादी, अदत्तग्राही स्त्रीके भोगी और परिग्रहके लोभीयोंने ग्रहण करे हैं, अर्थात् वे जिन आगमोंकों जगत्में प्रवर्त्तावने

(स्वहिते) स्वहितकारी (च) और (पथ्ये) निरोग्यतामें साहायक ऐसे सुंदर भोजनमें (संदेग्धि) संशय करता है, क्या जाने यह भोजन, स्वादु, तथ्य, स्वहितकारि, पथ्य है, वा नही ? (वा) अथवा (विप्रतिपद्यते) विवाद करता है, यह भोजन, स्वादु, तथ्य, स्वहितकारि, पथ्य, नही है, यह तिसकी प्रगट अज्ञानता है. अंतिमका वा, पाद पूरणार्थ है. काव्यका भावार्थ यह है कि, हे जिनेंद्र! शरणागतकों त्राण करणेवाला तेरा शासन शरण्य रूप है " चत्तारि सरणमिति वचनात् "—चारही वस्तुयें जगत्में शरण्य है. अरिहंत, १, सिद्ध, २, साधु, ३, और केवलज्ञानीका कथन करा हूआ धर्म, ४. तिनमें अरिहंत उसकों कहते हैं, जिनोने ज्ञानावरण, १, दर्शनावरण, २, मोहनीय, ३, और अंतराय, ४, इन चारों कर्मकी ४७ उत्तर प्रकृतियां क्षय करी है, और अष्टादश दूषणोंसें रहित हूए है, केवल ज्ञान और केवल दर्शन करके संयुक्त है, चौत्रीस अतिशय और पैंत्रीस वचन अतिशय करके सहित है, जीवन मोक्षरूप है, महामाहन, १, महागोप, २ , महानिर्यामक, ३, महासार्थवाह, ४, येह चारों जिनकों उपमा है, परोपकार निरपेक्ष अनुग्रहके वास्ते जिनोंका भव्य जनोंकेतांइ उपदेश है, अरिहंतके विना अन्य कोइ यथार्थ उपदेष्टा शरणभूत नही है; क्योंकि, इनोंनेही आदिमें जगत्वासीयोंको उपदेशद्वारा मोक्षमार्ग प्राप्त करा है. । १ ।

दूसरा शरण सिद्धोंका है, जे अष्ट कर्मकी उपाधिसें रहित है, सदा आनंद और ज्ञान स्वरूप है, स्वस्वरूपमें जिनोंका अवस्थान है, अमर, अचर अजर, अमल, अज, अविनाशी, सिद्ध, बुद्ध, मुक्त, सदाशिव, पारंगत, परमेश्वर, परमब्रह्म, परमात्मा, इत्यादि अनंत तिनके विशेषण है, ऐसे सिद्ध परमात्मा शरणभूत है; जे कर एसे सिद्ध न होवे तव तो अरिहंतके कथन, करे मार्गकों भव्य जन काहेकों अंगीकार करे? और सिद्धांके विना आत्माका शुद्ध स्वरूप केसें जाना जावे? इस वास्ते सिद्ध आत्मस्वरूपके अविप्रणासके हेतु है, इस वास्ते शरणरूप है. । २ ।

तीसरा शरण साधुओंका है. साधु कहनेसें आचार्य उपाध्याय और साधु, इन तीनोंका ग्रहण है. जे कर आचार्य उपाध्याय न होते तो, अस्मदादिकों-

अपाकरण-तिरस्कार-खंडन करेंगे अपितु किसी प्रकारसेंभी खंडन नहीं कर सकेंगे. ॥ १२ ॥

अत्र कोइ प्रश्न करे कि, यदि अर्हन् भगवन् श्री वर्द्धमानका, कोइभी परवादी जिसका किसी प्रकारसेंभी खंडन नही कर सक्के हैं ऐसा सत्योपदेश है, तो फेर अन्य मतावलंबी तिसकी उपेक्षा क्यौं करते हैं? इसका उत्तर स्तुतिकार श्रीमद्धेमचंद्राचार्य देते हैं.

तद्दुःखमाकालखलायितं वा पचेलिमं कर्मभवानुकूलम् ॥
उपेक्षते यत्तव शासनार्थमयं जनो विप्रतिपद्यते वा ॥ १३ ॥

व्याख्या—हे जिनेंद्र! (यत्) जो (अयं जनः) यह प्रत्यक्ष जन (तव) तेरे (शासनार्थ) शासनार्थकी (उपेक्षते) उपेक्षा करता है, (वा) अथवा (विप्रतिपद्यते) तेरे शासनार्थके साथ शत्रुपणा करता है (तत्) सो, तिस प्राणिका (दुःखमाकालखलायितं) पंचम दुःखम कालका खलायितपणा है,—दुःखम कालही तिस जीवके साथ खलकी तरें आचरण करता है, जो सत्य जिनेंद्रके कथन करे मार्गकी प्राप्ति नही होने देता है, (वा) अथवा, (भवानुकूलम्) तिस जीवके भवानुकूल संसारमें भ्रमण करवाने योग्य (कर्म) अशुभ कर्म मिथ्यात्व मोहनीयादि (पचेलिमं) पक्के हुए, अर्थात् अपना फल देनेके वास्ते उदयावलिमें आये हुए है, तिनके उदयसें जिनेंद्रके कथन करे हुए मार्गको अंगीकार नही कर सक्ता है, जैसें, ऊंट द्राक्षावेलडीके खानेकी इच्छा नही करता है, तैसेंही दुःखम काल खलायितपणेसें और पचेलिम कर्मके उदयसें, यह जन, हे जिनेंद्र! तेरे मार्गकी उपेक्षा करता है, अर्थात् कल्याणकारी जानके अंगीकार नही करता है; अथवा तेरे शासनके साथ शत्रुपणा करता है॥१३॥

कोई कहेकि, तप करना, और योगाभ्यासादि सत्कर्म करने, तिनके प्रभावसेंही मोक्षकी प्राप्ति हो जावेगी, तो फेर जिनेंद्रके कथन करे मार्गके अंगीकार करनेकी क्या आवश्यकता है? तिसका उत्तर, स्तुतिकार देते हैं.

परः सहस्राः शरदस्तपांसि युगांतरं योगमुपासतां वा ॥
तथापि ते मार्गमनापतन्तो न मोक्ष्यमाणा अपि यान्ति मोक्षम् १४

वाले हैं, और जे आगम हिंसादि, आदि शब्दसें मृषा, अदत्तादान, मैथुनादि पाप कर्म करनेके उपदेशक हैं, वे आगम प्रमाण नही है. ॥ १० ॥ अथ भगवंतप्रणीत आगमके प्रमाण होनेमें हेतु कहते हैं.

हितोपदेशात्सकलज्ञक्लृप्तेर्मुमुक्षुसत्साधुपरिग्रहाच्च ॥
पूर्वापरार्थेप्यविरोधसिद्धेस्त्वदागमा एव सतां प्रमाणम् ॥११॥

व्याख्या—हे भगवन् जिनेंद्र! (त्वदागमाएव) तेरे कथन करे हुए द्वादशांगरूप आगमही (सतां) सत्पुरुषांकों (प्रमाणम्) प्रमाण है, किस हेतुसें (हितोपदेशात्) एकांत हितकारी उपदेशके होनेसें और (सकलज्ञक्लृप्तेः) सर्वज्ञके कथन करे रचे हुए होनेसें, (च) और (मुमुक्षुसत्साधुपरिग्रहात्) मोक्षकी इच्छावाले सत्साधुयोंके ग्रहण करनेसें, अर्थात् आचार्य उपाध्याय साधु जिनके प्रवर्त्तक होनेसें, (अपि) तथा (पूर्वापरार्थे) पूर्वापर कथन करे अर्थोंमें (अविरोधसिद्धेः) अविरोधकी सिद्धिसें. ॥११॥ अथ भगवत्के सत्योपदेशकों परवादी किसी प्रकारसेंभी निराकरण नही कर सक्ते हैं यह कथन करते हैं.

क्षिप्येत वान्यैः सदृशी क्रियेत वा तवाङ्घ्रिपीठे लुठनं सुरेशितुः ॥
इदं यथावस्थितवस्तुदेशनं परैः कथंकारमपाकरिष्यते ॥ १२ ॥

व्याख्या—हे जिनेंद्र! (तव) तेरे (अङ्घ्रिपीठे) चरण कमलोंमें, जो (सुरेशितुः) इंद्रका (लुठनं) लुठना-लोटना था, चरणमें चौसठ इंद्रादि देवते सेवा करते थे, इत्यादि जो तेरे आगममें कथन है, तिसकों (अन्यैः) परवादीबौद्धादि, (क्षिप्येत) क्षेपन करें—खंडन करें; यथा जिनेंद्रके चरण कमलोंमें इंद्रादि देवते सेवा करते थे, यह कथन सत्य नही है, जिनेंद्र और इंद्रादि देवतायोंके परोक्ष होनेसें (वा) अथवा (सदृशी क्रियेत) सदृश करें, जैसें श्री वर्द्धमान जिनके चरणोंमें इंद्रादि लोटते थे—चरण कमलकी सेवा करते थे, ऐसेही श्री बुद्ध भगवान् शाक्यसिंह गौतमकेभी चरणोंमें इंद्रादि सेवा करते थे, ऐसें कहें; परंतु (इदं) यह जो (यथावस्थितवस्तुदेशनं) यथार्थ वस्तुके स्वरूपका कथन तेरे शासनमें है, तिसकों (परैः) परवादी (कथंकारम्) किस प्रकार करके (अपाकरिष्यते)

भरूप-विप्रतारणरूप उपदेश रचे गए हैं, वे उपदेश, तेरे परमाप्तके रचे पथोपदेशमें कोप वा आक्रोश, वा तिनके खंडनमें उत्साह, वा वेग, जलदी नही कर सक्के हैं, असमर्थ होनेसें. ॥ १९ ॥

अथ स्तुतिकार परवादियोंके मतमें जे उपद्रव हुए हैं, वे उपद्रव भगवानूके शासनमें नही हुए हैं, ऐसा स्वरूप दिखाते हैं.

यदार्जवादुक्तमयुक्तमन्यैस्तदन्यथाकारमकारि शिष्यैः ॥
न विप्लवोयं तव शासनेभूदहो अधृष्या तव शासनश्रीः॥ १६॥

व्याख्या-(अन्यैः) परमतके आदि पुरुषोंने (आर्जवात्) आर्जवसें अर्थात् भोले भाले सादे अपने मनमाने विचारसें (यत्) जो कुछ वेदादि शास्त्रोंमें (अयुक्तम्) अयोग्य (उक्तम्) कथन करा है (तत्) सोही कथन (शिष्यैः) तिनके शिष्योंने (अन्यथाकारम्)अन्यरूपही (अकारि) कर दीया है; क्यौंकि, प्रथम जे वेद थे वे अनीश्वरवादी मीमांसकोंके मतानुयायी थे, और कर्मकांड यजनयाजनादि और अनेक देवतायोंकी उपासना करके स्वर्गप्राप्ति मानते थे, और काम्य कर्मोंके वास्ते अनेक तरेंके यज्ञादि करते थे, मोक्ष होना नही मानते थे, सर्वज्ञकोंभी नही मानते थे, वेदोंकों अपौरुषेय किसीके रचे हुए नही हैं, किंतु अनादि हैं, ऐसें मानते थे; तिस अपने मतकी पुष्टि वास्ते पूर्वमीमांसा नामक ऐसें जैमनि मुनिने रचे है, ऐसा इस मतका स्वरूप था. प्रथम तो वेदोंमेंही गडबड कर दीनी, कितनेही प्राचीन मंत्र बीचसें निकाल दिये, ऋग्वेदमें पुरुषसूक्त, और जे जे ईश्वर विषयक ऋचा हैं, वे प्रक्षेप कर दीनी है; और यजुर्वेदादिकोंमें 'सहस्त्रशीर्षः सहस्त्रपात्' तथा 'हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे' इत्यादि तथा 'इशावास्य' इत्यादि; तथा चारवेद ईश्वरसें उत्पन्न हुए हैं, तथा चार वेद हिरण्यगर्भके उत्स्वास रूप है इत्यादि श्रुतियां ईश्वर विषयक वेदोंमें प्रक्षेप करके वेदोंकों ईश्वरके रचे हुए सिद्ध करे; पीछे तिन वेदोंके मूल पाठमें भेदवालीयां हजारां शाखा और शाखाके सूत्र रचे गए, तदनंतर यास्काचार्यादिकोंनें निघंटु निरुक्तादि रचके वेदोंके

व्याख्या—हे भगवन्! (परः) पर अन्य मतावलंबी (सहस्राः) हजारों (शरदः) वर्षोंतांई (तपांसि) विविध प्रकारके तप करो, (वा) अथवा (युगांतरं) अर्थात् बहुत युगांतांई (योगं) योगाभ्यासकों (उपासतां) सेवो-करो, (तथापि) तोभी वे (ते) तेरे (मार्गम्) मार्गकों (अनापतंतः) न प्राप्त होते हुए, अर्थात् तेरे मार्गके अंगीकार करे विना, (मोक्ष्यमाणाअपि) चाहो वे अपने आपकों मोक्ष होना मानभी रहे हैं, तोभी, (मोक्षम्) मोक्षकों (न) नही (यांति) प्राप्त होते हैं, क्यौंकि, सम्यग् दर्शन ज्ञान चारित्रके अभावसें किसीकोंभी मोक्ष नहीं है, और सम्यग् दर्शन ज्ञान चारित्रकी प्राप्ति, तेरे मार्ग विना कदापि नही होवे है ॥ १४ ॥

अथाग्रे स्तुतिकार, परवादीयोंके उपदेश भगवत्के मार्गकों किंचिन्मात्रभी कोप वा आक्रोश नही कर सक्ते हैं, सो दिखाते हैं.

अनाप्तजाड्यादिविनिर्मितित्वसंभावनासंभविविप्रलम्भाः ॥
परोपदेशाः परमाप्तक्लृप्तपथोपदेशे किमु संरभन्ते ॥ १५ ॥

व्याख्या—हे जिनेंद्र! (परोपदेशाः) जे परमतवादीयोंके उपदेश हैं, वे उपदेश (परमाप्तक्लृप्तपथोपदेशे) तेरे परमाप्तके रचे कथन करे उपदेशमें (किमु) क्या, किंचिन्मात्रभी (संरभन्ते) करते हैं? अर्थात् कोप वा आक्रोश करते हैं? किंचिन्मात्रभी नही क्या? खद्योत प्रकाश करते हुए सूर्य मंडलकों कोप वा आक्रोश कर सक्ता है? कदापि नही. ऐसें तेरे शासनकोंभी परोपदेश संरंभ नही कर सक्ते हैं, क्यौंकि, परवादीयोंके मतमें जो सूक्ति संपत् है, सो तेरेही पूर्व रूपी ये समुद्रके बिंदु गए हुए हैं, तिनके विना जो परवादीयोंने स्वकपोलकल्पनासें मिथ्या जाल खडा करा है, सो सर्व युक्ति प्रमाणसें बाधित है, इस हेतुसें परवादीयोंके उपदेश तेरे मार्गमें कुछभी कोप वा आक्रोश नही कर सक्ते हैं. कैसें हैं वे परवादीयोंके उपदेश? (अनाप्तजाड्यादिविनिर्मितित्वसंभावनासंभविविप्रलंभाः) अनाप्तोंकी बुद्धिकी जो जाड्यतादि, तिससें निर्मितित्व संभावना, अर्थात् अनाप्तोंकी मंदबुद्धिकी संभावना करके विप्रलंभरूप वे उपदेश रचे गए हैं; भावार्थ यह है कि, अनाप्तोंकी मंदबुद्धिकी संभावनासें जे विप्रलं-

है, इससें प्रगट मांस खानेका उपदेश करते हैं, और राजपुताना योधपुरके महाराजा सर प्रतापसिंहजीनें एक नवीन पुस्तक बनवा कर, तिसमें अथर्ववेदके मंत्र लिखके, तिनके ऊपर एक पंडितने नवीन भाष्य रचा है, तिसमें बहुत प्रकारसें मांसका खाना ईश्वरकी आज्ञासें सिद्ध करा है. तथा इस विषयक मनुस्मृति और दयानंदस्वामी आदिका भी प्रमाण लिखा है. अब यह दोनों दल परस्पर विवाद कर रहे हैं.

और गौतमने सिर्फ वेद और वेदांतके खंडनवास्ते ही न्यायसूत्र रचे हैं, वेद और वेदांतसें विपर्ययही प्रक्रिया रची है, कणादने षट् पदार्थ ही रचे हैं इत्यादि अनेक विप्लव अन्य मतके शास्त्रोंमें तिनके शिष्योंने करे हैं अर्थात् पूर्वजोंने जो कुछ कथन करा था, सो, तिनके शिष्यप्रशिष्यादिकोंने अन्यथा आकारवाला कर दिया है!!! हे जिनेंद्र! (तव) तेरे (शासने) शासनमें (अयं) यह पूर्वोक्त (विप्लवः) विप्लव (न) नहीं (अभूत्) हुआ है अर्थात् शिष्य प्रशिष्योंका करा ऐसा विप्लव तेरे कथनमें नही हुआ हैं. क्योंकि, सात निह्नव, और अष्टमबोटिक महा निह्नव, इनोंनें किंचिन्मात्र विप्लव करना चाहा था, तोभी, तिनका करा किंचिद् विप्लव न हुआ, शासनसें बाह्य तिनकों श्री संघने तत्काल कर दीए, इसवास्ते तेरे शासनमें पूर्वोक्त विप्लव नही हुआ है. इसवास्ते (अहो) बडाही आश्चर्य है कि, (तव) तेरे (शासनश्रीः) शासनकी लक्ष्मी (अधृष्या) अधृष्य है, अर्थात् कोईभी तिसकी धर्षणा नही कर सक्ता है ॥ १६ ॥

अथ परवादीयोंने जे जे अपने अपने मतके अधिष्ठाता स्वामीभूत देवते कथन करे हैं, तिनमें जे जे अघटित परस्पर विरुद्ध बातें हैं, वे, स्तुतिकार दिखाते हैं.

देहाद्ययोगेन सदा शिवत्वं शरीरयोगादुपदेशकर्म ॥
परस्परस्पर्धि कथं घटेत परोपक्लृप्तेष्वधिदैवतेषु ॥ १७ ॥

व्याख्या-(देहाद्ययोगेन) देहादिके अयोगसें, अर्थात् देह, आदि शब्दसें राग, द्वेष, मोहादि सर्व कर्म जन्य उपाधिके अभावसें (सदा) नि-

शब्दोंके अर्थोंमें गडवड करदीनी, 'यथा आग्निमीळे (ले)' इत्यादिमें, 'अग्निर्वै विष्णुः' इत्यादि.

और कुमारिल मीमांसाके वार्त्तिककारनेभी, प्राचीन अर्थोंमें बहुत गडवड करी है; तथा वेद रचनाके पहिलें निरीश्वरी सांख्य मत था; पीछे नवीन सांख्य मतवाले उत्पन्न हुए, तिनोंने सेश्वर सांख्यमत प्रगट करा; पीछे सांख्य मतके अनुसार ऋषियोंने वेदांत अद्वैत ब्रह्मके स्वरूपके प्रतिपादक पुस्तक रचे, तिनोंका नाम उपनिषद् रक्खा; प्रकृतिकी जगे मायाकी कल्पना करी, और तीन गुणादि २४ चौवीस तत्वोंके नाम वेही रक्खे, परंतु तिनकों माया करके कल्पित ठहराए; और प्रमाण भट्ट मतानुसारि मानलीए. और उपनिषद् नामक ग्रंथ तो इतने रच लिए कि, जिसने अपना नवीन मत चलाया, तिसकी सिद्धिके वास्ते नवीन उपनिषद् रचके प्रसिद्ध करी; जैसे रामतापनी, गोपालतापनी, हनुमतोपनिषद्, अल्लोपनिषद्, इत्यादि पीछे तिनके भाष्यादि रचे गए.

शंकर स्वामीने दश उपनिषदों ऊपर, गीता ऊपर, और विष्णुसहस्र नामादि ऊपर, भाष्य रचे; तिनोंने प्राचीन अर्थोंकों व्यवच्छेद करके नवीनही तरेंके अर्थ रचे; तिस भाष्यके ऊपर टीकाकारोंने शंकरकी भूलें सुधारनेकों टीका रची. पुराण, और स्मृतिनामक कितनेही पुस्तकोंमें प्राचीन पाठ निकाल कर नवीन पाठ प्रक्षेप करे, और कितनेही नवीन रचे; सांप्रति शंकर स्वामीके मतानुयायीयोंमें वेदांत मतके माननेमें सैंकडो भेद हो रहे हैं, तथा व्याससूत्रोंपरि शंकरस्वामिने शारीरक भाष्य रचा है, और अन्योंने अन्य तरेंके भाष्यार्थ रचे हैं, सायणाचार्यने चारों वेदोंउपर नवीन भाष्य रचके मन माने अर्थ उलट पुलट विपर्यय करके लिखे हैं, परंतु प्राचीन भाष्यानुसार नही. और दयानंद सरस्वतीजीने तो, ऋग्वेद और यजुर्वेद के दो भाष्य ऐसे विपरीत स्वकपोलकल्पित रचे हैं कि, मृषावादकों बहुतही पुष्ट करा है, सो वांचके पंडित जन बहुतही उपहास्य करते हैं. संप्रति दयानंद स्वामीके चलाये आर्य समाज पंथके दो दल हो रहे हैं, तिनमेंसे एक दलवाले तो मांस खानेका निषेधही करते हैं, और दूसरे दलवाले कहते हैं कि, वेदमें मांस खानेकी आज्ञा

उत्तरपक्षः–तब तो ईश्वर, सर्व, अनादि, मुक्त, सदा शिवरूप न रहा, परं, देश मात्र मुक्त, और देशमात्र सोपाधिक रहा. तब एकाधिकरण ईश्वरमें परस्पर विरुद्ध, मोक्ष और बंधका होना सिद्ध हुआ, सो तो दृष्टेष्टबाधित है. छायातपवत्. विशेष इसका समाधान श्रुतिसहित आगे कहेंगे. तब तो, ईश्वरकों सदा मुक्त, कूटस्थ, नित्य, देहादिरहित, सदा शिवादि न कहना चाहिये.

पूर्वपक्षः–ईश्वर तो देहादिसें रहित, सर्वव्यापक और सर्व शक्तिमान् है, इसवास्ते ईश्वर अवतार नही लेता है, परंतु सृष्टिकी आदिमें चार ऋषियोंकों अग्नि १, वायु २, सूर्य ३ और अंगिरस ४ नामवालोंकों, वेदका बोध ईश्वर कराता है.

उत्तरपक्षः–यद्यपि यह पूर्वोक्त कहना दयानंदस्वामीका नवीन स्वकपोलकल्पित गप्परूप है, तथापि इसका उत्तर लिखते हैं. प्रथम तो, ईश्वर सर्वव्यापक होनेसें अक्रिय है, अर्थात् वो कोइभी क्रिया नही करसक्ता है, आकाशवत्; तो फेर ऋषियोंकों वेदका बोध कैसें करा सक्ता है.

पूर्वपक्षः–ईश्वर अपनी इच्छासें वेदका बोध करता है.

उत्तरपक्षः–इच्छा जो है, सो मनका धर्म है, और मन देह विना होता नही हैं, ईश्वरके देह तुमने माना नही है, तो फेर, इच्छाका संभव ईश्वरमें कैसें हो सक्ता है?

पूर्वपक्षः–हम तो इच्छानाम ईश्वरके ज्ञानकों कहते हैं, ईश्वर अपने ज्ञानसें प्रेरणा करके वेदका बोध कराता है.

उत्तरपक्षः–यहभी कहना मिथ्या है, क्योंकि, ज्ञान जो है, सो प्रकाशक है, परंतु प्रेरक नही है, ईश्वरमें रहा ज्ञान, कदापि प्रेरणा नही करसक्ता है, तो फेर किसतरें ऋषियोंकों वेदका बोध कराता है?

पूर्वपक्षः–पूर्वोक्त ऋषि, अपने ज्ञानसेंही ईश्वरके ज्ञानांतर्गत वेदज्ञानकों जानके, लोकोंकों वेदोंका उपदेश करते हैं.

उत्तरपक्षः–यहभी कथन ठीक नही है, क्यों कि, जब ऋषि अपने ज्ञानसें ईश्वरके ज्ञानांतर्गत वेदज्ञानकों जानते हैं, तो वो वेदज्ञान ईश्वरके ज्ञानमें व्यापक है? वा किसीजगे ज्ञानमें प्रकाशका पुंजरूप हो रहा

रंतर (शिवत्वं) शिवपणा, सत्‌चित्‌आनंदरूप परम ब्रह्म परमात्मा परम ईश्वरपणा है; और (शरीरयोगात्) शरीरके योगसें संबंधसेही (उपदेशकर्म) उपदेश कर्म है, अर्थात् देहवाला ईश्वर होवे तबही उपदेष्टा हो सक्ता है; यह दोनो बातें (परस्परस्पर्धि) परस्पर विरोधि (कथं) किसतरें (परोपक्लृप्तेषु) परवादीयोंके माने हुए (अधिदैवतेषु) अधिदेवतायोंमें (घटेत) घटती हैं? अपितु किसी प्रकारसेभी नही घट सक्ती हैं क्योंकि, परवादीयोंने अनादि मुक्तरूप, निरुपाधिक, निरंजन, निराकार, ज्योतिःस्वरूप, एक ईश्वर, सर्व व्यापक माना है; ऐसा ईश्वर किसी प्रकारसेंभी उपदेष्टा सिद्ध नही हो सक्ता है. उपदेश करनेके देहादि उपकरणोंके अभावसें. क्योंकि, धर्माधर्म, अर्थात् पुण्य पापके विना तो देह नही हो सक्ता है, और देह विना मुख नही होता है, और मुख विना वक्तापणा नही है, व्याकरणके कथन करे स्थान और प्रयत्नोंके विना साक्षर शब्दोच्चार कदापि नही हो सकता है, तो फेर देहरहित, सर्वव्यापक, अक्रिय परमेश्वर, किसतरें उपदेशक सिद्ध हो सक्ता है?

पूर्वपक्षः—परमेश्वर अवतार लेके, देहधारी होके, उपदेश देता है.

उत्तरपक्षः—परमेश्वरके मुख्यतीन अवतार माने जाते हैं, ब्रह्मा, विष्णु, महादेव, और येही मुख्य उपदेशक माने जाते हैं, परंतु परवादीयोंके शास्त्रानुसार तो ये तीनो देव, राग, द्वेष, अज्ञान, काम, ईर्षादि दूषणोंसें रहित नही थे; तो फेर, ईश्वर, अनादि, निरुपाधिक, सदा मुक्त, सदाशिव, कैसें सिद्ध होवेगा? और सर्वव्यापी ईश्वर, एक छोटीसी देहमें किसतरें प्रवेश करेगा?

पूर्वपक्षः—हम तो ईश्वरके एकांशका अवतार लेना मानते हैं.

उत्तरपक्षः—तब तो ईश्वर एक अंशमें उपाधिवाला सिद्ध हुआ, तब तो ईश्वरके दो विभाग हो गए, एक विभाग तो सोपाधिक उपाधिवाला, और एक विभाग निरुपाधिक उपाधिरहित.

पूर्वपक्षः—हां हमारे ऋग्वेद और यजुर्वेदमें कहा है कि, ब्रह्मके तीन हिस्से तो सदा मायाके प्रपंचसे रहित, अर्थात् सदा निरुपाधिक है, और एक चौथा हिस्सा सदाही उपाधिसंयुक्त रहता है.

अनेक कृत्य जे अच्छे पुरुष नही करसक्ते हैं, वे सर्व कृत्य ईश्वर करसक्ता है ?

पूर्वपक्षः–ऐसे ऐसे पूर्वोक्त सर्वकृत्य ईश्वर नही कर सक्ता है, क्यों कि, ऐसी बुरी शक्तियां ईश्वरमें है तो सही, परंतु ईश्वर करता नहीं है.

उत्तरपक्षः–तुम्हारे दयानंदस्वामी तो लिखते हैं कि, ईश्वरकी सर्वशक्तियां सफल होनी चाहिये; जेकर पूर्वोक्त सर्वकृत्य ईश्वर न करेगा तो, तिसकी सर्व शक्तियां सफल कैसे होवेंगी ?

पूर्वपक्षः–ईश्वरमें ऐसी २ पूर्वोक्त अयोग्य शक्तियां नही है.

उत्तरपक्षः–तब तो वदतोव्याघात हुआ, अर्थात् सर्वशक्तिमान् ईश्वर सिद्ध नही हुआ, तो फेर, देह मुखादि उपकरणरहित सर्वव्यापक ईश्वर, प्रमाणद्वारा वेदोंका उपदेशक कैसें सिद्ध होवेगा ? अपितु कदापि नही होवेगा. क्योंकि, उपदेश जो है सो देहवालेका कर्म है, इस वास्ते एक ईश्वरमें पूर्वोक्त देहरहित होना और उपदेशकभी होना, ये परस्पर विरोधि धर्म नही घट सक्ते हैं, इसवास्ते परवादीयोंका कथन अज्ञानविजृंभित है ॥ १७ ॥

अथ स्तुतिकार भगवंत श्रीवर्द्धमानस्वामी फेर अयोग्यव्यवच्छेद कहते हैं–

प्रागेव देवांतरसंश्रितानि रागादिरूपाण्यवमांतराणि
न मोहजन्यां करुणामपीश समाधिमास्थाय युगाश्रितोऽसि १८

व्याख्या–हे जिनेंद्र ! हे ईश ! (रागादिरूपाणि) राग, द्वेष, मोह, मद, मदनादिरूपदूषण (प्राक्-एव) पहिलांही (देवांतरसंश्रितानि) तेरे भयसें, (देवांतर) अन्यदेवोंमें आश्रित हुए हैं कि, मानू, निर्भय हम इहां रहेगें; जिनेंद्र तो हमारा समूलही नाश करनेवाला है, इसवास्ते किसी बलवंतमें रहना ठीक है, जो हमारी रक्षा करे, मानू, ऐसा विचारकेही रागादि दूषण देवांतरोंमें स्थित हुए हैं. कैसे है वे रागादिदूषण ? (अवमांतराणि) जे क्षयकों प्राप्त नही हुए हैं, अर्थात् अप्रतिहत शक्तिवाले हैं, जिनका क्षय वा क्षयोपशम वा उपशम किंचित् मात्रभी नही हुआ है, इसवास्ते हे ईश ! तूं (समाधिं–आस्थाय) समाधिकों

है ? जेकर सर्वव्यापक है, तब तो ऋषियोंने ईश्वरका सर्वज्ञान देख लीना; जब ईश्वरका सर्वज्ञान देखा, तब तो ईश्वरका सर्व स्वरूप ऋषियोंने देख लीया, तब तो ऋषिही सर्वज्ञ सिद्ध हुए; सो तो तुम ईश्वरके विना अन्य किसीभी जीवकों सर्वज्ञ मानते नही हैं. जेकर मानोगें, तो वे ऋषि सर्वज्ञ ईश्वरतुल्य होवेगें, और अपने ज्ञानसेंही वेदोंके उपदेशक सिद्ध होवेगें, तब ईश्वरके कथन करे, वा कराये वेद क्योंकर सिद्ध होवेगें? जेकर दूसरा पक्ष मानोगें तब तो अनाडीके रंगे वस्त्रके रंगसमान ईश्वरका ज्ञान सिद्ध होवेगा, जैसें अनाडीके रंगे वस्त्रमें एकजगे तो अधिक रंग होता है, और दूसरी जगे अल्परंग होता है; ऐसेही ईश्वरकाभी ज्ञान, एक अंशमें वेदादिज्ञानके प्रकाशपुंजरूप ज्ञानवाला है; तब तो एक अंशमें ईश्वर वेदोंके ज्ञानवाला है और अन्य सर्व अनंत अंशोंमें वेदके ज्ञानसें अज्ञानी सिद्ध होवेगा; इसवास्ते शरीररहित सर्वव्यापक ईश्वर, कदापि वेदादिशास्त्रोंका उपदेशक सिद्ध नही होता है.

पूर्वपक्षः—ईश्वर सर्वशक्तिमान् हैं, इसवास्ते देहरहित सर्वव्यापक ईश्वर, अपनी शक्तिसें सर्वकुछ करसक्ता है; हे जैनो! ऐसे तुम मान लेवो.

उत्तरपक्षः—ऐसे तुम्हारे कथनमें क्या प्रमाण है? क्यों कि, प्रमाणविना प्रेक्षावान् कदापि किसीके कथनकों नही मानेगें; परंतु यह तुम्हारा कथन तो तुम्हारी प्रीय भार्या आर्यासमाजिनीही मानेगी, अप्रमाणिक होनेसें. और एक यहभी बात है कि, जब तुमने ईश्वरकों विना प्रमाणसेंही सर्वशक्तिमान् माना है तो, क्या ईश्वरमें अवतार लेनेकी शक्ति नही है? क्या ईश्वर कृष्णावतार लेके, गोपियोंके साथ क्रीडा रासविलास भोगविलासादि नही कर सक्ता है? क्या शंकर बन करके, पार्वतीके साथ विविधप्रकारके भोगविलास और अनेकतरेंकी शिवकी लीला नही कर सक्ता है? क्या ब्रह्मा बनके चारों वेदोंका उपदेश, और निजपुत्रीसें सहस्र वर्षतक भोगविलास नही कर सक्ता है? क्या मत्स्यवराहादि चौवीस अवतार धारके अपने मनधारे कृत्य नही कर सक्ता है? क्या ईश्वर नाचना, गाना, रोना, पीटना, चोरी, यारी, निर्लज्जतादि नही कर सक्ता है? क्या लिंगकी वृद्धि करके, तीन लोकांतोंसेंभी परे नही पहुंचाय सक्ता है? इत्यादि

तपस्वी अर्थात् दीन हीन कंगाल गरीब है, अनुकंपा करनेयोग्य है; क्योंकि, वे बिचारे दूधकी जगे आटेका धोवन अपने भक्तोंकों दूध कहके पिलारहे हैं, इस वास्ते अनुकंपा करनेयोग्य है कि, इन बिचारांकों किसीतरें सच्चा दूध मिले तो ठीक है ॥ १९ ॥

अथ स्तुतिकार परवादियोंके नाथोंने भगवान्की मुद्राभी नही सीखी है यह कथन करते हैं–

वपुश्च पर्यंकशयं श्लथं च दृशौ च नासानियते स्थिरे च ॥
न शिक्षितेयं परतीर्थनाथैर्जिनेंद्रमुद्रापि तवान्यदास्ताम् ॥२०

व्याख्या–हे जिनेंद्र ! (परतीर्थनाथैः) परतीर्थनाथोंने (इयं) येह (तव) तेरी (मुद्रा–अपि) मुद्राभी, शरीरका न्यासरूपभी (न) नही (शिक्षिता) सीखी है तो (अन्यत्) अन्य तेरे गुणोंका धारण करना तो (आस्ताम्) दूर रहा, कैसी है तेरी मुद्रा? (वपुः–च) शरीर तो (पर्यंकशयं) पर्यंकासनरूप (च) और (श्लथं) शिथिल है, (च) और (दृशौ) दोनों नेत्र (नासानियते) नासिकाउपर दृष्टिकी मर्यादासंयुक्त (च) और (स्थिरे) स्थिर है.

भावार्थः–यह है कि, भगवंतकी जो पर्यंकासनादिरूप मुद्रा है, सो मुद्रा, योगीनाथ भगवंतने योगीजनोंके ज्ञापनवास्ते धारण करी है; क्यों कि, जितना चिरयोगीनाथ आप योगकी क्रिया नही करदिखाता है तितना चिरयोगी जनोंकों योग साधनेका क्रियाकलाप नही आता है तथा भगवंत अष्टादश दूषणरहित होनेसें निःस्पृह और सर्वज्ञ है, तिनकी मुद्रा ऐसीही होनी चाहिये; परंतु परतीर्थनाथोंने तो भगवंतकी मुद्राभी नही सीखी है; अन्यभगवंतके गुणोंका धारण करना तो दूर रहा, परतीर्थ नाथोंने तो भगवंतकी मुद्रासें विपरीतही मुद्रा धारण करी है; क्यों कि, जैसी देवोंकी मुद्रा थी, वैसीही मुद्रा तिनकी प्रतिमाद्वारा सिद्ध होती है

शिवजीने तो पांच मस्तक जटाजूटसहित, और शिरमें गंगाकी मूर्त्ति और नागफण, गलेमें रुंड (मनुष्योंके शिर) की माला, और सर्प, हाथ दश, प्रथम दाहने हाथमें डमरु, दूसरेमें त्रिशूल, तीसरेसें ब्रह्माजीको

अवलंबके, समाधिनाम शुक्लध्यानकों अवलंबके, (मोहजन्यां) मोहजन्य (करुणां-अपि) करुणाकोंभी (न) नही (युगाश्रितः–असि) युगमें आश्रित हुआ है, अर्थात् मोहरूप करुणा करकेभी तूं युगयुगमें अवतार नही लेता है. जैसे गीतामें लिखा है–

"उपकाराय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम् ॥
धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगेयुगे ॥ १ ॥"
तथाबौद्धमतेपि "ज्ञानिनो धर्मतीर्थस्य कर्त्तारः परमं पदम् ॥
गत्वा गच्छंति भूयोपि भवन्तीर्थनिकारतः ॥ १ ॥"

अर्थः–अच्छे जनोंके उपकारवास्ते, और पापी दैत्योंके नाश करने- वास्ते, और धर्मके संस्थापन करनेवास्ते, हे अर्जुन! मैं युगयुगमें अव- तार लेता हूं. । १ । हमारे धर्मतीर्थका कर्ता बुद्ध भगवान्, परमपदकों प्राप्त होकेभी, अपने प्रवर्त्तमान करे धर्मकी वृद्धिकों देखके जगद्वासीयों- की करी पूजाके लेनेवास्ते, और अपने शासनके अनादरसें अर्थात् अपने प्रवर्ताये शासनकी पीडा दूर करनेवास्ते, इहां आता है. ऐसी मोहजन्य करुणाकों हे ईश! तूं युगयुगमें आश्रित नही हुआ है. ॥ १८ ॥

अथ स्तुतिकार भगवंतमें जैसा कल्याणकारी उपदेश रहा है, तैसा अन्यमत के देवोंमें नहीं है, यह कथन करते हैं––

जगन्ति भिन्दन्तु सृजन्तु वा पुनर्यथा तथा वा पतयः प्रवादिनाम् ।
त्वदेकनिष्ठे भगवन् भवक्षयक्षमोपदेशे तु परंतपस्विनः ॥ १९ ॥

व्याख्याः–(प्रवादिनाम्– पतयः) प्रवादीयोंके पति, अर्थात् परमतके प्रवर्त्तक देवते हरिहरादिक, (यथा तथा वा) जैसें तैसें प्रवादीयोंकी कल्पना समान वे देवते (जगंति) जगतांको (भिंदंतु) भेदन करो–प्रलय करो–सूक्ष्म रूपकरके अपनेमें लीन करो; (वा पुनः) अथवा (सृजंतु) सृष्टियांकों सृजन (उत्पन्न) करो, यह कर्त्तव्य तिनके कहनेमूजब होवो, वे देवते करो, परंतु हे भगवन्! (त्वदेकनिष्ठे) एक तेरेहीमें रहे हुए (भव- क्षयक्षमोपदेशेतु) संसारके क्षय करनेमें समर्थ ऐसे धर्मोपदेशके देनेमें तो, वे परवादीयोंके पति (स्वामी) देवते, (परं) परमउत्कृष्ट (तपस्विनः)

अथाग्रे स्तुतिकार भगवंतके शासनकी स्तुति करते हैं–

यदीयसम्यक्त्वबलात् प्रतीमो भवादृशानां परमस्वभावम् ॥
वास न।पाशविनाशनाय नमोस्तु तस्मै तव शासनाय ॥२१॥

व्याख्या–(यदीयसम्यक्त्वबलात्) जिसके सम्यक्तबलसें, अर्थात् जिसके सम्यग् ज्ञानके बलसें (भवादृशानां) तुम्हारेसरीखे परमाप्तजीवनमोक्षरूप महात्मायोंके (परमस्वभावम्) शुद्धस्वरूपकों (प्रतीमः) हम जानते हैं (तस्मै) तिस (तव) तेरे (शासनाय) शासनकेतांइ हमारा (नमः) नमस्कार (अस्तु) होवे, कैसे शासनकेतांई ? (कुवासनापाशविनाशनाय) कुवासनारूपपाशीके विनाश करनेवाला तिसकेतांई.

भावार्थः–जेकर हे भगवन्! तेरा शासन न होता तो, हमारे सरीखे पंचमकालके जीव तुम्हारे सरीखे परमाप्तपुरुषोंके परम शुद्धस्वभावकों कैसें जानते? परंतु तेरे आगमसें ही सर्वकूंजाना; और तेरे आगमनेही पांच प्रकारके मिथ्यात्वरूप कुवासनापाशीका विनाश करा है, इसवास्ते तेरे शासनकेतांई हमारा नमस्कार होवे. ॥ २१ ॥

अथ स्तुतिकार दो वस्तुयों अनुपम कहते हैं–

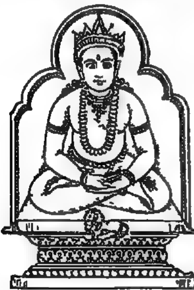
अपक्षपातेन परीक्षमाणा द्वयं द्वयस्याप्रतिमं प्रतीमः ॥
यथास्थितार्थप्रथनं तवैतदस्थाननिर्बंधरसं परेषाम् ॥ २२ ॥

व्याख्या–(अपक्षपातेन) पक्षपातरहित हो कर (परीक्षमाणाः) जब हम परीक्षा करते हैं तो, (द्वयस्य) दो जनोंकी (द्वयं) दो वस्तुयों (अप्रतिमं)अनुपम उपमा रहित (प्रतीमः) जानते हैं; हे भगवन् ! (तव) तेरा (एतत्) यह (यथास्थितार्थप्रथनं) यथास्थित पदार्थोंके स्वरूप कथन करनेका विस्तार, अर्थात् यथास्थित पदार्थोंके स्वरूप कथन करनेका विस्तार जैसा तैंने करा है, ऐसा जगत्में कोइभी नही कर सक्ता है, इसवास्ते तेरा कथन हम अनुपम जानते हैं. और (परेषां) अन्योंका (अस्थाननिर्बंधरसं) अस्थाननिर्बंधरस, अर्थात् अन्योंने असमंजसपदार्थोंके स्वरूपकथनरूप गोले गिरडाये हैं, वेभी उपमारहित हैं, तिनोंके विना ऐसा असमंजसकथन अन्य कोईभी नही कर सक्ताहै. ॥ २२ ॥

आशीर्वादका देना, चौथेमें पुस्तक, और पांचवेमें जपमाला; वामे प्रथम हाथमें गंध सूंघनेकों कमल, दूसरेमें शंख, तीसरे हाथसें विष्णुकों आशीर्वादका देना, चौथेमें शास्त्र, और पांचमे हाथसें दाहने पगका पकडना, ऐसी मूर्ति धारण करी है. तथा अन्यरूपमें शिवजीने पार्वतीकों अर्धांगमें धारण करी है, और अपने हाथसें लपेट रहे है. तथा शिवजीके दाहनेपासे ब्रह्माजी हाथ जोडकरके खडे हैं, और वामेपासे विष्णु हाथ जोडके खडे हैं.

विष्णुकी और ब्रह्माजीकी मुद्रा तो प्रायः चित्रोंमें प्रसिद्धही है. शंक, चक्र, गदादिशस्त्र, और श्री (लक्ष्मी) जी सहित तो विष्णुकी; और चारमुख, कमंडलु जपमाला वेद पुस्तकादि चारों हाथोंमें धारण करे, ऐसी मुद्रा ब्रह्माजीकी है. परंतु योगीनाथ अरिहंतकी मुद्रा तो, किसीनेभी धारण नही करी है. ॥ २० ॥

अरिहंतकी मूर्ति.



शिवकी मूर्ति.



विष्णुकी मूर्ति.



ब्रह्माकी मूर्ति.



मिथ्यात्व अज्ञानरूप पटलोंसें अंधे होनेसें; (तां) तिस (तव) तेरी (देशनाभूमिं) देशनाभूमिकों (अहम्) मैं (उपाश्रये) उपाश्रित करता हूं-आश्रित होताहूं, जिससें मेराभी सर्वजीवोंके साथ वैरानुबंधरूप व्यसन छुट जावे. ॥ २४ ॥

अथस्तुतिकार परदेवोंका साम्राज्य वृथा सिद्ध करते हैं.

मदेन मानेन मनोभवेन क्रोधेन लोभेन च संमदेन ॥
पराजितानां प्रसभं सुराणां वृथैव साम्राज्यरुजा परेषाम् ॥२५॥

व्याख्या—(परेषाम्—सुराणाम्) परदेवताओंका, ब्रह्मा, विष्णु, महादेवादिकोंका (साम्राज्यरुजा) लोकपितामहपणा, जगत्कर्त्तापणा, हंसवाहन, कमलासन, यज्ञोपवीत, कमंडलु, चतुर्मुख, सावित्रीपति, विशिष्टादि दश पुत्रोंवाला, वेदोंका कहनेवाला, चार वर्णका उत्पन्न करनेवाला, वर शाप देने समर्थ, सतोगुणरूप, इत्यादि ब्रह्माजीका साम्राज्य—चतुर्भुज, शंख, चक्र, गदा, शारंग, धनुष्, वनमालाका धारनेवाला, ईश्वर, लक्ष्मी, राधिका, रुक्मिणीआदिका पति, सोलां सहस्र गोपियोंके साथ क्रीडा करनी, अनेक रूपका करना, बत्रीस सहस्र राणियोंका स्वामी, त्रिखंडाधिप, वामन नरसिंह रामकृष्णादिका रूप धारना, कंस, वाली, रावणादिका वध करना, सहस्रों पुत्रोंका पिता, रजोगुणरूप, सृष्टिका पालनकर्ता, भक्तसाहायक, घटघटमें व्यापक होना, इत्यादि विष्णुका साम्राज्य. और जगत् प्रलय करना, वृषभवाहन, पंचमुख, चंद्रमौलि, त्रिनेत्र, कैलासवासी, सर्वसें अधिक कामी, स्त्रीके अत्यंत स्नेहवाला, सदा स्त्री पार्वतीकों अर्द्धांगमें रखनेवाला, अत्यंत भोला, त्रिभुवनका ईश्वर इत्यादि शिवका साम्राज्य. इसीतरें सर्वलौकिक देवोंका साम्राज्य समज लेना. ऐसा पूर्वोक्त साम्राज्यरूप रोग परतीर्थनाथोंका (वृथाएव) वृथाही है. कैसे परतीर्थनाथोंका? (मदेन) अष्टप्रकारके मद (मानेन) अभिमान—अहंकार (मनोभवेन) काम (क्रोधेन) क्रोध शत्रुके मारणरूप वा शापदानरूप (लोभेन) लोभ स्त्री, पुत्र, धन, धान्य, शस्त्र, स्थानादिग्रहणरूप, (च) शब्दसे माया-कपटादि और (संमदेन) हर्ष खुशी इनों करके (प्रसभं) यथा स्यात्तथा अर्थात् हठ करके अपने वडे सामर्थ्य करके (पराजितानां) जे पराजित

अथ स्तुतिकार अज्ञानियोंके प्रतिबोध करनेमें अपनी असमर्थता कहते हैं:-

अनाद्यविद्योपनिषन्निषण्णैर्विशृंखलैश्चापलमाचरद्भिः ॥
अमूढलक्ष्योपि पराक्रिये यत्त्वत्किंकरः किं करवाणि देव ॥२३॥

व्याख्या-अनादि अविद्या, अर्थात् मिथ्यात्व अज्ञानरूप उपनिषद्रहस्यमें तत्पर हुयोंने, और विशृंखलोंने, अर्थात् विना लगाम स्वछंदाचारी प्रमाणिकपणारहितोंने, और चपलता अर्थात् वाग्जालकी चपलताके आचरण करतेहुयोंने, इन पूर्वोक्त विशेषणोंविशिष्ट महाअज्ञानिपुरुषोंने जेकर तेरे अमूढ लक्ष्यकोंभी-जिसके उपदेशादि सर्व कर्म निष्फल न होवें तिसकों अमूढलक्ष्य कहते हैं, अर्थात् सर्वज्ञ ऐसे तेरे अमूढलक्ष्यकोंभी, जेकर पूर्वोक्त पुरुष खंडन करे-तिरस्कार करे, जैसें कोई जन्मांध सूर्यके प्रकाशकों पराकरण करे, न माने, तो तिसकों निर्मल नेत्रवाला पुरुष क्या करे? ऐसेही अज्ञानी तेरा तिरस्कार करे, तो हे देव! स्वस्वरूपमें क्रीडा करनेवाले सर्वज्ञ वीतराग! तेरा किंकर मैं हेमचंद्रसूरि, क्या करूं? कुछभी तिनकेतांई नही कर सकता हूं. जैसें जन्मके अंधकों अंजनवैद्य कुछ नही कर सकता है. ॥ २३ ॥

अथ स्तुतिकार भगवंतकी देशना भूमिकी स्तुति करते हैं--

विमुक्तवैरव्यसनानुबंधःश्रयंति यां शाश्वतवैरिणोऽपि ॥
परैरगम्यां तव योगिनाथ तां देशनाभूमिमुपाश्रयेऽहम्॥२४॥

व्याख्या-हे योगिनाथ! (यां) जिस तेरी देशनाभूमिकों (शाश्वतवैरिणः-अपि) शाश्वतवैरीभी, अर्थात् जिनका जातिके स्वभावसेंही निरंतर वैरानुबंध चला आता है, जैसें बिल्लि मूषकका, श्वान बिल्लिका, वृक अजाका, इत्यादि; वेभी सर्व, (विमुक्तवैरव्यसनानुबंधाः) स्वजातिका शाश्वत वैर रूपव्यसनके अनुबंधसें विमुक्त रहित हुए थके (श्रयंति) आश्रित होते हैं. यह भगवंतका अतिशय है कि, शाश्वतवैरीभी भगवान्की देशनाभूमि समवसरणमें जब आते हैं, तब परस्पर वैर छोडके परममैत्रीभावसें एकत्र बैठते हैं; और जो (परैः) परवादीयोंने (अगम्यां) अगम्य है, अर्थात् परवादी जिस देशनाभूमिका स्वरूप नही जान सक्ते हैं

भावार्थ—माध्यस्थपणेकों धारण करके, जे पुरुष अपने आपकों परीक्षक मानते हैं कि, हम पक्षपातरहित सच्चे परीक्षक हैं; परंतु काचके टुकडेकों, और चंद्रकांतादि मणियोंकों मोलमें, वा गुणोंमें समान मानते हैं, वे परीक्षक नहीं हैं, किंतु वेभी मत्सरि पुरुषकी मुद्रावालेही हैं. ऐसेंही जिनोंने माध्यस्थपणा और परीक्षक अपने आपकों माने हैं, फेर काम, क्रोध, मान, माया, लोभ, हिंसा, मैथुनादिरहित सर्वज्ञ वीतरागकों, और पूर्वोक्त कामादिसहित अज्ञानी सरागीकों एकसमान मानते हैं, इसवास्ते वे परीक्षक नहीं, किंतु वेभि मत्सरी ही हैं ॥ २७ ॥

अथ स्तुतिकार प्रतिवादीयोंसमक्ष अवघोषणा करते हैं.

इमां समक्षं प्रतिपक्षसाक्षिणामुदारघोषामवघोषणां ब्रुवे ॥
न वीतरागात्परमस्ति दैवतं न चाप्यनेकान्तमृते नयस्थितिः ॥२८॥

व्याख्या—मैं श्री हेमचंद्रसूरी (प्रतिपक्षसाक्षिणां) प्रतिपक्षसाक्षियोंके (समक्षं) समक्ष—प्रत्यक्ष (इमां) यह जो आगे कहेंगे तिस (उदारघोषाम्) मधुर शब्दोंवाली (अवघोषणाम्) अवघोषणा, लोकोंके जनावने वास्ते उच्च शब्द करके जो बोलना तिसका नाम अवघोषणा कहते हैं, तिस अवघोषणाकों (ब्रुवे) बोलता हूं—करता हूं, सोही दिखाते हैं, (वीतरागात्) वीतरागसें (परं) परे—कोई (दैवतं) सत्यधर्मका आदि उपदेष्टा (न) नहीं (अस्ति) है, (च) और (अनेकांतं—ऋते) अनेकांत अर्थात् स्याद्वादविना कोइ (नयस्थितिः—अपि) नयस्थितिभी (न) नहीं है; अर्थात् स्याद्वादके विना पदार्थके स्वरूपके कथन करनेरूप जो नयस्थिति है सोभी नहीं है. स्यात् पदके चिन्हविना किसीभी नित्यानित्यादिनयके कथनकी सिद्धि न होनेसें ॥ २८ ॥

अथ स्तुतिकार अपने आपकों अपक्षपाती सिद्ध करते हैं.

न श्रद्धयैव त्वयि पक्षपातो न द्वेषमात्रादरुचिः परेषु ॥
यथावदाप्तत्वपरिक्षया तु त्वामेव वीर प्रभुमाश्रिताः स्मः ॥ २९ ॥

व्याख्या—हे वीर! (श्रद्धया—एव) श्रद्धा मात्र करकेही, अर्थात् श्रीमहावीरके विना अन्य किसी परवादीके मतके देवकों अपना प्रभु ईश्वर

हैं, अर्थात् पूर्वोक्त दुषणोंकरके जे संयुक्त हैं, तिनोंका. क्योंकि, पूर्वोक्त साम्राज्यरूप रोग आत्माकों मलिन करने और दुःख देनेवाला है, इस वास्ते वृथाही है ॥ २५ ॥

अथाग्रे स्तुतिकार असत्वादी और पंडितजनोंके लक्षण कहते हैं.

स्वकण्ठपीठे कठिनं कुठारं परे किरन्तः प्रलपन्तु किंचित् ॥
मनीषिणां तु त्वयि वीतराग न रागमात्रेण मनोऽनुरक्तम् ॥२६॥

व्याख्या—(परे) परवादी जे हैं, वे (स्वकण्ठपीठे) अपने कंठपीठमें (कठिनं) कठिन—तीक्ष्ण (कुठारं) कुठार—कुहाडा (किरन्तः) क्षेपन करते हुए (किंचित्) कुछक (प्रलपन्तु) प्रलपन करो, अर्थात् परवादी अप्रमाणिक युक्तिबाधित किंचित् तत्वके स्वरूपकथनरूप कठिन कुठार—कुहाडा अपने कंठपीठमें क्षेपन करो—मारो, यद्वा तद्वा बोलो, सत्मार्गके अनभिज्ञ होनेसें, अपने आत्माकी हानि करो, परंतु हे वीतराग ! (मनीषिणां तु) मनीषि—पंडित—सद्बुधिमानोंका तो (मनः) मन—अंतःकरण (त्वयि) तेरे विषे (रागमात्रेण) रागमात्र करके (न) नहीं (अनुरक्तं) रक्त है, किंतु युक्तिशास्त्रके अविरोधि तेरे कथनके होनेसें तेरे विषे पंडितजनोंका मन अनुरक्त है ॥ २६ ॥

अथाग्रे जे पुरुष अपनेकों माध्यस्थ मानते हैं, परंतु वेभी निश्चय मत्सरी हैं, तिनका स्वरूप कथन करते हैं.

सुनिश्चितं मत्सरिणो जनस्य न नाथमुद्रामतिशेरते ते ॥
माध्यस्थमास्थाय परीक्षकाये मणौ च काचे च समानुबन्धाः ॥२७॥

व्याख्या—हे नाथ ! (सुनिश्चितं) हमारे निश्चित करा हुआ वर्त्ते है कि (ते) वे जन (मत्सारिणः) मत्सरी (जनस्य) पुरुषकी (मुद्रां) मुद्राकों (न) नहीं (अतिशेरते) उल्लंघन करते हैं, अर्थात् ऐसे जनभी मत्सारियोंकी पंक्तिमेंही निश्चित करे हुए हैं; कैसे हैं वे जन ? (ये) जे (परीक्षकाः) परीक्षक होके और (माध्यस्थ्यम्—आस्थाय) माध्यस्थपणेकों धारण करके (मणौ) मणिमें (च) और (काचे) काचमें (समानुबन्धाः) सम अनुबंधवाले हैं.

अथ स्तुतिकार नामके पक्षपातसें रहित होकर, गुणविशिष्ट भगवंतकों नमस्कार करते हैं.

यत्र तत्र समये यथा तथा योऽसि सोस्यभिधया यया तया॥
वीतदोषकलुषः स चेद्भवानेक एव भगवन्नमोऽस्तुते ॥ ३१ ॥

व्याख्या–(यत्र तत्र समये) जिसतिस मतके शास्त्रमें (यथातथा) जिस तिस प्रकारकरके (यया तया अभिधया) जिस तिस नामकरके (यः) जो तूं (असि) है (सः) सोही (असि) तूं है, परं (चेत्) यदि जेकर (वीतदोषकलुषः) दूर होगए हैं द्वेष राग मोह मलिनतादि दूषण, तो, (भवान्–एक–एव) सर्व शास्त्रोंमें तूं जिस नामसें प्रसिद्ध है, सो सर्व जगें तूं एकही है, इसवास्ते हे भगवन्! (ते) तेरेतांइ (नमः) नमस्कार (अस्तु) होवे ॥ ३१ ॥

अथ स्तुतिकार स्तुतिकी समाप्तिमें स्तुतिका स्वरूप कहते हैं.

इदं श्रद्धामात्रं तदथ परनिन्दां मृदुधियो
विगाहन्तां हन्त प्रकृतिपरवादव्यसनिनः॥
अरक्तद्विष्टानां जिनवरपरीक्षाक्षमाधिया-
मयंतत्त्वालोकः स्तुतिमयमुपाधिं विधृतवान्॥ ३२ ॥

व्याख्या–(मृदुधियः) मृदु कोमल विशेषबोधरहित जिनकी कोमल बुद्धि है, वे पुरुष तो (इदम्) इस स्तोत्रकों (श्रद्धामात्रं) श्रद्धामात्र, अर्थात् जिनमतकी हमकों श्रद्धा है, इसवास्ते हम इसको सत्य करकेही मानेंगे, ऐसे जन तो इस स्तोत्रकों श्रद्धामात्र (विगाहन्तां) अवगाहन करो–मानो, (हन्त) इति कोमलामंत्रणे (तत्–अथ) अथ सोही स्तोत्र (प्रकृतिपरवादव्यसनिनः) स्वभावही जिनोंका परके कथनमें वाद करनेका है, अर्थात् अपने माने देव और तिनके कथनमें जिनकों आग्रह है कि, हमने तो यही मानना है, अन्य नहीं, ऐसे व्यसनी पुरुष इस स्तोत्रकों (परनिन्दां) परनिंदारूप अवगाहन करो; स्तुतिकारने परदेवोंकी निंदारूप यह स्तोत्र रचा है, ऐसें मानो, अपने माननेका कदाग्रह होनेसें, परंतु हे जिनवर! (परीक्षाक्षमधियाम्) परीक्षा करनेमें समर्थ बुद्धिवाले

सत्योपदेष्टा नहीं मानना, ऐसी श्रद्धा, मनकी दृढता करकेही, (त्वयि) तेरेविषे हमारा (पक्षपातः) पक्षपात (न) नहीं है, और (द्वेषमात्रात्) द्वेषमात्रसें (परेषु) परमतके देव हरिहरब्रह्मादिकोंमें (अरुचिः) अरुचि –अप्रीति (न) नहीं है, परंतु (यथावदाप्तत्वपरीक्षया–तु) यथावत् आप्तपणेकी परीक्षा करकेही, हे वीर ! वर्द्धमान ! हम (त्वां–एव) तुजही (प्रभुम्) प्रभुकों (आश्रिताः स्मः) आश्रित हुए हैं. आप्तत्वकी परीक्षा आप्तके कथनसें और आप्तके चरितसें सिद्ध होती है, सो हमने तेरे कथनकी परीक्षा करी है, परंतु तेरे वचन हमने प्रमाणबाधित वा पूर्वापर विरोधि नहीं देखे हैं, और तेरा चरित देखा, सोभी आप्तत्वके योग्यही देखा है, और तेरी प्रतिमाद्वारा तेरी मुद्राभी निर्दोष सिद्ध होती है इन तीनों परीक्षायोंके करनेसें तेरेमें निर्दोष आप्तपणा सिद्ध होता है, इस वास्ते हमने तेरेकों प्रभु माना है. और अन्यदेवोंमें ये तिनो शुद्ध निर्दोष परीक्षायों सिद्ध नहीं होती हैं, इसवास्ते तीन देवोंकों हम अपना प्रभु नहीं मानते हैं. नतु द्वेष वा अरुचिसें. "यदवादिलोकतत्त्वनिर्णये श्रीहरभद्रसूरीपादैः । पक्षपातो न मे वीरे न द्वेषः कपिलादिषु । युक्तिमद्वचनं यस्य तस्य कार्यः परीग्रहः" इति ॥ २९ ॥

अथाग्रे स्तुतिकार भगवंतकी वाणीकी स्तुति करते हैं.

तमः स्पृशामप्रतिभासभाजं भवन्तमप्याशु विविन्दते याः ॥
महेम चन्द्रांशुदृशावदातास्तास्तर्कपुण्या जगदीशवाचः ॥ ३० ॥

व्याख्या–हे जगदीश ! भगवन् ! (याः) जे वाचायों तेरी वाणीयों (तमस्पृशाम्) अज्ञानरूप अंधकारके स्पर्शनेवालोंके (अप्रतिभासभाजम्) अप्रतिभासभाज अर्थात् अज्ञानी जिसकों नहीं जानसक्ते हैं, ऐसे (भवन्तम्–अपि) तुजकोंभी–तेरेकोंभी (आशु) शीघ्र (विविन्दते) प्रगट करतीयां है–जनातीयां है (ताः) तिन (चन्द्रांशुदृशावदाताः) चंद्रकी किरणोंकीतरें दृशा–ज्ञान करके अवदाता–श्वेत और (तर्कपुण्याः) तर्क करके पवित्र सम्मत (वाचः) वाणीयांकों (महेम) हम पूजते हैं ॥ ३० ॥

न्यरूपसें एकही केवल जिनोत्तमरूप परमेश्वर है, और व्यक्तिरूपकरके अनंत आत्मा एक परमब्रह्म परमेश्वरपदमें विराजमान होनेसें अनेक रूप है, अथवा द्रव्यार्थें एक आत्मा होनेसें एकरूप है, और पर्यायार्थिकनयके मतसें ज्ञानदर्शनचारित्रादि अनंत पर्यायांकरके अनंत रूप है, "उक्तंच ज्ञाताधर्मकथांगे स्थापत्यासुतमुनिशुकपरिव्राजकसंवादे—सुया एगे विअहं दुवे विअहं अणेगे विअहं—इत्यादि—हे शुक! मैं एकभी हूं, दो रूपभी हूं, अनेक रूपभी हूं—इत्यादि—" तिन एकानेकरूपवाले जिनोत्तमकों, फेर कैसे जिनोत्तमकों? (केवलरूपं) केवल शुद्धस्वरूप सर्वकर्मकृतउपाधिकरके विनिर्मुक्त रहितकों ॥ १ ॥

अथ ग्रंथकार परिषत्—सभाकी परीक्षा करनी कहते हैं.

भव्याभव्यविचारो न हि युक्तोऽनुग्रहप्रवृत्तानाम् ॥
कामं तथापि पूर्वं परीक्षितव्या बुधैः परिषत् ॥ २ ॥

व्याख्या—(भव्याभव्यविचारः) भव्याभव्य अच्छे और बुरे पुरुषोंका विचार (अनुग्रहप्रवृत्तानाम्) अनुग्रह बुद्धिकरके प्रवृत्त होए संत जनोंकों (नहि—युक्तः) करना युक्त—उचित नही है (कामं) यह कथन यद्यपि सम्मत है (तथापि) तोभी (बुधैः) बुद्धिमानोंने (पूर्वं) प्रथम (परिषत्) श्रोताजनकी (परीक्षितव्या) परीक्षा करणी उचित है ॥ २ ॥

अथ ग्रंथकार उपदेशके अयोग्य परिषत् के लक्षण कहते हैं.

वज्रमिवाभेद्यमनाः परिकथने चालनीव यो रिक्तः ॥
कलुषयति यथा महिषः पूनकवद्दोषमादत्ते ॥ ३ ॥

व्याख्या—जो पुरुष (वज्रं—इव) वज्रवत् (अभेद्यमनाः) अभेद्य मनेवाला होवे, अर्थात् उपदेश श्रवणकरके जिसके मनमें किंचित्मात्रभी शुभ परिणामांतर न होवे, मुद्गशेलवत्; और (यः) जो (परिकथने) उपदेशादिकेविषे (चालनी—इव) चालनीकी तरे (रिक्तः) रिक्त हो जावे, जैसें चालनीमें जल डालीए तब सर्व जल निकल जाता है, तैसें जो श्रोता व्याख्यान श्रवण करता है, और तत्काल भूलता जाता है, सो चालनीकी तरे रिक्त जानना. २. और (यथा) जैसें (महिषः) भैंसा तलावमें पानी

(अरक्तद्विष्टानां) रागद्वेषरहितोंकों, अर्थात् किसी मतमें जिनोंका राग पक्षपात नहीं है, और किसी मतमें जिनोंकों द्वेषसें अरुचि नहीं है, ऐसे परीक्षापूर्वक सत् असत् वस्तुका प्रमाणसें निर्णय करनेवालोंकों (अयं) यह (तत्त्वालोकः) तत्त्वप्रकाशक स्तव—स्तोत्र (स्तुतिमयं—उपाधिं) स्तुतिमय उपाधिकों—स्तुतिमय धर्मचिंताकों (विधृतवान्) धारण करता है.॥ ३२॥ इतिश्रिहेमचंद्रसूरिविरचितमयोगव्यवच्छेदिकाद्वात्रिंशिकाख्यं श्री महावीर स्वामिस्तोत्रं बालावबोधसहितं समाप्तम्॥ तत्समाप्तौ च समाप्तोयं तृतीयः स्तम्भः॥ श्रीमत्तपोगणेशेन विजयानंदसूरिणा॥ कृतोबालावबोधोयं परोपकृतिहेतवे॥१॥

इन्दुबाणाङ्कचन्द्राब्दे माघमासे सिते दले ॥
पञ्चम्यां च तिथौ जीवघस्रेपूर्तिमगात्तथा ॥ २ ॥

॥ इतिश्रीमद्विजयानंदसूरिविरचिते तत्त्वनिर्णयप्रासादे अयोगव्यवच्छेदकवर्णनोनाम तृतीयःस्तंभः ॥ ३ ॥

॥ अथ चतुर्थस्तम्भप्रारम्भः॥

तृतीयस्तंभमें प्रायः अयोगव्यवच्छेदका वर्णन किया, अब इस चतुर्थस्तंभमें विशेषतः अयोगव्यवच्छेदादि वर्णन करते हैं.

॥ अर्हम् ॥

प्रणिपत्यैकमनेकं केवलरूपं जिनोत्तमं भक्त्या ॥
भव्यजनबोधनार्थं नृतत्त्वनिगमं प्रवक्ष्यामि ॥ १ ॥

व्याख्या—मैं हरिभद्रसूरि (नृतत्त्वनिगमं) नृतत्त्व लोकतत्त्वनिर्णयरूप निगम आगम कहता हूं; किसवास्ते? (भव्यजनबोधनार्थं) भव्यजनोंके तत्त्वज्ञानके वास्ते; क्या करके? (भक्त्या) भक्ति करके (प्रणिपत्य) नमस्कार करके; किसकों? (जिनोत्तमं) जिन नाम सामान्य केवलीका है, तिनोंमें तीर्थंकरनामकरके जो उत्तम होवे, तिनकों जिनोत्तम, जिनवर, अरिहंत, कहते हैं, तिनकों. कैसे जिनोत्तमकों? (एकं) एकरूपकों, और (अनेकं) अनेकरूपकों, शुद्धद्रव्यार्थिकनयके मतसें एकरूप है, "एगेदव्वे एगेआया एगेसिद्धे" इति श्रीस्थानांगसूत्रवचनप्रामाण्यात्, अर्थात् सामा-

व्याख्या—(आचार्यस्य—एव) आचार्य–गुरुकाही (तत्) वो (जाड्यं) मूर्खपणा है (यत्) जो (शिष्यः) शिष्य (न–अवबुध्यते) प्रतिबोध नहीं होता है, जैसें (गोपालकेन–एव) गवालीएनेही (गावः) गौयां (कुतीर्थेन) बुरे घाटकरके (अवतारिताः) अवतारण करी हैं, इसमें गौयांका कसूर नहीं, किंतु गवालीएकाही कसूर है ॥ ५ ॥

अब आचार्य पूर्वोक्त आशंकाका उत्तर देते हैं.

किंवा करोत्यनार्याणामुपदेष्टा सुवागपि ॥
तत्र तीक्ष्णकुठारोपि दुर्दारुणि विहन्यते ॥ ६ ॥
अप्रशान्तमतौ शास्त्रसद्भावप्रतिपादनम् ॥
दोषायाभिनवोदीर्णे शमनीयमिव ज्वरे ॥ ७ ॥
उदितौ चन्द्रादित्यौ प्रज्वलिता दीपकोटिरमलापि ॥
नोपकरोति यथान्धे तथोपदेशस्तमोन्धानाम् ॥ ८ ॥
एकतडागे यद्वत् पिबाति भुजङ्गः शुभं जलं गौश्च ॥
परिणमति विषं सर्पे तदेव गवि जायते क्षीरम् ॥ ९ ॥
सम्यग्ज्ञानतडागे पिबतां ज्ञानसलिलं सतामसताम् ॥
परिणमति सत्सु सम्यक् मिथ्यात्वमसत्सु च तदेव ॥ १० ॥
एकरसमंतरिक्षात् पतति जलं तच्च मेदिनीं प्राप्य ॥
नानारसतां गच्छति पृथक् पृथक् भाजनविशेषात् ॥ ११ ॥
एकरसमपि तद्वाक्यं वक्तुर्वदनाद्विनिःसृतं तद्वत् ॥
नानारसतां गच्छति पृथक् पृथक् भावमासाद्य ॥ १२ ॥
स्वं दोषं समवाप्य नेष्यति यथा सूर्योदये कौशिको
राद्धिं कङ्कटुको न याति च यथा तुल्येपि पाके कृते ॥
तद्वत् सर्वपदार्थभावनकरं संप्राप्य जैनं मतं
बोधं पापधियो न यान्ति कुजनास्तुल्ये कथासंभवे ॥ १३ ॥

पीने जाता है, तब पानीमें प्रवेश करके पानीकों विलोडन करके (कलुषयति) मलीन करता है, और जलमें मूत्र करता है, न तो आप पानी पीता है, और न भैंसांकों पानी पीने देता है, तैसेंही जो श्रोता व्याख्यानमें क्लेश लडाइ विग्रह कषाय करे, न तो आप सुने, और न शेषपरिषत्कों सुनने देवे, सो श्रोता भैंसेसमान जानना. ३. और जो श्रोता (पूनकवत्) पूनक बैया विजडासुघरा नामक जीवका घर, जो वृक्षके ऊपर बडी चतुराइसें बनाता है, तिस घरसें अहीरलोक घृत तपाके छानते हैं, तिस पूनकमेसें घृत तो निकल जाता है, और कूडाकचरा रह जाता है, तद्वत् पूनकवत्–पूनककी तरें गुण तो नहीं ग्रहण करता है, परंतु (दोषं) दोषकों–अवगुणांकों (आदत्ते) ग्रहण करता है, सो पूनकसमान जानना. ४. येह चारों परिषदा उपदेश करणे योग्य नहीं हैं. यह कथन उपलक्षण मात्र है, क्योंकि नंदिसूत्र आवश्यकसूत्र बृहत्कल्पसूत्रादिकोंमें औरभी अयोग्य परिषत्का वर्णन है ॥ ३ ॥

पूर्वोक्त परिषत्कों उपदेश निरर्थक है, सो दृष्टांतद्वारा कहते हैं.

जलमन्थनवत्कथितं बधिरस्येव हि निरर्थकं तस्य ॥
पुरतोन्धस्य च नृत्यं तस्माद्ग्रहणं तु भव्यस्य ॥ ४ ॥

व्याख्या—(जलमन्थनवत्) जलके विलोडनेकीतरें (बधिरस्य) बाहिरेकों (कथितं–इव) कथनकीतरें (च) और (अंधस्य) आंधेके (पुरतः) आगे (नृत्यं) नाटककीतरें (तस्य) तिस पूर्वोक्त अभव्यजनकों अयोग्य परिषत्कों उपदेश करना (निरर्थकं) व्यर्थ है, अर्थात् जैसें जलका विलोडना व्यर्थ है, जैसें बाहिरेकों कहना व्यर्थ है, और जैसें आंधेके आगे नाटकका करना व्यर्थ है, तैसें तिस अयोग्य पुरुषकों उपदेशका देना व्यर्थ है. (तस्मात्) तिस हेतुसें (तु) निश्चयकरके (भव्यस्य) भव्ययोग्य पुरुषका (ग्रहणं) ग्रहण करना योग्य है ॥ ४ ॥

अथ ग्रंथकार परके तरफसें आशंका करते हैं.

आचार्यस्यैवतज्जाड्यं यच्छिष्योनावबुध्यते ॥
गावोगोपालकेनैव कुतीर्थेनावतारिताः ॥ ५ ॥

यावत्परप्रत्ययकार्यबुद्धिर्विवर्त्तते तावदुपायमध्ये ॥
मनः स्वमर्थेषु निघट्टनीयं नह्याप्तवादा नभसः पतन्ति ॥१५॥

व्याख्या—जैसें कदाग्रही कदाग्रहमें अतिप्लुत चलायमान होता है, अर्थात् एक पक्षमें जूठा होकर दूसरेमें आश्रित होता है, दूसरेसें तीसरेमें, एतावता अनवास्थितिवाला होता है, और जैसें मलाहकी बंधी हुई नावा समुद्रमें अतिप्लुत होती है, तैसेंही परके निश्चय किये मात्रमेंही चतुर जो लोक है, सो प्रमादरूप पाणीमें अतिशय भ्रमण करता है, अर्थात् जे लोक अपने मनमें ऐसा समझतें हैं कि, हमकों निश्चय करनेकी कुछ जरूर नहीं है कि, यह सत्य है वा असत्य? किंतु जो पूर्वजोंने कहा है, सोइ मान्य है, वे लोक तत्त्वपदार्थके ज्ञानकों कबीभी प्राप्त नहीं होते हैं.॥ इसवास्ते जबतक परके ज्ञानके कार्यमें बुद्धि वर्त्तती है, तबतक उपायमें तत्वपदार्थके ज्ञानमें, और पदार्थोंमें अपना मन निरंतर जोडना चाहिये, अर्थात् अपने मनकों पदार्थोंके निर्णय करनेमें प्रवर्त्तावना चाहिये. क्योंकि, आप्तवाद, सत्योपदेष्टाके वचन आकाशसें नहीं गिरते हैं, किंतु बुद्धिसें विचारयुक्ति द्वारा सिद्ध होते हैं कि, येह वचन आप्तके है, और येह अनाप्तके है, इस वास्ते बुद्धिमान् पुरुषकों तत्त्व पदार्थका अवश्य निर्णय करना चाहीये ॥ १४ ॥ १५ ॥

अथ असत् तत्वपदार्थके अग्राह्यपणेका हेतु कहते हैं.

यच्चिन्त्यमानं न ददाति युक्तिं प्रत्यक्षतो नाप्यनुमानतश्च ॥
तद्बुद्धिमान् कोनु भजेत लोके गोशृङ्गतः क्षीरसमुद्भवो न॥१६॥

व्याख्या—जो कथन करा हुआ तत्त्वपदार्थ, जब विचारीए, तब प्रत्यक्ष वा अनुमानसें युक्तिकों न देवे, अर्थात् जो युक्तिप्रमाण प्रत्यक्ष अनुमानसें सिद्ध न होवे, सो तत्त्वका कथन कौन बुद्धिमान् सत्यकरके मानेगा ? अपितु कोइभी नहीं मानेगा. जैसें लोकमें गौके शृंगसें प्रत्यक्ष, और अनुमानसें कदापि दूधकी उत्पत्तिका संभव सिद्ध नहीं हो सक्ताहै ॥१६॥

अथ ग्रंथकार जे प्रकृतिसेंही विनयवाले नम्र हैं तिनकोंही विनयवंत पुरुष विनयवंत करसक्ते हैं यह कथन दृष्टांतद्वारा सिद्ध करते हैं.

व्याख्या—अनार्य पुरुषोंकों भले वचनोंवालाभी उपदेष्टा क्या करता है? अपितु कुछभी नहीं कर सक्ता है, जैसें बुरे काष्टमें तीक्ष्णभी कुठार कुंठ हो जाता है.॥ अप्रशांत, मिथ्यात्व करके अति मलीन बुद्धिवाले पुरुष विषे शास्त्रका यथार्थ तत्व प्रतिपादन करना दोषकेतांइ होता है, जैसें नवीन ज्वरके उदयमें शमन करनेयोग ओषधका करना, अथवा घृत दुग्धादि पान कराना दोषकेतांइ होता है. ॥ चंद्रमा सूर्य उदय हुए हैं, तथा जाज्वल्यमान कोटिदीपकभी निर्मल जलते हैं, तोभी वे चंद्रादि, जैसें अंधपुरुषविषे उपकार नहीं करसक्ते हैं, तैसेंही मिथ्यात्व अज्ञानरूप अंधकारकरके आच्छादित मतिवाले पुरुषोंकों सद्गुरुका उपदेशभी उपकार नहीं करसक्ता है. ॥ एकही तलावमें जैसें सर्प और गौ शुभ जल पीते हैं, परंतु सर्पविषे वोही जल विषरूप परिणामे परिणमता है, और वोही जल गौकेविषे दुध होके परिणमता है. ॥ तैसेंही सम्यक् अविपरीत ज्ञानरूप तलावमें जिनतीर्थंकर अरिहंतका ज्ञानरूप पाणी पीनेवाले सत् और असत्पुरुषोंकों परिणमता है, सत्पुरुषोंमें तो सम्यक्त्वरूप होके परिणमता है, और असत्पुरुषोंमें मिथ्यात्वरूप होके परिणमता है.॥ जैसें एकरसवाला पानी, आकाशसें पडता है, और सो पानी नानाप्रकारकी पृथ्वीकों प्राप्त होके न्यारे न्यारे भाजनोंके विशेषसें नानारसपणे प्राप्त होता है. ॥ तैसेंही एकरसवाला वाक्य, तिस वक्ताके मुखसें निकला हुआ, नानारसपणे अर्थात् न्यारे न्यारे जीवोंके भावोंकों प्राप्त होके नाना प्रकारके अभिप्रायपणे परिणमता है.॥ जैसें अपनेही दोषकों प्राप्त होके उल्लुक सूर्यके उदयकों नहीं इच्छता है, और जैसें सर्व मूंगोकेसाथ तुल्यपाकके करेभी कोकडु रंधाता नहीं है, तैसेंही सर्व पदार्थोंके स्वरूपका प्रकट करनेवाला जैनमत पाकरकेभी, पापवुद्धि बुरे जन, तुल्यकथाके श्रवण करनेसेंभी वोधकों प्राप्त नहीं होते हैं. ॥६।७।८।९।१०।११।१२।१३॥

अथ ग्रंथकार तत्त्वनिर्णय करनेकों कहते हैं.

हठी हठे यद्वदति प्लुतः स्यान्नौर्नावि बद्धा च यथा समुद्रे ॥
तथा परप्रत्ययमात्रदक्षो लोकः प्रमादाम्भसि बम्भ्रमीति ॥१४॥

व्याख्या–यह मोदक मेरी माताका बनाया हुआ है, ऐसा जानके जे बालक तिसके अच्छेपणेका आग्रह करते हैं, और विना विचारे तिसकों ग्रहण करते हैं, वे पीछे परिताप (पश्चात्ताप) कों प्राप्त होते हैं. जैसें विना परीक्षाके करे सुवर्णका ग्रहण करनेवाला पुरुष, पीछे पश्चात्ताप करता है, यथा धिग् है मेरेकों जो मैने विना परीक्षाकेकरे सुवर्णके बदले पीतल ग्रहण किया. ऐसेही जे पुरुष अपने २ कुलकी रूढिसें माने अधर्मकों धर्म मानके कूद रहे हैं, और सत्य धर्मका निर्णय नहीं करते हैं, वे पक्षपाती पुरुष पीछे पश्चात्ताप करेंगे, लोहवणिक्वत्. ॥ १९ ॥

अथ तत्त्वज्ञानप्राप्तिका उपाय दिखाते हैं.

श्रोतव्ये च कृतौ कर्णौ वाग् बुद्धिश्च विचारणे॥
यःश्रुतं न विचारेत स कार्यं विन्दते कथम् ॥ २० ॥

व्याख्या–सुननेयोग्य वस्तुमें तो दोनो कान करेहैं, वचन और बुद्धि ये दोनों तत्त्वके विचारणेमें प्रवृत्तमान करेहैं, सो पुरुष तत्त्वज्ञानकों प्राप्त होता है, परंतु जो सुणके विचारता नहीं है, सो पुरुष कार्यकों अर्थात् तत्त्वकों कैसें जाणे ? ॥ २० ॥

नेत्रैर्निरीक्ष्य विषकण्टकसर्प्पकीटान्
सम्यग् यथा व्रजति तान् परिहृत्य सर्वान् ॥
कुज्ञानकुश्रुतिकुदृष्टिकुमार्गदोषान्
सम्यग् विचारयथ कोत्र परापवादः ॥ २१ ॥

व्याख्या–जैसें विषकंटक सर्प कीडे इन सर्वकों मार्गमें चलता हुआ, नेत्रोंसें देखकरके सम्यक् प्रकारे सर्व ओरसें परिवर्जन करता है, इसमें जो कहे कि, यह पुरुष रस्तेमें विषकंटक सर्प कीडे इनकों वर्जके चलता है, इसवास्ते यह पुरुष विषकंटकादिका निंदक है, क्या वो उसके कहनेसें पूर्वोक्त वस्तुयोंका अपमान करनेवाला सिद्ध होसक्ता है ? कदापि नहीं होसक्ता है. ऐसेही जो पुरुष कुज्ञान, कुश्रुति, कुदृष्टि, कुमार्ग–कुज्ञान-अज्ञान, पदार्थके स्वरूपकों विपर्यय कथन करना. जैसें आत्मा चारभूतोंसें

येवै नेया विनयनिपुणैस्ते क्रियन्ते विनीता
नावैनेयो विनयनिपुणैः शक्यते संविनेतुम् ॥
दाहादिभ्यः समलममलं स्यात् सुवर्णं सुवर्णं
नायस्पिंडो भवति कनकं छेददाहक्रमेण ॥ १७ ॥

व्याख्या—जे विनयवंत विनयमें निपुण पुरुष हैं, तिनकोंही विनयनिपुण पुरुषोंहीने विनयवंत करणेकों समर्थ होइए हैं, परंतु अविनीतप्रकृतिवालेकों विनयवंत करणेमें समर्थ नहीं होइए हैं. दृष्टांत—जैसें भले वर्णादिवाले सुवर्णकोंही दाह ताडन छेदादिकरके अमल (निर्मल) सुवर्ण सिद्धकरशकीए हैं, अर्थात् समलसुवर्णही दाहादिकों करके निर्मल सुवर्ण होता है, परंतु छेददाहादिक्रमकरके लोहका पिंड, कनक (सुवर्ण) नहीं होता है, ऐसेंही जे योग्य पुरुष हैं, वेही उपदेशकों सुणके शुभपरिणामांतरको प्राप्त होसक्ते हैं, अयोग्य पुरुष नहीं होसक्ते हैं. ॥ १७ ॥

अथ बाह्य पदार्थका लक्षण कहते हैं.

आगमेन च युक्त्या च योर्थः समभिगम्यते
परीक्ष्य हेमवद्ग्राह्यः पक्षपाताग्रहेण किम् ॥ १८ ॥

व्याख्या—आगमकरके और युक्तिकरके जो अर्थ—पदार्थ सिद्ध होवे, सोही दाहताडनछेदादिक्रमकरके सुवर्णकीतरें परीक्षा करके ग्रहण करने योग्य है, अर्थात् परीक्षक जनोंकों परीक्षापूर्वक सोही ग्रहण करना चाहिये कि, जो पदार्थ परीक्षामें पक्का हो जावे, किंतु पक्षपात आग्रहकों धारण न करना चाहिये. क्यों कि, पक्षपात—जूठा आग्रह करणेसें क्या लाभ है? कुछभी लाभ नहीं हैं ॥ १८ ॥

अब जो विना विचारे तत्त्वपदार्थ ग्रहण करता है, सो पीछेसें पश्चात्ताप करता है, सोइ दिखाते हैं.

मातृमोदकवद्बाला ये गृह्णन्त्य विचारितम् ॥
ते पश्चात्परितप्यन्ते सुवर्णग्राहको यथा ॥ १९ ॥

सर्व आगमसें अर्थात् आगम—वेदस्मृतिपुराणादि जैसा तिनका जीवनचरित्र प्रतिपादन करते हैं, तिनकों सुणके वा वांचके पूर्वोक्त देवोंके चारित्रकों जाणकर तिन देवोंके स्वरूपगुणका निर्णय करिए तो, इसमें विचार करो कि, क्या किसी देवकी निंदा है ? ॥ २२ ॥

अब पूर्वोक्त देवोंका किंचित् स्वरूप ग्रंथकार दिखाते हैं.

विष्णुः समुद्धतगदायुधरौद्रपाणिः
शंभुर्ललन्नरशिरोऽस्थिकपालपाली ॥
अत्यन्तशान्तचरितातिशयस्तु वीरः
कम्पूजयामउपशान्तमशान्तरूपम् ॥ २३ ॥

व्याख्या—उगरी हुइ गदारूप करके रौद्रपाणी, अर्थात् भयानक जिसका हाथ है, ऐसे स्वरूपवाला तो विष्णु है; और गलेमें मनुष्यके कपालोंकी मालावाला स्वरूप, महादेवका अर्थात् ऐसे स्वरूपवाला महादेव है; और अत्यंत शांतरूप चरितातिशयवाला वीर महावीर अर्हन् है, यह स्वरूप पुराणादि शास्त्रोंमें और जैनमतके शास्त्रोंमें कथन करा है, तथा प्रत्यक्षमेंभी पूर्वोक्त देवोंका स्वरूप, तिनकी मूर्तियांद्वारा सिद्ध होता है. अब हम वाचकवर्गकों पूछते हैं कि, तुम कहो, अब हम किसकों पूजें ? शांतरूपवालेकों कि अशांतरूपवालेकों ? ॥ २३ ॥

अब ग्रंथकार पूर्वोक्तदेवोंके कृत्योंका किंचित् स्वरूप दिखाते हैं.

दुर्योधनादिकुलनाशकरो बभूव विष्णुर्हरस्त्रिपुरनाशकरः किलासीत्॥
क्रौञ्चं गुहोपि दृढशक्तिहरं चकार वीरस्तु केवल जगद्धितसर्वकारी २४

व्याख्या—दुर्योधनादि अनेक राजायोंके कुलोंका नाश करनेवाला विष्णु, कृष्ण होता भया, यह कथन महाभारतादि ग्रंथोंमें प्रसिद्ध है; और हर महादेव, त्रिपुरनामक दैत्यका नाश करनेवाला निश्चयकरके होताभया, और कार्तिकेयभी, क्रौंचनामक राजाकी दृढशक्तिका हरन—नाश करने अर्थात् क्रौंचराजाकी दृढशक्तिका नाश करनेवाला हुआ है, परंतु श्रीमहावीर तो, केवल सर्वजगत्के हितके करनेवाले हुए हैं. अब कहो ! किसकी हम पूजा करीए ? ॥ २४ ॥

ही उत्पन्न होताहै, अथवा आत्मा एकांत नित्यही है, अथवा आत्मानामक कोई पदार्थ है नहीं, एकांतक्षणिक विज्ञानाद्वैतरूपही तत्त्व है, एकान्त ब्रह्मा द्वैतरूपही तत्त्व है, अथवा आत्मा सर्वव्यापक है, अथवा अंगुष्ठपर्वमात्र, वा तंदुलमात्र, वा स्यामाकधान्याजितना आत्मा है; सृष्टि, प्रलय, ईश्वर करता है, जीवोंके कर्मोंका फलप्रदाता ईश्वर है, वा जीवोंका पूर्वोत्तर जन्म नहीं है, इत्यादि चैतन्य, ओर जडपदार्थोंके स्वरूपका विपरीतकथन जिस शास्त्रमें होवे, सो शास्त्र अज्ञानरूप है.

तथा कुश्रुति,–जिस शास्त्रमें जीवहिंसा करणेमें धर्म कथन करा होवे, यथा 'वेदविहिता हिंसा धर्माय' इत्यादि, तथा जिस शास्त्रके श्रवण करणेसें श्रोताकों अधर्मबुद्धि उत्पन्न होवे, वात्स्यायनादिकामशास्त्रवत्, सो कुश्रुति.

कुदृष्टि,–जिसकी बुद्धि, कुदेव, कुगुरु, कुधर्मकरके वासित होवे, सो कुदृष्टि; और कुमार्ग, एकांत नित्य, एकांत अनित्य, इत्यादि दुर्नयके मतसें जिस शास्त्रमें कथन करा होवे, संसारके मार्गकों मोक्षका मार्ग, और मोक्षमार्गकों संसारका मार्ग कहना, तथा सम्यग् देव गुरु धर्मका स्वरूप जिसमें कथन नहीं करा होवे, सो कुमार्ग, इत्यादिदूषणोंकों त्यागके शुद्धमार्गकों कथन करे, अर्थात् सद्ज्ञान, सत्श्रुति, सद्दृष्टि, सन्मार्गका कथन करे, और पूर्वोक्त वस्तुयोंका निषेध करे तो, इसमें दूसरोंका क्या अपवाद है? अर्थात् क्या निंदा है? सो, परीक्षको! तुमही विचार करो ॥ २१ ॥

प्रत्यक्षतो न भगवानृषभो न विष्णु
रालोक्यते न च हरोन हिरण्यगर्भः ॥
तेषां स्वरूपगुणमागमसंप्रभावा
ज्ज्ञात्वा विचारयथ कोत्र परापवादः ॥ २२ ॥

व्याख्या–प्रत्यक्ष प्रमाणसें तो, न भगवान् ऋषभदेव दिखलाइ देता है, और न प्रत्यक्षप्रमाणसें विष्णु दिखलाइ देता है, और न हर–महादेव दीखता है, न ब्रह्माजी दीखता है, अब इन पूर्वोक्त देवोंका स्वरूप जाण्याविना कैसें जाना जावे कि, तिनमें कैसे कैसे गुण थे? इसवास्ते ये

राागी च यो भवति यश्च विमुक्तरागः
पूज्यस्तयोः क इह ब्रूत चिरं विचिन्त्य ॥ २७ ॥

व्याख्या—जो एक तो दयाकों छोडके परके बध करणेकेवास्ते उद्यत हो रहाहै, और जो एक जगत्के त्राणकेतांइ अर्थात् जगद्वासि जीवोंकी रक्षाकेवास्ते शरणकों प्रवृत्त हुआ है, अर्थात् शरण्यभूत है; और जो एक रागी है, और जो वीतराग है, इन दोनोंमेंसे पूज्य—पूजनेयोग्य कौनसा देव है? सो, हे पाठकजनो! तुम चिरकालतक चिंतन करके कहो ॥२७॥

शक्रं वज्रधरं बलं हलधरं विष्णुं च चक्रायुधं
स्कन्दं शक्तिधरं श्मशाननिलयं रुद्रं त्रिशूलायुधम् ॥
एतान् दोषभयार्दितान् गतघृणान् बालान् विचित्रायुधान्
नानाप्राणिषु चोद्यतप्रहरणान् कस्तान्नमस्येद्बुधः ॥ २८ ॥

व्याख्या—वज्र धारण करनेवाले इंद्रको, हलमुशलके धारनेवाले बलदेवको, और चक्र धरनेवाले विष्णुको, शक्तिके धरनेवाले कार्तिकेयको, श्मशानमें रहनेवाले और त्रिशूलके धरनेवाले रुद्र-महादेवको, इन पूर्वोक्त दोषभयकरके पीडित, दयारहित, अज्ञानी, विचित्र प्रकारके शस्त्र रखनेवाले, और नानाप्रकार प्राणियोंकेउपर शस्त्रके उगरने वा चलानेवाले देवोंको, कौन बुध प्रेक्षावान् नमस्कार करे? अपितु कोइभी न करे ॥ २८ ॥

न यः शूलं धत्ते न च युवतिमङ्के समदनां
न शक्तिं चक्रं वा न हलमुशलाद्यायुधधरः ॥
विनिर्मुक्तं क्लेशैः परहितविधावुद्यतधियं
शरण्यं भूतानां तमृषिमुपयातोऽस्मि शरणम् ॥ २९ ॥

व्याख्या—जो देव, त्रिशूल धारण नहीं करता है, और कामयुक्त स्त्रीको अपने खोलेमें नहीं धारण करता है, तथा जो शक्तिको, और चक्रको धारण नहीं करता है, तथा जो हलमुशलादि शस्त्रोंका धारनेवाला नहीं है, तिस रागद्वेष अज्ञानकामादि सर्वक्लेशोंसें रहित, परजीवोंके हित

पीड्यो ममैष तु ममैष तु रक्षणीयो
मथ्यो ममैष तु न चोत्तमनीतिरेषा॥
निःश्रेयसाभ्युदयसौख्यहितार्थबुद्धे-
वीरस्य सन्ति रिपवो न च वञ्चनीयाः ॥ २५ ॥

व्याख्या—यह मेरेकों पीडनेयोग्य—दुःख देनेयोग्य है, और यह मेरेकों रक्षणेयोग्य है, और यह मेरेकों मथने योग्य है, और यह मथने योग्य नहीं है, इत्यादि यह पूर्वोक्त नीति—न्याय पूर्वोक्त काम करनेवाले देवोंका उत्तम कर्म नहीं है, 'रागद्वेषपूर्वकत्वात्'—और जिससें जीवोंको मुक्ति, और पुण्यानुबंधी पुण्यके उदयसें स्वर्गप्राप्तिरूप सुख, और इसलोक-परलोकमें हित होवे, ऐसी बुद्धिवाले अर्थात् ऐसे ज्ञानसत्योपदेशवाले, श्रीमहावीर भगवंतके रिपु वैरि तो जगत्में बहुत हैं, परंतु श्रीमहावीरजीकों वंचनीय कोईभी नहीं है, अर्थात् बध्य करणे योग्य, पीडा देने योग्य, मथनेयोग्य, कोईभी नहीं है. वीतरागत्वात्. ॥ २५ ॥

रागादिदोषजनकानि वचांसि विष्णो
रुन्मत्तचेष्टितकराणि च यानि शंभोः ॥
निःशेषरोषशमनानि मुनेस्तु सम्यग्-
वन्द्यत्वमर्हति तु को नु विचारयध्वम् ॥ २६ ॥

व्याख्या—पुराणादि शास्त्रोंमें विष्णुके वचनरागादिदोषोंके जनक उपलब्ध होतेहैं; और पूर्वोक्त शास्त्रोंमेंही शंभु—महादेवके वचन उन्मत्तपणेकी चेष्टाके उपलब्ध होतेहैं; और जैनागममें मुनि श्रीमहावीर अर्हन्के वचन संपूर्ण रोष, उपलक्षणसें रागकामादिके शमन करनेवाले उपलब्ध होतेहैं; अब हे वाचकवर्गो ! तुमपक्षपातकों छोडके अच्छीतरे विचार करो कि, इन पूर्वोक्त देवोंमें वंदना करनेयोग्य कौन देव है ? ॥ २६ ॥

यश्चोद्यतः परवधाय घृणां विहाय
त्राणाय यश्च जगतःशरणं प्रवृत्तः ॥

देवतायोंका वचन सुणके, ब्रह्माने पांचमे गर्दभके मुखसरीसे मुख करी ईर्षासें कहा कि, मेरे सर्व पदार्थके जाननेवालेके जीवतेहुए ऐसें क्यों कहते हो? क्योंकि, महेश्वरके मातापिताका स्वरूप मैं जानता हूं. तदपीछे ब्रह्माजीने कहनेका प्रारंभ करा, तब महेशने अप्रकाशने योग्य प्रकाश करनेसें ब्रह्माउपर क्रोधकरके कनिष्ठिका अंगुलीके नखकरके सर्वदेवतायोंके प्रत्यक्ष शीघ्र ब्रह्माजीका शिर छेदन करा.

कोइक ऐसें कहते हैं कि ब्रह्मा और वासुदेव इन दोनोंका अपने अपने बडपणविषे विवाद हुआ, ब्रह्मा कहै मैं बडा हूं, और वासुदेव कहै मैं, दोनों जने विवाद करते हुए महेश्वरके पास गए, महेशने कहा तुम जिद मत करो, परंतु तुमारे दोनोंमेंसे जो मेरे लिंगके अंतको पावेगा, सोइ बडा, अन्य नहीं; तिस पीछे विष्णु तो लिंगका अंत देखने वास्ते बडे वेगसें अधोलोकको गया; परंतु लिंगका अंत न पाया, क्यों कि पातालके वडवानलके सबबसें आगे न जा सका, तबसें ही कृष्ण, काले शरीरवाला होके पाछा आया, और महादेवको कहने लगा कि, तुमारे लिंगका अंत नहीं है.

और ब्रह्माभी, तैसेंही ऊपरको जाता हुआ, परंतु लिंगके अंतको प्राप्त नहीं हुआ, तब खेदको प्राप्त हुआ, तिस अवसरमें महेशके लिंगके मस्तकके ऊपरसें पडती हुई माला प्राप्त हुई, तब ब्रह्मा मालाको पूछता हुआ कि, तूं कहांसें आई है? मालाने जवाब दिया कि, लिंगके मस्तकोपरसें आई हूं; ब्रह्मा बोला, आतीहुई तेरेको कितना काल लगा? मालाने कहा, छ मास, तब ब्रह्माने कहा, ऐसे वेगसें चलनेवाली तुझको छ मास लगे है तो, लिंगका अंत बहुत दूर है, इसवास्ते मैं थाकके पाछा जाताहूं, परंतु अंतकी पृच्छामें तैनें साक्षी देनी; मालाने ब्रह्माका कहना मान्य करा, तब तिसको साथ लेके ब्रह्मा शंभुके पास जाताहुआ, और कहता हुआकि मैंने लिंगका अंत पाया, और साक्षीकेवास्ते इस मालाको साथ ल्यायाहूं. तब शंभुने मालाको पूछा, मालाने कहा जैसें ब्रह्मा कहता है, तैसेंही है, तब अनंतलिंगको सांत करनेवाले ब्रह्मा, और जूठी साक्षी देनेवाली माला, दोनोंके उपर ईश्वर कोपायमान हुआ, कनिष्ठिकाके नखसें ब्रह्माका गर्दभाकार शिर छेदन करा, और मालाको अस्पृश्यपणेका शाप दीया.

करनेमें सावधान बुद्धिवाले, और जगद्वासि जीवोंके शरणभूत, ऋषि, सच्चे देवके शरणको मैं प्राप्त हुआहूं ॥ २९ ॥

रुद्रो रागवशात् स्त्रियं वहति यो हिंस्रो ह्रिया वर्जितो
विष्णुः क्रूरतरः कृतघ्नचरितः स्कन्दः स्वयं ज्ञातिहा ॥
क्रूरार्या महिषांतकृन्नरवसामांसास्थिकामातुरा
पानेच्छुश्च विनायको जिनवरे स्वल्पोपि दोषोऽस्ति कः ॥३०॥

व्याख्या—रुद्र—महादेव रागके वशसें स्त्रीको वह रहा है, और जीवहिंसा करनेवाला है, और लज्जाकरके वर्जित है, विष्णु अतिशयकरके क्रूर और कृतघ्नचरितवाला है, स्कंद आपही अपनी ज्ञातिका हननेवाला है; निर्दय काली भवानी भैंसोंके अंत करनेवाली मनुष्योंकी चर्बी मांस हाडोंकी इच्छावाली कामातुर है; और विनायक पीनेकी इच्छावाला है, परंतु जिनवरमें पूर्वोक्त दूषणोंमेंसे स्वल्पमात्रभी कोइ दूषण है? अपितु कोइभी नहीं॥३०॥

ब्रह्मा लूनशिरा हरिर्दृशि सरुक् व्यालुप्तशिश्नो हरः
सूर्योप्युल्लिखितोनलोप्यखिलभुक् सोमः कलङ्काङ्कितः ॥
स्वर्नाथोपि विसंस्थुलः खलु वपुः संस्थैरुपस्थैः कृतः
सन्मार्गस्खलनाद्भवन्ति विपदः प्रायः प्रभूणामपि ॥ ३१ ॥

व्याख्या—ब्रह्माजीका शिर कटागया, विष्णुके नेत्रमें रोग हुआ, महादेवका लिंग टूट गया, सूर्यका शरीर त्राछ गया, अग्नि सर्वभक्षी हुआ, चंद्रमा कलंकवाला हुआ, और इंद्रभी सहस्रभगकरके बुरे शरीरवाला हुआ; क्योंकि, सन्मार्ग (अच्छेमार्ग) सें स्खलायमान (भ्रष्ट) होनेसें, प्रायः समर्थ पुरुषोंकोभी दुःख होतेहैं· इसका भावार्थ कथानकोंसें जानना· तथाहि—

ब्रह्माजीका शिर क्यों कटा? सो लिखते हैं· एकदा प्रस्तावे तेतीस कोटी देवता एकत्र मिले, तहां सर्व परस्पर मातापितायोंका वर्णन करते हुए, तहां तिन्होंनें कहा कि, बडा आश्चर्य है जो महेश्वरके माता पिता जाननेमें नहीं आते हैं, इसवास्ते महेश्वरके मातापिता नहीं हुए हैं; ऐसा

कहा कि, मैं स्वर्गमें जानेको ईच्छता हूं, इसवास्ते तूं भार्यासहित गोरूप होके रथमें जुडके मुझे स्वर्गमें पहुंचता कर, परंतु तुमने रस्ते चलते हुए पीछेको नहीं देखना. तब कृष्णजीने भक्ति और भयसें तिसका वचन अंगीकार करा, और ऋषिको स्वर्गमें लेजानेको प्रवृत्त हुआ. रस्तेमें स्त्रीहोनेसें तथा विध चलनेकी शक्तिके न होनेसें, लक्ष्मीको मुनि प्राजनक दंडकरके वारंवार प्रेरता हुआ, तिस प्रेरणाको हरि स्नेहकरके असहन करता हुआ, लक्ष्मीके सन्मुख देखता हुआ, तब दुर्वासा ऋषिने अंगीकृतके न निर्वाह करनेसें कृष्णके उपर कोप करके तिसके नेत्रोंको प्राजनकसें प्रेरणा करी, ऐसे हरिके लोचनोंमें रोग उत्पन्न भया.

अन्य ऐसे कहते हैं कि—एकदा प्रस्तावे कृष्णजी तलावके कांठेऊपर तप तपतेथे, तहां कोइ तापसनी स्नान करतीथी, कृष्णने तिसका नग्नपणा सकाम दृष्टिसें देखा, तापसनीने तैसा जानकर शाप देके, लोचन सरोग करा.

महादेवका लिंग ऐसे टूटा—दारुवन नामक तपोवनमें तापस वसतेथे, तिनकी कुटियोंमें महादेव भीख मांगनेकेवास्ते अपना समस्त अलंकार और घंटोंकी टंकारसे दिगंतराल मुखर करता हुआ जाताथा, तापसनीको देखके महादेवको विकार उत्पन्न हुआ, तब महेश्वरने तिसकेसाथ भोग करा. यह वृतांत ऋषियोंने जाना, तब ऋषियोंने अतिकोपसे शाप दिया, तब शिवका लिंग टूटगया, तदपीछे सर्वजनोंके लिंग टूट गए, और जगतोत्पत्ति बंध होगई. तब देवतायोंने विचार करा कि, यह तो अकालमेंही संहार होनेलगा, ऐसे चिंतके तिनोंने तापसोंको प्रसन्न करा, तब तिनोंने तैसाही लिंग करदीया, परंतु यह कहदिया कि, यह लिंग, आगे तो सदाही स्तब्ध रहता था, परंतु आजपीछे जब कामार्थी होवेगा, तबही स्तब्ध, होवेगा, तदपीछे सर्वलोकोंकेभी लिंग वैसेही होगए.

सूर्यका शरीर ऐसे त्राछा गया—पहिलां सूर्यकी रत्नादेवी नामा भार्या थी, तिसका यम नामा पुत्र होता भया, रत्नादेवी सूर्यका ताप नहीं सहन करती हुई, अपने स्थानमें अपनी प्रतिच्छायाकों स्थापनकरके समुद्रके तटपर जाकर वडवा (घोडी) का रूपकरके रहती हुई; प्रतिच्छाया, शनैश्चर भद्रानामके अपत्योंको जनती हुई. एकदा प्रस्तावे बाहि-

और मत्स्यपुराणके १८२ अध्यायमें ऐसें लिखा हैं.

[पार्वतीजी महादेवजीसें पूछती है] जिस हेतुसें आप इस स्थानकों नहीं छोडते उस उत्तम हेतुकोभी वर्ण कीजिये. यह सुनकर महादेवजीने कहा कि, हे देवि ! पूर्वकालमें ब्रह्माजीके पांच शिर होतेभये, उनमें पांचवाँ शिर सुवर्णकेसमान कांतिवाला था, फिर एकसमय वह ब्रह्माजी मुझसें कहने लगे कि, मैं तुम्हारे जन्मको जानता हूं, तब मैंने क्रोधकरके अपने बायें अंगूठेके नखसें ब्रह्माका वह पांचवाँ शिर छेदन करदिया; तब ब्रह्माजीने कहा कि, तुमने विनाही अपराधके मेरा शिर काटडाला है, इसलिये मेरे शापसे तुम कपाली होगे, अर्थात् तुम्हारे हाथमें कपाली चिपक जायगी, तब तुम ब्रह्महत्यासें व्याकुल होकर तीर्थोंपर विचरोगे, उनके शापको सुनकर मैं हिमवान् पर्वतपर चला गया, वहाँ नारायणके पाससे मैंने भिक्षा मांगी, तब नारायणने अपने नखके अग्रभागसे वह मेरे हाथकी कपाली उतारली, उसके उतारतेही उसमेंसे बहुतसी रुधिरकी धारा निकली, और ५० योजनके विस्तारमें वह रुधिरकी धारा फैल गई, और कपालीभी फैलकर बडे अद्भुत भयंकररूपसें घोर दीखती भई; इसके पीछे वह रुधिरकी धारा दिव्य हजार वर्षोंतक वहती भई, तब विष्णु भगवान् मुझसे कहने लगे कि, यह ऐसा कपाल तुम्हारे हाथमें कैसे लगगया था ? इस मेरे हृदयके संदेहको आप मेरे आगे कहिये; तब मैंने कहा कि, हे देव ! आप इस कपालकी उत्पत्तिको श्रवण कीजिये. पूर्वकालमें हजारों वर्षोंतक ब्रह्माजीने दारुण तपस्याकरके अपने दिव्यशरीरको रचा, उनके तपके प्रभावसे सुवर्णके समान कांतिवाला पांचवाँ शिर होताभया, उन ब्रह्माजीके पांचवें शिरकों मैंने क्रोधकरके काटडाला, उसी शिरकी यह कपाली है—इत्यादि.

हरि—कृष्ण, नेत्रविषे रोगी ऐसे हुए—दुर्वासा महाऋषिको उर्वशीकेसाथ भोग करनेकी इच्छा हुई, तब उर्वशीने दुर्वासाऋषिको कहा कि, जेकर तूं अपूर्व यान (असवारी) में बैठके स्वर्गमें आवेगा तो, मैं तुझकों अंगीकार करुंगी; यह सुनकर दुर्वासा ऋषि कृष्ण वासुदेवके पास गया, तिन्होंने ऋषिकी स्वागत करी, और आगमनका कारण पूछा तब ऋषिने

वह छायानाम स्त्री संज्ञाके आगे खडी होकर बोली कि मैं क्या करूं? तब संज्ञाने कहा कि, हे वरानने ! तूं इस मेरे पति सूर्यको ही भज, और मेरी संतानको माताके समान अपना स्नेहकरके पालन कर; फिर तथास्तु अर्थात् ऐसाही करूंगी इस प्रकारसे अंगीकार करके वह छाया सूर्यको प्राप्त हुई- तब सूर्यभी उसको संज्ञाकेही समान जानकर बडे आदर भावसे उसकेसंग भोग करनेलगे, उसमें दूसरा मनु नाम पुत्र उत्पन्न हुआ, यह मनु पूर्वके मनुका सवर्णी होकर सावर्णि नाम मनु विख्यात हुआ, फिर उसी छायामें सूर्यसे शनैश्चर, तपती और विष्टि, यह संतान उत्पन्न हुई- इसके अनंतर वह छाया अपने पुत्र सावर्णिनाम मनुमें अधिक स्नेह करनेलगी, इस बातको प्रथम मनुने तो सहालिया, परंतु यम न सहसके, और महाक्रोधित होकर यमने उस छायाके पुत्र मनुको दाहिन पैरसे ताड़न किया, तब छायाने यमको यह शाप दिया कि, यह तेरा पैर पीवयुक्त कीटोंसे भरे घाववाला होकर राधसे झिरे-

फिर यम इसशापको न सहकर, अपने पिताके पास जाकर यह बोले कि, हे देव! माताने मुझे निरपराध शापित करदिया है, मैंने बालकपणेसे जरा पैरको उठादिया था, उस समय मनुने उसको निषेधभी किया था, परंतु उसने शाप देही दिया- हे विभो ! जो कि उसने हमको शापसे हत कर दिया है, इसहेतुसे वह विशेषकरके हमारी माता नहीं है, तव सूर्यने कहाकि, हे महामते ! मैं क्या करूं ? मूर्खतासे अथवा कर्मके प्रभावसे कहो, किसको दुःख नहीं होता है ? शिवजीसेभी कर्मकी रेखा दूर नहीं होती है तो, अन्यजनोंकी क्या बात है ? हे पुत्र ! मैं तुझे मुरगा दूंगा, वह तेरे कृमियोंको भक्षण करके राधरुधिरकोभी खा कर दूर करदेगा- पिताके इसवचनको सुनकर यम दारुण तपस्या करनेलगे, अर्थात् गोकर्ण तीर्थपर जाके सर्व वस्तुओंको त्याग, फल, मूल, पत्र और वायु, इनका आहार करनेलगे, वहां दश किरोड वर्षोंतक यमने महादेवजीका तप किया, तब शूलधारी शिवजी उसपर प्रसन्न होकर बोले कि, वर मांग- तब यमने संसारके कियेहुए पापपुण्योंको जान लेनाही वर मांगा, इस-

रसें आएहुए यमनें भोजन मांगा, च्छायाने भोजन नहीं दिया, तदा यमने लातका प्रहार करा, तब छायाने शाप देके यमका पग रोगवाला करदिया, यमने अपने पिता सूर्यको कहा, सोभी सुणके चिंतवन करता हुआ कि, स्वमाता ऐसे कैसें करे ? इसवास्ते यह असली यमकी माता नहीं है. ऐसे चिंतवन करतेहुए सूर्यने वडवाके रूपमें यमकी माताको देखी, तब सूर्य तिसकी इच्छाविनाहि जोरावरीसें तिसकेसाथ भोग करता हुआ, तिससे आश्विनदेवते होतेभए. तिस रत्नाने रोषारुणनयन होके सूर्यको देखा, तब सूर्य कुष्टी होगया, तब सूर्य अपने रोगके दूर करणेवास्ते धन्वंतरिकेपास गया, तब धन्वंतरिने कहा कि, तेरा शरीर विनाछीले अच्छा नहीं होवेगा, तब सूर्यने अपने शरीरको छीलावनेवास्ते देववढइको प्रार्थना करी, तब तिसने कहा कि, पीडा सहनेवाला होवे तो त्राछुं अन्यथा नहीं; सूर्यने कहा जैसे तुम कहोगे तैसे हि होवेगा, तब मस्तकसे लेके जानुतांइ त्राच्छनेमें बहुत पीडा हुई, तब सूर्यने सीत्कार करा, तब बढाइने त्राछना छोड दिया.

अन्य ऐसे कहतेहैं—वडवारूप स्वभार्याको भोगके सूर्य तिसके पिताको उपलंभ देता हुआ कि, तेरी पुत्री मुझको छोडके अन्य जगे रहती है, सो कहता हुआ कि, तेरा ताप न सहन करनेसे वो क्या करे? इसवास्ते जेकर तिस मेरी पुत्रीके साथ तेरा प्रयोजन है तो, अपना शरीर छीलवा ले, तिससें तेज मंद होजावेगा, तब सूर्यने देववढइसे शरीर छीलवाया.

और मत्स्यपुराणके ११ एकादश अध्यायमें ऐसे लिखा है—ऋषियोंने पूछा हे सूतजी ! आप यथार्थक्रमसे सूर्यवंश और चंद्रवंशको वर्णन कीजिये. सूतजी बोले प्रथम अदितिस्त्रीमें कश्यपजीसे सूर्य उत्पन्न हुए, उनकी संज्ञा, राज्ञी और प्रभा, यह तीनों नामवाली तीन स्त्रियां होतीं भई. इनमें वह रैवतीकीपुत्री राज्ञीनाम सूर्यकी स्त्रीने रेवतनाम पुत्रको उत्पन्न किया, प्रभास्त्रीने प्रभातनाम पुत्रको उत्पन्न किया, और संज्ञानाम स्त्रीने मनुनाम पुत्रको उत्पन्न किया, और इसी स्त्रीने यम और यमुना, इन दोनों पुत्रपुत्रियोंकोभी उत्पन्न किया. फिर वह संज्ञास्त्री जब सूर्यके तेजको न सहती भई, तब उसने अपने शरीरसे छाया नाम बडी उत्तम स्त्रीको उत्पन्न किया.

वाले घोडेका रूप बनाकर उस घोडीरूप संज्ञाके पास पहुंचे; तब संज्ञा मनसे क्षोभको प्राप्त होकर भयसे विव्हल होती भई, और उस सूर्यसेही धारण किये हुए वीर्यको परपुरुषकी शंका करके अपनी नासिकाके दोनों छिद्रोंके द्वारा बाहर त्यागती भई, उसी वीर्यसे अश्विनीकुमार उत्पन्न होते भये. अश्वसे उत्पन्न होनेसे उनको दस्रौ कहते हैं, और नासिकाके द्वारा होनेसे नासत्यौ ऐसाभी कहते हैं.

अग्नि सर्वभक्षी ऐसे हुआ—पहिले कोइक ऋषि अपनी कुटीमें वैश्वानरको बडी भक्तिसे आहुतियोंकरी पूजता था, सो एकदा अग्निको कहनेलगा कि, तूं मेरी भार्याकी रखवाली करी, ऐसे कहकर ऋषि बाहिर गया. तब पीछे कामांध होके किसी ऋषिने अग्निके प्रत्यक्षही ऋषिपत्नीके साथ भोग करा, क्षणांतरमें सो ऋषि आया, तिसने इंगिताकारकरके अपनी भार्याको परपुरुषने भोगी जानके अग्निको पूछा कि, यहां कौन आयाथा? तब दोनोंमेंसें किसीनेभी उत्तर न दिया, परंतु तिस ऋषिने अपने ज्ञानकरके तिस उपपतिको जान लिया, तब रक्षणेयोग्यकी रक्षा न करनेसें और पूछेका उत्तर न देनेसें ऋषिने अग्निके उपर क्रोध करा, और शाप दिया कि, तूं सर्वभक्षण करनेवाला होवेगा. तब अग्नि अशुचि आदि सर्व भक्षण करने लगा, और जो कुछ गंदकी आदि अग्नि भक्षण करे सो सर्व देवताओंको प्राप्त होने लगा. "अग्निमुखा वै देवा" इतिश्रुतिवचनप्रामाण्यात्, तब अशुचि रस खानेसें उद्विग्न हुए देवते, अपने ज्ञानसें शापका व्यतिकर जानकर तिस ऋषिकों प्रसन्न करनेलगे, परंतु ऋषिने माना नहीं. अंतमें देवताओंके अतिआग्रहसें अग्निको सप्तजिव्हावाला कर दिया, तबसें अग्निका नाम सप्तार्चि प्रसिद्ध हुआ. तिनमें दो जिव्हासें आहुतिं भोगने लगा, वह देवताओंको पहुंचने लगी, और शेष पांच जिव्हासें सर्व भक्षी स्थापन किया.

चंद्रमाकों ऐसे कलंक लगा—चंद्रमा बृहस्पतिके पास पढताथा, तिसने बृहस्पतिकी भार्याकेसाथ भोग करा, सो वृत्तांत बृहस्पतिने जाना, तब तिसने चंद्रमाको शाप दिया कि, हे गुरुपत्नीउपभुंजक! तूं सदा कलंकवान् हो.

प्रकार करके वह यम, शिवजीके प्रभावसे लोकपाल होजाताभया, फिर अधर्मोंकाभी जाननेवाला होकर, सब पितरोंका पति होता भया.

इसकेपीछे सूर्यदेवता, प्रथम कियेहुए संज्ञाके कर्मको जानकर, उसके पिता, त्वष्टाके पास गये, और क्रोध होकर उससे बोले कि, तुम्हारी पुत्रीने मेरी विनाआज्ञा ऐसा कर्म किया. यह सुनकर हे ऋषियो ! उस त्वष्टाने सूर्यको समझाकर कहा कि, हे भगवन्! यह मेरी पुत्री आपके तेजको न सहकर घोडीका रूप धारण करके मेरे समीप आईथी, सो हे सूर्यदेव ! मैंने उससे यह कहकर उसको लौटादिया कि, सूर्यकी आज्ञा लिये विना जो तू मेरे घर आई है, इसहेतुसे तू मेरे घरमें प्रवेश करनेको योग्य नहीं है. इस मेरे वचनको सुनकर वह मरुस्थल देशमें जाकर घोडीके रूपको धारण करके पृथ्वीमें विचरती है, इस हेतुसे आप प्रसन्न होकर मेरेऊपर दया करो. हे दिवाकरजी ! मैं आपके तेजको यंत्रमें करके पृथक् करदूंगा, और आपके रूपको मनुष्योंका आनंद करनेवालाभी कर दूंगा. तब सूर्यने कहा, ऐसाही करो. तब उस त्वष्टाने सूर्यके तेजको यंत्रमें करके सूर्यसे पृथक् कर दिया, फिर उसी पृथक् किये हुए सूर्यके तेजसें, विष्णुका चक्र, शिवजीका त्रिशूल, इंद्रका वज्र और अन्य २ देवताओंके अनेक शस्त्रोंको बनाया.

इसके अनंतर दैत्यदानवोंके नाश कर्त्ता संपूर्ण मूर्तिसे रहित सूर्यको सहस्र किरणवाले विना पैरके सुंदरमुखमात्रही रूपको त्वष्टाने ऐसा बनाया कि, फिर उससूर्यके पैरोंके रूप देखनेकोभी त्वष्टा समर्थ नहीं हुआ, तभीसे सूर्यकी प्रतिमामें कोई उनके पैरोंकी मूर्ति नही बनवाता है और कोई हठसे वा मूर्खतासे उनके पैरोंकी मूर्ति बनावता है वह पापियोंकी महानिंदित गतिको प्राप्त होकर इस संसारके कठिण दुःखोंको भोगता हुआ कुष्ठरोगको प्राप्त होताहै, इसहेतुसे धर्मकामादिकी इच्छाका करनेवाला मनुष्य किसी मंदिर वा स्थानमें किसी स्थानपरभी सूर्यकी मूर्तिमें पैर न बनवावे.

इसके उपरांत सूर्य देवता, उसी मुखकेही रूपसे कामदेवसे पीडित होकर पृथ्वीलोकमें जाकर उस संज्ञाकी इच्छा करतेभये, और बडे तेज-

व्याख्या—कोइ सुगत नृप० हमारा पिता नहीं है. और न अन्य देवते हमारे शत्रु हैं. और न तिन देवताओंने हमको धन दिया है. तैसेंही जिन अरिहंत महावीरनेंभी कोइ हमको धन नहीं दिया है. और न कणाद, गौतम, पतंजलि, जैमिनि, कपिलादिकोंने हमारा किंचित् मात्रभी धन हरा है; किंतु श्रीमहावीर भगवान् एकांत जगतके हितका करनेवाला है. क्यों कि, तिनके वचन अमल, बत्तीस दूषणोंसें रहित, और अष्टगुणोंकरी संयुक्त हैं. और श्रद्धापूर्वक सुणनेवाले, और धारनेवाले श्रोताजनोंके सर्व पापमलके हरनेवाले हैं; इसवास्ते तिस श्रीमहावीरकी भक्तिवाले हम हुए हैं.

अब पूर्वोक्त दूषण और गुण शिष्यजनोंके अनुग्रहकेवास्ते लिखते हैं.

अलियमुवघायजणयं निरत्थयमवत्थयं छलं दुहिलं
निस्सारमाधियमूणं पुणरुत्तं वाहयमजुत्तं च ॥ १ ॥
कमभिन्नं वयणभिन्नं विभत्तिभिन्नं च लिंगभिन्नं च
अणभिहियमपयमेव य सभावहीणं ववहियं च ॥ २ ॥
काल जति छविदोसो समयविरुद्धं च वयणमित्तं च
अत्थावत्ती दोसो य होइ असमास दोसो य ॥ ३ ॥
उवमारूवगदोसो निद्देसपदत्थसंधिदोसो य
एए उ सुत्तदोसा बत्तीसं होंति नायव्वा ॥४॥ इत्यावश्यकबृहद्वृत्तौ.

[भावार्थः] अनृतम्–अणहोया, कहना, जैसें सर्वजगतका कारण प्रधान प्रकृति है, और सद्भूतका निन्हव (निषेध) करना, जैसें आत्मा नहीं है इत्यादि–१।

उपघातजनकम्–जिसमें जीवहिंसाका प्रतिपादन होवे, यथा, वेदविहिता हिंसा धर्मायेत्यादि–२।

निरर्थकम्–वर्णक्रमनिर्देशवत्, यथा "आरादेस्" यहां आर्, आत्, एस्, यह आदेशमात्रकाही कथन है, न कि अभिधेयकरके किसी अर्थकी प्रतीति होवेहै, इसवास्ते निरर्थक; डित्थादिवत्–३।

---

* इसनाम अर्हनकारी है–बुद्धरागेण विद्युत्पादितबुद्धियोगादितिवचनात् ॥

इंद्रभी सहस्र भगकरके बुरे शरीरवाला हुआ, सो ऐसे—पूर्वकालमें गौतमसुनिकी अहल्यानाम भार्या थी, तिसके रूपऊपर मोहित होके तिसकी कुटीमें जाके इंद्र तिसकेसाथ भोग करताभया, इतनेमें गौतमजी कुटीके बाहिर आगए, इंद्र तिसके भयसें मार्जारका रूपकरके स्वर्गमें जाता हुआ. गौतमऋषिने विचारा कि, यह कोइ सामान्य बिडाल नहीं है, इत्यादि विचारकरके जाना कि, यह तो इंद्र है. तब शाप देके इंद्रको सहस्र भगवाला कर दिया, और अपने छात्रोंको तिसकेसाथ भोग करनेवास्ते भेजता हुआ, पीछे देवताओंने ऋषिकों प्रसन्न करा, तब गौतमने इंद्रको सहस्रभगकी जगे सहस्रनेत्रवाला करदिया—इति ॥ ३१ ॥

बन्धुर्न नः स भगवानरयोऽपि चान्ये
साक्षान्न दृष्टतर एकतमोऽपि चैषाम् ॥
श्रुत्वा वचः सुचरितं च पृथग्विशेषं
वीरं गुणातिशयलोलतया श्रिताः स्म ॥ ३२ ॥

व्याख्या—सो भगवान् श्रीवीर, हमारा भाइ नहीं है; और अन्य ब्रह्मा, विष्णु, महादेवादि देवते हमारे शत्रु नहीं हैं; और न इन पूर्वोक्त सर्व देवोंमेंसें किसी एककोंभी प्रत्यक्षसें अतिशयकरके हमने देखा है, परंतु पृथग् विशेषवाले वचनको और चरितको अर्थात् जैनागमानुसार श्रीमहावीरके वचन, और तिनका चरित सुणके, और अनंतर काव्यमें लिखेहुए पुराणानुसार अन्यदेवोंके वचन, और चरित सुणके, पृथक् २ तिन चरितोंका विशेष विचार करके, गुणातिशयकी चंचलता करके, हम श्रीमहावीरकोंही आश्रित हुए हैं ॥ ३२ ॥

नास्माकं सुगतः पिता न रिपवस्तीर्थ्या धनं नैव तै-
र्दत्तं नैव तथा जिनेन न हृतं किंचित्कणादादिभिः ॥
किं त्वेकांतजगद्धितः स भगवान् वीरो यतश्चामलम्
वाक्यं सर्वमलोपहर्त्तृ च यतस्तद्भक्तिमंतो वयम् ॥ ३३ ॥

व्याहतम्—जहां पूर्वके कथन करके परका कथन बाध्या जावे, सो व्याहत. यथा "धर्म नास्ति फलं नास्ति कर्ता नास्ति च कर्म्मणामित्यादि" —कर्मभी है और कर्मोंका फलभी है, परं कर्मोंका कर्ता नहीं है. इत्यादि—११।

अयुक्तम्—जो प्रमाणसें सिद्ध न होवे, यथा "तेषां कटतटभ्रष्टैर्गजानां मदविन्दुभिः॥ प्रावर्त्तत नदी घोरा हस्त्यश्वरथवाहिनीत्यादि"—तिन हस्तियोंके गंडस्थलसें भ्रष्ट—हुए टोरे हुए मदविन्दुओंकरके हस्ति अश्व रथोंको वहा देनेवाली घोर नदी, प्रवर्त्तती भई—चलती भई. इत्यादि—१२।

क्रमभिन्नम्—जहां क्रमकरके कथन न होवे. जैसें स्पर्शन, रसन, घ्राण, चक्षुः, और श्रोत्रोंके, अर्थ (विषय) स्पर्श, रस, गंध, वर्ण, और शब्द, ऐसे कथनमें स्पर्श, रूप, शब्द, गंध और रस, ऐसे कहना, सो क्रमभिन्न.—१३।

वचनभिन्नम्—वचनका व्यत्यय होना, यथा वृक्षावेतौ पुष्पिता इत्यादि—१४।

विभक्तिभिन्नम्—विभक्तिका व्यत्यय होना, अर्थात् प्रथमादिविभक्तिके स्थानमें द्वितीयादिका कहना, यथा एष वृक्षमित्यादि—१५।

लिंगभिन्नम्—लिंगव्यत्यय होना, स्त्रीलिंगादिके स्थानमें पुंलिंगादिका होना, यथा अयं स्त्रीइत्यादि—१६।

अनभिहितम्—अपने सिद्धांतमें जो नहीं कहा है, तिसका कथन करना, सो अनभिहित, जैसें सप्तम पदार्थ, दशम द्रव्य, वा वैशेषिककों; प्रधान और पुरुषसें अधिक सांख्यमतकोः चार सत्यसें अधिक शाक्यकों. इत्यादि—१७।

अपदम्—अन्य छंदमें अन्य छंदका कहना, जैसें आर्यापदमें वैतालीय पदका कहना—१८।

स्वभावहीनम्—जो वस्तुके स्वभावसें अन्यथा कहना, यथा अग्नि शीतल, मूर्त्तिमत् आकाश. इत्यादि—१९।

व्यवहितम्—जहां प्रकृतको छोडके, अप्रकृतको विस्तार करके कथन करके, फिर प्रकृतका कथन करना.—२०।

कालदोषः—अतीतादिकालका व्यत्यय करना, जैसें रामचंद्र वनमें प्रवेश करतेभये, इसस्थानमें प्रवेश करतेहैं. इत्यादि—२१।

अपार्थकम्—पूर्वापरसंबंधकरके रहित, जैसें दशदाडिम, छपूडे, कुंडा, अजांचर्म, पललपिंड, कीटिके ! चल, इत्यादि—४।

छलम्—अर्थ विकल्प उपपत्तिकरके वचनका विघात करना, यथा "नव-कंवलो देवदत्त" इत्यादि—५।

द्रुहिलम्—द्रोहस्वभाववाला—यथा—"यस्य बुद्धिर्न लिप्येत हत्वा सर्व-मिदं जगत्। आकाशमिव पंकेन नासौ पापेन युज्यते"॥ जैसे पंककरके आकाश नहीं लिपता है, तैसे जिसकी बुद्धि इस सारे जगत्को मारके लिपती नहीं है, सो पापके साथ जुडता नहीं है, अर्थात् उसको कर्मका बंध पाप नहीं लगता है, इत्यादि—अथवा द्रुहिलं—कलुषं, जिस वचनकरके पुण्य पाप एकसदृश होजावे, यथा "एतावानेव लोकोयं यावानिन्द्रिय गोचरः"—जितना इंद्रियोंद्वारा दीखता है इतनाहीमात्र यह लोक है, परं देवलोक नरकादि कुछ नहीं है. इत्यादि—६।

निःसारम्—परिफल्गु, निष्फल, वेदवचनवत्—७।

अधिकम्—वर्णादिकोंकरके अधिक जो वचन होवे, सो अधिक—८।

ऊनम्—वर्णादिकोंकरके हीन—९।

अथवा हेतु उदाहरणोंकरके जो अधिक वा हीन होवे, सो अधिक ऊन, वचन जाणना. जैसें शब्द अनित्य है, कृतकत्व और प्रयत्नानंतरीयकत्व होनेसें, घटपटवत्. यहां एकहेतु और एकदृष्टांत अधिक है. तथा शब्द अनित्य है, घटवत्. इस वचनमें हेतुके न होनेसें; और शब्द अनित्य है, कृतकत्व होनेसें, इसमें दृष्टांतके न होनेसें ऊन है. इत्यादि—८।९।

पुनरुक्तम्—अनुवादकों वर्जके शब्द, और अर्थका जो पुनः कहना, सो पुनरुक्त. पुनरुक्त तीन प्रकारका होता है, तथा हि—शब्दपुनरुक्त, यथा इंद्रइंद्रइति १, अर्थपुनरुक्त, यथा इंद्रःशक्रइति २ अर्थसें आपन्न (प्राप्त) सिद्धकों, जो स्वशब्द करके कहना, सो अर्थापन्न पुनरुक्त, यथा इंद्रियां-करकेप्रफुल्लित बलवान् मोटा देवदत्त दिनमें नहीं खाता है, यहां अर्था-पन्नसे सिद्ध है कि, रात्रिमें खाता है, अन्यथा पीनत्वाद्यसंभवात्. तहां जो कहेकि, दिनमें नहीं खाता है, रात्रिमें खाता है, यह पुनरुक्त जानना ३—१०।

दोषरहित, १, सारवत्–बहुपर्याय अर्थकरके संयुक्त, गो*शब्दवत्, २, हेतुयुक्तम्–अन्वयव्यतिरेक लक्षण, हेतुओंकरके संयुक्त, ३, अलंकृतम्–उपमादि अलंकारोंकरके संयुक्त, ४, उपनीतम्–उपनयनिगमनसंयुक्त, ५, सोपचारम्–ग्राम्यवचनकरके रहित, ६, मितम्–वर्णादिपरिमाणसंयुक्त, ७, मधुरम्–सुणनेमें मनोहर ८॥ इति–॥ ३३ ॥

हितैषी यो नित्यं सततमुपकारी च जगतः
कृतं येन स्वस्थं बहुविधरुजार्त्तं जगदिदम् ॥
स्फुटं यस्य ज्ञेयं करतलगतं वेत्ति सकलं
प्रपद्यध्वं संतः सुगतमसमं भक्तिमनसः ॥ ३४ ॥

व्याख्या–जो देव, जगद्वासि जीवोंका नित्य सदाही हितकारी है, और निरंतर उपकारी है, जिसने बहुविध अनेक प्रकारके कर्म रोगकरी पीडित इस जगत्को उपदेशद्वारा स्वस्थ करा है, और जिसके ज्ञानमें सर्व ज्ञेय पदार्थ करतलगत आमलेकीतरें प्रकट हो रहे हैं, और जो सकलपदार्थोंको जानता है, हे संतजनो ! ऐसे असदृश अर्थात् जिसके बराबर कोई नहीं है–ऐसे–सुगत भगवान् अर्हनको भक्तिमनसें अंगीकार करो, और तिसको परमेश्वर मानके शुद्ध मनसें पूजो–सेवो ॥ ३४ ॥

असर्वभावेन यदृच्छया वा परानुवृत्त्या विचिकित्सया वा ॥
ये त्वां नमस्यन्ति मुनीन्द्रचन्द्रास्तेप्यागरीसंपदमाप्नुवन्ति॥३५॥

व्याख्या––यथार्थस्वरूपके विना जाण्या, अथवा संपूर्णभक्ति विना, वा यदृच्छा स्वतः प्रवृत्तीसें, वा परकी अनुवृत्ति देखादेखीसें परकी दाक्षिण्यतासें, वा विचिकित्सा फलके संशयसें, हे मुनींद्रोंमें चंद्रमासमान मुनींद्रचंद्र भगवन् अर्हन्! जे कोइ तेरेको नमस्कार करते हैं, वे पुरुषभी देवतायोंकी सुखादिसंपत्विभूतीकों प्राप्त होते हैं, हे जिन! तेरे यथार्थ (सत्य) शासनके माननेवालोंका तो क्याही कहना है? ॥ ३५ ॥

---

* गोशब्दो हि बहुपर्यायो बह्वर्थ इतितात्पर्य–दिशि दृशि वाचि जले भुवि दिवि वज्रेऽसौ पशौ च गोशब्दइतिवचनादेवं सूत्रमपि बह्वर्थयुक्तं विधेयमिति–तथा किरणे सूर्ये चंद्रे वायौ ऋषभनाभौषधौ सौरभेय्यां-बाणे मातरीत्यादावपि गोशब्दो विज्ञेयः ॥

यतिदोषः—अस्थानमें विश्राम करना, अथवा विश्राम करनाही नहीं-२२।

छविदोषः—अलंकाररहित–२३।

समयविरुद्धम्—अपने सिद्धांतविरुद्ध कहना, यथा असत्कारणमें कार्यका मानना सांख्यको; और सत्कारणमें कार्यका मानना वैशेषिकको, समयविरुद्धमिति–२४।

वचनमात्रम्—निर्हेतुक, जैसे इष्टभूभागमें लोकका मध्य कहना–२५।

अर्थापत्तिदोषः—जहां अर्थसेंही अनिष्टकी प्राप्ति होवे, यथा ब्राह्मण मारने योग्य नहीं है, ऐसे वचनमें अर्थसेंही अब्राह्मणघातापत्ति होवे है–२६।

असमासदोषः—जहां समासव्यत्यय होवे, अथवा समासविधिमें समास न किया होवे, सो असमासदोष जानना–२७।

उपमादोषः—हीनकों अधिक उपमा देनी, और अधिककों हीनोपमा देनी, यथा सर्षप मेरुसमान, और मेरु सर्षपसमान है. इत्यादि–२८।

रूपकदोषः—स्वरूपअवयवोंका व्यत्यय करना, अर्थात् अवयवोंका अवयवीरूपकरके कहना, यथा पर्वतरूप अवयवोंको पर्वतकरके कहना.–२९।

अनिर्देशदोषः—जहां कथन करनेयोग्य पदोंका एक वाक्यभाव न करिये, यथा इहां देवदत्त स्थालीमें ओदन पकाता है, ऐसे कहनेमें देवदत्त स्थालीमें ओदन ऐसे कहना.–३०।

पदार्थदोषः—जहां वस्तुके पर्यायवाचिपदको, पदार्थांतरकल्पनाको कहे, जैसें द्रव्यके पर्यायवाची सत्तादि, अर्थात् महासामान्य, अवांतरसामान्य, विशेष, गुणकर्मादिकांको पदार्थपरिकल्पना, उलूक अर्थात् वैशेषिकमतवालेके है.–३१।

संधिदोषः—अस्थानमें संधि करना, और संधि स्थानमें न करना–३२।

जो इन पूर्वोक्त दोषोंसें रहित होवे, सो वचन अमल (निर्मल) जानना. तथा अष्टगुणोंकरके जो संयुक्त होवे, सो वचन सूत्र अमल (निर्मल) सर्वज्ञभाषित जानना. वह अष्टगुण यह है. निद्दोसं सारवत्तं च हेउजुत्तमलंकियं ॥ उवणीयं सोवयारं च मियं महुरमेव य ॥ भावार्थः ॥ निर्दोषम्–

एकांत अनित्य, इत्यादि जानते है, परंतु सर्वज्ञ परमेश्वर तो, सर्व पदार्थोंकों त्रिपदीरूपसें जानता है, अन्यथा सर्वज्ञत्वहानिप्रसंगः–तथा जिसका चरित अनन्यसदृश और अचिंत्य, अर्थात् किसीभी दूषणकरके कलंकांकित नहीं, ऐसा होवे, सो पूर्वोक्त विशेषणविशिष्ट देव, नामकरके ब्रह्मा हो, वा विष्णु हो, वा उपदेशद्वारा वर (प्रधान) ज्ञान दर्शन चारित्रका देनेवाला हो, वा शं(सुख) करनेवाला शंकर हो, वा हर (महादेव) हो, तिसको ही मैं सच्चे भावसें अपना देव (परमेश्वर) करके अंगीकार करता हूं ॥ ३७ ॥

अब पक्षपात न होनेमें हेतु कहते हैं.

पक्षपातो न मे वीरे न द्वेषः कपिलादिषु ॥
युक्तिमद्वचनं यस्य तस्य कार्यः परिग्रहः ॥ ३८ ॥

व्याख्या—मेरा कुछ श्रीमहावीरविषे पक्षपात नहीं है कि, जो कुछ श्रीमहावीरजीने कहा है, सोइ मैंने मानना है, अन्यका कहा नहीं; और कपिलादिमताधिपोंमें द्वेष नहीं है कि, कपिलादिकोंका कहना नहीं मानना; किंतु जिसका वचन शास्त्रयुक्तिमत, अर्थात् युक्तिसें विरुद्ध नहीं है, तिसका ही वचन ग्रहण करनेका मेरा निश्चय है ॥ ३८ ॥

अब जगत्में कपिल, ब्रह्मा, विष्णु, महादेव, जैमिनी, गौतम, कणाद, व्यास, पंतजालि, आदि, और ऋषभादि चोवीस तीर्थंकर, और गौतमबुद्धादि अनेक धर्मतीर्थके कर्त्ता हुए हैं; इसवास्ते इनमेसें कोइएक तो सत्यवक्ता अवश्य होना चाहिए. सोइ ग्रंथकार कहते हैं.

अवश्यमेषां कतमोपि सर्ववित् जगद्धितैकान्तविशालशासनः ॥
स एव मृग्यो मतिसूक्ष्मचक्षुषा विशेषमुक्तैः किमनर्थपण्डितैः ।३९।

व्याख्या–इन पूर्वोक्त धर्मतीर्थके प्रवर्त्तकोंमेंसें कोइभी वक्ता, जगत्के एकांत हितकारी विशाल आगमवाला, अर्थात् जगत्के एकांत हितकारी प्रौढ अतिसुंदर आगमके कथन करनेवाला सर्वज्ञ होना चाहिए, जो ऐसा होवे, तिसकाही अन्वेषण बुद्धिरूप सूक्ष्मचक्षुकरके बुद्धिमानोंको

यदा रागद्वेषादसुरसुररत्नापहरणे
कृतं मायावित्वं भुवनहरणाशक्तिमतिना ॥
तदा पूज्यो वन्द्यो हरिरपरिमुक्तो ध्रुवतया
विनिर्मुक्तं वीरं न नमति जनो मोहबहुलः ॥ ३६ ॥

व्याख्या—जिस अवसरमें रागद्वेषसें सुर असुरोंके समक्ष रत्न हरणेमें तीन भवनके हरनेकी शक्तिवाले विष्णु हरिने मायाविपणा करा—यह कथा पुराणोंमें प्रसिद्ध है कि, जिसतरे मणि चोरी गई, जैसें बलभद्रजीके सिर लगाई, और जैसी माया हरिने करी, इत्यादि—तदा तिस अवसरमें निश्चयकरके अष्टादश दूषणोंकरके अपरिमुक्त (सहित)को पूज्य और वंद्य मानके जन (लोक) पूजता है, और नमस्कार करता है, परं सर्वदूषणोंसें विनिर्मुक्त (रहित) श्रीवीरभगवान्कों नमस्कार नहीं करता है तो, फेर तिसके मोह अज्ञान बहुत नहीं तो, अन्य क्या है? अर्थात् मोहबहुल—बहुत मोह अज्ञानके वश होनेसें सत्यासत्य नहीं जानसक्ता है, इसीवास्ते दूषणरहितकों छोडके दूषणसहितको मानता है, नमन करता है, और पूजता है. ॥ ३६ ॥

अब आचार्य श्रीहरिभद्रसूरिजी अपने आपको पक्षपातसें रहित होना बतलाते हैं.

त्यक्तः स्वार्थः परहितरतः सर्वदा सर्वरूपं
सर्वाकारं विविधमसमं यो विजानाति विश्वम् ॥
ब्रह्मा विष्णुर्भवतु वरदः शंकरो वा हरो वा
यस्याचिन्त्यं चरितमसमं भावतस्तं प्रपद्ये ॥ ३७ ॥

व्याख्या—जिसने स्वार्थका तो त्याग करा है; और जो परहितमें रत है; तथा जो सर्वदा (सर्वकाल) सर्वरूप जडचैतन्यरूप, सर्वाकार परिमंडल, वृत्त, त्र्यंश, चतुरस्र, आयतनसंस्थानाकार, विविध प्रकारे उत्पाद, व्यय, ध्रौव्यरूप विश्व—जगत्को, असम—अनन्यसदृश जानता है, अर्थात् जो अन्योंकेसमान नहीं जानता है. क्यों कि, अन्य तो एकांतनित्य, वा

व्याख्या–सृष्टिके वाद करनेवाले सर्वलोकको (संपूर्ण जगत्को) कृत्रिम (रचाहुआ) मानते हैं, तिनमेंसें महेश्वरादिसें सृष्टिकीउत्पत्ति माननेवाले सृष्टिवादी जे हैं वे संपूर्ण लोकको आदि और अंतवाला मानतेहैं ४२

मानीश्वरजं केचित् केचित्सोमाग्निसंभवं लोकम्॥
द्रव्यादिषड्विकल्पं जगदेतत्केचिदिच्छन्ति ॥ ४३ ॥

व्याख्या–मानी ईश्वर (अहंकारी ईश्वर) मैं ईश्वर हूं ऐसे ईश्वरसें लोक उत्पन्न हुआ है, ऐसे कितनेक मानतेहैं, कितनेक सोम और अग्निसें जगत्की उत्पत्ति मानते हैं, और कितनेक इस जगत्को द्रव्यादि षट्विकल्परूप मानते हैं, सोइ दिखाते हैं॥ ४३ ॥

द्रव्यगुणकर्मसामान्ययुक्तविशेषं कणाशिनस्तत्त्वम् ॥
वैशेषिकमेतावत् जगदप्येतावदेतावत् ॥ ४४ ॥

व्याख्या–पृथिव्यादिनवप्रकारका द्रव्य, शब्दादि चोवीस गुण उत्क्षेपादि पांच प्रकार कर्म, सामान्य द्विप्रकार, समवाय एक, और विशेष अनंत, यह षट्पदार्थ कणादमुनिका तत्त्व है, वैशेषिकमतभी इतनाही है, और जगत्भी इतनाही है ॥ ४४ ॥

इच्छन्ति काश्यपीयं केचित्सर्वं जगन्मनुष्याद्यम्॥
दक्षप्रजापतीयं त्रैलोक्यं केचिदिच्छन्ति ॥ ४५ ॥

व्याख्या–कितनेक सर्व जगत्को कश्यपसंबंधि मानते हैं, अर्थात् यह जगत् कश्यपने रचा है. 'तथाहि शतपथब्राह्मणे'—

सयत्कूर्म्मो नाम । एतद्वै रूपं कृत्वा प्रजापतिः प्रजा असृजत यत्सृजताकरोत् तद्यदकरोत्तस्मात्कूर्म्मः कश्यपो वै कूर्म्मस्तस्मादाहुः सर्वाः प्रजाः काश्यप्यइति–श–कां–७ अ–५ ब्रा–१ कं–५

[भाषार्थः] (स यत्कूर्म्मो नाम) सो, जो कि, कूर्म्मनामसें वेदोंमें प्रसिद्ध है, सो (एतद्वै रूपं कृत्वा प्रजापतिः) एतत् अर्थात् कूर्म्मरूपको धारण-

करना चाहिए, परंतु अन्यका नहीं. क्योंकि, पूर्वोक्त विशेषणोंकरके रहित अनर्थके कथन करनेवाले अज्ञानी पंडितोंके विचार करनेसें तिनोंके वचन सुननेसें और तिनकों अपने इष्टदेव माननेसें क्या प्रयोजन है? क्या लाभ है? अपितु कुछभी नहीं है ॥ ३९ ॥

यस्य निखिलाश्च दोषा न सन्ति सर्वे गुणाश्च विद्यन्ते॥
ब्रह्मा वा विष्णुर्वा महेश्वरो वा नमस्तस्मै ॥ ४० ॥

व्याख्या—जिसके सर्वदोष, अर्थात् राग, द्वेष, मोह, अज्ञानादि अष्टादश दूषण नहीं है, अर्थात् क्षय होगए हैं, और सर्वगुण अनंतज्ञान, अनंतदर्शन, अनंतचारित्र, अनंतवीर्यादि अनंत गुण जिसके विद्यमान हैं, अर्थात् दूषणोंके नष्ट होनेसें आत्माके अनंत गुण जिसके प्रकट हुए हैं, सो ब्रह्मा होवे वा विष्णु होवे वा महेश्वर होवे तिसकेतांई मेरा नमस्कार होवे ॥ ४० ॥

इतिश्रीमद्विजयानन्दसूरिविरचिते तत्त्वनिर्णयप्रासादे लोकतत्त्व-
निर्णयान्तर्गतदेवतत्त्ववर्णनो नाम चतुर्थःस्तंभः ॥ ४ ॥

अथपञ्चमस्तम्भारम्भः ॥

चतुर्थस्तम्भमें देवतत्त्वस्वरूपकथन किया अथ पंचमस्तम्भमें लोक क्रियात्मविषयक वर्णन लिखते हैं.

लोकक्रियात्मतत्त्वे विवदन्ते वादिनो विभिन्नार्थम् ॥
अविदितपूर्वं येषां स्याद्वादविनिश्चितं तत्त्वम् ॥ ४१ ॥

व्याख्या—जिनोंको स्याद्वादकरके विशेष निश्चित करेहुए तत्त्वका ज्ञान नहीं हुआ है, वे वादी लोकक्रियात्मतत्त्वविषे अन्य अन्यतरेसें विवाद करते हैं, अज्ञातपूर्वकत्वात् ॥ ४१ ॥

इच्छंति कृत्रिमं सृष्टिवादिनः सर्वमेवमिति लोकम् ॥
कृत्स्नं लोकं महेश्वरादयः सादिपर्यन्तम् ॥ ४२ ॥

स ह्योवाच अपीपरं वै त्वां वृक्षे नावं प्रतिबध्नीष्व। तन्तु त्वामा-
गिरौ सन्तमुदकमन्तश्छैत्सीद्यावदुदकं समवायात्तावत्तावदन्ववसर्पासीति॥ सह तावत्तावदेवान्ववससर्प तदप्येतदुत्तरस्य गिरेर्मनोरवसर्पणमित्यौघो हताः सर्वाः प्रजा निरुवाहाथेहमनुरेवैकः परिशिशिषे॥६॥ सोर्चं श्राम्यं तपश्चचार प्रजाकामः श–कां–१ अ–८ ब्रा–१ कं–१।२।३ ४।५।६॥

[भाषार्थः] मनुजीके प्रति प्रातःकालमें भृत्यगण (नोकर) हस्त धोनेके, और तर्पणकेलिये, जलका आहरण करतेभये, तब मनुजीने जैसे इतरलोक वैदिककर्मनिष्ठपुरुष, इस अवनेग्यजलकों तर्पण करनेकेलिये अपने दोनों हाथों करके ग्रहण करते हैं, इसीप्रकार तर्पण करतेहुए मनुजीके हाथमें मछलीका बच्चा मत्स्य अकस्मात् आगया, तब उसको देखकर मनुजी शोचने लगे, तावदेव मनुजीके प्रति मत्स्य कहने लगा कि, हे मनु! तूं मेरा पालन कर, और हे मनु! मैं तेरा पालन करूंगा. तब उस मत्स्यकी मनुष्यवाणी सुन आश्चर्य मानकर मनुजी बोले कि, तूं काहेसे मेरी पालना करेगा. क्योंकि, तूं तो महा तुच्छ जीव है. तब मत्स्यने कहा कि, हे राजन्! तूं मुझे छोटासा मत समझ, यह संपूर्ण प्रजा जो कुछ तेरे देखनेमें आती है, सो यह सब बडेभारी जलोंके समूहमें डूब जायगी कुछभी न रहेगी, सो मैं तिस महाप्रलयकालके जलसमूहसें तेरेकों पालन करूंगा अर्थात् उस प्रलयकालके जलमें मैं तुझको नहीं डूबने दूंगा. तब मनुजी बोले कि, हे मत्स्य! तेरा पालन किस प्रकारसें होगा, सोभी कृपा करके आपही बताइये.

तब मत्स्यने कहा कि, जबतक हम लोक छोटे रहतेहैं, तबतक बहुतसी पापी प्रजा धीवरादि हमारे मारनेवाली होती हैं, और बडे २ मत्स्य और बडी २ मछलियांही छोटे २ मत्स्य और छोटी २ मछलियांकों निगल जावे हैं, इससे प्रथम इस समय तो मेरेको अपने कमंडलुमें रखलीजिये, तब मनुजीने उस मत्स्यको कमंडलुमें जल भरकर रखलिया, सो मत्स्य जब उस कमुंडलुसेभी अधिक बढ गया, तदनंतर मनुने पूछा कि, अब आपको

करके प्रजापति–परमेश्वर (प्रजा असृजत) प्रजाको उत्पन्न करतेहुए (तद्यदकरोत्) सो प्रजापति, जिस्से संपूर्ण जगत्‌को उत्पन्न करते भये हैं (तस्मात्कूर्म्मः) तिसीसे कूर्म्म कहे गये हैं (कश्यपो वै कूर्म्मः) वै–निश्चय करके वही कूर्म्म कश्यपनामसे कहे गये हैं (तस्मात्) तिसीसे (आहुः) संपूर्ण ऋषिलोक कहते हैं कि (सर्वाः प्रजाः काश्यप्यइति) संपूर्ण प्रजा कश्यपकीही हैं.

तथा कितनेक कहते हैं कि, यह सर्व जगत् मनुका रचा है. 'तथाहि शतपथब्राह्मणे'—

मनवे ह वै प्रातः अवनेग्यमुदकमाजह्रुर्यथेदं पाणिभ्यामवने-जनायाहरन्ति एवं तस्यावनेनिजानस्य मत्स्यः पाणी आपेदे ॥१॥

सहास्मैवाचमुवाच बिभृहि मा पारयिष्यामि त्वेति कस्मान्मा पारयिष्यसीति । औघ इमाः सर्वाः प्रजा निर्वोढास्ततस्त्वा पारयितास्मीति कथन्ते भृतिरिति ॥ २ ॥

स होवाच। यावद्वै क्षुल्लका भवामो बह्वी वै नस्तावन्नाष्ट्रा भवन्त्युत मत्स्य एव मत्स्यं गिलति कुंभ्यामाग्रे बिभरासि। स यदा तामति-वर्द्धो अथ कर्षूं खात्वा तस्या मा बिभरासि स यदा तामतिवर्द्धै अथ मा समुद्रमभ्यवहरासि तर्हि वा अतिनाष्ट्रो भवितास्मीति ॥ ३ ॥

स शश्वत् झष आस। स हि ज्येष्ठं वर्द्धते अथ तिथीं समां तदौघ आगन्ता तन्मा नावमुपकल्प्योपासासै स औघ उच्छ्रिते नावमापद्यासै ततस्त्वां पारयितास्मीति ॥ ४ ॥

तमेवं भृत्वा समुद्रमभ्यवजहार ॥ स यत्तिथीं तत्समां परि-दिदेश ॥ तत्तिथीं समां नावमुपकल्प्योपासांचक्रे ॥ स औघ उच्छ्रिते नावमापेदे तं स मत्स्य उपन्या पुप्लुवे तस्य शृंगे नावः पाशं प्रतिमुमोच ते नैतमुत्तरं गिरिमतिदुद्राव ॥ ५ ॥

तकी नीचे उतरते आना, ऐसे मनुजीके प्रति समझाकर मत्स्यजी जलमें समागये और सो मनुजीभी, मत्स्यजीके कथनानुकूल जैसे २ जल उतरता गया तैसे २ उस जलके अनुकूलही पर्वतके नीचे २ उतरते आए, सोभी यह केवल पर्वतके ऊपरसे एक मनुकाही जो नीचे अवसर्पण अर्थात् अवतारण हुआ, सो एक मनुही उस सृष्टिमेंसें बाकी बचे, और संपूर्ण प्रजा-जलसमूहमें ही लय होगई; तब फिर मनुजीने प्रजाके रचनार्थ पर्य्यालोचन कर तपोनुष्ठान किया, इसीसें यह प्रजा, मानवीनामसें अबतक प्रसिद्ध है. इति ॥

और कितनेक ऐसा मानते हैं कि, यह तीनो लोक दक्ष प्रजापतिने करे हैं, अर्थात् तीनों दक्ष प्रजापतीने रचे हैं ॥ ४५ ॥

केचित्प्राहुर्मूर्तिस्त्रिधा गतिका हरिः शिवो ब्रह्मा ॥
शंभुर्बीजं जगतः कर्ता विष्णुः क्रिया ब्रह्मा ॥ ४६ ॥

व्याख्या–कितनेक कहते हैंकि एकही परमेश्वरकी मूर्तिकी तीन गतियां हैं; हरि (विष्णु) १, शिव २, और ब्रह्मा ३, तिनमें शिव तो जगत्का कारणरूप है, कर्त्ता विष्णु है, और क्रिया ब्रह्मा है ॥ ४६ ॥

वैष्णवं केचिदिच्छंति केचित् कालकृतं जगत् ॥
ईश्वरप्रेरितं केचित् केचिद्ब्रह्मविनिर्मितम् ॥ ४७ ॥

व्याख्या–कितनेक मानते हैं कि यह जगत् विष्णुमय, वा विष्णुका रचा हुआ है; और कितनेक कालकृत् मानते हैं और कितनेक कहते हैं कि, जो कुछ इस जगत्में हो रहा है, सो सर्व, ईश्वरकी प्रेरणासें ही हो रहा है और कितनेक कहते हैं, यह जगत् ब्रह्माने उत्पन्न करा है ॥ ४७ ॥

अव्यक्तप्रभवं सर्वं विश्वमिच्छन्ति कापिलाः ॥
विज्ञप्तिमात्रं शून्यं च इतिशाक्यस्य निश्चयः ॥ ४८ ॥

व्याख्या—अव्यक्त (प्रधान प्रकृति) तिस अव्यक्तसें सर्व जगत् उत्पन्न होता है, ऐसे कपिलके मतके माननेवाले मानते हैं; और शाक्यमु-

में कैसें पालन करूं. तब मत्स्यने कहा कि. हे राजन्! एक वडा गर्त्ता वा तलाव वा नदी खुदाकर उसमें मुझको पालन कर: सो मत्स्य जब नदीसें भी अधिक वढ गया तब फिर मनुजीने पूछा कि. अव मैं तुम्हारा कैसे पालन करूं? तब मत्स्यने कहा कि. हे राजन्! अब मुझको समुद्रमें छोड दीजिये. तब मैं नाशरहित हो जाउंगा. यह सुनकर मनुजीने उस नदीको खुदाकर समुद्रसें मिलादी तब वहमत्स्य समुद्रमें चला गया.

सो मत्स्य समुद्रमें जातेही शीघ्रही वडाभारी मत्स्य होगया. और सो फेर उससे भी वहुत वडा क्षण २ में वढने लगा: अथ तदनंतर वो मत्स्य राजा मनुसें जिस वर्षकी जिस तिथीको वो जलोंका समूह आनेवाला था, वतलाकर कहता हुआ कि. जव यह समय आवे तव हे राजन्! तुम एक उत्तम नाव वनवाकर. और उसनावमें सवार होकर. मेरी उपासना करनी: अर्थात् मेरा स्मरण करना. जब सो जलोंका समूह आवेगा. तब मैं तेरी नौकाकेपासही आजाउंगा. और तब फिर मैं तेरा पालन करूंगा.

मनुजी तदुक्तक्रमसे उस मत्स्यको धारणपोषणकर समुद्रमें पहुंचाते भये. सो मत्स्य जिस तिथि और जिस संवत्को जलसमूहका आगमन वता-गयेथे, मनुजीभी तिसी तिथि और संवत्सें नाव वनवाकर उस मत्स्यरूप-भगवान्की उपासना करतेभये. तदनंतर सो मनु, उसजलोंके समूहको उठा देखकर नावमें आरूढ होजाते हुये. तब वह मत्स्य तिसमनुजीके समीपही आकर ऊपरको उछले, तब मनुजीने उन मत्स्यभगवान्को उछ-लते हुए देखा, तब मनुजी तिसमत्स्यके शृंगमें अपनी नौकाका रस्सा डालदेते भये: तिस करके वह मत्स्य नौकाको खींचते हुए उत्तरगिरि (हिमालय) नामकपर्वतकेपास शीघ्रही पहुंचा देतेभये.

पर्वतके नीचे नौकाको पहुंचाकर मत्स्यजी कहते भये कि, हे राजन्! निश्चयकरके मैं तेरेको प्रलयजलसें डूवनेसें पालन करता भया हूं, अव तुम नौकाको इस वृक्षके साथ वांध दीजिये. तुम इस पर्वतके शिखरपर जव-तक जल रहे तवतक रहना, और इसरस्सेको मत खोलना, फिर जब कि यह जल पर्वतके नीचे जैसे २ उतरता जाय तैसे तैसेही तुमभी पर्व-

"पुराणे चान्यथा॥" तस्मिन्नेकार्णवीभूते नष्टे स्थावरजङ्गमे॥
नष्टामरनरे चैव प्रनष्टोरगराक्षसे॥ ५४॥
केवलं गह्वरीभूते महाभूतविवर्जिते॥
अचिन्त्यात्मा विभुस्तत्र शयानस्तप्यते तपः॥५५॥
तत्र तस्य शयानस्य नाभौ पद्मं विनिर्गतम्॥
तरुणरविमण्डलनिभं हृद्यं काञ्चनकर्णिकम्॥५६॥

तस्मिंश्च पद्मे भगवान् दण्डकमण्डलुयज्ञोपवीतमृगचर्मवस्तुसंयुक्तो ब्रह्मा तत्रोत्पन्नस्तेन जगन्मातरः सृष्टाः॥५७॥

अदितिः सुरसंघानां दितिरसुराणां मनुर्मनुष्याणाम्॥
विनता विहङ्गमानां माता विश्वप्रकाराणाम्॥ ५८॥
कद्रूः सरीसृपाणां सुलसा माता तु नागजातीनाम्॥
सुरभिश्चतुः पदानामिला पुनः सर्वबीजानाम्॥ ५९॥
प्रभवस्तासां विस्तरमुपागतः केचिदेवमिच्छन्ति॥
केचिद्वदन्त्यवर्णं सृष्टं वर्णादिभिस्तेन॥ ६०॥

व्याख्या—वैष्णवमतवाले कहते हैं कि—जलमेंभी विष्णु है, स्थलमेंभी विष्णु है, और आकाशमेंभी जो कुछ है, सो विष्णुकीही माला—पंक्ति है, सर्वलोक विष्णुहीकी माला—पंक्तिकरके आकुल अर्थात् भराहुआ है इसवास्ते इस जगत्में ऐसी कोइभी वस्तु नहीं है, जो कि, विष्णुका रूप नहीं है.

पांच वस्तुकरके सर्वतः सर्वजगे पाणय (हाथ) हैं, और सर्वजगे पग हैं जिसके, और सर्वत्र जिसके आंखें, शिर और मुख हैं, और जो सर्वजगे श्रवणेंद्रियोंकरके युक्त है, और जो सर्वलोकविषे सर्ववस्तुयोंको व्याप्य होके रहता है, अर्थात् सर्वओरसे प्राणियोंकी वृत्तियोंकरके हस्तादिउपाधियोंकरके सर्वव्यवहारका स्थान होके रहता है.

निके संतानीय विज्ञानाद्वैत क्षणिकरूप जगत् मानते हैं; और कितनेक तिसके संतानीय सर्व जगत्को शून्यही मानते हैं ॥ ४८ ॥

पुरुषप्रभवं केचित् दैवात् केचित् स्वभावतः॥
अक्षरात् क्षरितं केचित् केचिदण्डोद्भवं महत् ॥ ४९ ॥

व्याख्या—कितनेक, पुरुषसें जगत् उत्पन्न हुआ मानते हैं, अथवा पुरुषमय सर्व जगत् मानते हैं, "पुरुष एवेदं सर्व मित्यादिवचनात्" और कितनेक दैवसें, और स्वभावसें जगत् उत्पन्न हुआ मानते हैं, और कितनेक अक्षर ब्रह्मके क्षरणेसें, अर्थात् मायावान् होनेसें जगत्की उत्पत्ति मानते हैं, "एको बहुस्यामितिवचनात्" और कितनेक अंडेसें जगत्की उत्पत्ति मानते हैं ॥ ४९ ॥

याद्दच्छिकमिदं सर्वं केचिद्भूतविकारजम् ॥
केचिच्चानेकरूपं तु बहुधा संप्रधाविताः॥ ५० ॥

व्याख्या—कितनेक कहते हैं कि यह लोक यदृच्छासें अर्थात् स्वतोही उत्पन्न हुआ है, और कितनेक कहते हैंकि यह जगत् भूतोंके विकारसें ही उत्पन्न हुआ है, और कितनेक जगत्को अनेकरूपही मानते हैं, ऐसे बहुतप्रकारके विकल्प सृष्टिविषयमें लोकोंनें अज्ञानवशसें कथन करे हैं॥ ५०॥

अब 'वैष्णवं केचिदिच्छन्ति' इत्यादिविकल्पोंमें जिस विकल्पवाला, जिस रीतिसें सृष्टिकी रचना मानता है, सो पृथक् २ संक्षेपमात्रसें ग्रंथकार दिखाते हैं—

"वैष्णवास्त्वाहुः॥" जले विष्णुः स्थले विष्णुराकाशे विष्णुमालिनि॥
विष्णुमालाकुले लोके नास्ति किंचिदवैष्णवम्॥५१॥

सर्वतः पाणिपादं तत् सर्वतोक्षिशिरोमुखम् ॥
सर्वतः श्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति ॥ ५२ ॥

ऊर्द्ध्वमूलमधः शाखमश्वत्थं प्राहुरव्ययम् ॥
छंदांसि यस्य पर्णानि यस्तं वेद स वेदवित् ॥ ५३॥

कालही जागता है, इसवास्ते कालही उल्लंघन करना दुष्कर है ॥ ६१ ॥
" ईश्वरकारणिकाश्चाहुः ॥ "

प्रकृतीनां यथा राजा रक्षार्थमिह चोद्यतः
तथा विश्वस्य विश्वात्मा स जागर्ति महेश्वरः ॥ ६२ ॥
अन्यो जंतुरनीशो यमात्मनः सुखदुःखयोः ॥
ईश्वरप्रेरितो गच्छेत् स्वर्गं वा श्वभ्रमेव च ॥ ६३ ॥
सूक्ष्मोचिन्त्योविकरणगणः सर्ववित् सर्वकर्ता
योगाभ्यासादमलिनधियां योगिनां ध्यानगम्यः ॥
चन्द्रार्काग्निक्षितिजलमरुत्दीक्षिताकाशमूर्ति
र्ध्येयो नित्यं शमसुखरतैरीश्वरः सिद्धिकामैः ॥ ६४ ॥

व्याख्या—ईश्वरको कारण माननेवाले वादी कहते हैं कि—जैसें प्रजाकी रक्षावास्ते राजा उद्यत है, तैसेही सर्वजगत्‌की रक्षावास्ते विश्वात्मा ईश्वर जागता है, अर्थात् सर्वजगत्‌का बंदोबस्त महेश्वर करता है; क्योंकि, अन्यजीव सर्व अपने आपको कर्मफल सुखदुःखोंको देने सामर्थ्य नहीं है, किंतु, ईश्वरकी प्रेरणासेंही जीव स्वर्ग वा नरकको जाताहै; इसवास्ते शमरूप सुखोंमें रक्त सिद्धिके कामी पुरुषोंको निरंतर ईश्वरकाही ध्यान करना योग्य है. ईश्वर भगवान् कैसा है? सूक्ष्म है, अचिंत्य जिसका कोइभी चिंतवन नहीं करसक्ता है, इंद्रियोंके समूहसें रहित है, सर्वज्ञ है, सर्वका कर्ता है, योगाभ्याससे निर्मल बुद्धिवाले योगियोंके ध्यानसे जानाजाता है, चंद्र, सूर्य, अग्नि, पृथिवी, जल, पवन, दीक्षित आकाशवत् मूर्ति है जिसकी, अर्थात् सर्व व्यापक है ॥ ६२ ॥ ६३ ॥ ६४ ॥

" ब्रह्मवादिनश्चाहुः ॥ आसिदिदं तमोभूतमप्रज्ञातमलक्षणम् ॥
अप्रतर्क्यमविज्ञेयं प्रसुप्तमिव सर्वतः ॥ ६५ ॥
ततःस्वयंभूर्भगवानव्यक्तो व्यञ्जयन्निदम् ॥
महाभूतादिवृत्तौजाः प्रादुरासीत्तमोनुदः ॥ ६६ ॥

'क्षराक्षराभ्यामुत्कृष्टः' ऐसा पुरुषोत्तम जिसका मूल है, अधइति तिससें अर्वाचीन कार्यरूप उपाधियां हिरण्यगर्भादि ग्रहण करीए है, वे सर्व शाखाकीतरे शाखा हैं जिसकी, ऐसा पीपलका वृक्ष प्रवाहरूपकरके अविच्छेद होनेसें अव्यय है, "ऊर्ध्वमूलोऽर्वाक्शाख एषोऽश्वत्थः सनातन इत्यादिश्रुति वचनात्" और, 'छंदांसि यस्य पर्णानि' वेद जिसके पत्र हैं, धर्माधर्म प्रतिपादनद्वार करके छाया समान कर्मफलकरके संयुक्त होनेकरके संसाररूप वृक्षकों सर्वजीवोंके आश्रयभूत होनेसें पत्रोंसमान वेद है, जो ऐसे पीपलके वृक्षको जानता है, सोइ वेदोंके अर्थोंको जानता है ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ ५३ ॥

पूर्वोक्त वर्णन प्रायः वेदानुसार किया, अब पुराणानुसार वर्णन करते हैं. तिस संसारके एकार्णवीभूत हुआं, स्थावरजंगमके नष्ट हुए, अमर (देवतायों) के नष्ट हुए, उरगराक्षसोंके नष्ट हुए, केवल गव्हरीभूत महाभूतकरके रहित, ऐसे जलमें, अर्थात् जलके ऊपर, अचिंत्य आत्मावाला विभु, विष्णु सूताहुआ तप तपता है; तहां तिस सूतेहुए विष्णुकी नाभिसें तत्कालके उदय हुए सूर्य मंडलके समान मनोहर सुवर्णकी कर्णिवाला पद्म (कमल) निकला, तिस कमलमें भगवान् ब्रह्मा, कमंडलु यज्ञोपवीत मृगचर्मासनादि वस्तुयोंसहित उत्पन्न हुआ, तिस ब्रह्मानें जगत्की मातायें पैदा करीं; सोइ दिखाते हैं. स्वर्गवासिदेवतायोंकी माता अदिति १, असुरोंकी माता दिति २, मनुष्योंकी मनु ३, पक्षीयोंकी विनता ४, सर्प्पोंकी कद्रू ५, नागजातियोंकी माता सुलसा ६, चौपायोंकी सुरभि ७, और सर्वबीजांकी माता इला (पृथिवी) ८ ॥ तिनोंसें—पूर्वोक्त मातायोंसें उत्पन्न हुई प्रजा विस्तारको प्राप्त हुई, कितनेक ऐसें मानते हैं और कितनेक ऐसें कहते हैं कि, प्रथम सर्वप्रजा वर्णरहित थी, पीछे तिसने—ब्रह्माने वर्णादिकरके सृष्टि रची ॥ ५४ ॥ ५५ ॥ ५६ ॥ ५७ ॥ ५८ ॥ ५९ ॥ ६० ॥

"कालवादिनश्चाहुः॥" कालः सृजति भूतानि कालः संहरते प्रजाः॥
कालः सुप्तेषु जागर्ति कालो हि दुरतिक्रमः ॥६१॥

व्याख्या—कालवादी कहते हैं कि—कालही जीवोंको उत्पन्न करता है, और कालही प्रजाका संहार करता है, जीवोंके सूतेहुए रक्षा करणरूप

प्रवर्त्तमानान् प्रकृतेरिमान् गुणान्
तमोवृतत्वाद्विपरीतचेतनः ॥
अहंकरोमीत्यबुधोऽपि गम्यते
तृणस्य कुब्जीकरणेप्यनीश्वरः ॥ ७३ ॥

व्याख्या—सांख्यमतवाले कहते हैं कि-पांच प्रकारके महाभूत, नानाप्रकारका देह, नाम, संस्थान (आकार) येह सर्व अव्यक्त प्रधानसेंही समुत्थान (उत्पन्न) होते हैं, अर्थात् जगदुत्पत्ति प्रधानसेंही मानते हैं. अब प्रधान अपरनाम प्रकृतिका स्वरूप दिखाते हैं, जो प्रधान है, सो सर्वगत है, सामान्यरूप है, सर्व कार्योंका आदिकारण है, नित्य है, सूक्ष्म है, लिंगरहित है, अचेतन है, अक्रिय है, एक है, ऐसा प्रधाननामा तत्त्व है. तिस प्रधान (प्रकृति)सें महान्, अर्थात् बुद्धि उत्पन्न होतीहै, तिसबुद्धिसें अहंकार उत्पन्न होता है, तिस अहंकारसें सोलांका गण उत्पन्न होता है, तिन सोलांके गणमेंसें पांच तन्मात्रसें पांच भूत उत्पन्न होते हैं; मूलप्रकृति जो है सो अविकृति है, महदादिप्रकृतिकी विकृतियां है, सोलां जो है सो विकार है,और पच्चीसमा तत्त्व पुरुष है, सो न प्रकृति है और न विकृति है; जिसहेतुसें पुरुषमें गुणलक्षण नहीं है, और कार्यकारण लक्षणभी नहीं है, तिसहेतुसें प्रकृतिसें पुरुष अन्य है, कर्मके फलका भोक्ता है, परंतु कर्त्ता नहीं है; "अकर्त्ता निर्गुणो भोक्ता आत्मा कपिलदर्शने" इतिवचनात् ॥

प्रकृतिसें प्रवर्त्तमान हुए इन पूर्वोक्त गुणोंको तमोवृतरूप होनेसें, चेतन इन गुणोंसें विपरीतस्वरूप है, इसवास्ते 'अहं करोमि' मैं कर्त्ता हूं ऐसा तो मूर्खभी मानता है; क्यों कि, कर्त्तापणा जो है, सो तो अहंकारको है, और पुरुष तो तृणमात्रकोभी वांका करणे समर्थ नहीं है ॥ ६८॥ ६९ ॥ ७० ॥ ७१ ॥ ७२ ॥ ७३ ॥ –५–

"शाक्याश्चाहुः ॥" विज्ञप्तिमात्रमेवैतदसमर्थावभासनात् ॥
यथा जैन करिष्येहं कोशकीटादिदर्शनम् ॥७४॥
क्रोधशोकमदोन्मादकामदोषाद्युपद्रुताः ॥
अभूतानि च पश्यन्ति पुरतोवस्थितानि च ॥७५॥

लोका नांतु विवृद्ध्यर्थं मुखबाहूरुपादतः ॥
ब्राह्मणं क्षत्रियं वैश्यं शूद्रं च निरवर्तयत् ॥६७॥

व्याख्या-ब्रह्मवादी कहते हैं कि-इदं यह जगत् तममें स्थित लीन था, प्रलयकालमें सूक्ष्मरूपकरके प्रकृतिमें लीन था, प्रकृतिभी ब्रह्मात्मकरके अव्याकृतथी अर्थात् अलग नहीं थी, इसवास्तेही अप्रज्ञातं प्रत्यक्ष नहीं था, अलक्षणम् अनुमानका विषयभी नहीं था, अप्रतर्क्यम् तर्कयितुमशक्यम् तर्ककरनेके योग्य नहीं था, वाचक स्थूलशब्दके अभावसें, इसवास्तेही अविज्ञेय था, अर्थापत्तिकेभी अगोचर था, इसवास्ते सर्व ओरसे सुप्तकीतरें स्वकार्य करणेमें असमर्थ था. तदनंतर क्या होता भया ? सो कहे हैं; प्रलयके अवसानानंतर स्वयंभू परमात्मा अव्यक्त बाह्यकरण अगोचर इदं यह महाभूत आकाशादिक आदिशब्दसें महदादिकांको प्रथम सूक्ष्मरूपकरके रहेको स्थलरूपकरके प्रकाश करता भया, कैसा है स्वयंभू परमात्मा ? वृत्तौजाः सृष्टि रचनेका सामर्थ्य जिसका अव्याहत है, और जो तमोनुदः प्रकृतिका प्रेरक है, सो स्वयंभू परमात्मा भूलोकोंकी वृद्धिवास्ते मुख, बाहु, ऊरु और पगोंसें ब्राह्मण १, क्षत्रिय २, वैश्य ३, और शूद्रोंको यथाक्रम निर्मित करता भया. ॥ ६५ ॥ ६६ ॥ ६७ ॥

"सांख्याश्चाहुः" ॥ पञ्चविधमहाभूतं नानाविधदेहनामसंस्थानम् ॥
अव्यक्तसमुत्थानं जगदेतत् केचिदिच्छन्ति ॥६८॥
सर्वगतं सामान्यं सर्वेषामादिकारणं नित्यम् ॥
सूक्ष्ममलिङ्गमचेतनमक्रियमेकं प्रधानाख्यम् ॥ ६९ ॥
प्रकृतेर्महांस्ततोहंकारस्तस्माद्गणश्च षोडशकः ॥
तस्मादपि षोडशकात् पञ्चभ्यः पञ्चभूतानि ॥ ७० ॥
मूलप्रकृतिरविकृतिर्महदाद्याः प्रकृतिविकृतयः पञ्च ॥
षोडशकश्च विकारो न प्रकृतिर्न विकृतिःपुरुषः ॥ ७१ ॥
गुणलक्षणो न यस्मात् कार्यकारणलक्षणोपि नो यस्मात् ॥
तस्मादन्यः पुरुषःफलभोक्ता चेत्यकर्त्ता च ॥७२॥

आत्मज्ञानस्वभावेन स्वयं मननसंभवात् ॥
स्वकर्मणश्च संभूतेः स्वयंभूर्जीव उच्यते ॥ ५ ॥
नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः ॥
न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः ॥ ६ ॥
अच्छेद्योयमभेद्योयं निरुपाख्योयमुच्यते ॥
नित्यः सर्वगतः स्थाणुरचलोयं सनातनः ॥ ७ ॥
सोक्षरः स च भूतात्मा संप्रदायः स उच्यते ॥
स प्राणः स परं ब्रह्म सो हंसः पुरुषश्च सः ॥ ८ ॥
नान्यस्तस्मात्परो द्रष्टा श्रोता मन्तापि वा भवेत् ॥
न कर्त्ता न च भोक्तास्ति वक्ता नैवात्र विद्यते ॥ ९ ॥
चेतनोध्यवसायेन कर्मणा स निबध्यते
ततोभवस्तस्य भवेत्तदभावात्परं पदम् ॥ १० ॥
उद्धरेद्दीनमात्मानमात्मानमवसादयेत् ॥
आत्मा चैवात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः ॥ ११ ॥
संतुष्टानि च मित्राणि संक्रुद्धाश्चैव शत्रवः ॥
नहि मे तत् करिष्यन्ति यन्न पूर्वं कृतं मया ॥ १२ ॥
शुभाशुभानि कर्माणि स्वयं कुर्वन्ति देहिनः ॥
स्वयमेवोपकुर्वन्ति दुःखानि च सुखानि च ॥ १३ ॥
वने रणे शत्रुजनस्य मध्ये
महार्णवे पर्वत मस्तके वा ॥
सुप्तं प्रमत्तं विषमस्थितं वा
रक्षन्ति पुण्यानि पुराकृतानि ॥ १४ ॥

व्याख्या–पुरुषवादी कहते हैं कि–पुरुष, आत्मा, एवशब्द अवधारणमें है, सो कर्म और प्रधानादिके व्यवच्छेदार्थ है, यह सर्व प्रत्यक्ष वर्त्तमान

व्याख्या–बौद्धमती कहते हैं कि—जो कुछ दीखता है, सो सर्व विज्ञानमात्र है; क्यों कि, जो दीखता है सो असमर्थ होके भासन होता है, अर्थात् युक्तिप्रमाणसें अपने स्वरूपको धारणे समर्थ नहीं है. हे जैन! जैसें तूं कहता है कि, मैं कोशकीटकादिका दर्शन करता हूं, वा करूंगा, परंतु यह जो तुझको दीखता है, सो उपाधिकरके भान होता है, नतु यथार्थ स्वरूपसें सोइ दिखावे है. क्रोध, शोक, उन्माद, काम, दोषादिकरके पीडित हुएथके पुरतः (आगे) अवस्थितपदार्थोंको देखते हैं, वे न होतेहुएको देखते हैं, न तु सद्भूतोंको ॥ ७४ ॥ ७५ ॥–६–

"पुरुषवादिनश्चाहुः॥" पुरुष एवेदꣳसर्वं यद्भूतं यच्च भाव्यं। उतामृतत्वस्येशानो यदन्नेनातिरोहति। यदेजति यन्नेजति यद्दूरे यदु अन्तिके यदन्तरस्य सर्वस्य यदु सर्वस्यास्य बाह्यतो यस्मात् परं नापरमस्ति किंचित्। न्नाणीयोइ स्वस्ति कश्चिद्वृक्ष इव स्तब्धोदिवि तिष्ठत्येकस्तेनेदं पूर्णं पुरुषेण सर्वं॥

एक एव हि भूतात्मा तदा सर्वं प्रलीयते॥
द्वावेव पुरुषौ लोके क्षरश्चाक्षर एव च॥ १॥
क्षरश्च सर्वभूतानि कूटस्थोक्षर एव च॥

"अपरेप्याहुः॥" विद्यमानेषु शास्त्रेषु ध्रियमाणेषु वक्तृषु॥
आत्मानं ये न जानन्ति ते वै आत्महता नराः॥ १॥
आत्मा वै देवता सर्वं सर्वमात्मन्यवस्थितम्॥
आत्मा हि जनयत्येष कर्मयोगं शरीरिणाम्॥ २॥
आत्मा धाता विधाता च आत्मा च सुखदुःखयोः॥
आत्मा स्वर्गश्च नरक आत्मा सर्वमिदं जगत्॥३॥
न कर्तृत्वं न कर्माणि लोकस्य सृजते प्रभुः॥
स्वकर्मफलसंयोगः स्वभावाद्धि प्रवर्त्तते॥ ४॥

शून्य है, अचल पूर्वरूपापरित्यागी है और सनातन (अनादि) है. । सो आत्माही, अक्षर, भूतात्मा, संप्रदाय, प्राण, परब्रह्म, हंस और पुरुषादि कहनेमें आता है. । आत्मासें अन्य कोई देखनेवाला, सुननेवाला, मनन करनेवाला, कर्त्ता, भोक्ता और वक्ता, नहीं है; किंतु, आत्माही है. । आत्मा चैतन्यरूप है, सो चेतन आत्मा अध्यवसायकरके कर्मोंसें बंधाता है, तब आत्माको संसार होता है, और कर्मबंधके अभावसें परंपद मोक्ष प्राप्त होता है.। आत्मा आपही अपने दीनात्माका उद्धार करता है, और आपही अपनेको दुःखोंमें गेरता है, आत्माही आत्माका बंधु है, और आत्माही आत्माका रिपु (शत्रु) है. । संतुष्ट मित्र, और क्रोधायमान शत्रु, जो सुखदुःख पूर्वे मैंने नही करा है, सो सुख दुःख मेरेको नही करेंगे. । क्यों कि, शुभाशुभकर्मोंको देहधारी आपही करते हैं, और आपही तिन कर्मोंको सुखदुःखरूपकरके भोगते हैं.। वनमें, संग्राममें, शत्रुजनोंके वीचमें, समुद्रमें, पर्वतके शिखरऊपर, सूतेको, प्रमत्तको, विषमआपदामें पडेको, इत्यादि अवस्थावाले आत्माकी पूर्वले करे हुए पुण्यही सर्वत्र रक्षा करते हैं. ॥ १।२।३।४।५।६।७।८।९।१०।११।१२।१३।१४ ॥

"दैववादिनश्चाहुः ॥"

स्वच्छन्दतो न हि धनं न गुणो न विद्या
नाप्येव धर्मचरणं न सुखं न दुःखम् ॥
आरुह्य सारथिवशेन कृतान्तयानं
दैवं यतो नयति तेन पथा व्रजामि ॥ १ ॥
यथायथा पूर्वकृतस्य कर्मणः
फलं निधानस्थमिवावतिष्ठते ॥
तथातथा तत्प्रतिपादनोद्यता
प्रदीपहस्तेव मतिः प्रवर्त्तते ॥ २ ॥
विधिर्विधानं नियतिः स्वभावः
कालोग्रहा ईश्वरकर्मदैवम् ॥

सचेतनाचेतन वस्तु, इदं श्वाक्यालंकारमें, जो कुछ अतीत कालमें हुवा, और जो आगे होवेगा, मुक्ति और संसार सो सर्व पुरुषही है; उतशब्द अपि-शब्दार्थे और अपिशब्द समुच्चयविषे है। अमृतस्य—अमरणभव (मोक्ष) का ईशानः प्रभु है। यदिति यच्चेति च शब्दके लोप होनेसें जो अन्न-अहारकरके अतिरोहति—अतिशयकरके वृद्धिको प्राप्त होना है, यदेजति-जो चलता है पशुआदि, जो नहीं चलता है पर्वतादि, जो दूर है मेरु आदि-जो निकट है, उशब्द अवधारणमें है, सो सर्व पुरुषही है; जो अंतर इस चेतनाचेतन पदार्थके बीचमें, और जो कुछ इसके बाह्यमें है, सो सर्व पुरुषही है; जिस पुरुषकेपरे अपर कोइ किंचित् त्राणरूप कल्याणकारी अतिचतुर नहीं है. तथा जो एक, आकाश, स्वर्गमें, वा रहता है, तिसही पुरुषकरके यह सर्व पूर्ण भराहुआ है. जब एकला पुरुषही रहजाता है, तब सर्व जगत् तिसएकरूपमेंही लय होजाता है; क्यों कि दोही पुरुष जगत्में है. एक क्षर—नाश होनेवाला, और दूसरा अक्षर—अविनाशी है; जितने जग-त्में भूत हैं, वे सर्व क्षर हैं, और जो कूटस्थ है, सो अक्षर है ॥ १ ॥

औरभी कहते हैं कि—शास्त्रोंके विद्यमान हुए, और वक्तायोंके धारण कर-तेहुएभी जे पुरुष अपने आत्माको नहीं जानते हैं, वे पुरुष निश्चयकरके आत्म-हत (आत्मघाती) हैं. आत्माही देवता है, आत्मामेंही सर्व वस्तु व्यवस्थित है; आत्माही सर्व शरीरवाले जीवोंके कर्मका संयोग उत्पन्न करता है.। आत्माही धाता है, आत्माही विधाता है, आत्माही सुखदुःखमें है, आत्माही स्वर्ग है, आत्माही नरक है, और यह सर्व जगत् आत्माही है.। ईश्वर, लोकको न कर्त्तापणा रचता है, और न कर्मोंको रचता है, किंतु अपने करे कर्मफलका संयोग स्वभावसेंही प्रवर्त्तता है.। आत्मज्ञान स्वभावकरके आपही मनन होनेका संभव होनेसें अपने कर्मोंसेंही जीव जगत्में उत्पन्न होता है, इसवास्ते जीवको स्वयंभू कहते हैं.। इसआत्माको शस्त्र छेदन नहीं करसक्के हैं, अग्नि दाह नहीं करसक्का है, पाणी गीला नहीं करसक्का है, और पवन शोषण नहीं करसक्का है.। इसवास्ते यह आत्मा अच्छेद्य है, अभेद्य है, पूरापूरा स्वरूपकथन नहीं करसक्के हैं इसवास्ते निरुपाख्य है, नित्य है, सर्वगत (सर्वव्यापक) है, स्थाणु (स्थिरस्वभाव) अर्थात् रूपांतरापत्तिकरके

कुंचित (वांका) और फल वर्त्तुल (गोल), हे प्रियवर ! कहो स्वभावविना येह किसने बनाए (रचे) हैं ? ॥ १ । २ ॥

"अक्षरवादिनश्चाहुः ॥"

अक्षरात् क्षरितः कालस्तस्माद्व्यापक इष्यते ॥
व्यापकादिप्रकृत्यन्तः सैव सृष्टिः प्रचक्ष्यते ॥ १ ॥

" अपरेप्याहुः ॥ "

अक्षरांशस्ततो वायुस्तस्मात्तेजस्ततो जलम् ॥
जलात् प्रसूता पृथिवी भूतानामेषसंभवः ॥ २ ॥

व्याख्या—अक्षरवादी कहते हैं—अक्षरसें क्षरका काल उत्पन्न हुआ, तिस हेतुसें कालको व्यापक माना है, व्यापकादि प्रकृतिपर्यंत सोही सृष्टि कहते हैं. अपर ऐसे कहते हैं—प्रथम अक्षरांश, तिससें वायु उत्पन्न हुआ, तिस वायुसें तेज(अग्नि)उत्पन्न हुआ, अग्निसें जल उत्पन्न हुआ, और जलसें पृथिवी उत्पन्न हुइ, इन भूतोंका ऐसें संभव हुआ है ॥ १ । २ ॥

"अंडवादिनश्चाहुः ॥"

नारायणः परोऽव्यक्तादण्डमव्यक्तसंभवम् ॥
अण्डस्यान्तस्त्वमी भेदाः सप्तद्वीपा च मेदिनी ॥ १ ॥
गर्भोदकं समुद्राश्च जरायुश्चापि पर्वताः ॥
तस्मिन्नण्डेत्वमी लोकाः सप्त सप्त प्रतिष्ठिताः ॥ २ ॥
तस्मिन्नण्डे स भगवानुषित्वा परिवत्सरम् ॥
स्वयमेवात्मनो ध्यानात्तदण्डमकरोद् द्विधा ॥ ३ ॥
ताभ्यां स शकलाभ्यां च दिवं भूमिं च निर्ममे——इत्यादि——

व्याख्या—अंडवादी कहते हैं—नारायण भगवान् परमअव्यक्तसें, व्यक्त अंडा उत्पन्न हुआ, और तिस अंडेके अंदर यह भेद जो आगे कहते हैं, सातद्वीपवाली पृथिवी, गर्भोदक वर्षणेवाला जल, समुद्र, जरायु मनुष्यादि, और पर्वत, तिस अंडेविषे ये लोक सात २ अर्थात् चौदह भुवन प्रति-

भाग्यानि कर्माणियमः कृतान्तः
पर्यायनामानि पुराकृतस्य ॥ ३ ॥
यत्तत्पुराकृतं कर्म्म न स्मरन्तीह मानवाः
तदिदं पाण्डवज्येष्ठ दैवमित्यभिधीयते ॥ ४ ॥

व्याख्या—दैववादी ऐसें कहते हैं—स्व (अपणे), छंद (अभिप्राय), सें धन, गुण, विद्या, धर्माचरण, सुख और दुःखादि नही होते हैं; किंतु कालरूप यान ऊपर चढा दैव, तिसके वशसें जहां दैव लेजाता है, तहांही मैं जाता हूं. । जैसें २ पूर्वकृत कर्मोंका फल निधानकीतरें रहता है, पूर्वकृतनिकाचितकर्मका नामही दैव है, तैसें २ तिसके प्रतिपादनमें उद्यत हुआ, प्रदीप हस्तकीतरें मति प्रवर्त्ते है. । विधि १, विधान २, नियति ३, स्वभाव ४, काल ५, ग्रह ६, ईश्वर ७, कर्म ८, दैव ९, भाग्य १०, कर्म ११, यम १२, और कृतांत १३, यह सर्व पूर्वकृत कर्मोंकेही पर्याय नाम है. । जिस कारणसें ते पूर्वकृत कर्म यहां मनुष्य नही स्मरण करते है, तिस कारणसें, यह, हे पांडवज्येष्ठ ! दैव कहा जाता है. ॥ १।२।३।४ ॥

"स्वभाववादिनश्चाहुः ॥"

कः कण्टकानां प्रकरोति तीक्ष्णं
विचित्रितां वा मृगपक्षिणां च ॥
स्वभावतः सर्वमिदं प्रवृत्तं
न कामचारोस्ति कुतः प्रयत्नः ॥ १ ॥
वदर्याः कण्टकस्तीक्ष्णो ऋजुरेकश्च कुंचितः ॥
फलं च वर्त्तुलं तस्या वद केन विनिर्मितम् ॥२॥

व्याख्या—स्वभाववादी ऐसें कहते हैं—कौन पुरुष कंटकोंको तीक्ष्ण करता है ? और मृगपक्षीयोंका विचित्र रंग विरंगादि स्वरूप कौन करता है ? अपितु कोइभी नही करता है, स्वभावसेंही सर्व प्रवृत्त होते हैं, इसवास्ते अपनी इच्छासें कुछभी नही होता है, इसवास्ते पुरुषका प्रयत्न ठीक नही है. । वेरीका एक कांटा ऋजु (सरल) और तीक्ष्ण, और एक

जीवोंके बहुत प्रयत्नके करनेसेंभी, जो नही होनहार है, वो कदापि नही होता है; और जो होनहार है तिसका कदापि नाश नही होता है. यथा हम साचे पिशाच हैं, और वनमें वसते हैं, भेरीको हम हस्ताग्रोंकरके भी स्पर्श नही करते हैं, तोभी यह वाद पृथिवीमें प्रसिद्ध है कि, निश्चयकरके भेरीको पिशाचही ताडना करते हैं (वजाते हैं) ॥ १ । २ ॥

" भूतवादिनश्चाहुः ॥ "

पृथिव्यापस्तेजोवायुरिति तत्त्वानि तत्समुदायशरीरेंद्रियविषयसंज्ञामदशक्तिवच्चैतन्यंजलबुद्बुदवज्जीवो चैतन्यविशिष्ट कायःपुरुष इति॥

भौतिकानि शरीराणि विषयाः कारणानि च ॥
तथापि मन्दैरन्यस्य कर्त्तृत्वमुपदिश्यते ॥ १ ॥
एतावानेव लोकोयं यावानिन्द्रियगोचरः ॥
भद्रे वृकपदं ह्येतत् यद्वदन्त्यबहुश्रुताः॥ २॥
तपांसि यातनाश्चित्रा संयमो भोगवंचना ॥
अग्निहोत्रादिकं कर्म बालक्रीडेव लक्ष्यते ॥ ३ ॥

व्याख्या—भूतवादी कहते हैं–पृथिवी १, पाणी २, अग्नि ३, और वायु ४, येह चार तत्त्व हैं; तिनका समुदाय सोही शरीरेंद्रिय विषय संज्ञा है, और मदशक्तिकीतरें चैतन्य उत्पन्न होता है, जलके वुदवुदकीतरें जीव है, अचैतन्य विशिष्ट काया है, सोही पुरुष है, इति. ॥ ऐसें पूर्वोक्त भौतिक शरीर है, वेही विषय और कारण है, तोभी मूर्ख लोक अन्य ईश्वरादिको कर्त्तापणा कहते हैं. । यह लोक इतनाही है, जितना इंद्रियोंके गोचरविषय है; हे भद्रे ! जैसा यह जूठा कल्पित करा हुआ वृक (भेडीये) का पग है, अबहुश्रुत (अज्ञानी लोक) ऐसेही नरक स्वर्ग जूठे कल्पन करके मूर्खलोकोंको डराते हैं. । तप करना है, सो निःकेवल अनेक प्रकारकी पीडामात्र है, और जो संयम है, सो भोगोंकी वंचनारूप है, अग्निहोत्रादिक जे कर्म्म हैं, वे वालकोंकी क्रीडाकीतरें मालुम होते हैं. ॥ १।२।३ ॥

"अनेकवादिनश्चाहुः॥"

ष्ठित है, सो भगवान् तिस अंडेसें एक वर्ष रहकरके अपने ध्यानसें तिस अंडेके दो भाग करता हुआ, तिन दोनों टुकडोंमें ऊपरले टुकडेसें आकाश और दूसरे टुकडेसें भूमि निर्माण करता भया. इत्यादि॥ १। २॥ ३ ॥

"अहेतुवादिनश्चाहुः॥"

हेतुरहिता भवन्ति हि भावाः प्रतिसमयभाविनाश्चित्राः॥
भावादृते न द्रव्यं संभवरहितं खपुष्पमिव ॥१॥

व्याख्या—अहेतुवादी कहते हैं—[प्रायः अहेतुवादी, परिणामवादी, और नियतिवादी, येह यदृच्छावादीहीके भेद मालुम होते हैं] प्रतिसमय होनेवाले विचित्र प्रकारके जे भाव हैं, वे सर्व अहेतुसेंही उत्पन्न होते हैं, और भावसें रहित द्रव्यका संभव नहींहै, आकाशके पुष्पकीतरें. ॥ १ ॥

"परिणामवादिनश्चाहुः ॥"

प्रतिसमयं परिणामः प्रत्यात्मगतश्च सर्व भावानाम्॥
संभवति नेच्छयापि स्वेच्छाक्रमवर्त्तिनी यस्मात् ॥ १ ॥

व्याख्या—परिणामवादी कहते हैं—समय २ प्रति परिणाम, प्रतिआत्मगत आत्मा २ प्रति प्राप्त हुआ, सर्वभावोंको संभव होता है, इच्छासें कुछभी नही होता है; क्योंकि स्वेच्छा क्रमवर्तिनी है, और परिणाम तो युगपत् सर्व पदार्थोंमें है ॥ १ ॥

"नियतिवादिनश्चाहुः ॥"

प्राप्तव्यो नियतिवलाश्रयेण योऽर्थः
सोऽवश्यं भवति नृणां शुभोऽशुभो वा ॥
भूतानां महति कृतेऽपि हि प्रयत्ने
नाभाव्यं भवति न भाविनोस्ति नाशः॥१॥

सत्त्यं पिशाचाः स्म वने वसामो भेरीं कराग्रैरपि न स्पृशामः ॥
अयं च वादः प्रथितः पृथिव्यां भेरीं पिशाचाः किल ताडयन्ति॥२॥

व्याख्या—नियतिवादी कहते हैं—नियतिवलाश्रयकरके जो अर्थ प्राप्तव्य-प्राप्तहोने योग्य है, सो शुभ वा अशुभ अर्थ पुरुषोंको अवश्यमेव होता है,

अब ग्रंथकारने जो सामान्यसें पूर्वपक्षका खंडन लिखा है, सोही लिखतेहैं.

तेषामेवाविनिर्ज्ञातमसदृशं सृष्टिवादिनामिष्टम् ॥
एतद्युक्तिविरुद्धं यथातथा संप्रवक्ष्यामि ॥ १ ॥
सदसज्जगदुत्पत्तिः पूर्वस्मात्कारणात्स्वतो नास्ति ॥
असतोपि नास्ति कर्त्ता सदसद्भ्यां संभवाभावात् २ ॥
यदसत्तस्योत्पत्तिस्त्रिष्वपि कालेषु निश्चितं नास्ति ॥
खरशृंगमुदाहरणं तस्मात्स्वाभाविको लोकः ॥ ३ ॥
मूर्त्तामूर्त्तं द्रव्यं सर्वं न विनाशमेति नान्यत्वम् ॥
यद्गत्येतत्प्रायः पर्यायविनाशो जैनानाम् ॥ ४ ॥
काश्यपदक्षादीनां यदभिप्रायेण जायते लोकः ॥
लोकाभावे तेषां अस्तित्वं संस्थितिः कुत्र ॥ ५ ॥

व्याख्या—तिन पूर्वोक्त सृष्टिवादीयोंने इस जगत्का स्वरूप यथार्थ जाना-हुआ नही है, और जो उनकों सृष्टिका स्वरूप इष्ट है, सोभी एकसरीषा नही है, कोइ कैसें माने है, और कोइ किसीतरें माने है, सो सर्व प्रायः ऊपर पूर्वपक्षमें लिख आए हैं; और जो इन पूर्वपक्षीयोंका मानना है, सोभी युक्तिप्रमाणसे विरुद्ध है, जैसें युक्तिप्रमाणसे विरुद्ध है, तैसें, मैं(श्रीहरिभद्रसूरि) सम्यक्प्रकारसें संक्षेपरूप कथन करूंगा. । जगत्की उत्पत्ति सत्कारणसें है वा असत्कारणसें है ? सत्कारणसेंभी नही है, और असत्कारणसेंभी नही है; और सृष्टिका कर्त्ता सत् असत् दोनों स्वरूपोंसें संभव नही हो सक्ता है, प्रमाणके अभावसें, सोही दिखाते हैं. । जेकर कारण सत्रूप है, तव तो कारण अपने स्वरूपको कदापि नही त्यागेगा, जब कारण अपने स्वरूपको नही त्यागेगा, तव कार्यरूप जगत् कैसें उत्पन्न होवेगा ? जेकर कारण अपने स्वरूपको त्यागके कार्य उत्पन्न करेगा, तव तो कारणका सत्स्वरूप नही रहेगा, तथा जगदुत्पत्तिसें पहिलां जो जगत्का कारण था, सो नित्यस्वरूपवाला था, वा, अनित्यस्वरूपवाला था ? जेकर नित्य माना-जायगा, तव तो तीनोंही कालमें जगत्की उत्पत्ति नही होवेगी, "अप्रच्युतानुत्पन्नस्थिरैकरूपं नित्यं ॥"

कारणानि विभिन्नानि कार्याणि च यतः पृथक्॥
तस्मात्रिष्वपि कालेषु नैव कर्मास्ति निश्चयः॥ १ ॥

व्याख्या—अनेकवादी कहते हैं—कारणभी भिन्न है, और कार्यभी भिन्न है, तिसवास्ते तीनोही कालोंविषे कर्मोंकी अस्ति नही है ॥ १ ॥इतिपूर्वपक्षः॥

इसपूर्वपक्षमें परवादीयोंके अभिमत पक्ष लिखतेहुए श्रीहरिभद्रसूरिजीनें, जो जो ऋग्वेद यजुर्वेदादिकोंकी श्रुतियां, तथा मनु गीताप्रमुख ग्रंथोंके अनुसार थोडे २ व्यस्त श्लोक लिखे हैं, तिसका कारण यह है कि, पूर्वपक्षोंके श्लोक बहुत हैं सर्व लिखते तो ग्रंथ भारी हो जाता, इसवास्ते प्रतीकमात्रसें तिन सर्वमतवादीयोंके स्वपक्षस्थापनके सर्वश्लोक जान लेने.

प्रथम इस अवसर्प्पिणीकालमें श्रीऋषभदेवजीनेही, अनंतनयात्मक सर्वव्यापक स्याद्वादरसकूपिकाके रससमानसें सर्वजीवादितत्त्वोंका निरूपण करा था, तिसमेंसें किंचिन्मात्र सार लेके सांख्यमत, और सांख्यमतका किंचित् आशय लेके वेदांत, योग, मनुस्मृति, गीताप्रमुख शास्त्र ऋषिब्राह्मणोंने रचे. जैसें आर्यवेदोंकी उत्पत्ति, और तिनका व्यवच्छेद, और अनार्यवेदोंकी उत्पत्ति हुई, तथा आर्यब्राह्मणोंकी, और अनार्यब्राह्मणोंकी उत्पत्ति, इत्यादि वर्णन हम जैनतत्त्वादर्शनामाग्रंथमें लिख आए हैं; तहांसे जानना. और प्रायः इस ग्रंथमें जे जे मत पूर्वपक्षमें लिखे हैं, वेभी सर्व जैनतत्त्वादर्शग्रंथमें खंडनरूपसें लिख दीए हैं; इहां तो केवल जो श्रीहरीभद्रसूरिजीने सामान्यप्रकारे समुच्चय पूर्वपक्षोंका खंडन लिखा है, सोही लिखेंगे. वाचकवर्गको विदित होवे कि, वेदकेसाथ स्मृति नही मिलती है, और स्मृतियोंकेसाथ पुराण नही मिलते हैं, इसवास्ते यह सर्वपुस्तक सर्वज्ञके कथन करे हुए नही हैं, परस्परविरुद्धत्वात्. इसवास्ते पूर्वोक्त मतोंवालोंने जगत्विषयक जो जो कथन करा है, सो सर्व तिनोंका अज्ञानविजृंभित है. क्योंकि, इस जगत्का यथार्थस्वरूप पूर्वोक्त मतवालोंमेंसें किसीनेभी नही जाना है. "तत्तं ते नाभिजाणंति नविनासी कयाइवि इतिवचनप्रामाण्यात्" ॥

प्रायः कारणवालेंही सर्वे विकल्प जान लेने. तथा जब जगत्ही नही था, तब जगतका कर्ता कहां रहताथा? जेकर कहे सर्व जगें व्यापक था, तो, हे प्यारे! जब कोइ जगाही नही थी, तो, व्यापक किसमें था? क्योंकि, विना आकाशके कोइभी जड चैतन्य वस्तु नही रह सक्ती है, यह प्रमाणसिद्ध है; और अप्रमाणिक कथनकों सत्य करके मानना, यह बुद्धिमानोंका काम नही है. जेकर असत्कारण, और असत्कर्त्ताके माननेसें जगदुत्पत्ति होवे, तव तो खरशृंगसेंभी पुरुष उत्पन्न होना चाहिए; सोही ग्रंथकार दिखावे है. जिसवास्ते असत् जो है, तिसकी उत्पत्ति तीनोही कालमें निश्चित नही होसक्ती है, इस कथनमें खरशृंगका दृष्टांत है, जैसें खरशृंग स्वरूपसें असत् है, तिस्सें कोइभी कार्य उत्पन्न नही होसक्ता है, तैसेंही असत्कारण और असत्कर्त्तासेंभी कोइ कार्य उत्पन्न नही होसक्ता है; तिसकारणसें प्रवाह अपेक्षा अनादि स्वभावसिद्ध लोक है, नतु ईश्वरादिरचित. ॥

मूर्त्तामूर्त्त जो द्रव्य है, परमाणु और परमाणुजन्य जो कार्यद्रव्य है, सर्व मूर्तद्रव्य है; जिसमें रूप, रस, गंध, स्पर्श होवे, तिसकों मूर्तद्रव्य कहते हैं; और आत्मा आकाशादि अमूर्त द्रव्य है. ये दोनो स्वरूप, द्रव्योंके सर्वथा कदापि विनाश नही होते हैं, और न अन्यत्व, अर्थात् मूर्तद्रव्य कदापि अमूर्त्तभावकों प्राप्त नही होवे है, और न अमूर्त कदापि मूर्त भावकों प्राप्त होवे है; किंतु, यह जो जगत्की उत्पत्ति विनाश है, सो पर्यायरूपकरके जैन मानते हैं, न तु द्रव्यरूपकरके. । काश्यपदक्षादिकोंके, आदिशब्दसें समलब्रह्महिरण्यगर्भब्रह्मादिके अभिप्रायसें जेकर जगत्की उत्पत्ति होवे, तब लोकके अभावसें तिनका काश्यप, दक्ष, हिरण्यगर्भादिकोंका अस्तिपणा, और रहना कहां था? कहांहीभी नही था. ॥ १।२।३।४।५ ॥

सर्वं धराम्बराद्यं याति विनाशं यदा तदा लोकः ॥
किं भवति बुद्धिरव्यक्तमाहितं तस्य किं रूपम् ॥ ६ ॥

यह नित्यका लक्षण है. जब कारण अपने स्वरूपसें न क्षरेगा, अर्थात् नाश नही होवेगा, और नवीन स्वरूप धारण नही करेगा, तब कार्यको कैसें उत्पन्न करेगा? क्योंकि, मृत्पिंड, स्थास, शिवक, कोश, कशूलादि पूर्वरूपोंको त्यागकेही उत्तर रूपोंको प्राप्त होता है; जेकर कहोगे कारण अनित्य है, तब तो सोभी कारण अन्यकारणसें उत्पन्न होना चाहिए, सोभी कारण अन्यकारणसें ऐसे माने अनवस्थादूषण होवे है; इसवास्ते सत् और नित्यकारणसें जगदुत्पत्ति कैसें हो सक्तीहै? अपितु कदापि नही हो सक्ती है.

और एक यह बडा दूषण जगदुत्पत्ति माननेमें है कि, जब जगत्‌ही नही था, तब जगत्‌की उत्पत्तिका कारण और जगत्कर्त्ता ईश्वर, ये दोनों किस स्थानमें रहते थे? क्योंकि कोईभी स्थान रहनेवाला नही था. जेकर कहोगे आकाशमें रहते थे, तो, यह कहनाभी मिथ्या है; क्योंकि, सांख्यशास्त्रमें, तथा वेदोंमें, आकाशकोभी उत्पत्तिवाला माना है, जो कि आगे लिखेंगे. जब आकाशही नही उत्पन्न हुआ था, तब जगत्‌का सत् नित्यकारण, और कर्त्ता ये दोनों कहां रहते थे?

एक अन्यबात यह है कि, आकाशनाम शून्य पोलाडका है, जब शून्य पोलाडरूप आकाश नहीं था तो, क्या इहां कोइ निग्गर घनरूप था? क्योंकि, सप्रतिपक्ष जो वस्तु है, तिनमें जहां एक होवेगा, तहां दूसरेका अवश्य अभाव होवेगा, अंधकारउद्योतवत्. जब घनरूप था, सो परमाणु आदि चारों महाभूतोंके सिवाय अन्य कोइ वस्तु सिद्ध नही होसक्ती है, और परमाणु आदि चार महाभूत आकाशविना कदापि किसी जगे नही रहसक्ते हैं, इसवास्ते सत्कारणसें वा नित्यानित्यकारणोंसें जगत्‌की उत्पत्ति जे मानते हैं, तिनके घटमें अज्ञान विजृंभितके विना अन्य कोइ कारण नही है.

तथा जगत्‌का जो कर्त्ता माना है, सो सत्स्वरूप है कि, असत्स्वरूप है? जेकर सत्स्वरूप है तो, फेर नित्य है कि, अनित्य है? इत्यादि-

ईहापोहाभावस्तदभावे संभवाभावः॥ १२ ॥
तदभावेस्ति न चिन्ता चिन्ताभावे क्रियागुणो नाऽस्ति ॥
कर्तृत्वमनुपपन्नं क्रियागुणानामसंभवतः ॥ १३ ॥

व्याख्या—तहां अलिंगवाले अव्यक्तसें व्यक्तस्वरूपकी तों कदाचित् उत्पत्ति होसक्ती है, दधिवत्; परंतु यदि भूतही नही है तो, सोमादिकोंकाभी संभव नही है. क्योंकि, जेकर शरीरके मूलकारणभूतही नही है तो, सोमादिकोंके शरीरका संभव कैसें होगा?। जब महाभूतोंका समूहही नही है तो, तिनके पशुपति (महादेव,) दिनपति, वत्स, मांडव्य, पितामह, ब्रह्मा, विष्णुके शरीरकाभी संभव नही होसक्ता है.।और देहके अभाव हुए बुद्धि, और मनके भेदोंका संभव नही है. क्योंकि, देहके विना मन और बुद्धिका संभव किसीप्रमाणसेंभी सिद्ध नही होसक्ता है, और बुद्धि मनके अभावसें ईहाअपोहका अभाव है, ईहानाम विचार करणेका है, और अपोहानाम निश्चय करणेके सन्मुख होनेका है, बुद्धिमनके अभावसें इन दोनोंका संभव नही है.? इहाअपोहाके अभावसें चिंता नही हो सक्ती है, और चिंताके अभावसें क्रियागुण नही है, क्रियागुणके संभव न होनेसें कर्त्तापणाकी अनुपपत्ति है; जब क्रियागुण नही है, तब कर्त्तापणा किसीप्रमाणसेंभी सिद्ध नही होता है.॥ १०।११।१२।१३ ॥

तेन कृतं यदि च जगत् स कृतः केनाकृतोथ बुद्धिर्वः ॥
विज्ञेयः सत्येवं भवप्रपंचोऽपि तद्वदिह ॥ १४ ॥

व्याख्या—जेकर यह जगत् तिस ईश्वरने रचा है तो, वो ईश्वर किसने रचा है? अथ जेकर तुमारी ऐसी बुद्धि होवे कि, ईश्वर तो किसनेभी नही रचा है तो, ऐसेही जगत्का प्रपंचभी जानना चाहिए, अर्थात् जगत्भी ईश्वरकीतरें किसीने नही रचा है, किंतु प्रवाहसें अनादि है; ऐसे क्यों नही मानते हैं? ॥ १४ ॥

अभ्युपगम्येदानीं जगतः सृष्टिं वदामहे नास्ति ॥
पुरुषार्थैः कृतकृत्यो न करोत्याप्तो जगत्कलुषम् ॥ १५ ॥

व्याख्या—सर्व पृथिवी आकाशादि जिस अवसरमें नष्ट हो जावेंगे, तब इस लोकका क्या स्वरूप होवेगा? अव्यक्तस्थापितबुद्धिका क्या स्वरूप होवेगा? तात्पर्य यह है कि, सांख्यमतवालोंके प्रकृतिपुरुष, और वेदांतियोंका अव्यक्त ब्रह्म, इन सर्वका रहनाभी आकाशादिके अभावसें प्रमाणसिद्ध नही होवेगा. ॥ ६ ॥

यदमूर्त्तं मूर्त्तं वा स्वलक्षणं विद्यते स्वलक्षणतः ॥
तद्व्यक्तं निर्दिष्टं सर्वं सर्वोत्तमादेशैः ॥ ७ ॥

व्याख्या—जिसपदार्थका मूर्त्त वा अमूर्त्त स्वलक्षण है, वो पदार्थ अपने लक्षणसें विद्यमान है, सो व्यक्त है, ऐसा सर्वोत्तमादेशोंकरके कहा है. ॥ ७ ॥

द्रव्यं रूप्यमरूपि च यदिहास्ति हि तत् स्वलक्षणं सर्वम् ॥
तल्लक्षणं नयस्य तु तद्वंध्यापुत्रवद्ग्राह्यम् ॥ ८ ॥

व्याख्या—इस जगत्में जो रूपि वा अरूपि द्रव्य है, सो स्व २ लक्षणकरके विद्यमान है, जिसद्रव्यमें स्वलक्षण नही है, वो द्रव्य वंध्यापुत्रवत् जानना, अर्थात् वो द्रव्यही नही है. ॥ ८ ॥

यद्युत्पत्तिर्न भवति तुरगविषाणस्य खरविषाणाग्रात् ॥
उत्पत्तिरभूतेभ्यो ध्रुवं तथा नास्ति भूतानाम् ॥ ९ ॥

व्याख्या—जैसें, खरशृंगाग्रसें घोडेके शृंगकी उत्पत्ति नही होती है, तैसेंही मूलद्रव्यके स्वलक्षणयुक्तके न हुए अविद्यमानकारणोंसे निश्चय भूतोंकी उत्पत्ति नही है ॥ ९ ॥

तत्र व्यक्तमलिङ्गादव्यक्तादुद्भविष्यति कदाचित् ॥
सोमादीनां तु न संभवोस्ति यदि न सन्ति भूतानि ॥ १० ॥
असति महाभूतगणे तेषामेव तनुसंभवो नास्ति ॥
पशुपतिदिनपतिवत्सोमाण्डव्यपितामहहरीणाम् ॥ ११ ॥
बुद्धिमनो भेदानां देहाभावे च संभवो नास्ति ॥

प्रेतादिकोंने तिस ईश्वरका क्या बुरा करा है? जिस्सें तिनको अधमपणे उत्पन्न करे; और देवतायोंने क्या ईश्वरऊपर उपकार करा? जिस्से तिनकों उत्तमपणे उत्पन्न करे; असुरोंकों दुःखमें और देवतायोंकों सुखमें विनाही हेतु जोड दिए, क्या यही ईश्वरकी न्यायशीलता है?। जेकर ईश्वर पक्षपातरहित, न्यायी, दयालु, सर्वसामर्थ्य है तो, सर्व लोकोंकों वित्त (धन,) कलत्र,पुत्रादिकरके तुल्य सुखी क्यों नही करे?और किसवास्ते जन्म जरा मृत्युके पथिकलोक रच दिए? जेकर तिस ईश्वरनेही लोक रचा है, तो फेर तिसका क्षय किसवास्ते करता है? जेकर क्षयही करणा था तो जगत्की उत्पत्ति करणेकी क्या आवश्यकता थी? तिस जगत्के क्षय करणेसें ईश्वरकों किसगुणकी प्राप्ति हुई? और तिसके रचनेसें क्या लाभ हुआ? और जीवोंकों जन्म देके दुःखी करनेसें तिस ईश्वरकों क्या लाभ हुआ?। जैसें कुंभकार कुंभादि करता है, और फेर तिनकों भांगता है, तैसेही ईश्वर जीवानुगतशरीर रचता है, और भांगता है, तब तो वो ईश्वर बडाही निर्दय है, ऐसा सिद्ध होवेगा. । जगत्-संभव दुःखोंका करनेवाला (देनेवाला), और जगद्वासीयोंका विनाहीकारण सदा वैरी (शत्रु,) ऐसे अतिपापरूप ईश्वरके शरणकों कौन बुद्धिमान् कल्याणार्थी अपने कल्याणकेवास्ते प्राप्त होवे? अपितु कोइ नही. । कितनेक लोकोंकी ऐसी बुद्धि होती है कि, अपने करे जगत्के क्षय करणेवाले तिस ईश्वरकों कर्मबंध नही है, यह कथन उनोंका अज्ञान विजृंभित है; क्या निर्दयचित्तवाले पिताकों पुत्रके बध करनेमें पापका बंध नही होता है? अवश्यमेव होता है; ऐसेंही ईश्वरकोंभी जगत् संहार करते हुए अवश्यमेव पापका बंध होवे है. । जगत्की उत्पत्ति प्रथम जेकर शरीरवाले कर्त्ताने करी है तो, कैसें तिसकीतरें अधुना संप्रतिकालमें जगत्की उत्पत्ति देहवाले कर्त्तासें होती हुई नही दीख पडती है? तात्पर्य यह है कि, प्रथम जेकर सृष्टि देहधारी ईश्वरने करी है तो, संप्रतिकालमें जो नवीननवीन सृष्टि उत्पन्न हो रही है, तिसकाभी कर्त्ता देहधारी ईश्वर हमकों दीखना चाहिए, परंतु दीखता नही है; और सृष्टि अपने कार-

अपकारः प्रेताद्यैः कस्तस्य कृतः सुरादिभिः किं वा ॥
संयोजितायदेते सुखदुःखाभ्यामहेतुभ्याम् ॥ १६ ॥
तुल्ये सति सामर्थ्ये किं न कृतो वित्तसंयुतो लोकः ॥
येन कृतो बहुदुःखो जन्मजरामृत्युपाथि लोकः ॥ १७ ॥
यदि तेन कृतो लोको भूयोपि किमस्य संक्षयः क्रियते ॥
उत्पादितः किमर्थं यदि संक्षपणीय एवासौ ॥ १८ ॥
कः संक्षिप्तेन गुणः को वा सृष्टेन तस्य लोकेन ॥
को वा जन्मादिकृतं दुःखं संप्रापितैः सत्वैः ॥ १९ ॥
भूतानुगतशरीरं कुम्भाद्यं कुम्भकृत् यथा कृत्वा ॥
असकृद्भिनत्ति तद्वत् कर्त्ता भूतानि निस्तृंशः ॥ २० ॥
भवसंभवदुःखकरं निःकारणवैरिणं सदा जगत ॥
कस्तं व्रजेच्छरण्यं भूरि श्रेयोर्थमतिपापम् ॥ २१ ॥
स्वकृतं जगत् क्षपयतस्तस्य न बन्धोस्ति बुद्धिरन्येषाम् ॥
किं न भवति पुत्रवधे बन्धः पितुरुग्रचित्तस्य ॥ २२ ॥
जगतः प्रागुत्पत्तिर्यदि कर्त्तुर्विग्रहात् कथं तद्वत् ॥
अधुना न भवति तस्यैव विग्रहात्संभवस्तस्याः ॥ २३ ॥
विविधासु यथायोनिषु सत्वानां सांप्रतं समुत्पत्तिः
नित्यं तथैव सिद्धा प्राहुर्लोकस्थितिविधिज्ञाः ॥ २४ ॥
एवं विचार्यमाणाः सृष्टिविशेषाः परस्परविरुद्धाः ॥
हरिहरविचारतुल्या युक्तिविहीनाः परित्याज्याः ॥ २५ ॥

व्याख्या—अब हम अपने सिद्धांतको अंगीकारकरके कहते हैं; जगत की उत्पत्ति, ईश्वरने नही करी है; क्योंकि, सर्व पुरुषार्थकरके जो ईश्वर कृतकृत्य हैं, सो ईश्वर आप्त, मलीन जगत्को नही करता है. जेकर करे तो, कृतकृत्य नही, आप्त नही, वीतराग नही, तब तो, वो ईश्वरही नही.।

ज्ञानचरित्रादिगुणैः संसिद्धाः शाश्वताः शिवाः सिद्धौ ॥
तनुकरणकर्म्मरहिता बहवस्तेषां प्रभुर्नास्ति ॥ २८ ॥

व्याख्या—ज्ञानदर्शनचारित्रादिगुणोंकरके जे संसिद्ध है, और जे मुक्तिमें शाश्वत शिवरूप है, और शरीर इंद्रियकर्मोंकरके रहित है, ऐसे अनंत आत्मा, सामान्यरूपसें एक, और विशेषरूपकरके अनंत, ऐसे तिन सिद्धोंका कोइ प्रभु ईश्वर नही है, किंतु आपही ज्योतिःस्वरूप है. ॥ २८ ॥

कर्म्मजनितं प्रभुत्वं संसारे क्षेत्रतश्च तद्भिन्नम् ॥
प्रभुरेकस्तनुरहितः कर्त्ता च न विद्यते लोके ॥ २९ ॥

व्याख्या—कर्मसंयुक्तकर्मजनित जो प्रभुपणा है, सो संसारमें है, राजादि; और क्षेत्रसें विचारिए तो, उर्द्ध अधो तिर्यक् लोकमें है; परंतु इस जगतसें भिन्न, कर्मरहित, शरीररहित, सर्वव्यापक, सृष्टिका कर्त्ता, एक ईश्वर इसलोकमें नही है. क्योंकि, पूर्वोक्त विशेषणोंवाला ईश्वर प्रमाणसें सिद्ध नही होता है. ॥ २९ ॥

अवगाहाकृतिरूपैः स्थैर्यभावेन शाश्वतेलोके ॥
कृतकत्वमनित्यत्वं मेर्वादीनां न संवहति ॥ ३० ॥

व्याख्या—अवगाहकरके, आकृतिकरके, रूपकरके, स्थैर्यभावकरके, इस शाश्वते लोकमें कृतकत्वपणा, अनित्यपणा, मेरुआदिपदार्थोंकों नही प्राप्त होता है. "तेषां शाश्वतत्वान्नित्यत्वाच्च" तिनोंकों शाश्वते और प्रवाहरूपसें नित्य होनेसें. ॥ ३० ॥

गुणवृद्धिहानिचित्रात् क्वचिन्महान् कृतो न लोकश्च ॥
इति सर्वमिदं प्राहुः त्रिष्वपि लोकेषु सर्वविदः ॥ ३१ ॥

व्याख्या—गुणवृद्धिहानिके विचित्र होनेसें समय २ उत्पादविनाशादिके होनेसें, कोइ जगेभी महान्का करा हुआ लोक नही है. ऐसें सर्व यह तीनों लोकमें, तीनोंही कालमें, सर्वज्ञ भगवान् कहते है. ॥ ३१ ॥

णोंसें हो रही है; और अमूर्त्त देहरहित ईश्वर सृष्टिका कर्त्ता किसीप्रमाणसेंभी सिद्ध नही होता है; इसवास्ते जगत् ईश्वरका रचा हुआ नही है ॥ १५ । १६ । १७ । १८ । १९ । २० । २१ । २२ । २३ ॥

पूर्वपक्षः—जेकर ईश्वर जगत्का रचनेवाला नही, तो फेर इस जगत्की व्यवस्था कैसें माननी चाहिए ?

उत्तरपक्षः—नानाप्रकारकी योनियोंमें संप्रतिकालमें अपने २ कारणोंसें जैसें जीवोंकी उत्पत्ति हो रही है, और काल स्वभाव नियतिकर्म उद्यम जड चैतन्यमें प्रेरणशक्तिद्वारा जैसें इस जगत्की व्यवस्था हो रही है, ऐसेंही नित्यप्रवाहसें अनादि अनंत सिद्ध है. जे लोक स्थितिके विधिके जाननेवाले सर्वज्ञ हैं, तिनका ऐसा कथन है. और युक्तिप्रमाणसेंभी ऐसाही सिद्ध होवे है. ॥ २४ ॥

ऐसें विचार करतां थकां सृष्टिकी रचनामें विशेष कथन है, वे परस्परविरुद्ध हैं, ते सर्व ऊपर लिख दीखाए हैं. जैसें हरिहर विरंचि प्रमुख सरागी देवोंमें परमेश्वरपणा प्रमाणयुक्तिसें सिद्ध नही होता है, तैसेंही प्रमाणयुक्तिसें जगत् ईश्वरकृत सिद्ध नही होता है; इसवास्ते ये सृष्टिरचनाके कथन युक्तिविहीन हैं; तिस्सेंही बुद्धिमानोंको त्यागने योग्य हैं.॥२५॥

मुक्तो वामुक्तो वास्ति तत्र मूर्त्तोथ वा जगत्कर्त्ता ॥
सदसद्वापि करोति हि न युज्यते सर्वथाकरणम् ॥ २६ ॥

व्याख्या—जगत्का कर्त्ता ईश्वर मुक्तरूप वा अमुक्तरूप, मूर्त्त वा अमूर्त्त, सत्रूप वा असत्रूप, किसीतरेंभी सिद्ध नही होता है. ॥ २६ ॥

मुक्तो न करोति जगन्न कर्मणा बध्यते विगतरागः ॥
रागादियुतः सतनुर्निबध्यते कर्मणावश्यम् ॥ २७ ॥

व्याख्या—जो मुक्तरूप है, सो तो जगत्को नही रचेगा; प्रयोजनाभावात्. और जो वीतराग है, सो कर्मबंधनोंसें नही बंधाता है; जो रागसंयुक्त शरीरसहित है, सो अवश्यमेव कर्मोंकरके बंधाता है. ॥ २७ ॥

कर्मानुभावनिर्म्मितनैकाकृतिजीवजातिगहनस्य ॥
लोकस्यास्य न पर्यवसानं नैवादिभावश्च ॥ ३६ ॥

व्याख्या–कर्मोंके अनुभावसमर्थसें जीवोंकी अनेक आकृति बन रही-है, तिस अनेकाकृतीसंयुक्त जीवोंकी जाति, योनियोंकरके गहन इसलोक-का कदापि पर्यवसान (छेहडा) नही है, और आदिपणाभी नही है-॥३६॥

तस्मादनाद्यनिधनं व्यसनोरुभीमं
जन्मारदोषदृढनेम्यतिरागतुम्ब्यम् ॥
घोरंस्वकर्मपवनेरितलोकचक्रं
भ्राम्यत्यनारतमिदं हि किमीश्वरेण॥ ३७ ॥

इति श्रीमद्धरिभद्रसूरिकृत लोकतत्त्वनिर्णयः ॥

व्याख्या–तिसवास्ते अनादि, अनंत और कष्टोंकरके भयजनक जन्म-रूप अरे! दोषरूप दृढ चक्रकी नेमीधारा है, रागरूप तुंब घोर नाभी है, अपने २ कर्मरूप पवनका प्रेरा हुआ लोकचक्र निरंतर भ्रमण करता है, तो फेर ईश्वर कर्त्ताकी कल्पना करनेसें क्या लाभ है? कुछभी नही है-निःकेवल अज्ञानियोंके अज्ञानकी लीला है, जो कि, जगत्का कर्त्ता ईश्वर मानना ॥ ३७ ॥

इति श्रीमद्धरिभद्रसूरिकृतलोकतत्त्वनिर्णयस्य बालावबोधः ॥

श्रीमत्तपोगणेशेन विजयानंदसूरिणा ॥
कृतोबालावबोधोयं परोपकृतिहेतवे ॥ १ ॥
इंदुबाणांकचन्द्राब्दे मधुमासे सिते दिले ॥
त्रयोदश्यां तिथौ बुधघस्रे पूर्त्तिमगात्तथा ॥ २ ॥

सर्व श्री संघसें हम नम्रतापूर्वक विनती करते हैं कि, महादेवस्तोत्र, अयोगव्यवच्छेद, और लोकतत्त्वनिर्णय नामक ग्रंथोंकी टीका तो हमकों मिली नही है, केवल मूलमात्र पुस्तक मिले हैं, सोभी प्रायः अशुद्धसें है, परंतु कितनेक मुनियोंकी प्रार्थनासें यह बालावबोधरूप किंचिन्मात्र भाषा लिखी है; इनमें ग्रंथकारके अभिप्रायसें जो कुछ अन्यथा लिखा होवे, वा जिनाज्ञासें विरुद्ध लिखा होवे तो, मिथ्यादुष्कृत हमकों होवे;

अद्धाचक्रमनीशं ज्योतिश्चक्रं च जीवचक्रं च ॥
नित्यं पुनंति लोकानुभावकर्मानुभावाभ्याम् ॥ ३२ ॥

व्याख्या—अद्धाचक्र (कालचक्र) जो लोकमें वर्त्तता है, सो ईश्वरकृत नहीं है, ऐसेंही ज्योतिश्चक्र और जीवचक्र जानने; ये तीनों चक्र नित्य सदाही लोककी अनादि मर्यादाकरके, और जीवोंके शुभाशुभ कर्मोंके अनुभावसामर्थ्यकरके, प्रवर्त्त रहे है, नतु ईश्वरकी प्रेरणासें. ॥ ३२ ॥

चंद्रादित्यसमुद्राश्चिरप्यपि लोकेषु नातिवर्त्तंते ॥
प्रकृतिप्रमाणमात्मायमित्युवाचोत्तमज्ञाना ॥ ३३ ॥

व्याख्या—चंद्र, सूर्य, समुद्र, ये, तीनो लोकमें जो अपनी मर्यादाका उल्लंघन नहीं करते है, यह भी अनादि लोकस्थिति, और जीवोंके कर्मोंहीके प्रभावसें है. और प्रकृति अर्थात् देहप्रमाणव्यापक यह आत्मा है, ऐसें उत्तमज्ञानवान् कहते भए हैं ॥ ३३ ॥

सर्वाः पृथिव्यश्च समुद्रशैलाः सस्वर्गसिद्धालयमंतरिक्षम् ॥
अकृत्रिमः शास्वत एष लोक अतो बहिर्यत्तदलौकिकं नु ॥ ३४॥

व्याख्या—सर्व पृथिवी, समुद्र, पर्वत, स्वर्ग (देवलोक) और सिद्धालय मुक्ताकाशचिदाकाशसहित अंतरिक्ष आकाश, ये सर्व, तिनमें कितनेक तो स्वरूपसें अनादि है, और कितनेक प्रवाहसें अनादि है, इसवास्ते ईश्वरकृत नहीं है; किंतु यह लोक शाश्वत है, और इस लोकसें जो बाहिर है, सो अलोक है, निःकेवल आकाशमात्र है. ॥ ३४ ॥

प्रकृतीश्वरौ विधानं कालः सृष्टिर्विधिश्च दैवं च ॥
इति नामधनो लोकः स्वकर्मतः संसरत्यवशः ॥ ३५ ॥

व्याख्या—प्रकृति, ईश्वर, विधान, काल, सृष्टि, विधि, दैव ये सर्व लोकके नाम है; इसलोकमें संसारी जीव अपने २ कर्मोंकरके भ्रमण करता हैं, नतु स्ववशसें. ॥ ३५ ॥

सत्य मोक्षमार्गकी प्राप्ति नही होवेगी.

अथ प्रथम मनुस्मृतिमें जैसे सृष्टिका क्रम लिखा है, सोही लिख दिखाते हैं.

आसीदिदं तमोभूतमप्रज्ञातमलक्षणम् ॥
अप्रतर्क्यमिव ज्ञेयं प्रसुप्तमिव सर्वतः ॥ ५ ॥
ततः स्वयंभूर्भगवानव्यक्तो व्यञ्जयन्निदम् ॥
महाभूतादिवृत्तौजाः प्रादुरासीत्तमोनुदः ॥ ६ ॥
योसावतीन्द्रियग्राह्यः सूक्ष्मो ऽव्यक्तः सनातनः ॥
सर्वभूतमयोचिन्त्यः स एव स्वयमुद्बभौ ॥ ७ ॥
सोभिध्यायशरीरात्स्वात् सिसृक्षुर्विविधाः प्रजाः ॥
अप एव ससर्जादौ तासु बीजमवासृजत् ॥ ८ ॥
तदण्डमभवद्धैमं सहस्रांशुसमप्रभम् ॥
तस्मिन् जज्ञे स्वयं ब्रह्मा सर्वलोकपितामहः ॥ ९ ॥
आपो नारा इति प्रोक्ता आपो वै नरसूनवः ॥
ता यदस्यायनं पूर्वं तेन नारायणः स्मृतः ॥ १० ॥
यत्तत्कारणमव्यक्तं नित्यं सदसदात्मकम् ॥
तद्विसृष्टः स पुरुषो लोके ब्रह्मेति कीर्त्यते ॥ ११ ॥
तस्मिन्नण्डे स भगवानुषित्वा परिवत्सरम् ॥
स्वयमेवात्मनो ध्यानात्तदण्डमकरोद् द्विधा ॥ १२ ॥
ताभ्यां स शकलाभ्यां च दिवं भूमिं च निर्ममे ॥
मध्ये व्योम दिशश्चाष्टावपां स्थानं च शाश्वतम् ॥१३॥
उद्बबर्हात्मनश्चैव मनः सदसदात्मकम् ॥
मनसश्चाप्यहंकारमभिमन्तारमीश्वरम् ॥ १४ ॥
महान्तमेव चात्मानं सर्वाणि त्रिगुणानि च ॥
विषयाणां ग्रहीतॄणि शनैः पञ्चेन्द्रियाणि च ॥१५॥

और जो हमारी इस बालक्रीडामें भूल होवे, सो सुज्ञ जनोंकों सुधार-लेनी चाहिए.

ऊपर हम अन्य २ मतोंवाले जिसतरें सृष्टि अर्थात् जगत्की उत्पत्ति मानते हैं, सो लिख आए हैं. अब प्रेक्षावानोकों विचार करना चाहिए कि, इन पूर्वोक्त सृष्टिवादीयोंमेंसें सत्य कथन किसका है, और मिथ्या कथन किसका है?

पूर्वपक्षः—जो तुमने सृष्टिविषयक मत लिखे हैं वे सर्वमतधारियोंकी कल्पना मिथ्या है, परंतु मनुस्मृति उपनिषद्वेदादिमें जो सृष्टिक्रम लिखा है, सो सर्व सत्य और माननीय है, अन्य सर्वमतावलंबियोंने अपने २ मतोंमें मिथ्या कल्पनामात्र लिखा है. विशेषतः वेदोंमें जो क्रम है, सो अधिकतर माननीय है, क्योंकि वेदोंमें जो कथन है, सो ब्रह्माजीका है.

उत्तरपक्षः—मनुस्मृत्यादिका सृष्टिक्रम यदि सत्य होवे, और युक्तिप्रमाणसे अबाधित होवे तो, ऐसा कौन प्रेक्षावान् है, जो तिसकों न माने? परंतु हे प्यारे! मनुस्मृत्यादिमें जो सृष्टिक्रम है, सोभी परस्परविरुद्ध है, और युक्तिप्रमाणसें बाधित है, विशेषतः वेदोंका और वेदोंमें जो कथन है तिस्सेंही यह सिद्ध होता है कि, वेद ईश्वरकृत नही है, जो कि, आगे किंचिन्मात्र लिखेंगे. ॥

इति श्रीमद्विजयानंदसूरिविरचिते तत्त्वनिर्णयप्रासादे लोकतत्त्वनिर्णयांतर्गतसृष्टिवर्णनो नाम पंचमः स्तंभः ॥ ५ ॥

॥ अथ षष्ठस्तम्भारम्भः ॥

पंचमस्तंभमें लोकतत्त्वनिर्णयांतर्गत वेदस्मृत्याद्यनुसार संक्षेपरूप सृष्टिक्रम वर्णन करा, अथ षष्ठस्तंभमें कुछक विस्तारसें करते हैं. परं च इस हमारे लेखकों पक्षपात छोडके वाचक जन सूक्ष्मबुद्धिसें विचार करेंगे तो उनकों सत्यासत्य कथन यथार्थ विदित हो जावेगा; और जो अपने वंशपरंपरासें चली आई रूढीकाही पक्ष करेंगे, तब तो तिनकों

यं तु कर्माणि यस्मिन् स न्ययुङ्क्त प्रथमं प्रभुः ॥
स तदेव स्वयं भेजे सृज्यमानः पुनः पुनः ॥ २८ ॥
हिंस्राहिंस्रे मृदुक्रूरे धर्माधर्मावृतानृते ॥
यद्यस्य सोऽदधात् सर्गे तत्तस्य स्वयमाविशेत् ॥ २९ ॥
यथर्त्तुलिङ्गान्यृतवः स्वयमेवर्त्तुपर्यये ॥
स्वानि स्वान्यभिपद्यन्ते तथा कर्माणि देहिनः ॥ ३० ॥
लोकानां तु विवृद्ध्यर्थं मुखबाहूरुपादतः ॥
ब्राह्मणं क्षत्रियं वैश्यं शूद्रं च निरवर्त्तयत् ॥ ३१ ॥
द्विधा कृत्वात्मनो देहमर्द्धेन पुरुषोऽभवत् ॥
अर्द्धेन नारी तस्यां स विराजमसृजत् प्रभुः ॥ ३२ ॥
तपस्तप्त्वाऽसृजद्यं तु स स्वयं पुरुषो विराट् ॥
तं मां वित्तास्य सर्वस्य स्रष्टारं द्विजसत्तमाः ॥ ३३ ॥
अहं प्रजाः सिसृक्षुस्तु तपस्तप्त्वा सुदुश्चरम् ॥
पतीन् प्रजानामसृजं महर्षीनादितो दश ॥ ३४ ॥
मरीचिमत्र्यङ्गिरसौ पुलस्त्यं पुलहं क्रतुम् ॥
प्रचेतसं वसिष्ठं च भृगुं नारदमेव च ॥ ३५ ॥
एते मनूंस्तु सप्तान्यानसृजन् भूरितेजसः ॥
देवान् देवनिकायांश्च महर्षींश्चामितौजसः ॥ ३६ ॥
यक्षरक्षःपिशाचांश्च गन्धर्वाप्सरसोऽसुरान् ॥
नागान् सर्पान् सुपर्णांश्च पितॄणां च पृथग्गणान् ॥ ३७ ॥
विद्युतोशनिमेघांश्च रोहितेन्द्रधनूंषि च ॥
उल्कानिर्घातकेतूंश्च ज्योतींष्युच्चावचानि च ॥ ३८ ॥
किन्नरान् वानरान् मत्स्यान् विविधांश्च विहंगमान् ॥
पशून् मृगान् मनुष्यांश्च व्यालांश्चोभयतोदतः ॥ ३९ ॥

तेषां त्ववयवान् सूक्ष्मान् षण्णामप्यमितौजसाम् ॥
सन्निवेश्यात्ममात्रासु सर्वभूतानि निर्ममे ॥ १६ ॥
यन्मूर्त्यवयवाः सूक्ष्मास्तस्येमान्याश्रयन्ति षट्॥
तस्माच्छरीरमित्याहुस्तस्य मूर्तिं मनीषिणः ॥ १७ ॥
तदाविशन्ति भूतानि महान्ति सह कर्मभिः ॥
मनश्चावयवैः सूक्ष्मैःसर्वभूतकृदव्ययम् ॥ १८ ॥
तेषामिदं तु सप्तानां पुरुषाणां महौजसाम् ॥
सूक्ष्माभ्यो मूर्तिमात्राभ्यः संभवत्यव्ययाद्व्ययम् ॥१९॥
आद्याद्यस्य गुणं त्वेषामवाप्नोति परः परः ॥
योयो यावतिथश्चैषां सस तावद्गुणः स्मृतः ॥ २० ॥
सर्वेषां तु सनामानि कर्माणि च पृथक् पृथक्॥
वेदशब्देभ्य एवादौ पृथक् संस्थाश्च निर्ममे ॥ २१ ॥
कर्मात्मनां च देवानां सोऽसृजत् प्राणिनां प्रभुः ॥
साध्यानां च गणं सूक्ष्मं यज्ञं चैव सनातनम् ॥ २२ ॥
अग्निवायुरविभ्यस्तु त्रयं ब्रह्म सनातनम् ॥
दुदोह यज्ञसिद्ध्यर्थमृग्यजुःसामलक्षणम् ॥ २३ ॥
कालं कालविभक्तीश्च नक्षत्राणि ग्रहांस्तथा ॥
सरितः सागरान् शैलान् समानि विषमाणि च ॥ २४ ॥
तपो वाचं रतिं चैव कामं च क्रोधमेव च ॥
सृष्टिं ससर्ज चैवेमां स्रष्टुमिच्छन्निमाः प्रजाः ॥ २५ ॥
कर्मणां च विवेकार्थं धर्माधर्मौ व्यवेचयत् ॥
द्वन्द्वैरयोजयच्चेमाः सुखदुःखादिभिः प्रजाः ॥ २६ ॥
अण्व्योमात्रा विनाशिन्यो दशार्द्धानां तु याः स्मृताः ॥
ताभिः सार्द्धमिदं सर्वं संभवत्यनुपूर्वशः ॥ २७ ॥

कहते हैं ॥ १० ॥ जो सो परमात्मारूप कारण (अव्यक्त) बाह्येंद्रियोंके अगोचर (नित्य) उत्पत्तिविनाशरहित सत् असत् आत्मक तिसने जो उत्पन्न करा पुरुष. तिसकों लोकमें ब्रह्मा कहते हैं. ॥ ११ ॥ तिस अंडेमें ब्रह्मा ब्रह्ममानवाले वर्षतक रह करके अपने ध्यान करके तिस अंडेके दो भाग करता भया. ॥ १२ ॥ तिन दोनों खंडोंसें–भागोंसें–ऊपरले भागसें देवलोक, और नीचले भागसें भूलोक, और दोनों भागोंके बीचमें आकाश विदिशासहित आठ दिशा और पाणीका स्थिरस्थान समुद्र इनकों रचता भया. ॥ १३ ॥ ब्रह्मा परमात्माके पाससें तिसरूपकरके मनका उद्धार करता भया, युगपत् ज्ञान अनुत्पत्तिलक्षणसें मन सत् है, और अप्रत्यक्ष होनेसें असत् है, मनके पहिले अहंकारतत्त्व अहं ऐसा अभिमाननामक कार्ययुक्त ईश्वर स्वकार्यरक्षणसमर्थकों उत्पन्न करता भया. ॥ १४ ॥ महत्नामक जो तत्त्व है तिसकों अहंकारसें पहिले परमात्मासेंही उद्धार करता भया, और आत्माकों उपकार करनेवाली तीनो गुण सत्त्व रजः तमःयुक्त विषयोंके ग्रहणहारि पांच इंद्रियोंको क्रमकरके उत्पन्न करता भया और च शब्दसें पायुआदि पांच कर्मेंद्रिय और पांच तन्मात्रको उत्पन्न करता भया. ॥ १५ ॥ तिन पूर्वोक्त अहंकार और पांच तन्मात्र छहोंके सूक्ष्म जे अवयव है तिन अवयवोंको आत्ममात्रविषे पूर्वोक्त छहोंकें अपने विकारोंमें जोडकरके मनुष्य तिर्यक्स्थावरादि सर्वभूतोंको परमात्मा रचता भया, तिनमें तन्मात्रोंका विकार पांच महाभूत, और अहंकारका इंद्रियां, पृथिवीआदिभूतोंविषे शरीररूपकरके परिणत ऐसें भूतोंविषे तन्मात्र और अहंकारकी योजना करके संपूर्ण कार्यजातका निर्माण करा, इसीवास्तेही पूर्वोक्त ६,(अमितौजस)अनंतकार्यके निर्माण करनेसें अतिवीर्यशाली है॥१६॥ जिसवास्ते (मूर्त्ति) शरीर है, तिसके संपादक अवयव सूक्ष्म तन्मात्र अहंकाररूप षट् है, प्रकृतिसहित तिस ब्रह्मके यह जे आगे कहेंगे वे भूत और इंद्रिय पूर्व कहे हुए कार्यपणेकरके आश्रय करते हैं, तन्मात्रोंसें भूतोंकी उत्पत्ति होनेसें और अहंकारसें इंद्रियोंकी उत्पत्ति होनेसें, तिसवास्ते तिस ब्रह्मकी मूर्त्ति (स्वभाव) तिनको तैसें परिणतोंकों इंद्रियादिशा-

कृमिकीटपतङ्गांश्च यूकामक्षिकमत्कुणम् ॥
सर्वं च दंशमशकं स्थावरं च पृथग्विधम् ॥४०॥
एवमेतैरिदं सर्वं मन्नियोगान्महात्मभिः॥
यथा कर्मतपोयोगात् सृष्टं स्थावरजंगमम्॥४१॥म०अ०१

व्याख्या—(इदं) यह जगत्, तममें (स्थित) लीन था, प्रलयकालमें सूक्ष्मरूपकरके प्रकृतिमें लीन था, प्रकृतिभी ब्रह्मात्मकरके (अव्याकृत) अलग नही थी, इसवास्तेही (अप्रज्ञातं) प्रत्यक्ष नही था,(अलक्षणं) अनुमानका विषयभी नही था, (अप्रतर्क्यं) तर्कयितुमशक्यं तदा वाचक स्थूलशब्दके अभावसें इसवास्तेही अविज्ञेय था, अर्थापत्तिकेभी अगोचर था, इसवास्ते (प्रसुप्तमिव सर्वतः) सर्वओरसें सूतेकीतरें स्वकार्य करणे असमर्थ था. ॥ ५ ॥ अथ क्या होता भया सो कहे हैं. तब प्रलयके अवसानानंतर स्वयंभू परमात्मा (अव्यक्त) बाह्यकरण अगोचर (इदं) यह महाभूत आकाशादिक आदिशब्दसें महदादिकोंकों (व्यंजयन् अव्यक्तावस्थं) प्रथम सूक्ष्मरूपकरके रहेकों स्थूलरूपकरके प्रकाश करता हुआ, (वृत्तौजाः) सृष्टि रचनेका सामर्थ्य अव्याहत है जिसका, (तमोनुदः) प्रकृतिका प्रेरक ॥६॥ जो सो (अतींद्रियग्राह्य) ईश्वर सूक्ष्म बाह्येंद्रियअगोचर (अव्यक्त) अवयवरहित (सनातन) नित्य (सर्वभूतमय) सर्वभूतात्मा इसवास्तेही (अचिंत्य) इतना है ऐसा न जाननेसें अचिंत्य है, सो परमात्माही आप महदादिकार्यरूपकरके प्रकट हुआ. ॥७॥ सो परमात्मा नानाविध प्रजा रचनेकी इच्छावाला 'अभिध्यायापो जायंतां' ऐसें अभिध्यानमात्रकरकेही (अप्) पाणी प्रथम उत्पन्न करता भया, तिस पाणीमें शक्तिरूप बीजकों आरोपित करता भया॥८॥ सो बीज परमेश्वरकी इच्छासें सुवर्णसदृश अंडा होता भया, सूर्यसमान जिसकी प्रभा है, तिस अंडेमें (हिरण्यगर्भ) ब्रह्मा सर्वलोकोंका पितामह आपही उत्पन्न भया ॥ ९ ॥ पाणीका नाम नारा है, क्योंकि, पाणी जो है सो नरनाम परमात्मा ईश्वरके अपत्य—पुत्र है, सोही (नारा) पाणी इस ब्रह्मरूप परमात्माका (अयन) आश्रय है, इसवास्ते परमात्माकों नारायण

सृजन करता भया, प्राणीयोंको इंद्रादिकोंके कर्म आत्मस्वभाव है जिनका तिनकों, और पाषाणादिकोंको, और देवतायोंके साध्योंको, देवविशेषोंके समूह, यज्ञ ज्योतिष्टोमादिकोंको, कल्पांतरमेंभी अनुमीयमान होनेसें नित्य है इनकों सृजन करता भया ॥ २२ ॥ ब्रह्मा, ऋग्, यजुः, साम, नामक तीनवेदोंकों अग्नि, वायु, रविसें आकर्षण करता भया; सनातन नित्य वेद अपौरुषेय है, ऐसें मनुको सम्मत है, यज्ञकी सिद्धिकेवास्ते दोहन करता भया; ॥ २३ ॥ आदित्यादिक्रिया, प्रचयरूपकाल, कालविभक्ति मास ऋतु अयनादि, नक्षत्र कृत्तिकादि ग्रह सूर्यादि नदीयां समुद्रादिकों, पर्वतोंको समविषम ऊंचनीच स्थानोंकों रचता भया ॥२४॥ तपः–प्राजापत्यादि, वाचं-वाणी, रति–चित्तका परितोष, काम–इच्छा, क्रोध इनकों रचता भया; येह प्रजा वक्ष्यमाण दैवादिकोंकी रचना करनेकी इच्छा करता भया; ॥२५॥ कर्मणांचेति–धर्मयज्ञादिक, सो कर्त्तव्य है; अधर्म–ब्रह्मादिवध, सो न कररना; ऐसें कर्मोंके विभागतांइ धर्माधर्मका विवेचन करता भया, पृथक् करके कहता भया; धर्मका फल सुख, अधर्मका फल दुःख, धर्माधर्मके फल भूत दोनों परस्पर विरुद्धोंकरके सुखदुःखादिकोंकरके इस प्रजाकों योजन करता भया; आदिग्रहणसें काम, क्रोध, राग, द्वेष, क्षुधा, पिपासा, शोक मोहादिकरके युक्त करता भया ॥२६॥ दशार्द्धानां पंचमहाभूतोंके जे सूक्ष्म पंचतन्मात्ररूप विनाशी पांच महाभूतरूपपणे परिणामी जे है, तिनोके साथ कथन करा, और करेंगे. ऐसा यह जगत् उत्पन्न होता है. अनुक्रमकरके सूक्ष्मसें स्थूल, स्थूलसें स्थूलतर, इसकरके सर्वशक्तिसें ब्रह्मकी मानस सृष्टि कदाचित् तत्त्वनिरपेक्षाही होवेगी, ऐसी शंकाको दूर करता हुआ तत् द्वारकरकेही यह सृष्टि ऐसा मध्यमे फेर स्मरण करता भया. ॥ २७ ॥ सो प्रजापति जिसजातिविंशेषकों व्याघ्रादिकोंको, जिस क्रिया हरिणादिमारणारूपमें, सृष्टिकी आदिमें जोडता भया, सो जातिविशेष वारंवार सृजन करतां स्वकर्मोंके वश करके तैसाही आचरण करते हुए. इस कहनेकरके प्राणियोंके कर्मानुसार प्रजापतिने उत्तमाधम जातियां रची है, नतु रागद्वेषाधीनसें. ॥ २८ ॥ इसकाही विस्तार करते हैं, (हिंस्र कर्म) सिंहादिकोंको

लिनीको लोक शरीर ऐसा कहते हैं, छहोंके आश्रयणसें शरीर ऐसे निर्वचनसें पूर्वोक्त उत्पत्तिक्रमही दृढ करा. ॥ १७ ॥ सो ब्रह्म शब्दादि-पंचतन्मात्रात्माकरके अवस्थित महाभूत जे है, आकाशादिक (आविशंति) तिनसें उत्पन्न होता है, कर्मोंकरकेसहित स्वकार्योंकरके तहां आकाशका अवकाशदानकर्म, वायुका व्यूहनं विन्यासरूप, तेजका पाक, पाणीका पिंडीकरणरूप, पृथिवीका धारणकरणा, अहंकारात्मकरके अवस्थित ब्रह्म मनअहंकारसें उत्पन्न होता है, अवयवोंकरके अपने कार्योंकरके शुभाशुभ संकल्प सुखदुःखादिरूपकरके सूक्ष्म बाहिरइंद्रियोंके अगोचर होनेसें सर्वभूतोंका करा सर्वोत्पत्ति-निमित्त मनोजन्य शुभाशुभ कर्मोंसें उत्पन्न होनेसें जगत्को (अव्यय) अविनाशी है ॥ १८ ॥ तिन पूर्वोक्त प्रकृतियोंको महत् अहंकार तन्मात्रांको, सप्त संख्याको, पुरुषसें अपणेका उत्पन्न होनेसें तद्वृत्तिग्राह्य होनेसें 'पुरुषाणां महौजसां' स्वकार्य संपादन करनेसें वीर्यवंतोंको सूक्ष्म जे मूर्तिमात्र शरीरसंपादक भाग है तिनसें यह जगत् नश्वर होता है, अनश्वरसें जो कार्य है, सो विनाशी है, स्वकारणमें लय होता है, और कारण तो कार्यकी अपेक्षा थिर है, परमकारण तो ब्रह्म नित्य उपासना करनेयोग्य है, यह दिखाते हुए यह अनुवाद है.॥१९॥तिन भूतोंको आकाशादिक्रमकरके उत्पत्तिक्रम है,शब्दादिगुणवत्ता कहेंगे तहां आदिके(आकाशादिके)गुण शब्दादिक है वाय्वादि परस्पर प्राप्त होते हैं, यही बात स्पष्ट करते है,'योयइति' इनके बीचमेसें जो जितनोंकरके पूर्ण है, सो यावतिथ कहिए हैं. 'सप्तद्वितीयादिः' दूसरा दो गुणवाला, तीसरा तीन गुणवाला, ऐसें मनुआदिकोंने कहा है. इस कथनसें यह कहा, आकाशका शब्दगुण, वायुका शब्दस्पर्श, तेजका शब्दस्पर्शरूप, अप्का शब्दस्पर्शरूपरस, भूमिका शब्दस्पर्शरूपरसगंध.॥२०॥ सो परमात्मा हिरण्यगर्भरूपकरके अवस्थित हुआ सर्ववस्तुयोंके नाम, गोजातिका गो, अश्वजातिका अश्व, कर्म, ब्राह्मणको पठन करना, क्षत्रियको प्रजा रक्षादि, पृथक् २ जिसके पूर्वकल्पमें जे जे नाम कर्म थे, वे सृष्टिकी आदिमें वेद-शब्दोंसें जान कर निर्माण करता भया॥२१॥सो ब्रह्मा देवतायोंके गणसमूहको

सिंहादि दो है दांतकी पंक्ति हेठोपरि जिनके तिनकों रचता भया. ॥३९॥ कृमी, कीट, पतंग, यूका, माकड, मक्षिका, दंश, मशक, स्थावर वृक्षलतादिभेद भिन्न विविधप्रकारके रचता भया. ॥ ४० ॥ इन मरीचि आदिकोंने यह सर्व स्थावर जंगम सृजन करा, (यथाकर्म) जिसजीवकेजैसें कर्म थे तिस अनुसार देव मनुष्य तिर्यगादिमें उत्पन्न करे, मेरी आज्ञासें, तप योगसें बडा तप करके सर्व ऐश्वर्य तपके अधीन है, यह दिखलाया. ॥४१॥ मनु० अ० १ ॥

[समीक्षा] वेदोंका कथन जो सृष्टिविषयक है, सो पाठकगणोंके वाचनार्थे संक्षेपसें प्रायः श्रुतियांसहित लिखेंगे, इहां मनुस्मृतिके कथनका किंचित् स्वरूप लिखते हैं, क्योंकि मनुस्मृतिभी वेदतुल्य, वा वेदोंसेंभी अधिक मानी जाती है; उपनिषद जो वेदका सार कहनेमें आता है तिनकी मूलश्रुतिमें मनुकी प्रशंसा लिखी है. मनुस्मृतिके प्रथम अध्यायके ५-६-७ श्लोकोंमें जो सृष्टिसंबंधि कथन है, सो प्रायः ऋग्वेदकी प्रलयादिके समानही है, इसवास्ते आठमे श्लोकसें विचार करते हैं.

सो परमात्मा नानाविध प्रजा रचनेकी इच्छावंत हुआथका ध्यानसें 'आपो जायन्तां ' ऐसें ध्यानमात्रसें पहिलां पाणीही रचता भया, पाणी सृजनेसें पहिलां ब्रह्म अव्याकृत था, अव्याकृत शब्दकरके पंचभूत ५, पंच बुद्धींद्रिय ५, पंच कर्मेंद्रिय ५, प्राण १, मन १, कर्म १, अविद्या १, वासना १, ये सर्व सूक्ष्मरूपकरके शक्तिरूपकरके ब्रह्मकेसाथ रहे, तिसका नाम अव्याकृत है. ॥ इति मनुस्मृतिटीकायां. ॥ इस पूर्वोक्त कथनसें तो, सांख्यमतवालोंकी मानी प्रकृति सिद्ध होती है, और मनुने सृष्टिका क्रमभी महदहंकारादिक्रमसें कहनेसें प्रायः सांख्यमतकी प्रक्रियाही अंगीकार करी मालुम होती है; इस्सें सांख्यशास्त्र मनुसें पहिलें सिद्ध होता है. जब सूक्ष्मरूपसें प्रकृति, ब्रह्मसें भेदाभेदरूपसें प्रलयदशामें थी, तब तो अद्वैतमत निर्मूल हुआ, और ब्रह्मके साथ माया, वा, प्रकृति भेदाभेदरूपसें माननी यह युक्तिविरुद्ध है. क्योंकि, जेकर भेद है तो कथं अभेद? और जेकर अभेद है तो, कथं भेद? यह दोनो पक्ष एक अधि-

हाथीमारणादिक,(अहिंस्र) हरिणादिक, (मृदु) दयाप्रधान विप्रादि,(क्रूर) क्षत्रियादिकोंको, (धर्म) जैसें ब्रह्मचर्यादि, (अधर्म) जैसें मांसमैथुनादि सेवन करना, सत्य बोलना, असत्य बोलना, सृष्टिकी आदिमें प्रजापति जिसमें जो कर्म स्थापन करता भया, सो कर्म पीछेसें अदृष्टवशसें स्वयमेवही प्राप्त होता भया. ॥ २९ ॥ इस अर्थमें दृष्टांत कहते हैं, जैसें वसंतादिऋतुयोंमें ऋतुके चिन्ह आम्रमंजरीआदि स्वकार्यावसरमें आपही प्राप्त होते है, तैसेंही जीवोंकों हिंस्रादि कर्म जानने. ॥ ३० ॥ भूलोकोंके बहुतवास्ते मुख, बाहु, ऊरु, पगोंसे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्रोंको यथाक्रम निर्मित करता भया. ॥ ३१ ॥ सो ब्रह्मा निज देहके दो खंड करके एक खंडका पुरुष बना, और दूसरे खंडकी स्त्री बनी, तिस स्त्रीविषे मैथुन धर्म करणेसें विराट्नामा पुरुषको निर्मित करता भया. ॥ ३२ ॥ सो विराट् तप करके जो निर्माण करता भया, तिस वस्तुको मुझकों बतलाउं; हे द्विजोत्तम ! इस सर्वजगत्के रचनेवालेकों. ॥ ३३ ॥ मैं प्रजाकों सृजन करनेकी इच्छा करता थका सुदुश्चर तप तपके दश प्रजापतियोंकों प्रथम सृजन करता भया. क्योंकि, तिनोंकरके प्रजा सृजमान होनेसें. ॥ ३४ ॥ मरीचि १, अत्रि २, अंगिरस ३, पुलस्त्य ४, पुलह ५, ऋतु ६, प्रचेतस ७, वसिष्ठ ८, भृगु ९, और नारद १०. ॥ ३५ ॥ येह मरीचिआदि दश बडे तेजवाले अन्य सप्त परिमाणरहित मनुयोंकों देवतायोंकों ब्रह्मके सृजन करे हुए देवनिवास स्थानक स्वर्गादिकोंको और महाऋषियोंकों सृजन करता भया, यह मनुशब्द अधिकारवाची है, इसवास्ते चौदह मन्वंतरोंमें जिसकों जहां सर्गादिका अधिकार है, सो इस मन्वंतरमें स्वायंभुव स्वारोचिषानामोंकरके मनु कहा जाता है. ॥ ३६ ॥ यक्ष, वैश्रवण, राक्षस, तिसके अनुचर रावणादि, पिशाच, गंधर्व, अप्सरस, असुर, नाग, सर्प, गरुड, पित्रोंकों इनकों पृथक् २ रचता भया. ॥ ३७ ॥ विजली, अशनि, मेघ, इंद्रधनु, उल्का सप्रकाशरेखा, भूमि अंतरिक्षमें, निर्घात उत्पातध्वनि, केतू तारा, अन्य ज्योतिषि ध्रुव अस्तादि नाना प्रकारके रचता भया. ॥ ३८ ॥ किन्नर, वांदर, मत्स्य, नानाप्रकारके पक्षियोंको, पशु मृग मनुष्योंकों, व्याल-

आपही ब्रह्मा होता भया, अन्य जगे वेदमें ब्रह्माको अज कहा है, यह परस्परविरुद्ध है. तिस अंडेमें ब्रह्माजीने ब्रह्माके एक वर्षतक वास करा, अंडेमेंही रहा, यह कथन मनुकी टीकामें है. ब्रह्माके एक वर्षके मनुष्योंके ३१,१०,४०,००,००,००० वर्ष होवे हैं. तथाहि. ॥

१ एक वर्ष देवताका, ३६० वर्ष मनुष्यके। देवताके १२००० वर्षका एक युग देवताका। जिसमें मनुष्यके चतुर्युग–वर्ष–४३,२०,०००। देवताके २००० युगका एक ब्रह्माका अहोरात्र–८,६४,००,००,००० मनुष्यवर्ष। ३६० दिनका एक वर्ष,जिसमें मनुष्यके वर्ष–३१,१०,४०,००,००,०००। इतने वर्षतक ब्रह्माजी तिस अंडेमें रहे.

इतने वर्षतक अंडेमें रहनेका क्या कारण था? क्या ब्रह्माजी तिस अंडेसें निकलनेका रस्ता मार्ग ढूंढते रहे? किंवा बौंदल गए? कुछ सूज नही पडती थी? किंवा तिस अंडेके मापनेमें इतने वर्ष लग गए? किंवा अब मैं क्या करूं ऐसी चिंतामें इतने वर्ष व्यतीत हो गए? किंवा उत्पत्तिके दुःखसें इतने वृर्षतक विश्राम करा? किंवा जो वेदमें लिखा है, ब्रह्माजीने तप करा अर्थात् इतने वर्षोंतक सृष्टि रचनेकी तजवीज करते रहे? इन सर्व पक्षोंके माननेमें दूषण आते हैं. क्योंकि, सर्वशक्तिमान् सर्वज्ञ निराबाध परमेश्वरमें पूर्वोक्त कोइ पक्षभी सिद्ध नही हो सक्ता है, इसवास्ते परमेश्वर ब्रह्माका अंडेमें रहना अज्ञोंकी कल्पनामात्र है.

फेर लिखा है, ब्रह्माजीने ध्यानसें तिस अंडेके दो भाग करे, यह भी असत्य है. क्योंकि, ध्यान तो वस्तुके स्वरूपका बोधक है, ज्ञानांश होनेसें; इसवास्ते ज्ञानसें अंडेके दो टुकडे नही हो सक्ते हैं. तिन दो टुकडोंसें एक टुकडेका स्वर्गलोक, और हेठले दूसरे खंडसें भूमि रचता हुआ, इन दोनोंके बीचमें आकाश दिशां और दिशांके अंतराल और पाणीका स्थान समुद्र रचता हुआ, यह कथन युक्तिविरुद्ध तो हैही, परंतु ऋग्वेदसेंभी विरुद्ध है; क्योंकि, ऋग्वेदमें प्रजापतिके शिरसें स्वर्ग, पगोंसे भूमि, कानसें दिशा, और नाभिसें आकाश, उत्पन्न हुए लिखा है.

चतुर्दश (१४) श्लोकसें लेकर ३१ श्लोकपर्यंत मनुजीने जो सृष्टिक्रम लिखा

करणमें कैसें रह सक्के है? यह कहना तो ऐसा हुआ कि, जैसें कोइ उन्मत्त कहता है, मेरी माता तो है, परं वंध्या है. इस पूर्वोक्त कथनमें मनुजीने, तथा ऋग्वेदके कर्त्ताने, छिपकरके स्याद्वादका किंचित् शरण लिया मालुम होता है. क्योंकि, स्याद्वादविना कदापि भेदाभेद पक्ष सिद्ध नही होता है. स्याद्वाद तो परमेश्वरकी सर्वपदार्थोंपर मोहर छाप लगी हूई है, जिसवस्तु उपर स्याद्वादरूप मोहर छाप नही, सो वस्तु खरशृंगवत् एकांत असत् है, 'स्याद्भेदः स्यादभेदः मलयुक्तसुवर्णवत्' जैसें सोना और मल अव्याकृत, अर्थात् विभागरहित एक पिंडीरूप है, परंतु सुवर्णकी विवक्षा करीए तव तो कथंचिद् भेद है, सर्वथा नही; जेकर सर्वथाही भेदविवक्षा करीए तव तो, सुवर्णकी पिंडीमें मल न होना चाहिये. और जेकर सुवर्ण और मलका एकांत अभेदही मानीए तव तो, सुवर्णकी पिंडीमें सर्वथा मल न होना चाहिये, किंतु एकांत सुवर्णही होगा. इसवास्ते कथंचित् भेदाभेद पक्ष बनता है, परंतु स्यात्पदके विना केवल भेदाभेद पक्ष नही सिद्ध होता है; और जहां कथंचित् भेदाभेद पक्ष माना जावेगा, तहां अवश्यमेव दो वस्तुयों माननी पडेगी; क्षीरनीरवत्. इसवास्ते अव्याकृत ब्रह्म कथंचित् द्वैत, कथंचित् अद्वैत मानना पडेगा; इसवास्ते वेदांतियोंका एकांत अद्वैतपक्ष तीनकालमेंभी सिद्ध नही हो सक्ता है. और जडकार्यका उपादान कारणभी जड, और चैतन्यकार्यका उपादनकारण चैतन्यही सिद्ध होवेगा; इसवास्ते एक चैतन्य ब्रह्म, जडचैतन्यरूप जगत्का कदापि उपादानकारण सिद्ध नही हो सक्ता है; इसवास्ते श्रुतिस्मृत्यादिकोंमें जो लिखा है कि, मैं एकही जडचैतन्य अनेकरूप हो जाऊं, यह प्रमाणवाधित है. और ब्रह्मकों जो जगत् रचनेकी इच्छा हुई, यह भी कथन मिथ्या है, क्योंकि, शरीरकेविना मन नही, और मनविना इच्छा नही, यह प्रमाणसिद्ध है; ऊपरभी लिख आए है.

अंडा रचा, यह कथन, ऋग्वेदयजुर्वेदकी श्रुतिसें, और गोपथब्राह्मणादिसें विरुद्ध है; क्योंकि, ऋग्वेदमें अंडा नही कहा, यजुर्वेद और गोपथब्राह्मणमें ब्रह्माकी उत्पत्ति कमलसें कही है. तिस अंडेमें परमात्मा

फेर मनुजीनें, विनास्त्रीके दश प्रजापति प्रजा सृजनेवाले ऋषियोंको और सात मनुयोकों कैसें उत्पन्न करे? जेकर विनास्त्रीके संतानकी उत्पत्ति हो जावे तो, ब्रह्माजीने स्त्री बन कर काहेकों तिसकेसाथ मैथुन करके विराट् उत्पन्न करा? ऋग्वेदके भाष्यकारने तो, विराट्का अर्थ जो यह ब्रह्मांड है सो करा है, परंतु ब्रह्माजीने तो अंडेसेही ब्रह्मांड रचा लिखा है, तो फेर यह विराट्नामा बीचमें कौन उत्पन्न हो गया, जिसने मनुकों उत्पन्न करा? अब अज्ञानियोंके कथनकी कहांतक समीक्षा करीए, जिस कथनका प्रमाणयुक्तिसे विचार करते है, सोही मिथ्या स्वकपोलकल्पित सिद्ध होता है; जैसा मनुका कथन प्रमाणयुक्तिसे बाधित है, ऐसाही सर्वस्मृति पुराणोंका जान लेना. इत्यलं बहुप्रयासेन ॥

इत्याचार्यश्रीमद्विजयानन्दसूरीश्वरविरचिते तत्त्वनिर्णयप्रासादग्रन्थेमनुस्मृतिसृष्टिक्रमवर्णनो नाम षष्ठः स्तम्भः ॥६॥

॥ अथसप्तमस्तम्भारंभः ॥

षष्ठस्तम्भमें मनुस्मृतिका सृष्टिक्रम लिखा, अथ सप्तमस्तम्भमें पूर्वप्रतिज्ञात ऋग्वेदादिका सृष्टिक्रम लिखते हैं.

नासदासीन्नोसदासीत्तदानीं नासीद्रजो नो व्योमा परो यत् ॥
किमावरीवः कुहकस्य शर्मन्नम्भः किमासीद्गहनं गभीरम् ॥१॥

न। असत्। आसीत्। नोइति। सत्। आसीत्। तदानीम्। न। आसीत्। रजः। नोइति। विऽउम। परः। यत्। किम्। आ। अवरीवरिति। कुह। कस्य। शर्मन्। अम्भः। किम्। आसीत्। गहनम्। गभीरम् ॥१॥

नमृत्युरासीदमृतं न तर्हि न रात्र्या अह्न आसीत्प्रकेतः ॥
आनीदवातं स्वधया तदेकं तस्माद्धान्यन्न परः किं च नास ॥२॥

है, सो सर्व स्वकपोलकल्पित, और प्रमाणबाधित है. क्योंकि, किसीजगें चैतन्य उपादानकारणसें जडकार्यकी उत्पत्ति लिखी है, और किसीजगें जड उपादनकारणसें चैतन्य कार्यकी उत्पत्ति लिख मारी है, और किसी जगें रूपीसें अरूपीकी, और अरूपीसें रूपीकी उत्पत्ति घसीट मारी है.

और आपही जीवरूप धारण करा, हिंसा, मृषावाद, चौरी, मैथुन, मांसभक्षणादि, येह सर्व जीवोंकों जीवोंके कर्मानुसार लगा दीए; आपही अपना सत्यानाश कर लिया. सृष्टि क्या रची, एक मोटी आपदाका जंजाल अपने आप, अपने गलेमें डाल लिया! जेकर सृष्टि न रचता, और प्रलयदशामें सुखसें सूता रहता तो अच्छा था!!!

पूर्वपक्षः—यदि सृष्टि न रचता तो, जीवोंकों कर्मोंका फल कैसें भुक्ताता?

उत्तरपक्षः—इसका समाधान ऋग्वेदके सृष्टिक्रमकी समीक्षामें करेंगे.

बत्तीसमें श्लोकसें लिखा है कि, तिस ब्रह्माने अपनी देहके दो भाग करे, एक भागका पुरुष बना, और दुसरे भागकी स्त्री बनी, तिस स्त्रीकेसाथ मैथुनधर्म करा, तिस्सें विराद् उत्पन्न भया, तिस विराद्ने तप करा, तप करके मनुकों अर्थात् मेरेकों उत्पन्न करा, कैसा हूं मैं मनु? सर्व इस जगत्का रचनेवाला, ऐसें मुझ मनुकों हे द्विजोत्तम! तुम जानो; पीछे मैं प्रजाके सृजनेकी इच्छा करते हुएने, अतिशयकरके दुश्चर तप तपीने मैंनें पहिलां दश प्रजापतियोंकों सृजन करे, जिनके नामऊपर लिखे हैं, इनके सिवाय सात मनुयोंकों सृजन करे इत्यादि.

वाचकवर्गो! जरा विचार करके देखो कि, जो कथन ऋग्वेदसें और युक्तिसें विरुद्ध है, सो मिथ्या वाग्जाल मनुजीने रच कर अनेक भव्यजनोंकों फसाये हैं. देखो! ब्रह्माजीने आपही स्त्रीपुरुष बन कर मैथुन करा, तिस्सें विराद्नामा पुरुष उत्पन्न भया, यह कथन कैसा लज्जनीय है कि, सर्वजगत्का पितामहभी मैथुन करता है? और विना स्त्रीके विराद्नामा पुत्र न उत्पन्न कर सका, फेर तिसकों सर्वशक्तिमान् मानना, यह कैसी अज्ञानता हैं? तथा विराद्ने मनुकों विनास्त्रीके कैसें उत्पन्न करा? और

कः । अद्धा । वेद । कः । इह । प्र । वोचत् । कुतः । आऽजाता । कुतः । इयम् । विऽसृष्टिः । अर्वाक् । देवाः । अस्य । विऽसर्जनेन । अथ । कः । वेद । यतः । आऽबभूव ॥६॥

इयं विसृष्टिर्यत आबभूव यदि वा दधे यदि वा न ।
यो अस्याध्यक्षः परमे व्योमन्त्सो अङ्ग वेद यदि वा न वेद ॥७॥

इयम् । विऽसृष्टिः । यतः । आऽबभूव । यदि । वा । दधे । यदि । वा । न । यः । अस्य । अधिऽअक्षः । परमे । विऽओमन् । सः । अङ्ग । वेद । यदि । वा । न । वेद ॥७॥ ऋ० अ० ८ अ० ७ व० १७ मं० १० अ० ११ सू० १२९

भाषार्थः—'तपसस्तन्महिनाजायतैकम्इत्यादि' करके आगे सृष्टि प्रतिपादन करेंगे, अब तिसकी पहिली अवस्था, (निरस्त) दूर करी है. समस्त प्रपंचरूप, जो प्रलयअवस्था, सो निरूपण करिये है. (तदानीम्) प्रलयदशामें अवस्थित रहा हुआ, जो इस जगत्का मूलकारण, सो (नासदासीत्) असत, शशेके शृंगवत् निरुपाख्य नही था, क्योंकि तैसें कारणसें इस सत्रूप जगत्की उत्पत्ति कैसे संभवे? तथा (नोसत्) सत् नही (आसीत्) था, आत्मवत् सत्त्व कहनेकरके भी निर्वाच्य था; यद्यपि सत् असत् आत्मक प्रत्येक विलक्षण है, तोभी भावाभावोंको साथ रहनेकाभी संभव नही है, तो तिनका तादात्म्य कहांसें होवे? इसवास्ते उभय विलक्षण निर्वाच्यही था, यह तात्पर्यार्थ है. ननु, ऐसा वितर्कमें पद है, 'नोसदिति' इसकरके पारमार्थिक सत्त्वका निषेध है तो, आत्माकों भी अनिर्वाच्यत्वका प्रसंग होवेगा, जेकर कहोगे ऐसें नही, क्योंकि, 'आनीदवातम्' इसपदकरके तिसका सत्त्व आगे कहेंगे, इसवास्ते परिशेषसें मायाकाही सत्त्व इहां निषेध करते हैं. ऐसें मान्याभी 'तदानीं' इस विशेषणकों आनर्थक्यपणा होवेगा; क्योंकि, व्यवहारदशामें तिस मायाको पारमार्थिकसत्त्व होनेके अभावसें. अथ जेकर व्यवहारिक सत्त्वकों तिस अवसरमेंभी

न । मृत्युः । आसीत् । अमृतम् । न । तर्हि । न । रात्र्याः । अह्नः । आसीत् । प्रऽकेतः । आनीत् । अवातम् । स्वधया । तत् । एकम् । तस्मात् । ह । अन्यत् । न । परः । किम् । चन । आस ॥ २ ॥

तम आसीत्तमसा गूह्ळमग्रे प्रकेतं सलिलं सर्वमा इदम् ।
तुच्छ्येनाभ्वपिहितं यदासीत्तपसस्तन्महिना जायतैकम् ॥ ३ ॥

तमः । आसीत् । तमसा । गूह्ळम् । अग्रे । अप्रऽकेतम् । सलिलम् । सर्वम् । आः । इदम् । तुच्छ्येन । आभु । अपिऽहितम् । यत् । आसीत् । तपसः । तत् । महिना । अजायत । एकम् ॥ ३ ॥

कामस्तदग्रे समवर्तताधि मनसो रेतः प्रथमं यदासीत् ॥
सतो बंधुमसति निरविन्दन्हृदि प्रतीष्या कवयो मनीषा ॥४॥

कामः । तत् । अग्रे । सम् । अवर्तत । अधि । मनसः । रेतः । प्रथमम् । यत् । आसीत् । सतः । वन्धुम् । असति । निः । अविन्दन् । हृदि । प्रति-ऽइष्य । कवयः । मनीषा ॥ ४ ॥

तिरश्चीनो विततो रश्मिरेषामधः स्विदासी३दुपरिस्विदासी३त् ॥
रेतोधा आसन्महिमान आसन्त्स्वधा अवस्तात्प्रयतिः परस्तात् ॥५॥

तिरश्चीनः । विऽततः । रश्मिः । एषाम् । अधः । स्वित् । आसी३त् । उपरि । स्वित् । आसी३त् । रेतःधाः । आसन् । महिमानः । आसन् । स्वधा । अवस्तात् । प्रऽयतिः । परस्तात् ॥ ५ ॥

को अद्धा वेद क इह प्रवोचत्कुत आजाता कुत इयं विसृष्टिः॥
अर्वाग्देवा अस्य विसर्जनेनाथा को वेद यत आबभूव॥६॥

इत्यादि जो श्रुति है, सो अवांतर प्रलयके स्वरूपकथनमें है; इहां तौ महाप्रलयके स्वरूपका कथन है, इसवास्ते निरुपयोगी है. ॥ १ ॥

मृत्यु भी नही था, अमरणपणा भी नही था, 'तर्हिं तस्मिन् प्रतिहारसमये' तिस प्रतिहारसमयमें रात्रीदिनका(प्रकेतः) प्रज्ञान भी नही था, तिनके हेतुभूत सूर्यचंद्रमाके अभावसें; (आनीदवातं) एक शुद्ध ब्रह्मही था, (स्वधया) मायाकरके विभागरहित था, तस्मात् पूर्वोक्त मायासहित ब्रह्मसें विना, अन्य कोइ भी वस्तुभूत भूतकार्यरूप नही था. यह वर्त्तमान जगत् भी नही था. ॥ २ ॥

(तमसागूढ्मग्रे) सृष्टिसें पहिले प्रलयदशामें भूतभौतिक सर्व जगत् (तमसा गूढम्) जैसें रात्रिसंबंधि तमः सर्वपदार्थोंको आवरण करता है, तैसें आत्मतत्त्वके आवारक होनेसें माया अपरनाम भावरूप अज्ञान इहां तमः कहते हैं, तिस तमःकरके (निगूढं–संवृतं) नाम ढांपा हुआ था; कारणभूत मायाकरके यद्यपि जगत् था, तो भी (अप्रकेतम्–अप्रज्ञायमानम्) प्रतीत नही था, (सलिलम्) पाणीकीतरें; जैसें पाणी और दूध अविभागापन्न है, ऐसें माया और ब्रह्म अविभागापन्न थे (तुच्छेन) तुच्छ कल्पनाकरके सत् असत्सें विलक्षण होनेसें भावरूप अज्ञानकरके ढांपा हुआ था, (एकम्) एकीभूत कारणरूप तमःकरके अविभागताको प्राप्त हुआ भी, सो कार्यरूप (तपसः) स्रष्टव्यपर्यालोचनरूपके (महिना) माहात्म्यकरके उत्पन्न भया.॥३॥

ननु उक्तरीतिसें जेकर ईश्वरका विचारणाही जगत्की उत्पत्तिविषे कारण है तो, सो विचारही किस निमित्तसें है? सोही दिखाते हैं. 'कामस्तदग्रे इत्यादि'–इस विकारवाली सृष्टिके पहिले परमेश्वरके मनमें इच्छा उत्पन्न होती भइ कि, मैं सृष्टि करूं; ईश्वरको इच्छा किस हेतुसें भइ? सो कहे हैं, 'मनसःइति' अंतःकरणसंबंधी वासना शेषकरके, सर्व प्राणियोंके अंतःकरणमें तैसा (रेतः) होनहार प्रपंचका बीजभूत पहिले अतीतकल्पमें जीवोंने जो करा था पुण्यात्मक कर्म, यतः जिसकारणसें सृष्टिके समयतक वे कर्मफल परिपक्वफल देनेके सन्मुख होते भए, तिसहेतुसें सर्वसाक्षी फलप्रदाता ईश्वरके मनमें सृष्टि करणेकी इच्छा उत्पन्न भइ; तिस इच्छाके हुए सृजनेयोग्य विचारके तदपीछे सर्वजगतको

व्यवहारिकसत्ता पृथिवी आदिक भावोंकी तदापि विद्यमान होनेसें, कैसें नोसत् ऐसा निषेध हो सक्ता है? ऐसी शंकाका उत्तर कहते हैं (नासीद्रजः) इत्यादि । " लोकारजांस्युच्यन्तइतियास्कः " । इहां सामान्य अपेक्षाकरके एकवचन है, (व्योम्नोवक्ष्यमाणत्वात्) व्योमकों वक्ष्यमाण होनेसें, तिस व्योमका हेठला भाग पातालादि पृथिवी अंततक (नासीत्) नही थे इत्यर्थः। (व्योम) अंतरिक्ष, सो भी (नो) नही था (परः) व्योमसें परे ऊपर देशमें द्युलोकादि सत्यलोकांततक (यत्) जो है, सो भी नही था; इस कहनेकरके चतुर्दशभुवनसंयुक्त ब्रह्मांड भी निषेध करा. अथ तदावरकत्वकरके पुराणोंमें जे प्रसिद्ध हैं आकाशादिभूत, तिनका अवस्थान–रहनेका प्रदेश, और तिसके आवरणका निमित्त, आक्षेप मुखकरके क्रमकरके निषेध करते हैं. (किमावरीवरिति) क्या आवरणेयोग्यतत्त्व आवरकभूतजात (आवरीवः) अत्यंत आवरण करे ? आवार्यके अभावसें, तदा आवरकभी नही था इत्यर्थः। 'यद्वा किम् इति प्रथमा विभक्तिः,' क्या तत्त्व आवरक आवरण करे ? आवार्यके अभावसें, आव्रियमाणकीतरें; सो भी स्वरूपकरके नही था इत्यर्थः । आवरण करे सो तत्त्व (कुह) किस स्थानमें रहके आवरण करे? आधारभूत तैसा देश स्थान भी नही था (कस्य शर्मन्) किसका सुखदुःखके साक्षात्कारलक्षणमें, वा निमित्तभूतके हुआ थका

ऽइष्य । कवयः ।

आवरण करे ? जीवोंके उपभोगवास्तेही सृष्टि है तिस

तिरश्चीनो विततो रश्मिर

ब्रह्मांडकों भूतोंकरके आवरण होवे; परंतु प्रलयदशामें प्रविलीन होनेसें, किसीका कोइ भी भोक्ता

रेतोधा आसन्महिमान आसन्त्स

के अभावसें सो नही घटता है.

तिरश्चीनः । विऽततः । रश्मिः । एषाम् । अधः । स्वित् । आसी३त् । उपरि । स्वित् । आसी३त् । रेतःधाः । आसन् । स्वधा । अवस्तात् । प्रऽयतिः । परस्तात् ॥ ५ ॥

...भी तिस अवसरमें नही था; ...के अंतर्गत अप्सत्त्वकाभी ...ऽलमासीत्' इत्यादिश्रुति... सम्प्रति कहते हैं; (अंभः ...

को अद्धा वेद क इह प्रवोचत्कुत आजाता ... होवे (गभीरम्)

अर्वाग्देवा अस्य विसर्जनेनाथा को वेद ... 'आपो वा इदमग्रे'

जो 'दधे' इसकों धारण करता है, अथवा नही धारण करता है, ऐसा कोइ भी नही जानता है. 'यो अस्येति' जो इस जगत्का अध्यक्ष ईश्वर, सो सत्यभूत आकाशमें निर्मल स्वप्रकाशमें प्रतिष्ठित है, सो ईश्वरही जाने वा न जाने, अन्यकोइ नही जान सक्ता है.॥७॥

तथा—सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात् ।
स भूमिं विश्वतो वृत्वात्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम् ॥१॥

सहस्रऽशीर्षा । पुरुषः । सहस्रऽअक्षः । सहस्रऽपात् । सः । भूमिम् । विश्वतः । वृत्वा । अति । अतिष्ठत् । दशऽअङ्गुलम् ॥ १ ॥

पुरुष एवेदं सर्वं यद्भूतं यच्च भव्यम् ॥
उतामृतत्वस्येशानो यदन्नेनातिरोहति ॥ २ ॥

पुरुषः । एव । इदम् । सर्वम् । यत् । भूतम् । यत् । च । भव्यम् । उत । अमृतऽत्वस्य । ईशानः । यत् । अन्नेन । अतिऽरोहति ॥ २ ॥

एतावानस्य महिमातो ज्यायाँश्च पूरुषः ।
पादोस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि॥३॥

एतावान् । अस्य । महिमा । अतः । ज्यायान् । च । पुरुषः । पादः । अस्य । विश्वा । भूतानि । त्रिऽपात् । अस्य । अमृतम् । दिवि ॥ ३ ॥

त्रिपादूर्ध्व उदैत्पुरुषः पादोस्येहाभवत्पुनः ।
ततो विष्वङ् व्यक्रामत्साशनानशने अभि॥४॥

त्रिऽपात् । उर्ध्वः । उत् । ऐत् । पुरुषः । पादः । अस्य । इह । अभवत् । पुनरिति । ततः । विष्वङ् । वि । अक्रामत् । साशनानशनेइति । अभि ॥ ४ ॥

तस्माद्विरळजायत विराजो अधि पूरुषः ।
सजातो अत्यरिच्यत पश्चाद्भूमिमथो पुरः ॥५॥ १७॥

रचता है. सतइति तदपीछे सत्वरूपकरके अनुभूयमान इस जगत्का 'बंधुं–बंधकं' हेतुभूत कल्पांतरमें प्राणियोंने जो करा है कर्मसमूह, तिनकों 'कवयः' तीनों कालके जाननेवाले योगी हृदयमें बुद्धिद्वारा विचारकरके तिन कर्मानुसार सृष्टि करता भया. ॥४॥

(रश्मिः) रश्मिसमान जैसें सूर्यकी किरणां उदयानंतर निमेषमात्रकालमें युगपत् सर्व जगतमें व्यास होती हैं, तैसें शीघ्र सर्वत्र व्यास होता हुआ यह कार्यवर्ग 'विततः' विस्तारवंत होता भया. सो कार्यवर्ग, प्रथमसें क्या (तिरश्चीनः) तिर्यग् मध्यमें स्थित हुआ था? किंवा, अधः नीचेंकों हुआ था? अथवा, उपरकों हुआ था? ऐसा मालुम नही होता था. किंतु सर्वत्र एकसाथही सृष्टि होती भइ, (रेतोधाः) इससृष्टिमें (रेतसः) बीजभूत कर्मोंके करणेहारे, और भोगनेवाले जीव होते भए. 'महिमानः' अन्यमहान् पदार्थ आकाशादिभूत भोग्यरूप होते भए, भोक्ता और भोग्यमें स्वधा अन्नोंका यह भोग्य प्रपंच (अवस्तात्) निकृष्ट होता भया, (प्रयतिः) भोक्ता (परस्तात्) उत्कृष्ट होता भया.॥५॥

अथ सृष्टि दुर्विज्ञान है, इसवास्ते विस्तारसें नही कही, सोही कहते हैं. 'को अद्धेति' कौन पुरुष परमार्थसें जानता है? और कौन (इह) इस लोकमें (प्रवोचत्) कह सक्ता है? 'इयं दृश्यमाना विसृष्टिः' यह दृश्यमान विविध प्रकारभूत भौतिक भोक्तृभोग्यादिरूपकरके बहुतप्रकारकी सृष्टि, (कुतः) किस उपादानकारणसें, और (कुतः) किस निमित्तकारणसें, (आजाता) समंतात् जाता–प्रादुर्भूता–उत्पन्न हुइ है? ये दोनों कथन विस्तारसें कौन जान सक्ता, और कह सक्ता है? ननु देवता सर्वज्ञ है, इसवास्ते वे जानतेभी होवेंगे, और कह भी सक्ते होवेंगे? सोही कहते हैं. अर्वागिति। देवते इस जगतके रचनेसेंपीछे उत्पन्न हुए हैं, इसवास्ते वे कैसें जान सक्ते और कह सक्ते हैं? अथ जब देवते भी नही जानते है तो, तिनसें व्यतिरिक्त मनुष्यादि तो कैसें जान सकते हैं कि, यतः जिसकारणसें संपूर्ण जगत् उत्पन्न भया, सो कारण क्या था?॥६॥ 'इयं विसृष्टिः' यह विविधप्रकारकी गिरिनदीसमुद्रादिरूपकरके विचित्रा सृष्टि जिससें उत्पन्न भइ है, और

यत्पुरुषं व्यदधुः कतिधा व्यकल्पयन् ।
मुखं किमस्य कौ बाहू का ऊरू पादा उच्येते ॥ ११ ॥

यत् । पुरुषम् । वि । अदधुः । कतिधा । वि । अकल्पयन् । मुखम् । किम् । अस्य । कौ । बाहू इति । कौ । ऊरूइति । पादौ । उच्येते इति ॥ ११ ॥

ब्राह्मणोस्यमुखमासीद्बाहू राजन्यः कृतः ।
ऊरू तदस्ययद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत ॥ १२ ॥

ब्राह्मणः । अस्य । मुखम् । आसीत् । बाहूइति । राजन्यः । कृतः ऊरू इति । तत् । अस्य । यत् । वैश्यः । पत्ऽभ्याम् । शूद्रः । अजायत ॥ १२ ॥

चन्द्रमामनसोजातश्चक्षोः सूर्योअजायत ।
मुखादिन्द्रश्चाग्निश्चप्राणाद्वायुरजायत ॥ १३ ॥

चन्द्रमाः । मनसः । जातः । चक्षोः । सूर्यः । अजायत । मुखात् । इन्द्रः । च । अग्निः । च । प्राणात् । वायुः । अजायत ॥ १३ ॥

नाभ्याआसीदन्तरिक्षंशीर्ष्णोद्यौःसमवर्तत ।
पद्भ्यांभूमिर्दिशः श्रोत्रात्तथालोकाँ अकल्पयन् ॥ १४ ॥

नाभ्याः । आसीत् । अन्तरिक्षम् । शीर्ष्णः । द्यौः । सम् । अवर्तत । पत्ऽभ्याम् । भूमिः । दिशः । श्रोत्रात् । तथा । लोकान् ।

अकल्पयन् ॥ १४ ॥ ऋ० अष्टक ८। अ० ४। व० १७।१८।१९। मं० ।१०। अ० ७। सू० ९० ॥

भाषार्थः—सर्वप्राणि समष्टिरूप ब्रह्मांडदेह है जिसके, ऐसा विराट्नाम पुरुष, सो (यह सहस्रशीर्षा) सहस्रशिर, सहस्रशब्दकों उपलक्षण होनेसें अनंत शिरोंकरके युक्त है; क्योंकि, जे सर्वप्राणियोंके शिर हैं, ते सर्व तिसकी देहके अंतर होनेसें तिसकेही शिर हैं, इसहेतुसें सहस्रशीर्षपणा; ऐसें (सहस्राक्षः) सहस्राक्षपणा, और (सहस्रपात्) सहस्रपादपणाभी जानना सो

तस्मात् । विऽराट् । अजायत । विऽराजः । अधि । पुरुषः । सः । जातः । अति । अरिच्यत । पश्चात् । भूमिम् । अथो इति । पुरः ॥ ५ ॥ १७ ॥

यत्पुरुषेण हविषा देवा यज्ञमतन्वत ।

वसन्तो अस्यासीदाज्यं ग्रीष्म इध्मः शरद्धविः ॥ ६ ॥

यत् । पुरुषेण । हविषा । देवाः । यज्ञम् । अतन्वत । वसन्तः । अस्य । आसीत् । आज्यम् । ग्रीष्मः । इध्मः । शरत् । हविः ॥ ६ ॥

तं यज्ञं बर्हिषि प्रौक्षन्पुरुषं जातमग्रतः ।

तेन देवा अयजन्त साध्या ऋषयश्च ये ॥ ७ ॥

तम् । यज्ञम् । बर्हिषि । प्र । औक्षन् । पुरुषम् । जातम् । अग्रतः । तेन । देवाः । अयजन्त । साध्याः । ऋषयः । च । ये ॥ ७ ॥

तस्माद्यज्ञात्सर्वहुतः संभृतं पृषदाज्यम् ।

पशूंस्तांश्चक्रे वायव्यानारण्यान्ग्राम्याश्च ये ॥ ८ ॥

तस्मात् । यज्ञात् । सर्वऽहुतः । समऽभृतम् । पृषत्ऽआज्यम् । पशून् । तान् । चक्रे । वायव्यान् । आरण्यान् । ग्राम्याः । च । ये ॥ ८ ॥

तस्माद्यज्ञात्सर्वहुत ऋचः सामानि जज्ञिरे ।

छन्दांसि जज्ञिरे तस्माद्यजुस्तस्मादजायत ॥ ९ ॥

तस्मात् । यज्ञात् । सर्वऽहुतः । ऋचः । सामानि । जज्ञिरे । छन्दांसि । जज्ञिरे । तस्मात् । यजुः । तस्मात् । अजायत ॥ ९ ॥

तस्मादश्वा अजायन्त ये के चोभयादतः ।

गावो ह जज्ञिरे तस्मात्तस्माज्जाता अजावयः ॥ १० ॥ १८ ॥

तस्मात् । अश्वाः । अजायन्त । ये । के । च । उभयादतः । गावः । ह । जज्ञिरे । तस्मात् । तस्मात् । जाताः । अजावयः ॥ १० ॥ १८ ॥

में आयांअनंतर 'विष्वङ्' देवतिर्यगादिरूपकरके विविधप्रकारका हुआ थका, 'व्यक्रामत्' व्याप्तवान् हुआ क्या करके? 'साशनानशने अभिलक्ष्य' (साशनं) भोजनादिव्यवहारसंयुक्त चेतन प्राणिजात लखीए हैं, (अनशनं) तिससें रहित अचेतन गिरिनदीआदिक, येह दोनोंको जैसे होवे तैसें स्वयमेव विविधरूप होके व्याप्त होता भया ॥ ४ ॥

विष्वङ् व्यक्रामदिति यदुक्तं तदेवात्र प्रपंच्यते ॥ 'तस्मात्' तिसआदिपुरुषसें विराट्—ब्रह्मांडदेह उत्पन्न भया । विविधप्रकारकी वस्तु शोभे है इसमें इति विराट् । 'विराजोधि' विराट् देहके ऊपर तिसदेहकोंही अधिकरण करके 'पुरुषः' तिस देहका अभिमानी कोइक पुरुष उत्पन्न होता भया, सो यह सर्ववेदांतोंकरके वेद्य परमात्मा सोही अपनी मायाकरके विराट्देह ब्रह्मांडरूप रचके तिसमें जीवरूप करी प्रवेशकरके ब्रह्मांडाभिमानी देवात्मा जीव होता भया. 'सजातः' सो उत्पन्न हुआ विराट् पुरुष 'अत्यरिच्यत-अतिरिक्तोभूत्' विराटसें व्यतिरिक्त देवतिर्यक्मनुष्यादिरूप होता भया. 'पश्चात्' देवादिजीवभावसें पीछे 'भूमिम्' भूमिकों सृजन करता भया, 'अथो' भूमिसृष्टिके अनंतर तिनजीवोंके 'पुरः' शरीर रचता भया ॥ ५ ॥

'यत्' यदा पूर्वोक्त क्रमकरकेही शरीरोंके उत्पन्न हुए थके, 'देवाः' देवते उत्तर सृष्टिकी सिद्धिवास्ते बाह्यद्रव्यके अनुत्पन्न होनेकरके हविके अंतर असंभव होनेसें पुरुषस्वरूपही मनःकरके हविपणे संकल्पकरके 'पुरुषेण' पुरुषनामक 'हविषा' हविःकरके, 'मानसं यज्ञम्' मानस यज्ञकों 'अतन्वत' विस्तारते—करते हुए. 'तदानीम्' तिस अवसरमें 'अस्य' इस यज्ञका 'वसन्तः' वसंतऋतुही 'आज्यम्' घृत 'आसीत्' होता भया, तिस वसंतऋतुकोंही घृतकी कल्पना करते हुए; ऐसेंही 'ग्रीष्म इध्म आसीत्' ग्रीष्मऋतु इध्म होता भया, तिसकोंही इध्मकरके कल्पना करते-हुए; तथा 'शरद्धविरासीत्' शरदृतु हविः होता भया, तिसकोंही पुरोडाशाभिध हविःकरके कल्पना करते हुए. ऐसें पुरुषकों हविःसामान्यरूपकरके संकल्पकरके तिसते अनंतर वसंतादिकोंको घृतादिविशेषरूपकरके कल्पना करा, ऐसे जानना योग्य है. ॥ ६ ॥

पुरुष, 'भूमिं' ब्रह्मांडगोलकरूपभूमिकों 'विश्वतः' सर्व ओरसें 'वृत्वा' परिवेष्टन करके 'दशांगुलं' दशांगुलदेशकों 'अत्यतिष्ठत्' अतिक्रमकरके व्यवस्थित है दशांगुल यह उपलक्षण है, इसवास्ते ब्रह्मांडसें बाहिर भी सर्व जगे व्याप्य होके स्थित है. ॥ १ ॥

जो 'इदं' यद वर्त्तमान जगत् है, सो सर्व 'पुरुष एव' पुरुषही है 'यच्च भूतं' और जो अतीत जगत्, 'यच्च भव्यम्' और जो भविष्यत् होणहार जगत्, (तदपि पुरुषएव) सोभी पुरुषही है. जैसें इस कल्पमें वर्त्तते प्राणियोंके देह है, ते सर्वही विराट्पुरुषके अवयव है, तैसेंही अतीतानागतकल्पोंमें भी जानना, इत्यभिप्रायः 'उतापि च' और 'अमृतत्वस्य' देवपणेका यह 'ईशानः' स्वामी है, यत् जिसकारणसें 'अन्नेन' प्राणियोंके अन्नरूप भोग्यकरके 'अतिरोहाति' अपनीकारण अवस्थाकों अतिक्रमकरके परिदृश्यमान जगत् अवस्थाकों प्राप्त होता है, तिसकारणसें प्राणियोंके कर्मफल भोगनेतांइ जगत्अवस्था अंगीकार करनेसें यह तिसका वस्तुतत्त्व नही है, इत्यर्थः ॥ २ ॥

अतीतानागतवर्त्तमानरूप जगत् जहांतक है 'एतावान्' इतना सर्व भी 'अस्य' इस पुरुषका 'महिमा' आपना सामर्थ्य विशेष है; न कि तिसका वास्तव्य स्वरूप है. क्योंकि, वास्तव स्वरूप तो पुरुष है, अतः (महिम्नोपि) इससें महिमासेभी 'जायान्' अतिशय करके अधिक है, येह दोनों स्पष्ट करते हैं; 'अस्य' इस पुरुषके 'विश्वा भूतानि' त्रिकाल में वर्तनेवाले सर्व प्राणी 'पाद' चौथे हिस्से प्रमाण है 'अस्य' इस पुरुषके 'त्रिपात' शेष तीन हिस्से—भाग 'अमृतं' विनाशरहित हुआ थका दिवि द्योतनात्मके स्वप्रकाशरूपमें व्यवतिष्ठित है. इतिशेषः॥३॥

जो यह त्रिपात् पुरुषः संसारके स्पर्शरहित ब्रह्मस्वरूप है, और जो यह 'ऊर्ध्वः उदैत्' इस अज्ञानकार्य संसारसे बाहिरभूत है, इहांके गुणदोषोंकरी अस्पृष्ट है, उत्कर्षताकरके रहा हुआ है, 'तस्यास्य' तिस इस का 'सोयं पादलेशः' सो यह पादलेश 'इह' इहां मायामें फेर होता भया. सृष्टिसंहार करके पुनः २ वारंवार आता है, 'ततः' तदपीछे माया-

इस पुरुषका 'मुखं किम् आसीत्' मुख क्या होता भया? 'कौ बाहू अभूताम्' क्या दोनो बाहां होती भई? 'कौ ऊरू कौ च पादौ उच्येते' क्या साथल, और क्या दोनो पग कहीए? प्रथम सामान्य प्रश्न है, पीछे मुखं किम् इत्यादिकरके विशेषविषयक प्रश्न है ॥ ११ ॥

अब पूर्वोक्त प्रश्नोंके उत्तर कहते हैं, 'अस्य' इस प्रजापतिका 'ब्राह्मणः' ब्राह्मणत्वजातिविशिष्ट पुरुष 'मुखमासीत्' मुख होता भया, अर्थात् मुखसें उत्पन्न हुआ है, जो यह 'राजन्यः' क्षत्रियत्वजातिविशिष्ट है, सो 'बाहूकृतः' बाहांकरके उत्पन्न करा है, अर्थात् बाहांसें उत्पन्न हुआ है, 'तत् तदानीं' तिससमय 'अस्य' इस प्रजापतिके 'यत् यौ ऊरू' जे दो ऊरू थे, तद्रूप 'वैश्यः' वैश्य होता भया, अर्थात् ऊरूयोंसें वैश्य उत्पन्न हुआ, तथा इस पुरुषके 'पद्भ्यां' दोनों पगोंसें 'शूद्रः' शूद्रत्वजातिमान् पुरुष 'अजायत' होता भया, यह कथन यजुर्वेदके सप्तमकांडमें स्पष्टपणें है. ॥ १२ ॥

जैसें दधिघृतादि द्रव्य, गवादि पशु, ऋगादि वेद और ब्राह्मणादि मनुष्य, तिससें उत्पन्न हुए हैं, तैसें चंद्रादि देवते भी तिससेंही उत्पन्न हुए हैं, सोही दिखाते हैं. प्रजापतिके 'मनसः' मनसें 'चंद्रमा जातः' चंद्रमा उत्पन्न भया 'चक्षोः' नेत्रोंसें 'सूर्यः अजायत' सूर्य उत्पन्न भया 'मुखात् इंद्रश्च अग्निश्च' मुखसें इंद्र और अग्नि दो देवते उत्पन्न भए, और 'प्राणाद्वायुरजायत' प्राणोंसें वायु उत्पन्न भया. ॥ १३ ॥

जैसें चंद्रादिकोंकों प्रजापतिके मनःप्रमुखसें कल्पना करते भए, तथा तैसेंही 'लोकान्' अंतरिक्षादिलोकोंकों प्रजापतिके नाभि आदिकसें देवते 'अकल्पयन्' उत्पन्न करते भए, सोही दिखाते हैं। 'नाभ्याः' प्रजापतिकी नाभिसें 'अंतरिक्षमासीत्' आकाश उत्पन्न भया 'शीर्ष्णः' शिरसें 'द्यौः समवर्तत' स्वर्ग उत्पन्न हुआ 'पद्भ्यां भूमिरुत्पन्ना' पगोंसें भूमि उत्पन्न भई, और 'श्रोत्राद्दिश उत्पन्ना इति' श्रोत्र-कानोंसें दिशा उत्पन्न भई. ॥ १४ ॥ इत्यादि।

'यज्ञं' यज्ञके साधनभूत 'तम्' तिस पुरुषकों पशुत्वभावनाकरके यूपमें बांधेहुएकों 'बर्हिषि' मानस यज्ञमें 'प्रौक्षन्' प्रोक्षण करते भये, कैसे पुरुषकों? सोही कहे हैं. 'अग्रतः' सर्वसृष्टिके पहिले 'पुरुषम् जातम्' पुरुषपणे उत्पन्न भयेकों 'तेन' तिस पुरुषरूप पशुकरके 'देवाः' देवते 'अयजन्त' यजन करते भये, मानस यज्ञ निष्पन्न करते भये इत्यर्थः। कौन वे देवते? सोही कहे हैं. 'साध्याः' सृष्टिके साधनयोग्य प्रजापतिप्रमुख 'ऋषयश्च' और तिनके अनुकूल ऋषि मंत्रोंके देखनेवाले जे हैं, ते सर्व यजन करते भये इत्यर्थः॥७॥

'सर्वहुतः' सर्वात्मक पुरुष जिस यज्ञमें आहवन करीए, सो यह सर्वहुतः, तैसें 'तस्मात्' पूर्वोक्त 'यज्ञात्' मानसयज्ञसें 'पृषदाज्यम्' दधिमिश्रितघृतकों 'संभृतम्' संपादन करा, दधि और घृत यह आदिभोग्यजात सर्वसंपादन करा इत्यर्थः। तथा 'वायव्यान्' वायुदेवसंबंधी लोकमें प्रसिद्ध 'आरण्यान् पशून्' आरण्य पशुयोंकों 'चक्रे' उत्पन्न करता भया; आरण्यहरिणादिक। तथा 'ये च ग्राम्याः' गौ अश्वादि तिनकोंभी उत्पन्न करता भया ॥ ८ ॥ 'सर्वहुतस्तस्मात्' पूर्वोक्त 'यज्ञात्' यज्ञसें 'ऋचःसामानि जज्ञिरे' ऋच साम उत्पन्न भए 'तस्मात्' तिस यज्ञसेंही 'छंदांसि' गायत्रीआदि 'जज्ञिरे' उत्पन्न भए 'तस्मात्' तिस यज्ञसें 'यजुरप्यजायत' यजुर्वेदभी होता भया. ॥ ९ ॥

'तस्मात्' तिस पूर्वोक्त यज्ञसें 'अश्वा अजायन्त' घोडे उत्पन्न भए, तथा 'ये के च' जे केइ अश्वसें व्यतिरिक्त गर्दभ और खचरां 'उभयादतः' उर्ध्व अधोभाग दोनों दंतयुक्त होते हैं जिनके ते भी तिसयज्ञसेंही उत्पन्न हुए हैं, तथा 'तस्मात्' तिस यज्ञसें 'गावश्च जज्ञिरे' गौयां उत्पन्न हुई हैं, किंच 'तस्मात्' तिसयज्ञसें 'अजाः' बकरीयां और 'अवयः' भेडें भी 'जाताः' उत्पन्न भई. ॥ १० ॥

प्रश्नोत्तररूपकरके ब्राह्मणादि सृष्टि कहनेकों ब्रह्मवादियोंके प्रश्न कहते हैं। प्रजापति प्राणरूप देवते 'यत्' यदा 'पुरुषं' विराड्रूप पुरुषकों 'व्यदधुः' रचते भए, अर्थात् संकल्पकरके उत्पन्न करते भए, तब 'कतिधा' कितने प्रकारोंकरके 'व्यकल्पयन्' विविधरूप कल्पना करते भए? 'अस्य'

अथ ईश्वर जैसें जगत्कों सृजता है, सो प्रश्नोत्तरोंकरके कहते हैं। लोकमें घटादि करनेकी इच्छावाला कुंभकार, घरादिस्थानमें रहकरके मृत्तिकाआदि आरंभक द्रव्यरूपकरके, और चक्रादि उपकरणोंकरके घटादिक निष्पादन करता है। ईश्वरकों सो आक्षेप करते हैं। (स्विदिति) वितर्कमें है, द्यावाभूमी सृजता हुआ विश्वकर्माका (अधिष्ठानं किमासीत्) आधार क्या था? क्योंकि विना अधिष्ठानके कुछ भी नही कर सक्ता है (स्विदिति वितर्के) तर्क करते हैं, (आरंभणं कतमत् आसीत्) आरंभण क्या था? उपादान कारण क्या था? जैसें मृत्तिका घटोंका (कथा) क्रिया च किम्प्रकारा (आसीत्) क्रिया किसप्रकार थी? निमित्त कारण क्या था? दंडचक्रसलिलसूत्रादिकरके घटादि करते हैं, तिनसमान क्या था? (यतः) जिससें विश्वकर्मा जिस कालमें पृथिवी और स्वर्गकों (जनयन्) रचता हुआ (महिना) स्वसामर्थ्यकरके सृष्टि द्यावापृथिवीकों (और्णोत्) आच्छादित करता भया, कैसा विश्वकर्मा? (विश्वचक्षाः) सर्वद्रष्टा ॥ १८ ॥

उत्तर कहते हैं ॥ (एकः) अकेला असहायी (देवः) विश्वकर्मा (द्यावाभूमी जनयन्) स्वर्ग और भूमिकों रचता हुआ (बाहुभ्यां) बाहुस्थानीय धर्माधर्मकरके (संधमति) संयोगकों प्राप्त होता है, (पतत्रैः) पतनशीलवाले अनित्य पंचभूतोंकरके प्राप्त होता है, धर्माधर्मनिमित्तोंकरके पंचभूतरूप उपादानोंकरके साधनांतरके विनाही सर्व सृजन करता है, अथवा धर्माधर्मकरके च पुनः भूतोंकरके (संधमति) सम्यक् प्रकारकरके प्राप्त करता है जीवोंकों, कैसा है? (विश्वतश्चक्षुः) सर्व ओरसें चक्षु हैं जिसके (विश्वतोमुखः) सर्व ओरसें मुख हैं जिसके (विश्वतोबाहुः) सर्व ओरसें बाहां हैं जिसके (विश्वतःपात्) सर्व ओरसें पग हैं जिसके, सो परमेश्वरकों सर्व प्राण्यात्मक होनेसें जिस जिस प्राणीके जे जे चक्षु आदि हैं, ते सर्व तिस उपाधिवाले परमेश्वरकेही हैं; इसवास्ते सर्व जगे चक्षुआदि प्राप्त होते हैं इति ॥ १९ ॥

पुनः फेर प्रश्न है (स्विदिति) वितर्कमें है (वनं किम् आस) सो वन कौनसा था? (उ) अपि च (सः वृक्षः कः) और सो वृक्ष कौनसा

तथा—

यइमा विश्वाभुवनानिजुह्वदृषिर्होतान्यसीदत्पितानः।
सआशिषाद्रविणमिच्छमानःप्रथमच्छदवराँ २॥ ऽआविवेश ॥१७॥
कि७स्विदासीदधिष्ठानमारम्भणंकतमत्स्वित्कथासीत्।
यतोभूमिंजनयन्विश्वकर्माविद्यामौर्णोन्महिनाविश्वचक्षाः ॥१८॥
विश्वतश्चक्षुरुतविश्वतोमुखोविश्वतोबाहुरुतविश्वतस्पात्।
संबाहुभ्यांधमतिसंपतत्रैर्द्यावाभूमीजनयन्देवएकः ॥ १९ ॥
कि७स्विद्वनंकउसवृक्षआसयतोद्यावापृथिवीनिष्टतक्षुः।
मनीषिणोमनसापृच्छतेदुतद्यदध्यातिष्ठद्भुवनानिधारयन्॥ २०॥

यजुर्वेद१७अध्याये.

भावार्थः—प्रजाकों संहार सृजन करते विश्वकर्माकों देखता हुआ ऋषि कहता है। (यः) जो विश्वकर्मा (इमा) इमानि (विश्वा) विश्वानि—यह जो सर्व (भुवनानि) भूतजातोंकों (जुह्वत्) संहार करता हुआ (न्यसीदत्) आपही बैठता हुआ, कैसा? (ऋषिः) अतींद्रियद्रष्टा सर्वज्ञ (होता) संहाररूप होमका कर्त्ता (नः) अस्माकम्—हम प्राणियोंका (पिता) जनक है। प्रलयकालमें सर्व लोकोंका संहार करके जो परमेश्वर आप एकेलाही रह गया था, तथा चोपनिषदः। "आत्मा वा इदमेक एवाग्र आसीन्नान्यत्किंचन मिषत्। सदेव सोम्येदमग्रआसीदेकमेवाद्वितीयमित्याद्याः॥" (सः) तैसा पूर्वोक्त स्वरूपवाला सो परमेश्वर (आशिषा) अभिलाषकरके "बहुस्यां प्रजायेयेत्येवंरूपेण" ऐसे रूपकरके पुनः फेर रचनेकी इच्छारूपकरके (द्रविणमिच्छमानः) जगत्‌रूपधनकी अपेक्षा करता हुआ (अवरान्) अभिव्यक्त उपाधीयोंमें (आविवेश) जीवरूपकरके प्रवेश करता भया- कैसा? (प्रथमच्छत्) प्रथम एक अद्वितीयस्वरूपकों जो छादन करे सो 'प्रथमच्छत्' उत्कृष्ट रूपकों आच्छादन करता हुआ प्रवेश करता भया, (इच्छमानः) सो वांछा करता भया, 'बहु स्यां' बहुतरूप हो जाऊं इत्यादि श्रुतियोंसें जान लेना ॥ १७॥

बौद्ध, सांख्य, वेदांत, न्याय, वैशेषिक, पातंजल, मीमांसादि सर्वशास्त्रोंके कहे तत्त्वोंको प्रथम श्रवण पठन मनन निंदिध्यासनादि करके जिस शास्त्रका कथन युक्तिप्रमाणसें बाधित होवे, तिसका त्याग करना चाहिये; और जो युक्तिप्रमाणसें बाधित न होवे, तिसकों स्वीकार करना चाहिये; परंतु मतोंका खंडनमंडन देखके द्वेषबुद्धि कदापि किसी भी मतउपर न करनी चाहिये. क्योंकि, सर्वमतोंवाले अपने २ माने मतोंकों पूरा २ सच्चा मान रहे हैं. इन पूर्वोक्त मतोंमेंसे सांख्य, मीमांसक, जैन और बौद्ध ये जगत्का कर्त्ता ईश्वरकों नही मानते हैं, और वैदिक, नैयायिक, वैशेषिकादिमतोंके माननेवाले जगत्का कर्त्ता ईश्वरकों मानते हैं; वेदमतवाले अन्यमतोंवालोंसें विलक्षणही जगत् और जगत्कर्त्ताका स्वरूप मानते हैं, और यह भी कहते हैं कि, वेदसमान अन्य कोइ भी पुस्तक प्रमाणिक नही है, इसवास्ते प्रथम हम वेदके कथनकोंही विचारते हैं कि, प्रमाणसिद्ध है वा नही? जेकर प्रमाणसिद्ध है, तब तो वाचकवर्गकों सत्य करके मानना चाहिये, और जेकर प्रमाणबाधित होवे तब तो, तिसका त्यागही करना चाहिये. वेदोंमें भी बडा, और प्रथम जो ऋग्वेद है, तिसके कथनकाही सत्य वा असत्यका विवेचन करते हैं.

ऋ० अ ८। अ७। व १७। मं १०। अनु ११। सू १२९॥ प्रलयदशामें जगत्उत्पत्तिका कारणभूत माया, सत्स्वरूपवाली भी नही थी, और असत्स्वरूपवाली भी नही थी, किंतु सत् असत् दोनों स्वरूपोंसें विलक्षण अनिर्वाच्यस्वरूपवाली थी.

उत्तरपक्षः—जहां असत्का निषेध करेंगे, तहां अवश्यमेव सत्का विधि मानना पडेगा; और जहां सत्का निषेध करेंगे, तहां अवश्यमेव असत् मानना पडेगा; और जहां असत् सत् दोनोंका युगपत् निषेध करेंगे, तहां सत् असत् दोनों युगपत् मानने पडेंगे; और जहां सत् असत् दोनों युगपत् निषेध करेंगे, तहां असत् सत् दोनों युगपत् मानने पडेंगे. असत् और सत् ये दोनों एक स्थानमें रह नही सक्के हैं.

था? (यतः) जिस वन, और वृक्षसें विश्वकर्मा, (द्यावापृथिवी) द्यावापृथिवीकों (निष्टतक्षुः) त्राछता घडता रचता अलंकृत करता हुआ; क्योंकि, तैसें वनवृक्षका संभव नही है. लोकमे तो घरादि बनानेकी इच्छावाला किसी वनमें किसी वृक्षकों छेदनकरके त्राछनादिकरके स्तंभादिक करता है, इहां जगत् रचनेमें सो है नही। एक अन्यबात है (मनीषिणः) हे बुद्धिमानो! (मनसा) मनकरके-विचारकरके (तत् इत् उ) सो भी (पृच्छत) तुम पूछो, सो क्या? (भुवनानि) जगत्कों (धारयन्) धारण करता हुआ विश्वकर्मा (यदध्यतिष्ठत्) जिस जगे रहता था सो भी तुम पूछो. कुंभकारादि जैसें घरादिकमें बैठके घटादि करते हैं, सो अधिष्ठान भी पूछो। इन सर्व प्रश्नोंका यह उत्तर है कि, ऊर्णनाभिवत् यह आत्मा (ईश्वर) सर्व जगत्का आरंभ करता है, ऊर्णनाभि (मकडी-करोलीया) अपने अंदरसेंही चेपवस्तु निकालके जाला रचता है, तैसेंही ईश्वर अपने अंदरसेंही सर्व कुछ निकालके जगत् रचता है, इसवास्ते इसजगत्का उपादानकारण, और निमित्तकारण ईश्वर आपही है अन्य नही ॥ २० ॥

॥ इति यजुर्वेदसंहितायां सप्तदशाध्याये ॥

इत्याचार्यश्रीमद्विजयानन्दसूरिविरचिते तत्त्वनिर्णयप्रासादग्रन्थे ऋग्वेदाद्यनुसारसृष्टिक्रमवर्णनो नाम सप्तमःस्तम्भः ॥ ७ ॥

॥ अथाष्टमस्तम्भारम्भः ॥

सप्तमस्तंभमें ऋगादिवेदानुसार सृष्टिक्रम वर्णन करा, अथाष्टम स्तंभमें पूर्वोक्त सृष्टिक्रमकी यत्किंचित् समीक्षा करते हैं; तहां प्रथम हम बहुत नम्रतापूर्वक विनती करते हैं कि, पक्ष-कदाग्रहकों छोडके प्रेक्षावानोंकों यथार्थ तत्त्वका निर्णय करना चाहिये, परंतु यह नही समझना चाहिये कि, यह अमुक धर्म, और अमुक २ शास्त्र हमारे वृद्ध मानते आए हैं तो, अब हम इसकों त्यागके अन्यकों क्योंकर मान लेवे? क्योंकि ऐसी समज प्रेक्षावानोंकी नही है, किंतु यातो अज्ञ होवे, या दृढ कदाग्रही होवे, तिसकी ऐसी समझ होती है. इसवास्ते, वेद, स्मृति, पुराण, तथा जैन

गा; तो फेर, ऋग्वेदकी श्रुतिकी कही अनिर्वाच्य माया, प्रलयदशामें क्योंकर सिद्ध होवेगी? जेकर कहोंगे, अव्याकृत, अर्थात् माया, और ब्रह्मके पृथक्रूप न होनेसें एकही आत्मा कहा है; तब तो, ब्रह्मकेसाथ ओतप्रोत होनेसें ब्रह्मके सत्स्वरूपकीतरें, माया भी सत्स्वरूपवाली सिद्ध होवेगी. तब तो ऋग्वेदकी श्रुतिने जो प्रलयदशामें मायाकों सत् असत् स्वरूपसें विलक्षण जो अनिर्वाच्य कथन करी है, यह कहना मिथ्या सिद्ध होवेगा.

और जब एकही ब्रह्म सत्स्वरूप था, तब तो इस जगत्का उपादान कारण भी सत्स्वरूप ब्रह्मही सिद्ध होवेगा, तब तो यह जडचैतन्य पंचरूप जगत् ब्रह्मरूपही सिद्ध हुआ. तब तो, धर्म, अधर्म, पुण्य, पाप, ज्ञान, अज्ञान, सत्कर्म, असत्कर्म, स्वर्ग, नरक, धर्मी, अधर्मी, साधु, असाधु, सज्जन, दुर्जन, गुरु, शिष्य, शास्त्र, इत्यादि कुछ भी सिद्ध नही होवेगा. तब तो, चार्वाक, और वेदांतमतवालोंके सदृशपणाही सिद्ध हुआ. क्योंकि, चार्वाक तो, चार भूतोंकाही कार्यरूप यह जगत् मानते हैं, अन्यधर्मा धर्मादि ऊपर कहे हुए है नही. और वेदांती, सर्व इस जडचैतन्यरूप जगत्का उपादानकारण एक सत्स्वरूप ब्रह्मही मानते हैं, इसवास्ते तिनके मतमें भी ऊपर कहे धर्माधर्मादिक नही है. इसवास्ते चार्वाक, और वेदांतमतवाले ये दोनों नास्तिक सिद्ध होते हैं. क्योंकि, जो जीवोंकों अविनाशी नही मानता है, और पुण्यपापके हेतु, और पुण्यपापके फल भोगनेके स्थान नही मानता, आत्माकों भवांतर गमन करनेवाला नही मानता है, और देवगुरुधर्मकों नही मानता है, सो नास्तिक हैं; येह पूर्वोक्त सर्व लक्षण वेदांतमतमें मिलते हैं. क्योंकि, जब सर्व कुछ ब्रह्मही है, तब तो सत्स्वरूप ब्रह्ममें अन्य कुछ भी पुण्यपापादि न माने आवेंगे, इसवास्ते असली वेदांतका सिद्धांत, अंतमें नास्तिक सिद्ध हो जाता है.

पूर्वपक्षः—प्रलयदशामें एकही सत्स्वरूप ब्रह्म था, परंतु यजुर्वेदके सप्तदश (१७) अध्यायमें, और उपनिषदोंमें कहा है, और्णनाभि, अर्थात् मकडी कोलिकनामा जीव, जैसें अपने अंदरसेंही चेप जैसी वस्तु नि-

पूर्वपक्षः—हम तो सत् असत् दोनों पक्षोंसें विलक्षण तीसरा अनिर्वाच्य पक्ष मानते हैं, इसवास्ते श्रुतिका कथन सत्य है.

उत्तरपक्षः—यह जो तुम अनिवाच्यत्व मानते हो तो, इसके अक्षरोंका यह अर्थ होता है; निस्शब्द प्रतिषेधार्थमें है, सो प्रतिषेध, या तो भावका होना चाहिये, वा अभावका. नकारप्रतिषेध भी, या तो भावका निषेध करेगा, या अभावका. तब तो, अनिर्वाच्यत्वका अर्थ भी भाव, वा अभाव सिद्ध होवेगा; तो फेर अनिर्वाच्यत्व कहनेसें भाव, वा अभावसें अधिक कुछ भी नहीं सिद्ध होता है, इसवास्ते माया, या तो सत् माननी पडेगी, वा असत् माननी पडेगी.

पूर्वपक्षः—प्रतीतिके जो अगोचर होवे, तिसकों हम अनिर्वाच्यत्व कहते हैं.

उत्तरपक्षः—प्रलयदशामें सो प्रतीति अगोचर था, जो जीवोंके प्रतीति अगोचर था कि, ब्रह्मके प्रतीति अगोचर था? प्रथम पक्ष तो संभव होही नहीं सक्ता है; क्योंकि, प्रतीति करनेवाले जीव तो तिस प्रलयदशामें विद्यमानही नही थे तो, प्रतीति गोचर वा अगोचर किसकी अपेक्षा कहनेमें आवे? जेकर ब्रह्मके प्रतीति अगोचर था, तब तो माया, वा जगत्का कारण, खरशृंगवत् एकांत असत्रूप हुआ. तब तो, तिससें जगत् उत्पत्ति त्रिकालमें भी नही होवेगी. जेकर ब्रह्मके प्रतीति गोचर है, तब तो माया, सत्स्वरूपवाली सिद्ध होवेगी, तिसके सिद्ध होनेसें अद्वैत ब्रह्म त्रिकालमें भी सिद्ध नहीं होवेगा; इसवास्ते, 'नासदासीन्नोसदासीत्' यह कहना युक्तिसें बाधित हैं. तथा 'आत्मा वा इदमेक एवाग्र आसीत्' ॥ 'सदेव सौम्येद मग्र आसीत्' ॥ इन दोनों श्रुतियोंसें यह सिद्ध होता है कि, जगत् उत्पत्तिसें पहिले आत्मा, अर्थात् ब्रह्मही एकला था, अन्य कुछ भी नही था. ॥ तथा हे सौम्य! सत्ही यह आगे था, अन्य कुछ भी नही था! प्रथम तो ऋग्वेदकी पूर्वोक्त श्रुतिसें ये दोनों श्रुतियाँ विरुद्ध मालुम होती हैं. क्योंकि, इन दोनों श्रुतियोंसें तो, विना एक ब्रह्मात्मा सत्स्वरूपसें अन्य कुछ भी नही था, ऐसा सिद्ध होता है. तब तो माया, अपरनाम जगत् उत्पत्तिका कारण, कदापि सिद्ध नही होवे-

युक्त हुआ थका सृष्टिसंहार करके वारंवार आता है, मायामें आयांअनंतर देव मनुष्य तिर्यगादिरूपकरके विविध प्रकारका हुआ थका जड चैतन्यके रूपकों व्याप्त होता है इत्यादि—अब हे प्रियवाचकवर्गो! तुम विचार करो कि, जब एक अद्वैतही शुद्ध सच्चिदानंद स्वरूप माना, तो फेर तिसका एक भाग तो मायासहित, और तीन भाग मायारहित निरुपाधिक संसारके स्पर्शरहित अमृतरूप कैसें हो सक्के हैं? तथा चौथा भाग जो मायावाला है, सो क्या ब्रह्मसें भिन्न है? जेकर भिन्न है, तब तो दो ब्रह्म मानने पडेंगे; एक तो तीन गुणाधिक शुद्ध ब्रह्म, और एक चतुर्थांश मायावाला. जेकर तो ये दोनों ब्रह्म अनादिसें भिन्न है, तब तो तीनों कालोंमें भी अद्वैतकी सिद्धि नही होवेगी, जेकर एकही ब्रह्मका चतुर्थांश मायावान् है, शेष तीन भाग निर्मल है, तब तो यह प्रश्न उत्पन्न होवेगा कि, यह चौथा भाग अनादिसेंही मायावान् है, वा पीछेसें मायाका संबंध हुआ है? जेकर कहोंगे कि, अनादिसेंही मायावान् है, तब तो ब्रह्म सावयव वस्तु सिद्ध होवेगा, जैसें देवदत्तके पगऊपर कुष्टका रोग है, शेषशरीर निरोग है; ऐसेंही ब्रह्मके तीन अंश तो निर्मल हैं, और एक अंश मायासंयुक्त है. इससें ब्रह्म सावयव सिद्ध होता है. और तीन अंशोंसें तो सच्चिदानंदस्वरूपमें मग्न है, और एक अंशकरके जन्म, मरण, रोग, शोक, जरा, मृत्यु, अनिष्टसंयोग, इष्टवियोगादि अनंत दुःखोंकों भोग रहा है; और सदाही जिसकी ये दो अवस्था बनी रहेगी, तो फेर मुक्तरूप कौन ठहरा? और संसाररूप कौन ठहरा? जिस मायाने ब्रह्मके चौथे अंशकी ऐसी दुर्दशा कर रक्खी है, फेर तिस मायाकों सदा न मानना यह कैसी भूल है?

जेकर कहोंगे ब्रह्मका चतुर्थांश मायासंयुक्त आदिवाला है, जब ब्रह्ममें फुरणा होती है; तब चतुर्थांश मायावान् हो जाता है, यह भी ठीक नही, क्योंकि, फुरणेसें पहिलें तो माया नही थी, तो फेर फुरणा किस निमित्तसें हुआ? जेकर कहोंगे ब्रह्मस्वभावसेंही फुरणावाला होता है, तब तो संपूर्ण ब्रह्मकों युगपत् फुरणा होना चाहिये, नतु चतुर्थांशकों. जेकर कहोंगे

कालके जाल बनाता है, ऐसेंही सत्स्वरूप ब्रह्म, अपने आपहीमेंसे इस जगत्का उपादान कारण निकालके तिससेंही यह जगत् रचना करता है.

उत्तरपक्षः—हे प्रियवर! यह जो और्णनाभि—मकडीका दृष्टांत दिया है, सो भी अयुक्त है, क्योंकि, और्णनाभि—मकडी जो है, सो केवल चैतन्य नही है, किंतु तिसका चैतन्यस्वरूपवाला जीव शरीररूप जड उपाधिवाला है, मनुष्यशरीरवत्ः इसवास्ते, सो जंतु जो कुछ शरीरद्वारा आहार करता है, सो तिसके शरीरके अंदर चेप मलमूत्रादिपणे परिणमता है, मनुष्यके आहार करणेसें वात पित्त कफ मल मूत्र लालादिवत् तथा और्णनाभीने जो जाला रचा है, तिसका उपादान कारण और्णनाभि नही है, किंतु जालेका उपादानकारण और्णनाभिके शरीरमें जो चेपादि वस्तु है, सो है; इससें यह सिद्ध हुआ कि, ब्रह्मात्माके अन्य कुछक जडचैतन्यवस्तुयों थी, जिन उपादान कारणोंसें जडचैतन्यकार्यरूप संसार— रचा. परंतु ब्रह्मनें स्वयमेवही जगत्रूपकों धारण स्वीकार नही करा, ऐसें मानोंगे, तब तो अद्वैतकी हानी होवेगी. इसवास्ते, और्णनाभिका दृष्टांत भी असंगत है.

तथा जब प्रलयदशा होती है तब केवल एकही ब्रह्म होताहै? वा माया और ब्रह्म ये दो होते हैं? वा मायाकरके अव्याकृत ब्रह्म, अर्थात् माया और ब्रह्म क्षीरनीरकीतरें अपृथक्पणें मिश्रित होते हैं? प्रथमपक्षमें तो शुद्ध, बुद्ध, सच्चिदानंद, अक्रिय, कूटस्थ, नित्य, सर्वव्यापक, ऐसे ब्रह्मसें तो त्रिकालमें कदापि सृष्टि नही होवेगी, निरुपाधिक होनेसें, मुक्तात्मावत्. ।१। जेकर दूसरा पक्ष मानोंगे, तब तो द्वैतापत्तिसें त्रिकालमें भी अद्वैतकी सिद्धि नही होवेगी.।२। जेकर तीसरा पक्ष मानोगे, तब तो तीनोंही कालमें एक शुद्ध ब्रह्मकी सिद्धि न होवेगी.

और ऊपर सप्तम स्तंभमें लिखी श्रुतियोंमें लिखा है कि—ब्रह्मके चार भागोंमेंसें तीन भाग तो सदा मायाप्रपंचसें रहित शुद्ध सच्चिदानंदरूप अपने स्वरूपमेंही प्रकाश करता हुआ व्यवतिष्ठित रहता है, और एक चौथा भाग सो मायामें मायासंयुक्त हो कर, अथवा सदा मायासं-

कर्मोंका मुझे महादुःखरूप फल होवेगा; इसवास्तेंही पाप करे; इस हेतुसें तुझारा ब्रह्म अज्ञानी सिद्ध होता है. तथा जेकर ब्रह्म विवेकी होता तो, पुण्यफलरूप शुभकर्मही करता, नतु अशुभ; परंतु उसने तो शुभाशुभ दोनो प्रकारके कर्म करे हैं, इसवास्ते तुझारा ब्रह्म अविवेकी सिद्ध होता है. जब आपही अपने दुःख भोगनेवास्ते जगत् रचता है, तब तो अपने पगों-में आपही कुहाडा मारता है, इसवास्ते आत्मघाती भी सिद्ध होता है.

प्रलय दशामें माया, जीव, जीवोंके कर्म, सर्व सूक्ष्मरूप होके ब्रह्ममें लीन थे, जब ब्रह्मकों जीवोंके करे कर्म परिपक्व फल देनेमें सन्मुख हुए, तब परमात्माकों सृष्टि करनेकी इच्छा उत्पन्न होती है, यह कथन ४ अंककी श्रुतिमें है, इसमें हम यह पूछते हैं कि, प्रथम तो, जे शुभाशुभ कर्म जीवोंने करे थे, ते कर्म रूपी थे कि, अरूपि थे? जेकर रूपि थे तो, क्या जड थे, वा चेतन थे? अत्र द्वितीयपक्ष तो स्वीकारही नही है, संभव न होनेसें । अथ प्रथमपक्षः–जेकर जड थे, तब तो परमाणुयोंके कार्य थे, वा अन्य कोइ उनका सपादन कारण था? जेकर परमाणुयोंके कार्यरूप थे, तब तो अद्वैतकी हानी सिद्ध होती है; जेकर अन्यकोइ उपादान कारण मानोंगे, सो तो है नही; क्योंकि परमाणुयोंके विना अन्य कोइ कारण, रूपी कार्यका नही है; जेकर अरूपि जड थे, तब तो सिद्ध हुआ कि, आकाशकेविना अन्य कोइ वस्तु नही थी, और आकाश कर्मोंका उपादानकारण नही सिद्ध होता है; जेकर अरूपि चेतन थे, तब तो जीव, कर्मोंका उपादान कारण सिद्ध हुआ, जब कर्म चेतन हुए, तब तो जीवोंके ज्ञान विचारोंकेही नाम कर्म हुए. अथ जो वह कर्म ज्ञानरूप है, ते परिपक्व फल देनेके उन्मुख हुए थके, क्या ब्रह्मकों खाज उत्पन्न करते हैं? जो हम फल देनेके सन्मुख हुए है, इसवास्ते जगत् रचो! वा अंदर कोइ कर्मकी खेती बोइ हुइ है? जिसके देखनेसें ब्रह्मकों सृष्टि करनेकी इच्छा उत्पन्न होती है! वा वे कर्म ईश्वरकों चुहंडीयां भरते है? जिसमें ईश्वर जानता है कि, येह परिपक्व होके फल देनेके सन्मुख हुए हैं! अथवा कर्म ब्रह्मकेसाथ लडाइ करते हैं? कि, जीवोंकों तूं

चतुर्थांशमेंही फुरणा होता है, नतु तीन अंशोंमें, तीन अंश तो सदा अफुरही रहते हैं, तब तो ब्रह्ममें स्वभावभेद हुआ, स्वभावभेदसेंही ब्रह्म अनित्य सिद्ध होवेगा, "स्वभावभेदो ह्यनित्यताया लक्षणमितिवचनात्."

पूर्वपक्षः–प्रलयदशामें अव्याकृत ब्रह्म है, जब सर्व जीवोंके करे हुए शुभाशुभ कर्म परिपक्व हुए थके फल देनेके उन्मुख होते हैं, तब ईश्वरकों साक्षी फलप्रदाता होनेसें सृष्टिकी इच्छा होती है.

उत्तरपक्षः–इस कथनसें तो ऐसा सिद्ध होता है कि, अव्याकृत ब्रह्ममें अनंत जीव, और अनंततरेंके तिन जीवोंकरके पुण्यपाप, और पचं भूतोंका उपादान कारण, ये सर्व सामग्री ब्रह्ममें सूक्ष्मरूप होके लीन हुइ होइ थी; जब ऐसें था, तब तो अद्वैतकी सिद्धि कदापि नही होवेगी. जेकर कहोंगे ये सर्व सामग्री ब्रह्मसें अभेदरूप होके ब्रह्मके साथ रहती थी, तब तो सर्व कुछ ब्रह्म द्वैतरूपही हुआ; जब अद्वैत ब्रह्मही था, तब तो जीव अनंत पूर्वकल्पके करे अनंततरेंके पुण्यपाप और पुण्यपाप परिपक्व होके फल देनेके उन्मुख होते हैं, तब ईश्वरकों सृष्टि करनेकी इच्छा उत्पन्न होती है, यह सर्व कहना महामिथ्या सिद्ध होवेगा. क्योंकि, न तो कोइ ब्रह्मसें अन्य जीव है, न शुभाशुभ कर्म है, न कर्त्ता है, न फल है, और न फल देनेके उन्मुख कर्म होते हैं. क्योंकि, एक ब्रह्माद्वैतही तत्त्व है.

पूर्वपक्षः–ब्रह्मही अनंत जीव है, ब्रह्मही शुभाशुभ कर्म, ब्रह्मही कर्मका कर्त्ता, ब्रह्मही कर्मफल भोक्ता, ब्रह्मही अपने करे कर्मफल भोगनेकी इच्छा करके जगत् रचता है.

उत्तरपक्षः–जब तुम्हारे कहे प्रमाण सर्व कुछ ब्रह्मही है, तब तो तुम्हारे ब्रह्मसमान अज्ञानी, अविवेकी, आत्मघाती, अन्य कोइ भी नही है. क्योंकि, जब नानायोनियोंमें नानाप्रकारके शीत, ताप, क्षुधा, तृषा, संयोग, वियोग, कुष्ठ, जलोदर, भगंदर, अप्समार, क्षयी, ज्वर, शूल, नेत्रवेदना, मस्तकवेदना, जन्म मरणादि अनंत दुःख अपने करे कर्मोंसें भोगता है, तब तो पाप करनेके अवसरमें ब्रह्मकों यह मालुम नही था कि, इन

ऐसा कहते हैं. ॥ परीक्षा ॥ जब प्रलयदशामें भूत भौतिक जगत् अज्ञानरूप तमःकरके आच्छादित था, तब तो भूत भौतिक जगत् विद्यमान सिद्ध होता है. क्योंकि, कोइ वस्तु ढांकणेसे अभावरूप नहीं होती है, तब तो ब्रह्मने प्रलयकरके आपही आपना सत्यानाश करा. जैसें कोइ पुरुष नानाप्रकारकी क्रीडारंग विनोद भोग विलासादि करता हुआ, एकदम अपना सर्व ऐश्वर्य नाशकरके आंखोंके आगे पट्टी बांधकर किसी अंधकारवाली पर्वतकी गुफामें जा पडे तो, तिसकों अवश्यमेव मूर्ख कहना चाहिए. क्योंकि, जिसकों अपने आपके हितकी इच्छा नही है, तिससें अधिक अन्य कौन पुरुष मूर्ख है? कोइ भी नही है.किंच पुरुष तो, किसी पर्वतकी गुफामें जा पडा है, परंतु सृष्टि संहारकरके ब्रह्म अज्ञानाच्छादित होके किस स्थानमें रहता था? क्योंकि, प्रलयदशामें आकाश तो था नहीं; और विना आकाशके कोइ जड चेतन वस्तु रह नही सक्ती है. और विना आकाशके वस्तुका रहना मानना यह युक्तिप्रमाणसें विरुद्ध है, प्रेक्षावान् कदापि नही मानेंगे. प्रलय करेनेसें तो जगत् संहारी होनेसें ब्रह्मात्माकों निर्दय और आत्मघाती कहना चाहिए; और प्रलय न करे तो, ब्रह्मकी कुछ हानि नही है, और सृष्टि न करे तो भी कुछ हानि नही है, तो फेर, विनाप्रयोजन पूर्वोक्त काम करनेसें कौन बुद्धिमान् परमात्माकों सर्वज्ञ कृतकृत्य वीतराग करुणासमुद्र इत्यादि विशेषणोंवाला मान सक्ता है? जेकर परमात्मा सृष्टि न रचे तो, इसमें उसकी क्या हानि है?

पूर्वपक्षः—जेकर ईश्वर सृष्टि न रचे तो, जीवोंके करे शुभाशुभ कर्मोका फल जीवोंके भोगनेमें क्यों कर आवे?

उत्तरपक्षः—जेकर ईश्वर जीवोंके कर्मोंका फल न भुक्तावे तो, ईश्वरकी क्या हानि होवे? क्योंकि तुमारे मतमूजब जीव आपतो कर्मोंका फल भोग सक्तेही नही, और ईश्वर सृष्टि रचे नही, तव तो वहुतही अच्छा काम होवे, न तो जीव पूर्वकर्मका फल भोगे, और न नवीन शुभाशुभ कर्म आगेंकों करे, सदा काल प्रलयदशामेंही परमानंदकों ब्रह्मानंदमें लय होके भोगा करे. क्योंकि, उपनिषदोंमें लिखा है कि, सुषुप्तिमें आत्मा ब्र-

हमारा फल क्यों नही देता है? इस हेतुसें ईश्वरको सृष्टि रचनेकी इच्छा उत्पन्न भइ ? अथवा वे कर्म ईश्वरके साथ लडके ईश्वरकी आज्ञासें बाहिर हुए चाहते हैं, तिनके राजी रखनेकों ईश्वरकों सृष्टि रचनेकी इच्छा उत्पन्न होवे हैं? इत्यादि अनेक विकल्प कर्मोंमें उत्पन्न होते हैं. परंतु प्रथम तो चारों वेदोंमें, और अन्य मतोंके शास्त्रोंमें, कर्मोंका यथार्थ स्वरूपही कथन नही करा है. जेकर कर्मोंका स्वरूप लिखा भी है, तो भी, जीवहिंसा करनी, मृषा बोलना, चोरी करनी, परस्त्रीगमन करना, क्रोध, लोभ, मद, माया, छल, दंभादि करनेका नाम कर्म लिखा है; परंतु येह तो कर्मोंके उत्पन्न करनेकी क्रिया है, नतु कर्म. जैसें घट उत्पन्न करनेमें कुलालका चक्रभ्रमणादिव्यापाररूप क्रिया है, तिस क्रियासें घट उत्पन्न होता है; तैसेंही, जीवहिंसादि पूर्वोक्त सर्व कर्मोंके उत्पन्न करनेकी क्रिया है, परंतु कर्म नही. तथा कितनेक कहते हैं, प्रारब्ध कर्म १, संचितकर्म २, और क्रियमाण कर्म ३, ये तीनप्रकारके कर्म है. परंतु कर्म वस्तु क्या है? जब संचित कर्म है, वो संचयिक वस्तु क्या है? जो फल देनेमें उन्मुख होवे, सो कर्म क्या वस्तु है? जे कर्म जीवकेसाथ प्रवाहसें अनादि संबंधवाले हैं, वे क्या वस्तु है? हे ! प्रियवाचकवर्गो ! किसीमतमें भी यथार्थ कर्मोंका स्वरूप नही लिखा है, इसवास्तेही अर्हन् भगवान्के विना सर्वमतोंवाले यथार्थ कर्मस्वरूपके न जाननेसें सर्वज्ञ नही थे.

पूर्वपक्षः—अर्हन् भगवान्ने कर्मोंका कैसा स्वरूप कथन करा है ?

उत्तरपक्षः—विस्तार देखना होवे तब तो, षट्कर्मग्रंथ, पंचसंग्रह, कर्मप्रकृतिआदि शास्त्रोंकों गुरुगम्यतासें पठन करो; और संक्षेपसें देखना होवे तो, हमारी रची जैनप्रश्नोत्तरावलिसें कर्मोंका किंचिन्मात्रस्वरूप देख लेना.

अब हम ऊपर सप्तम स्तंभमें लिखी वेदकी श्रुतियोंकीही किंचित् परीक्षा करते हैं. तीसरी श्रुतिमें लिखा है कि, सृष्टिसें पहिले प्रलयदशामें भूत भौतिक सर्व जगत् अज्ञानरूप तमःकरके आच्छादित था, अर्थात् आत्मतत्त्वके आवरक होनेसें माया, अपरसंज्ञाभावरूप अज्ञान इहां तमः

तो 'नासदासीन्नोसीत्' इत्यादि यह श्रुति मिथ्या ठहरेगी, और ब्रह्म मुक्तरूप न ठहरेगी और तीन भाग ब्रह्मके सदा निर्लेप मुक्तरूप, और चोथा भाग मायावान् यह भी सिद्ध नही होवेगा क्योंकि, एक भाग शरीरवाला, और तीन भाग शरीररहित, यह युक्तिसें विरुद्ध है; इससें तो ब्रह्मके दो भाग हो गए, तब संपूर्ण ब्रह्म मुक्तरूप सिद्ध न हुआ. और अद्वैतमतकी तो, ऐसी जड कटेगी कि, फेर कदापिं न उत्पन्न होवेगी. इसवास्ते अनादिशरीरसंबंधवाला ब्रह्म मानना यह प्रथम पक्ष मिथ्या है.

अथ दूसरा पक्ष सादिशरीसंबंधवाला ब्रह्म है, ऐसा मानोंगे, तब तो शरीर भी ब्रह्मने इच्छा पूर्वकही रचा सिद्ध होवेगा, इच्छा मनका धर्म है, और मन शरीरविना नही होता है, इसवास्ते इस शरीरसें पहिले अन्यशरीर अवश्य होना चाहिए; तिससें आगे अन्य, इसतरें माननेसें अनवस्थादूषण होवे है, इसवास्ते दूसरा पक्ष भी मानना मिथ्या है. इस कथनसें यह सिद्ध हुआ कि, प्रलयदशामें ब्रह्मके शरीर नही है, और शरीरविना मन नही हो सक्ता है, और मनविना इच्छा नही होती है और इच्छाके विना ब्रह्म कदापि सृष्टि नही रच सक्ता है.

पूर्वपक्षः—सृष्टि और प्रलय ये दोनों करनेका ईश्वरका स्वभावही है इसवास्ते सृष्टि रचता है और प्रलय करता है.

उत्तरपक्षः—एकवस्तुमें अन्योन्य विरुद्ध, दो स्वभाव नही रह सक्ते हैं.

पूर्वपक्षः—हम तो परस्पर विरुद्धस्वभाव मानते हैं.

उत्तरपक्षः—ये दोनों स्वभाव नित्य है कि, अनित्य है? ईश्वरसें भिन्न है कि, अभिन्न है? रूपी है कि, अरूपी है? जड है कि, चेतन है? जेकर ये दोनों स्वभाव नित्य है, तब तो ये दोनों स्वभाव युगपत् सदा प्रवृत्त होवेंगे, तब तो ईश्वर सदाही सृष्टि रचेगा, और सदाही प्रलय करेगा; तब तो, न सृष्टि होवेगी; और न प्रलय होवेगी. जैसें एक पुरुष दीपक जलाया चाहता है, तब दुसरा पुरुष जलानेके समयमेंही बुजाया करता है, तब तो दीपक न जलेगा, और न बुजेगा. इसीतरें ईश्वरका सृष्टि रचनेका स्वभाव तो सृष्टि रचेहीगा, और ईश्वरका प्रलय करनेका

ह्ममें लय होके परमानंदकों भोगता है, जब सुषुप्तिमें यह दशा है तो, प्रलयरूप महासुषुप्तिमें तो परमानंदका क्या कहना है ? इससें तो जब ईश्वर सृष्टि रचता है, तब जीवोंके परमानंदका नाश करता है, यह सिद्ध होता है. तो फेर, ईश्वर सृष्टि क्यों रचता है ?

पूर्वपक्षः—जेकर ईश्वर सृष्टि रचके जीवोंकों कर्मफल न भुक्तावे, तब तो ईश्वरका न्यायशीलता गुण रहे नही, जगत्में न्यायाधीश होके जो बुरेकों सजा न देवे सो न्यायाधीश नही हैं.

उत्तरपक्षः—वेदमतमें तो एक ब्रह्मके विना अन्य कोइ जीवात्मा हैही नही तो, क्या ब्रह्म आपही न्यायाधशि वनता है ? और आपही अशुभ कर्म करके सजाका पात्र होके दंड लेता है ? यह तो ऐसा हुआ, जैसे किसीनें आपही पापकर्म करे, और तिनके फल भोगनेवास्ते अपने हाथसेंही अपने नाक कान हाथ पग मस्तकादि छेदन कर डाले; इससें तो, ब्रह्म प्रथम पाप न करता, तथा ईश्वर अन्य जीवोंकों नवीन पाप न करने देता, तब तो सदाकाल प्रलयदशाही रहती. न तो सृष्टि रचनी पडती, और न सृष्टिका संहार करना पडता, और न जीवोंकों कर्मका फल देना पडता, सदाही परमानंद भोगता रहता. यह तो ब्रह्मने सृष्टि क्या रची, आपही अपने पगमें कुहाडा मारा ! ऐसे अज्ञानीकों कौन बुद्धिमान् ब्रह्मेश्वर मान सक्ता है ? इसवास्ते जो प्रलयका स्वरूप श्रुतियोंने कहा है, सो केवल प्रलापमात्र है; युक्तिविकल होनेसे. ॥ इति प्रलयसमीक्षा ॥ चौथी श्रुतिमें लिखा है कि, परमात्माके मनमें सृष्टि रचनेकी इच्छा उत्पन्न भइ, यह कहना भी मिथ्या है, क्योंकि, शरीरके विना कदापि मन नही होता है, शरीरविना मन है ऐसा सिद्ध करनेवाला प्रत्यक्ष, वा अनुमानादिप्रमाण नही है. परंतु शरीरविना मन नही, ऐसा तो प्रत्यक्ष अनुमानसें सिद्ध हो सक्ता है. और मनविना इच्छा कदापि सिद्ध नही इसवास्ते प्रलयदशामें भी ब्रह्मके शरीर होना चाहिए; जेकर प्रलयदशामें भी ब्रह्मके शरीर मानोंगे, तब तो यह प्रश्न उत्पन्न होवेगा कि, शरीर ब्रह्मके साथ अनादिसें संबंधवाला है कि, आदिसंबंधवाला है? जेकर अनादि संबंधवाला है, तब

यह जगत् रचा है, और धारण भी परमात्माही करता है.। और यजुर्वेदमें यह उत्तर दिया है कि, और्णनाभिकीतरें जगत् रचता है.। ऋग्वेदसें यह अधिक कहा है, और्णनाभिके दृष्टांतकों तो हम ऊपर खंडन कर आए हैं, और शेष उत्तर तो, श्रुति कहनेवालेकी प्रिय स्त्रीही मानेगी परंतु प्रेक्षावान् तो कोइ भी नही मानेगा. क्योंकि, जबतांइ परमात्मा सर्व सामर्थ्यवान् उपादानादि सामग्रीविना अपनी महिमासें जगत् रचनेवाला सिद्ध न होवेगा, तबतांइ यह जगत् विना उपादान निमित्तकारणोंसे आकाशादि अपेक्षाकारणके विनाही ईश्वरका रचा हुआ है, ऐसा सिद्ध नही होवेगा. और जबतांइ यह जगत् विना उपादान निमित्तकारणोंसें आकाशादि अपेक्षाकारणके विनाही ईश्वरका रचा हुआ सिद्ध नही होवेगा, तबतांइ परमात्मा सर्वसामर्थ्यवान् उपादानादिसामग्रीविना अपनी महिमासें जगत् रचनेवाला सिद्ध नही होवेगा. यह इतरेतराश्रय दूषण है; इसवास्ते ऊपर लिखी श्रुतियोंमें जो सृष्टिबावत कथन है, सो भी प्रलापमात्रही है.

इसवास्तेही अक्षपाद, गौतममुनिनें वेदोंकों अप्रमाणिकपणा मानकेही न्यायसूत्रोंमें, और कणादमुनिनें वैशेषिकसूत्रोंमें आकाशको नित्य, और सर्वव्यापक माना. और दिशा, आत्मा, मन, काल और पृथिवीआदि भूतोंके परमाणुयोंकों नित्य माने. इत्यादि जो वेद विरुद्ध प्रक्रिया रची, सो वेदकी प्रक्रियाकों अप्रमाणिक मानकेही रची सिद्ध होती है. और जैमिनीनें अपने मीमांसाशास्त्रमें जगत्को अनादि माना है, ईश्वर सर्वज्ञ सृष्टिका कर्त्ता मान्याही नही है. वो भी तो, श्रीव्यासजीकाही शिष्य था, और मुख्य सामवेदी यही था; तिसने तो, ईश्वरविषयक मंडल, अष्टक, अध्याय, अनुवाक, सूक्त, सर्व नवीनप्रक्षेपरूप मानके प्रमाणिक नही माने हैं. इसवास्ते वेदोक्त सृष्टि रचना अज्ञानीयोंकी कल्पना करी हुइ है, इसवास्ते वेदका कथन सत्य नही है.

अथ ऋग्वेद अष्टक ८ अध्याय ४ की श्रुतियोंमें जो सृष्टिक्रम लिखा है, तिसकी भी यत्किंचित् समीक्षा लिखते हैं. चौथे अंककी श्रुतिसें लिखा

पूर्व पक्षः—जैनमतके सर्व शास्त्र प्राकृत भाषामें रचे हैं, इस वास्ते प्रमाणिक नही हैं.

उत्तर पक्षः—यह कहना अयुक्त है. किसी भी भाषामें सच्चा पुस्तक लिखा हूआ होवे, सो सर्व सुज्ञ जनोंकों प्रमाण है. और प्राकृत भाषाकी बावत तो वेदांग शिक्षामें ऐसें लिखा है.

"त्रिषष्टिः चतुःषष्टिर्वा वर्णाः शंभुमते मताः ॥
प्राकृते संस्कृते चापि स्वयं प्रोक्ताः स्वयंभुवा ॥ ३ ॥"

भावार्थ यह है कि, त्रेसठ (६३) वा चौसठ (६४) वर्ण शंभुके मतमें प्रमाण हैं. प्राकृतमें और संस्कृतमें आप स्वयंभूने कथन करे हैं. और पाणिनी वररुचि प्रमुखोंने प्राकृतके व्याकरण रचे हैं. जेकर प्राकृत भाषा प्रमाणिक न होवे तो व्याकरण क्यों रचे जाते?

हंटर साहिब अपने रचे संक्षिप्त हिंदुस्थानके इतिहासमें लिखते हैं कि, हिंदुस्थानकी मूल भाषा पुराणी प्राकृत है.

रुद्रटप्रणीत काव्यालंकारकी टिप्पणी करनेवाले लिखते हैं कि, प्राकृत भाषा प्रथम थी. तिस्सेंही संस्कृत बनाई गई है. और संस्कृत यह जो शब्द है, सो भी यही ज्ञापन करता है कि, असंस्कृत शब्दोंकों जब समारके रचे तिसका नाम संस्कृत है; सो पाठ लिखते हैं. ॥

प्राकृतसंस्कृतमागधपिशाचभाषाश्च शूरसेनी च ।
षष्ठोत्र भूरि भेदो देशविशेषादपभ्रंशः ॥ १२ ॥

प्राकृतेति । सकल जगज्जंतूनां व्याकरणादिभिरनाहितसंस्कारः सहजो वचनव्यापारः प्रकृतिः। तत्र भवं सैव वा प्राकृतम्। 'आरिसवयणे सिद्धं देवाणं अद्धमागहावाणी' इत्यादि वचनाद्वा प्राक् पूर्वं कृतं प्राकृतं बालमहिलादिसुबोधं सकलभाषानिबंधनभूतं वचनमुच्यते । मेघनिर्मुक्तजलमिवैकस्वरूपं तदेव च देशविशेषात् संस्कारकरणाच्च समासादितविशेषं सत् संस्कृताद्युत्तरभेदानाप्नोति । अत एव शास्त्रकृता प्राकृतमादौनिर्दिष्टं तदनुसंस्कृतादीनि । पाणिन्यादिव्याकरणोदितशब्दलक्षणेन संस्करणात् संस्कृतमुच्यते । इत्यादि.

ऐसाही कथन यजुर्वेदमें है. प्रजापतिके मनसें चंद्रमा उत्पन्न हुआ, नेत्रोंसें सूर्य उत्पन्न भया, मुखसें इंद्र और अग्निदेवते उत्पन्न भए, प्राणोंसें वायु उत्पन्न भया, प्रजापतिकी नाभिसें आकाश उत्पन्न भया, शिरसें स्वर्ग उत्पन्न भया, पगोंसें भूमि उत्पन्न भई, और कानोंसें दिशायां उत्पन्न भई, यह ऋग्वेदके कथनानुसार सृष्टि होनेका क्रम कहा.

अब पूर्वोक्त सृष्टिक्रमकों प्रमाणयुक्तिसें समीक्षापथमें लाते हैं. । प्रथम तो एक निरवयव ब्रह्मके चार अंश कथन करने मिथ्या है, एक अंशने क्या पाप करा? जो अनादि अनंत मायाकरके संयुक्त सृष्टि और प्रलय करता है, और आपही संसारी होके नानाप्रकारके जरा मृत्यु रोग शोक क्षुधा तृषा नरक तिर्यगादिरूपोंसें महासंकट दुःख भोग रहा है; और तीन अंश सदा मुक्त ब्रह्मानंदमें मग्न हो रहे हैं, क्या एक ब्रह्ममें मुक्त और संसार एककालमें संभव हो सक्के है? आपही सृष्टि रचके आत्मघाती है, उपदेश किसकों करता है? और वेद किसवास्ते रचता है? क्योंकि, तिसकी तो सदाही दुर्दशा रहती है. और व्यास शंकरस्वामीप्रमुख सर्व वेदांती जब ब्रह्मज्ञानी होके ब्रह्ममें लीन होते हैं, तब तीन अंशोंमें लीन होते हैं कि, एक चौथे अंशमें? जेकर तीन अंशमें लीन होते हैं, तब तो यह जो श्रुतिमें लिखा है कि, त्र्यंश तो सदाही संसारकी मायासें अलग रहते हैं; तब तो वेदांतीयोंके मिलनेसें तीन अंशोंमें निर्मल ब्रह्म अधिक हो जावेगा, और चौथा मायावाला अंश न्यून हो जावेगा. जब दोनों हिस्से वधे घटेंगे, तब तो ब्रह्ममें अनित्यतारूप दूषण उत्पन्न होवेगा. जेकर मायावान् चौथे हिस्सेरूप ब्रह्ममें लीन होते हैं, तब तो गर्दभके स्नानतुल्य वेदांतीयोंकी मुक्ति सिद्ध होवेगी. जैसें किसीनें गर्दभकों स्नान करवाया, तदपीछे सो गर्दभ कुरडीकी राखमें जाके फेर लौटने लगा, फेर वैसाही मलीन हो गया; ऐसेंही वेदांतियोंने प्रथम तो ब्रह्मविद्यारूप जलसें स्नान करके प्रपंच धोयके निर्मलता प्राप्त करी, फेर मायावाले ब्रह्ममें लीन होनेसें फेर वैसेही मायाप्रपंचवाले बन गए.

पूर्वपक्षः—शुद्ध ब्रह्ममेंही लीन होते हैं, नतु मायावान्में.

स्वभाव तिस समयमेंही प्रलय करेगा, तब तो सृष्टि, और प्रलय, ये दोंनोंही होवेंगी; इसवास्ते प्रथम विकल्प मिथ्या है.

जेकर ये दोनों स्वभाव अनित्य है तो, क्या ब्रह्मेश्वरसें भिन्न है कि, अभिन्न है? जेकर भिन्न है तो, ईश्वरके ये दोनों स्वभाव नही है; ईश्वरसें भिन्न होनेसें. जेकर अनित्य, और अभिन्न है, तव तो जैसें स्वभाव उत्पत्तिविनाशवाले है, तैसें ईश्वर भी उत्पत्तिविनाशवाला मानना चाहिए; स्वभावोंसें अभिन्न होनेसें. परं ऐसें मानते नही है, इसवास्ते यह पक्ष भी मिथ्या है.

जेकर स्वभाव रूपी है, तब तो ईश्वर भी रूपीहि होना चाहिए; क्योंकि, स्वभाव वस्तुसें भिन्न नही होता है. तव तो ईश्वरकों रूपी होनेसें जडताकी आपत्ति होवेगी, इसवास्ते यह भी पक्ष मिथ्या है. जेकर दोनो स्वभाव अरूपी है तब तो किसी भी वस्तुके कर्त्ता नही हो सक्के है, अरूपित्व होनेसें; आकाशवत्. इसवास्ते यह भी पक्ष मानना मिथ्या है.

जड पक्ष, रूपी पक्षकीतरें खंडन करना. और चेतन पक्ष, नित्यानित्य, और भेदाभेद पक्षमें अवतारके उपरकीतरें खंडन जान लेना. इसवास्ते स्वभाव पक्ष मानना केवल अज्ञानविजृंभित है; और श्रुतियोंमें जो सृष्टि रचनेकी इच्छा ईश्वरमें मानीहै, सो भी अज्ञानविजृंभित प्रलापमात्रही है; परीक्षाऽक्षमत्वात्. ॥ इतिसृष्टिरचनायामीश्वरेच्छाखंडनम् ॥

छठी श्रुतिमें पूर्वपक्षकी तर्फसें प्रश्न करे है कि, कौन पुरुष परमार्थसें जानता है, और कौन कह सक्ता है कि, यह दिखलाइ देती नाना प्रकारकी सृष्टि किस उपादानकारणसें, और किस निमित्तकारणसें उत्पन्न भइ है? मनुष्य नही जानते, और नही कह सक्के हैं; परंतु देवते सर्वज्ञ हैं, वे तो जानते होवेंगे, और कह भी सक्के होवेंगे? इस शंकाके दूर करनेवास्ते कहते हैं, अर्वागिति। इस भौतिक सृष्टिके उत्पन्न करे पीछें सर्व देवते उत्पन्न हुए हैं; इसवास्ते देवते भी नही जान सक्के, और नही कह सक्के हैं. शुक्लयजुर्वेदके १७ अध्यायकी १८।१९।२०। श्रुतियोंमें भी पूर्वपक्षकी तर्फसें प्रश्न पूछे हैं। परंतु ऋगवेदमें तो यह उत्तर दिया है कि, परमात्माने अपनी सामर्थ्यसें

मक कोइ पदार्थ नही है, वेदकी श्रुतिमें भी ऐसाही लेख है.---*"विज्ञानघन एव एतेभ्यो भूतेभ्यः समुत्थाय तान्येवानुविनश्यति न प्रेत्य संज्ञास्ति--" विज्ञान आत्माही इन दृश्यमान भूतोंसें उत्पन्न हो कर तिनके विनाश होते थके अनु पश्चात् विज्ञानघन भी नाशकों प्राप्त होता है, इसवास्ते प्रेत्य संज्ञा नही है, अर्थात् मरके परलोकमें कोइ जाता नही है, इसवास्ते परलोककी संज्ञा नही है--तथा हम सच कहते हैं कि, न कोइ ईश्वर है, और न कोई उसकी वाणी है, किंतु सब ग्रंथ बुद्धिमानोंने अपनी बुद्धिकी अनुसार रचे हूए हैं---पूर्वाचार्योंने ईश्वरनाम एक कल्पित शब्द मंदबुद्धोंके कानमें इस कारणसें डाला था कि उसके भय और प्रेमसें लोक शुभाचारमें प्रवृत्त और अशुभाचारसें निवृत्त हो कर परस्पर सुख लिया करें, परंतु अब इस शब्दने संसारमें बडाभारी अनर्थ कर छोडा है; इत्यादि---यदि पूर्वाचार्यों भेदवादियोंके अनर्थरूप ग्रंथ जगत्में विद्यमान न होते कि, जिनके पढनेसें लोक ईश्वरादिके बोझसें दबाये जाते, और सारा आयु उससें त्राण नही पाते तो, ऐसे (सत्यामृतप्रवाहसदृश) ग्रंथोंका लिखना आवश्यक नही था; इत्यादि परा विद्याका रहस्य लिखा है.॥ इस समयमें निर्मले साधुआदि प्रायः जे पूरेपूरे वेदांति हैं, तिनमेंसें अत्यंत वेदांतके अभ्यास करनेवालोंनें वेदांतका तत्व जानकर पंजाब देशमें रोड़े, और चक्कुकटेके नामसें पंथ निकालके उपर कही पंडित श्रद्धारामजीवाली परा विद्याका लोकोंकों उपदेश करते फिरते हैं.। इससें यह सिद्ध हुआ कि, जे कोइ वेदमतवाले इस ब्रह्मांडका उपादान कारण ब्रह्म मानते हैं, वेही असल पूर्वोक्त नास्तिकमतके बीजभूत है. क्योंकि उपादान कारण अपने कार्यसें भिन्न नही होता है, जैसें मृत्तिका घटसें. इसवास्ते परमाणुयोंके विना भूमिसृजन, और जीवोंके शरीरादिकोंका उत्पन्न होना मानना है, सो मिथ्या है; अंत नास्तिक होनेसें.

देवतायोंने मानस यज्ञ करा तिस मानस यज्ञसें अनेक वस्तुयोंकी कल्पना उत्पत्ति लिखी है, सो भी मिथ्या है; प्रमाणयुक्तिसें बाधित होनेसें.

---

* बृहदारण्यके चतुर्थाध्याये चतुर्थ ब्राह्मणे ॥ १२ ॥

है, जो ब्रह्मका चौथा अंश है, सो मायामें आकर देवतिर्यगादिरूपकरके विविध प्रकारका हुआ थका व्याप्त हुआ. क्या करके? चेतन अचेतन रूपकरके, सोही दिखाते हैं; तिस आदि पुरुषसें विराट्, अर्थात् ब्रह्मांड उत्पन्न भया, तिसमें जीवरूपकरके प्रवेशकरके ब्रह्मांडाभिमानी देवात्मा जीव होता भया, पीछें विराट्सें व्यतिरिक्त देव तिर्यङ् मनुष्यादिरूप होता भया, पीछे देवादि जीवभावसें भूमिको सृजन करता भया, अथ भूमि-सृष्टिके अनंतर तिन जीवोंके शरीर रचता भया, शरीरोंके उत्पन्न हुए थके देवते, उत्तर सृष्टिकी सिद्धिवास्ते बाह्यद्रव्यके अनुत्पन्न होनेसें हविके अंतर असंभव होनेसें पुरुषस्वरूपही मनः करी हविपणे संकल्पकरके पुरुषनामक हविकरके मानस यज्ञका विस्तार करते भए; तिस अवसरमें तिस यज्ञका वसंत ऋतु घृत होता भया, ग्रीष्म ऋतु इध्म होता भया, शरद्तु हवि होता भया, अर्थात् तिसकोंही पुरोडाशाभिध हविकरके कल्पन करते भए; यज्ञका साधनभूत पुरुष तिसकों पशुत्वभावनाकरके यूपमें बांधते हुए, बर्हिषि मानस यज्ञमें प्रोक्षण करता भया, कैसा पुरुष? सर्वसृष्टिसें पहिले उत्पन्न भया, तिस पशुरूप पुरुषकरके देवते पूजते भए, मानस यज्ञ निष्पन्न करते भए. कौन ते देवते? सृष्टिके साधन योग्य प्रजापति-प्रभृति, तिनके अनुकूल ऋषिमंत्रोंके देखनेवाले यजन करते भए, सर्वहुत पुरुषसें अर्थात् मानस यज्ञसें दधिमिश्रित घृत संपादन करा, वायु देव-संबधी लोकमें प्रसिद्ध हरिणादि आरण्य पशुयोंकों उत्पन्न करता भया, ग्राम्य पशु गौआदि तिनकों उत्पन्न करता भया, तिस यज्ञसें ऋच् साम उत्पन्न भए, तिससेंही गायत्र्यादि छंद उत्पन्न भए, तिस यज्ञसेंही यजुर्वेद होता भया, तिससेंही अश्व घोडे गर्दभ खच्चरां उत्पन्न भए, तिस यज्ञसें गौयां बकरीयां भेडें उत्पन्न भई; प्रजापतिके प्राणरूप देवते जब विराट्रूप पुरुषकों उत्पन्न करते भए, तब तिस पुरुषका मुख क्या होता भया? दोनों बाहु क्या होते भए? ऊरु क्या होते भए? पग क्या होते भए? (उत्तर) ब्राह्मणत्व जातिविशिष्टपुरुष मुखसें उत्पन्न हुए, क्षत्रियत्वजातिविशिष्ट पुरुष बाहोंसें उत्पन्न भए, ऊरु—साथलोंसें वैश्य, और पगोंसें शूद्र उत्पन्न भए.

इस कथनसें यही सिद्ध होता है कि, येह सर्व श्रुतियां अज्ञानियोंकी कथन करी हुई हैं. क्योंकि, जे जीव गर्भसें उत्पन्न होते हैं, वे सदा अनादिकालसें अपनी २ मातायोंके गर्भसेंही उत्पन्न होते चले आते हैं; और यही इस जगत्के अनादि होनेमें बडा दृढ प्रमाण है. नही तो, कोइ भी पूर्वोक्त गर्भज जीवोंको विनागर्भके उत्पन्न करके दिखलावे. जब एक गर्भज मनुष्य विनागर्भके उत्पन्न करके दिखलावे, तब तो हम भी मनुष्यादिकोंकी उत्पत्ति गर्भविना मान लेवे; और अनादि संसार मानना छोड देवे. नही तो, अज्ञानीयोंके प्रलापमात्रकों तो, अज्ञानीही मानेंगे, नतु प्रेक्षावान्. ॥

और पुराणमें तो ऐसा लिखा है "एकवर्णमिदं सर्वं पूर्वमासीद्युधिष्ठिर। क्रिया कर्मविभागेन चातुर्वर्ण्यं व्यवस्थितम् ॥१॥ ब्राह्मणो ब्रह्मचर्येण यथा शिल्पेन शिल्पिकः। अन्यथा नाममात्रं स्यादिन्द्रगोपककीटवत्॥२॥"

भाषार्थः—हे युधिष्ठिर! पूर्वकालमें यह सर्व एकही वर्ण था, ब्राह्मणादि भेद नही थे; क्रियाकर्मके विभाग करके चार वर्णकी व्यवस्थिति पीछेसें हुई है. ब्रह्मचर्यके पालनेकरके ब्राह्मण होता है, जैसें शिल्पकरके शिल्पिक है, अन्यथा तो नाममात्रही है, इंद्रगोपक कीडेकीतरें. ॥ यह पुराणका कथन वेदके कथनसें बहुतही अच्छा मालुम देता है; क्योंकि, वेद तो सर्ववस्तुका नास्तिपणाही पुकारे है, जो कि, किसी भी प्रमाणयुक्तिसें सिद्ध नही होता है; परंतु यह पुराणका कथन वैसें नास्तिपणा नही कहता है. जैनमतमें भी वर्णव्यवस्था पीछेसें हुई लिखि है. क्योंकि, श्रीऋषभदेवजीके राज्यसमयसें पहिला इस अवसर्प्पिणीकालमें एकही जाति थी; श्रीऋषभदेवजीके राज्यसमयमें क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, और भरतचक्रवर्तीके राज्यमें ब्राह्मण, येह चार वर्ण, जैसें उत्पन्न हुए, सो कथन जैनतत्त्वादर्श ग्रंथसें देख लेना.

प्रजापतिके मनसें चंद्रमा उत्पन्न हुआ लिखा है, यह भी मिथ्या है. क्योंकि, चंद्रमा जो है, सो पृथिवीमय—पृथिवीकायके उद्योतनामकर्मके उदयवाले जीवोंके शरीरोंका पिंडरूप चंद्रमा देवतायोंके रहनेका विमान

उत्तरपक्षः—तब तो एक २ अंशकी मुक्ति होनेसें संपूर्ण ब्रह्मकी कदापि मुक्ति नही होवेगी, इत्यादि अनेक दूषण होनेसें यह कथन भी मिथ्या है. तथा ब्रह्म जो है, सो ज्ञानस्वरूप है, तिसकों जड विराट्का उपादानकारण मानना यह युक्तिप्रमाणसें विरुद्ध है. क्योंकि, चैतन्यवस्तु कदापि जडका उपादन कारण नही हो सक्ता है ॥ विना परमाणुयोंके भूमिसृजन और शरीर रचे लिखा है, सो भी मिथ्या है. क्योंकि, परमाणुयोंकों नित्य मानना है सो तो अद्वैतमतकी जडकों काटना है, और विनाही परमाणुयोंके जडभूमि और जीवोंके शरीरोंका उपादानकारण ज्ञानस्वरूप ब्रह्म मानना, सो तो त्रिकालमें भी युक्तिप्रमाणसें कदापि सिद्ध नही होवेगा. जेकर युक्तिप्रमाणके विनाही मानोंगे, तब तो प्रेक्षावानोंकी पंक्तिसें बाहिर हो जावोंगे, और चार्वाक नास्तिक मतकी प्रवृत्ति भी वेदसेंही सिद्ध होवेगी. क्योंकि, पंजाब देशमें, फुल्लोरनगरके वासी, पंडित श्रद्धारामजीने सत्यामृतप्रवाह नामक ग्रंथ रचा है, तिसमें इस मतलबका लेख लिखा है—वेदमें दो तरेंकी विद्या कही है, एक अपरा और दूसरी परा, तिनमेंसें संहिता ब्राह्मण उपनिषद प्रमुखमें प्रायः अपरा विद्याही कथन करी है, और परा विद्या प्रायः गुप्तही रक्खी है. मेरेकों परा विद्याकी खबर बहुत दिनोंसें थी, परंतु जगत् व्यवहारीयोंकी शंकासें मैनें प्रकाश नही करी, अब मैं अंतमें परा विद्याका स्वरूप लिखता हूं. यह जो ब्रह्मांड दिखलाइ देता है, यही ब्रह्म है. और श्रुति भी यही बात कहती है—"सर्वं खल्विदं ब्रह्म इत्यादि—" इदं पदकरके यह दृश्यमान जगत्ही ग्रहण करणा, यह जो पंचभौतिक जगत् है, सोही ब्रह्म है, इससें अतिरिक्त अन्य कोइ ब्रह्म नही है, यह ब्रह्मांड अनादि अनंत पंचभूतोंका एक गोलक है, इसकों न किसीने रचा है, और न कोइ इसकी प्रलय करनेवाला है, इस गोलकके अंदरही अनेक पदार्थ उत्पन्न होते हैं, और इसमेंही लय हो जाते हैं; जैसें समुद्रके जलमें अनेकतरंग चक्रबुद्बुद उत्पन्न होते हैं, और जलमेंही लय हो जाते है, न कोइ आता है, और न कोइ जाता है, पांचभौतिक देहसें अन्य जीवना-

इस्से भी यही सिद्ध होता है कि, प्राकृत भाषा प्रथम थी. तिस भाषाको समारके रचना करनेसें वेदोंकी संस्कृत रची गई. और जब वेदोंकी संस्कृतकों पिछली व्याकरणोंसें मांजी, तब शुद्ध संस्कृत उत्पन्न भई. इससें यह सिद्ध हुआ कि, वेदोंकी संस्कृतसें पहिले प्राकृत पुस्तक होने चाहिये.

और गुर्जर देशीय मणिलाल नभुभाइ द्विवेदी अपने रचे सिद्धांतसार ग्रंथमें लिखते हैं कि "इस ठिकाणे भाषाशास्त्रीयोंमें बहुत भारी झगडा चलता है. जब, संस्कृत—सुधरी भाषा—ऐसा नाम पडा, तब किसमेंसें सुधारी यह मालुम करना चाहिये. प्राकृतमेंसें, लोकभाषामेंसें सुधारी; ऐसें कहो तो प्राकृत प्राचीन भाषा होगी, और संस्कृत किसी कालमें सार्वत्रिक बोलाती भाषा न थी ऐसें मानना पडेगा. दूसरा मत ऐसा है, कि प्राकृत भाषा प्राचीन तो खरी, और उसके मिलापवाली वेद भाषामेंसें नवीन भाषा हुई सो संस्कृत; परंतु संस्कृत सार्वत्रिक उपयोगमें नही आती थी ऐसा नही. विद्वानो तथा उच्च वर्गके लोक संस्कृतही बोलते थे, और नीचलोक स्त्रीवर्ग इत्यादि प्राकृत बोलते थे. इस उभय पक्षके अनुयायी बहोत हैं; परंतु ज्यादा ख्याल दूसरे पक्ष तरफ है. स्लेगेल, बन्सन, वील्सन, मुर, गोल्डस्टकर, वेबर, बोप, मेक्समूलर वगैरे किसी भी पाश्चात्य पंडितके भाषा संबंधी लेखमें इस बातका विस्तार मिल जायगा."

ऊपर जो लेख लिखे हैं, सो कितनेही ग्रंथ और अनुमानद्वारा लिखे हैं. अब जैनमतके पुस्तकानुसार जो कथन है सो लिखते हैं. प्राकृत और संस्कृत ये दोनों भाषा अनादि सिद्ध है. तिनमें प्राकृत भाषा तीन तरहकी है. १ समसंस्कृत प्राकृत, २ तज्जा अर्थात् संस्कृत शब्दोंकों प्राकृत शब्दोंका निर्देश करणा. और ३ देशी, अर्थात् प्राकृत संस्कृत व्याकरणोंसें जिसकी सिद्धि न होवे; किंतु अनादिसिद्ध जे शब्द हैं, तिनकों देशी प्राकृत कहते हैं. जैसें श्रीपादलिप्तसूरिविरचित देशीनाममाला और तरंगलोला कथा वगैरे-तथा श्री हेमचंद्रसूरिविरचित देशीनाममाला-परंतु यह नही समझना कि, जो अनेक देशोंके शब्द एकत्र

ब्रह्माजीके मुखसें ब्राह्मण उत्पन्न भए, इत्यादि; यह भी महाअज्ञोंका कथन है. क्योंकि, अनादिकालसें जे जे योनियां जिन जिन जीवोंकी उत्पत्तिकेवास्ते नियत है, ते ते जीव तिन तिन योनियोंसें उत्पन्न होते हैं. । यदि ब्रह्मणादि चार वर्णोंकी मुखादि योनियां थी, तब तो ब्राह्मण सदाही ब्रह्माजीके, वा अपने पिताके मुखसेंही उत्पन्न होने चाहिए; और क्षत्रिय ब्रह्माजीकी, वा अपने पिताकी बाहांसें उत्पन्न होने चाहिए; ऐसेंही वैश्य, और शूद्र भी जानने. और इसतरें उत्पन्न तो नही होते हैं, इसवास्ते यह प्रत्यक्षविरुद्ध वेदका कथन कौन बुद्धिमान् मानेगा ? कोइ भी नही मानेगा. तथा इस कथनमें यह भी शंका उत्पन्न होती है कि, ब्राह्मण, क्षात्रिय, वैश्य, और शूद्र यह तो ब्रह्माजीके पूर्वोक्त अंगोंसें उत्पन्न भए, परंतु ब्राह्मणी, क्षत्रियाणी, बाणियाणी, और शूद्रणी ये चारों कहांसें उत्पन्न हुई हैं? क्योंकि, इनकी उत्पत्ति वास्ते ऋगूवेद यजुर्वेदके मूलपाठमें और भाष्यमें उपलक्षण भी नही लिखा है. क्या ब्राह्मणादिकोंके मूखसें, वा गुदासें ब्राह्मणी आदिकोंकी उत्पत्ति माननी चाहिए? वा जिन स्थानोंसें ब्राह्मणादि चारोंकी उत्पत्ति हुई, वेही ब्राम्हणी आदि चारोंके उत्पत्तिस्थान मानने चाहिए? यदि ऐसें मानोंगे, तब तो प्रथम पक्षमें तो यावत् स्त्रीजातित्वावछिन्न सर्व पुत्रीरूप होंगी; और दुसरे पक्षमें भगिनी (बहिन) रूप होंगी; तो क्या पुत्री, वा बहिनसें पाणिग्रहणादि क्रिया करनेसें पूर्वोक्त माननेवालेकों लज्जा न आवेगी? स्यात्, ना भी आवे; क्योंकि, स्त्री, पुत्री, बहिन, माता, पति, पुत्र, भ्राता, पितादिं, वास्तविकमें हैही नही; सर्व एक ब्रह्म होनेसें. वाह जी वाह ! क्या सुंदर श्रद्धा निकाली है, भला शोचो तो सही, इससें अधिक नास्तिकपणा क्या है ?

तथा तुमारे माननेमुजब न्यायकी वात तो यह है कि, जैसें ब्रह्माजीके चारों अंगोंसें ब्राह्मणादि चारोंकी उत्पत्ति लिखी है; ऐसेंही ब्रह्माजीकी स्त्रीके मुखसें ब्राह्मणी, बाहांसें क्षत्रियाणी, इत्यादि मानना चाहिए, परंतु इसमें भी फेर टंटाही रहेगा कि, ब्रह्माजीकी स्त्री कहांसें उत्पन्न भई ?

नादि अनंत सर्वव्यापक मानते हैं, तो, क्या गौतमादिकोंने ये पूर्वोक्त वेदकी श्रुतियां पठन नही करी होवेंगी? करी तो होवेंगी, परंतु युक्तिप्रमाणसें विरुद्ध मानके नवीन प्रक्रिया गौतम कणाद जैमिनीने रची मालुम होती है. प्रजापतिके कानोंसें दिशा उत्पन्न होती भई, यह भी कथन अज्ञताका है. क्योंकि, दिशा तो आकाशकाही पूर्वादि कल्पित भागविशेषका नाम है. जब नाभिसें आकाश उत्पन्न भया तो, कानोंसें दिशा क्योंकर उत्पन्न भई लिखा है? और अरूपी दिशायोंका कोई भी उपादानकारण नही है, इसवास्ते यह भी कथन मिथ्या है. इतिसमीक्षा ॥

इत्याचार्यश्रीमद्विजयानन्दसूरिविरचिते तत्त्वनिर्णयप्रासादे
ऋगादिसृष्ट्यनुक्रमसमीक्षावर्णनोनामाष्टमः स्तम्भः॥ ८ ॥

॥ अथ नवमस्तम्भारम्भः ॥

अष्टमस्तंभमें ऋगादिसृष्टिक्रमकी समीक्षा करी, अथ नवमस्तंभमें वेदके कथनकी परस्पर विरुद्धता संक्षेपरूपसें दिखाते हैं.

तमिद्गर्भम्प्रथमं दध्र आपो यत्र देवाः समगच्छन्त विश्वे॥
अजस्य नाभावध्येकमर्पितं यस्मिन् विश्वानि भुवनानि तस्थुः॥
॥ य० वा० सं० अ० १७ मं० ३० ॥

भाषार्थः–(अ) * (तमिद्गर्भं प्रथमं दध्र आपः) प्रथमं अर्थात् संपूर्णसृष्टिकी आदिमें (आपः-जलानि) जल जो हैं सो वह (तमित्गर्भं) तिस प्राप्त गर्भकों (दध्रे) धारण करते भये कि (यत्र देवाः समगच्छन्त विश्वे) जिस संपूर्ण विश्वके कारणभूत गर्भरूप ब्रह्माजीमें संपूर्ण देवता उत्पन्न हो कर व्याप्त हो रहे हैं सो (अजस्य नाभावध्येकमर्पितं) जन्मादिसें जो रहित सो कहावे अज ऐसा जो परमात्मा तिसकी नाभीमें अर्पित जो कमल तिसमें संपूर्ण विश्वका

---

* जहां (अ) ऐसा संकेत होवे वहां ब्रह्मकुशलोदासीकृतऋगादिभाष्यभूमिकेंदु नाम पुस्तकका लिखित भाषार्थ जानना ॥

है. और मन जो है, सो ज्ञानरूप अरूपि चेतन है. ज्ञानांश होनेसें. तिस भावमनसें पृथिवीमय रूपी पुद्गलरूप चंद्रमा कैसें उत्पन्न होवे? तथा नेत्रोंसें सूर्य उत्पन्न हुआ लिखा है, सो भी प्रमाण विरुद्ध है. क्योंकि सूर्य भी पृथिवीमय आतपनामकर्मके उदयवाले पृथिवीके जीवोंके शरीरोंका पिंडरूप देवतायोंके रहनेका विमान है. ये दोनो प्रवाहकी अपेक्षा अनादि अनंत है. नवीन २ जीव तैसे शरीवारले समय २ में असंख्य उत्पन्न होते हैं: और समय २ में असंख्य जीव पृथिवीके मृत्युकों प्राप्त होते हैं; परंतु चंद्रमा सूर्य वैसेके वैसेंही रहते हैं, दीपशिखावत्. जैसें दीपशिखामें नवीन २ अग्निके जीव उत्पन्न होते हैं, और अगले २ मृत्युको प्राप्त होते हैं. विशेष इतनाही है कि, चंद्रमासूर्यका प्रवाह अनादि अनंत है, और दीपकका प्रवाह सादि सांत है. ऐसे चंद्रमासूर्यको ब्रह्माजीके मन और नेत्रोंसें उत्पन्न हुए मानना, यह भी अज्ञानविजृंभितही है.

मुखसें इंद्र और अग्नि देवते उत्पन्न हुए, यह भी प्रमाणयुक्तिबाधित है. क्योंकि, इंद्रकी उत्पत्ति तो स्वर्गमें देवशय्यासें होती है, और अग्नि इंधनसें उत्पन्न होता है. एक और भी बात है कि, यदि ब्रह्माजीके मुखसें इंद्र उत्पन्न हुआ, तब तो ब्राह्मण और इंद्र इन दोनोंकी एक योनि भइ, तब तो जैसें इंद्र अमर अजर है, ऐसे ब्राह्मण भी होने चाहिये. और जैसें ब्राह्मण याचक हे, ऐसें इंद्रको भी भिक्षा मांगनी चाहिये !!!

प्रजापतिके प्राणोंसें वायु उत्पन्न हुआ, और नाभिसें आकाश उत्पन्न भया, यह भी कथन अज्ञानविजृंभितही है. क्योंकि, जब आकाशही नही था, तब ब्रह्म कहां रहता था? आकाशनाम शून्य पोलाडका है, जब पोलाड नही थी तो, तिसका प्रतिपक्षी घनरूप कोई वस्तु होना चाहिये; सो वस्तु भी आकाशविना नही रह सक्ता है. और युक्तिप्रमाणसें तो, आकाश अनादि अनंत सर्वव्यापक है. जो कुछ पदार्थ है, सो सर्व इसके अंदर है. और गौतम, कणाद, जैमिनी, जैन, ये सर्व आकाशको नित्य अ-

(क)‡(आपः) पाणी–जल (प्रथमं) पहिले (तमित्) तमेव–तिसही (गर्भं) गर्भकों (दध्रे) दधिरे–धारण करते भए (यत्र) जिस कारण-भूत गर्भमें (विश्वे) सर्वे (देवाः) देवते (समगछन्त) संगताः संभूय वर्तंते– एकत्र हो कर वर्तते हैं. अब तिस गर्भका अधार कहते हैं. (अजस्य) जन्मरहित परमेश्वरके (नाभावधि) नाभिस्थानीय स्वरूप-मध्ये (एकं) विभागरहित अनन्यसदृश कुछक बीज गर्भरूपको (अर्पितं) स्थापित किया (यस्मिन्) जिस बीजमें (विश्वानि) सर्व (भुवनानि) भूतजात (तस्थु) स्थित हुए. बीज स्थापित करनेमें स्मृतिका भी प्रमाण है —“अपएव ससर्जादौ तासु बीजमथाक्षिपत् तदण्डमभवद्धैमं सूर्यकोटिसमप्रभमिति”॥ सोही सर्वका आश्रय है, परंतु तिसका अन्य कोइ आश्रय नही है. ॥ ३० ॥

[समीक्षा] यह भाष्यकारका कथन भी प्रमाणबाधित, और ऋग्वेद अष्टक ८ के, तथा यजुर्वेद अध्याय ३१ के कथनसें विरुद्ध है. क्योंकि, वहां परमेश्वरकी नाभिमें पाणीनें बीजरूप गर्भ स्थापित किया, इत्यादि वर्णन नही है. बाकी समीक्षाप्रायः (अ) समीक्षावत् जाननी. यहां यह भी कहना योग्य है कि, वेदोंके अर्थ सर्वज्ञ कथित नही है; जिसको जैसें रुचे है, वैसेही अर्थ वह लिख देता है. माधव, महीधर, ब्रह्मकुशलोदासी, दयानंदसरस्वतीवत्। यदि वेदोंके ऊपर सर्वज्ञकथित प्राचीन अर्थ नियमानुसार होते तो, ऐसें कभी न होता. परंतु प्रथम वेदही सर्वज्ञके कथनकरे सिद्ध नही होते हैं तो, अर्थोंका तो क्याही कहंना है? परस्पर विरुद्ध होनेसें. और यही असर्वज्ञकथित वेद होनेमें बडा भारी दृढ प्रमाण है. इसवास्ते सज्जन पुरुषोंको तटस्थ होकर सत्यासत्यका निर्णय करना चाहिये.

ब्रह्म ह ब्राह्मणं पुष्करे ससृजे, स खलु ब्रह्मा सृष्टश्चिंतामापेदे, केनाहमेकाक्षरेण सर्वांश्च कामान्, सर्वांश्च लोकान्, सर्वांश्च देवान्, सर्वांश्च वेदान्, सर्वांश्च यज्ञान्, सर्वांश्च शब्दान्, सर्वांश्च व्युष्टीः, सर्वाणि च

‡ (क)जहां ऐसा संकेत होवे वहां भाष्यकारका अर्थ जाणना.

बीजरूप जो ब्रह्मा सो कैसे हैं कि (यस्मिन् विश्वानि भूवनानि तस्थुः) जिसमें (विश्व) अर्थात् संपूर्ण चतुर्दश संख्याक भुवन स्थित हो रहे हैं.

[समीक्षा] यह श्रुति ऋग्वेदसें विरुद्ध है. क्योंकि, ब्रह्माजीकी उत्पत्तिवास्ते ऋग्वेदमें कमल नही कहा है. ।१। ब्रह्माजीसें पहिले परमात्माका शरीर सिद्ध होता है, विनाशरीरके नाभिमें कमलोत्पत्तिके सिद्ध न होनेसें. और परमाणुयोंके विना शरीर नाभिकमल नही हो सक्ते हैं; इत्यद्वैतहानि. ।२। आकाशविना पाणीरूप गर्भ किस जगे धारण करा? और ब्रह्माजी, और कमल ये दोनों किस स्थानमें थे?।३। इत्यादि अनेक दूषण इस श्रुतिमें हैं. ॥ १ ॥

(ब) † हे मनुष्यो (यत्र) जिस ब्रह्ममें (आपः) कारणमात्र प्राण वा जीव (प्रथमम्) विस्तारयुक्त अनादि (गर्भम्) सब लोकोंकी उत्पत्तिका स्थान प्रकृतिको (दध्रे) धारण करते हुए वा जिसमें (विश्वे) सब (देवाः) दिव्य आत्मा और अंतःकरणयुक्त योगीजन (समगछन्त) प्राप्त होते हैं वा जो (अजस्य) अनुत्पन्न अनादि जीव वा अव्यक्त कारणसमूहके (नाभौ) मध्यमें (अधि) अधिष्ठातृपनसें सबकेउपर विराजमान (एकम्) आपही सिद्ध (अर्पितम्) स्थित (यस्मिन्) जिसमें (विश्वानि) समस्त (भूवनानि) लोकोत्पन्न द्रव्य (तस्थुः) स्थिर होते हैं, तुमलोग (तमित्) उसीकों परमात्मा जानो ॥ ३० ॥

भावार्थः—मनुष्योंको चाहिये कि जो जगत्का आधार योगियोंको प्राप्त होनेयोग्य अंतर्यामी आप अपना आधार सबमें व्याप्त है उसीका सेवन सब लोग करें ॥ ३० ॥

[समीक्षा] वाचकवर्गको मालुम होवे कि, स्वामी दयानंदजीका जो लेख है, सो तो स्वतोहि खंडनरूप है. क्योंकि, पदार्थमें कुछ और लिखा है, और भावार्थमें औरही लिखा है तथा संस्कृतपदार्थमें और, अन्वयमें और, और भावार्थमें औरही लिखा है, तथा संस्कृत प्राकृत दोनोंमें अन्यअन्यही लिखा है, इसवास्ते स्वामीजीका लेख परस्पर विरुद्ध है; अतएव असमीचीन है.

† जहां (ब) ऐसा संकेत होवे वहां स्वामी दयानदसरस्वतीकृत भाषार्थ जानना ॥

और संपूर्ण व्युष्टी अर्थात् समृद्धियें तथा (सर्वाणि च भूतानि स्थावरजंगमान्यन्वभवत्) संपूर्ण जो भूत है स्थावरजंगमादि तिनको अनुभव अर्थात् उत्पन्न करते भये इति ॥

[समीक्षा] यह कथन ऋग्वेद यजुर्वेद दोनोंसें विरुद्ध है. तथा इसमें लिखा है, ब्रह्माजी ब्रह्मचर्य धारण करते भए, ब्रह्माजीने जो ब्रह्मचर्य धारण करा तिससें पहिले क्या ब्रह्माजीके ब्रह्मचर्य नही था ? क्या ब्रह्माजी स्त्रीयोंसे भोग विलास विषय सेवन करते थे ? वा अन्यकोइ कुचेष्टा करते थे ? जिससें ब्रह्माजी ब्रह्मचारी नही थे, जो पीछेसें ब्रह्मचर्य धारण करना पडा. तथा ब्रह्माजीने चिंता करी, पीछे ॐकारको देखा, तिसके देखनेमात्रसेंही जो कुछ रचना था सो सर्व कुछ रच दिया, इत्यादि कथन ऋग्वेद यजुर्वेद इन दोनोंसेंही विरुद्ध है. क्योंकि, पूर्वोक्त वेदोंमें इस कथनका गंध भी नही है; इसवास्ते विरुद्ध है. एतावता युक्तिविरुद्ध मिथ्यारूप होनेसें त्याज्य है. ॥ २ ॥

हिरण्यगर्भःसमवर्त्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत् ।
सदाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ ४ ॥

य० वा० सं० अ० १३ मं० ४ ॥

(अ)-(हिरण्यगर्भः) जो कि मनुस्मृतिमें लिखा है कि (अप एव ससर्जादौ तासु बीज मवासृजत् ॥ तदण्डमभवद्धैमं सहस्रांशुसमप्रभम् । तस्मिन्नण्डे स्वयं ब्रह्मा सर्वलोकपितामहः इति) उसीका मूलभूत यह मंत्र है सो देखिये (हिरण्यगर्भः) हिरण्य जो सुवर्ण तिसके समान वर्ण है जिसका ऐसा जो पूर्वकालमें उत्पन्न हुआ अंड तिसके गर्भमें स्थित जो ब्रह्मा सो कहा जाय हिरण्यगर्भ अर्थात् प्रजापतिः सो वह (अग्रे) अर्थात् जगदुत्पत्तिसें पहिले (समवर्त्तत) भलीप्रकारसें वर्तमान था. और वही (भूतस्य जातः) जातः अर्थात् उत्पन्न होकर संपूर्ण भूतप्राणियोंका (पतिरेक आसीत्) एक आपही (पतिः) अर्थात् पालक होता भया (सदाधार पृथिवीं द्या मुतेमां) सो वही पृथिवी अर्थात् अंतरिक्षलोकको और

भूतानि, स्थावरजंगमान्यनुभवेयमिति, सब्रह्मचर्यमचरत्, स ॐमित्येतदक्षरमपश्यत्, द्विवर्णं, चतुर्मात्रं, सर्वव्यापी, सर्वविभ्वयातयाम, ब्रह्म व्याहृतिं, ब्रह्मदैवतं, तया सर्वांश्च कामान्, सर्वांश्च लोकान्, सर्वांश्च देवान्, सर्वांश्च वेदान्, सर्वांश्च यज्ञान्, सर्वांश्च शब्दान्, सर्वांश्च व्युष्टीः, सर्वाणि च भूतानि, स्थावरजंगमान्यन्वभवत् इति ॥

गोपथ० पू० भा० प्रपा० १ ब्रा० १६ ॥

भाषार्थः-(ब्रह्म ह ब्रह्माणं पुष्करे ससृजे) ह प्रसिद्धार्थमें अव्यय है। ब्रह्म जो है सच्चिदानंद परमात्मा उसने ब्रह्माको (पुष्करे) अर्थात् नाभिकमलमें उत्पन्न किया (स खलु ब्रह्मा सृष्टश्चिन्तामापेदे) सो वह ब्रह्माजी उत्पन्न हो कर यह शोचने लगेकि (केनाहमेकाक्षरेण) मैं किस एक अक्षरकरके (सर्वांश्च कामान्) संपूर्णकामनाओंको (सर्वांश्च लोकान्) संपूर्णपृथिवीआदि लोकोंको और (सर्वांश्च देवान्) संपूर्ण अग्निआदि देवताओंको तथा (सर्वांश्च वेदान्) संपूर्ण ऋगादिवेदोंको और (सर्वांश्च यज्ञान्) संपूर्ण अग्निष्टोमादि यज्ञोंको तथा (सर्वांश्च शब्दान्) संपूर्ण वैदिक और लौकिकादि शब्दोंको और (सर्वांश्च व्युष्टीः) संपूर्ण समृद्धियोंको तथा (सर्वाणि च भूतानि) संपूर्ण जो भूत हैं स्थावरजंगमादि तिनको कैसें (अनुभवेयम्) अनुभव अर्थात् उत्पन्न करूं? ऐसे विचार कर (सब्रह्मचर्यमचरत्) सो ब्रह्मा ब्रह्मचर्यको धारण करता भया अर्थात् ब्रह्माजीने ब्रह्मचर्य धारण किया तिस ब्रह्मचर्यके प्रभावसें (स ॐमित्येतदक्षरमपश्यत्) ब्रह्माजीने ॐम् इस अक्षरका अवलोकन किया कैसा है यह ॐम्कार कि (द्विवर्णं चतुर्मात्रं) स्वर और व्यंजन ये दो प्रकारके अक्षर है जिसमें और अकार उकार मकार तथा अर्द्धबिंदु यह चार मात्रा है जिसमें फिर कैसा है कि सर्वव्यापी और सर्वविभु तथा (अयातयाम) अर्थात् विकाररहित ऐसा ब्रह्मस्वरूप और (ब्रह्मव्याहृतिं) अर्थात् ब्रह्मका नामरूप और (ब्रह्मदैवतं) ब्रह्माही है देवता जिसका ऐसे ॐकारके अवलोकनमात्रसें (सर्वांश्च कामान्) संपूर्ण कामना और संपूर्णलोक तथा संपूर्ण देवता और संपूर्ण वेद तथा संपूर्ण यज्ञ और संपूर्ण शब्द

जिसको प्रजापति कहते हैं, सो (अग्रे) जगदुत्पत्तिसें पहिले (समवर्तत) भलीप्रकारें वर्तमान था? नही था; जगदभावे पाणीअंडादिकोंका भी अभाव होनेसें. तथा सो प्रजापति (जातः) उत्पन्न हो कर (भूतस्य) संपूर्ण भूतप्राणियोंका (एकः) एक आपही (पतिः) पालक (आसीत्) होता भया? नही. जगत्के अभावसें पाणीअंडादिकोंका अभाव सिद्ध होता है, अंडेके अभावसें प्रजापतिका अंडेसें उत्पन्न होना असिद्ध है, 'मूलं नास्ति कुतः शाखेतिवचनात्.' यदि प्रजापतिका उत्पन्न होनाही संभव नही होता है तो, जगत्का पालनपणा कहांसें होवे? असत्रूप होनेसें; शशशृंगवत्. तथा अंडजमे जगत पालनेकी शक्ति भी नही सिद्ध होती है, चटकवत्. ऐसेंही उत्तरोत्तर वितर्क जान लेने। तथा (सः) पूर्वोक्त प्रजापति (पृथिवीं) आकाशको (द्यां) स्वर्गलोकको और (इमां) इस भूमिलोकको (दाधार) धारण करता भया? नही. पालनादिकेअसिद्ध होनेसें (कस्मै देवाय हविषा विधेम) ऐसे पूर्वोक्त प्रजापतिदेवकेलिये हम हविःप्रदान करीए? नही. यथार्थ देवपणा सिद्ध न होनेसें. इत्यादि अनेक कल्पना पूर्वोक्त श्रुतियोंमें हो सक्ती है, और इसीवास्ते वेदके सत्यार्थका निश्चय नही हो सक्ता है. स्वामी दयानंदसरस्वतीने तो कल्पना करनेमें कसर नही रखी है, परंतु सांप्रतकालमें कइ सनातनधर्मी भी मनमाने उलट पालट अर्थ करके छपवा रहे हैं. इससें सिद्ध होता है कि, वेदका सत्यार्थ कोइ नही जानता है. और अर्थोंके निश्चयविना वेद ईश्वरोक्त सत्योपदेशक पुस्तक है, यह भी निश्चय नही हो सक्ता है.

अव पूर्वोक्त हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे इसश्रुतिका जो अर्थ स्वामीदयानंदजीने कल्पन करा है, सो लिख दिखाते हैं.

(व) हे मनुष्यो! जैसे हमलोग जो इस (भूतस्य) उत्पन्न हुए संसारका (जातः) रचने और (पतिः) पालन करनेहारा (एकः) सहायकी अपेक्षासे रहित (हिरण्यगर्भः) सूर्यादि तेजोमय पदार्थोंका आधार (अग्रे) जगत् रचनेके पहिले (समवर्तत) वर्तमान (आसीत्) था (सः) वह (इमां) इस संसारको रचके (उत) और (पृथिवीं) प्रकाशरहित

(द्यां) अर्थात् स्वर्गलोकको तथा (उतइति वितर्के) इमां इस भूमिलोकको (दाधार) त्वजादित्वाद्दीर्घः । धारण करता भया और (पृथिवी) यह अंतरिक्ष (आकाश) का नाम है सो यास्कमुनिप्रणीत निघंटुके अ० १ खं० ३ में ९ नवमा नाम है (कस्मै देवाय हविषा विधेम) कः नाम प्रजापतिका है इससें (कस्मै) अर्थात् प्रजापतिके लिये हम हविको (विधेम) दद्मः-प्रदान करते हैं अथवा तिस हिरण्यगर्भको परित्याग कर हम (कस्मै) किसकेलिये हविः प्रदान करें यह इस प्रकार लौकिक अर्थ कर लेना ॥

[समीक्षा] यह यजुर्वेदका मंत्र, ऋग्वेग यजुर्वेद गोपथब्राह्मणसें विरुद्ध है. क्योंकि, इन पूर्वोक्त तीनों स्थानोंके पूर्वोक्त मंत्रमें ब्रह्माजी अंडेमें उत्पन्न हुए ऐसा नही कहा है, और इस श्रुतिमें ब्रह्माजी अंडेमें उत्पन्न हुए लिखा है, इसवास्ते यह तीनों सर्वज्ञ भगवान्के कथन करे हुए नही सिद्ध होते हैं. और जो इसमे कथन है, सो युक्तिप्रमाणसें विरुद्ध है, इसीवास्ते अपने २ मनःकल्पित अर्थ इसके लोक करते हैं, जैसे कि, पूर्वोक्त अर्थमें ब्रह्मकुशलोदासीने करे है. क्योंकि, पूर्वोक्त अर्थ भाषानुसार नही है. जो लौकिक अर्थरूप भावार्थ उदासीजीने निकाला है, सो भाष्यकारको न पाया. शोक ! ! ऐसे विरुद्ध शास्त्रोंको भी लोक परमेश्वरकेही कथन किये मानते है; यदि जिसने जो अर्थ किया सोही खरा (सर्वज्ञोक्त प्राचीन अर्थोंके न होनेसें, और यदि है तो, बताने चाहिए. क्योंकि, सांप्रत कालमें जो झगडे हो रहे हैं, प्राचीन अर्थोंके न होनेसेंही हो रहे हैं. यदि कहोंगे, प्राचीन अर्थ थे तो सही, परंतु इस समय है नही. तो सिद्ध हुआ वेद भी नही है. किसीने वेदका नाम रखके पुस्तक जगत्में प्रसिद्ध किया है, अर्थवत्. यदि वेदके पुस्तक हैं तो, उसके अर्थ तुम नही जान सक्ते हो. जब अर्थही नही जान सक्ते हो तो, तुमको कैसें निश्चय हुआ कि यह ईश्वरोक्त है?) मानोंगे तो, यह अर्थ भी तुमकों मानना पडेगा. कल्पनाद्वारा अर्थ सिद्ध होनेसें--प्राचीन मुनिप्रणीत अर्थोंके न होनेसें-(उत इति वितर्के) (हिरण्यगर्भः) जो अंडेसें उत्पन्न हुआ, और

आया सो मान लिया. अपरंच स्वामी दयानंदजीने अपने मनःकल्पित मतको दृढ करनेकेलिये अर्थ तो उलटे लिये, परंतु शोचा नही कि यह अर्थ हमारे इष्टको बाधक है कि साधक? क्योंकि, दयानंदजीकी प्रतिज्ञा है कि, वेद ईश्वरोक्त है, तो, अब शोचना चाहिये कि, यदि वेद सत्य २ ईश्वरोक्तही है तो, जो दयानंदजीने श्रुतिका अर्थ लिखा है कि "हे मनुष्यो! जैसें हम सेवामें तत्पर हैं, वैसें तुम लोग भी इस परमात्माका सेवन करो." क्या दयानंदजीके ईश्वरसें भी कोइ बडा परमात्मा है? जिसकी सेवामें वेदवक्ता ईश्वर भी तत्पर है, और लोगोंको उपदेश करता है. तथा वेदके कथन करनेवाले ईश्वर भी बहोत सिद्ध होते हैं (विधेम) हम तत्पर हैं, ऐसें बहुवचन अंगीकार करनेसें. यदि कहो कि, वेद प्राप्त करनेवाले ऋषियोंका यह कहना है कि, जैसें हम परमात्माकी सेवामें तत्पर हैं, वैसें तुम लोग भी परमात्माका सेवन करो. तब तो सिद्ध हुआ कि, वेद ईश्वरोक्त नही, किंतु ऋषिप्रणित है. अपरंच ऋषियोंने पूर्वोक्त वर्णन किया कि, जो परमात्मा सृष्टिका कर्त्ता, धर्त्ता, और पालक है जो सृष्टिसें पहिले एक सहायकी अपेक्षारहित था इत्यादि; तो क्या ऋषियोंने यह सर्व व्यवस्था जान लीनी? यदि जान लीनी तो, वे ऋषि सर्वज्ञ हुए; यदि वे सर्वज्ञ हुए तो, फेर दयानंदजीका जो मानना है कि, ईश्वरव्यतिरिक्त कोइ भी जीव सर्वज्ञ नही हो सक्ता है, सो कैसें सत्य होगा? और यदि नही जान लीनी तो, विना जाने तिन ऋषियोंने पूर्वोक्त वर्णन कैसें करा?

तथा वेदमें, सृष्टिकी उत्पत्तिका वर्णन, सृष्टिकी उत्पत्ति करनेवालेका वर्णन, जिन ऋषियोंको वेदज्ञान प्राप्त भया, लोकोंको उपदेशादि वर्णन हैं, तो, इसमें सिद्ध हुआ कि, वेद सृष्ट्यादिके अनंतरही बने हैं. क्योंकि, स्वामी दयानंदजी सत्यार्थप्रकाशके सप्तम समुल्लासमें लिखते हैं कि— "इतिहास जिसका हो उसके जन्मके पश्चात् लिखा जाता है वह ग्रंथ भी उसके जन्मे पश्चात् होता है—इत्यादि"॥ यदि ऐसें हुआ तो, वेदोंका अनादिपणा ऐसा हुआ, जैसा कि वंध्यास्त्रीके पुत्रका विवाह होना.

और (द्यां) प्रकाशसहित सूर्यादिलोकोंको (दाधार) धारण करता हुआ उस (कस्मै) सुखरूप प्रजा पालनेवाले (देवाय) प्रकाशमान परमात्माकी (हविषा) आत्मादिसामग्रीसें (विधेम) सेवामें तत्पर हैं वैसें तुम लोग भी इस परमात्माका सेवन करो ॥ ४ ॥–१–

भावार्थः—हे मनुष्यो! तुमको योग्य है कि इस प्रसिद्ध सृष्टिके रचनेसें प्रथम परमेश्वरही विद्यमान था, जीव गाढनिद्रा-सुषुप्तिमें लीन थे, जगत्का कारण अत्यंत सूक्ष्मावस्थामें आकाशकेसमान एक रस स्थिर था, जिसने सब जगत्को रचके धारण किया और अंत्यसमयमें प्रलय करता है, उसी परमात्माको उपासनाके योग्य मानो ॥ ४ ॥–२–

तथा सत्यार्थप्रकाशसप्तमसमुल्लासे—हे मनुष्यो! जो सृष्टिके पूर्व सब सूर्यादि तेजवाले लोकोंका उत्पत्तिस्थान आधार और जो कुछ उत्पन्न है, हुआ, था, और होगा उसका स्वामी था, है, और होगा; वह पृथिवीसें लेके सूर्यलोकपर्य्यंत सृष्टिको बनाके धारण कर रहा है, उस सुखस्वरूप परमात्माहीकी भक्ति जैसें हम करें वैसें तुम लोग भी करो ॥ १ ॥–३–

तथाचाष्टमसमुल्लासेपि–हे मनुष्यो! जो सब सूर्यादि तेजस्वी पदार्थोंका आधार और जो यह जगत् हुआ है, और होगा उसका एक अद्वितीय पति परमात्मा इस जगत्की उत्पत्तिके पूर्व विद्यमान था और जिसने पृथिवीसें लेके सूर्यपर्य्यंत जगत्को उत्पन्न किया है, उस परमात्मा देवकी प्रेमसें भक्ति किया करें ॥ ३ ॥–४–

तथा ऋग्वेदादिभाष्यभूमिकायां सृष्टिविद्याविषये–हिरण्यगर्भ जो परमेश्वर है वही एक सृष्टिके पहिले वर्तमान था, जो इस सब जगत्का स्वामी है और वही पृथिवीसें लेके सूर्यपर्यंत सब जगत्को रचके धारण कर रहा है, इसलिये उसी सुखस्वरूप परमेश्वर देवकीही हम लोग उपासना करें, अन्यकी नहीं ॥ १ ॥ –५–

[समीक्षा] पूर्वोक्त पांचप्रकारके अर्थोंको यदि शोचे जावे तो, स्वामी दयानंदजीके अर्थ मनःकल्पित गप्परूपसें और कुछ भी सिद्ध नही कर सक्ते हैं. वाहजी! वाह!! अर्थ क्या ठहरें, गुड्डीयोंका खेल हुआ, जो मनमें

लोकोंको धारण करता है, इसवास्ते प्रजापति देवकेलिये हम हविःप्रदान करते हैं.

[समीक्षा] यह भाष्यकारका अर्थ पूर्वोक्त अर्थोंसें विलक्षणही है, तथा यजुर्वेद अध्याय १७ के मंत्रसें भी विरुद्ध है. तथा इसश्रुतिसें मालुम होता है कि, इसका कहनेवाला परमात्मा प्रजापतिसें भिन्न है. क्योंकि, इसमें लिखा है कि, जो हिरण्यगर्भ सृष्टिसें पहिले आप शरीरधारी हुआ, जो उत्पन्न होनेवाले सर्वजगत्का पति हुआ, और तीन लोककों जो धारण करता है, तिस प्रजापतिदेवकेलिये, हम, हविःप्रदान करते हैं, इत्यादि.

तथा इसी श्रुतिका अर्थ ऋग्वेद अष्टक ८। अ० ७। व० ३। मं० १०। अ० १०। सू० १२१ में सायणाचार्यने ऐसें लिखा है—हिरणमय अंडका गर्भभूत जो प्रजापति सो कहावे हिरण्यगर्भ, तथा च तैत्तिरीयकं—"प्रजापतिर्वै हिरण्यगर्भः प्रजापतेरनुरूपत्वायेति।" अथवा हिरणमय अंड गर्भवत् है उदरमें जिसके, ऐसा जो सूत्रात्मा, सो कहावे हिरण्यगर्भ. सो हिरण्यगर्भ (अग्रे) प्रपंचोत्पत्तिके पहिले (समवर्तत) मायावशसें सृजन करनेकी इच्छावाले परमात्मासें उत्पन्न होता भया. यद्यपि परमात्माही हिरण्यगर्भ है, तो भी, तदुपाधिभूत आकाशादि सूक्ष्मभूतोंको ब्रह्मसें उत्पन्न होनेसें तदुपहित भी उत्पन्न हुआ ऐसें कहीए हैं. सो हिरण्यगर्भ (जातः) जातमात्रही, उत्पन्न हुआ थकाही (एकः) अद्वितीय एकेलाही (भूतस्य) विकारजात ब्रह्मांडादि सर्वजगत्का (पतिः) ईश्वर (आसीत्) होता भया. नही केवल पतिही हुआ, किंतु सो हिरण्यगर्भ (पृथिवीं) वीस्तीर्ण (द्यां) स्वर्गलोककों 'उतापिच' और (इमां) हमारे दृश्यमान पुरोवर्त्तिनी इस भूमिको, अथवा 'पृथिवीं' आकाशको स्वर्गलोकको और भूमिको (दाधार) धारयति—धारण करता है (कस्मै) यहां किं शब्द अनिर्ज्ञातस्वरूपवाला होनेसें प्रजापतिमें वर्तता है। अथवा सृष्टिकेवास्ते जो कामना करे सो कहावे कः। अथवा कं-सुखं अर्थात् सुखरूप होनेसें कः कहीए हैं। अथवा इंद्रने पूछा हुआ प्रजापति, मेरा महत्व

तथा दयानंदजी लिखते हैं कि, "इस प्रसिद्ध सृष्टिके रचनेसें प्रथम परमेश्वरही विद्यमान था जीव गाढनिद्रा—सुषुप्तिमें लीन थे और जगत्का कारण अत्यंत सूक्ष्मावस्थामें आकाशकेसमान एकरस स्थिर था—इत्यादि"—अब हम पूछते हैं कि, यदि प्रथम आकाशही नही था तो, दयानंदजीका परमात्मा, सुषुप्तिमें लीन होनेवाले जीव, और जगत्का कारण, यह कहां रहते थे? आकाशविना कोई भी पदार्थ नही रह सक्ता है. और आकाशकी उत्पत्ति वेदोंमें प्रकटपणे कही है. 'नाभ्या आसीदंतरिक्षमितिवचनात्'॥ *और दयानंदजीने भी ऋग्वेदादिभाष्यभूमिकाके वेदविषय विचारके ४९ पत्रोपरि लिखा है कि "परमात्माके अनंत सामर्थ्यसें आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथिवी आदि तत्त्व उत्पन्न हुए हैं—इत्यादि॥" तथा सृष्टिविद्याविषयके ११६—११७ पत्रोपरि॥ "यदा कार्य्यं जगन्नोत्पन्नमासीत्तदाऽसत्सृष्टेः प्राक् शून्यमाकाशमपि नासीत्॥ शून्यनाम आकाश अर्थात् जो नेत्रोंसे देखनेमें नहीं आता सो भी नहीं था"॥ तथा सत्यार्थप्रकाशके सप्तम समुल्लासके लेखमें अतीतानागतवर्तमानकालके सर्व पदार्थोंका स्वामी परमात्माको लिखा है, अष्टम समुल्लासके लेखमें वर्तमान और अनागतकालके पदार्थोंका स्वामी लिखा है, और ऋग्वेदादिभाष्यभूमिकाके लेखमें वर्तमान जगत्का स्वामी परमात्माको लिखा है. हम अनुमान करते हैं कि, यदि और थोडासा दिव्यज्ञान परमात्मा दयानंदजीके हृदयमें स्थापन कर देता तो, फेर परमात्माको स्वामीपणा करनेकी कुछ आवश्यकता न रहती! इत्यलं विस्तरेण॥

(क) हिरण्यपुरुषरूप ब्रह्मांडमें गर्भरूपकरके अवस्थित प्रजापति हिरण्यगर्भ, प्राणिजातकी उत्पत्तिसें पहिले स्वयमेव शरीरधारी होता भया, सोही उत्पन्न हुआ थका एकेलाही उत्पन्न होनेवाले सर्व जगत्का पति होता भया, सोही आकाश स्वर्गलोक और इस भूमिको अर्थात् तीनों

* सन १८८४ के छपे सत्यार्थप्रकाशके ९८७ पत्रोपरि स्वमंतव्यामंतव्य प्रकाशमें भी दयानंदजीने आकाशको नित्य वा अनादि नही माना है, किंतु अनादि पदार्थ तीन है, एक ईश्वर, द्वितीय जीव, तीसरा प्रकृति अर्थात् जगत्का कारण. इत्यादि॥

यं) प्राप्तकालमें (ह) इति प्रसिद्ध (गर्भं दधे) उसने गर्भको धारण किया. कैसा है वह गर्भ कि (यतो जातः प्रजापतिः) जिसगर्भसें प्रजापति अर्थात् ब्रह्माजी उत्पन्न हुए. ॥ ६३ ॥

[समीक्षा] प्रथम तो यह श्रुति पूर्वोक्त यजुर्वेद, ऋगूवेद, गोपथादिकी श्रुतियोंसें विरुद्ध है. तथा परमात्माका सुंदर भुवन रहनेका स्थान कहा, यह विरुद्ध है. क्योंकि, सर्वव्यापी परमात्माका कोइ भी स्थान नही सिद्ध हो सक्ता है. और तिससमयमें तो आकाश भी नही था तो, विना आकाशके परमात्माका सुंदर भुवन कहां था ? तथा अपनी इच्छासें जो शरीरको धारण कर शके सो कहावे स्वयंभू, यह विशेषण प्रमाणबाधित है. क्योंकि, शरीरके विना मन और मनके विना इच्छा नही हो सक्ती है, यह प्रमाण सिद्ध है. इसवास्ते पूर्वोक्त व्युत्पत्ति स्वकपोलकल्पित है ॥ परमात्मा महाजलसमूहमें ऋतुकालमें गर्भ धारण करता भया, तिस गर्भसें प्रजापति ब्रह्माजी उत्पन्न भए इत्यादि—यह ऋग्वेद यजुर्वेद गोपथादिसें विरुद्ध है. क्योंकि, तिनमें अन्यथा कथन है, सो लिख आए हैं. । तथा परमात्माने जलसमूहमें गर्भ धारण करा, इत्यादि कहना भी महामिथ्या है. क्योंकि, उस समयमें तो न पृथिवी थी, और न आकाश था तो, जल किस वस्तुमें, और किस ऊपर ठहर रहा था ? फेर जब परमात्माको ऋतुकाल आया, तब जलके बीचमें गर्भ धारण करा—क्या परमात्माको स्त्रीधर्म हुआ था ? और जलके बीचमें गर्भ धारण करा, क्या गर्भ बहुत उष्ण था ? जिसकी गरमीसें जल न जाऊं इस भयसें जलमें प्रवेश करके गर्भ धारण करा और सर्वव्यापी सच्चिदानंद अरूपी सर्वशक्तिमान निराकार एक परमात्मा जलमें गर्भ धारण करे, यह परस्पर विरुद्ध, और युक्तिप्रमाण बाधित नही है ? तथा तिस समयमें तो काल भी नही था तो, फेर परमात्माको ऋतुकाल किसतरें प्राप्त हुआ ? जेकर कहोंगे, यह तो अलंकार है, तो, ऐसे भ्रमजनक मिथ्या अलंकारके कहनेसें क्या सिद्धि भई ? जेकर अलंकारही कथन करना था तब तो, परमात्माको एक सुंदर यौवनवती स्त्री कथन करना था, और

तुझको देके 'अहं कः' मैं कैसा होऊं? ऐसा कहता हुआ, तव इंद्रने जवाव दिया कि, जो तूं यह कहता है कि, 'अहं कः स्यामिति' मैं क्या होऊं? तदेव सोही तूं हो इस कारणसें 'कः इति' क शब्दसें प्रजापति कथन करीए हैं। "इंद्रो वै वृत्रं हत्वा सर्वा विजितीर्विजित्याब्रवीत्" इत्यादि ब्राह्मणका यहां अनुसंधान करना। जव सो किं शब्द तव सर्वनाम होनेसें स्मैभाव सिद्ध हैं. और जव यौगिक है, तव व्यत्यय जानना. कं-प्रजापति (देवाय) देवं—दानादिगुणयुक्त देवकों (हविषा) प्रजापतिसंबंधी पशुके वपारूपेण—कालेजारूपकरके, अथवा एककपालात्मक पुरोडाशकरके (विधेम) वयमृत्विजः—हम ऋत्विज 'परिचरेम' परिचरणकर्म करीए हैं.

[समीक्षा] पूर्वोक्त अर्थोंसें यह सायणाचार्यका अर्थ औरहीतरेंका है. अव वाचक वर्गको हम नम्रतापूर्वक कहते हैं कि, दोनों भाष्यकारोंके अर्थोंमें कितना वडा विसंवाद पडता है. तथा ऋग्वेदादि भाष्यभूमिकाके कर्त्ताने और भाष्यभूमिकेंदुके कर्त्ताने कैसें २ अर्थ करे हैं, सो आपही विचार कीजीएं. जव वेदोंके अर्थोंकाही निश्चय नही होता है तो, वेद सत्योपदेष्टाके कथन करे हूए हैं, वा अनादि है, वा ऋषियोंद्वारा जगत्में प्रवर्तन हूए हैं, इत्यादि कैसें माना जावे? अव हम ज्यादा लिखना छोडकरके श्रुतियां, और संक्षेपमात्र उनोंकी समीक्षा, और परस्पर विरुद्धता मात्र लिखके अपनी नही वंद होती लेखनीको, जोरावरी वंद करनी चाहते हैं. क्योंकि, वेदोंका वहोता फरोलना भस्मयन्त्राग्नि उद्घाटनतुल्य है.

सुभूः स्वयम्भूः प्रथमोऽन्तर्महत्यर्णवे।
दधे ह गर्भमृत्वियं यतो जातः प्रजापतिः॥

६३॥ य। वा। सं। अ० २३। मं० ६३॥

भाषार्थः—(सुभूः) सुंदर है भुवन जिसका सो कहावे सुभू और (स्वयंभूः) जो अपनी इच्छाहीसें शरीरको धारण कर शके सो कहावे स्वयंभू ऐसा जो परमात्मा सो (महत्यर्णवे) महान् जलसमूहमें (ऋत्वि-

भावार्थः—यदि जो मनुष्यलोग सूर्यादिलोकोंके उत्तमकारण प्रकृतिको और उस प्रकृतिमें उत्पत्तिकी शक्तिको धारण करनेहारे परमात्माको जानें तो वे जन इसजगत्में विस्तृत सुखवाले होवें ॥ ६३ ॥ इसकी समीक्षा करनेकी हमको कुछ आवश्यकता नही है. क्योंकि, दयानंदजीके अर्थही परस्पर समीक्षा कर रहे हैं. यदि कोइ जिज्ञासु जन अंतर्दृष्टि लगाके विचार करे तो, उसको स्वतोही मालुम हो जावे कि, दयानंदस्वामीका अर्थ निःकेवल मनःकल्पित है. और केवल वेदोंका बिहुदापणा छीपानेका प्रयोजन है.

अष्टौ पुत्रासो अदितेः। ये जातास्तन्वः परि देवांउपप्रैत् सप्तभिः।२। परा मार्ताण्डमास्यत् ॥ ७ ॥

तैत्तिरीयेआरण्यके १ प्रपाठके १३ अनुवाके ७ मंत्रः ॥

मित्रश्च वरुणश्च। धाता चार्यमा च। अंशश्च भगश्च । इन्द्रश्च विवस्वाश्चेत्येते॥ १० ॥ तै० आ० १ प्र० १३ अ० १० मंत्रः ॥

भाषार्थः-(अदितेः) अदितिदेवताके (अष्टौ पुत्रासः) अष्टसंख्याकाः पुत्रा विद्यंते—आठ पुत्र हैं (ये) पुत्राः जे पुत्र (तन्वः परि) शरीरस्योपरि—शरीरके उपर (जाताः) उत्पन्न हुए हैं और सा इत्यर्थः। तिनमेसें (सप्तभिः) सात पुत्रोंकेसाथ (देवान्) देवताओंके (उपप्रैत्) समीप प्राप्त होती भई (मार्ताण्डं) मार्तांड अर्थात् सूर्यनामा आठमे पुत्रको (परास्यत्) पराकृतवती-त्यागती भई, अर्थात् तिस एक आठमे पुत्रको त्यागके अन्य सात पुत्रोंके साथ अदिति देवलोकमें देवताओंके समीप गई. ॥ ७ ॥

अब तिन आठे पुत्रोंके नाम अनुक्रमकरके कहते हैं. मित्र १, वरुण २, धाता ३, अर्यमा ४, अंश५, भग ६, इंद्र ७, और विवस्वान ८, (इत्येते) मित्रवरुणादि ये आठ पुत्र कहें. ॥ १० ॥

[समीक्षा] इसमें अदितिके आठ पुत्र लिखे हैं, जिनमें सातमा पुत्र इंद्र, और आठमा पुत्र सूर्य, लिखा है. । ऋग्वेदमें लिखा है कि, इंद्र प्रजापतिके मुखसें उत्पन्न हुआ है,। और ऋग्वेद यजुर्वेद दोनोंहीमें लिखा है कि, सूर्य प्रजापतिके नेत्रोंसें उत्पन्न हुआ है. । यह परस्पर विरुद्ध है. ॥

तिसका एक पति कथन करना था, ऋतुकालमें तिस परमात्मारूप स्त्रीसें भोग—वीर्यनिषेक करना, पीछे गर्भ धारण करना, पीछे प्रजापति ब्रह्माजीका जन्म, इत्यादि कथन करते तो तुमारी कुछक किंचिन्मात्र अलंकारकी आकांक्षा भी पूर्ण होती. परंतु ऐसें है नही, इसवास्ते यह अलंकार भी नही है. हे पाठकगणो ! तुम पक्षपातको छोड कर, और जरा नेत्र उन्मीलन करके विचार तो करो कि सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, त्रैलोक्यनाथ, करुणासमुद्र, कृतकृत्य अष्टादशदूषणरहित, परमात्मा, वीतरागका उपहास्य योग्य, और युक्तिप्रमाण बाधित, ऐसा कथन हो सक्ता है ? कदापि नही हो सक्ता है. ऐसीर मिथ्या कल्पनाजाल खडी करके भव्य जीवोंको फसाय २ के अज्ञानीयोंने अपने वशप्रायः कर लिए हैं ! ! !

ऊपर जो समीक्षा करी है, सो ऋगादिभाष्यभूमिकेंदुनामक पुस्तकमें लिखे अर्थानुसार है. अब महीधरकृत वेददीप भाष्यमें जो अर्थ लिखा है, सो लिखते हैं.

(ह) प्रसिद्धार्थमें है (प्रथमः) सर्वका आदि आद्यंतरहित पुरुष (महति अर्णवे) कल्पांतकालसमुद्रमें (अंतः) मध्यमें (गर्भं दधे) गर्भको स्थापन करता भया. कैसा पुरुष ? (सुभूः) भली भूः—उत्पत्ति होवे जिससें सो सुभूः अर्थात् विश्व—जगत् उत्पन्न करनेवाला (स्वयंभूः) स्वयंभवतीति स्वयंभूः स्वेच्छाधृतशरीरः—अपनी इच्छासें शरीर धारण करनेवाला. कैसा है गर्भ ? (ऋत्वियं) ऋतुः प्राप्तोयस्य—ऋतु प्राप्त हुआ है जिसको अर्थात् प्राप्तकालम् (यतः) जिस गर्भसें (प्रजापतिः) ब्रह्मा (जातः) उत्पन्न भया—इति ॥ ६३ ॥ समीक्षाप्रायः पूर्ववत् ॥

अब दयानंदस्वामीका भी अर्थमात्र पूर्वोक्तश्रुतिका लिखते हैं ॥

हे जिज्ञासुजन ! (यतः) जिस जगदीश्वरसें (प्रजापतिः) विश्वका रक्षक सूर्य (जातः) उत्पन्न हुआ है और जो (सुभूः) सुंदर विद्यमान (स्वयंभू) जो अपने आप प्रसिद्ध उत्पत्ति विनाश रहित (प्रथमः) सबसें प्रथम जगदीश्वर (महति) बडे विस्तृत (अर्णवे) जलोंसें संबद्ध हुए संसारके (अंतः) बीच (ऋत्वियम्) समयानुकूल प्राप्त (गर्भम्) बीजको (दधे) धारण करता है (ह) उसीकी सबलोग उपासना करें ॥ ६३ ॥

धारण नही कर सक्ती है. और अदितिनें तो अन्नमात्रके भक्षण करनेसें गर्भ धारण करा, यह प्रमाणविरुद्ध नही तो, क्या है ? तिस अदितिके गर्भसें बारां आदित्य अर्थात् सूर्य उत्पन्न भए. ऋग्वेदयजुर्वेदमें लिखा है, प्रजापतिके नेत्रोंसें सूर्य उत्पन्न भया; यह परस्पर विरुद्ध है. ॥

यस्मादृचोअपातंक्षन्यजुर्यस्मादपाकंषन् । सामानि यस्य लोमानि अथर्वाङ्गिरसो मुखम्। स्कम्भन्तम्ब्रूहि कतमः स्विदेव सः॥

अथर्वसं०। कां० १०। प्र० २३। अ० ४। मं० २०॥

भाषार्थः—(यस्मादृचो०) जिस परमात्मासें ऋग्वेद उत्पन्न हुए हैं, और (यजुर्यस्मादपाकषन्) जिस परमात्मासें यजुर्वेद उत्पन्न हुआ है, और (सामानि यस्य लोमानि) सामवेद जिस परमात्माके रोम हैं, तथा (अथर्वाङ्गिरसो मुखम्) आंगिरस जो है अथर्ववेद सो जिसका मुख है. (स्कंभंतं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः) ऐसा जो है स्कंभ अर्थात् सबका आश्रय भूत सो (कतमः) कौन है? (ब्रूहि) कह—कथन कर (स्वित् एव सः) वही केवल एक परब्रह्म परमात्माही है, और कोइ नही. ॥

[समीक्षा] परमात्मासें ऋग्वेद उत्पन्न हुआ, और परमात्मासेंही यजुर्वेद उत्पन्न हुआ, सामवेद परमात्माके रोम है, और अथर्ववेद परमात्माका मुख है. । यदि ऋग्वेद यजुर्वेद परमात्मासें उत्पन्न हुए हैं, तो क्या सामवेद और अथर्ववेद परमात्मासें नही उत्पन्न हुए हैं? जो उनको रोम, और मुख कहा ! यदि सामवेद परमात्माके रोम, और अथर्ववेद परमात्माका मुख ऐसेंही कथन करना था तो, ऋग्वेद शिर, और यजुर्वेद बाहु, यह भी कह देना था? वा अन्य कोइ अंग कहने थे. क्योंकि, यह दोनो वेद भी तो, परमात्माके अंग होने चाहिए; सामअथर्ववेदवत्. नही तो, उन दोनोंको भी रोम मुख न कहना चाहिए; इन चारोंमें क्या विशेष है ? जो दो वेदोंको परमात्मासें उत्पन्न हुए कहे; तीसरेको रोम और चौथेको मुख कह दिया. अन्य तो किंचित् भी विशेष नही, परंतु सोमव-

चंद्रमा मनसो जातश्चक्षोः सूर्यो ऽअजायत।
श्रोत्राद्वायुश्च प्राणश्च मुखादग्निरजायत ॥१२॥वा० सं० अ० ३१॥

भाषार्थः—प्रजापतिके मनसें चंद्रमा उत्पन्न भया, चक्षु (नेत्रों) सें सूर्य उत्पन्न भया; वायु, और प्राण, ये दो, कानोंसें उत्पन्न भए; और अग्नि मुखसें उत्पन्न भया. ॥ १२ ॥

[समीक्षा] इस श्रुतिमें लिखा है कि, वायु और प्राण ये दोनों श्रोत्रसें अर्थात् कर्ण (कानों)सें उत्पन्न भए. और ऋग्वेदके आठमे अष्टकमें लिखा है कि, प्राणसें वायु उत्पन्न भया. । तथा इसश्रुतिमें लिखा है कि, मुखसें अग्नि भया, और ऋग्वेदमें लिखा है कि, प्रजापतिके मुखसें इंद्र, और अग्नि, ये दोनों उत्पन्न भए. । यजुर्वेदमें इंद्रकी उत्पत्ति मुखसें नही कही है, और ऋग्वेदमें कही है; यह परस्पर विरुद्धपणा है. ॥

*अदितिर्वै प्रजाकामौदनमपचत् तत उच्छिष्टमश्नात्।
सा गर्भमधत्त। तत आदित्या अजायन्त ॥

इतिगोपथपूर्व भागे० प्र० २ ब्रा०२५ ॥

भाषार्थः—(अदितिर्वै)वै, यह निश्चयार्थक अव्यय है, अर्थात् निश्चयअर्थका बोध करता है. (अदितिर्वै प्रजाकामौदनमपचत्) अदितिनें प्रजा अर्थात् संतानकी उत्पत्तिकेलिये (ओदन) अर्थात् ब्रह्मौदन पकाया. (तत उच्छिष्टमश्नात्) तिसमेसें उच्छिष्ट अर्थात् बचा हुआ जो यज्ञका शेषभाग उसको (अश्नात्) उसने खा लिया. (सा गर्भमधत्त) उसके खानेसें अदिती गर्भको धारण करती भई. (तत आदित्या अजायन्त) तिस गर्भसें द्वादश आदित्य उत्पन्न हुए. इति ॥

[समीक्षा] इस श्रुतिमें लिखा है कि, अदितिनें यज्ञका रहा शेष अन्न भक्षण करनेसें गर्भ धारण करा; यह भी प्रमाण बाधित है. क्योंकि, विना पतिके संयोगसें, वा योनिमें वीर्यके प्रक्षेपविना, कदापि स्त्री गर्भ

* इसही मतलबका वर्णन तैत्तिरीयब्राह्मणके १ अष्टकके १ अध्यायके ९ अनुवाकमें है॥

थिवीलोकको (अंतरिक्षम्) दुसरे अंतरिक्ष (आकाश) लोकको, और तीसरे (दिवम्) स्वर्ग लोकको. फिर प्रजापति (तान् लोकान् अभ्यतपत्) तिन तीनो लोकोंको तप कराता हुआ (तेभ्यः अभितप्तेभ्यः त्रीणि ज्योतींषि अजायंत) तपके करनेसें तिन पृथिव्यादिकोंसे तीन ज्योति, अर्थात् प्रकाशात्मक तीन देवते उत्पन्न हुए; सोही दिखाते हैं. (अग्निरेव पृथिव्याः) अग्निदेवता पृथिवीसें (अजायत) उत्पन्न होता भया (वायुरंतरिक्षात्) अंतरिक्ष (आकाश)सें वायु, और (आदित्योदिवः) स्वर्ग लोकसें आदित्य (सूर्य) उत्पन्न हुआ. फिर प्रजापति (तानि ज्योतींषि अभ्यतपत्) तिन तीनों ज्योति अग्नि आदिको तप कराता हुआ (तेभ्यः अभितप्तेभ्यः त्रयः वेदाः अजायंत) तिन अग्न्यादिकोंसें तप करानेसें तीनों वेद उत्पन्न हुए; सोही दिखाते हैं. (ऋग्वेदः एव अग्नेः) ऋग्वेद अग्निसें (आजायत) उत्पन्न होता भया, और (यजुर्वेदः वायोः) यजुर्वेद वायुसें, और (सामवेदः आदित्यात् इति) सामवेद आदित्यसें उत्पन्न हुआ. । इति ॥

प्रजापतिर्वै इदमग्रआसीत् । एकएव । सोऽकामयत । साम्प्रजायेयेति । सोश्राम्यत् । स तपोऽतप्यत । तस्माछ्रान्तात्तेपानात् त्रयो लोका असृज्यन्त । पृथिव्यंतरिक्षं द्यौः ॥ १ ॥ स इमांस्त्रींल्लोकानभितताप । तेभ्यस्तप्तेभ्यस्त्रीणि ज्योतींष्यजायन्ताग्निर्योयं पवते सूर्यः ॥ २ ॥ तेभ्यस्तप्तेभ्यस्त्रयो वेदा अजायन्ताग्नेर्ऋग्वेदो वायोर्यजुर्वेदः सूर्यात् सामवेदः ॥ ३ ॥

शतपथकां० ११ । अ० ५ । ब्रा० ३ । कं० १ ।२ । ३॥

भाषार्थः—(प्रजापतिर्वै) वै यह निश्चयार्थक अव्यय है (अग्रे) जगत् उत्पत्तिसें पहिले (एकः एव) एकही केवल प्रजापति (आसीत्) था, और कोइ नहीं (सः अकामयत) सो प्रजापति कामना अर्थात् इच्छा करता हुआ (सांप्रजायेयइति) कि, मैं अनेकरूपोंसें उत्पन्न होऊं (सः अश्राम्यत् सः तपः अतप्यत) सो प्रजापति शांतचित्त हो कर तप करता भया (तस्मात् श्रांतात् ते पानात्) तिस चित्तकी स्थिरता और तपके करनेसें (त्रयः लोकाः

छीके नशेमें वा वाजपेय सौत्रामण्यादियज्ञोंमें ऋषियोंने मदिरापान करा तिसके नशेमें आ कर जो मनमें आया सो विनाविचारे उच्चारण कर दिया; यह कारण तो हो सक्ता है, अन्य नहीं. होवे तो, वतला देना चाहिए. तथा ऋग्वेदयजुर्वेदमें, मानस यज्ञ देवताओंने करा, तिस यज्ञसें वेदोंकी उत्पत्ति हुई लिखा है, यह परस्पर विरुद्ध है.

एवं वा अरेऽस्य महतो भूतस्य निःश्वसितमेतद्यदृग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्वाङ्गिरस इत्यादि ॥

श०कां०१४। अ । ब्रा ४। कं १०॥

इसश्रुतिका भावार्थ यह है कि, ऋगादिचारोंवेद परमात्माके उत्स्वासरूप है। अव देखीए ! ! ऋग्वेदयजुर्वेदमें तो लिखा है, चारों वेद मानस यज्ञसें उत्पन्न हुए; अथर्ववेदमें लिखा है, सामवेद परमात्माके रोम हैं, और अथर्ववेद परमात्माका मुख है; तथा इसश्रुतिमें चारोंकोही परमात्माके उत्स्वास कहे. यह परस्पर विरुद्ध नही तो, क्या है ? तथा अन्यजगें लिखा है, अग्निसें ऋग्वेद, वायुसें यजुर्वेद, और सूर्यसे सामवेद, आकर्षण करे–खैंचके निकाले. इत्यादि वेदोंमें जो कथन हैं, सो प्रमाण वाधित है. इसवास्तेही प्रेक्षावानोंको अंगीकार करने योग्य नही है.

प्रजापतिरकामयत प्रजायेयभूयान्त्स्यामिती। स तपोऽतप्यत स तपस्तप्त्वेमांल्लोकानसृजत । पृथिवीमन्तरिक्षं दिवं । सतांल्लोकानभ्यतपत्तेभ्योऽभितप्तेभ्यस्त्रीणि ज्योतींष्यजायन्त । अग्निरेव पृथिव्या अजायत। वायुरन्तरिक्षात् । आदित्योदिवस्तानि ज्योतींष्यभ्यतपत् तेभ्योऽभितप्तेभ्यस्त्रयो वेदा अजायन्त । ऋग्वेद एवाग्नेरजायत । यजुर्वेदो वायोः । सामवेद आदित्यादित्यादि ॥ ऐ० ब्रा० पं० ५। कं० ३२॥

भाषार्थः—(प्रजापतिः) प्रजापति जो ब्रह्मा सो (अकामयत) इच्छा करता हुआ कि (प्रजायेय) मैं उत्पन्न हो कर (भूयान्त्स्यामिति) वहुत प्रकारका होऊं ऐसे विचार कर (स तपोऽतप्यत्) सो तप करता हुआ (स तपस्तप्त्वा) सो तप करके (इमान् लोकान् असृजत) इन तीन लोकोंको उत्पन्न करता हुआ. सोही दिखावे हैं. (पृथिवीं) एक पृ-

एक पृथिवीलोक, दुसरा अंतरिक्षलोक, और तीसरा स्वर्गलोक. अब ये तीनों लोकोंको कहांसें रचे, सो बतावे हैं. (सः पादाभ्यां एव पृथिवीं निरमिमत) सो प्रजापति खलु—निश्चयकरके अपने दोनों पगोंसें पृथिवी लोकको रचता भया (उदरात् अंतरिक्षम्) पेटसें अंतरिक्ष— आकाशकों, और (मूर्ध्नो दिवम्) अपने मस्तकसें स्वर्गलोकको रचता भया (सः तान् त्रीन् लोकान् अभ्यश्राम्यत् अभ्यतपत्) सो प्रजापति तिन तीनों लोकोंको शांत और तप कराता भया, तप कराके (तेभ्यः श्रांतेभ्यः तप्तेभ्यः संतप्तेभ्यः त्रीन् देवान् निरमिमत) तिन शांत और तप्त संतप्त तीनों लोकोंसें तीन देवते रचता भया; सोही दिखावे हैं. (अग्निं वायुं आदित्यं इति) अग्नि, वायु और सूर्यको. अब इन देवताओंके उत्पत्तिस्थान बतावे हैं. (सः खलु पृथिव्याः एव अग्निं निरमिमत) सो प्रजापति निश्चयकरके पृथिवीसेंही अग्निको रचता भया, (अंतरिक्षात् वायुम्) आकाशसें वायु, और (दिवः आदित्यं इति) स्वर्गसें आदित्यको रचता भया. (सः तान् त्रीन् देवान् अभ्यश्राम्यत् अभ्यतपत् समतपत्) सो प्रजापति तिन तीनों देवोंको शांत तप और अच्छे प्रकारसें तप कराता भया तप कराके (तेभ्यः श्रांतेभ्यः तप्तेभ्यः संतप्तेभ्यः त्रीन् वेदान् निरमिमत) तिन शांत तप्त संतप्त तीनों देवोंसें तीनों वेदोंको रचता भया, सोही कहे हैं. (ऋग्वेदं यजुर्वेदं सामवेदं इति) एक ऋग्वेदको, दुसरे यजुर्वेदको, और तीसरे सामवेदको उत्पन्न किया.। इति ॥

[समीक्षा] प्रजापति इच्छा करता हुआ कि, मैं उत्पन्न हो कर बहुतप्रकारका होऊं; इत्यादि, ऐतरेयब्राह्मणका, तथा शतपथादिकका लेख युक्तिप्रमाणबाधित है. क्योंकि, विना शरीरके मन नही होता है, और मनके विना इच्छा नही हो सक्ती है, इत्यादि पीछे लिख आए हैं; इसवास्ते यहां नही लिखते हैं.। तथा प्रजापति तप करता हुआ, तिस तपके करनेसें तीन लोक उत्पन्न भए; पृथिवी, आकाश, और स्वर्गलोक. इति ऐतरेयब्राह्मण शतपथादौ. और गोपथमें लिखा कि, प्रजापतिनें तप करा, तिसतपके करनेसें अपने आत्माहीसें तीन लोक रचे. पगोंसें

असृज्यंत) तीनों लोक उत्पन्न किये; सोही दिखाते हैं, (पृथिवी अंतरिक्षं द्यौः) एक पृथिवीलोक, दूसरा अंतरिक्ष (आकाश) लोक, और तीसरा स्वर्गलोक ॥ १ ॥ इन तीनों लोकोंकों उत्पन्न करके फिर (सः इमान् त्रीन् लोकान् अभितताप) सो प्रजापति इन तीनों लोकोंको तप करता हुआ, तब (तेभ्यः तप्तेभ्यः त्रीणि ज्योतींषि अजायंत) तप करनेसें तिन तीनोंसें तीन ज्योति अर्थात् प्रकाशात्मक तीन देवते उत्पन्न हुए; सोही दिखाते हैं, (अग्निः यः अयं पवते सूर्य्यः) एक अग्नि, दूसरा जो यह संपूर्ण विश्वको पावन--पवित्र करता है सो वायु, और तीसरा सूर्य. ॥ २ ॥ (तेभ्यः तप्तेभ्यः) तपके करनेसें तिन तीनों देवताओंसें (त्रयः वेदाः अजायंत) तीनों वेद उत्पन्न होते भए; सोही दिखाते हैं. (अग्नेः ऋग्वेदः) अग्निसें ऋग्वेद, (वायोः यजुर्वेदः) वायुसें यजुर्वेद, और (सूर्यात्) सूर्यसें (सामवेदः) सामवेद.। इति ॥

स भूयोऽश्राम्यद्भूयोऽतप्यत । भूय आत्मानं समतपत् । स आत्मत एव त्रीँल्लोकान्निरमिमत । पृथिवीमन्तरिक्षं दिवमिति । स खलु पादाभ्यामेव पृथिवीन्निरमिमतोदरादन्तरिक्षं मूर्ध्नो दिवं । स तांस्त्रीँल्लोकानभ्यश्राम्यदभ्यतपत् । तेभ्यः श्रांतेभ्यस्तप्तेभ्यः संतप्तेभ्यस्त्रीन् देवान्निरमिमताग्निं वायुमादित्यमिति । स खलु पृथिव्या एवाग्निं निरमिमतान्तरिक्षाद्वायुं दिव आदित्यम् । सतांस्त्रीन् देवानभ्यश्राम्यदभ्यतपत् । समतपत् । तेभ्यः श्रान्तेभ्यस्तप्तेभ्यः संतप्तेभ्यस्त्रीन् वेदान्निरमिमत । ऋग्वेदं यजुर्वेदं सामवेदमिति ॥ गो । पू । प्र० १ । ब्रा० ६ ॥

भाषार्थः—(स भूयः अश्राम्यत्) सो प्रजापति फिर शांतचित्त होता भया (भूयः अतप्यत) फिर तप करता भया (भूयः आत्मानं समतपत्) फिर आत्माको अच्छे प्रकारसें तपाता हुआ अर्थात् तप करता भया तप करके (सः आत्मतः एव त्रीन् लोकान् निरमिमत) सो अपने आत्माहीसें तीनों लोकोंको रचता हुआ, सोही दिखाते हैं. (पृथिवीं अंतरिक्षं दिवं इति)

है. क्योंकि, जो पर्यालोचन करना है, सोही असर्वज्ञका लक्षण है; इसवास्ते ब्रह्माजी सर्वज्ञ नही थे, ऐसा सिद्ध हुआ, जब सर्वज्ञ नही थे तो, यथार्थ सर्व जगत्की रचना करनेमें भी समर्थ नही सिद्ध होवेंगे. और यह जो लिखा है कि, प्रजापतिनें तीनों लोकोंको तप कराया— क्या तीनों लोकोंको पंचधूणीतपनरूप तप कराया? वा ऊपर लिखे जैनमतके समान तप कराया? वा पर्यालोचनात्मक तप करवाया? वा चांद्रायणादि करवाया? जिससें तीनों लोक थक गए, तप्त संतप्त हो गए. इनमेसें किसी भी प्रकारके तप करानेका संभव नही हो सक्ता है. क्योंकि, तीनों लोक तो पंचभूतात्मक होनेसें जडरूप हैं, तो फेर, यह क्या जानके लिख दिया कि, प्रजापति तीनों लोकोंको तप कराते भए? प्रथम तो चेतनब्रह्मसें इन जडरूप तीनों लोकोंका उत्पन्न होनाही असंभव है तो, तप कराना तो दूरही रहा!!! जब तीनों लोक तप करके श्रांत तप्त संतप्त हुए, तब तिन तीनोंसें अग्नि, वायु, सूर्य, उत्पन्न करे, तिन तीनोंको तप कराके तिन तीनोंसें ऋग्वेदादि तीन वेद उत्पन्न करे. इत्यादि—क्या तिन तीनोंके अंदर वेद स्थापन करे थे, अर्थात् वेदोंके पुस्तक लिखे हुए थे? जो खेंचके निकाल लिये. तथा अग्न्यादि तीनों तो जड भौतिक लोकोंमें प्रसिद्ध है, इसवास्ते वे वेदका उच्चार भी नही कर सक्ते हैं. यदि कहोंगे, वे तीनों देवते होनेसें चैतन्य है, जड नही; यह भी ठीक नही है. जडरूप पृथिव्यादि उपादानसें अग्न्यादि चैतन्यकार्य कबी भी नही हो सक्ता है. तथा क्या तिन देवताओंके मुखसें ब्रह्माजीने वेदोंका प्रथम उच्चार कराया था? यदि कहोंगे उच्चार नही करवाया, किंतु तिन देवताओंसेंही प्रथम यज्ञादि करवाए. यह कहना तो, बहुतही असंगत है. क्योंकि, जिनोंसें यज्ञादि कर्म प्रथम करवाए, वे तो यज्ञादिकर्मोंकी उत्पत्तिके अपादान हो सक्ते हैं, परंतु वेदोंके नही. इसवास्ते वेदश्रुतिके दूषणोंको दूर करनेवास्ते अपनी कपोल कल्पनासें अटकलपच्चुके अर्थ करने, यह विद्वानोकी मंडलीमें उपहास्यका कारण है.

पृथिवी १, पेटसें आकाश २, और मस्तकसें स्वर्ग ३. यह तीनों पुस्तकोंक कथन, ऋग्वेद यजुर्वेदादिकोंसें विरुद्ध है. क्योंकि, ऋग्वेद यजुर्वेदमें प्रजापतिने तप करा ऐसा कथन नही है. और यहां है. यह परस्पर विरुद्ध । १ । तथा ऋग्वेद यजुर्वेदमें प्रजापतिके पगोंसें भूमी, नाभिसें आकाश, और मस्तकसें स्वर्ग, ऐसा उत्पत्तिक्रम लिखा है; और यह पेटसें आकाशकी उत्पत्ति लिखी है. यह परस्परविरुद्ध. । २ ।

फिर प्रजापतिने पूर्वोक्त पृथिवीआदि तीनों लोकोंको तप करायके उनोंसें तीन देवते उत्पन्न किये; पृथिवीसें अग्नि १, आकाशसें वायु २, और स्वर्गसें सूर्य ३; ऋग्वेद यजुर्वेदमें लिखा है कि, प्रजापतिके मुखसें अग्नि १, ऋग्वेदमें प्रजापतिके प्राणसें वायु, और यजुर्वेदमें प्रजापतिके कानोंसें वायु २, और दोनोंमेंही प्रजापतिके नेत्रोंसें सूर्य ३, ऐसे इन देवताओंकी उत्पत्ति लिखी है; यह परस्पर विरुद्ध. । ३ ।

फिर प्रजापतिने पूर्वोक्त अग्नि आदिक देवताओंको तप करायके उनोंसें तीनोंही वेद उत्पन्न करे; अग्निसें ऋग्वेद १, वायुसें यजुर्वेद २, और आदित्य (सूर्य) सें सामवेद ३. । ऋग्वेदयजुर्वेदमें चारों वेदोंकी उत्पत्ति मानसनामा यज्ञसें लिखी है; तथा अथर्ववेदमें लिखा है, ऋग्वेद और यजुर्वेद परमात्मासें उत्पन्न हुआ है, सामवेद परमात्माके रोम है, और अथर्ववेद परमात्माका मुख है. ॥ शतपथमें लिखा है, चारों वेद परमात्माके निःश्वास रूप हैं. । यह परस्परविरुद्ध. ॥ ४ ॥

तथा प्रजापतिने तप करा—क्या प्रजापतिने जैनीयोंकीतरें उपवास, छट्ठ, अट्ठम, दशम, द्वादशम, अर्द्धमासक्षपण, मासक्षपणादि, वा रत्नावलि,कनकावलि, मुक्तावलि, घन, प्रतर, लघुसिंहनिक्रीडित, बृहत्सिंहनिक्रीडित, आंचाम्लवर्द्धमानादि तीनसौसाठ प्रकारके तपमेसें कोइ तप करा था ? वा चांद्रायणादि ?

पूर्वपक्षः—प्रजापतिने पर्यालोचनात्मक तप करा था.

उत्तरपक्षः—ब्रह्माजी प्रजापतिको तो, वेदोंमें सर्वज्ञ लिखे हैं। प्रथम तो सर्वज्ञको पर्यालोचन करना लिखा है, यह सर्वज्ञताको हानिकारक

व्युत्पत्तिकरके पृथिवीका भूमि, नाम हुआ. । तिस भूमिको गीली देखके सुकानेकेलिये चार दिशाओंको रच कर प्रजापति अपने संकल्पसें उत्पन्न हुए पवनको चलाता भया, शुष्क होती हुई तिस भूमिको प्रजापति सूक्ष्म पाषाण करके दृढ करता भया, दृढ करके 'नोऽस्माकं शं सुखमभूदित्युवाच' हमको सुख भया ऐसे उच्चार करा, तिस कारणसें 'शं सुखं कृतं आभिः' इस व्युत्पत्तिकरके शर्करा (कंकरी) यह नाम हुआ. ॥ इत्यादि ॥

[समीक्षा]–सृष्टिसें पहिले कुछ भी नही था, एक केवल जलमात्रही था, तब प्रजापतिने जगत् उत्पन्न करनेके निमित्त विचार करा कि, यह जगत् कैसें उत्पन्न होवे? इत्यादि–प्रथम तो इस लेखसें प्रजापति अज्ञानी असर्वज्ञ सिद्ध हुआ. क्योंकि, विचार करना यह असर्वज्ञका लक्षण है. सर्वज्ञको तो, सर्व पदार्थ हस्तस्थामलकवत् प्रत्यक्ष भासमान होता है, तो फेर सर्वज्ञ होके प्रजापतिमें विचार करना कैसे संभव होवे? तथा सृष्टिसें पहिले यदि कुछ भी नही था तो, तुमारा माना जल कहां रहा था? विना आकाश पृथिवी आदिके जल कबी भी नही ठहर सक्ता है.

पूर्वपक्षः—वो पृथिवी अन्य थी, और यह दृश्यमान अन्य है. क्योंकि, श्रुतिमें लिखा है कि, गोता लगानेसें प्रजापति नीचेकी पृथिवीको प्राप्त हुआ, यदि दूसरी पृथिवी न होती तो, किसको प्राप्त होता? और किसमेसें मृत्तिका ले आता? इसवास्ते सिद्ध हुआ कि, नीचे भूमि थी, जब भूमि हुई तो जलके रहनेमें क्या बाध है?

उत्तरपक्षः—हे मित्र! हमको तो कुछ भी बाध नही है. क्योंकि, हम तो ऐसे असत् कथनको कबी भी मानना नही चाहते हैं. परंतु आप लोग मनःकल्पित कल्पना करके पूर्वोक्त कथनको सत्य करना चाहते हो, इसीवास्ते वदतोव्याघातदूषणरूप असवार आपके तर्फ दृष्टि करता है. क्योंकि, तुमने प्रथम कहा कि, जलके विना और कुछ भी नही था, और उसी समय पृथिवी तो तुमनेही सिद्ध करी, तो फेर ऐसें कहना चाहिये था कि, "सलिलं भूमिं चासीत्" जल और भूमि यह दो पदार्थ सृष्टिसें पहिले विद्यमान थे. ऐसा कहनेसें भी छूट नही सक्ते हो. क्यों-

आपो वा इदमग्रे सलिलमासीत्। तेन प्रजापतिरश्राम्यत्॥५॥ कथमिदꣳ स्यादिति। सोऽपश्यत् पुष्करपर्णं तिष्ठत्। सोऽमन्यत्। अस्ति वै तत्। यस्मिन्निदमधितिष्ठतीति। स वराहो रूपं कृत्वोपन्यमज्जत्। स पृथिवीमधआर्च्छत्। तस्या उपहत्योदमज्जत्। तत्पुष्करपर्णे प्रथयत्। यदप्रथयत ॥६॥ तत् पृथिव्यै पृथिवित्वं। अभूद्वा इदमिति तद्भूम्यै भूमित्वं। तां दिशोनुवातः समवहत्। तां शर्कराभिरदृꣳहत्। शं वै नोऽभूदिति। तच्छर्कराणाꣳ शर्करत्वं॥ इत्यादि॥

तैत्तिरीयब्रा० १ अष्ट० १। अध्या० ३। अनु०॥

भाषार्थः-(इदम्) यह जो कुछ गिरिनदीसमुद्रादिक स्थावर, और मनुष्यगवादिक जंगम दिखलाइ देता है, सो (अग्रे) सृष्टिसें पूर्व नही था, किंतु केवल (सलिलं आसीत्) जलमात्रही था. तब (प्रजापतिः) ब्रह्मा (तेन) जगत्सृजननिमित्तकरके (अश्राम्यत्) पर्यालोचनरूप तप करता भया, कैसें यह जगत् होवे अर्थात् रचा जाय ऐसा विचार करके तिस पाणीके मध्यमें दीर्घनालके अग्रभागमें स्थित एक पद्म-कमलके पत्रको देखता भया; तिसको देखके प्रजापति मनमें शोचता-विचारकरता भया कि, जिस आधारमें यह नालसहित पद्मपत्र आश्रित हो कर स्थित है-रहा है सो वस्तु कुछक अवश्यमेव नीचे है. ऐसें विचार कर प्रजापति वराहरूप हो कर तिस पद्मपत्रनालके समीपही जलमें गोता लगाता भया, गोता लगानेसें प्रजापति नीचे भूमिको प्राप्त हुआ. तिस भूमिमेंसें कितनीक गीली मृत्तिका अपनी दाढाके अग्रभागमें रख कर पाणीके ऊपर उछलता भया, ऊपरको आ कर तिस मृत्तिकाको तिस कमलके पत्रके ऊपर फैलाता भया, जिसवास्ते यह मृत्तिका फैलाई, (प्रथिता) तिसवास्ते इसका पृथिवी नाम रक्खा गया. तदपीछे संतुष्ट होके यह स्थावरजंगमका आधारभूत स्थान हुआ, ऐसा कथन करता हुआ; तिसवास्ते भवति इस-

तिस पृथिवीमें कंकरी मिलाके प्रजापतिने पृथिवीको दृढ करी, इत्यादि– अब विचारना चाहिये कि, जिसने संकल्पमात्रसेंही वायु दिशादि प्रकट करे, वो क्या पृथिवीको स्वतोही नही बना सक्ता था ? जिसवास्ते इतना टंटा अपने गलेमें डाल लिया. तथा यह कथन ऋग्वेदयजुर्वेदसें विरुद्ध है. क्योंकि, उनमें लिखा है कि, भूमि प्रजापतिके पगोंसें उत्पन्न भई, दिशा प्रजापतिके कानोंसें, और वायु ऋग्वेदमें प्रजापतिके प्राणोंसें, और यजुर्वेदमें प्रजापतिके कानोंसें उत्पन्न भया. इति–और यहां प्रजापति मृत्तिका ले आया, उससें पृथिवी उत्पन्न भई, और प्रजापतिके संकल्पमात्रसें वायुदिशादि उत्पन्न भए, यह परस्पर विरुद्ध. ॥

और तैत्तिरीयसंहिता कां० ७। प्र० १। अनु० ५। में लिखा है ॥

आपो वा इदमग्रे सलिलम् आसीत्।
तस्मिन् प्रजापतिर्वायुर्भूत्वाऽचरत्।
स इमामपश्यत् तां वराहो भूत्वाऽऽहरत्। इति ॥

भावार्थः–(अग्रे) अर्थात् सृष्टिकी उत्पत्तिसें पहिले जलही जल था, तिस जलमें प्रजापति वायुरूप हो कर फिरता हुआ, पर्य्यटन अर्थात् चारोंऔर घूम कर सो प्रजापति, (इमां) इस पृथिवीको देखता भया, तब (तां) तिस पृथिवीको वराहरूप हो कर प्रजापति जलके ऊपर ले आता भया–इति ॥ देखिये इसमें पर्यालोचनरूप तपका कथन नही है, प्रजापतिने वायुरूप हो कर और घूम कर जलमें पृथिवीको देखा, सो भी इसही पृथिवीको देखा, नतु अन्यको, तथा पुष्करपर्ण (कमलपत्र) आदिका वर्णन भी इस मूल श्रुतिमें नही है; यह परस्पर विरुद्ध. ॥

अब वाचकवर्गको विचारना चाहिये कि, जिन पुस्तकोंमें अपने जगत् कर्ता ईश्वररूप इष्टतत्त्वमेंही पूर्वोक्त विरोधसमूह होवे, वे पुस्तक सर्वज्ञ वीतराग अष्टादशदूषणरहित परमात्माके कथन करे सिद्ध हो सक्ते हैं ? कबी भी नही. क्योंकि, जैसा परमेश्वर और परमेश्वरके कृत्योंका स्वरूप वेदादि पुस्तकोंमें कथन करा है, वो कथन सर्वज्ञ परमात्माका है, वा यह कृत्य परमेश्वरके हैं, ऐसा थोडी बुद्धिवाला पुरुष भी नही कह सक्ता है. जैसें

कि, फेर वराहावतार धारणकरके मृत्तिका ले आया, यह कैसें सिद्ध होगा? यदि कहोंगे कि, यह जो दृश्यमान पृथिवी है, सो प्रथम नही थी, प्रजापतिने नीचेकी मृत्तिकामेंसें लायके वनाई है; तो जिस भूमिमेंसें प्रजापति वराहरूपकरके मृत्तिका ले आया, वो भूमि किसकी वनाइ हुई थी? और वो जगत्में है कि, जगत्सें वाहेर है? तथा यजुर्वेदमें लिखा है कि, प्रलयदशामें जल भी नही था, और इसश्रुतिसें जल भूमि कमलपत्र आकाशादि सिद्ध होने हैं; यह परस्पर विरुद्ध है. प्रजापति विचार करके एक नालसहित कमलपत्रको देखता भया. इति–जब केवल जलही था तो यह नालसहित कमल पत्र कहांसें निकल आया?

कमलपत्रको देखके प्रजापतिने विचार करा कि, जिसके आधार यह नालसहित कमलपत्र स्थित है, वो कुछ वस्तु होना चाहिये? ऐसा विचार कर कमलपत्रके समीपही गोता लगाता भया, गोता लगानेसें नीचे भूमिको प्राप्त हुआ, तिस भूमिमेंसें गीली मृत्तिका अपनी दाढामें रखके पाणीके ऊपर आकर कमलपत्रके ऊपर सुकानेकेलिये मृत्तिकाको फैलाई दीनी. इत्यादि–इससें तो प्रजापतिके असर्वज्ञ होनेमें कुछ भी संदेह नही है. क्योंकि, प्रजापतिनें अनुमानसें विचारा कि, यह कुछ वस्तु होना चाहिये. परंतु प्रत्यक्ष नही देखा. यदि प्रत्यक्ष देखता तो, गोता न लगाता, विना गोतेके लगायेही वहांसें मृत्तिका काढ लेता. क्योंकि, वो तो सर्व शक्तिमान् था. तथा यह दृश्यमान सारी पृथिवी कमलपत्रके ऊपर सुकाई तो, वो कमलपत्र कितनाक वडा था? पृथिवीसें तो अधिकही वडा होना चाहिये कि, जिसके ऊपर सारी पृथिवी फैलाई गई. भला नीचेसें तो वराहरूप करके प्रजापति मृत्तिका ले आये, परंतु सुकाये पीछे कमलपत्रके ऊपरसें किसरूप करके प्रजापतिने पृथिवी उचक लीनी? और वो कमलपत्र कहां गया? क्योंकि, उस कमलपत्रका तो कवी भी नाश न होना चाहिये; प्रलय दशामें भी विद्यमान होनेसें, ईश्वरवत्.

जव कमलपत्रके ऊपर फैलानेसें भी नही सुकी, तव प्रजापतिने दिशा और वायुका संकल्प करा जिससें वायु प्रचलित हुआ, तव सुकती हुई

सर्वज्ञ, निर्विकारी, निरवयव, ज्योतिःस्वरूप, सच्चिदानंद, मानोंगे तब तो विद्वत्सभामें अवश्यमेव हास्यके पात्र होवोंगे; और तुमारा ईश्वर नालायक सिद्ध होवेगा. तब तो, वेदादिशास्त्रोंका वक्ता भी वैसाही होगा. जब कि, हम संसारी जीवोंकों तारनेवाले ईश्वर परमात्माकीही यह पूर्वोक्त विटंबना हो रही है तो, वो हमको किसतरें तार सक्ता है? वा सत्पथको प्राप्त करा सक्ता है? इसवास्ते वेदादिशास्त्र, सर्वज्ञप्रणीत नही है. किंतु अज्ञानीयोंके प्रलापमात्र है; परस्पर विरुद्ध, और युक्तिप्रमाणसें बाधित होनेसें. यह थोडासा वेदोंका परस्पर विरुद्धपणा बताया, इसीतरें और भी विरुद्धपणा अपनी बुद्धिद्वारा विचार लेना. इत्यलं बहुपल्लवितेन विद्वद्वर्येषु ॥

इतिश्वेताम्बराचार्यश्रीमद्विजयानन्दसूरिविरचिते तत्त्वनिर्णयप्रासादे वेदानां परस्परविरुद्धतावर्णनो नाम नवमस्तम्भः॥९॥

॥ अथदशमस्तम्भारम्भः ॥

नवम स्तंभमें वेदोंका परस्पर विरुद्धपणा कथन करा, अथ दशम स्तंभमें वेदकी ऋचायोंसेंही वेद ईश्वरोक्त नही है, ऐसा सिद्ध करेंगे.

ऋग्वेदसंहिता अष्टक ३। अध्याय २॥ वर्ग १२।१३।१४॥

अतीतकालमें पैजवनके सुदासराजाका विश्वामित्र नामा पुरोहित होता भया, तिसने पुरोहित होनेसें बहुत धन पाया, सो सर्व धन लेके शतद्रू और विपाट अर्थात् सतलुज और वियासानदीयोंके संगमऊपर आया. अथ विश्वामित्र तिनसें पार उतरनेकी इच्छावंत, नदीयोंको अगाध जलवाली देखके उतरनेवास्ते आदिकी तीन ऋचायोंकरके तिन नदीयोंकी स्तुति करता भया. और ४।६।८।१०। इन चार ऋचायोंमें नदीयोंने जो कुछ विश्वामित्रकेतांइ कहा, तिसका कथन है. छठी सातमीमें इंद्रकी स्तुति है. इतिभाष्यकारः। प्रपर्वतानामुशतीइत्यादि १३ ऋचा है॥ सोही लिख दिखाते हैं. ॥

कि, बृहदारण्यकके तीसरे अध्यायके चौथे ब्राह्मणमें लिखा है—आत्माही प्रथम सृष्टिके पहिले था, सो प्रजापतिरूप पुरुष हुआ, सो एकेला होनेसें डरने लगा, और अरति—दिलगिरीको प्राप्त हुआ, सो प्रजापति तिस अरतिको दूर करनेकेवास्ते दूसरे अरति दूर करनेमें समर्थ स्त्रीवस्तुको इच्छता भया, अर्थात् गृद्धि करता भया; तिसको ऐसें स्त्रीविषे गृद्धि होनेसें स्त्रीके साथ मिलेहूएकीतरें प्रजापतिके आत्माका भाव होता भया, अर्थात् जैसें लोकमें स्त्री पुरुष अरति दूर करनेकेवास्ते परस्पर मिले हुए, जिस परिमाणवाले होते हैं, प्रजापति भी अपने आत्माके स्त्रीपुरुषरूप दो भाग करके तिस परिमाणवाला होता भया. जिसवास्ते अपने अर्द्ध अंग शरीरकी स्त्री बनाई, इसीवास्ते जगत्में स्त्रीको अर्द्धांगना कहते हैं. सो प्रजापति शतरूपा नामा अपनी पुत्रीको स्त्रीपणे मानी हुईको प्राप्त होता भया, अर्थात् तिससें मैथुन सेवता हुआ, तिससें मनुष्य उत्पन्न हुए.। पीछे शतरूपा पुत्री पिताके गमनसें पीडित हुई विचार करती भई, दुहितृ (पुत्री) का गमन करना यह अकृत्य है, और यह प्रजापति निर्घृण (घृणारहित) है इसवास्ते में जात्यंतर हो जाऊं; ऐसा विचार कर सो शतरूपा, गौ हो गई. तब प्रजापति ऋषभ (बैल) हुआ, उनोंके संगमसें गौयां उत्पन्न हुई.। शतरूपा वडवा (घोडी) हुई, प्रजापति घोडा हुआ; शतरूपा गर्दभी (गधी) हुई, प्रजापति गर्दभ (गधा) हुआ; उनोंके संगमसें एक खुरवाले घोडे, खचरां, और गधे, यह तीन उत्पन्न भए.। शतरूपा बकरी हुई, प्रजापति बकरा हुआ; शतरूपा अवि (भेड—घेटी) हुई, प्रजापति मेष (मींढा—घेटा,) हुआ; उनोंके संगमसें अजा, अवि उत्पन्न भए.। ऐसें पिपीलिका (कीडी) पर्यंत जो जो स्त्री पुरुषरूप जोडा है, सो सर्व इसी न्यायकरके जानना— इत्यादि ॥ यह हमने किंचिन्मात्र लिख दिखाया है, यदि यह पूर्वोक्त कृत्योंका कर्त्ता ईश्वर सिद्ध होवे तो, वेदादिकोंका वक्ता भी ईश्वर सिद्ध होवे. परंतु पूर्वोक्त कृत्य ईश्वर परमात्मामें कबी भी सिद्ध नही हो सक्के हैं. यदि पूर्वोक्त कृत्योंके करनेवालेको तुम ईश्वर, परमात्मा

॥ अथाष्टमी ॥

एतद्वचो जरितर्मापि मृष्ठा आ यत्ते घोषानुत्तरा युगानि।
उक्थेषु कारो प्रति नो जुषस्व मा नो नि कः पुरुषत्रा नमस्ते॥८॥

॥ अथनवमी ॥

ओ षु स्वसारः कारवेशृणोत ययौ वो दूरादनसा रथेन।
नि षू नमध्वं भवता सुपारा अधोअक्षाः सिन्धवः स्रोत्याभिः॥९॥

॥ अथदशमी ॥

आ ते कारो शृणवामा वचांसि ययाथ दूरादनसा रथेन।
नि ते नंसै पीप्यानेव योषा मर्यायेव कन्या शश्वचै ते॥ १०॥ १३॥

॥ अथैकादशी ॥

यदङ्ग त्वा भरताः संतरेयुर्गव्यन्ग्राम इषित इन्द्रजूतः।
अर्षादह प्रसवः सर्गतक्त आ वो वृणे सुमतिं यज्ञियानाम्॥ ११॥

॥ अथद्वादशी ॥

अतारिषुर्भरता गव्यवः समभक्त विप्रः सुमतिं नदीनाम्।
प्र पिन्वध्वमिषयन्तीः सुराधा आ वक्षणाः पृणध्वं यात शीभम्॥१२॥

॥ अथत्रयोदशी ॥

उद्व ऊर्मिः शम्या हन्त्वापो योक्त्राणि मुञ्चत।
माdुष्कृतौ व्येनसाघ्न्यौ शूनमारताम्॥ १३॥१४॥

ऋ०। सं०। अ० ३। अ० २। व० १२। १३। १४॥

ऊपर लिखी ऋचायोंका तात्पर्य यह है कि, विश्वामित्रऋषि सोमवल्ली लेनेकेवास्ते पंजाबदेशमें आए, जहां शतद्रू और वियासा नदीयां मिलती हैं; अर्थात् जहां बैठके मैं यह ग्रंथ रचता हुं, तिस जीरे गामसें तेरा (१३) मीलके फासलेपर जो हरिकापत्तन कहाता है, तिस जगे विश्वामित्र

॥ अथप्रथमा ॥

प्र पर्वतानामुशती उपस्थादश्वे इव विषिते हासमाने ।
गावेव शुभ्रे मातरा रिहाणे विपाट्छुतुद्री पयसा जवेते ॥ १ ॥

॥ अथद्वितीया ॥

इन्द्रेषिते प्रसवं भिक्षमाणे अच्छा समुद्रं रथ्येव याथः ।
समाराणे ऊर्मिभिः पिन्वमाने अन्या वामन्यामप्येति शुभ्रे ॥ २ ॥

॥ अथतृतीया ॥

अच्छा सिन्धुं मातृतमामयासं विपाशमुर्वीं सुभगामगन्म ।
वत्समिव मातरा संरिहाणे समानं योनिमनु संचरन्ती ॥ ३ ॥

॥ अथचतुर्थी ॥

एना वयं पयसा पिन्वमाना अनु योनिं देवकृतं चरन्तीः ।
न वर्तवे प्रसवः सर्गतक्तः किंयुर्विप्रो नद्यो जोहवीति ॥ ४ ॥

॥ अथपंचमी ॥

रमध्वं मे वचसे सोम्याय ऋतावरीरुप मुहूर्तमेवैः ।
प्र सिन्धुमच्छा बृहती मनीषावस्युरह्वे कुशिकस्य सूनुः ॥५॥ १२॥

॥ अथषष्ठी ॥

इन्द्रो अस्माँ अरदद्वज्रबाहुरपाहन्वृत्रं परिधिं नदीनाम् ।
देवोनयत्सविता सुपाणिस्तस्य वयं प्रसवे याम उर्वीः ॥६॥

॥ अथसप्तमी ॥

प्रवाच्यं शश्वधा वीर्यं१ तदिन्द्रस्य कर्म यदहिं विवृश्चत् ।
वि वज्रेण परिषदो जघानायन्नापोयनमिच्छमानाः ॥ ७ ॥

मांगता है तो, ऋचा परमेश्वरकृत कैसें सिद्ध होवेंगी ? और ऋषि तिन ऋचायोंके कैसें सिद्ध होवेंगे ? जेकर वेद अपौरुषेय है, तब तो किसीके भी रचे सिद्ध नही होवेंगे; जेकर कहोंगे ब्रह्माजीने प्रथम वेदका उच्चार करा, इसवास्ते ब्रह्माजीके रचे वेद हैं, तब तो, यह जो कथन वेदोंमें है कि, मानसयज्ञसें ऋगादिवेद उत्पन्न भए, तथा अग्नि वायु सूर्यसें तीन वेद ब्रह्माजीने खैंचके काढे, इत्यादि मिथ्या सिद्ध होवेगा. इसवास्ते येह सर्व वेद ब्राह्मणोंकी स्वकपोलकल्पनासें रचे गए हैं, नतु ईश्वर प्रणित; परस्पर विरुद्ध, और युक्तिप्रमाणसें बाधित होनेसें.

तथा ऋग्वेदसंहिताष्टक ३, अध्याय ३, वर्ग २३, में लिखा है—अतीतकालमें विश्वामित्रका शिष्य सुदा नाम राजऋषि होता भया, सो किसी कारणसें वसिष्ठजीका द्वेषी होता भया, तब विश्वामित्र स्वशिष्यकी रक्षावास्ते इन ऋचायोंकरके शाप देता भया. येह जो शापरूप ऋचायों है, तिनकों वसिष्ठके संप्रदायी नही सुनते हैं । इतिभाष्यकारः । वे ऋचायों येह हैं.—

तत्राद्या सूक्ते एकविंशी ॥

इन्द्रोतिभिर्बहुलाभिर्नो अद्य याच्छ्रेष्ठाभिर्मघवञ्छूर जिन्व ।
यो नो द्वेष्ट्यधरः सस्पदीष्ट यमु द्विष्मस्तमु प्राणो जहातु ॥२१॥

॥ अथद्वाविंशी ॥

परशुं चिद्वि तपति शिंबलं चिद्वि वृश्चति ।
उखा चि दिन्द्र येषन्ती प्रयस्ता फेनमस्यति ॥ २२ ॥

॥ अथत्रयोविंशी ॥

न सायकस्य चिकिते जनासो लोधं नयन्ति पशु मन्यमानाः ।
नावाजिनं वाजिना हासयन्ति न गर्दभं पुरो अश्वान्नयन्ति ॥२३॥

आए मालुम होते हैं. क्योंकि, इसी पत्तन (घाट) में शतद्रू और वियासा नदियां मिलती हैं. वहुत अगाध पाणी देखके तीन ऋचायोंसें नदीयोंकी स्तुति करी कि, मेरे उतरनेको मार्ग देओ; तव नदीयोंने कहा कि, हमको इंद्रकी आज्ञा निरंतर वहनेकी है, इसवास्ते हम चलनेसें वंध नही होवेंगी. इसत्तरें परस्पर नदीयोंका और विश्वामित्रका वार्तालाप हुआ, और विश्वामित्रने नदीयोंकी स्तुति करी, तव विश्वामित्रके रथकी धुरीसें भी हेठां पाणी हो गया. तव विश्वामित्र सोमवल्लीके लेनेवास्ते पार उतरके आगे गया. शतद्रू और विपाट् इनका नाम मूलश्रुतिमें है. इति॥

अव हे पाठकगणो! तुम विचार करो कि, वेद ईश्वर वा ब्रह्मा वा परब्रह्मका रचा वा अनादि अपौरुषेय किसतरें सिद्ध हो सक्ता है? क्योंकि सर्वसूक्तोंके न्यारे २ ऋषि हे, और जिन २ ऋचायोंके जे जे ऋषि हैं, तिन २ ऋषियोंनें तप करके ऋचायें प्राप्त करी हैं; और प्रथम गायन करी हैं, तिन २ ऋचायोंके ते ते ऋषि हैं; ऐसा भाष्यमें लिखा है. और दशो मंडलोंके द्रष्टा दश ऋषियोंके नाम लिखे हैं; जितनी ऋचा जिस मंडलमें हैं तिन सर्वका स्वरूप जिसने मंडलरूपसें पहिले देखा, सो मंडलका द्रष्टा है. विश्वामित्रने, जे नदीयोंकी स्तुतिकी ऋचायों पठण करी वे ऋचायों परमेश्वरकी रची क्योंकर सिद्ध हो सक्ती हैं? ऐसेंही नदीयोंने गायन करी ऋचायों—इसीतरें संपूर्ण ऋग्वेद भरा है. जेकर कहोंगे, अग्नि, सूर्य, अश्विनौ, यम, ऋभुव, उषा, वायु, वरुण, मैत्रावरुण, इंद्रादि ये सर्व ब्रह्मरूप है, इसवास्ते जो इनकी स्तुति है, सो सर्व ब्रह्मकीही स्तुति है. तव तो कुत्ते, विल्ले, गधे, सूयर, गंदकीके कीडे, इत्यादि सर्व जंतुयोंकी स्तुति वेदमें क्यों नही करी? और जगे जगे यह लिखा है कि, हे इंद्र! तूं हमारे शत्रुयोंका नाश कर, असुरोंका नाश कर, और हमको धन दे, गौयां दे, पुत्र दे, परिवार दे, राज्य दे, स्वर्ग दे, इत्यादि वस्तुयों कौन मांगता है? परमेश्वर किससें मांगता है? और कृतकृत्य परमेश्वरको पूर्वोक्त वस्तुयोंसें क्या प्रयोजन है? वीतराग और निरुपाधि मुक्तरूप होनेसें. जेकर कहोंगे, परमेश्वर नही मांगता है, किंतु यजमान,

तथा ऋ० सं० अष्टक ४ अध्याय ४ वर्ग २० में लिखा है कि—सप्तवध्रिनामा ऋषि था, तिसके भतीजे तिसको पेटीमें घालके मुद्रा करके बडे यत्नसें अपने घरमें स्थापन करते हुए; जैसें रात्रिमें अपनी स्त्रीसें विषय सेवन न करे, तैसें करते हुए. सवेरे २ तिस पेंटीको उघाडके तिसको मारपीटके फिर पेटीमें घालके रखते भए. ऐसें चिरकालतक सो कृश और दुःखी तिस पेटीमें रहा, चिरकालतक मुनिने तिस पेटीसें निकलनेका उपाय चिंतन करा, तब हृदयमें निश्चय करके अश्विनौ देवतायोंकी स्तुति करता भया; तब अश्विनौ आए, पेटी उघाडके तिसको निकालके शीघ्र अदृष्ट हो गए. सो ऋषि भार्यासें विषय सेवन करके तिनके भयसें सवेरे पेटीमें प्रवेश करके पूर्वकीतरें स्थित रहा; तिस ऋषिने पेटीके निवास समयमें येह दो ऋचायों देखी, जो आगे कहेंगे. ॥ इतिभाष्यकारः ॥ अब श्रुतियां लिखते हैं.

॥ प्रथमा ॥

वि जिहीष्व वनस्पते योनिः सूष्यन्त्या इव।
श्रुतं मे अश्विना हवं सप्तवध्रिं च मुञ्चतम् ॥ १ ॥ ५ ॥

॥ अथद्वितीया ॥

भीताय नाधमानाय ऋषये सप्तवध्रये।
मायाभिरश्विना युवं वृक्षं सं च वि चाचथः ॥ २ ॥ ६ ॥

भावार्थः—हे वनस्पतिके विकाररूप पेटी! तूं स्त्रीकी योनिकीतरें चौडी हो जा, जैसें स्त्रीकी योनि संतानके जननेके समयमें चौडी हो जाती है, तैसें तूं भी हो जा. हे अश्विनौ! तुम सप्तवध्रिकी विनती सुनके मूल सप्तवध्रिको छुडावो! निकलते हुए डरतेको, और निकलना वांछतेको, हे अश्विनौ! ऐसे मूझ सप्तवध्रिको इस पेटीसें निकालनेको आओ. ॥

अब वाचकवर्गो! तुम देखो कि, यह परमेश्वरकी कैसी भक्तवत्सलता है कि, पेटीमें बैठे अपने भक्त सप्तवध्रि ऋषिको कैसी ज्ञानरसकी भरी

॥ अथचतुर्विंशी ॥

इम इ॑न्द्र भरतस्य॑ पुत्रा अ॑पपि॒त्वं चि॑कितु॒र्न प्र॑पि॒त्वम्।
हि॒न्वन्त्य॑श्व॒मर॑णं॒ न नित्यं॒ ज्या॑वाजं॒ परि॑ णयन्त्या॒जौ ॥२४॥

ऋ० सं० अ० ३॥

इन चारों ऋचायोंमें यह भावार्थ है कि, विश्वामित्रने शाप देते हुए, प्रथमार्द्ध ऋचामें तो, आत्मरक्षा करी है; आगे शाप दिया. तूं पतत् होवे, तूं मर जावे, इत्यादि। फिर इंद्रको संबोधन करा कि, हे इंद्र! मेरा शत्रु मेरे मंत्रकी शक्तिसें प्रहत होके पडो, और मुखसें फेन (झाग) वमन करो.। प्रथम मेरा तप क्षय न हो जावे इसवास्ते शाप देनेसें हट कर मौनकर बैठे विश्वामित्रको वसिष्टके पुरुष बांध पकडके ले चले, तब विश्वामित्र तिनको कहता है, हे लोको! नाश करनेवाले विश्वामित्रके मंत्रोंका सामर्थ्य तुम नही जानते हो! शाप देनेसें मेरा तप न क्षय हो जावे, ऐसें विचारके मुझे मौनवंतको पशुसमान जानके बांधके इष्टस्थानमें ले जाते हो; ऐसें स्वसामर्थ्य दिखलाके कहता है कि, क्या वसिष्ठ मेरी बराबरी कर सक्ता है? तिसके साथ स्पर्द्धा करनेसें विद्वान् लोक मेरी हांसी न करेंगे? इसवास्ते मैं वसिष्ठके साथ स्पर्द्धा नही करता हुं। हे इंद्र! भरतके वंशके होके, क्या विश्वामित्र इनके साथ स्पर्द्धा करेंगे? येह तो विचारे ब्राह्मणही है.॥

अब पाठकगणो! विचारो कि, येह श्रुतियां परमेश्वरने रची है? क्या वसिष्ठके शाप देनेवास्ते परमेश्वरने येह श्रुतियां विश्वामित्रको दीनी थी? क्योंकि, इस सूक्तका ऋषि विश्वामित्रही है; विश्वामित्रने तप करके ईश्वरके अनुग्रहसें येह ऋचायों संपादन करी है!! क्या कहना है दयालु परमेश्वरका!!! जिसने विश्वामित्रके तपसें संतुष्टमान होके, अपूर्वज्ञानरससें भरी हुई ऐसी २ ऋचायों प्रदान करी. लज्जा भी कहनेवालेको नही आती कि, वेद परमेश्वरके रचे हुए हैं! इसवास्ते किसी प्रमाणसें भी वेद ईश्वरका रचा सिद्ध नही होता है.

मैं तेरा बहुमान करुंगी. ऐसें इंद्रको कहके फिर अपाला विचार करती है कि, इहां आया यह इंद्रही है, अन्य नही. ऐसा निश्चय करके अपने मुखमें डाले सोमको कहती है, हे सोम! तूं आए हुए इंद्रकेतांइ पहिले हलवे २, तदपीछे जलदी २, सर्वओरसें स्रव. तदपीछे इंद्र तिसको वांछके अपालाके मुखमें रहे दाढोंसें पीसे हुए सोमको पीता हुआ. तदपीछे इंद्रके सोम पीया हुआं, त्वग्दोषके रोगसें मुझको मेरे पतिने त्याग दीनी है, अब मैं इंद्रको सम्यक् प्रकारे प्राप्त हुई हुं; ऐसें अपालाके कहे हुए इंद्र अपालाको कहता हुआ कि, तूं क्या वांछती (चाहती) है? मैं सोही करुं. इंद्रके ऐसें कहे थके अपाला वर मांगती है कि, मेरे पिताका शिर रोमरहित (टट्टरीवाला) है।१। मेरे पिताका खेत उषर (फलादिरहित) है।२। और मेरा गुह्यस्थान भी रोमरहित है।३। येह पूर्वोक्त तीनों रोम फलादियुक्त कर दे. ऐसे अपालाके कहे हुए तिसके पिताके शिरकी टट्टरी दूर करके, और खेतको फलादियुक्त करके, अपालाके त्वग्दोषके दूर करनेकेवास्ते अपने रथके छिद्रमें गाडेके और युगके छिद्रमें अपालाको तीन वार तारकीतरें खेंचता हुआ, तिस अपालाकी जो पहिली वार चमडी उतरी तिससें शल्यक (मयना), दूसरी चमडीसें गोधा (गोह) हुई, और तीसरी वेर उतरी चमडीसें किरले (कांकडे) होते भए. तिसपीछे इंद्र तिस अपालाको सूर्यसमान चमकती हुई चमडीवाली करता हुआ. यह इतिहासिक कथा है. और यह, कथा, शाट्यायन ब्राह्मणमें स्पष्टपणे कही है. और यही ऊपर लिखा हुआ अर्थ, कन्यावार इत्यादि सात ऋचायोंमें कथन करा है; वे ऋचायें येह हैं.

॥ प्रथमा ॥

कन्या३ वारवायती सोममपि स्रुताविदत्।
अस्तं भरन्त्यब्रवीदिन्द्राय सुनवै त्वा शक्राय सुनवै त्वा॥१॥

॥ अथद्वितीया ॥

असौ य एषि वीरको गृहं गृहं विचाकशत्।
इमं जम्भसुतं पिब धानावन्तं करम्भिणमपूपवन्तमुक्थिनम्।२॥

ऋचायों प्रदान करी कि, जिनके पढनेसें अश्विनौने आकर तिसको पेटीसें बाहिर काढा! और तिस ऋषिने भतीजोंके भयसें रात्रिको छाना निकसके स्वभार्यासें संपूर्ण रात्रिमें विषय भोग करके सवेरेको फिर पेटीमें प्रवेश कर जाना.। वाह !!! बलिहारि है, ऐसे ऋषि महात्मायोंकी कि जिनकी अतिदुःष्कर तपस्यासें तुष्टमान होके पेटीमें बैठेको दो ऋचायों प्रदान करी, जिससें सप्तवध्रि निहाल हो गया! पाठकवर्गो! परमेश्वर विना ऐसा दयालु कौन होवे? कोइ भी नही. इसवास्तेही तो पंडितलोक ऋग्वेदको प्रधान वेद कहते हैं कि, जिसमें ऐसा २ अत्यद्भुत ज्ञान भरा है!!!

तथा ऋ० सं० अष्टक ६ अध्याय ६ वर्ग १४ में लिखा है ॥ अतीतकालमें अत्रिऋषिकी पुत्री अपालानामा ब्रह्मवादिनी किसीकारणसें त्वग्रोगसंयुक्त थी, इसवास्तेही पतिने तिसको दुर्भगा जानके त्याग दीनी थी; सा अपाला अपने पिताके आश्रममें त्वग्दोषके दूर करनेवास्ते चिरकालतक इंद्रको आश्रित्य होके तप करती हुई. सा कदाचित् इंद्रको सोमवल्ली प्रियकर है, इसवास्ते मैं सोमवल्लीको इंद्रकेतांई दुंगी, ऐसी बुद्धि करके नदीके कांठेउपर जाती हुई; तहां स्नान करके, और रस्तेमें मिली सोमवल्लीको लेके, अपने घरको आती हुई. रस्तेमेंही तिस सोमको अपाला खाने लगी, तिसके भक्षणकालमें दांतोंके घसनेसें शब्द उत्पन्न हुआ, तिस शब्दको पत्थरोंसें पीसते हुए सोमके समान ध्वनि जानकर तिस अवसरमेंही इंद्र तहां आता हुआ. आयके, तिस अपालाको कहता हुआ कि, क्या इहां पत्थरोंसें सोमवल्ली पीसते हैं? अपाला कहती है, अत्रिकी कन्या स्नानकेवास्ते आकर सोमवल्लीको देखके तिसका भक्षण करती है, तिसके भक्षण करनेकाही यह ध्वनि है; नतु पत्थरोंसें पीसते सोमका. तैसें कहा हुआ इंद्र, पीछे जाने लगा; जाते हुए इंद्रको अपाला कहती है, किसवास्ते तूं पीछे जाता है? तूं तो सोमके पीनेवास्ते घरघरमें जाता है, तब तो इहां भी मेरी दाढोंकरके चावी हुई सोमवल्लीको तूं पी (पानकर) और धानादिको भक्षण कर. अपाला ऐसें इंद्रको अनादर करती हुई फिर कहती है, इहां आए तुझको मैं इंद्र नही जानती हुं; तूं मेरे घरमें आवे तो,

होनेसें त्रिकालमें हैही नही; एकशुद्ध ब्रह्मही था. तो फिर, इंद्रको उद्देश्यके तप काहेको करती थी? इंद्र भी तो मायाकी भ्रांतिरूपही था; जब अपालाने नदीऊपरसें सोम लेके चर्वण करा, तिसके दांतोंका शब्द सुनके इंद्रने जाना कि, पत्थरोंसें सोमके पीसनेका यह शब्द है; इंद्रको ऐसी भ्रांति हुई—क्या इंद्र महाराज स्वर्गके सुखोंको छोडके तिस जगे भटकता फिरता था? तथा इंद्रको तो ऋग्वेदादिमें परमेश्वरकाही स्वरूप लिखा है तो, क्या ऐसे ज्ञानवान् इंद्रको अपालाके दांतोंका शब्द पत्थरोंका शब्द मालुम हुआ? इससें सिद्ध होता है कि, तुमारा माना वेदादिकोंका वक्ता ईश्वर भी ऐसाही ज्ञानवान् होगा.—तथा पत्थरोंसें जगत्में लोक सोमरसही पीसते हैं? अन्य नही? जो सोमही पीसनेका शब्द है, अन्यका नही. तहां यज्ञशाला भी नही थी कि, जिससें सोम पीसनेकाही निश्चय होवे.

तथा अपाला ब्राह्मणी कोइ ऊंटणी थी, वा राक्षसणी थी? कि जिसके दांतोंका शब्द पत्थरोंके शब्दसमान इंद्रको मालुम पडा! क्या इंद्र भिक्षाचरोंकीतरें घरघरमें सोमरस पीता फिरता था? और अपाला बडी नालायक थी? कि जिसने अपने मुखमें चर्वण करी अपने मुखकी लाला और श्लेष्मयुक्त जुगुप्सनीय मलीन ऐंठी चगली हुई सोमकी निमंत्रणा इंद्रको करी? इंद्र भी क्या तिसविना मरा जाता था? जिससें पूर्वोक्त चावी हुई लाला थूकयुक्त सोमवाले अपालाके मुखको अपने मुखसें चूसके सोमका सर्व रस पी गया!

वेदांतीसाहबः—तुम नही जानते, अपालाने भक्तिसें इंद्रको सोमकी आमंत्रणा करी, और इंद्रने भक्तिवश होके चगला हुआ भी सोमरस पी लीया, इसमें क्या दोष है?

उत्तरः—तुमारा कोइ भक्त, जो तुमको अत्यंत अच्छी लगती होवे ऐसी मिठाइ मुखमें चावके तुमको कहे कि, मेरे मुखसें मुख लगाके तुम यह मिठाइ चूसके पी लो, तो क्या तुम पी लोंगे? नही. तो इंद्रने किसतरें चगल पी लीनी?

॥ अथतृतीया ॥

आ चन त्वाचिकित्सामोधिं चन त्वा नेमसि ।
शनैरिव शनकैरिवेन्द्रायेन्दो परि स्रव ॥ ३ ॥

॥ अथचतुर्थी ॥

कुविच्छकत्कुवित्करत्कुविन्नो वस्यसस्करत् ।
कुवित्पतिद्विषो यतीरिन्द्रेण संगमामहै ॥ ४ ॥

॥ अथपंचमी ॥

इमानि त्रीणि विष्टपा तानीन्द्र वि रोहय ।
शिरस्ततस्योर्वरामादिदं म उपोदरे ॥ ५ ॥

॥ अथषष्ठी ॥

असौ च या न उर्वरादिमां तन्वं१ मम ।
अथो ततस्य यच्छिरः सर्वा ता रोमशा कृधि ॥ ६ ॥

॥ अथसप्तमी ॥

खे रथस्य खेनसः खे युगस्य शतक्रतो ।
अपालामिन्द्र त्रिष्पूत्व्यकृणोः सूर्यत्वचम् ॥ ७ ॥

ऋ० सं० अष्टक ६ । अ० ६ ॥

अब वाचकवर्गों ! विचार करो कि, यह कथन परमेश्वर सर्वज्ञका सिद्ध हो सक्ता है ? प्रथम तो इस सूक्तका अपाला स्त्रीही ऋषि है, और परमेश्वरने तिसके तपसें तुष्टमान होके तिसको यह अपूर्व ज्ञानरससें भरा सूक्त दीना ! तिसमें पूर्वोक्त कथन होनेसें, वेद, अनादि अपौरुषेय कैसें सिद्ध हो सक्ता है ? और अपाला तो, ब्रह्मवादिनी थी, तिसको पिताके शिरकी टट्टरी, उषरक्षेत्र, गुह्यस्थानोपरि केश न होने, इनकी चिंता क्यों हुई; क्योंकि, तिसके ज्ञानमें तो ये तीनों वस्तुयों माया (भ्रांति) रूप

तथा ऋ० सं० अष्टक ७ अध्याय ६ वर्गमें यम और यमीका संवाद है. विवस्वतके पुत्रपुत्री युगल प्रसूत हुए, जब वे यौवनवंत हुए तब यमी बहिन, अपने यमनामक भाइको देखके कामातुर होके तिसकेसाथ भोग करनेकी इच्छावंत हुई; और यमको कहने लगी कि, तूं मेरेसाथ मैथुन करके मुझे तृप्त कर. तब यमने कहा कि, बहिन और भाइका मैथुन (विषय) महापापका हेतु है; इसवास्ते मैं यह काम कदापि नही करुंगा. तब यमीने, यमको समझाने, और तिसकेसाथ संभोग (विषय) सेवनेकेवास्ते अनेक युक्तियां, और दृष्टांत दीए हैं. परंतु यमने तिसको उत्तर देके तिसका कहना स्वीकार नही करा. यह कथन चतुर्दश (१४) ऋचायोंमें है, और इस सूक्तके ऋषि भी यम और यमी है. यह सूक्त यमयमीऊपर संतुष्टमान होके परमेश्वरने तिनको प्रदान करा था! अब वाचकवर्गके वाचनेवास्ते नमूनेमात्र दो ऋचायों अर्थसहित लिख दिखाते हैं.

उशन्ति घा ते अमृता स एतदेकस्य चित्त्यजसं मर्त्यस्य।

नि ते मनो मनसि धाय्यस्मे जन्युः पतिस्तन्व१मा विविश्याः ॥३॥

ऋ० अ० ७। अ० ६॥

भाष्यानुसारभाषार्थः—पुनरपि फिर यमी यमप्रतें कहती है। (घा) ऐसा निपात अपि अर्थमें है, हे यम! (ते) प्रसिद्ध-वे—(अमृतासः) प्रजापतिआदि देवते भी (एतत्) ईदृशं—शास्त्रने जो अगम्य कही है (त्यजसं) त्यागीए हैं, परकेतांइ देइए हैं, ऐसी जो स्वबेटी बहिनादि स्त्रीजात तिनको (उशन्ति) कामयन्ते अर्थात् तिनकेसाथ पूर्वोक्त देवते भोग करनेकी इच्छा करते हैं। (एकस्यचित्) एकही सर्व जगत्का मुख्य प्रजापति ब्रह्मादि देवतायोंका भी अपनी बेटी भगिनीके साथ संबंध है। इसकारणसें (ते) तेरा (मनः) चित्त (अस्मे) मेरे (मनसि) चित्तमें (निधायि) स्थापन कर, अर्थात् जैसें मैं तेरेको भोगेच्छा करके वांछती हुं, तैसें तूं भी मुझको वांछ,—मेरेसें भोग करनेकी इच्छा कर.

वेदांतीः—इसका तात्पर्य तुम नही जानते, इसका तात्पर्य यह है कि, इंद्र भी ब्रह्मज्ञानी था, और अपाला भी ब्रह्मज्ञानिनीथी, इसवास्ते तिनके ज्ञानमें ब्रह्मविना अन्य कुछ भी नही था; इसवास्तेही तिसके मुखसें मुख लगाके सोमरस इंद्रने चूसा. ब्रह्मसें ब्रह्म मिल गया, इसमें क्या दोष है ?

उत्तरः—इसकालमें कितनेक वेदांती परस्त्रीयोंसें भोग करते हैं, तिन स्त्रीयोंके मुखकी लाला चाटते (चूसते) हैं; क्या वे भी ऐसा ब्रह्म एकत्व समझकरकेही करते होवेंगे ?

वेदांतीः—हां.

उत्तरः—तब तो माता, बहिन, बेटीके गमन करनेमें भी कुछ दोष नही होना चाहिए.

वेदांतीः—है तो ऐसेंही, परंतु जगत्व्यवहार उल्लंघन करना न चाहिए.

उत्तरः—जबतक ब्रह्मज्ञानी जगत्व्यवहार मानेंगे, और माता, बहिन, बेटीको अगम्य जानेंगे, तबतांइ तिनकी माया (भ्रांति) दूर नही होनेसें तिनको ब्रह्मज्ञान नही होवेगा. असल ब्रह्मज्ञानी तो ब्रह्माजी थे, जिनोंने सर्व जगत्को ब्रह्मरूप अपनाही स्वरूप जानकर अपनी पुत्रीसेंही संभोग करा; यही प्रायः सर्ववेदांतियोंका तात्पर्य (सिद्धांत) है.

और अपालाके पिताके शिरमें टहरी होनेसें अपालाके बापको क्या दुःख था ? क्या उसको जान चडना था ? और अपालाके गुह्यस्थानमें रोम नही थे तो, तिसको क्या दुःख था ? हां, जेकर इंद्रसें यह मांगती कि, मेरे शरीरका तूं रोग दूर कर, सो तो वर मांगा नही. वो तो इंद्रने आपही मुखकी चगल सोमरस पीके संतुष्ट होके तिसको यंत्रमेंसें खैंचके छील छालके अच्छी (चंगी) कर दीनी. इस पूर्वोक्त श्रुतियोंके कथनमें सत्य कितना है, और झूठ कितना है, सो वाचकवर्ग आपही विचार लेवेंगे. क्योंकि, मनुष्यकी चमडीसें भी क्या मयना (शल्यक), गोह, और किरले, उत्पन्न हो सक्ते हैं ? कदापि नही हो सक्ते हैं. इसवास्ते वेद ईश्वरके कथन करे नही सिद्ध होते हैं; किंतु ब्राह्मणोंकी स्वकपोलकल्पना सिद्ध होती है. इति ॥

समीक्षाः—इसमें हम यह कहना चाहते हैं कि, यमयमीने जब तप-करके यह सूक्त प्राप्त करा था, तब परमेश्वरने तुष्टमान होकर यह सूक्त दीना; और पूर्वोक्त कथन परमेश्वरने यमीके मुखसें करवाया कि, तूं अपने भाइ यमसें विषयसंभोग करनेकेवास्ते प्रार्थना कर कि, हे यम! तूं मेरेसाथ भोग कर. वाह!!! परमेश्वरकी लीला कि, जिसने भाइकेसाथ बहिनको मैथुनकी प्रार्थना करवाई! और यमसें ऋचाद्वाराही विषय सेवनकी नही करवाइ; क्या वाचकवर्गों! परमेश्वर ऐसे २ ही काम करता रहता है? और ऐसे २ कथनोंकी उत्तमतासेंही वेद परमेश्वरके रचे माने जाते हैं? और यही वेदका अपौरुषेयत्व अनादित्व है? जिनमें ऐसा २ कथन है.

और यमने जो कहा कि, " प्रजापति ब्रह्माजी अपरिमित सामर्थ्यवाले थे, इसवास्ते उनोंने अगम्य गमन करा अर्थात् अपनी पुत्रीसें विषय सेवन करा. " क्या अपरिमित सामर्थ्यवाले, ऐसे २ अनुचित काम करते हैं? जो सर्व जगत् और तत्ववेत्तायोंके निंदनीय होते हैं. जेकर प्रजापति अपरिमित सामर्थ्यवाले थे तो क्या तिनसें काम न जीता गया? कि, जिसको यमसरीखे वा साधारण जन भी जीतते हैं, और जीत शक्ते हैं. यदि कहो कि, यह प्रजापतिकी लीला है तो, क्या पुत्रीकेसाथ विषय सेवन करना यही लीला रह गई थी? अन्यलीला करनेका अवसर नही था? जिससें पुत्रीगमनरूप लीला कर दिखलाई? क्या ऐसी लीला करे विना प्रजापतिका सामर्थ्य, और यश जगत्में प्रगट नही होता था? जिससें ऐसी लीला करी? वाहजी वाह!!! जगत् सृजनहारे पितामहके कर्म!!! इन ब्राह्मणऋषियोंने बडे २ महात्मायोंको भी, अपने लेखसें दूषित करे हैं; इसवास्ते यह वेदोंकी रचना सर्व ब्राह्मणोंकी स्वकपोलकल्पना है.

सेवन करता भया, तिससे मनुनामा राजऋषि उत्पन्न भया, । तदपीछे यह सरण्यू नही है, ऐसा जानके सूर्य घोडा बनके तिस घोडीकेसाथ जाके विषय सेवन करता भया, तिन दोनोंके क्रिडा करते हुए वीर्य पृथिवीउपर पडा, तिसको गर्भकी इच्छा करके घोडीने सूंघा तिस घोडीसें दोनो अश्विनीकुमार उत्पन्न हुए। इति। ऋ० सं० अष्टक ७। अ०६। व० २३॥

अपिच एक अन्य बात यह है कि, (जन्युः) यह लुप्तोपमा है जन्युरिव जैसें जननेवाला पिता प्रजापति ब्रह्मा अपनी पुत्रीका भर्ता-पति होके अपनी बेटीके शरीरको संभोग करके विषय सेवन करता भया, तैसें तूं भी (पतिः) मेरा पति होकर (तन्वं) मेरे शरीरको (आविविश्याः) संभोग करके 'आविश' योनिमें प्रजनन प्रक्षेप, उपगूह चुंबनादि करके मुझको अच्छीतरेसें भोग इत्यर्थः ॥ ३ ॥

यह सुन कर यम यमीको उत्तर देता है.

न यत्पुरा चकृमा कद्ध नूनमृता वदन्तो अनृतं रपेम ।
गन्धर्वो अप्स्वप्या च योषा सा नो नाभिःपरमं जामि तन्नौ ॥४॥

अ० ७ । अ० ६ । व० ६ ॥

भाषार्थः-(पुरा) पहिले प्रजापतिने (यत्) जो अगम्य गमन करा था, अर्थात् अपनी पुत्रीसें जो संभोग करा था, सो अपरिमित प्रमाण रहित सामर्थ्यवंत होनेसें करा था, तैसें हम (न चकृम) नही कर सक्ते हैं. । हम (ऋता) सत्य बोलते हुए (अनृतं) असत्य (कद्ध) कबी (नूनं) निश्चयकरके (रपेम) बोलते हैं ? कबी भी नही. अर्थात् हम कबी भी अगम्य गमन नही करेंगे. अपिच (अप्सु) अंतरिक्षमें स्थित (गन्धर्वः) किरणोंके, वा पानीके धारण करने-वाला आदित्य, और (अप्या) अंतरिक्षस्था सा प्रसिद्धा-आदित्य (सूर्य)-की भार्या (स्त्री) सरण्यू, ये दोनों (नौ) अपने दोनोंके (नाभिः) उत्प-त्तिस्थान अर्थात् मातापिता है (तत्) तिस कारणसें (नो) अपने दोनोंका उत्कृष्ट (जामि) बांधवपणेका-भाइबहिनका संबंध है, तिसकारणसें पूर्वोक्त अगम्यगमनरूप अयोग्य कार्य, मैं नही करुंगा. इत्यभिप्रायः ॥ ४ ॥ *

* त्वष्टा नामक देवता, अपनी सरन्यूनामा पुत्रीको सूर्यकेतांइ देता भया, तिनोंके संबंधसें यम और यमी उत्पन्न भए. एकदा अपने सदृश स्त्रीके पास पुत्रपुत्रीको स्थापन करके सरण्यू, घोडीका रूप करके उत्तरकुरुको चली गई. । अथ सूर्य तिस अन्यस्त्रीको सरण्यू जानके तिसकेसाथ विषय

है? क्योंकि, जो ऋचायोंका कर्त्ता है, सोही सर्पोंको नमस्कार करता है. जेकर कहो कि, यजमान सर्पोंको नमस्कार करता है, तब तो ऋचायोंका भी कर्त्ता यजमानही सिद्ध होवेगा, नतु परमात्मा. जेकर परमात्माही यजमानसें सर्पोंको नमस्कार करवाता है, तब तो परमात्माही अज्ञानका पोषक, और तिर्यंचादिकोंको नमस्कार करानेसें असमंजसकारी है; इसवास्ते वेद परमात्माके रचे हुए नही हैं.

तथा यजुर्वेदके १९ मे अध्यायमें सौत्रामणी यज्ञका वर्णन है, जिससें भी यही सिद्ध होता है कि, वेद अनादि, वा ईश्वरकृत नही है; किंतु अज्ञानीयोंका अज्ञान विजृंभित है. सो जो कोइ पक्षपातरहित होकर वांचेगा, और शोचेगा, तो उसको मालुम हो जायगा. यद्यपि इस अध्यायमें विस्तारपूर्वक वर्णन है, और कुछ भी परमार्थ सिद्ध नही कर सक्ता है, तथापि भव्य जीवोंको वेदकी लीला जाननेकेवास्ते संक्षेपमात्रसें भावार्थमात्र लिखते हैं. ॥ श्रुति १२ में भाष्यकार महीधरजी लिखते हैं— अनुपहूत सोमके पीनेसें भ्रष्ट हुए इंद्रका वीर्य, नमुचिनामा असुर पीता भया, तब देवताओंनें इंद्रका भैषज्य करा, तिसमें अश्विनीकुमार, और सरस्वती, ये तीन भिषज अर्थात् वैद्य हुए. और सौत्रामणी औषध हुआ; इत्यादि—अब श्रुतिका अर्थ लिखते हैं—देवता सौत्रामणीनामा यज्ञ इंद्रके औषधरूप भेषजको विस्तारते हुए, तिससमयमें अश्विनीकुमार, और सरस्वती, ये तीन इंद्रकेतांइ सामर्थ्यके देनेवाले वैद्य होते भए.

श्रुति ३४—नमुचिने इंद्रका वीर्य पीया, तिसको मारनेसें रुधिरमिश्र सोम उत्पन्न हुआ, तिसको देवते पीते हुए.—असुरपुत्र नमुचिके पाससें अश्विनीकुमार सोम हरते भए, और इंद्रके वीर्यकेवास्ते सरस्वती, तिस अश्विनीकुमारके लाए हुए सोमको पीसती हुई. तिस अश्विनीकुमारके हरे हुए, और सरस्वतीके पीसे हुए, इस सोमको इहां यज्ञमें मैं भक्षण करूं. कैसा है सोम? रुधिरकरकेरहित रसवाला, और परमैश्वर्य देनेवाला है.

तथा—

नमोऽस्तु सर्पेभ्यो ये के च पृथिवीमनु।
येऽअन्तरिक्षे ये दिवि तेभ्यः सर्पेभ्यो नमः ॥६॥
या इषवो यातुधानानां ये वा वनस्पती १ँ॥रनु।
ये वावटेषु शेरते तेभ्यः सर्पेभ्यो नमः ॥ ७॥
ये वामी रोचने दिवो ये वा सूर्यस्य रश्मिषु।
येषामप्सु सदस्कृतं तेभ्यः सर्पेभ्यो नमः ॥ ८॥

॥ यजुर्वेदाध्याय १३ ॥

भाषार्थः—'येकेच' जे केइ 'सर्पन्ति सर्पा लोका पृथिवीमनु गता प्राप्ता' तिनसर्पोंको नमस्कार होवे, जे सर्प अंतरिक्ष लोकमें वर्तमान है, और जे सर्प 'दिवि' स्वर्गलोकमें वर्तमान है, तिन सर्पोंकेताइं अर्थात् तीनों लोकोंके सर्पोंको नमस्कार होवे; सर्पशब्दकरके लोक कहते हैं।६। जे दुःखोंको धारण करे, ते यातुधाना—राक्षसादि, तिनोंकी जे जातियां; 'इषवः' बाणरूप करके वर्ते हैं, अर्थात् नागपाशबाणरूप जे सर्वोंकी जातियां है, तिनकेताइं; जे अन्य चंदनादि वनस्पतिको वेष्टन करके स्थित रहे हैं, तिनकेताइं; और जे अन्य बिलोंमें वास करते हैं, तिन सर्पोंकेताइं नमस्कार होवे।७। देवलोकके दीप्तस्थानमें जे हमारे अदृश्यमान सर्प है, जे सर्प सूर्यकी किरणोंमें बसते हैं, और जिन सर्पोंका जलमें स्थान है, तिन सर्व सर्पोंकेताइं नमस्कार होवे ॥ ८ ॥

समीक्षाः—छठीश्रुतिका भाष्यमें सर्पशब्दकरके सर्वलोक ग्रहण करे हैं, परंतु यह अर्थ अगली दोनों ऋचायोंसें विरुद्ध है. क्योंकि, अगली ऋचायोंमें सर्पशब्दकरके जे जगत्व्यवहारसें सर्प है, तिनकाही ग्रहण कीया है; नतु लोक. इसवास्ते इन तीनों ऋचायोंमें सर्पोंकोही नमस्कार करा है. अब वाचकवर्गों! विचार करो कि, जब परमेश्वरने वेद रचे हैं तो, क्या परमेश्वर सर्पोंको नमस्कार करता है? वा ब्रह्माजी सर्पोंको नमस्कार

५३–हे सोम! हमारे धीर पूर्वज पितरहि जिस कारणसें तेरेवास्ते यज्ञादि करते भए, इस कारणसें मैं तेरी प्रार्थना करता हूं कि, जे यज्ञके उपद्रव करनेहारे हैं, उनकों तूं दूर कर. इत्यादि–

५६–मैं पितरोंको जानता हुआ.

५७–ते पितर इस यज्ञमें आओ, हमारे वचन सुनो, सुनके पुत्रोंको कहनेयोग्य जो होवे, सो कहो. तथा ते पितर, हमारी रक्षा (पालना) करो.

५८–हमारे पितर इस यज्ञमें देवयानोंकरके आओ.

५९–हे पितरः! हम पुरुषभावकरके चलचित्तवाले होनेकरके तुम्हारा अपराध करते हैं तो भी तुम हमारी हिंसा मत करो.

६०–हे आदित्यलोकमें रहनेवाले पितरः! हवि देनेवाले मनुष्यकेतांइ तुम धन देवो. तथा हे पितरः! पुत्रोंकेतांइ, यजमानोंकेतांइ, अभीष्ट धन देवो. क्योंकि, पितरोंके यजमान पुत्रही होते हैं. हे पितरः! तुम इस हमारे यज्ञमें रस स्थापन करो.

६७–जे पितर इस लोकमें हैं, जे इस लोकमें नही हैं, जिन पितरोंको हम जानते हैं, और जिन पितरोंको हम नही जानते हैं, हे जातवेदः–अग्नि! ते पितर जितने हैं, तिन सर्वको तूं जानता है. इत्यादि.

६८–जे पितर पूर्वे स्वर्गको गए, जे पितर कृतकृत्य होकर ब्रह्मलोकको प्राप्त हुए, जे पितर अग्निमें बैठे हुए हैं, और जे पितर यजमानरूप प्रजामें बैठे हुए हैं, तिन चारों प्रकारके पितरोंकेतांइ आजादिन यह यज्ञनिमित्त अन्न होवे.

८१ सें ९२ श्रुतिपर्यंत—अश्विनीकुमार, और सरस्वती इन तीनोंने जिन जिन वस्तुओंसें इंद्रका रूप बनाया तिनका वर्णन है–यथा–शष्पविरूढव्रीहि (धान्यविशेष) करके इंद्रके रोम बनाए, विरूढयवोंकरके त्वक्–चमडी बनाई, लाजाका मांस बनाया, मासर शष्पादिचूर्ण चरुनिःस्रावोंकरके हाड बनाए, मदिराका लहु बनाया, इंद्रका शरीर रंगनेवास्ते; इसीवास्ते वेदोंमें इंद्रका नाम रोहित लिखा है. दूधसें इंद्रका वीर्य बनाया,

श्रुति ३५—इंद्र सुरा लगा हुआ सोमका अंश, कर्मोंकरके शुद्ध करके पीता हुआ.—इस यज्ञमें प्रायः सुरा (मदिरा) ही की मुख्यता होती है.

३६—पिता, पितामह, प्रपितामहोंको नमस्कार, और विनती है.। पितृभ्यः स्वधायिभ्यः स्वधानमः इत्यादि—

३७—पुनन्तु मा पितरः—हे पितरो! मैनुं (मुझको) शुद्ध करो. इत्यादि—

३८—हे अग्ने! तूं हमारेवास्ते व्रीहिआदि धान्य, और दधिआदि दे, जीवनेका हेतु होनेसें; और हे अग्ने! कुत्तेसदृश दुर्जनोंका नाश कर इत्यादि—

३९—हे देवानुगामीजन! हे बुद्धे! (बुद्धि!) हे विश्व जगत्! हे अग्ने! तुम मुझको पवित्र करो—

४०—४१—अग्निकी प्रार्थना—पवित्रेण पुनीहि मा इत्यादि—

४२—वायुकी प्रार्थना—पवमानःसो अद्य नः इत्यादि—

४३—सूर्यकी प्रार्थना—उभाभ्यां देवसवितरित्यादि—

४४—वैश्वदेवीकी सुराकुंभीकी उपमाद्वारा स्तुति—वैश्वदेवी पुनती इत्यादि—

४५—४६—पित्रोंको और गोत्रियोंको प्रार्थना—

४७—मरनेवाले प्राणियोंके दो मार्ग, मैं सुनता हुआ; एक देवताओंका मार्ग, और दूसरा पितृमार्ग (पितरोंका मार्ग).—द्वे स्रुतीऽअश्रृणवमित्यादि—

४८—हविः और अग्निकी प्रार्थना—इदं हविः प्रजननं मेऽअस्तु इत्यादि—

४९—५०—५१—पितरोंको प्रार्थना—इस लोकमें स्थित पितरो! तुम उर्द्धलोकमें जावो—परलोकमें स्थित पितरो तिस स्थानसें भी परले स्थानमें जावो—अंगिरसके बहुते अपत्य (संतान) अथर्वणमुनिके संतान, भृगुके अपत्य, ये जो हमारे पितर वे हमको सुबुद्धिवाले करो—वसिष्ठके अपत्य जो हमारे पूर्वपितर, जो कि देवताओंको सोम प्राप्त करते हुए उन पितरोंकेसाथ प्रीयमाण हुआ थका यम, हवियोंको भक्षण करो—उदीरतामवरे—अंगिरसो नः पितरः—ये नः पूर्वे पितरः इत्यादि—

९४–सरस्वती अश्विनीकुमारकी स्त्री होके, इंद्ररूप सुंदर गर्भको धारण करती है.

९५–अश्विनीकुमार और सरस्वतीने वीर्यवत्, पशुओंके संबंधि हविष् लेके, तथा मदिरा, दूध और मधुको लेके इंद्रकेवास्ते दूध स्रावित करते हुए. तथा मदिरा और दूधसें अमृतरूपवाले, और ऐश्वर्य देनेवाले सोमको दोहन करते भए. ऐसें जिन सरस्वति और अश्विनीकुमारोंने नाना द्रव्योंसें नाना रस ग्रहण करके इंद्रकेवास्ते उपकार करा, तिन सौत्रामणीके *द्रष्टाओंकेतांइ नमस्कार होवे–इति ॥

पूर्वोक्त सर्व वृत्तांत महीधरकृत वेददीपकभाष्यके अनुसार लिखा है. अब वाचकवर्गको विचार करना चाहिये कि, इसमें ईश्वरप्रणीत तत्त्वज्ञान कौनसा है? यह तो निःकेवल युक्तिप्रमाणबाधित अप्रमाणिक अज्ञानीयोंकी स्वकपोलकल्पना है. तथा इन श्रुतियोंको देखके, डा० मोक्ष मूलरका कहना–वेदोंका कथन ऐसा है, जैसा कि अज्ञानीयोंके मुखसें अकस्मात् वचन निकले होवे–सत्य २ प्रतीत होता है.

तथा—

यां मेधां देवगणाः पितरश्चोपासते ॥
तया मामद्य मेधयाग्ने मेधाविनं कुरु स्वाहा ॥ १४ ॥
मेधां मे वरुणो ददातु मेधामग्निः प्रजापतिः ॥
मेधामिन्द्रश्च वायुश्च मेधां धाता ददातु मे स्वाहा ॥ १५ ॥

यजुर्वेदाध्याय ३२ ॥

इन श्रुतियोंका भावार्थ यह है कि–हे अग्ने! देवसमूह, और पितृगण (पितर) जिस बुद्धिकी उपासना (पूजा) करते हैं, तिस बुद्धिकरके आज मुझकों बुद्धिवाला कर; अर्थात् देवपितृमान्य बुद्धि हमारी भी होवे.। वरुण, अग्नि, प्रजापति, इंद्र, वायु और धाता, ये मुझे बुद्धि देवे।

* सौत्रामणी, यज्ञविशेष है, जिसमें ब्राह्मणोंको भी सुरा (मदिरा) पानकी आज्ञा लिखी है– 'सौत्रामण्यां सुरांत्' पिवेइति श्रुतिः–॥

मदिरासें मूत्र वनाया, तथा आमाशयगत अन्न ऊवध्य, पकाशयगत अन्न सब्व, और नाडीगत वात, ये भी मदिरासें वनाए. पुरोडाश देवताके हृदय-करके इंद्रका हृदय उत्पन्न करा, सविता पुरोडाशकरके इंद्रका सत्य उत्पन्न करा, वरुण इंद्रकी चिकित्सा करता हुआ, यकृत् कालखंड और गलनाडिका उत्पन्न करता हुआ, वायव्यसामिकोर्द्धपात्रोंकरके हृदयके दोनों पासोंके हाड और पित्त वनाए, मधु सिंचन करती स्थालियां (हांडीयां) इंद्रकी आंत्रे (नशां) वनी, पात्र गुदाके स्थान हुए, धेनु गुदा हुई, श्येनका पत्र प्लीहा हृदयके वामेपासे रहनेवाला शिथिल मांसपिंड हुआ, शचीयांकरके जननीस्थानीय (मातासदृशी) आसंदी, और नाभि तथा उदर हुए. सुराधानकुंभने (शचीयों) कर्मोंकरके स्थूल आंत्रां (नशां) उत्पन्न करी, सतपात्रविशेष इंद्रका मुख, और शिर हुआ. पवित्र जिव्हा हुई. आश्वि-नीकुमार और सरस्वती मुखमें हुए, चप्यं पायु (गुदा) इंद्रिय हुआ, वाल सुरा छाणनेका वस्त्र, इंद्रका वेद्य गुदा और वीर्यके वेगवाला लिंग हुआ, अश्वियांकरके इंद्रके चक्षु, ग्रह आश्विदेवत्यांकरके चक्षुओंका अन-श्वरपणा, छाग (वकरा) रूप पक्व हविकरके चक्षुसंवंधि तेज, गोधूम (गेंहू) करके नेत्रके रोम, वेरांकरके चक्षुनिविष्ट लोम (रोम) और नेत्र-गत श्वेत और कृष्णरूप अश्विनीकुमार करते भये. अवि और मेष ये दोनों वीर्यकेवास्ते इंद्रके नाकमें स्थित हुए, ग्रह सारस्वतोंकरके प्राणवा-युका अनश्वर रस्ता करा, सरस्वतीने यवके अंकुरोंकरके इंद्रका व्यानवा-यु करा, वेरोंसें नाशिकाके रोम करे. वलकेवास्ते ऋषभ इंद्रका रूप कर-ता भया, ग्रह ऐंद्रोंने भूत भविष्यत् वर्तमान शब्दग्राहि श्रोत्रेंद्रिय (कर्ण) स्थापित करे, यव और वर्हिं भ्रुवोंके रोम हुए, और वेर मुखसें मधुतुल्य लाला श्लेष्मादि हुए,-वृकके रोमसें शरीरके ऊपरके और गुह्यस्थानके रोम हुए, व्याघ्रके रोमसें मुखके ऊपरके दाढीमूछके रोम हुए, तथा यश-केवास्ते शिरके ऊपर केश, शोभाकेवास्ते शिखा-चोटी, कांति, और इंद्रियां, ये सर्व सिंहके लोम (रोम) सें वने-इत्यादि-

९३-अश्विनीकुमार आत्माके अवयवोंको जोडते हुए, तिनको सरस्वती अंगोंकरके धारण करती भई. इत्यादि-

ऐसे वेद रचनेवाले बहुत अपाठित ईश्वर बहुत ईश्वरोंके छात्र सिद्ध होवेंगे.। ऐसाही कथन १३ मंत्रमें है; इससें यही सिद्ध होता है कि, वेदरचना ईश्वरकृत नही है, किंतु ब्राह्मण और ऋषियोंकी स्वकपोलकल्पना है. इति ॥

तथा तैत्तिरीयब्राह्मणमें ऐसे लिखा है.—

प्रजापतिः सोमं राजानमसृजत। तं त्रयो
वेदा अन्वसृज्यन्त । तान् हस्तेऽकुरुत ।

इत्यादि—तैत्तिरीयब्राह्मणे २ अष्टके ३ अध्याये १० अनुवाके ॥

भावार्थः—प्रजापति—ब्रह्मा, सोमराजाको उत्पन्न करके पीछे तीन वेदोंको उत्पन्न करते भए; सो सोमराजा, तिन तीनों वेदोंको अपने हाथकी मुट्ठीमें छिपा लेता भया.—इत्यादि—क्या जब ब्रह्माजीने वेद उत्पन्न करे थे, तबही किसी ताडपत्रादिउपर लिखे गये थे ? नही. तो ब्रह्माजीने तो वेद मुखसे उच्चारे होवेंगे; जब तो वेद जो ज्ञानरूप मानीये, तब तो वेद ब्रह्मात्माका ज्ञान होनेसें सोमराजाने अपने हाथकी मुट्ठीमें वेदोंको कैसें छिपा लीया ? जेकर शब्दरूप कहो, तब भी शब्द मुट्ठीमें कैसें आ गया ? जेकर लिखितपत्रमय वेद मानोंगे, तब भी इतना बडा पुस्तक मुट्ठीमें कैसे समा सक्ता है ? इसवास्तेही वेदके सर्वरचनेवाले सर्वज्ञ नही सिद्ध होते हैं. विशेष वेदोंका पोल और हिंसकपणा देखना होवे तो, अस्मत्प्रणीत अज्ञानतिमिरभास्करसें देख लेना; पढनेकी शक्ति होवे तो, वेदभाष्य, सायणाचार्यादिका करा पढके देख लेना; परंतु दयानंदसरस्वतीजीका करा भाष्य कदापि सत्य नही मानना. क्योंकि, दयानंदसरस्वतीजीने जो वेदभाष्यभूमिका, सत्यार्थप्रकाश, यजुर्वेदभाष्य, ऋग्वेदभाष्यादिमें जे अर्थ वेदकी श्रुतियोंके करे हैं, वे सर्व प्रायः प्राचीनवेदमत और वेदभाष्यसें विरुद्ध है. यद्यपि मीमांसावार्त्तिककार कुमारिलभट्टने, तथा शंकरस्वामीने, सायणाचार्यने, महिधरादिकोंने कितनीक वेदकी श्रुतियोंके अर्थ अपने मतानुसार उलट पुलट करे हैं; तो भी दयानंदसरस्वतीजीने जितने

इत्यादि—अब वाचकवर्गको विचारना चाहिये कि, वेद ईश्वरोक्त कैसें सिद्ध हो सक्ते हैं? क्या ईश्वर बुद्धिहीन था, और अग्निवरुणादि बुद्धिसहित थे? जो उनोंसें बुद्धिकी याचना करे! इससें सिद्ध होता है कि, यह बात ईश्वरने नही कही, किंतु किसी मनुष्यने कही है; जो बुद्धिसें हीन था. बुद्धिकेवास्ते अग्निवरुणादिकी प्रार्थना करता है. यदि कहो ईश्वरने अपनेवास्ते नही कही, किंतु श्रुतिद्वारा मनुष्योंको यह शिक्षा करता है कि, तुम वरुणादिकोंकेपास बुद्धिकेवास्ते प्रार्थना करो. तो वैसा वेदकी श्रुतिका पाठ सुनाना चाहिये कि, जहां ईश्वरने कहा हो कि, हे मनुष्यो! मैं ईश्वर तुमको शिक्षा करता हूं कि, तुम वरुणादिकोंसें बुद्धि मांगो.। तथा इस कथनमें एक और भी शंका उत्पन्न होवे है कि, ईश्वर सर्वज्ञ, अग्नि वायु आदि जडरूप पदार्थोंसें क्यों प्रार्थना करवावे? इसीवास्ते वेद सर्वज्ञोक्त नही है, किंतु अज्ञानीयोंका अज्ञानविजृंभित है.

तथा यजुर्वेद अध्याय ४० में जो लिखा है, तिससें निःसंदेह सिद्ध होता है कि, वेद ईश्वरके रचे नही हैं.

अन्यदेवाहुः सम्भवादन्यादहुरसंभवात् ॥
इति शुश्रुम धीराणां ये नस्तद्विचचक्षिरे॥ १० ॥

यजु० अ० ४० ॥

तृतीयपादभाष्यम्ः—" इत्येवंविधं धीराणां विदुषां वचः शुश्रुम वयं श्रुतवन्तः ये धीराः नोऽस्माकं तत्पूर्वोक्तं सम्भूत्यसम्भूत्युपासनाफलं विचचक्षिरे व्याख्यातवन्तः" ॥

भाषार्थः—ऐसें पूर्वोक्तविध धीर पंडितोंका वचन हम सुनते हुए, जे धीर पंडित हमको तत् पूर्वोक्त संभूति असंभूति उपासनाका फल कथन करते हुए.—क्या वेद रचनेवाले ईश्वर कहते हैं? कि, हमने धीर पंडितोंसें ऐसे दोप्रकार उपासनाका फल सुना है, जिनोंने हमको पूर्वोक्त उपासनायोंका स्वरूप कहा है.। क्या ईश्वरोंने अन्य बहुत ईश्वरोंसें सुना है? तब तो, वेद कहनेवाले बहुत ईश्वर प्रथम अपठित सिद्ध होवेंगे;

कि, जो मनमें आवे सोही गप्प ठोक देनी—हाँ दयानंदसरस्वतीजीने मृषा बोलने और लिखनेमें किंचित् न्यूनता नही रक्खी है तो, तिनके शिष्य गप्पें मारे और लिखे, लिखावें, इसमें क्या आश्चर्य है? क्योंकि गुरुका ज्ञान जैसा होता है, तिनके शिष्योंका भी प्रायः तैसाही ज्ञान होता है. क्या जैनमती वा सनातनवेदधर्मी, हजारों पंडितोंमेंसें कोइ भी कह सक्ता वा मान सक्ता है? कि, सायणमाधवाचार्य जैनमती था. क्योंकि, तिसके रचे भाष्य, शंकरविजय सर्वदर्शनसंग्रहादि ग्रंथोंके वांचनेसें स्पष्ट मालुम होता है कि, वो जैनमतसें विपरीतमतवाला था, बलकि जैनमतके खंडन करनेमें तत्पर था.

यद्यपि उनोंनें वेदभाष्यमें अपने मतानुसार श्रुतियोंके अर्थ, और कितनेक अटकलपच्चुके अर्थ, और कितनेक यथार्थ अर्थ लिखे हैं, तो भी सायणमाधवकी विद्वत्ता आगे दयानंदसरस्वतीकी पंडिताइ ऐसी है, जैसा मेरुआगे सरसव. जेकर सायणाचार्यका भाष्य न होता तो, हम देखते कि, दयानंदसरस्वतीजी कैसे भाष्य रचे लेते? यह तो तिनके भाष्यकोंही देखके दयानंदसरस्वतीजीने अपनी बुद्धिका अजीर्ण दिखाया है. जेकर सायणाचार्य जैनमती होता तो, सर्ववेदोंके अर्थ जैनमतानुयायी कर दिखलाता. क्योंकि, जैनमतके आचार्योंकी ऐसी विद्वत्ता थी कि, जो वे इच्छते तो सर्ववेदोंके अर्थ उलटाके जैनमतानुयायी कर देते; परंतु तिनको क्या आवश्यकता थी, जो हिंसकपुस्तकोंके अर्थ उलटाके जैनमतानुयायी करते? जैनीयोंके सर्वज्ञोंके कथन करे हुए ऐसे २ अद्भुत पुस्तक हैं कि, जिनके आगे वेदवेदांतके पुस्तक क्या वस्तु है? थोडासा जैनमतके आचार्योंकी बुद्धिका वैभव हम वाचकवर्गके जाननेवास्ते, अगले स्तंभमें लिखेंगे. इत्यलं बहुपल्लवितेन ॥

इत्याचार्यश्रीमद्विजयानन्दसूरिविरचिते तत्त्वनिर्णयप्रासादे वेदानामीश्वरकर्तृत्वनिषेधवर्णनो नाम दशमः स्तम्भः ॥ १० ॥

गप्पाष्टकरूप अर्थ श्रुतियोंके करे हैं, तैसे अर्थ आजतक प्रायः किसी भी मतवालेने नही करे हैं.

पूर्वपक्षः—दयानंदसरस्वतीजीके अर्थ, वा प्राचीन वेदभाष्यकारोंके अर्थ, वा वेदग्रंथ, जैनी प्रमाणभूत नही मानते हैं. क्योंकि, जैनमतवाले तो वेदोंकोही हिंसकशास्त्र और अज्ञोंकी कल्पनारूप मानते हैं. तो दयानंद सरस्वतीजीने गप्पाष्टकरूप अर्थ लिखे हैं, इसमें आपको क्या दुःख है? यदि गर्दभ (गधा) किसीके द्राक्षामंडपको खावें तो, रस्ते चलनेवाले माध्यस्थ पुरुषको क्या दुःख है?

उत्तरपक्षः—दुःख तो नही, परंतु यह काम अयोग्य है; इसवास्ते माध्यस्थके मनमें भी किंचिन्मात्र पीडा होती है. तैसेंही दयानंद सरस्वतीजीने प्राचीन चलते हुए वेदार्थोंको भ्रष्ट करे हैं, तिनको देखके माध्यस्थ पुरुषोंको भी दयानंदसरस्वतीजीकी बालक्रीडा देखके मनमें दया आती है कि, इस बिचारेके कैसा मिथ्यात्वमोहनीय कर्मका दृढ उदय हुआ है कि, जिससें तिसने कैसा अज्ञानरूप नाटक रचा है!!! और तिसको देखके, कितनेही जीव मोहित होके गाढ मिथ्यात्वके वश होगये हैं. दयानंदसरस्वतीजी तो, अज्ञानरूप नाटक रचके चले गए; परंतु तिनके मतवालोंकी मट्टी खराब, सनातनधर्मादिवाले कर रहे हैं; तिसका दयानंदसरस्वतीजीको तो दुःख नही, परंतु पंडित भीमसेनादिके गलेमें उल्लयोंकी माला पडी है, सो देखिए कैसें निकालते हैं!!

तथा दयानंदीयोंको मृषा बोलना तो बहुतही प्रिय है, जैसें संवत् १९५१ मेंही इलाहबादका पायोनीयर पत्रमें बडीभारी गप्प छपवाइ है—एक दयानंदसरस्वतीजीकी विद्या पढनेवालेने छपवाया है कि, ऋग्वेदका भाष्यकार सायणाचार्य तो जैनमती था, तिसने तो वेदोंके सच्चे अर्थ, तथा वेदोंके नाश करनेवास्ते जानबूझके वेदोंके अर्थ विपर्यय लिखे हैं, इसवास्ते तिसका करा भाष्य हमको प्रमाण नही है—अब वाचकवर्गों! तुम विचार करो कि, दयानंदीयोंके विना, ऐसी अनघड गप्प कोइ मार सक्ता है? दयानंदसरस्वतीजीके रचे पुस्तकोंके वाचनेका यही रहस्य है

भाषार्थः–(ॐम्) यह ॐकार पंच परमेष्ठीको कहता है, कैसें कहता है? सोही कहते हैं 'अर्हन्तः' इस पदका आद्य अक्षर अकार है, 'अशरीराः'–सिद्धाः–इस पदका आद्य अक्षर अकार है 'आचार्यः' इसका आद्य अक्षर आकार है, 'उपाध्यायाः' इसका आद्य अक्षर उकार है, 'मुनिः' इसका आद्य व्यंजन स्वररहित मकार है, इन सर्वका संधि होनेसें 'ॐ' सिद्ध होता है. * पदके एक देशमें भी पदका उपचार होनेसें ऐसी उक्ति है. सोही ॐकार असाधारण गुणसंपदाकरके विशेषण वाला कथन करिये हैं (भूर्भवःस्वस्तत्) 'भूः' यह अव्यय भूलोकका वाचक है 'भुवः' पाताललोकका, और 'स्वः' स्वर्गलोकका, तीनोंका द्वंद्व-समास होनेसें 'भूर्भुवःस्वः' अर्थात् अधोलोक, तिर्यग्लोक, और स्वर्ग-लोकरूप तीनों लोकोंको, 'तत्' 'तनोति–ज्ञानात्मना व्याप्नोति' ज्ञानात्मा-करके व्यापक होवे, सो 'भूर्भुवःस्वस्तत्' अर्हत् सिद्धोंको सर्व द्रव्यपर्याय-विषयिक केवलज्ञानात्माकरके तीनों लोकोंमें व्याप्त होना प्रसिद्धही है। ज्ञान और आत्माका 'स्यादभेदात्' कथंचित् अभेद होनेसें. शेष आचा-र्यादि तीनोंको भी, श्रद्धानविषयकरके सर्वव्यापित्व है, 'सव्वगयं सम्मत्त-मितिवचनात्' अथवा सामान्यरूप ज्ञानकरके सर्वव्यापित्व है। इसवास्ते-ही (सवितुः वरेण्यम्) सहस्ररश्मीयोंवाले सूर्यसें भी प्रधानतर है, सूर्यके उद्योतको देशविषयक होनेसें, और इन अर्हदादि पांचों संबंधि भावउद्योतको सर्वविषयक होनेसें. । आहुश्च पूज्याः । चंदाइच्चगहाणं पहा पयासेइ परिमियं खित्तं।केवलियनाणलंभो लोगालोगं पयासेइ॥१॥ +

ऐसें न कहना कि,आचार्यादि तीनोंको केवलज्ञानका लाभ नही है तो, तिनको व्यापित्व कैसें है? क्योंकि तिनको भी केवलिकज्ञानोपलब्ध पदा-

---

* ॥ अरिहंता असरीरा आयरिया उवज्झाया मुणिणो। पंचरकरनिप्पन्नो ॐकारो पंचपरमेट्ठी॥१॥ इतिवचनात्॥

+ [चंद्रादित्यग्रहाणां प्रभाः प्रकाशयति परिमितं क्षेत्रम् । कैवलिकज्ञानलाभो लोकालोकं प्रकाशयति]

भावार्थः–चंद्रसूर्यग्रहोंका प्रकाश, प्रमाणसंयुक्त क्षेत्रको प्रकाश करता है; और केवलज्ञान, लोकालोकको प्रकाश करता है; इसवास्ते सूर्यके प्रकाशसें केवलज्ञानका प्रकाश प्रधानतर है.। इति॥

॥ अथैकादशस्तम्भारम्भः ॥

दशमस्तंभमें वेद ईश्वरोक्त नहीं है, यह सिद्ध किया. अथ एकादश-स्तंभमें जैनाचार्योंका यत्किंचित् बुद्धिका वैभव दिखाते हैं, जो कि दश-मस्तंभमें प्रतिज्ञात है.

चिदात्मदर्शसंक्रान्त लोकालोकविहायसे ॥
परेवाग्वृत्तिरूपाय प्रणम्य परमात्मने ॥ १ ॥
गम्भीरार्थामपि श्रुत्वा किंचिद्गुरुमुखाम्बुजात् ॥
परेषामुपयोगाय गायत्रीं विवृणोम्यहम् ॥ २ ॥
इमां ह्यनादिनिधनां ब्रह्मजीवानुवादिनः ॥
आमनन्ति परं मन्त्रं मननत्राणयोगतः ॥३॥
गायन्तं त्रायते यस्मात् गायत्रीति ततः स्मृता ॥
आचारसिद्धावप्यस्या इत्यन्वर्थं उदाहृतः ॥ ४ ॥

ऋ० सं० अष्टक ३ अध्याय ४ वर्ग १० में गायत्री है, और यजुर्वेदके ३६ मे अध्यायमें भी गायत्री है, ऋग्वेदमें-"तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्"-यजुर्वेदमें-"भूर्भुवःस्वस्तत्सवितुर्वरेण्य-मित्यादि"-और शंकरभाष्यमें ॐकारपूर्वक है-तैत्तिरीयआरण्यकके २७ अनुवाकमें भी "ॐतत्सवितु"रित्यादि है. तब तो-"ॐभूर्भुवःस्वस्तत्स-वितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्"-ऐसा गायत्री-मंत्र हुआ. अब इस पूर्वोक्त गायत्रीमंत्रका सर्वदर्शनके अभिप्रायकरके व्याख्यान करते हैं, तिनमेंसें भी प्रथम जैनमतानुयायी अर्थात् जैनमतके अभिप्रायकरके अर्थ लिखते हैं.

ॐ भूर्भुवःस्वस्तत् सवितुर्वरेण्यं भर्गोदे वस्यधीमहि ॥
धियोयो नः प्रचोदयात् ॥ १ ॥

ॐ। भूर्भुवःस्वस्तत्। सवितुः। वरेण्यम्। भर्गोदे। वस्ि। अधीमहि। धियः अयो। नः। प्रचः। उदयात् ॥ १ ॥

अब शिष्यप्रति शिक्षा कहते हैं–(नः) हे नः नृशब्दके आमंत्रणविषे यह रूप सिद्ध है, तब हे नः हे पुरुष! बहुमानसहित आमंत्रित शिष्य प्रारंभित अर्थके श्रवण करनेमें उत्साहवान् होता है, इसवास्ते विशेषण कहते हैं.।(धियोयो) युक् मिश्रणे ऐसा धातु है, इस धातुको अन्य अमिश्रणार्थ भी कहते हैं, इसवास्ते 'यौति पृथग् भवति' जो पृथक् हो सो कहावे 'युः' छांदस होनेसें गुण नही हुआ, 'न युः अयुः' तिसका आमंत्रण हे अयो! हे अपृथक्! किससें? 'धियः' बुद्धिसें जिसवास्ते तूं बुद्धिसें अपृथग्भूत है अथात् बुद्धिमान् प्रेक्षा पूर्वकारी है, इसवास्ते तेरेको शिक्षा देते हैं.। प्रेक्षावान्के विना तो, रागी द्वेषी मूढ पूर्वव्युद्ग्राहितादिकोंको अयोग्य होनेसें, तिनमें जो उपदेश करना है, सो अंधकारमें नृत्य करनेसमान प्रयास है.। फिर वलिव्युत्पाद्यकाही विशेषणांतर कहते हैं, (प्रचः) 'प्रकृष्टं चरतीति प्रचः' प्रकृष्ट–अधिक जो चरे–प्रवर्ते सो प्रचः प्रकृष्टाचार मार्गानुसारिप्रवृत्तिरितियावत् प्रकृष्ट आचारवालेहीमें उपदेश दिया सफल होता है, और आचारपराङ्मुखोंको शास्त्रका सद्भाव प्रतिपादन (कथन) करना प्रत्युत (उलटा) प्रत्यपाय (कष्ट–पाप) का संभव होनेसें ठीक नही है.। किं–क्या शिक्षा देते हैं? सोही कहे हैं.। (उदयात्) उदयं प्राप्तं उदय प्राप्त अनन्यसामान्य गुणातिशय संपदाकरके प्रतिष्ठित आराध्यत्वकरके परमेष्ठिपंचकही है, इत्यर्थः॥

यहां यह तात्पर्यार्थ है कि, ईश्वर ब्रह्मा विष्णु उपलक्षणसें कपिलसुगतादि देवतायोंके मध्यमें भो पुरुष! ज्ञानवन्! प्रकृष्टाचार! पूर्वे दिखलाए लेशमात्र गुणातिशयके योगसें आराध्यताकरके परमेष्ठिपंचकही प्रतिष्ठित है. इसवास्ते वेही आराधनेयोग्य हैं, वेही उपासना करनेयोग्य हैं, वेही शरणकरके अंगीकार करनेयोग्य हैं, तिनकी आज्ञारूप अमृतरसही आस्वादनीय हैं, पंचपरमेष्ठीसें अतिरिक्त अन्य कोइ आराधने योग्य न होनेसें. जेकर है, तो भी वे आराधनेयोग्य नही है. क्योंकि, तिनके दूषण (दोष) यहांही पहिले निर्णय करनेसें. जेकर दूषणोंवालोंको भी आराध्यता होवे, तव तो अतिप्रसंगदूषण होवे.। उक्तंच.। "कामानुष-

थोंका सामान्यप्रकारें ज्ञानका सद्भाव होनेसें, क्षति नही हैं. । (भर्गोदे) 'भर्गः' ईश्वर, 'उः' ब्रह्मा, 'दः' विष्णु [दयते–पालयति जगदिति दो विष्णुः] लोकमेंही, रजोगुणाश्रितब्रह्मा जगत्को उत्पन्न करता है, सत्वगुणाश्रित विष्णु स्थापन करता है, और तमोगुणाश्रित ईश्वर संहार करता है. । भर्गश्च उश्च दश्चेति भर्गोदं द्वंद्वैकवद्भावात् तस्मिन् भर्गोदे अर्थात् ईश्वर ब्रह्मा विष्णुमध्ये । कैसें ईश्वरादि (वसि) वसतीति वस् तस्मिन् वसि, (अधीमहि) अस्यापत्यं इः कामः 'अ' विष्णु तिसका पुत्र 'इ' कामदेव तिसकी मह्यो-भूमयः–भूमियां कामिन्यः–स्त्रीयां तिनको अंगीकार करके 'अधीमहि' स्त्रीयोंविषे तिष्ठमान अर्थात् स्त्रीयोंके वशीभूत जिनोंका आत्मा है. । ईश्वरब्रह्माविष्णुविषे स्त्रीयोंके परवशपणा यह तो प्रसिद्धही है. । पार्वतीके राजी रखनेवास्ते ईश्वर तांडवाडंबर करता है । ब्रह्माजीकेवास्ते वेदमें भी कहा है । "प्रजापतिः स्वां दुहितरमकामयदिति" ब्रह्मा अपनी पुत्रीके साथ भोग करनेकी इच्छा करता हुआ. । और विष्णुका तो स्त्री-वशपणा गोप्यादिवल्लभपणेके उपदर्शक तिस २ वचनोंके श्रवण करनेसें प्रतीत होता है । पठ्यते च ॥ राधा पुनातु जगदच्युतदत्तदृष्टिर्मंथानकं विदधती दधिरिक्तभांडे । तस्याः स्तनस्तवकलोलविलोचनालिर्देवोपि दोहनधिया वृषभं निरुंधन् ॥ १ ॥ इत्यादि ॥

भावार्थः–कामके वश होके कृष्णजीमें स्थापन करी है दृष्टि जिसने, इसीवास्ते अर्थात् काम परवश होनेसें दधिविना खाली भांडेमें जो मंथानक धारण कर रही है, अर्थात् कामके वश हुई यह नही जानती है कि, मैं दधि रिडकती हूं कि खाली भांडा; ऐसें विशेषणोंवाली राधा, (लक्ष्मी) जगत्को पवित्र करो. । अपिच तस्याः–तिस राधाके स्तनसमूहऊपर चंचलनेत्रालि (नेत्रपंक्ति) स्थापन करी हैं जिसने, इसीवास्ते काम परवश होनेसें दोहनक्रियाकी बुद्धिकरके गौके वदले वैलको रोकता हुआ; ऐसे विशेषणोंवाला देव कृष्ण–विष्णु भी जगत्को पवित्र करो ॥१॥ इत्यादि ॥

भाषार्थः—अथ अक्षपाद जे हैं, वे अपने महेश्वरदेवको नमस्कार करते हुए प्रार्थनापूर्वक ॐभूर्भुव इत्यादि उच्चारण करते हैं। (ॐ) ऐसा सर्व विद्यायोंका आद्य बीज है, सर्व आगमोंका उपनिषद्भूत है, संपूर्ण विघ्नविघातका हननेवाला है, और संपूर्ण दृष्टादृष्ट फल संकल्पको कल्पद्रुम समान है, इसवास्ते इस प्रणिधानका आदिमें उपन्यास (स्थापन) करना परम मंगल है. नही इससें व्यतिरिक्त अन्य कोई वस्तु तत्त्व है. इति॥ (भूर्भुवःस्वस्तत्) हे लोकत्रयव्यापिन्! अक्षपादोंके मतमें शिवही सर्वगत है। तथा (सावितुर्वरेण्यं) हे सूर्यसें प्रधानतर! सर्वज्ञ होनेसें 'वरेण्यं' इस स्थानपर हे वरेण्य! ऐसे जानना। अनुनासिक इतस्तु। 'अइउवर्णस्यांतेऽनुनासिकोनीदादेरिति' लक्षणवशात्। * इति। अब विशेष्य कहते हैं। (भर्ग) हे भर्ग ईश्वर! (उदे) उत्कृष्ट है 'इ' काम जिसके सो कहिए 'उदिः' तिसका आमंत्रण हे उदे अर्थात् हे उत्कृष्टकामिन्! अर्वाचीन अवस्थाकी अपेक्षाकरके यह विशेषण है। अब प्रार्थना कहते हैं। (अव—स्य) ये दोनों क्रियापद यथासंख्य उत्तरपद दोनोंके साथ जोडने, सोही दिखावे हैं 'अव' रक्ष—पालय—वर्द्धय। इतियावत्। पालन कर, रक्षाकर, वृद्धिकर, इत्यर्थः। किसकी। (धीम्) धी बुद्धि ज्ञान तत्त्वाधिगम (तत्त्वका जानना) ये सर्व एकार्थिक हैं। धियः ईःश्रीः धीः बुद्धिकी जो लक्ष्मी सो कहिए धीः तां धीम्। अर्थात् बुद्धिकी लक्ष्मीकी वृद्धि कर। ज्ञानकी प्रार्थना ईश्वरसें करनी योग्यही है। 'ईश्वरात् ज्ञानमन्विच्छेदिति वचनात्' तथा 'स्य' षोंच् अंतकर्मणि। इस धातुका यह रूप है नाश कर। किसका (अहिधियः) सर्पकीतरें जे बुद्धियां क्रूरतादि जे परको अपकार करनेवाली, तिनोंका नाश कर। (नो) हमारी 'धीम्' 'अव' बुद्धिकी वृद्धि कर, और 'अहिधियः' 'स्य' क्रूरतादिबुद्धियोंका विनाश कर, इत्यर्थः। फिर विशेष कहते हैं। (यो) हे यो! मिश्रितसंबंध!। किसकेसाथ? सो कहे हैं. (प्रचोदया) चुदण् संचोदने ततश्चोदनं चोदः शृंगारभावसूचनं प्रकृष्टश्चोदो यस्याः सा प्रचोदा अर्थात् पार्वती तया सहेति वाक्यशेषः।

* आचार्यश्रीहेमचंद्रानुस्मृते सिद्धहेमचंद्रनाम्नि शब्दानुशासने प्रथमाध्याये द्वितीये पादे ॥१-२-४१.

क्तस्य रिपुप्रहारिणः प्रपञ्चतोनुग्रहशापकारिणः । सामान्यपुंवर्गसमानधर्मिणो महत्त्वक्लृप्तौ सकलस्य तद्भवेत् ॥ १ ॥” भावार्थः । काममें रक्त, प्रपंचसें शत्रुओंको प्रहार करनेवाला, अनुग्रह और शाप करनेवाला, ऐसें सामान्य पुरुषवर्गके सदृश कृत्यके करनेवालेको महत्त्वकी कल्पना करे हुए, सर्वप्राणियोंमें भी महत्त्वकी कल्पना होवेगी. अर्थात् ब्रह्माका भी, विष्णु छलकरके शत्रुओंको मारनेवाला, और महादेव तुष्टमान रुष्टमान होनेवाला, यदि इत्यादिकोंमें महत्वकी कल्पना होवे तो, तादृश सर्व प्राणियोंमें भी होनी चाहिए. ॥ १ ॥ पुनः यहां ‘अधीमहि’ और ‘वसि’ ये विशेषण तिनके रागके सूचकही नही हैं, किंतु साहचर्यसें द्वेष और मोह भी जान लेने; तिनके पास शस्त्रादिके सद्भावसें, तिनमें द्वेष सिद्ध होता है; और पूर्वापर व्याहत अर्थवाला आगम कहनेसें मोह अज्ञानका सद्भाव सिद्ध होता है. ॥ यदुक्तं ॥ “रागोऽङ्गनासंगमनानुमेयो द्वेषो द्विषद्दारणहेतिगम्यः । मोहः कुवृत्तागमदोषसाध्यः” इत्यादि ॥ भावार्थः ॥ राग तो स्त्रीसंगमनसें अर्थात् स्त्रीसें भोगविलासममतादिसें अनुमेय है, द्वेष वैरीयोंके मारनेवास्ते शस्त्रोंके रखनेसें अनुमेय है, और कुत्सित आचरण और पूर्वापरव्याहतिवाला शास्त्र कथन करनेसें मोह—अज्ञान अनुमेय है, इत्यादि ॥ आचार्यादिकोंके तो सर्वथा रागादि क्षय नही है, ऐसे मत कहना. क्योंकि, तिनको भी आप्तके उपदेशसें रागादिके क्षयवास्तेही प्रवृत्त होनेसें, तथाविध रागादिके असद्भावसें, और तिस रागादिकका आगामि कालमें क्षय होनेसें. भाविनिभूतवदुपचारात्—तिनको भी वीतरागताही है. यहां भावाचार्यादिकोंकरकेही अधिकार है, इसवास्ते सर्व समंजस है ॥ इत्यार्हताभिप्रायेण मंत्रव्याख्या ॥ १ ॥

अथाक्षपादाभिप्रायेण व्याख्यायते तत्रादौ मन्त्रः ॥

ॐ । भूर्भुवःस्वस्तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गोदेव स्य धीमहिधियो
यो नः प्रचोदयात् ॥ १ ॥ २ ॥

ॐ । भूर्भुवःस्वस्तत् । सवितुः । वरेण्यं । भर्ग । उदे । अव । स्य । धीम् । आहिधियः । अयो । नः । प्रचोदया । अत् ॥ २ ॥

मंत्रश्चायं ॥

ॐ भूर्भुवःस्वस्तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गोदेव स्य
धीमहिधियो यो नः प्रचोदयात् ॥ १ ॥ ३ ॥

ॐ। भूर्भुवःस्वस्तत्। सवितुः। वरेण्यं। भर्ग। उदे। अव। स्य। धीम्। अहिधियः। यो। नः। प्रचोदया। अत् ॥ ३ ॥

व्याख्यापूर्ववत् ॥ इति वैशेषिकाभिप्रायेण मंत्रव्याख्या ॥ ३ ॥

अथ सांख्यमतवाले अपने कपिलदेवको नमस्कार करते हुए, यह कथन करते हैं ॥

मंत्रः ॥

ॐ भूर्भुवःस्वस्तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गोदेवस्य
धीम हि धियो यो नः प्रचोदयात् ॥ १ ॥ ४ ॥

ॐ। भूर्भुवःस्वस्तत्। सवितुः। वरेण्यं। भर्। गोदेवस्य। धीम। हि। धियः। यो। नः। प्रचोदय। अत् ॥ ४ ॥

व्याख्याः-(धीम) धीनाम बुद्धितत्त्वका है, तिसको मिमीते शब्दयति प्ररूपयतीति-कथन करे प्ररूपे सो 'धीमः' भगवान् कपिल इत्यर्थः तिसका आमंत्रण हे धीम! अर्थात् हे भगवन् कपिल! (ॐ भूर्भुवःस्वस्तत्) इसका अर्थ पूर्ववत् जान लेना।" अमर्त्तश्चेतनो भोगी नित्यः सर्वगतोक्रियः। अकर्त्ता निर्गुणः सूक्ष्म आत्मा कपिलदर्शने ॥ १ ॥" अमूर्त्त, चेतन, भोगी, नित्य, सर्वव्यापक, अक्रिय, अकर्त्ता, निर्गुण, सूक्ष्म, कपिलमुनिके मतमें ऐसें लक्षणोंवाला आत्मा माना है.।१। इसवचनसें तीन लोकमें व्यापित्व सिद्ध है। (सवितुर्वरेण्यं) इसका अर्थ अक्षपादवत् जानना। अव कपिलकोही उपयोग संपदाकरके विशेष करते हैं। (भर्) डुभृंग्-क् पोषणे च बिभर्तीति भर् पोषकः पोषणकरनेवाला। किसका सो कहे हैं, (गोदेवस्य) गोशब्दकरके यहां खुर ककुद साला लांगूल (पूंछ) विषाण (शृंग) आदि अवयवसंयुक्त पशु काहिए हैं, तिसकीतरें विधेयताकरके लखिये हैं, इसवास्ते गोकीतरें विधेयानि वश्यानि देवानि इंद्रियाणि वशीभूत हैं

पार्वतीकेसाथ इत्यर्थः । अर्वाचीन अवस्थामें पार्वतीके पीन (कठन) पयोधर (स्तन) के ऊपर प्रणयी स्नेहवान् इत्यभिप्रायः । और परमपद अवस्थाकी अपेक्षा तो 'प्रचोदया' पार्वतीके साथ 'यो' अमिश्रित ऐसें व्याख्यान करना । 'षडिंद्रियाणि षट् विषयाः षट् बुद्धयः सुखं दुःखं शरीरं चेत्येकविंशतिप्रभेदभिन्नस्य दुःखस्यात्यंतोच्छेदो मोक्ष इति नैयायिकवचनप्रामाण्यात्'। इंद्रिया ६ विषय ६ बुद्धियां ६ सुख १ दुःख १ और शरीर १ ये एकवीस (२१) प्रभेद भिन्न दुःखोंका जो अत्यंत उच्छेद (नाश) सो मोक्ष, ऐसे नैयायिकोंके वचनप्रमाणसें । तथा 'उदे' यह प्राचीनावस्थाका भी विशेषण जानना, और अर्थ ऐसें करना । 'उत्' यह तकारांत उपसर्ग प्राबल्य अर्थमें है, तब तो उत् प्राबल्य अतिशयकरके 'एः' कामादिशुद्धि करी है जिसने सो कहिए उदेः तिसका आमंत्रण हे उदे ! अर्थात् हे कामादिशुद्धिकारक !। तथा (अत्) यह भी विशेषण है । अत्ति-भक्षयति जगदिति अत्। जो जगतको भक्षण करे उसको अत् कहिए, सृष्टिका संहार करनेवाला होनेसें यह विशेषण ईश्वरका सिद्ध है । उक्तंच अक्षपादमते देवः सृष्टिसंहारकृच्छिवः। विभुर्नित्यैकसर्वज्ञो नित्यबुद्धिसमाश्रितः ॥१॥ * इतिनैयायिकाभिप्रायेण मंत्रव्याख्या॥ २॥

अथ वैशेषिकके अभिप्रायकरके भी इसीतरें व्याख्या जाननी, तिनको भी शिवजीकोही देवकरके अंगीकार करनेसें परंतु इतना विशेष है कि, वैशेषिकके मतमें परमपद अवस्थाका स्वरूप ऐसा माना है । बुद्धि १ सुख २ दुःख ३ इच्छा ४ द्वेष ५ प्रयत्न ६ धर्म ७ अधर्म ८ और संस्काररूप ९, नव विशेष गुणोंका अत्यंत उच्छेद होना मोक्ष है ।

---

* भावार्थः—ॐ हे तीन जगत्में व्यापिन् परमेश्वर ! हे सूर्यसे भी प्रधान ! हे भर्ग ईश्वर ! हे उदे-अर्वाचीनावस्थाअपेक्षासें उत्कृष्टकामिन् कामवाला ! प्राचीनावस्थाअपेक्षासें हे अतिशयकरके कामादिकी शुद्धि करनेवाला ! हे पार्वतीकेसाथ संबंधवाला ! परम पदकी अपेक्षासे हे पार्वतीसें अमिश्रित ! हे सृष्टिको भक्षण करनेवाला ! पूर्वोक्त विशेषणाविशिष्ट हे भर्ग ईश्वर परमेश्वर ! तूं हमारी बुद्धिकी वृद्धि कर, और अपकार करनेवाली बुद्धियोंका विनाश कर इति ॥

याख्याः–(ॐ) इसका अर्थ प्रागूवत् जानना (भूर्भुवःस्वस्तत्) हे
त्रयव्यापिन् विष्णो कृष्ण! "जले विष्णुः स्थले विष्णुर्विष्णुः पर्वतमस्तके।
मालाकुले विष्णुस्तस्माद्विष्णुमयं जगत्॥ १॥" इस वचनसें। अथवा
भूःनाम आश्रयका है, किसका आश्रय? (भुवः) पृथिव्याः अर्थात्
थेवीका आश्रय!। (स्वस्तत्) 'स्वर्गे परे च लोके स्वः' इति अमरकोशके व-
। 'स्वः' परलोकको तनोति इति स्वस्तत् परलोकहेतु इत्यर्थः। गतिमिच्छे-
र्दनात्' इस वचनसें.।यहां 'भव' इस क्रियाका अध्याहार करना। तथा
इस अगले पदका यहां संबंध करनेसें हे पृथिवीका आश्रय! हे परलो-
हेतुभूत! 'नः' हम आराधकोंको परलोकके सुखोंकी प्राप्तिवाला हो.
ः। तथा (सवितुर्वरेण्यं) सवितुर्जनकात्–पितासें भी, वरेण्यं–प्रधान-
प्रजाको आगामि सुखोंकरके पालनेसें पितासें अधिकतर प्रेमवान्!
ः। अनुनासिक प्रागूवत् जानना। तथा (भर्गोदेव) भर्गश्च उश्च
पि देवः महादेव और ब्रह्माका भी देव! पूज्य होनेसें.। बाणाहवा-
पार्वतीके पति महादेवका पराजय श्रवण करनेसें, और हरिके ना-
मलकरके ब्रह्माके जन्मकी प्रसिद्धि होनेसें, विष्णु, महादेव और ब्र-
। पूज्य है. पूज्य होनेसें, विष्णु, ईश्वर और ब्रह्माका देव सिद्ध हुआ.
देवः' तिसका आमंत्रण हे भर्गोदेव! तथा (स्य) त्यत् शब्दका
ब्दके अर्थके आमंत्रणमें यह प्रयोग है, तब तो हे स्य!। हे स!। स्मृ-
वेष्ट होनेसें इसप्रकार विशेषणका उपन्यास है। संस्कारके प्रबोधसें
। अनुभूत अर्थविषय तत् (सो यह) ऐसे आकारवाला जो ज्ञान
मरण कहिये। ऐसा स्मृतिका लक्षण होनेसें। इसकरके प्रणिधान-
कायता कथन करिये हैं। तथा (धीमहि) मतुप्के लोप होनेसें
। अभेदोपचारसें 'धियः-पंडिताः' 'अर्ह मह पूजायामिति धातोः
स्य मह्इतिरूपं महतीति मह् पूजक–आराधक इति यावत्, धियां
धीमह्, विद्वज्जनपर्युपासकः पुरुषस्तस्मिन् आधारे।' अर्ह और मह
पूजार्थमें है, तिसमेंसें महधातुका किप्प्रत्ययांत मह् ऐसा रूप होता
ो पूजा करे उसको मह् कहिये, अर्थात् पूजक–आराधक यह तात्पर्यः।

इंद्रियां जिसके, सो गोदेव तिसका अर्थात् जितेंद्रियका। नही गोविधेयता कवियोंके रूढि नही है, अपितु है. 'गोरिवेति विधेयतामित्यादि' लक्ष्यके देखनेसें 'धीम' इसका व्याख्यान प्रथम कर दिया है। (हि)। स्फुटार्थे है। (धियोयो) हे बुद्धितत्त्वसें पृथगूभूत! प्रकृतिपुरुषका विवेक पृथकूपणा देखनेसें, प्रकृतिके निवृत्त (दूर) हुआ पुरुषका जो अपने स्वरूपमें अवस्थान (रहना) है सो मोक्ष है इसवचनसें। प्रकृतिके वियोगसें बुद्धिआदिकोंका भी विगम (नाश) होनेसें. क्योंकि, कारणके अभावसें कार्यका भी अभाव होता है.। 'धियः' इस पंचम्यंत पदको पुनरावृत्तिकरके 'प्रचोदय' इसपदके साथ संबंध करिये हैं, तब तो 'धियः' बुद्धितत्त्वसें (नः) अस्मानपि हमको भी (प्रचोदय) प्रेरय व्यपनय—दूर कर इत्यर्थः। अथवा 'धियः' षष्ठ्यंतपद जानना, और षष्ठीविभक्ति जो है, सो 'कर्मणि शेषजा' है। यथा माषाणामश्नीयात्। तथा। न केवलं यो महतां विभाषते। तब तो 'नः' हमारी भी 'धियं' प्रकृतिहेतुक बुद्धिको दूर कर। आप मुक्त हो, हमको भी मुक्त करो इत्यर्थः। (अत्) अद् ऐसा दकारांत अव्यय आश्चर्यार्थमें है, तब तो 'अद्' आश्चर्यरूप, तिसके कारणमें अनिवृत्त होनेसें. । तिसका 'अद्शब्दका' आमंत्रण हे अद्! 'विरामे वा' इस सूत्रकरके दकारका तकार हुआ, तब हे अत्! हे आश्चर्यरूप! इत्यर्थः॥ * इति सांख्याभिप्रायतो मंत्रव्याख्या ॥ ४ ॥

अथवा वैष्णव अपने देव हरिको नमस्कार करते हुए, यह कहते हैं. ॥ मंत्रः ॥

ॐ भूर्भुवःस्वस्तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गोदेव स्य
धीमहि धियो योनः प्रचोदयात् ॥ १ ॥ ५ ॥

ॐ। भूर्भुवःस्वस्तत्। 'अथवा' भूः। भुवः। स्वस्तत्। सवितुः। वरेण्यं। भर्गोदेव। स्य। धीमहि। धियः। यो। अ। नः। प्रचोदयात्॥ ५ ॥

* भावार्थः—हे तीन जगतमें व्यापिन्! हे सूर्यसें प्रधान! हे जितेंद्रियका पोषक! हे बुद्धितत्त्वको कथन करनेवाला! हे बुद्धितत्त्वसें पृथगूभुत! हे आश्चर्यरूप कपिल भगवन्! तूं हमको बुद्धितत्त्वसें दूर कर, तूं आप मुक्त हुआ है, और हमको भी मुक्त कर. इति ॥

अथवा 'स्वस्तत्इति' विशेषण कहते हैं। 'प्रचोद' यह क्रियापद। 'अनः' यह कर्मपद। अंतरात्मारूप सारथिकरके प्रवर्तनीय होनेसें, अनःकीतरें अनः शरीर, तिसको 'प्रचोद' चुदण् संचोदने तस्य चुरादेर्णिचोऽनित्यत्वात्तदभावे हौ रूपं। संचोदनं च नोदनमिति धातुपारायणकृता तथैव व्याख्यानात्। तब तो 'प्रचोद' प्रकर्षकरके नुद स्फोटय फोड इत्यर्थः। नही इस दग्धकाय मलीनशरीरके त्यागेविना कहिं भी परम सुखका लाभ होता है। वेदमें भी कहा है। "अशरीरं वा वसंतं प्रियाप्रिये न स्पृशतः। नहि वै सशरीरस्य प्रियाप्रिययोरपहतिरस्तीति॥" इतिवैष्णवाभिप्रायेण मंत्रव्याख्या॥ ५॥

अथवा सौगत (बुद्ध) अपने देव बुद्धभट्टारकको प्रणिधान करते हुए ऐसें कहते हैं॥

मंत्रः॥

ॐ भूर्भुवः स्वस्तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गोदेवस्य
धीम हि धियो यो नः प्रचोदयात्॥ १॥ ६॥

ॐ। भूः। भुवः। स्वस्तत्। सवितुः। वरेण्यं। भर्। गोदेवस्य। धीम। हि। धियो। यो। नः। प्रचोदय। अत्॥ ६॥

व्याख्याः– (ॐ) इसका अर्थ पूर्ववत् जानना (भूः) हे भूः हे आधार! किसका? (भुवः) भव्यलोकस्य–भव्यलोकका, (स्वस्तत्) स्वः–परलोकको तनोति-विस्तारयति-प्रज्ञापयति कथन करे जणावे सो 'स्वस्तत्' तिसका संबोधन 'हे स्वस्तत्' इत्यर्थः। आत्माकी नास्ति मानके परलोकको अंगीकार करनेसें। 'आत्मा नास्ति पुनर्भावोस्तीत्यादिवचनात्'। आत्माका नास्तिपणा ऐसें है। हे भिक्षवः! यह पांच संज्ञामात्र है, संवृतिमात्र है, व्यवहारमात्र है; कौनसे वे पांच? अतीतकाल १, अनागतकाल २, प्रतिसंख्यानिरोध ३, आकाश ४, और पुद्गल ५, इस बुद्धके वचनसें। यहां पुद्गलशब्दकरके आत्माका ग्रहण है। इति। (सवितुर्वरेण्यं) हे सूर्यसें प्रधान बुद्ध भगवन्! अर्क बांधव होनेसें, शाक्यसिंहनामा सप्तम बुद्धका यह आमंत्रण है। (भर्) बिभर्तीति भर् हे पोषक! किसका? (गोदेवस्य)

बुद्धियोंका (पंडितोंका) जो पूजक होवे, सो कहिये 'धीमह' अर्थात् विद्वज्जनोंका उपासक पुरुष तिस पुरुषरूप आधारविषे जो बुद्धि (ज्ञान) है, तिस बुद्धिसें जो अपृथग्भूत तिसका आमंत्रण 'हे धियो-यो' सद्गुरुकी सेवामें तत्पर जे पुरुष तिनोंकी बुद्धिके गोचर इत्यर्थः । क्योंकि जिनोंनें सद्गुरुयोंकी उपासना नही करी है, ऐसे लोकायतिक (नास्तिक) आदिकोंके ज्ञानगोचर परमात्मा प्राप्त नही होता है। 'यो-नः' इन दोनोंके बीचमें अकारका प्रक्षेप करनेसें 'हे अ-विष्णो' नः।यह योजन कराही है।(प्रचोदयात्) प्रकृष्टश्चोदः(शृंगारभावसूचनं) यस्याः सा प्रचोदा। प्रचोदा चासौ या च लक्ष्मीश्च प्रचोदया, तां अतति सातत्येन गच्छति प्रचोदयात्, तस्यामंत्रणं हे प्रचोदयात्!' प्रकृष्ट शृंगारभावसूचन है जिसका सो कहिये प्रचोदा;प्रचोदा सोही जो लक्ष्मी सो कहिये प्रचोदया तिस प्रचोदयाको (लक्ष्मीको) जो निरंतर प्राप्त होवे, सो कहिये प्रचोदयात् तिसका आमंत्रण 'हे प्रचोदयात्'!।अथवा प्रथम 'नः' यह योजन करिये हैं। नः अस्माकं यह तो सामर्थ्यसेंही प्रतीत होनेसें। तब तो 'आनःप्रचोद' ऐसें जानना योग्य है। हे अ! हे अनःप्रचोद! अनः शकटं गाडेको प्रचोदयति प्रेरयति जो प्रेरणा करे सो 'अनः प्रचोदः' कहिये तिसका आमंत्रण 'हे अनःप्रचोद' 'शैशवे हि विष्णुना चरणेन शकटं पर्यस्तमिति श्रुतेः'। बालपणेमें विष्णुने चरणकरके गाडेको प्रेरा था दूर करा था इस श्रुतिसें। ततः। समानानां तेन दीर्घः। इस सूत्रसें संधिके हुए 'आनःप्रचोद' ऐसा सिद्ध होता है। शंका। 'यो' इस पदसें परे 'आनःप्रचोद' पदके हुआं 'यवानः प्रचोद' ऐसा होना चाहिये, तो यहां 'योनःप्रचोद' यह कैसे हुआ?

उत्तर। जैसें तुम कहते हो, तैसें नही है। कातंत्रव्याकरणमें "एदोत्परः पदांते लोपमकारः" इस सूत्रमें "एदोऽत्रयां" इतने मात्रसें सिद्ध हुआ भी, जो परग्रहण है, सो इष्टार्थ है; तिससें किसी स्थानपर आकारका भी लोप हो जाता है. तिसवास्ते यहां आकारलोपसें सिद्ध है. 'योनःप्रचोद' इति। ऐसें न कहना कि, इसप्रकारके प्रयोग उपलंभ नही होते हैं।। क्योंकि, " बंधुप्रियं बंधुजनोऽऽजुहाव " इत्यादि महाकवियोंके प्रयोग देखनेसें।

नित्येन यः पश्यति स पश्यति ॥ १ ॥ इसवास्ते, वे वेदवाक्यके प्रमाणसें-ही गुरुताकरके अग्निहीकी पर्युपासना करते हैं,। तिस अग्निके प्रणिधानार्थ वेद स्तुतिगर्भित यह पढते हैं.॥

मंत्रः॥

ॐ भूर्भुवःस्वस्तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गोदेवस्य
धीमहि धियोयो नः प्रचोदयात् ॥ १ ॥७ ॥

ॐ। भूर्भुःस्वस्तत्। सवितुः। व। रे। आण्यं। भर्गोदे। वस्य। धीमहि। धियः। अयः। नः। प्रचोदयात् ॥७॥

व्याख्या॥ (धियः) बुद्धियां (नः) हमारी—भवंत्विति वाक्यशेषः—होवें कैसी बुद्धियां होवें? (अयः) अयंति गच्छंतीति अयः अर्थात् गमन करनेवाली। कहां?। (रे) अग्निविषे। अग्निशब्दकरके यहां तिसकी (अग्निकी) आराधना ग्रहण करनी। तब तो अग्निआराधनादिमें हमारी बुद्धियां प्रवर्तनेवाली होवें, यह अर्थ संपन्न हुआ. इति। किंविशिष्टे रे। कैसे अग्निविषे? (भर्गोदे) अवंतीति ऊः दाहक इत्यर्थः, अवातिधातुको श्री सिद्धहेमधातुपाठमें दहनार्थताकरके पठन करनेसें। 'भर्ग' ईश्वर, सो 'ऊ' दाहक है जिसका, सो कहिये 'भर्गोः' काम इत्यर्थः। "यत्कालिदासः।" क्रोधं प्रभो संहर संहरेति यावद्गिरः खे मरुतां चरंति। तावत्स वन्हिर्भवनेत्रजन्मा भस्मावशेषं मदनं चकार ॥१॥ तं तिस कामको, जो ददात्याराधकेभ्यः देवें आराधकोंकेताइ, सो कहिए 'भर्गोदः' तस्मिन् 'भर्गोदे' कामको देनेवाले अग्निविषे इत्यर्थः। अग्नि तर्पियांके शास्त्रमें अग्नितर्प्पणसें संपत्की संप्राप्ति कथन करनेसें, और संपदाको कामका हेतुत्व होनेसें, कामकी प्राप्ति सिद्ध है.। 'तथा च शिवधर्मोत्तरसूत्रं'।' पूजया विपुलं राज्यमग्निकार्येण संपदः। तपःपापविशुद्ध्यर्थं ज्ञानं ध्यानं च मुक्तिदम्' ॥ १ ॥ पुनः किंविष्टे रे—फिर कैसे अग्निविषे? (धीमहि) धियः-पंडिता महः-पूजका यस्य स तथा तत्र। पंडित पूजक है जिसके, ऐसे अग्निविषे.। क्या स्वच्छंदेकरके हमारि बुद्धियां प्रवर्तती हैं? नही. सोही कहे हैं.। (प्रचोदयात्) चोदनं-चोदया

गो-यथार्थ अर्थ गर्भितवाणीकरके दीव्यति स्तौति–स्तुति करता है सो कहिये 'गोदेव' तस्य गोदेवस्य–तिस गोदेवका पोषक इत्यर्थः। यदि अनजान बालकने भी धूलकी मुट्ठी भरके भगवान् बुद्धकेतांइ कहा कि लीजीए महाराज! यह आपका हिस्सा (भाग) है, तिससेंही तिसको राज्यप्राप्तिरूप फल हुआ तो, क्या आश्चर्य है कि, जे भावसें बुद्ध भगवान्‌की स्तुति करनेमें तत्पर हैं, तिनके मनवांछित प्रयोजनको सिद्ध करे.। तथा (धीम) धियं ज्ञानमेव मिमीयते–शब्दयति–प्ररूपयति ज्ञानकोंही जो कथन करता है, सो 'धीमः' तिसका आमंत्रण 'हे धीम'! जे बाह्यार्थाकार घटपटादिरूप हैं तिनको अविद्यादर्शित होनेसें अवस्तु होनेकरके असत्‌रूप है, ज्ञानाद्वैतकोही तिसके (बौद्धके) मतमें प्रमाणता होनेसें.। बुद्धके चरणोंकी सेवा करनेवालोंने ऐसा कहा है। "ग्राह्यग्राहकनिर्मुक्तं विज्ञानं परमार्थसत्। नान्योनुभावो बुद्ध्याऽस्ति तस्यानानुभवोपरः॥ १॥ ग्राह्यग्राहकवैधुर्यात् स्वयं सैव प्रकाश्यते। बाह्यो न विद्यते ह्यर्थो यथा बालैर्विकल्प्यते॥ २॥ वासनालुठितं चित्तमर्थाभासे प्रवर्त्तते। इत्यादि"। यहां बहुत कहनेयोग्य है, सो तो ग्रंथ गौरवताके भयसें नही कहते हैं,। गमनिकामात्र फल होनेसें, प्रयास (उद्यम) का.। (हि) स्फुटं प्रकट (यो) पदके एकदेशमें पदसमुदायके उपचारसें हे योगिन्। "बुद्धे तु भगवान् योगी" इति अभिधानचिंतामणि शेषनाममालावचनसें योगी नाम बुद्धका है, तिसका आमंत्रण हे योगिन्! (बुद्ध) – (नः) हमारी (धियः) बुद्धियोंको अभिप्रेत तत्त्वज्ञानप्रति प्रेर, रंजु कर. इति (अत्) अतति सातत्येन गच्छतीति अत्। गत्यर्थधातुओंको सर्वज्ञानार्थ होनेसें 'हे अत्' हे सर्वज्ञ'! इत्यर्थः॥ इति बौद्धाभिप्रायेण मंत्रव्याख्या॥ ६॥

अथ जैमिनिमुनिके मतवाले तो, सर्वज्ञको देवताकरके मानतेही नही हैं; किंतु, नित्य वेदवाक्योंसेंही तिनको तत्त्वका निश्चय है.। साक्षात् अतींद्रिय अर्थके देखनेवाले किसीका भी तिनके मतमें भाव न होनेसें.। "यदुक्तं।" अतींद्रियाणामर्थानां साक्षाद्द्रष्टा न विद्यते। वचनेन हि

आदिमेंही अस्खलित जगत्त्रयव्यापी तीनों देवोंके भी प्रणिधेय ऐसा ओंकार है, और जो वेद उद्गीय है, और जो वेद समस्त अर्थके प्रकाशनेमें एक सूर्यसमान है, तिस वेदके उपदेशको आश्रित्य होकरके कामसंपदा करणहार पंडितजनोंके पूजनीय ऐसे अग्निआराधनविषे, हमारी बुद्धियां प्रवृत्त होवें, ॥ इतिभट्टदर्शने मंत्रव्याख्या ॥ ७ ॥

अथ सामान्यकरके सर्वप्रवादियोंके संवादिस्वरूप परमेश्वरका प्रणिधानरूप यह गायत्रीमंत्र है. ॥

मंत्रः ॥

ओँ भूर्भुवःस्वस्तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गोदेव स्य
धीमहिधियो योनः प्रचोदयात्॥ १॥ ८॥

ओँ भूर्भुवःस्वस्तत् सवितुः वरेण्यं भर्गोदेव स्य धीम् अहिधियः। योनः प्रचोदय अत् ॥ ८ ॥

व्याख्या (ओँ) पूर्ववत् (भूर्भुवःस्वस्तत्) हे सर्वव्यापिन्! परमेश्वर! वेदमें भी कहा है। 'पुरुषएवेदमिति'। (वरेण्यं) पूर्वोक्त अनुनासिकरीतिकरके हे वरेण्य 'सवितुः' सूर्यसें भी प्रधान इति। (भर्गोदेव) 'भर्ग' ईश्वर 'उ' ब्रह्मा 'ऊ' शंकर तिनोंका भी देव 'भर्गोदेव' हे भर्गोदेव! अर्थात् हे विष्णु! ब्रह्मामहादेवका आराध्य! ऐसे नही कहना कि, तिनोंका आराध्य कोई नही है.। क्योंकि, वे भी संध्यादि करते हैं; ऐसा सुननेसें.। तथा। "अष्टवर्गांतगं बीजं कवर्गस्य च पूर्वकं। वह्निनोपरि संयुक्तं गगनेन विभूषितम्। १। एतद्देवि परं तंत्रं योभिजानाति तत्वतः। संसारबंधनं छित्वा स गच्छेत् परमां गतिम्। २। इत्यादिवचनप्रामाण्यात् ॥" (स्य) अंतय अंत कर। किसका सो कहे हैं, (धीम्) धीश्चित्तं धीनाम मनका है तस्या इः कामः तिस धी मनका जो इ-काम सो कहिये 'धी' तं 'धीम्' अर्थात् मनोगत काम्मका। मनोगत कामके नष्ट हुए तत्वसें वचनकायाके कामका ध्वंस होही गया। तथा। (अहिधियः) क्रूरता आदि जे हैं, तिनोंका भी ध्वंस (विनाश) कर। तथा। (योनः) योनि सचित्तादि चौरासी (८४)लक्ष संख्याका विभाग जो करे,

चोदनेत्यर्थः । चोदना नाम प्रेरणा जो है, सो क्रियाप्रति प्रवर्त्तकका वचन है । यथा । ' अग्निहोत्रं जुहुयात् स्वर्गकामइति ' । जो स्वर्गका कामी होवे सो अग्निहोत्र करे इति । सोही कथन करते हुए षट्दर्शनसमुच्चयके करनेवाले। "चोदनालक्षणो धर्मश्चोदना तु क्रियां प्रति प्रवर्त्तकं वचः प्राहुः स्वः कामोऽग्निं यथार्पयेत् । १।इति ।" प्रकर्षेण चोदया प्रचोदयाऽस्मिन्नस्तीति । अभ्रादिभ्य इति बहुवचनस्याकृतिगणज्ञापनार्थत्वात् अप्रत्यये प्रचोदयो वेदः तस्मात् ' प्रचोदयात् ' वेदसें वेदोपदेशको आश्रय लेके इत्यर्थः गम्ययपः कर्माधारे पंचमी । किंविशिष्टात् वेदात् । कैसे वेदसें? (सवितुः) ' व ' शब्दको—कादंबखंडितदलानि व पंकजानि इत्यादि स्थानोंमें उपमानार्थ रूढ होनेसें ' सवितुः व ' आदित्यादिव । समस्त अर्थोंकी प्रकाशकता करके भास्करतुल्य इत्यर्थः। तिस वेदसें हमारी मतियां—बुद्धियां अग्निआराधनादिविषे प्रवृत्त होवें । यत्र । जहां—जिस वेदमें (ॐ) ॐ ऐसा अक्षर विद्यमान है । ॐकारको वेदके आदिभूत होनेसें । कैसा सो ॐकार (भूर्भुवःस्वस्तत्) भुवनत्रयव्यापि । तब तो किंचित् अभिधेयसत्तासमाविष्ट वस्तु गुरुसंप्रदाययुक्तिकरके अन्वेषण करे मंत्र ॐकारशब्द प्रर्यायमेंही प्राप्त होता है । सर्वही प्रवादियोंने अनिंदितकरके इस ॐकारको संपूर्ण भुवनत्रयकमलाधिगममें बीजभूतकरके वर्णन करनेसें, यह ॐकार ऐसे विचारने योग्य है, इसवास्तेही इसका असाधारण विशेषणांतर कहते हैं । (आण्यं) आण्यते उच्चार्यते इति आण्यं प्रणिधेयं प्रणिधान करनेयोग्य । किसको (वस्य) ' उ ' ब्रह्मा ' ऊ ' शंकर ' अ ' पुरुषोत्तम संधिके वशसें ' वं ' ब्रह्मामहादेवविष्णुरूप पुरुषत्रय, तिनोंने भी ध्येय है, अर्थात् पूर्वोक्त तीनों पुरुषोंको भी ॐकार ध्यावने योग्य है । ' वस्येति कर्त्तरि षष्ठी कृत्यस्य वेति लक्षणात् । अथवा वेदात् वेदसें । कैसें वेदसें ' सवितुः ' उत्पादयितुः उत्पन्न करनेवालेसें । किसको उत्पन्न करनेवाला? ' ॐ ' ॐकारको शेषं पूर्ववत् ॥ इतना विशेष है ' व 'शब्द वाक्यालंकारमें जानना । ' रे ' आण्यं ' रेण्यं 'यहां आकारका लोप पूर्वोक्तवचनयुक्तिसें जानना । तब तो यह समुदायार्थ होता है । जिस वेद-

दादि पांच क्रमसें) स्मरण करते हुए कल्पवृक्षकीतरें भक्तिमें तत्पर। पुरुषोंको क्या क्या मनवांच्छित पूर्ण नही करता हैं ? अपितु सर्व करता है. । कैसा हैं तत्वपंचक ? पापकी जातिका नाश करनेवाला। इति ॥ अथवा॥ ' रेण्यं ' ' धीमहि ' इहां ' हि ' का ' ह् '। ' रे ' का ' र् '। ' धी ' का दीर्घ ' ई '। और ' ण्यं ' का ' ँ ' बिंदु। इन सर्वके एकत्र जोडनेसें मायाबीज होता है। अर्थात् 'ह्रीं' कार होताहै। सो भी अचिंत्य शक्तियुक्त है, सर्व मंत्रोंमें राजा समान होनेसें. यही। उद्गीथादिक (सामवेदावयवविशेष) हे ' महिधियोयोनः ' नकारसे परे जो विसर्ग है तिसको मकारसें परे जोडनेसें 'नमः' होनेसें। सन्मंत्र है। तदन्तःसन्मंत्रो वर्ण्यतेति। इत्यादि वचन प्रमाणसें। तथा। ' वरेण्यं ' वकारस्थित अकार और रगत (रकारमें रहे) एकारको–अ+ए=ऐदौच्सूत्रकरके ' ऐ ' कारके हुए ' ण्यं ' ण्यकारमें स्थित बिंदुको ऐकारके साथ जोडनेसे वाग्बीज " ऐं " सिद्ध होता है. । 'अधीमहि' अर्हत्पक्षके व्याख्यानमें 'इः' नाम कामका कथन करा है, इसवास्ते स्मरबीज श्रीवीजादि अक्षरोंके संयोग श्री पद्मावती त्रिपुरादि देवताराधन महामंत्रसिद्धिके निबंधन होते हैं, इसप्रकारसें विद्वानोंको अपनी बुद्धिके अनुसार कहना योग्य है । स यौगिक येह अर्थ है, जेकर ऐसें कहोगे तो कौन कहता है ? कि, सयौगिक नही है. क्योंकि, सर्वही महामंत्र सयौगिक ही है. तथाचाधीयते । " अमंत्रमक्षरं नास्ति नास्ति मूलमनौषधम् । अधना पृथिवी नास्ति संयोगाः खलु दुर्लभाः ॥ १ " ॥ भावार्थः ॥ विना मंत्रके कोइ अक्षर नही है, विना औषधिके कोइ जडी नही है, विना धनके कोइ पृथिवी नही है, परंतु निश्चय उनोंका संयोग दुर्लभ है. ॥ ऐसें रक्षादि यंत्र भी जैसें तीन मायावीज है । तिनके ऊपर यंत्रका न्यास करिये है, सो वशीकरणयंत्र है. । तथा तैसें वश्यादि प्रयोग भी इहां जानने । जैसें भर्गोशब्दसें गोरोचन। ' माहि ' मनःशिल। ' देव ' ' प्रचोदयात् ' दकारसें दल (पत्र) इनोंकरके। ' सवितुः ' विशब्दसें विशेषक विलेपन वा। 'यो' योशब्दसें विशेष योनिमती स्त्रीयोंको । ' नः ' नः शब्दसें पुरुषोंको प्रीति-

सो " पर्यंतात् किपि णिलुकि " ' योन् ' संसार, तस्मात् ' योनः ' संसार समुद्रसें (प्रचोदय) पार होनेवास्ते हमको प्रेरणा कर, कामक्रोधादि ध्वंसनपूर्वक हमकों मुक्तिको प्राप्त कर इत्यभिप्रायः। ' योनः प्रचोदय ' इसके कहनेसें कामादिका ध्वंसही अर्थापन्न मुक्तताका जानना, परंतु धनका नही; मुक्तताविषे अंतरीय ध्वंस होनेसें.। ' धीमहि धियः ' इसकर-केही सिद्ध था, ऐसे न कहना. क्योंकि, मुक्त्यर्थिपुरुषको प्रथम कामा-दिका विजय करना चाहिये, ऐसें उपायउपेयभाव जनावनेसें दोष नही है.। तथा। (अत्) इसका अर्थ सौगत (बौद्ध) पक्षवत् जानना। इति सर्वदर्शनसम्मत मंत्रव्याख्या ॥ ८ ॥

अथ यह गायत्री सर्व बीजाक्षरका निधान है, ऐसे ब्राह्मणोंके प्रवाद-को आश्रित्य हो करके कितनेकमंत्राक्षरोंके बीजोंको दिखाते हैं.।तद्यथा॥ ॐ ॥ ऐसा बीजाक्षर अक्षपादके पक्षमें संक्षेपमात्रसें प्रभावसहित दिखा-या है सो ही जान लेना.। और तहां। भर्गोदे। इसकरके ध्यान करनेकी अपेक्षा वर्णका सूचन है, सोही दिखाते हैं.। 'भर्ग ' ईश्वर, तिसकरके श्वेतवर्ण। शांतिक पौष्टिकादिमें। ' उ ' ब्रह्मा, पीतवर्ण। स्तंभनादिमें। पीत और रक्तको कवियोंकी रूढिसें एकता होनेसें रक्तका भी ग्रहण कर-ना। वशीकरण आकर्षणादिमें। ' द ' कृष्ण, तिसकरके कृष्णवर्ण। विद्वेष उच्चाटन अवसानादिमें॥ इत्यादि और भी इस बीजाक्षरका प्राणिधान-विधि यथागुरुसंप्रदायसें जानना. ॥ यदि वा। ' ॐ ' इसकरके । " वह-कला अरिहंता निउणा सिद्धा य लोढकलसूरी। उवज्झाया सुद्धकला दीह-कला साहुणो सुहया। १। " इस गाथोक्तरहस्यकरके परमेष्ठिपंचक ही महानंदार्थि पुरुषको ध्यावने योग्य है. ॥ अथवा। ' भूः " पृथिवीतत्त्व ' भुवः ' वायु, और आकाश, तिनमें ' भु ' वायुतत्त्व और ' व ' आकाश-तत्त्व ' स्वर् ' उर्ध्वलोक मुखमस्तकरूप तिसको तनोति प्राप्त होवे, सो ' स्वस्तत् ' जल और अग्नि। न्याय इनका ॥ " तत्त्वपंचकमिदं विधियो-गात् स्मर्यमाणमघजातिविघाति। कल्पवृक्ष इव भक्तिपराणां पूरयत्यभि-मतानि न कानि। १ " भावार्थः—यह पांच तत्त्व विधियोगसें (अर्ह-

॥ अथ द्वादशस्तम्भारम्भः ॥

एकादशस्तंभमें जैनाचार्यकृत गायत्रीका व्याख्यान करा, अथ द्वादश स्तंभमें गायत्रीके माननेवालोंका करा व्याख्यान लिखते हैं. जो कि, परस्पर विरुद्ध है; तथाविध संप्रदायके अभावसें. । तत्रादौ सायणाचार्य-कृत भाष्यका व्याख्यान करते हैं. ॥

तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि ॥

धियो यो नः प्रचोदयात् ॥ १० ॥

व्याख्या—जो सवितादेव (नो) हमारें (धियः) कर्मोंको, वा धर्मादिविषयबुद्धियोंको (प्रचोदयात्) प्रेरयेत् प्रेरणा करे (तत्) तिस सर्व श्रुतियोंमें प्रसिद्ध (देवस्य) प्रकाशमान (सवितुः) सर्वान्तर्यामि होनेकरके प्रेरक जगत्स्रष्टा परमेश्वरका आत्मभूत (वरेण्यं) सर्व लोकोंको उपास्यताकरके और ज्ञेयताकरके सम्यक् प्रकारसें भजने योग्य है (भर्गः) अविद्या और तिसके कार्यको भर्जन (दग्ध) करनेसें स्वयंज्योतिः परब्रह्मात्मक तेजको (धीमहि) तत् । जो मैं हूं सोइ वोह है और जो वोह है सोइ मैं हूं ऐसे हम ध्यावते हैं । अथवा 'तत्' ऐसा भर्गका विशेषण है, सवितादेवकें तैसें भर्गको हम ध्यावे हैं 'यः' लिंगव्यत्यय होनेंसे 'यत्' जो भर्गः हमारे 'धियः' कर्मादिकोंको 'प्रचोदयात्' प्रेरणा करे 'तत्' तिस भर्गको हम ध्यावे हैं इति समन्वयः । अथवा । (यः) जो सविता सूर्य (धियः) कर्मोंको (प्रचोदयात्) प्रेरयति प्रेरणा करता है (तस्य) (सवितुः) तिस सर्वकी उत्पत्ति करनेवाले (देवस्य) प्रकाशमान सूर्यके (तत्) सर्वको दृश्यमान होनेसें प्रसिद्ध (वरेण्यं) सर्वको संभजनीय (भर्गः) पापोंको तपानेवाले तेजोमंडलको (धीमहि) ध्येयताकरके मनसें हम धारण करते हैं ॥ अथवा । भर्गशब्दकरके अन्न कहिये है । (यः) जो सवितादेव (धियः) कर्मोंको (प्रचोदयात्) प्रेरणा करता है, तिसके प्रसादसें (भर्गः) अन्नादिलक्षण फलको (धीमहि) धारण करते हैं, तिसके आधारभूत हम होते हैं. इत्यर्थः । भर्गशब्दको

कर है। तथा ' प्रचोदया ' प्रदीयमान विषका असाध्य निदान है इत्यादि ॥ ' अधीमहि ' अकारसें अजा सृगश्रृंगी (जिसके श्रृंगसमान फलवाला वृक्ष) तिसके ' प्रचोदयात् ' दकारसें दल (पत्र)। भा १। 'भर्गोदेव' गोशब्दसें गेंहूके सत्तु। भा १। ' महि ' मकारसें मधुलि। भा २। ' सवितुः ' सकारसें सर्पिषा सह—घृतके साथ ' भर्गो ' भशब्दसें भक्षण करे ' वरेण्यं ' वकारसें बलवीर्य करे ' प्रचोद ' प्रसें प्रभंजन (वायु) तिसको हरे, इत्यादि औषध विधियां भी इहां जाननीयां. ॥

आर्यावृत्तम् ॥

चक्रे श्रीशुभतिलकोपाध्यायैः स्वमतिशिल्पकल्पनया॥
व्याख्यानं गायत्र्याः क्रीडामात्रोपयोगसिद्धम् ॥ १ ॥

अनुष्टुप् ॥

तस्यायं स्तबकार्थस्तु परोपकृतिहेतवे ॥
कृतःपरोपकारिभिर्विजयानंदसूरिभिः ॥ १ ॥

॥ इतिगायत्रीमंत्रव्याख्यास्तबकार्थः ॥

श्रीशुभतिलक उपाध्यायजी अपने करे गायत्रीव्याख्यानमें कहते हैं कि, मैने येह पूर्वोक्त गायत्रीके जे अर्थ करे हैं, ते सर्व क्रीडामात्र हैं "क्रीडामात्रोपयोगसिद्धमितिवचनात्" इससें यह सिद्ध होता है कि, येह पूर्वोक्त सर्व अर्थ गायत्रीके सच्चे हैं, यह नही समझना. किंतु सत्यार्थ तो वो है कि, जिस ऋषिने जिस अर्थके अभिप्रायसें गायत्रीमंत्र रचा है; परंतु तिस ऋषिके कथन करे अर्थकी परंपरायसें धारणा आजतक चली आइ होवे, और तैसें ही अर्थ भाष्यकारोंने लिखे होवें, यह किसीतरें भी सिद्ध नही होता है; सो अग्रिम स्तंभमें जान लेना. इत्यलम् ॥

इतिश्रीमद्विजयानंदसूरिविरचिते तत्त्वनिर्णयप्रासादे जैनाचार्यबुद्धिवैभववर्णनो नामैकादशस्तंभः ॥ ११ ॥

(ॐभूरित्यादिमंत्रविशेष) और शिरः (ॐ आप इत्यादिमंत्रविशेष) करके संयुक्तको सर्व वेदोंका सार कहते हैं, ऐसी गायत्री प्राणायाम करके उपासना करने योग्य है, प्रणव (ॐ) सहित तीन व्याहृतीयां संयुक्त प्रणवांतक गायत्रीजपादिकों करके उपासना करने योग्य है; तहां शुद्धगायत्री प्रत्यक् ब्रह्मैक्यताकी बोधिका है. 'धियो यो नः प्रचोदयादिति' हमारी बुद्धियोंको जो प्रेरता है, ऐसा सर्वबुद्धिसंज्ञा अंतःकरणप्रकाशक सर्वसाक्षी प्रत्यक् आत्मा कहीये है, तिस प्रचोदयात् शब्दकरके कहे आत्माका स्वरूपभूत परं ब्रह्म तिसकों 'तत्सवितुः' इत्यादिपदोंकरके कथन करिये है. तहां "ॐतत्सदितिनिर्देशो ब्रह्मणस्त्रिविधः स्मृतः" इति ॐ। तत्। सत्। ये तीन प्रकारका ब्रह्मका निर्देश कहा है, इसवास्ते 'तत्' शब्दकरके प्रत्यग्भूत स्वतः सिद्ध परंब्रह्म कहिये है 'सवितुः' इसशब्दसें सृष्टिस्थितिलयलक्षणरूप सर्व प्रपंचका समस्त द्वैतरूप विभ्रमका अधिष्ठान आधार लखिये है। 'वरेण्यं' सर्ववरणीय निरतिशय आनंदरूप। 'भर्गः' अविद्यादिदोषोंका भर्जनात्मक ज्ञानैकविषयत्व। 'देवस्य' सर्वद्योतनात्मक अखंड चिदेकरस 'सवितुः देवस्य' इहां षष्ठीविभक्तिका अर्थ राहुके शिरवत् औपचारिक जानना, बुद्धिआदि सर्व दृश्य पदार्थोंका साक्षीलक्षण जो मेरा स्वरूप है, सो सर्व अधिष्ठानभूत परमानंदरूप निरस्त— दूर करे है समस्त अनर्थ जिसने, तद्रूप प्रकाश चिदात्मक ब्रह्मही है. ऐसें (धीमहि) हम ध्यावते हैं. ऐसे हुआ ब्रह्मके साथ अपनें विवर्त जड प्रपंचकरके रज्जुसर्पन्यायकरके अपवाद सामानाधिकरण्यरूप एकत्व है, सो यह है, इस न्यायकरके सर्वसाक्षी प्रत्यग् आत्माका ब्रह्मके साथ तादात्म्यरूप एकत्व होता है. इसवास्ते सर्वात्मक ब्रह्मका बोधक यह गायत्रीमंत्र है ऐसें सिद्ध होता है ॥

सात व्याहृतियोंका यह अर्थ है ॥ 'भूः' इससें सन्मात्र कहिये है ॥ १ ॥ 'भुवः' इससें सर्व भावयाति प्रकाशयति इस व्युत्पत्तिसें चिद्रूप कहिये है ॥ २ ॥ सुव्रियते इस व्युत्पत्तिसें 'स्वर्' इति। सुष्ठु भलीप्रकारे सर्वकरके व्रियमाण सुखस्वरूप कहिये है ॥ ३ ॥ 'महः' महीयते पूज्यते

अन्नपरत्व और धीशब्दको कर्मपरत्व अथर्वण कहता है। तथा च श्रुतिः। "वेदांश्छंदांसि सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य कवयोन्नमाहुः।कर्माणि धियस्तदुते प्रब्रवीमि प्रचोदयन्त्सविता याभिरेतीति"॥ ये तीनतरेंके अर्थ गायत्रीके सायणाचार्यने ऋग्वेदभाष्यमें करे हैं॥

तथा तैत्तिरीये आरण्यके १० प्रपाठके २७ अनुवाके। गायत्रीमंत्रका ऐसा अर्थ सायणाचार्यनेही करा है॥ (सवितुः) प्रेरक अंतर्यामी (देवस्य) देवके (वरेण्यं) वर्णीय श्रेष्ठ (तत्) (भर्गः) तिस भर्गको—तेजको (धीमहि) हम ध्यावे हैं। (यः) जो सविता परमेश्वर (नः) हमारी (धियः) बुद्धिवृत्तियोंको (प्रचोदयात्) प्रकर्षकरके तत्त्वबोधमें प्रेरणा करे, तिसके तेजको हम ध्यावे हैं. इत्यर्थः॥

तथा महीधरकृत यजुर्वेदभाष्यमें तीसरे अध्यायमें ऐसे लिखा है॥

(तत्) तस्य—तिस (देवस्य) प्रकाशक (सवितुः) प्रेरक अंतर्यामि विज्ञानानंदस्वभाव हिरण्यगर्भ उपाधिकरके अवछिन्न वा आदित्यांतरपुरुष वा ब्रह्मके (वरेण्यं) सर्वको प्रार्थनीय (भर्गः) सर्व पापोंको और संसारको दग्ध करनेमें समर्थ तेज सत्य ज्ञानादि जो वेदांतकरके प्रतिपाद्य है तिसको (धीमहि) हम ध्यावते हैं। अथवा मंडल, पुरुष, और किरणां, ये तीन भर्ग शब्दके वाच्य जानने अथवा भर्गनाम वीर्यका जानना। "वरुणाद्ध वा अभिषिषिचानाद्भर्गोऽपचक्राम वीर्यं वै भर्ग इति श्रुतेः"॥ तस्य कस्य—तिसका किसका?। (यः) जो सविता (नः) हमारी (धियः) बुद्धियोंको, वा हमारे कर्मोंको (प्रचोदयात्) सत्कर्मानुष्ठानकेवास्ते प्रकर्षकरके प्रेरता है। अथवा वाक्यभेदकरके योजना करते हैं, सवितु देवके तिस वरणीय भर्गः—तेजको हम ध्यावते हैं, और जो हमारी बुद्धियोंको प्रेरता है, तिसको भी हम ध्यावते हैं, और सो सविताही है.। इत्यादि॥

अथ शंकरभाष्यव्याख्यान लिखते हैं। अथ सर्वदेवात्मक, सर्वशक्तिरूप, सर्वावभासक, प्रकाशक, तेजोमय, परमात्माको सर्वात्मकपणे प्रकाशनेके अर्थं सर्वात्मकत्व प्रतिपादक गायत्रीमहामंत्रका उपासनप्रकार (विधि) प्रकट करते हैं। तहां गायत्रीकों प्रणवादि सात व्याहृतीयां

और कर्मोंसे अलग करके अच्छे२ गुण कर्म और स्वभावोंमें प्रवृत्त करे, इसलिये। और प्रार्थनाका मुख्य सिद्धांत यही है कि, जैसी प्रार्थना करनी, वैसाही पुरुषार्थसें कर्मका आचरण भी करना चाहिये ॥३५॥

तथा सन १८७५ ई० छापेके सत्यार्थप्रकाशके तृतीय समुल्लासमें ऐसे लिखा है ॥ गायत्रीमंत्रमें जो प्रथम ॐकार है उसका अर्थ प्रथम समुल्लासमें लिखा है, वैसाही जान लेना ॥ 'भूरिति वै प्राणः भुवरित्यपानः। स्वरिति व्यानः यह तैत्तिरीयोपनिषद्का वचन है ॥ प्राणयति चराचरं जगत् स प्राणः। जो सब जगत्के प्राणोंका जीवन कराता है, और प्राणसे भी जो प्रिय है, इस्से परमेश्वरका नाम प्राण है; सो भूः शब्द प्राणका वाचक है. और भुवः शब्दसें अपान अर्थ लिया जाता है. अपानयाति सर्वं दुःखं सोऽपानः। जो मुमुक्षुओंको और मुक्तोंको सब दुःखसें छोडाके. आनंदस्वरूप रक्खे, इस्से परमेश्वरका नाम अपान है. सो अपान भुवः शब्दका अर्थ है. व्यानयति स व्यानः। जो सब जगत्के विविध सुखका हेतु, और विविध चेष्टाका भी आधार, इस्से परमेश्वरका नाम व्यान है. सो व्यान अर्थ स्वः शब्दका जानना। तत् यह द्वितीयाका एकवचन है. सवितुः षष्ठीका एकवचन है। वरेण्यं द्वितीयाका एकवचन है। भर्गः द्वितीयाका एकवचन है। देवस्य षष्ठीका एकवचन है। धीमहि क्रियापद है। धियः द्वितीयाका बहुवचन है। यः प्रथमाका एकवचन है। नः षष्ठीका बहुवचन है। प्रचोदयात् क्रियापद है ॥ सविताशब्दका और देवशब्दका अर्थ प्रथम समुल्लासमें कह दिया है, वहीं देख लेना॥ वर्तुमर्हं वरेण्यं। नाम अतिश्रेष्ठम्। भर्गो नाम तेजः, तेजोनाम प्रकाशः, प्रकाशोनाम विज्ञानम्, वर्तुं नाम स्वीकार करनेकों जो अत्यंत योग्य उसका नाम वरेण्य है, और अत्यंत श्रेष्ठ भी वह है, धीनाम बुद्धिका है, नः नाम हम लोगोंकी, प्रचोदयात् नाम प्रेरयेत्. हे परमेश्वर! हे सच्चिदानंदानंतस्वरूप! हे नित्यशुद्धबुद्धमुक्तस्वभाव! हे कृपानिधे! हे न्यायकारिन्! हे अज! हे निर्विकार! हे निरंजन! हे सर्वांतरयामिन्! हे सर्वाधार! हे सर्वजगत्पितः! हे सर्वजगदुत्पादक! हे अनादे! हे विश्वंभर! सवितुर्देवस्य तव यद्-

इस व्युत्पत्तिसें सर्वातिशयत्व कहिये है ॥ ४ ॥ 'जनः' जनयतीति जनः सकलवस्तुयोंका कारण कहिये है ॥ ५ ॥ 'तपः' सर्व तेजोरूपत्व ॥ ६ ॥ 'सत्यम्' सर्वबाधारहित ॥ ७ ॥ यह तात्पर्य है कि–जो इस लोकमें सद्रूप है सो सर्व ॐकारका वाच्यार्थ ब्रह्महीहै, इस आत्माकों सत्‌चिद्रूप होनेसें । अथ भूआदिक सर्वलोक ॐकारके वाच्य सर्व ब्रह्मात्मक है, तिससें व्यतिरिक्त कुछ भी नही है. । व्याहृतियां भी सर्वात्मक ब्रह्मकी ही बोधिका हैं । गायत्रीके शिरका भी यही अर्थ है. । 'आपः' व्याप्नोति इस व्युत्पत्तिसें व्यापित्व कहिये है । 'ज्योतिः' प्रकाशरूपत्व । 'रसः' सर्वातिशयत्व । 'अमृतं' मरणादिसंसारनिर्मुक्तत्व, सर्वव्यापि, सर्वप्रकाशक, सर्वोत्कृष्ट, नित्यमुक्त, आत्मरूप, सच्चिदानंदात्मक, जो ॐकारवाच्य ब्रह्म है, सो मैं हूं ॥ इतिगायत्रीमंत्रस्यार्थः ॥

अथ स्वामी दयानंदसरस्वतीजीकृत गायत्रीव्याख्यान लिखते हैं। यथा यजुर्वेदभाष्ये तृतीयाध्याये ॥

तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि ॥
धियोयोनः प्रचोदयात् ॥३५॥

पदार्थः–हम लोग । (सवितुः) सब जगतके उत्पन्न करने वा । (देवस्य) प्रकाशमय शुद्ध, वा सुख देनेवाले परमेश्वरका जो । (वरेण्यम्) अतिश्रेष्ठ (भर्गः) पापरूप दुखोंके मूलको नष्ट करनेवाला (तेजः) स्वरूप है । (तत्) उसको । (धीमहि) धारण करें, और । (यः) जो अंतर्यामी सब सुखोंका देनेवाला है, वह अपनी करुणाकरके । (नः) हम लोगोंकी । (धियः) बुद्धियोंको उत्तम २ गुणकर्मस्वभावोंमें । (प्रचोदयात्) प्रेरणा करें ॥ ३५ ॥

भावार्थः–मनुष्योंको अत्यंत उचित है कि, इस सब जगतके उत्पन्न करने वा सबसे उत्तम सब दोषोंके नाश करनेवाले तथा अत्यंत शुद्ध परमेश्वरहीकी स्तुति प्रार्थना और उपासना करें. । किस प्रयोजनकेलिये? जिससे वह धारण वा प्रार्थना किया हुआ, हम लोगोंको खोटे २ गुण

कहते हैं. और ऋग्, यजुः, साम, अथर्व, ये नाम भी व्यासजीनेही रक्खे हैं; ऐसा कथन महीधरकृत यजुर्वेदभाष्यमें लिखा है.

जब वेदका एक पुस्तकही रावणके समयमें नही था तो, तिसऊपर रावणने भाष्य रचा किसतरे माना जावे? जेकर किसी ब्राह्मणका नाम रावण होवे, और तिसने वेदोंपर भाष्य रचा होवे, यह तो मान भी सकते हैं. परंतु वो भाष्य कब रचा गया? और कहां गया? क्यों कि, सायणाचार्यने ऋग्वेदके भाष्य रचते हुएने, यह नही लिखा है कि, मैं अमुक भाष्यके अनुसारे नवीन भाष्य रचता हूं; जैसें महीधरने वेददीपमें लिखा है कि मैं माधव उव्हटादिके भाष्यानुसार रचना करता हूं.। या तो सायणाचार्यको प्राचीन कोइ भाष्य नही मिला होवेगा। और जे कर मिला होवेगा तो तिसके अर्थ सायणाचार्यको सन्मत नही होवेंगे, इसवास्ते अपने मतानुसार नवीन भाष्य रचके प्राचीन भाष्य लोप कर दिया होवेगा; इसवास्ते ही वेदवेदांतके पुस्तकोंके भाष्यमें बहुत गडबड है. कोइ किसीतरेंके अर्थ करता है, और कोइ उससें अन्यतरेंके, कोइ उससें भी अन्यतरेंके; जैसें व्याससूत्रोपरि आठ आचार्योंने आठ तरेंके भाष्योंमें अन्य २ प्रकारके अर्थ लिखे हैं.। शंकर १, आनंदतीर्थ २, निंबार्क ३, भास्कर ४, रामानुज ५, शैवमतप्रवर्तक ६, वल्लभ ७, भिक्षु ८.। इनके रचे भाष्यके मत यथाक्रमसें जान लेने.। केवलाद्वैत १, द्वैत २, द्वैताद्वैत ३, द्वैताद्वैत ४, विशिष्टाद्वैत ५, विशिष्टाद्वैत ६, शुद्धाद्वैत ७, अविभागाद्वैत ८.॥ इसवास्ते वेदवेदांतके पुस्तकोंके प्राचीन भाष्य, और टीका नही मालुम होते हैं;। इसवास्ते सर्व भाष्यकारादिकोंने अपने २ मतानुसार अपनी २ अटकलपच्चीसें अर्थ लिखे हैं. मीमांसाके वार्तिककार कुमारिलभट्टवत्. आधुनिक भाष्यकर्त्ता स्वामिदयानंदसरस्वतीवच्च.। इसवास्ते इन सर्व ग्रंथोंसें प्रमाणिक अर्थ नही सिद्ध होता है.

और माधवाचार्य अपने रचे शंकरदिग्विजयमें लिखते हैं कि, शंकराचार्यको व्यासजी साक्षात् मिले, तब उनोने व्यासजीसें कहा कि, मेरे रचे अर्थ कैसे हैं? तब व्यासजीने कहा कि, तेरे अर्थ सर्व प्रमाणिक

रेण्यं भर्ग्गः तद्वयं धीमहि तस्य धारणं वयं कुर्वीमहि। हे भगवन् ! यः सविता देवः परमेश्वरः स भवान् अस्माकं धियः प्रचोदयादित्यन्वयः ॥ हे परमेश्वर! आपका जो शुद्धस्वरूप ग्रहण करनेके योग्य जो विज्ञानस्वरूप उसको हम लोग सब धारण करें, उसका धारणज्ञान उसके ऊपर विश्वास और दृढ निश्चय हम लोग करें, ऐसी कृपा आप हम लोगोंपर करें, ज़िस्से कि, आपके ध्यानमें और आपकी उपासनामें हम लोग समर्थ होंय; और अत्यंत श्रद्धालु भी होंय. जो आप सविता और देवादिक अनेक नामोंके वाच्य अर्थात् अनंत नामोंके अद्वितीय जो आप अर्थ हैं नाम सर्वशक्तिमान् सो आप हम लोगोंकी बुद्धियोंको धर्म विद्या मुक्ति और आपकी प्राप्तिमें आपही प्रेरणा करें कि, बुद्धिसहित हम लोग उसी उक्त अर्थमें तत्पर और अत्यंत पुरुषार्थ करनेवाले होंय. इस प्रकारकी हम लोगोंकी प्रार्थना आपसें है, सो आप इस प्रार्थनाको अंगीकार करें; यह संक्षेपसें गायत्री मंत्रका अर्थ लिख दिया, परंतु उस गायत्रीमंत्रका वेदमें इसप्रकारका पाठ है॥ "ॐभूर्भुवःस्वः ॥ तत्सवितुर्वरेण्यंभर्गोदेवस्यधीमहि॥ धियोयोनः प्रचोदयात् ॥ इति ॥ तथा सन १८८९ ई० के छापेके सत्यार्थ-प्रकाश, और संस्कारविध्यादिग्रंथोंमें भी, प्रायः इसीतरेंका अर्थ लिखा है; परंतु किसी २ स्थानमें फरक भी मालुम होता है ॥

इन पूर्वोक्त अर्थोंसें सिद्ध होता है कि, वेदपुस्तक, और वेदोंके अर्थ ईश्वरोक्त नही हैं; किंतु, ब्राह्मण ऋषियोंकी स्वकपोलकल्पना हैं; परस्पर विरुद्ध होनेसें.

तथा ऋग्वेदका भाष्य सायणाचार्यके भाष्यविना कोइ भी प्राचीन भाष्य इस देशमें सुननेमें नही आता है। और जो ऋग्वेदादिका रावण-भाष्य सुननेमें आता है, और तिसका करनेवाला वो रावण था कि, जिसकों श्रीरामचंद्र लक्ष्मणजीने मारा था. यह कथन तो, महा मिथ्या है. क्यों कि, श्रीरामचंद्रजी तो श्रीकृष्णजीसें लाखों वर्ष पहिलां होगए है, और वेदोंकी संहिता तो श्रीकृष्णजीके समयमें व्यासजीनें ऋषियों-पाससें सर्वश्रुतियां लेके एकत्र करके बांधी, तिसका नाम वेदसंहिता

६ ऋ०–इंद्राग्नि आदि देवताका वर्णन.

१९ ऋ०–अनेक नामके देव देवीका वर्णन, और यज्ञके वास्ते आमंत्रण.

१ ऋ०–विष्णु परमेश्वर त्रिविक्रमावतारमें पृथिवीकी रक्षा करता भया, तिसका वर्णन.

१ ऋ०–विष्णु त्रिविक्रमावतारधारी इस जगत्कों उद्दिश्य विशेष करके पादक्रमण करता भया, इत्यादि—

१ ऋ०–कोइ भी जिसकों हनने सामर्थ्य नहीं, ऐसा विष्णु जगत्का रक्षक है. पृथिव्यादि स्थानोंमें तीन पादक्रमण करता हुआ. धर्म जो अग्निहोत्रादि तिसका पोषण करता हुआ.

१ ऋ०–हे ऋत्विगादयः! तुम विष्णुके कर्म पालनादि देखो, इत्यादि विष्णुवर्णन.

१ ऋ०–पंडित विष्णुसंबंधि स्वर्गस्थान उत्कृष्ट पदकों देखते हैं, जैसें चक्षु आकाशमें देखते हैं.

१ ऋ०–प्रमादरहित जे पंडित हैं, वे विष्णुके पदकों दीपाते हैं.

३ ऋ०–यज्ञके वास्ते ऐंद्रवायुदेवताका आमंत्रणादिवर्णन.

३ ऋ०–मित्रवरुणदेवताका आमंत्रणादिवर्णन.

६ ऋ०–मरुतदेवताकों विनती आमंत्रणादि.

३ ऋ०–पूषन्देवताका वर्णन.

८ ऋ०–आप् (पाणी)का वर्णन, आमंत्रण और तिससें विनती आदि.

१ ऋ०–आग्निका वर्णन.

॥ ऋ० अ० १ मं० १ अ० ६ ॥

१९ ऋ०–यूपकेसाथ यज्ञके वास्ते बंधा हूआ शुनःशेपनामा जन अपनी जिंदगीके वास्ते अनेक देवताओंको विनती करता है, और उन्होंकी स्तुति करता है; विशेषकरके वरुणदेवताकी स्तुति जीवन वास्ते करता है.

२१ ऋ०–शुनःशेपने वरुणकीही स्तुति करी तिसका वर्णन.

२२ ऋ०–वरुणके कहनेसें शुनःशेपने आग्निकी स्तुति करी.

है. । इससे भी यही सिद्ध होता है कि, शंकरस्वामीने भी अपने मतानुसार अटकलपच्चूसें अर्थ लिखे हैं, नतु प्राचीनग्रंथानुसार. इसवास्ते यह सर्व ग्रंथ अप्रमाणिक है, भिन्न २ रचना होनेसें. । और जो शंकरभाष्यकी सम्मति आप व्यासजीने शंकरस्वामीको दीनी लिखी है, सो शंकरभाष्यकी उत्तमता प्रसिद्ध करनेवास्ते है, सो तो स्वमतानुरागी विना अन्य कोइ भी प्रेक्षावान् नही मानेंगे. क्यों कि, सांप्रतकालमें अनेक जन वेदोंके अर्थोंका सत्यानाश कर रहे हैं तो, क्या व्यासजी सूते पडे हैं ? जो सांप्रतिकालमें आयके किसीको भी वेदोंके सच्चे अर्थ नही बतलाते हैं ! ! ! हमने जो वेदोंकी बाबत समीक्षा लिखी है, सो अपने मतके अनुराग, और वेदोंके ऊपर द्वेषकरके नही लिखी है. किंतु, यथार्थ सर्वज्ञके रचे हुए वेदपुस्तक है कि, नही ? इस बातके निर्णयवास्ते हमने इतना परिश्रम उठाया है.

पूर्वपक्षः—मनुजी तो मनुस्मृतिके दुसरे अध्यायमें लिखते हैं कि । "योऽवमन्येत ते मूले हेतुशास्त्राश्रयाद् द्विजः । स साधुभिर्बहिष्कार्यो नास्तिको वेदनिन्दकः ॥ ११ " ॥ अर्थः ॥ जो ब्राह्मण, हेतुशास्त्र (तर्कशास्त्र) आश्रयसें श्रुतिस्मृतिको न माने, अनादर करे, तिसको साधु पुरुषोंने बहिर निकाल देना. क्यों कि, वेदका जो निंदक है, सो नास्तिक है. इसवास्ते तुम भी नास्तिकही हो; वेदोंके निंदक होनेसें.

उत्तरपक्षः—इस कथनसें तो जैन, बौद्ध, ईसाइ, मुसलमान, यहूदी, पारसी, आदिमतोंवाले सर्व नास्तिक ठहरेंगे. क्यों कि, येह सर्व वेदोंको नही मानते हैं. तथा कितनेक वेदांती, और कितनेक सनातन धर्मीआदि भी नास्तिक ठहरेंगे; वेदोक्त यजन याजनादिके न माननेसें. तथा ऋग्वेद तो, अग्नि, इंद्र, वरुण, सोम, यम, उषा, सूर्य, मैत्रावरुण, आश्विनौ, वायु, नदीयां, समुद्र, इत्यादिककी स्तुति प्रार्थना और घोडेका यज्ञ इत्यादिसें प्रायः भरा है. और यजुर्वेद प्रायः हिंसक यज्ञोंके विधिसेंही भरा है. साम और अथर्व भी वैसे ही है. । और उपनिषदोंमें प्रायः एक ब्रह्महीकी सिद्धिकेवास्ते सर्व प्रयत्न करा है; एक ऋग्वेदके पुरुषसूक्तमें, वा

यजुर्वेदके ४० मे अध्यायमें सृष्टिकर्त्ता ईश्वरादिका कथन है. इसकेविना अन्य कौनसा अतिउत्तम, जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आश्रव, संवर, निर्जरा, बंध, मोक्षादितत्त्वोंका, वा देव गुरु धर्मादि तत्त्वोंका कथन वेदोंमें है? जिसकें निंदने, और न माननेसें नास्तिक कहे गए? दूसरे मतवाले भी अपने पुस्तकोंमें ऐसा लिख सकते हैं। यथा। "योऽवमन्येत ते मूले हेतुशास्त्राश्रयाद् द्विजः॥ स साधुभिः सदा श्लाघ्यो नास्तिको वेदस्थापकः"॥ अर्थः॥ जो ब्राह्मण, 'उपलक्षणसें अन्यका भी ग्रहण जानना' तर्कशास्त्रके आश्रयसें वेदस्मृतिका अनादर करे, सो साधु पुरुषोंकरके सदा श्लाघनीय होता है. क्यों कि, जो वेदका स्थापक है, सो नास्तिक है. क्यों कि, वेद महाहिंसक पुस्तक है.। उक्तं च। "पसुबहाय सव्वे वेया" अर्थात् पशुयोंके बध करनेकेवास्तेही सर्व वेदोंके पुस्तक हैं, सो कथन अज्ञानतिमिरभास्करसें देख लेना.। तथा महाभारतके शांतिपर्वके १०९ अध्यायमें लिखा है।"अहिंसार्थाय भूतानां धर्मप्रवचनं कृतं। यः स्यादहिंसासंयुक्तः स धर्म इति निश्चयः॥ १२॥ श्रुतिधर्मइति ह्येके नेत्याहुरपरे जनाः"। इत्यादि। अर्थः॥ भूतजीवोंकी अहिंसा दयाकेवास्ते धर्मप्रवचन करा है, इसवास्ते जो अहिंसासंयुक्त धर्म होवे, सोइ धर्म है, ऐसा निश्चय है.॥ [श्रुतीति श्रुत्युक्तोर्थः सर्वो धर्म इत्यपि न श्येनादेर्धर्मत्वाभावात्। 'फलतोपि च यत्कर्म नानर्थेनानुबध्यते। केवलं प्रीतिहेतुत्वात्तद्धर्म इति कथ्यते' इतिवचनात्, श्येनादिफलस्य शत्रुवधादेरनर्थत्वादुक्तलक्षण एव धर्म इत्यर्थः। इति टीकायाम्॥] श्रुतिमें जो अर्थ कथन करा सोइ धर्म है, ऐसे कितनेक कहते हैं; परंतु, अपर कितनेक जन कहते हैं कि, श्रुत्युक्त जो अर्थ है, सो धर्म नही है; श्येनादि यज्ञोंको धर्मके अभाव होनेसें. फलसें भी, जो कर्म अनर्थके साथ संबंधवाला न होवे, किंतु केवल प्रीतिहेतु होवे, सो धर्म कहिए. इस वचनसें, श्येनादिके फलकों शत्रुवधादि अनर्थरूप होनेसें, उक्तलक्षण अर्थात् अहिंसालक्षणरूप धर्मही है.। इत्यादि।

तथा महाभारतके शांतिपर्वमें १७५ अध्यायमें पितापुत्रके संवादमें ऐसा लिखा है. यथा। "पशुयज्ञैः कथं हिंस्रैर्मादृशो यष्टुमर्हति।इत्यादि।" भावार्थ इसका यह है कि, युधिष्ठिर भीष्मजीसें पृच्छा करते हैं कि, इस

सर्वभूतोंके क्षय करनेवाले जरारोगादिकरके पुरुषोंको दुःख देनेवाले कालमें श्रेय (कल्याण) कारी क्या पदार्थ है ? तिसको हे पितामह ! आप कहो, जिससें हम उसकों अंगीकार करे. तब भीष्म पितामह, पुरातन इतिहास कथन करते हुए; जिसमें मेधावीनामा पुत्रके धर्ममार्गके पूछा हूआँ, पिताने कहा अग्निहोत्रादि यज्ञ कर, तब तिसके उत्तरमें पुत्र जबाब देता है. । पशुयज्ञैरित्यादि । मादृशः मेरेसरिखा मोक्षार्थका जानकार हिंसक पशुयज्ञोंकरके यज्ञ करनेको कैसें योग्य है ? अपि तु कदापि नही. अर्थात् मेरेसरिखे जानकारकों ऐसे हिंसक पशुयज्ञ करने योग्य नही है. । इत्यादि ॥

इसवास्ते वेदोंके पुस्तक अप्रमाणिक है, युक्तिप्रमाणसें बाधित होनेसें. सो कथन संक्षेपसें ऊपर लिख आए हैं. इसवास्ते यह कथन युक्तियुक्त है कि, जो वेदोंका स्थापक है, सोइ नास्तिक है. अन्य नही. और यदि वेदोंके निंदकहीको नास्तिक मानोंगे, तब तो, वेदव्यास, युधिष्ठिर, भीष्म पितामह, मेधावी आदि भी नास्तिक ठहरेंगे; वेदोक्त यज्ञकों न माननेसें. तथा मत्स्यपुराण, जो कि वेदव्यासका रचा कहा जाता है, और जिसका नाम महाभारतमें संक्षेपरूप वर्णनसहित लिखा है, उसमें ऐसे लिखा है.॥

(ऋषयऊचुः)

कथं त्रेतायुगमुखे यज्ञस्यासीत् प्रवर्त्तनम् ॥
पूर्वे स्वायंभुवे सर्गे यथावत् प्रब्रवीहि नः ॥ १ ॥
अंतर्हितायां संध्यायां सार्द्धं कृतयुगेन हि ॥
कालाख्यायां प्रवृत्तायां प्राप्ते त्रेतायुगे तथा ॥ २ ॥
औषधीषु च जातासु प्रवृत्ते वृष्टिसर्जने ॥
प्रतिष्ठितायां वार्त्तायां ग्रामेषु च पुरेषु च ॥ ३ ॥
वर्णाश्रमप्रतिष्ठानं कृत्वा मंत्रैश्च तैः पुनः ॥
संहितास्तु सुसंहृत्य कथं यज्ञः प्रवर्तितः ॥
एतच्छ्रुत्वाब्रवीत् सूतः श्रूयतां तत् प्रचोदितम् ॥ ४ ॥

(सूतउवाच)

मंत्रान् वै योजयित्वा तु इहामुत्र च कर्मसु ॥
तथा विश्वभुगिंद्रस्तु यज्ञं प्रावर्तयत् प्रभुः ॥ ५ ॥
दैवतैः सह संहृत्य सर्वसाधनसंवृतः ॥
तस्याश्वमेधे वितते समाजग्मुर्महर्षयः ॥ ६ ॥
यज्ञकर्मण्यवर्तंत कर्मण्यग्रे तथर्त्विजः ॥
हूयमाने देवहोत्रे अग्नौ बहुविधं हविः ॥ ७ ॥
संप्रतीतेषु देवेषु सामगेषु च सुस्वरम् ॥
परिक्रांतेषु लघुषु अध्वर्युपुरुषेषु च ॥ ८ ॥
आलब्धेषु च मध्ये तु तथा पशुगणेषु वै ॥
आहूतेषु च देवेषु यज्ञभुक्षु ततस्तदा ॥ ९ ॥
यइंद्रियात्मका देवा यज्ञभागभुजस्तु ते ॥
तान् यजंति तदा देवाः कल्पादिषु भवंति ये ॥ १० ॥
अध्वर्युप्रैषकाले तु व्युत्थिता ऋषयस्तथा ॥
महर्षयश्च तान् दृष्ट्वा दीनान् पशुगणांस्तदा ॥
विश्वभुजं ते त्वपृच्छन् कथं यज्ञविधिस्तव ॥ ११ ॥
अधर्मो बलवानेष हिंसाधर्मेप्सया तव ॥
नवः पशुविधिस्त्विष्टस्तव यज्ञे सुरोत्तम ॥ १२ ॥
अधर्मो धर्मघाताय प्रारब्धः पशुभिस्त्वया ॥
नायं धर्मो ह्यधर्मोयं न हिंसाधर्म उच्यते ॥
आगमेन भवान् धर्मं प्रकरोतु यदीच्छति ॥ १३ ॥

विधिदृष्टेन यज्ञेन धर्मेणाव्यसनेन तु ॥
यज्ञबीजैः सुरश्रेष्ठ त्रिवर्गपरिमोपितैः ॥ १४ ॥
एष यज्ञो महानिंद्रः स्वयंभुविहितः पुरा॥
एवं विश्वभुगिंद्रस्तु ऋपिभिस्तत्त्वदर्शिभिः ॥
उक्तो न प्रतिजग्राह मानमोहसमन्वितः॥ १५ ॥
तेषां विवादः सुमहान् जज्ञे इंद्रमहर्षिणाम् ॥
जंगमैः स्थावरैः केन यष्टव्यमितिचोच्यते ॥ १६ ॥
ते तु खिन्ना विवादेन शक्त्या युक्ता महर्षयः ॥
संधाय सममिन्द्रेण पप्रच्छुः खचरं वसुम् ॥ १७॥

(ऋषयऊचुः)

महाप्राज्ञ त्वया दृष्टः कथं यज्ञविधिर्नृप॥
औत्तानपादे प्रब्रूहि संशयं नस्तुद प्रभो॥१८॥

(सूतउवाच)

श्रुत्वा वाक्यं वसुस्तेषामविचार्य बलाबलम् ॥
वेदशास्त्रमनुस्मृत्य यज्ञतत्त्वमुवाच ह ॥ १९ ॥
यथोपनीतैर्यष्टव्यमिति होवाच पार्थिवः ॥
यष्टव्यं पशुभिर्मेध्यैरथ मूलफलैरपि ॥ २० ॥
हिंसास्वभावो यज्ञस्य इति मे दर्शनागमः ॥
तथैते भाविता मंत्रा हिंसालिंगा महर्षिभिः ॥ २१ ॥
दीर्घेण तपसा युक्तैस्तारकादिनिदर्शिभिः ॥
तत्प्रमाणं मया चोक्तं तस्माच्छमितुमर्हथ ॥ २२ ॥
यदि प्रमाणं स्वान्येव मंत्रवाक्यानि वो द्विजाः ॥
तथा प्रवर्त्ततां यज्ञो ह्यन्यथा मानृतं वचः ॥ २३ ॥

एवंकृतोत्तरास्ते तु युंज्यात्मानं तपोधिया ॥
अवश्यंभाविनं दृष्ट्वा तमधोह्यशपंस्तदा ॥ २४ ॥
इत्युक्तमात्रो नृपतिः प्रविवेश रसातलम् ॥
ऊर्ध्वचारी नृपो भूत्वा रसातलचरोभवत् ॥ २५ ॥
वसुधातलचारी तु तेन वाक्येन सोभवत् ॥
धर्माणां संशयच्छेत्ता राजा वसुरधोगतः ॥ २६ ॥
तस्मान्न वाच्यो ह्येकेन बहुज्ञेनापि संशयः ॥
बहुधारस्य धर्मस्य सूक्ष्मादुरनुगागतिः ॥ २७ ॥
तस्मान्न निश्चयाद्वक्तुं धर्मः शक्यो हि केनचित् ॥
देवानृषीनुपादाय स्वायंभुवमृते मनुम् ॥ २८ ॥
तस्मान्न हिंसा यज्ञे स्याद्यदुक्तमृषिभिः पुरा ॥
ऋषिकोटिसहस्राणि स्वैस्तपोभिर्दिवं गताः ॥ २९ ॥
तस्मान्न हिंसा यज्ञं च प्रशंसन्ति महर्षयः ॥
उञ्छो मूलं फलं शाकमुदपात्रं तपोधनाः ॥ ३० ॥
एतद्दत्त्वा विभवतः स्वर्गलोके प्रतिष्ठिताः ॥
अद्रोहश्चाप्यलोभश्च दमोभूतदयाशमः ॥ ३१ ॥
ब्रह्मचर्यं तपः शौचमनुक्रोशं क्षमा धृतिः ॥
सनातनस्य धर्मस्य मूलमेव दुरासदम् ॥ ३२ ॥
द्रव्यमंत्रात्मको यज्ञस्तपश्च समतात्मकम् ॥
यज्ञैश्च देवानाप्नोति वैराजं तपसा पुनः ॥ ३३ ॥
ब्रह्मणः कर्मसंन्यासाद्वैराग्यात्प्रकृतेर्लयम् ॥
ज्ञानात्प्राप्नोति कैवल्यं पंचैता गतयः स्मृताः ॥ ३४ ॥
एवं विवादः सुमहान् यज्ञस्यासीत्प्रवर्तने ॥
ऋषीणां देवतानां च पूर्वे स्वायंभुवेन्तरे ॥ ३५ ॥

ततस्ते ऋषयो दृष्ट्वा हतं धर्मं बलेन ते ॥
वसोर्वाक्यमनादृत्य जग्मुस्ते वै यथागतम् ॥ ३६ ॥
गतेषु ऋषिसंघेषु देवा यज्ञमवाप्नुयुः ॥
श्रूयन्ते हि तपःसिद्धा ब्रह्मक्षत्रादयो नृपाः ॥ ३७ ॥
प्रियव्रतोत्तानपादौ ध्रुवो मेधातिथिर्वसुः ॥
सुधामा विरजाश्चैव शंखपाद्राजसस्तथा ॥ ३८ ॥
प्राचीनबर्हिः पर्जन्यो हविर्धानादयो नृपाः ॥
एते चान्ये च बहवस्ते तपोभिर्दिवं गताः ॥ ३९ ॥
राजर्षयो महात्मानो येषां कीर्तिः प्रतिष्ठिता ॥
तस्माद्विशिष्यते यज्ञात्तपः सर्वैस्तु कारणैः ॥ ४० ॥
ब्रह्मणा तमसा स्पृष्टं जगद्विश्वमिदं पुरा ॥
तस्मान्नाप्नोति तद्यज्ञात्तपोमूलमिदं स्मृतम् ॥ ४१ ॥
यज्ञप्रवर्तनं ह्येवमासीत्स्वायंभुवेन्तरे ॥
तदाप्रभृति यज्ञोऽयं युगैः सार्द्धं प्रवर्तितः ॥ ४२ ॥

अध्यायः ॥ ४२ ॥

भाषार्थः ॥ ऋषियोंनें पूछा, हे सूतजी! त्रेतायुगकी आदिमें स्वायंभुव मनुके सर्गमें यज्ञोंकी प्रवृत्ति कैसें होती भयी? यह आप हमकों समझाइये। जब सत्ययुगकी संध्या समाप्त होजानेपर त्रेतायुगकी प्राप्ति होती है, तब बहुतसी औषध उत्पन्न होती हैं, अधिक वर्षा होती है, ग्रामपुरआदिकोंमें उत्तम प्रतिष्ठित बातें होने लगती हैं, उस समय सब वर्णाश्रम इकट्ठे होकर अन्नको इकट्ठा करके वेदसंहिताओंसें यज्ञोंकी कैसे प्रवृत्ति करते हैं? ऋषियोंके इन वचनोंको सुनकर सूतजीने कहा कि, हे ऋषिलोगो!—इस संसारके, और परलोकके कर्मोंमें मंत्रोंको युक्त करके विश्वका भोगनेवाला इंद्र सर्वसाधनों और देवताओंसे युक्त होकर, अब यज्ञ करता भया, तब उस यज्ञमें बडे २ ऋषिलोग आये। ऋत्विक् आ-

ह्मण यज्ञोंके कर्मोंको करके उस बडे यज्ञकी अग्निमें बहुत प्रकारसें हवन करते भये,। सामवेदी ब्राह्मण तो उच्चस्वरसें पाठ करते भये, अध्वर्यु आदिक अन्य ब्राह्मण अपने कर्म करने लगे, यज्ञमें कहे हुए पशुओंका आलंभन होने लगा, यज्ञभोक्ता ब्राह्मण और देवता आने लगे, हे ऋषि-यो! जो इंद्रियोंके भोगकी इच्छा करनेवाले देवता हैं, वही यज्ञके भागको भोगते हैं; अन्य सब देवता उन्हींका पूजन करते हैं. वेही फिर कल्पकी आदिमें उत्पन्न होते हैं. । उस यज्ञमें जब अध्वर्युके प्रेरणेका समय आया, तब ऋषिलोग खडे हो गये; और उन दीन पशुओंको देख कर विश्वभुक् देवताओंसें यह वचन बोले कि, तुम्हारे इस यज्ञका कैसा विधि है? इस हिंसा करनेका महा अधर्म है; और हे इंद्र! तेरे इस यज्ञमें यह विधि उत्तम नही है,। तैंने पशुओंके मारनेकरके यह अधर्म प्रारंभ किया है, इस हिंसारूपी यज्ञसें धर्म नही होता है; किंतु महा अधर्म होता है. जो तुम उत्तम कर्म चाहते हो तो, शास्त्रोंके अनुसार धर्म करो.। हे इंद्र तैंने त्रिवर्गकी नाश करनेवाली महादुर्व्यस-नरूप हिंसासंबंधी विधियोंकरके अपने यज्ञको रचा है. इसप्रकार ऋषि-योंसे शिक्षा किया हुआ भी इंद्र अपने अभिमानसें मोहको प्राप्त हो कर, उन तत्त्वदर्शी ऋषियोंके वचनको नही ग्रहण करता भया.। उस समय उन ऋषियोंका और इंद्रका यह बडा भारी विवाद होता भया कि, यज्ञ जंगम पशुओंसें होना चाहिये, अथवा स्थावर वस्तुओंके शाकल्या-दिकोंसें होना चाहिये। वह बडे २ शक्तिमान् महर्षि उस विवादसें महादुःखित हो कर, आकाशमें विचरनेवाले वसुराजाको इंद्रकेही समान जान कर उससें यह पूछने लगे कि, हे महाप्राज्ञ तुमने यज्ञकी विधि देखी है? जो देखी होय तो, हमारे संदेहको दूर करो.। सूतजी कहते हैं कि, वह वसुराजा ऋषियोंके वचनको सुन कर बलाबलको न विचार, वेदशास्त्रको स्मरण कर, यज्ञके तत्त्वको कहने लगा कि, शास्त्रमें यज्ञके योग्य उत्तम पशुओंकरके, अथवा मूलफलादिकोंकरके यथार्थ विधिसें यज्ञ करना चाहिये.। यज्ञका हिंसाही स्वभाव है, इसीसें वेदमें हिंसको

चिन्हवाले मंत्र कहे हैं; यह मैंने तत्त्वज्ञ ऋषियोंकेही प्रमाणसें कहा है. इसको आप क्षमा करियेगा, हे द्विजोत्तमलोगो! तुम जो अपनेही वचन और मंत्रोंको मुख्य मानते हो तो, अन्यथाही यज्ञ करो; मेरे वचनोंको सत्य मत जानो.। जब उसने ऐसा उत्तर दिया, तब वह ऋषि अपने आत्माको तपोबुद्धिकरके युक्त कर, और अवश्यभावीको देख कर उस वसुको नीचे जानेका शाप देते भये.। उससमय वह वसुराजा पाताललोकमें प्राप्त होता भया. ऋषियोंके शापसें ऊपरके लोकोंका भी विचरनेवाला हो कर, नीचेके लोकोंको प्राप्त होता भया.। उस वचनके कहनेसें वह धर्मज्ञ भी राजा पातालमें प्राप्त होता भया. इस हेतुसें अकेले बहुत जाननेवाले भी पुरुषको बहुतसी धारणावाले धर्मका खंडन करना योग्य नही है. क्योंकि, धर्मकी बडी सूक्ष्म गति है.। इसकारणसें किसी पुरुषको भी निश्चयकरके कोइ धर्म न कहना चाहिये. क्योंकि, देवता और ऋषियोंके प्रति स्वायंभुवमनुके विना दूसरा कोइ पुरुष भी कहनेको नही समर्थ है.। ऋषिलोग यज्ञमें कभी हिंसा नही करते, और किरोडों ऋषि तपस्याहीके प्रभावसें स्वर्गमें प्राप्त हुए हैं.। इसीहेतुसें बडे महात्मा ऋषि हिंसाधर्मकी प्रशंसा नही करते हैं. तपोधन ऋषि, शिलोंछवृत्ति, मूल, फल, शाक, जल और पात्र, इनहीके दान करनेसें स्वर्गमें प्राप्त हुए हैं. द्रोह मोहसें रहित, जितेंद्री, भूतोंपर दया, शांति, ब्रह्मचर्य, तप, शौच, क्रोध न करना, क्षमा और धृति, यह सब सनातन धर्मके मूल हैं. द्रव्य तो मंत्रात्मक यज्ञ है, तप समतात्मक यज्ञ है, यज्ञोंसेंही देवयोनि प्राप्त होती है; तपकरके विराट शरीर प्राप्त होता है. कर्मोंके त्याग करनेसें ब्रह्माके शरीरको प्राप्त होता है, वैराग्यसें मायाका नाश होता है, और ज्ञानसें कैवल्य मोक्ष प्राप्त होता है. यह पांच गति कही है.। प्रथम स्वायंभुवमनुके अंतरमें ऐसे यज्ञके प्रवृत्त होनेमें, ऋषियोंका और देवतायोंका बडा विवाद हुआ है.। इसके पीछे वह ऋषि बलसें हत हुए धर्मको देख कर, राजा वसुका अनादर कर, अपने स्थानमें जाते भये.।

जब ऋषि चले गये, तब देवतालोग यज्ञको प्राप्त होते भये. यह भी हमने सुना है कि, राजा प्रियव्रत, उत्तानपाद, ध्रुव, मेधातिथि, वसु, सुधामा, विरजा, शंखपाद, राजस्, प्राचीनबर्हि और हविर्धान, इत्यादि राजा, और अन्य भी अनेक राजा तपकरकेही स्वर्गको प्राप्त होते भये। जो राजऋषि महात्मा भये हैं, उनकी कीर्ति आजतक पृथिवीपर स्थित हो रही है, इसीसें अनेक कारणोंकरके यज्ञोंसे तपकोंही अधिक कहा है[१]. इसीतपके प्रभावसें ब्रह्माजीने भी सृष्टिकी रचना करी है, इसी कारण यज्ञसें अधिक तप है; सब पदार्थोंका मूल तप है.। इसीरीतिसें स्वायंभु मुनिके अंतरमें यज्ञ प्रवृत्त हुए हैं; तभीसें ले कर यह यज्ञ सब युगोंमें प्रवृत्त हो रहा है.॥ ४२॥ इतिमत्स्यपुराणे १४२ अध्यायः॥

इस पूर्वोक्त लेखसें भी यही सिद्ध है कि, जो वेदोंका स्थापक है, सोही नास्तिक है; अधोगति जानेसें, वसुराजावत्; नतु निंदक, ऊर्ध्व स्वर्गगति जानेसें, पूर्वोक्त महर्षियोंवत्.। तथा जैनी लोक जो मानते हैं कि, प्रायः हिंसक यज्ञ वसुराजाके समयमें सुरु हुए हैं[२], तिसको भी यह पूर्वोक्त लेख सिद्ध करे है. अपरं च स्वायंभु मुनिके अंतरमें इन हिंसक यज्ञोंकी प्रवृत्ति महर्षियोंका कहना न मान कर इंद्रने अभिमानके वश हो कर करी है, तब तो सिद्ध हुआ कि, प्रथम हिंसक यज्ञ नही होते थे, और हिंसक यज्ञके न होनेसें हिंसक यज्ञोंके प्रतिपादक वेदादिशास्त्र, जो कि सांप्रति विद्यमान है, और जिनमें हिंसक यज्ञोंका मेघ वर्षाया है, तिनोंका अभाव सिद्ध हुआ; तब तो सांप्रति कालके विद्यमान वेदादि शास्त्र अनादि नही, किंतु बनावटी सिद्ध हुए.। यदि कहो कि, प्राचीन वेद नष्ट हो गये, और यह हिंसक श्रुतियों बनाके एकत्र करके वेदकेही नामसें पुस्तक प्रसिद्ध हुआ, यह तो हम मानतेही हैं, तथा हमको बडा दुःख होता है कि वसुराजा 'यज्ञके योग्य उत्तम पशुओंकरके यज्ञ

---

(१) इस कथनसे 'स तपोऽतप्यत्' इत्यादि स्थानपर भाष्यकारने आलोचनात्मक तप करा लिखा है, सो असत्य भासन होता है.

(२) देखो जैनतत्त्वादर्शका एकादश (११) परिच्छेद.

करना चाहिये' इस वचनके कहनेमात्रसेंही, अधोगतिको प्राप्त हुआ तो, जो लोक वेदशास्त्र और धर्मके नामसें दीन अनाथ निराधार बकरे गाय घोडे आदि पशुओंको यज्ञमें हवन करके निर्दय हो कर यज्ञशेषको खाते हैं, वा खाते थे, उन विचारोंकी क्या गति होगी? अपशोस!!! कोइ नही विचारते हैं कि, आस्तिकनास्तिकके क्या क्या लक्षण है?

पूर्वपक्षः—आपका कहना तो ठीक है, परंतु महाभारत जिसको हम लोग पांचमा वेद मानते हैं, तिसमें ऐसा लेख है ॥

पुराणं मानवो धर्मः सांगो वेदश्चिकित्सितम् ॥
आज्ञासिद्धानि चत्वारि न हंतव्यानि हेतुभिः ॥

अर्थः—पुराण, मनुस्मृति, षडंगवेद अर्थात् ऋग्, यजु, साम, अथर्व, यह चार वेद; और शिक्षा, कल्प, व्याकरण, छंद, ज्योतिष, निरुक्त, यह षडंग; तथा सुश्रुतचरकादि चिकित्साशास्त्र, ये सर्व आज्ञासिद्ध हैं. अर्थात् जो कुछ इनमें लिखा है, सो सर्व सत्य २ करके मान लेना, परंतु इनको युक्तिप्रमाणोंसें खंडित न करना इति ॥

उत्तरपक्षः—वाहजीवाह!! क्याही काबुलके उझ्रयोंके घोडेका अंडा है! जिसकी किसीसें भी परीक्षा न करानी, और न किसीको दिखलाना(१), जैनोंका तो, इस पूर्वोक्त भारतके कथन उपर यह कहना है. ॥

अस्तिवक्तव्यता काचित्तेनेदं न विचार्यते ॥
निर्दोषं काञ्चनं चेत्स्यात् परीक्षाया बिभेति किम् ॥ १ ॥

अर्थः—जो लोग यह कहते हैं कि, अमुक २ ग्रंथ आज्ञासिद्ध है, तिसको प्रमाणयुक्तिसें विचारना नही; किंतु तिन ग्रंथोंमें जो लिखा है.

---

(१) सुनते हैं कि, कितनेक काबुली दिल्ली शहरमें आये थे, वहां उन्होंने पेठेका फल देखा, उस बडे फलको देखके पूछने लगे कि, यह क्या है? तब उन उझ्रयोंको देखके फलवालेने कहा, यह घोडेका अंडा है, तब उन्होंने पूछा इसमेंसें कैसा घोडा निकलता है? फलवालेने कहा, दरीयाइ घोडा निकलता है, तब उन्होंने मूल्य देके घोडेका अंडा मानके पेठा (कुष्मांडविशेष) फल ले लिया. फलवालेने कहा, खांसाहब! इस अंडेको जमीन ऊपर नही रखना, और किसीको दिखाना नही यदि पूर्वोक्त काम करोगे तो, तुमारा अंडा गल जायगा!!! इत्यादि ॥

सो सर्व सत्य करके मान लेना; तो हम कहते हैं कि, तिन पुस्तकोंमें ऐसी कोइ वक्तव्यता है, जो कि प्रमाणयुक्तिद्वारा विचार करनेसें बाधित हो जावे; इसवास्तेही तुम कहते हो कि, प्रमाणयुक्तिसें तिसकी परीक्षा नही करनी ? जेकर सुवर्ण निर्दोष है तो, तिसको सराफकी परीक्षाका क्या भय है ? खोटेकोही परीक्षाका भय है, खरेको नही. । इससें पूर्वोक्त ग्रंथ खोटसंयुक्त है, तिनके खोट छिपानेकेवास्तेही तुमारे मतमें ऐसे २ श्लोकरूप जाल बनाके लिख गए हैं कि, जिसमें अज्ञानी पुरुषरूप मत्स्य फसके मर रहे हैं. सर्वज्ञोंका कहना तो यह है कि, परीक्षाकरके वस्तुतत्त्व ग्रहण करना चाहिये. हां. जो वस्तु प्रत्यक्ष अनुमानका विषय न होवे, तिसको आगमप्रमाणसें मानना चाहिये; परंतु आगम भी कैसा ? जो आप्तप्रणीत होवे. आप्त कौन ? जिसके अष्टादश (१८) दूषण अत्यंत दूर हो गये होवे; और आप्तका निर्दोषपणा तिसके संपूर्ण जन्मचरितके सुननेसें, और तिसकी मूर्तिके देखनेसें सिद्ध होता है; सो तो, प्रेक्षावानही कर सकते हैं, न तु मूढ कदाग्रही व्युद्ग्राहित. सो विस्तारपूर्वक देखके परीक्षा करनी होवे, उसने तिन २ आप्तोंके चरित वांचने. और संक्षेपरूप तो इसीग्रंथमें लिख आये हैं. इसवास्ते जिस शास्त्रका कथन युक्तिप्रमाणसें बाधित न होवे, सो मानना चाहिये.

तथा मनुजीके कथन करे श्लोकसें यह भी सिद्ध होता है कि, मनुजीके समयमें भी वेदोंके निंदक थे, जिनको मनुजीने नास्तिक कहा है. परंतु यह कहना मिथ्या है; क्योंकि, जेकर तो वेदोंका कथन प्रमाणयुक्तिसें बाधित न होवे, तब तो सत्य है कि, जो वेदोंका निंदक है सो नास्तिक है. और जेकर वेदोंका कथन युक्तिप्रमाणसें बाधित है, तब तो, वेदोंके माननेवाले और आप्तप्रणीत सत्य शास्त्रोंको मिथ्या शास्त्र कहनेवाले, और सत्य शास्त्रोंके माननेवालोंको नास्तिक कहनेवालेही नास्तिक हैं.

पूर्वपक्षः—जैन मतके मूल आगमग्रंथोंमें गृहस्थधर्मके पच्चीस वा सोलां संस्कार नही है, इसवास्ते जैनशास्त्र माननेयोग्य नही है.

उत्तरपक्षः—ऐसा माननेसें तो चारों वेद भी माननेयोग्य सिद्ध नहीं होवेंगे, क्योंकि, तिनसें भी संपूर्ण संस्कार वर्णन नहीं है. अपरं च ये पच्चीस वा सोलां संस्कार प्रायः संसारव्यवहारमेंही दाखिल हैं, और जैनके मूल आगममें तो निःकेवल मोक्षमार्गकाही कथन है; और जहां कहीं चरितानुवादरूप संसारव्यवहारका कथन भी है तो, ऐसा है कि, जब स्त्री गर्भवती होवे तब गर्भको जिन २ कृत्योंके करनेसें तथा आहार व्यवहार देशकालोचितसें विरुद्ध करनेसें गर्भको हानि पहुंचे सो नहीं करती है, और पुत्रके जन्म हुआंपीछे प्रथमदिनमें लौकिक स्थिति मर्यादा करते हैं, तीसरे दिन चंद्रसूर्यका पुत्रको दर्शन कराते हैं, छट्ठे दिनमें लौकिक धर्मजागरणा करते हैं, और ११ मे दिन अशुचि कर्म, अर्थात् सूति-कर्मसें निवृत्त होते हैं, और विविधप्रकारके भोजन उपस्कृत करके न्याती-वर्गादिको भोजन जिमाते हैं, और तिनके समक्ष पुत्रका नाम स्थापन करते हैं, जब आठ वर्षका होता है, तब तिसको लिखितगणितादि बहत्तर (७२) कला पुरुषकी पुत्रको, और चौसठ (६४) कला स्त्रीकी कन्याको सिखलाते हैं, तदपीछे जब तिसके नव अंग सूते प्रबोध होते हैं, और यौवनको प्राप्त होता है, तब तिसके कुल, रूप, आचारसदृश कुलकी निर्दोष कन्याके साथ विवाहविधिसें पाणिग्रहण करवाते हैं, पीछे संसा-रके यथा विभवसें भोगविलास करता है, पीछे साधुके जोग मिलें गृह-स्थधर्म वा यतिधर्म अंगीकार करता है, धर्म पालके पीछे विधिसें प्राण-त्याग करता है; इतना विधि गृहस्थ व्यवहारादिकका श्रीआचारांग, विवाहप्रज्ञप्ति (भगवती), ज्ञाता धर्मकथा, दशाश्रुत स्कंधके आठमे अध्ययनादिमें चरितानुवादरूप प्रतिपादन करा है. तीर्थंकरके जन्म हुये तिनके मातापिता जे कि श्रावक थे, तिनोंने भी यह पूर्वोक्त विधि करा है. इसवास्ते मूल आगमोंमें चरितानुवादकरके गृहस्थव्यवहारका विधि सूचन करा है, परंतु विधिवादसें कथन करा हुआ हमको मालुम नही होता है. पर आदि जगत् व्यवहार आदीश्वर श्रीऋषभदेवजीनेही चलाया था, तिनके चलाये व्यवहारकाही ब्राह्मणोंने उलटपलट घालमेल करके २५ वा १६

संस्कार जगत्में प्रसिद्ध करे हैं, ऐसें जैनमतवाले मानते हैं. तथापि पूर्वोक्त आगमकी सूचनाअनुसार, और परंपरायसें चले आए जगत्व्य-वहारधर्मके सोलां संस्कार श्रीवर्द्धमानसूरिजीने आचारदिनकर नामा शास्त्रमें लिखे हैं, वह अग्रिमतन स्तंभोंमें लिखेंगे. इति. ॥

इत्याचार्यश्रीमद्विजयानन्दसूरिविरचिते तत्त्वनिर्णयप्रासादग्रंथे वेदभाष्यादीनामप्रमाणत्ववर्णनोनामद्वादशस्तम्भः ॥ १२ ॥

॥ अथत्रयोदशस्तम्भारम्भः ॥

अथ त्रयोदश (१३) स्तंभमें संस्कारोंका वर्णन लिखते हैं. ॥

तत्त्वज्ञानमयो लोके य आचारं प्रणीतवान् ॥
केनापि हेतुना तस्मै नम आद्याय योगिने ॥ १ ॥

श्रीवर्द्धमानसूरिजीने आचारदिनकर नामा ग्रंथ वनाया है, जिसके ४० उदय हैं. जिनमेंसें गर्भाधानादि षोडश (१६) उदयोंका वर्णन यहां लिखते हैं, प्रकृतोपयोगित्वात्. तत्रादौ प्रथम गर्भाधानसंस्कारका वर्णन इस त्रयोदशस्तंभमें करते हैं. और संस्कारोंका वर्णन भी उत्तरोत्तर स्तंभोंमें करेंगे. ॥ क्योंकि, समस्त परमार्थके जाणकार भगवान् अर्हन् भी गर्भसें लेकर राज्याभिषेकपर्यंत संस्कारोंको अपने देहमें धारण करते हुए, तथा देशविरतिरूप गृहस्थधर्ममें प्रतिमावहन सम्यक्त्वारोपणरूप आचार आचरण करते हुए, तथा निमेषमात्र शुक्लध्यानकरके प्राप्य केवल ज्ञानकेवास्ते दीर्घ कालतक यतिमुद्रातपः चरणादि धारण करते हुए, तथा केवलज्ञान हुए बाद परकी उपेक्षाकरके रहित चिदानंदरूप भी भगवान् समवसरणमें विराजमान हो कर धर्मदेशना, गण, गणधरस्थापना और संशय-व्यवच्छेद (संशयका दूर करना) इत्यादि करते हुए, तथा तिस भगवान्के निर्वाण बाद इंद्रादि देवते आगरहित कर्तृकर्मकरके रहित भी तिस भगवान्के शरीरका संस्कार करते हैं, तथा स्तूपादि करते हैं. तिसवास्ते आर्हत्के मतमें लोकोत्तर पुरुषोंके आचीर्ण होनेसें आचार प्रमाणभूत है.

इसीवास्ते आचारका वर्णन करते हैं. यद्यपि ॥ " नाणं सवच्छ मूलं च साहा खंधो य दंसणं। चारित्तं च फलं तस्स रसो मुक्खो जिणोइओ॥१॥" अर्थः ॥ सर्वत्र मूलसमान ज्ञान है, और दर्शन (श्रद्धा) शाखा और खंधसमान है, तिस वृक्षका फल चारित्र है, और चारित्ररूप फलका रस जिनोदित भगवान्का कहा मोक्ष है. ॥ इसवास्ते सिद्धांतमहोदधि (समुद्र) के कल्लोलरूप चारित्रका व्याख्यान कोइ भी नही कर सकते हैं, तो भी, श्रुतकेवलीप्रणीतशास्त्रार्थलेशको अवलंबन करके किंचित् आचारयोग्य वचन कथन करते हैं. ॥ प्रथम आचार दोप्रकरका है, यत्याचारः–यतियोंका आचार १, और गृहस्थाचारः–गृहस्थोंका आचार २.

॥ यदुक्तम् ॥

सावज्जजोगपरिवज्जणाओ सव्वुत्तमो जईधम्मो ॥
बीओ सावगधम्मो तईओ संविग्गपरकपहो॥१॥ *

जिनमें यति (साधु) धर्म तो, महाव्रत समिति गुप्तिका धारण करना, परीषह उपसर्गोंका सहन करना, कषाय विषयोंका जीतना, श्रुतज्ञानका धारण करना, बाह्य अभ्यंतर द्वादश प्रकार तपका करना, इत्यादि योगोंकरके मोक्षका देनेवाला, अर्थात् मोक्षका रस्ता है. परं है दुःप्राप्य, अर्थात् यतिधर्म प्राप्त करना मुश्किल है. । १ । और गृहस्थधर्म, परिग्रह धारण करना, सुखासिका यथेष्ट विहारभोगोपभोगादिकोंकरके औदारिक सुख लेशका देनेवाला है; परं मोक्ष देनेमें समर्थ नही है. तो भी वह गृहस्थधर्म द्वादश (१२) व्रतोंका धारण करना, यतिजनोंकी उपासना सेवा करनी, अर्हन् भगवान्का अर्चन (पूजन) करना, दान देना, शील पालना, तप करना, भावना भावनी, इत्यादिकोंकरके उपचीयमान पुष्ट हुआ थका, परंपराकरके मोक्ष देनेको समर्थ है. । यत उक्तमागमे ॥

विसमो वि निअडगमणो मग्गो मुक्खस्स इह जईधम्मो ।
सुगमो वि दूरगमणो गिहच्छधम्मो वि मुक्खपहो ॥१॥

*सावद्य योगोंके त्यागनेसे सर्वोत्तम यतिधर्म कहाता है दूसरा श्रावकधर्म और तीसरा संविग्न पक्षीमार्ग कहाता है परमार्थमें संविग्नपक्षीमार्गका यतिश्रावकधर्ममे ही अंतर्भाव होजाता है.

भावार्थः—इसका यह है कि, यतिधर्म जो है सो विषम है, तो भी मोक्षका निकट मार्ग है. और गृहस्थधर्म जो है सो सुगम है, तो भी मोक्षका दूर मार्ग अर्थात् चिर पाकर मोक्षको प्राप्त होता है. ॥ तथा जैसें खद्योत (टटाणा) और सूर्य, सर्षप और मेरुपर्वत, घडी और वर्ष, यूका और गज, इनोंमें बडा भारी अंतर है; तैसें गृहस्थधर्म, और यतिधर्ममें अंतर जानना. ।

यत उक्तमागमे ॥

जह मेरुसरिसवाणं खद्योयरवीण चंदताराणं ॥
तह अंतरं महंतं जइधम्मगिहच्छधम्माणं ॥१॥

आगममें भी कहा है । जैसें मेरु और सरिसव, खद्योत और सूर्य, चंद्र और तारे, इनमें अंतर है, तैसें यतिधर्म और गृहस्थधर्ममें महत् अंतर है. । इसीवास्ते यतिधर्म ग्रहणके पूर्व साधनभूत, अनेक सुरासुर यति लिंगियोंको प्रीणन (पुष्ट—तृप्त) करनेवाला, भगवान्का पूजन, साधुओंकी सेवा, इत्यादि सत्कर्म करके पवित्र, ऐसे गृहस्थधर्मको कहते हैं. तिस गृहस्थधर्ममें भी, प्रथम व्यवहारका कथन जानना, और पीछे धर्मका व्यवहार भी प्रमाणही है. क्योंकि, ऋषभादि अरिहंत भी गर्भाधान जन्मकाल आदि व्यवहारोंको आचरण करते हैं. ।

यत उक्तमागमे—जो कहा है आगममें ॥

तएणं समणस्सणं भगवओ महावीरस्स अम्मापिउणो पढमे दिवसे ठिइवडियं करींति तइय दिवसे चंदसूरदंसणं कुणांति छट्ठे दिवसे धम्मजागरियं जागरंति संपत्ते बारसाहदिवसे विरए इत्यादि ॥

व्यवहारकर्म भगवान् भी आचरण करनेकेवास्ते आगममें कहते हैं. ॥

यतः ॥

व्यवहारो विहु बलवं जं वंदइ केवली वि छनुमच्छं ॥
आहाकम्मं भुंजइ तो ववहारं पमाणं तु ॥१॥

भावार्थः—व्यवहार भी बलवान् है; जिसवास्ते जबतक छद्मस्थको मालुम न होवे, और ना न कहे; तबतक केवली भी छद्मस्थ गुरुको वंदना करता है; और छद्मस्थका ल्याया आहार यद्यपि छद्मस्थ अपनी जाणमें शुद्ध जाणकर ल्याया है, परंतु केवली केवलज्ञानकरके आधाकर्मादिदूषणसंयुक्त जानते हैं,तो भी व्यवहार प्रमाण रखनेकेवास्ते तिस आहारको भक्षण करते हैं; इसवास्ते व्यवहार प्रमाण है.

लौकिक मतमें भी कहाहै ॥

चतुर्णामपि वेदानां धारको यदि पारगः ॥
तथापि लौकिकाचारं मनसापि न लङ्घयेत् ॥ १ ॥

यदि चारों वेदोंका धारक, और पारगामी होवे, तो भी लौकिकाचारको मनकरके भी लंघन न करे ॥ इसीवास्ते प्रथम गृहस्थधर्मके पोडश १६ संस्कार कहते हैं. ।

तद्यथा श्लोकाः ॥

गर्भाधानं पुंसवनं जन्मचन्द्रार्कदर्शनम् ॥
क्षीराशनं चैव षष्ठी तथा च शुचि कर्म च ॥ १॥
तथा च नामकरणमन्नप्राशनमेव च ॥
कर्णवेधो मुण्डनं च तथोपनयनं परम् ॥ २ ॥
पाठारम्भो विवाहश्च व्रतारोपोन्तकर्म च ॥
अमी षोडशसंस्कारा गृहिणां परिकीर्त्तिताः॥३॥

भावार्थः—गर्भाधान १, पुंसवन २, जन्म ३, चंद्रसूर्यदर्शन ४, क्षीराशन ५, षष्ठी ६, शुचिकर्म ७, नामकरण ८, अन्नप्राशन ९, कर्णवेध १०, मुंडन ११, उपनयन १२, पाठारंभ १३, विवाह १४, व्रतारोप १५, अंतकर्म १६, येह सोलां संस्कार गृहस्थींके कथन करे.। इन पोडश (१६) संस्कारोंमेंसे व्रतारोपसंस्कारको वर्जके, शेष १५ पंदरां संस्कार, यतिसाधुने गृहस्थीको नहीं करणे.

जिसवास्ते कहा है आगममें. ॥

विद्ययं जोइसं चेव कम्मं संसारिअं तहा ॥
विद्या मंतं कुणंतो य साहू होइ विराहओ ॥१॥

अर्थः—वैदक, ज्योतिष्य, सांसारिक कर्म, विद्या, मंत्र, ये सर्व कृत्य, जो साधु गृहस्थको करे, सो साधु जिनाज्ञाका विराधक होता है. ॥

पूर्वपक्षः—तब येह व्रतारोपवर्जित १५ संस्कार किसने करने ?

उत्तरपक्षः—

अर्हन्मंत्रोपनीतश्च ब्राह्मणः परमार्हतः ॥
क्षुल्लको वाऽऽप्तगुर्वाज्ञो गृहिसंस्कारमाचरेत् ॥१॥

अर्थः—अर्हन्मंत्रोपनीत परमार्हत (परमश्रावक) ब्राह्मण, और प्राप्त करी है गुरुकी आज्ञा जिसने ऐसा क्षुल्लक श्रावक विशेष, जिसका स्वरूप १८ उदयमें लिखा है; इन दोनोंमेंसें कोइ एक गृहस्थोंको संस्कार करे.। तिनमें प्रथम गर्भाधान संस्कारका विधि लिखते हैं. ॥ जब गर्भाधान (गर्भधारण) को पांच मास होवे, तब गर्भाधानविधि, गृहस्थगुरुयों (श्रावक ब्राह्मणों) ने करना. । गर्भाधान १, पुंसवन २, जन्म ३, नाम ४ और अंत ५, इन पांच संस्कारोंमें अवश्य कर्मके हुए, मास दिनादिकोंकी शुद्धि न देखनी. । श्रवण, हस्त, पुनर्वसु, मूल, पुष्य, मृगशीर्ष, येह नक्षत्र और रवि, मंगल, बृहस्पति, येह वार पुंसवनादिकर्मोंमें कहे हैं.। इसवास्ते पांचमे मासमें शुभ तिथि, वार, नक्षत्रके दिनमें पतिको बलवान् चंद्रादि देखकर, देशविरतिगुरु जिसने स्नान करा है, चोटी बांधी है, उपवीत और उत्तरासंग धारण करा है, श्वेतवस्त्र पहिना है, पंचकक्षा धारण करा है, मस्तकमें चंदनका तिलक करा है, सुवर्णमुद्रासहित दक्षिणकर सावित्रीक प्रकोष्ठबद्ध पंचपरमेष्ठि मंत्रोद्दिष्ट पांच ग्रंथियुक्त दर्भसहित कौसुंभ सूत्रका कंकण है जिसके, तथा जिसने रात्रिमें ब्रह्मचर्य पाला है, सेवन किया है; जिसने उपवास (व्रत) आचाम्ल (आंवल) निर्विकृति एकाशनादि प्रत्याख्यान करा है, संप्राप्तकरी है आजन्मसें यतिगुरुकी

आज्ञा जिसने, अर्थात् गुरुकी आज्ञाका करनेवाला, ऐसे पूर्वोक्त विशेषणों-वाला जैनब्राह्मण, अथवा क्षुल्लक, गृहस्थोंके संस्कारकर्म करणेके योग्य होता है. ।

उक्तं च ॥

शांतो जितेंद्रियो मौनी दक्षस्स्यक्त्वावाग्नतः ॥
अर्हत्साधुकृताज्ञः कुमतिग्रहवर्जितः इत्यादिश्लोकाः ॥ ४ ॥

भावार्थ—शांत, जितेंद्रिय, मौनी, दक्ष, अर्हन् और साधुकी आज्ञा करनेवाला, दुग दान न लेवे, और दान माया लोभका त्यागी, कुलीन, सर्व शास्त्रोंका जानकार, अविरोधी, दयावान्, राजा और रंकको सनदृष्टिसे देखनेवाला, प्राणोंके नाश होने भी अपने आचारको न त्यागे, सुंदर चेष्टावाला होवे, अंगहीन न होवे, सरल होवे, सदा सद्गुरुकी सेवा करने-वाला होवे, विनीत, बुद्धिमान्, शांतिमान्, कुलज, दोषकारणे द्रव्यनावसें शुचि होवे; गृहस्थोंके संस्कार करनेमें ऐसा गुरु चाहिये. ॥

सो पूर्वोक्त विशेषणविशिष्ट गुरु, गर्भाधान कर्ममें प्रथम गर्भवंतीके पतिकी आज्ञा लेवे. । और सो गर्भवंतीका पति, तत्रमें लेके शिखा (चोटी) पर्यंत स्नान करके, शुचि वस्त्र पहिनके निज वर्णानुसार उपवीत उत्तरीय वस्त्र उत्तरासंग करके, प्रथम शास्त्रोक्त बृहत्स्नात्रविधिसें अर्हत्प्रतिमाका स्नात्र करे. । और तिस स्नात्रके पाणीको शुभ भाजनमें स्थापन करे. । तिसपीछे शास्त्रोक्त विधिसें गंध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य, गान, वादित्रोंकरके जिन-प्रतिमाकी पूजा करे. । पूजाके अंतमें गुरु, गर्भवंतीको, अविधवायोंके हाथोंकरी स्नात्रोदककरके त्रिवलय अभिषेक करवावे. । पीछे सर्व तीर्था-श्रयोंके जलोंको एकत्र मिलाके, सहस्रमूलचूर्ण तिसमें प्रक्षेप करके, तिस जलको शांतिदेवीके मंत्रकरके, अथवा शांतिदेवीके मंत्रगर्भित स्तोत्र-करके मंत्रे. ॥

शांतिदेवीमंत्रो यथा ॥

"ॐ नमो निश्चितवचसे । भगवते । पूजामर्हते । जयवते । यशस्विने । यतिस्वामिने । सकलमहासंपत्तिसमन्विताय ।

त्रैलोक्यपूजिताय।सर्वासुरामरस्वामिपूजिताय।अजिताय। भुवनजनपालनोद्यताय। सर्वदुरितौघनाशनकराय। सर्वाशिवप्रशमनाय। दुष्टग्रहभूतपिशाचशाकिनीप्रमथनाय। यस्येतिनाममंत्रस्मरणतुष्टा। भगवती। तत्पदभक्ता। विजयादेवी ॐ ह्रीं नमस्ते। भगवति। विजये। जय २। परे। परापरे। जये। अजिते। अपराजिते। जयावहे। सर्वसंघस्य भद्रकल्याणमंगलप्रदे। साधूनां शिवतुष्टिपुष्टिप्रदे। जय २ भव्यानां कृतसिद्धे। सत्वानां निर्वृतिनिर्वाणजननि। अभयप्रदे। स्वस्तिप्रदे भक्तानां जंतूनां शुभप्रदानाय नित्योद्यते। सम्यग्दृष्टीनां धृतिरतिमतिबुद्धिप्रदे। जिनशासनरतानां शांतिप्रणतानां जनानां श्रीसंपत्कीर्त्तियशोवर्द्धिनि। सलिलात् रक्ष २। अनिलात् रक्ष २। विषात् रक्ष २। विषधरेभ्यो रक्ष २। दुष्टग्रहेभ्यो रक्ष २। राजभयेभ्यो रक्ष २। रोगभयेभ्यो रक्ष २। रणभयेभ्यो रक्ष २। राक्षसेभ्यो रक्ष २। रिपुगणेभ्यो रक्ष २। मारिभ्यो रक्ष २। चौरेभ्यो रक्ष २। ईतिभ्यो रक्ष २। श्वापदेभ्यो रक्ष २। शिवं कुरु २। शांतिं कुरु २। तुष्टिं कुरु २। पुष्टिं कुरु २। स्वस्तिं कुरु २। भगवति। गुणवति। जनानां शिवशांतितुष्टिपुष्टिस्वस्तिं कुरु २ ॐ नमो हूँ ह्नः यः क्षः ह्रीं फुट् २ स्वाहा"॥ इति॥

अथवा॥

"ॐ नमो भगवतेऽर्हते। शांतिस्वामिने। सकलातिशेषकमहासंपत्समन्विताय। त्रैलोक्यपूजिताय। नमः शांतिदेवाय। सर्वामरसमूहस्वामिसंपूजिताय। भुवनपालनो-

द्यताय । सर्वदुरितविनाशनाय । सर्वाशिवप्रशमनाय सर्व-दुष्टग्रहभूतपिशाचमारिडाकिनीप्रमथनाय । नमो भगवति । विजये । अजिते । अपराजिते ।जयंति । जयावहे । सर्वसंघस्य । भद्रकल्याणमंगलप्रदे । साधूनां शिवशांतितुष्टिपुष्टिस्वस्तिदे । भव्यानां सिद्धिवृद्धिनिर्वृतिनिर्वाणजननि । सत्वानां अभयप्रदाननिरते । भक्तानां शुभावहे । सम्यग्दृष्टीनां धृतिरतिमतिबुद्धिप्रदानोद्यते । जिनशासननिरतानां श्रीसंपत्यशोवर्द्धिनि । रोगजलज्वलनविषविषधरदुष्टज्वरव्यंतरज्वरराक्षसरिपुमारिचौरेतिश्वापदोपसर्गादिभयेभ्यो रक्ष २ । शिवं कुरु २ । शांतिं कुरु २ । तुष्टिं कुरु २ । पुष्टिं कुरु २ । स्वस्तिं कुरु २ । भगवति श्रीशांतितुष्टिपुष्टिस्वस्ति कुरु २ । ॐ नमो नमो ह्रूँ ह्रः यः क्षः ह्रीं फट् २ स्वाहा" ॥ इति ॥

इस मंत्रकरके अथवा पूर्वोक्त मंत्रकरके, सहस्त्रमूलचूर्णकरी संयुक्त सर्वजलाशयोंके जलको सातवार मंत्रके, पुत्रवाली सधवा स्त्रीयोंके हाथेंकरी मंगलगीतोंके गातेहुए गर्भवंतीको स्नान करवावे. तदपीछे गर्भवंतीको सुगंधका अनुलेपन करी सदश वस्त्र पहिराके, संपत्तिअनुसार आभरण धारण करवाके, पतिके साथ वस्त्रांचलका ग्रंथिबंधन करके, पतिके वामेपासे शुभ आसनके ऊपर स्वस्तिक मंगलकरके, गर्भवंतीको बिठलावे.

ग्रंथियोजनमंत्रो यथा ॥

ॐअर्हं । स्वस्ति संसारसंबंधबद्धयोः पतिभार्ययोः ॥
युवयोरवियोगोस्तु भववासांतमाशिषा ॥ १ ॥

विवाहको वर्जके, सर्वत्र इसीमंत्रकरके दंपतीका (स्त्रीभर्त्ताका) ग्रंथिबंधन करना. । तदपीछे गुरु, तिस गर्भवंतीके आगे शुभ पट्टे ऊपर पद्मासन लगाके बैठके, मणिस्वर्णरूप्यताम्रपत्रके पात्रोंमें जिनस्नात्रके

जलसंयुक्त तीर्थोदकको स्थापन करके, आर्यवेदमंत्र पढकरके, कुशाग्र बिंदुयोंकरके, गर्भवंतीको अभिषेचन करे.

आर्यवेदमंत्रो यथा ॥

"ॐ अर्हं। जीवोसि। जीवतत्त्वमासि। प्राण्यसि। प्राणोसि। जन्मासि। जन्मवानासि। संसार्यासि। संसरन्नासि। कर्मवानासि। कर्मबद्धोसि। भवभ्रांतोसि। भवबिभ्रमिषुरसि। पूर्णाङ्गोसि। पूर्णपिण्डोसि। जातोपाङ्गोसि। जायमानोपाङ्गोसि। स्थिरो भव। नन्दिमान् भव। वृद्धिमान् भव। पुष्टिमान् भव। ध्यातजिनो भव। ध्यातसम्यक्त्वो भव। तत्कुर्या येन न पुनर्जन्मजरामरणसंकुलं संसारवासं गर्भवासं प्राप्नोषि। अर्हं ॐ ॥"

इस मंत्रकरके दक्षिणहाथमें धारण करे कुशाग्र तीर्थोदक विंदुयोंकरके गर्भवंतीके शिर और शरीरऊपर सातवार अभिषेक करे.। तदपीछे पंच परमेष्ठिमंत्र पठनपूर्वक दंपतीको आसनसें उठायकरके, जिनप्रतिमाके पास लेजाके 'नमुत्थुणं अरिहंताणं भगवंताणं' इत्यादि शक्रस्तव पाठ करके जिनवंदन करवावे.। यथाशक्ति फलमुद्रा वस्त्र स्वर्णादि जिनप्रतिमाके आगे ढोवे.। तदपीछे गर्भवंती स्वसंपत्तिके अनुसार वस्त्राभरण द्रव्य सुवर्णादिदान देवे.। तदपीछे गुरु, पतिसहित गर्भवंतीको आशीर्वाद देवे.

यथा ॥

ज्ञानत्रयं गर्भगतोपि विंदन् संसारपारैकनिबद्धचित्तः ॥
गर्भस्य पुष्टिं युवयोश्च तुष्टिं युगादिदेवः प्रकरोतु नित्यम् ॥१॥

तदपीछे आसनसें उठायके ग्रंथिवियोजन करे.

ग्रंथिवियोजनमंत्रो यथा ॥

ॐ अर्हं। ग्रंथौ वियोज्यमानेऽस्मिन् स्नेहग्रंथिः स्थिरोस्तु वां ॥
शिथिलोस्तु भवग्रंथिः कर्मग्रंथिदृढीकृतः ॥ १ ॥

इस मंत्रकरके ग्रंथि खोलके धर्मागारमें दंपतीको लेजाके सुसाधु (गुरु) को वंदना करवावे, और साधुयोंको निर्दोष भोजन वस्त्र पात्रादि दिलवावे. ॥ इति गर्भाधानसंस्कारविधिः ॥

तदपीछे स्वकुलाचारयुक्तिकरके कुलदेवता, गृहदेवता, पुरदेवतादि पूजन जानना. । यहां जो कहा है कि, जैनवेदमंत्र; सो कथन करते हैं. यथा आदिदेव (ऋषभदेव) का पुत्र, अवधिज्ञानवान्, आदिचक्री, भरत राजा, श्रीमदादिजिनरहस्योपदेशसें प्राप्त किया है सम्यक् श्रुतज्ञान जिसने-सो भरतराजा-सांसारिक व्यवहारसंस्कारकी स्थितिकेवास्ते, अर्हन्की आज्ञा पाकरके, धारे हैं ज्ञानदर्शनचारित्ररत्नत्रय, करणा करावणा अनुमतिसें त्रिगुणरूप तीनसूत्र-मुद्राकरके चिन्हितवक्षःस्थलवाले ब्राह्मणोंको माहनोंको पूज्यतरीके मानता हुआ, और तिस अवसरमें अपनी वैक्रियलब्धिसें चार मुखवाला होके, चार वेदोंको उच्चारण करता भया. तिनके नाम-संस्कारदर्शन १, संस्थापनपरामर्शन २, तत्त्वावबोध ३, विद्याप्रबोध ४, । सर्व नयवस्तु कथन करनेवाले इन चारों वेदोंको, माहनोंको पठन करता हुआ. । तदपीछे वह माहन, सात तीर्थंकरोंके तीर्थतक अर्थात् चंद्रप्रभतीर्थंकरके तीर्थतक सम्यक्त्वधारी रहें, और आर्हतश्रावकोंको व्यवहार दिखाते रहें, तथा धर्मोपदेशादि करते रहें. । तदपीछे नवमे तीर्थंकर श्रीसुविधिनाथपुष्पदंतके तीर्थके व्यवच्छेद हुए, तिस बीचमें तिन माहनोंने परिग्रहके लोभी होके, स्वच्छंदसें तिन आर्यवेदोंकी जगे कुछक सुनी सुनाइ बातों लेके नवीन श्रुतियां रचीं, तिनमें हिंसक यज्ञादि और अनेक देवतायोंकी स्तुति प्रार्थना रचीं (क्रमसें ऋग्, यजुः, साम, अथर्व, नाम कल्पना करके, मिथ्यादृष्टिपणेको प्राप्त करें) तब व्यवहारपाठसें पराङ्मुख अर्थात् परमार्थरहित मनःकल्पित हिंसक यज्ञप्रतिपादक शास्त्रोंसें पराङ्मुख, ऐसे श्रीशीतलनाथादिके साधुयोंने तिन हिंसक वेदोंको छोडके, जिनप्रणीत आगमकोंही प्रमाणभूत माने. । तिन ब्राह्मणोमेंसें भी, जिन माहनोंने (ब्राह्मणोंने) सम्यक्त्व न त्यागन करा, अर्थात् जे माहन पुनः तीर्थंकरोके उपदेशसें

सम्यक्त्व पाके दृढ रहे, तिनोंके संप्रदायमें आज भी भरतप्रणीत वेदका लेश कर्मांतरव्यवहारगत सुनते हैं; सोही यहां कहते हैं.॥

यत उक्तमागमे ॥

सिरिभरहचक्कवट्टी आरियवेयाण विस्सुऊ कत्ता ॥
माहणपढणच्छमिणं कहिअं सुहझाणववहारं ॥१॥
जिणतिच्छे वुच्छिन्ने मिच्छत्ते माहणेहिं ते ठविया ॥
असंजयाण पूया अप्पाणं कारिया तेहिं ॥२॥

व्याख्याः—श्रीभरतचक्रवर्त्ती आर्यवेदोंका कर्त्ता प्रसिद्ध है. भरतने आर्यवेद किसवास्ते करे? माहनोंके पढनेवास्ते, शुभ ध्यानकेवास्ते, और जगत्व्यवहारके वास्ते. । जिन तीर्थकरके तीर्थके व्यवच्छेद हुए वह आर्यवेद तिन माहनोंने मिथ्यामार्गमें स्थापन करे, और असंयति होके तिनोंने अपनी पूजा जगत्में करवाई ॥ इन वेदोंका विशेष निर्णय जैनतत्त्वादर्शग्रंथसें जानना ॥

इस गर्भाधानसंस्कारमें इतनी वस्तु चाहिये ॥ पंचामृत स्नात्र १, सर्वतीर्थोदक २, सहस्रमूलचूर्ण ३, दर्भ ४, कौसुंभसुत्र ५, द्रव्य ६, फल ७, नैवेद्य ८, सदशवस्त्र दो ९, शुभआसन १०, शुभपट्ट ११, स्वर्णताम्रादिभाजन १२, वादित्र १३, पतिवाली स्त्रीयां १४ और गर्भवंतीका पति १५.॥ इत्याचार्यश्रीवर्द्धमानसूरिकृताचारदिनकरस्य गृहिधर्मप्रतिबद्धगर्भाधानसंस्कारकीर्त्तननामप्रथमोदयस्याचार्यश्रीमद्विजयानन्दसूरिकृतो बालावबोधस्समाप्तस्तत्समाप्तौ च समाप्तोयं त्रयोदशस्तम्भः ॥ १ ॥

इत्याचार्यश्रीमद्विजयानंदसूरिविरचिते तत्त्वनिर्णयप्रासादग्रंथे प्रथमसंस्कारवर्णनो नाम त्रयोदशस्तम्भः ॥१३॥

॥ अथचतुर्दशस्तम्भारम्भः ॥

त्रयोदश स्तंभमें प्रथम संस्कारका वर्णन करा, अथ चतुर्दश स्तंभमें 'पुंसवन' नामा द्वितीय संस्कारका वर्णन करते हैं.॥

गर्भसें आठ मास व्यतीत हुए, सर्व दोहदोंके पूर्ण हुए, सांगोपांग गर्भके उत्पन्न हुए, तिसके शरीरमें पूर्णीभाव प्रमोदरूप स्तनोंमें दूधकी उत्पत्तिका सूचक, पुंसवन कर्म करे.। मूल, पुनर्वसु, पुष्य, हस्त, मृगशिर, श्रवण, येह नक्षत्र; और मंगल, गुरु, आदित्य, येह वार, पुंसवन कर्ममें संमत है.। रिक्ता, दग्धा, क्रूरा, तीन दिनको स्पर्शनेवाली, अवम् (टूटी हुई,) षष्ठी, अष्टमी, द्वादशी, अमावास्या, ये तिथियां वर्जके; गंडांतकरके उपहत, और अशुभ नक्षत्रवर्जित, पूर्वोक्त वारनक्षत्रसहित दिनमें पतिको चंद्रमाके वल हुए, पुंसवनका आरंभ करे; सो ऐसें है.। पूर्वोक्त भेष, और स्वरूपवाला गुरु पतिके समीप हुए, अथवा न हुए, गर्भाधान कर्मके अनंतर, जो वस्त्रवेष, और केशवेष धारण करे हैं, तिसही वस्त्रवेष और केशवेषवाली गर्भवंतीको, रात्रिके चौथे प्रहरमें तारेसहित आकाश होवे तव मंगलगीतगानपूर्वक आभरणसहित अविधवा स्त्रीयोंकरके, अभ्यंग उद्वर्त्तन जलाभिषेकोंकरके स्नान करवावे.। तदपीछे प्रभात हुए नवीन वस्त्र गंधमाल्यभूपित गर्भवंतीको साक्षिणी करके, घरदेहरामें अर्हत्प्रतिमाको तिसका पति, वा तिसका देवर, वा तिसके कुलका पुरुष, वा गुरु, आप पंचामृतकरके वृहत्स्नात्रविधिसें स्नान करवावे. । तदपीछे सहस्रमूलीस्नात्र प्रतिमाको करे, पीछे तीर्थोदकस्नात्र करे. । पीछे सर्वस्नात्रोदकोंको सुवर्णरूप्यताम्रादि भाजनमें स्थापन करके, शुभासन ऊपर वैठी हुई साक्षीभूत करे हैं पतिदेवरादि कुलज जिसने, ऐसी गर्भवंतीको, दक्षिणहस्तमें कुशा धारण करके, कुशाग्रविंदुयोंकरके स्नात्रोदकसें गर्भवंतीके शिरस्तनउदरको सिंचन करता हुआ, इस वेदमंत्रको पढे. ॥

"॥ॐ अर्हं ।नमस्तीर्थंकरनामकर्मप्रतिवंधसंप्राप्तसुरासुरेंद्रपूजायार्हते। आत्मन् त्वमात्मायुःकर्मवंधप्राप्यं मनुष्यजन्मगर्भावासमवाप्नोषि। तद्भव जन्मजरामरणगर्भवासविच्छित्तये प्राप्तार्हद्धर्मः अर्हद्भक्तः सम्यक्त्वनिश्चलः कुलभूषणः। सुखेन तव जन्मास्तु। भवतु तव त्वन्मातापित्रोः कुलस्याभ्यु-

दयः। ततः शांतिः पुष्टिः तुष्टिर्वृद्धिर्ऋद्धिः कांतिः सनातनी अर्हं ॐ॥"

इस वेदमंत्रको आठवार पढता हुआ, गर्भवंतीको अभिषेचन करे.। तदपीछे गर्भवंती आसनसें ऊठके सर्वजातिके आठ २ फल, स्वर्णरूप्यमयी मुद्रा आठ, प्रणाम (नमस्कार) पूर्वक जिनप्रतिमाके आगे ढोवे.। तदपीछे गुरुके चरणोंको नमस्कार करके, दो वस्त्र, सोनेरूपेकी आठ मुद्रा, और तंबोलसहित आठ क्रमुक गुरुको देवे.। तदपीछे धर्मागार (पोषधशाला) में जाकर साधुयोंको वंदना नमस्कार करे, और साधुयोंको यथाशक्तिसें शुद्ध अन्न वस्त्र पात्र देवे.। कुलवृद्धोंको नमस्कार करे.॥ इति पुंसवनसंस्कारविधिः॥ तदपीछे स्वकुलाचारकरके कुलदेवतादिपूजन जानना.॥

पंचामृत १, स्नात्रवस्तु २, स्त्रीके नवीन वस्त्र ३, नवीन वस्त्रयुगल ४, स्वर्णकी आठ मुद्रा ५, रूपेकी आठ मुद्रा ६, सोनेकी ८ और रूपेकी ८ एवं षोडश (१६) मुद्रा और ७, फलकी जाति ८, कुशा ९, तांबूल १०, सुगंध पदार्थ ११, पुष्प १२, नैवेद्य १३, सधवा स्त्रीयां १४, गीतमंगल १५, इतनी वस्तु पुंसवनसंस्कारमें चाहिये.॥ इत्याचार्यश्रीवर्द्धमानसूरिकृताचारदिनकरस्य गृहिधर्मप्रतिबद्धपुंसवनसंस्कारकीर्त्तननामद्वितीयोदयस्याचार्यश्रीमद्विजयानन्दसूरिकृतो बालावबोधस्समाप्तस्तत्समाप्तौ च समाप्तोयं चतुर्दशस्तम्भः॥ २॥

इत्याचार्यश्रीमद्विजयानन्दसूरिविरचिते तत्त्वनिर्णयप्रासादग्रन्थे द्वितीयपुंसवनसंस्कारवर्णनो नाम चतुर्दशस्तम्भः॥ १४॥

॥ अथपञ्चदशस्तम्भारम्भः॥

अथ पंचदश स्तंभमें जन्मसंस्कारनामा तृतीय संस्कारका वर्णन करते हैं॥

जन्मसमय हुए, गुरु, ज्योतिषिकसहित, सूतिकागृहके निकट गृहमें एकांतस्थानमें जहां रौला न सुनाइ देवे, स्त्री, बाल, पशु, जहां न आवे,

तहां घटिकापात्र (घडी–कलाक) सहित उपयोगसहित चित्तवाला होकर, परमेष्ठिजापमें तत्पर हुआ थका रहे. । यहां पहिलां तिथि वार नक्षत्रादि देखना न चाहिये क्योंकि, यह जीव कर्म और कालके अधीन है.॥

यतः ॥

जन्म मृत्युर्द्धनं दौस्थ्यं स्वस्वकाले प्रवर्त्तते ॥
तदस्मिन् क्रियते हंत चेताश्चिंता कथं त्वया ॥ १ ॥

उक्तं चागमे श्रीवर्द्धमानस्वामिवाक्यम् ॥ गाथा ॥

समयं जम्मणकालं कालं मरणस्स कमइ सुरनाह ॥
संपत्तजोगहत्ती न अइसया विअशाएहिं ॥ २ ॥

इसवास्ते बालकके जन्म हुए समीप रहा हुआ गुरु, ज्योतिषिको जन्मक्षण जाननेके वास्ते आज्ञा करे. तिसने भी सम्यग् जन्मकाल, करगोचर करके धारण करना तदपीछे बालकके पिता, पितृव्य (चाचा-काका) पितामहोनें, नाल विना छेद्यां गुरुका, और ज्योतिषिका बहुत वस्त्र आभूषणवित्तादिसें पूजन करना. क्योंकि, नाल छेद्यांपीछे सूतक हो जाता है. । गुरु बालकके पिता, पितामह (दादा), आदिकको आशीर्वाद देवे.।

यथा ॥

" ॐ अर्हं कुलं वो वर्द्धतां । संतु शतशः पुत्रप्रपौत्राः ।
अक्षीणमस्त्वायुर्द्धनं यशः च अर्हं ॐ ॥" इति वेदाशीः ॥

तथा । वृत्तम् ॥

यो मेरुशृंगे त्रिदशाधिनाथैर्दैत्याधिनाथैस्सपरिच्छदैश्च ॥
कुंभामृतैः संस्नपितस्सदेव आद्यो विदध्यात् कुलवर्द्धनंच ॥१॥

ज्योतिषिकाशीर्वादो यथा शार्दूलविक्रीडितवृत्तम् ॥

आदित्यो रजनीपतिः क्षितिसुतः सौम्यस्तथा वाक्पतिः
शुक्रः सूर्यसुतो विधुंतुदशिखिश्रेष्ठा ग्रहाः पांतु वः ॥

अश्विन्यादिभमण्डलं तदपरो मेषादिराशिक्रमः
कल्याणं पृथुकस्य वृद्धिमधिकां संतानमप्यस्य च ॥ १ ॥

तदपीछे लग्न धारण करके, ज्योतिषिके स्वघर गये हुए, गुरु सूतिकर्मकेवास्ते कुलवृद्धा स्त्रीयोंको, और दाईयोंको निर्देश करे। अन्य घरमें रहाही बालकको स्नान करानेवास्ते जलको मंत्रके देवे ॥

जलाभिमंत्रणमंत्रो यथा ॥

" ॥ ॐ अर्हं । नमोर्हत्सिध्दाचार्योपाध्यायसर्वसाधुभ्यः ॥ "

वृत्तम् ॥

क्षीरोदनीरैः किल जन्मकाले यैर्मेरुशृङ्गे स्नपितो जिनेन्द्रः ॥
स्नानोदकं तस्य भवत्विदं च शिशोर्महामङ्गलपुण्यवृद्ध्यै ॥१॥

इस मंत्रकरके सात वार जलको मंत्रें, तिस जलकरके कुलवृद्धा स्त्रीयों बालकको स्नान करावे. । और अपने २ कुलाचारके अनुसार नालच्छेद करे. तदपीछे गुरु स्वस्थानमें बैठाही चंदन, रक्तचंदन, बिल्वकाष्ठादि दग्ध करके भस्म करे; तिस भस्मको श्वेतसर्षप और लवणमिश्रित करके पोट्टलिकामें बांधे.

रक्षाभिमंत्रणमंत्रो यथा ॥

"ॐ ह्रीँ श्रीअंबे जगंदबे शुभे शुभंकरे अमुं बालं भूतेभ्यो रक्ष २ । ग्रहेभ्यो रक्ष २ । पिशाचेभ्यो रक्ष २ । वेतालेभ्यो रक्ष २ । शाकिनीभ्यो रक्ष २ । गगनदेवीभ्यो रक्ष २ । दुष्टेभ्यो रक्ष २ । शत्रुभ्यो रक्ष २ । कार्मणेभ्यो रक्ष २ । दृष्टिदोषेभ्यो रक्ष २। जयं कुरु । विजयं कुरु । तुष्टिं कुरु । पुष्टिं कुरु । कुलवृद्धिं कुरु । श्रीँ ह्रीँ ॐ भगवति श्रीअंबिके नमः ॥

इस मंत्रकरके सातवार मंत्रित रक्षापोट्टलीको काले सूत्रसें बांधके, लोहेका टुकडा, वरुणमूलका टुकडा, रक्तचंदनका टुकडा और कोडी, इनोंसहित रक्षापोट्टलिको कुलवृद्धा स्त्रीयोंके पास बालकके हाथ ऊपर बंधवावे. ॥

सांवत्सर (पंचांग) घटीपात्र, चंदन, रक्तचंदन, समीपमें एकांत गृह, सरसव, लवण, कौशेय कृष्णसूत्र, कोडी, गीतमंगल, लोहा, रक्षा, वस्त्र, दक्षिणावास्ते धन, सूतिका, कुलवृद्धा, सर्व जलाशयका जल, जन्मसंस्कारमें इतनी वस्तु चाहिये. ॥ इतिजन्म सं० विधिः ॥ अथ कदाचित् अश्लेषामें, ज्येष्ठामें, मूलमें, गंडांतमें, भद्रामें, बालकका जन्म होवे तो बालकको, बालकके मातापिताको, बालकके कुलको, दुःख, दारिद्र, शोक, मरणादि कष्ट होवे; इसवास्ते बालकका पिता और कुलज्येष्ठ (कुलका बडा) शांतिकविधिमें कहे विधानके करेविना बालकका मुख न देखे. ॥ * इत्याचार्य श्रीवर्द्धमानसूरिकृताचारदिनकरस्य गृहिधर्मप्रतिबद्धजातकर्मसंस्कारकीर्त्तननामतृतीयोदयस्याचार्यश्रीमद्विजयानंदसूरिकृतो बालावबोधस्समातस्तत्समाप्तौ च समाप्तोयं पंचदशस्तंभः ॥ ३ ॥

इत्याचार्यश्रीमद्विजयानंदसूरिविरचिते तत्वनिर्णयप्रासादग्रंथेतृतीयजातकर्मसंस्कारवर्णनो नाम पञ्चदशस्तम्भः ॥ १५ ॥

॥ अथषोडशस्तम्भारम्भः ॥

अथ षोडशस्तंभमें चौथा सूर्यचंद्रदर्शन संस्कारका वर्णन करते हैं. ॥

जन्मदिनसें दो दिन व्यतीत हुए, तीसरे दिन गुरु समीपके घरमें अर्हत्पूजनपूर्वक जिनप्रतिमाके आगे स्वर्णताम्रमयी वा रक्तचंदनमयी सूर्यकी प्रतिमा स्थापन करे. तिसका अर्चन, शांतिक पौष्टिक विधिकरके करे. + तदपीछे स्नानकरके सुवस्त्राभरणकरके अलंकृत बालककी माताको,

---

* शांतिकविधिका वर्णन आचारदिनकरके ३४ मे उदयमें है वहांसें जानना.

\+ शांतिकपौष्टिकका विधि आचारदिनकरके ३४ मे और ३९ मे उदयमें है.

जिसने दोनों हाथोंमें बालकको धारण किया है ऐसीको प्रत्यक्ष सूर्यके सन्मुख लेजाके, वेदमंत्रको उच्चारण करता हुआ, माता पुत्रको सूर्यका दर्शन करवावे. ॥

सूर्यवेदमंत्रो यथा ॥

"॥ ॐ अर्हं। सूर्योऽसि। दिनकरोऽसि। सहस्रकिरणोऽसि। विभावसुरसि। तमोपहोऽसि। प्रियंकरोऽसि। शिवंकरोऽसि। जगच्चक्षुरसि। सुरवेष्टितोऽसि। मुनिवेष्टितोऽसि। विततविमानोऽसि। तेजोमयोऽसि। अरुणसारथिरसि। मार्त्तंडोऽसि। द्वादशात्माऽसि। चक्रबांधवोऽसि। नमस्ते भगवन् प्रसीदास्य कुलस्य तुष्टिं पुष्टिं प्रमोदं कुरु २ सन्निहितो भव अर्हं ॥"

ऐसें गुरुके पठन करे हुए, सूर्यको देखके, माता पुत्रसहित, गुरुको नमस्कार करे. गुरु पुत्रसहित माताको आशीर्वाद देवे.।

यथा। आर्या ॥

सर्वसुरासुरवंद्यः कारयिता सर्वधर्मकार्याणाम् ॥
भूयात्रिजगच्चक्षुर्मंगलदस्ते सपुत्रायाः ॥ १ ॥

सूतकमें दक्षिणा नही है.। तदपीछे गुरु स्वस्थानमें आयकर जिन प्रतिमाको और स्थापित सूर्यको विसर्जन करे. माता और पुत्रको सूतकके भयसें तहां जिनप्रतिमाके पास न लावे.। तिस दिनमेंही संध्याकालमें गुरु जिनपूजापूर्वक जिनप्रतिमाके आगे स्फटिकरूप्यचंदनमयी चंद्रमाकी मूर्त्ति स्थापन करे, तिस चंद्रमाकी मूर्त्तिका शांतिकादिक प्रक्रमोक्त विधिकरके पूजन करे. तदपीछे तैसेंही सूर्यदर्शनरीतिसें चंद्रमाके उदय हुए प्रत्यक्ष चंद्रसन्मुख माता और पुत्रको ले जाके, वेदमंत्र उच्चार करता हुआ, मातापुत्र दोनोंको चंद्रका दर्शन करावे. ॥

चंद्रस्य वेदमंत्रो यथा ॥

"॥ ॐ अर्हं । चंद्रोऽसि । निशाकरोऽसि । सुधाकरोऽसि । चंद्रमा असि । ग्रहपतिरसि । नक्षत्रपतिरसि । कौमुदीपतिरसि । निशापतिरसि । मदनमित्रमसि। जगज्जीवनमसि । जैवातृकोऽसि। क्षीरसागरोद्भवोऽसि। श्वेतवाहनोऽसि। राजाऽसि । राजराजोऽसि। औषधीगर्भोऽसि। वंद्योऽसि। पूज्योऽसि। नमस्ते भगवन् अस्य कुलस्य ऋद्धिं कुरु। वृद्धिं कुरु । तुष्टिं कुरु । पुष्टिं कुरु । जयं विजयं कुरु। भद्रं कुरु । प्रमोदं कुरु । श्रीशशांकाय नमः । अर्हं ॥ "

ऐसें पढता हुआ, माता पुत्रको चंद्र दिखलाके खडा रहे। माता पुत्र सहित गुरुको नमस्कार करे। गुरु आशीर्वाद देवे॥

यथा। वृत्तम् ॥

सर्वौषधीमिश्रमरीचिजालः सर्वापदां संहरणप्रवीणः ॥
करोतु वृद्धिं सकलेपि वंशे युष्माकमिन्दुः सततं प्रसन्नः॥ १ ॥

तदपीछे गुरु जिनप्रतिमा, और चंद्रप्रतिमा दोनोंको विसर्जन करे। इसमें इतना विशेष है। कदाचित् तिस रात्रिके विषे चतुर्दशी अमावास्याके वशसें वा बादलसहित आकाशके होनेसें चंद्रमा न दिखलाइ देवे तो भी पूजन तो तिस रात्रिकीही संध्यामें करना; और दर्शन तो और रात्रिमें भी चंद्रमाके उदय हुए हो सक्ता है। ॥ सूर्य और चंद्रमाकी मूर्ति, तिसकी पूजाकी वस्तु, सूर्यचंद्रदर्शनसंस्कारमें चाहिये। ॥ इत्याचार्यश्रीवर्द्धमानसूरिकृताचारदिनकरस्य गृहिधर्मप्रतिबद्धसूर्येंदुदर्शनसंस्कारकीर्त्तननामचतुर्थोदयस्याचार्यश्रीमद्विजयानंदसूरिकृतो बालावबोधस्समाप्तस्तत्समाप्तौ च समाप्तोयं षोडशस्तंभः ॥ ४ ॥

इत्याचार्यश्रीमद्विजयानन्दसूरिविरचिते तत्त्वनिर्णयप्रासादग्रन्थे चतुर्थसूर्येन्दुदर्शनसंस्कारवर्णनो नाम षोडशस्तम्भः॥१६॥

॥ अथसप्तदशस्तम्भारम्भः ॥

अथ सप्तदशस्तंभमें क्षीराशननामा पांचमा संस्कारका स्वरूप लिखते हैं. तिसही जन्मसें तीसरे, चंद्रसूर्यके दर्शनके दिनमेंही, बालकको क्षीराशनसंस्कार करना । तद्यथा । पूर्वोक्त वेषधारी गुरु, अमृतमंत्रकरके एकसौ आठ वार मंत्रित तीर्थोदकसें बालकको, और बालककी माताके स्तनोंको अभिषेक करके, माताकी गोदी (अंक) में स्थित बालकको दूध पावे. पूर्णांगनाशिकासंबंधि स्तन्य पहिलां चुंघावे, स्तन्य (दूध) पीते हुए बालकको गुरु आशीर्वाद देवे ॥

यथा वेदमंत्रः ॥

"॥ ॐ अर्हं । जीवोऽसि । आत्माऽसि । पुरुषोऽसि । शब्दज्ञोऽसि । रूपज्ञोऽसि । रसज्ञोऽसि । गंधज्ञोऽसि । स्पर्शज्ञोऽसि । सदाहारोऽसि । कृताहारोऽसि । अभ्यस्ताहारोऽसि । कावलिकाहारोऽसि । लोमाहारोऽसि । औदारिकशरीरोऽसि । अनेनाहारेण तवांगं वर्द्धतां । बलं वर्द्धतां । तेजोवर्द्धतां । पाटवं वर्द्धतां । सौष्ठवं । वर्द्धतां पूर्णायुर्भव । अर्हं ॐ ॥ "

इस मंत्रकरके तीन वार आशीर्वाद देवे ॥

अमृतमंत्रो यथा ॥

ॐ ॥ अमृते अमृतोद्भवे अमृतवर्षिणि अमृतं श्रावय २ स्वाहा ॥"

इत्याचार्यवर्द्धमानसूरिकृताचारदिनकरस्य गृहिधर्मप्रतिबद्धक्षीराशनसंस्कारकीर्त्तननामपंचमोदयस्याचार्यश्रीमद्विजयानंदसूरिकृतो बालावबोधस्समाप्तस्तत्समाप्तौ च समाप्तोयं सप्तदशस्तम्भः ॥ ५ ॥

इत्याचार्यश्रीमद्विजयानन्दसूरिविरचिते तत्त्वनिर्णयप्रासादग्रन्थे पञ्चमक्षीराशनसंस्कारवर्णनोनाम सप्तदशस्तम्भः ॥ १७ ॥

॥ अथाष्टादशस्तम्भारम्भः ॥

अथाष्टादशस्तभमें षष्ठीसंस्कारनामा छट्ठे संस्कारका स्वरूप लिखते हैं.॥

छट्ठे दिनमें संध्याके समयमें गुरु प्रसूतिघरमें आकरके षष्ठीपूजन विधिका आरंभ करे, षष्ठीपूजनमें सूतक नही गिणना.

यत उक्तम् ।

स्वकुले तीर्थमध्ये च तथावश्ये बलादपि ॥
षष्ठीपूजनकाले च गणयेन्नैव सूतकम् ॥ १ ॥

इसवचनसें ॥ सूतिकागृहकी भींत और भूमि दोनोंको सधवायोंके हाथसें गोबरकरके लेपन करवावे,। तदपीछे इश्य शुक्रबृहस्पतिके वर्त्तनेवाली दिशाके भींतभागको खडी आदिकरके धवल (श्वेत) करवावे, और भूमिभागको चौंकमंडित करवावे.। तदपीछे श्वेत भींतभागके ऊपर सधवाके हाथेंकरी कुंकुमहिंगुलादिवर्णोंकरके आठ माताओंको उर्द्ध्वा (खडीयां) लिखावे, आठ बैठी हुई, और आठ सुती हुई भी लिखवावे. कुलक्रमांतरमें गुरुकर्मांतरमें षट् (६) षट् (६) लिखनीयां.। तदपीछे सधवा स्त्रीयोंके गीतमंगल गाते हुए चौंकमें शुभासनके ऊपर बैठा हुआ गुरु, अनंतरोक्त पूजाक्रम करके मातायोंको पूजे.

यथा ॥

"॥ ॐ ह्रीँ नमो भगवति । ब्रह्माणि । वीणापुस्तकपद्माक्षसूत्रकरे । हंसवाहने । श्वेतवर्णे । इह षष्ठीपूजने आगच्छ २ स्वाहा ॥" तीनवार पढके पुष्पकरके आव्हान करे ॥

तदपीछे ॥

"॥ ॐ ह्रीँ नमो भगवति । ब्रह्माणि। वीणापुस्तकपद्माक्षसूत्रकरे । हंसवाहने। श्वेतवर्णे। मम सन्निहिता भव २ स्वाहा ॥"

तीनवार पढके सन्निहित करे ॥

तदपीछे ॥

"॥ ॐ ह्रीँ नमो भगवति । ब्रह्माणि । वीणापुस्तकपद्माक्षसूत्रकरे । हंसवाहने । श्वेतवर्णे । इह तिष्ठ २ स्वाहा ॥"

इति। तीनवार पढके स्थापन करे ॥

तदपीछे

"॥ॐ ह्रीँ नमो भगवति । ब्रह्माणि । वीणापुस्तकपद्माक्षसूत्रकरे । हंसवाहने । श्वेतवर्णे । गंधं गृह्ण २ स्वाहा ॥"

चंदनादि गंध चढावे ॥

"ॐ ह्रीँ नमो भगवति । ब्रह्माणि । वीणापुस्तकपद्माक्षसूत्रकरे । हंसवाहने । श्वेतवर्णे । पुष्पं गृह्ण २ स्वाहा ॥"

इसीतरें मंत्रपूर्वक ।

"धूपं गृह्ण २ ।' दीपं गृह्ण २ ।' 'अक्षतान् गृह्ण २ ।' 'नैवेद्यं गृह्ण २ स्वाहा ॥"

ऐसें एकएकवार मंत्रपाठपूर्वक इन पूर्वोक्त गंधादिवस्तुयोंकरके भगवतीको पूजे. ॥ ऐसेंही अन्य सात मातायोंकी पूजा करणी. ।

विशेष मंत्रोंमें है, सो लिखते हैं. ॥

"॥ ॐ ह्रीँ नमो भगवति । माहेश्वरि । शूलपिनाककपालखट्वांगकरे । चंद्रार्द्धललाटे । गजचर्मावृते । शेषाहिबद्धकांचीकलापे । त्रिनयने । वृषभवाहने । श्वेतवर्णे । इह षष्ठीपूजने आगच्छ २ ॥" शेषंपूर्ववत् ॥ २ ॥

"॥ ॐ ह्रीँ नमो भगवति । कौमारि । षण्मुखि । शूलशक्तिधरे । वरदाभयकरे । मयूरवाहने । गौरवर्णे । इह षष्ठीपूजने आगच्छ २ ॥" शेषं पूर्ववत् ॥ ३ ॥

"॥ ॐ ह्रीँ नमो भगवति । वैष्णवि । शंखचक्रगदासारंगख-

ङ्गकरे। गरुडवाहने। कृष्णवर्णे। इह षष्ठीपूजने आगच्छ २॥"
शेषं पूर्ववत् ॥ ४ ॥

"॥ ॐ ह्रीँ नमो भगवति। वाराहि। वराहमुहि। चक्रखड्गह-
स्ते। शेषवाहने। श्यामवर्णे। इह षष्ठीपूजने आगच्छ २॥"
शेषं पूर्ववत ॥ ५ ॥

"॥ ॐ ह्री नमो भगवति। इंद्राणि। सहस्रनयने। वज्रहस्ते। सर्वाभरणभूषिते। गजवाहने। सुरांगनाकोटिवेष्टिते। कांच-
नवर्णे। इह षष्ठीपूजने आगच्छ २॥" शेषं पूर्ववत् ॥ ६ ॥

"॥ ॐ ह्रीँ नमो भगवति। चामुंडे। शिराजालकरालशरीरे। प्रकटितदशने। ज्वालाकुंतले। रक्तत्रिनेत्रे। शूलकपालखड्गप्रे-
तकेशकरे। प्रेतवाहने। धूसरवर्णे। इह षष्ठीपूजने आगच्छ२॥"
शेषं पूर्ववत् ॥ ७ ॥

"॥ ॐ ह्रीँ नमो भगवति। त्रिपुरे। पद्मपुस्तकवरदाभयकरे। सिंहवाहने। श्वेतवर्णे। इह षष्ठीपूजने आगच्छ २॥"
शेषं पूर्ववत् ॥ ८ ॥

एवं जेसें उर्ध्व (खडी) मातृयांका पूजन करे, तैसेंही बैठी और सुप्त मातृयांका भी पूर्वोक्त मंत्रोंसेंही तीनवार पूजन करे; । कितनेक चामुंडा, त्रिपुरा, दोनोंको वर्जके षट्मातृकाही पूजन करते हैं. ॥

मातृका पूजन करके ऐसें पढे. ॥

ब्रह्माद्यामातरोप्यष्टौ स्वस्वास्त्रबलवाहनाः ॥
षष्ठीसंपूजनात्पूर्वं कल्याणं ददता शिशोः ॥ १ ॥

तदपीछे मातृस्थापनाकी अग्रभूमिमें चंदनलेपस्थापना करके, अंबारूप षष्ठीको स्थापन करे. । और तिस स्थापनाको दधि, चंदन, अक्षत, दूर्वादिकरके पूजे. ।

तदपीछे गुरु हस्तमें पुष्प लेके ॥

"॥ ॐ ऐं ह्रीं षष्ठि । आम्रवनासीने । कदंबवनविहारे । पुत्रद्वययुते । नरवाहने । श्यामाङ्गि । इह आगच्छ २ स्वाहा ॥"

मातृवत् इसकी भी पूजा करणी. । तदपीछे बालकमातासहित अविधवा कुलवृद्धा स्त्रीयां मंगलगीतगानमें तत्पर वाजंत्रोंके वाजते हुए षष्ठीरात्रिको जागरणा करे. ।

तदपीछे प्रातःकालमें ॥

"॥ ॐ भगवति माहेश्वरि पुनरागमनाय स्वाहा ॥"

ऐसें प्रत्येक नामपूर्वक गुरु, मातृको और षष्ठीको विसर्जन करे । तदपीछे गुरु, बालकको पंचपरमेष्ठिमंत्रपवित्रित जलकरके अभिषेक करता हुआ, वेदमंत्रकरके आशीर्वाद देवे. ॥

यथा ॥

"॥ ॐ अर्हं जीवोऽसि । अनादिरसि । अनादिकर्मभागसि । यत्त्वया पूर्वं प्रकृतिस्थितिरसप्रदेशैराश्रवद्वृत्त्या कर्मबद्धं तद्बन्धोदयोदीरणासत्ताभिः प्रतिभुङ्क्ष्व । मा शुभकर्मोदयफलभुक्तेरुच्छेकं दध्याः । नचाशुभकर्मफलभुक्त्या विषादमाचरेः । तवास्तु संवरवृत्त्या कर्मनिर्जरा अर्हं ॐ ॥"

सूतकमें दक्षिणा नही है. ॥ चंदन, दधि, दूर्वा, अक्षत, कुंकुम, लेखिनी, हिंगुलादिवर्ण, पूजाके उपकरण, नैवेद्य, सधवा स्त्रीयां, दर्भ, भूमिलेपन, इतनी वस्तुयां षष्ठीजागरणसंस्कारमें चाहिये. ॥ इत्याचार्यवर्द्धमानसूरिकृताचारदिनकरस्य गृहिधर्मप्रतिबद्धषष्ठीजागरणसंस्कारकीर्त्तननामषष्ठोदयस्याचार्यश्रीमद्विजयानन्दसूरिकृतो बालावबोधस्समाप्तस्तत्समाप्तौ च समाप्तोयमष्टादशस्तम्भः ॥ ६ ॥

इत्याचार्यश्रीमद्विजयानन्दसूरिविरचिते तत्त्वनिर्णयप्रासादग्रन्थे षष्ठीजागरणनामषष्ठसंस्कारवर्णनो नामाष्टादशस्तम्भः ॥ १८ ॥



॥ अथैकोनविंशस्तम्भारम्भः ॥

अथैकोनविंशस्तंभमें शुचिकर्मसंस्कारका वर्णन करते हैं. ॥ यहां शुचिकर्म स्वस्ववर्णानुसार करके दिनोंके व्यतीत हुए करणा.

तद्यथा ॥

शुद्ध्येद्विप्रो दशाहेन द्वादशाहेन बाहुजः ॥
वैश्यस्तु षोडशाहेन शूद्रो मासेन शुद्ध्यति ॥ १ ॥
कारूणां सूतकं नास्ति तेषां शुद्धिर्न चापिहि ॥
ततो गुरुकुलाचारस्तेषु प्रामाण्यमिच्छति ॥ २ ॥

तिस कारणसें स्वस्ववर्णकुलानुसार करके दिनोंके व्यतीत हुए, गुरु सर्वही, सोलां पुरुषयुगसें उरे, तिस कुलवर्गको बुलवावे. क्योंकि, सूतक सोलां पुरुषयुगसें उरे ग्रहण करिये हैं. ॥

यदुक्तं ॥

नृषोडशकपर्यन्त गणयेत् सूतकं सुधीः ॥
विवाहं नानुजानीयाद्गोत्रे लक्षनृणां युगे ॥ १ ॥

भावार्थः—सोलां पुरुषपर्यंत सुधी पुरुष सूतक गिणे, । परंतु एकगोत्रमें लक्ष पुरुषयुग व्यतीत हुए भी, विवाह नही करे; न माने. । तिसवास्ते तिन गोत्रजको बुलवायके तिन सर्वको सांगोपांग स्नान और वस्त्रक्षालन करनेको कहे. । स्नान करके शुचि वस्त्र पहिनके गुरुको साक्षी करके, वे सर्व गोत्रज विविध प्रकारकी पूजासें जिन प्रतिमाका पूजन करे. । तदपीछे बालकके माता पिता पंचगव्यकरके अंतस्नान करे. । पुत्रसहित नखच्छेदनकरके गांठ जोडी दंपती जिनप्रतिमाको नमस्कार करें, सधवा स्त्रीयांके मंगलगीत गाते वाजंत्रोंके वाजते हुए. । और सर्व चैत्योंमें पूजा नैवेद्य ढौकन करे. । साधुयोंको यथाशक्ति चतुर्विध आहार वस्त्र पात्र देवे, । और संस्कार करनेवाले गुरुको वस्त्र तांबूल भूषण द्रव्यादिदान देवे. तथा । जन्म, चंद्रसूर्यदर्शन, क्षीराशन, षष्ठी, इनसंबंधिनी दक्षिणा तिस दिनमें

संस्कारगुरुकेंतांइ देणी.। और सर्व गोत्रज स्वजन मित्रवर्गोंको यथाशक्ति भोजन तांबूल देना.। तथा गुरु तिस कुलके आचारानुसारकरके पंचगव्य, जिनस्नात्रोदक, सर्वौषधिजल और तीर्थजल, इनोंकरके स्नान कराये हुए बालकको वस्त्राभरणादि पहिनावे.॥ तथा स्त्रीयोंको सूतकदिनोंके पूर्ण हुए भी, आर्द्र नक्षत्रोंमें, और सिंह गजयोनि नक्षत्रोंमें, सूतकस्नान नही करवावणा.। आर्द्र नक्षत्र दश है.। कृत्तिका १, भरणी २, मूल ३, आर्द्रा ४, पुष्य ५, पुनर्वसु ६, मघा ७, चित्रा ८, विशाखा ९, श्रवण १०, ये दश आर्द्र नक्षत्र हैं; इनमें स्त्रीको सूतकस्नान न करावे. यदि स्नान करे तो, फिर प्रसूति न होवे.॥ धनिष्ठा १, पूर्वाभाद्रपदा २, ये दो सिंहयोनि नक्षत्र जाणने; और भरणी १, रेवती २, ये दो नक्षत्र गजयोनि जाणने.॥ कदाचित् सूतक पूर्ण हुए दिनमें इन पूर्वोक्त नक्षत्रोंमेंसें कोइ नक्षत्र आवे, तब एक एक दिनके अंतरे शुचिकर्म करणा.॥ पूजावस्तु, पंचगव्य, स्वगोत्रज जन, तीर्थोदक, शुचिकर्मसंस्कारमें चाहिये.॥ इत्याचा० श्रीव० गृहिधर्मप्रतिबद्धशुचिसंस्कारकीर्त्तननामसप्तमोदयस्याचार्यश्रीमद्वि० बा० स० तत्स० समाप्तोयमेकोनविंशस्तंभः॥ ७॥

इत्याचार्यश्रीमद्विजयानंदसूरिविरचिते तत्त्वनिर्णयप्रासादग्रंथे सप्तमशुचिकर्मसंस्कारवर्णनो नामैकोनविंशस्तम्भः॥ १९॥

॥ अथविंशस्तम्भारम्भः ॥

अथ विंशस्तम्भमें नामकरणसंस्कारविधि लिखते हैं.॥

मृदु, ध्रुव, क्षिप्र और चर, इन नक्षत्रोंमें पुत्रका जातकर्म करना. अथवा गुरु वा शुक्र, चतुर्थ स्थित होवे, तब नाम करना, सज्जन पुरुषोंको सम्मत है.॥ शुचिकर्मदिनमें अथवा तिसके दूसरे वा तीसरे शुभ दिनमें बालकको चंद्रमाके बल हुए, ज्योतिषिकसहित गुरु तिसके घरमें शुभस्थानमें शुभासनके ऊपर बैठा हुआ, पंचपरमेष्ठिमंत्रको स्मरण करता हुआ रहे.। तिस अवसरमें बालकके पिता, पितामहादि, पुष्प फलकरके हाथ

परिपूर्ण करके ज्योतिषिकसहित गुरुको साष्टांग नमस्कार करके ऐसें कहे. हे भगवन् ! पुत्रका नामकरण करो. । तब गुरु तिन पितापितामहादिको, तिसके कुलके पुरुषोंको, और कुलवृद्धा स्त्रीयोंको, आगे बैठाके, ज्योतिषिको जन्मलग्न कहनेकेवास्ते आदेश करे. । तब ज्योतिषिक शुभपट्टेऊपर खट्टिका (खडी) करके तिस बालकके जन्मलग्नको लिखे, स्थान २ में ग्रहोंको स्थापन करे. । तब बालकके पितापितामहादि जन्मलग्नकी पूजा करे. । तिसमें स्वर्णमुद्रा १२, रूप्यमुद्रा १२, ताम्रमुद्रा १२, क्रमुक (सुपारी) १२, अन्य फलजाति १२, नालिकेर १२, नागवल्लीदल (पान) १२, इनोंकरके द्वादश लग्नका पूजन करे । इनही नव नव वस्तुयोंकरी नवग्रहोंका पूजन करे. ऐसें लग्नके पूजे हुए, तिनोंके आगे ज्योतिषिक लग्न विचार कहे. वे भी उपयोगसहित सुणे. । तदपीछे व्याख्यानसहित लग्नको ज्योतिषिक कुंकुमाक्षरोंकरके पत्रेमें लिखके, कुलज्येष्ठको सौंप देवे. । बालकके पितादिकोंने ज्योतिषिका निवाप (पितृउद्देशपूर्वक) वस्त्र स्वर्णदान करके सन्मान करणा. । और ज्योतिषिक भी तिनोंके आगे जन्मनक्षत्रानुसारे, नामाक्षरको प्रकाश करके, स्वघरको जावे. । तदपीछे गुरु, सर्व कुलपुरुषोंको और कुलवृद्धा स्त्रीयोंको, आगे स्थापन करके (बिठलाके) तिनोंकी सम्मतिसें हाथमें दूर्वा लेके परमेष्ठिमंत्रपठनपूर्वक कुलवृद्धाके कानमें जातिगुणोचित नाम सुणावे. । तिसपीछे कुलवृद्धा नारीयां गुरुकेसाथ पुत्र गोदीमें लीयां तिसकी माता शिबिकादि नरवाहनमें बैठी हुई, वा पादचारिणी अविधवायोंके गीत गाते हुए, वाजंत्र बाजते हुए, जिनमंदिरमें जावे. । तहां मातापुत्र दोनों जिनको नमस्कार करे, माता चौवीस २ सुवर्णमुद्रा, रूप्यमुद्रा, फलनालिकेरादिकरके जिनप्रतिमाके आगे ढौकनिका करे. । तदपीछे देवके आगे कुलवृद्धा स्त्रीयां बालकका नाम प्रकाश करे. चैत्य न होवे तो, घरदेरासरकी प्रतिमाके आगे यह विधि करना. तदपीछे तिसही रीतिसें पौषधशालामें आवे, तहां प्रवेश करके भोजनमंडली स्थानमें मंडलीपट्ट स्थापन करके तिसकी पूजा करे. मंडलीपूजाका विधि यह है. पुत्रकी माता "श्रीगौतमाय नमः" ऐसा उच्चार करती हुई, गंध, अक्षत,

पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य करके मंडलीपट्टकी पूजा करे. मंडलीपट्टोपरि स्वर्णमुद्रा १०, रूप्यमुद्रा १०, क्रमुक १०८, नालिकेर २९, वस्त्रस्त २९, स्थापन करे.। तदपीछे पुत्रसहित माता तीन प्रदक्षिणा करके यतिगुरुको नमस्कार करे.। नव सोनेरूपेकी मुद्रा करके गुरुके नवांगकी पूजा करे.। निरुंछना और आरात्रिका (आरती) करके क्षमाश्रमणपूर्वक हाथ जोडके, "वासरकेवंकरेह" ऐसा पुत्रकी माता कहे. तब यतिगुरु वासक्षेपको, ॐकार ह्रींकार श्रींकार सन्निवेशकरके कामधेनुमुद्राकरके, वर्द्धमान विद्याकरके जपके, मातापुत्र दोनोंके शिरपर क्षेप करे. तहां भी तिनके शिरमें ॐ ह्रीं श्रीं अक्षरोंका सन्निवेश करे.। तदपीछे बालकका अक्षतसहित चंदनकरके तिलक करके, कुलवृद्धाके अनुवादकरके, नाम स्थापन करे.। तदपीछे तिसही युक्तिकरके सर्व अपने घरको आवे.। यतिगुरुयोंको शुद्ध आहार वस्त्र पात्रका दान देवे.। और गृहस्थगुरुको वस्त्र अलंकार स्वर्णदान देवे.॥ नांदी, मंगलगीत, ज्योतिषिकसहित गुरु, प्रभूत फल, और मुद्रा, विविधप्रकारके वस्त्र, वास, चंदन, दूर्वा, नालिकेर, धन; इतनी वस्तु नामसंस्कारकार्यमें चाहिये. ॥ इत्याचार्यश्रीवर्द्धमानसूरिकृताचारदिनकरस्य गृहिधर्मप्रतिबद्धनामकरणसंस्कारकीर्त्तननामाष्टमोदयस्याचार्यश्रीमद्विजयानंदसूरिकृतो बालावबोधस्समाप्तस्तत्समाप्तौ च समाप्तोयं विंशस्तम्भः ॥ ८ ॥

इत्याचार्यश्रीमद्विजयानंदसूरिविरचिते तत्त्वनिर्णयप्रासादग्रंथेऽष्ट नामकरणसंस्कारवर्णनो नाम विंशस्तम्भः ॥ २० ॥

॥ अथैकविंशस्तम्भारम्भः ॥

अथ २१ मे स्तंभमें अन्नप्राशनसंस्कारविधि लिखते हैं. ॥ रेवती, श्रवण, हस्त, मृगशीर्ष, पुनर्वसु, अनुराधा, अश्विनी, चित्रा, रोहिणी, उत्तरात्रय, धनिष्ठा, पुष्य, इन निर्दोष नक्षत्रोंमें और रवि, चंद्र, बुध, शुक्र, गुरु वारोंमें पुरुषोंको नवीन अन्नप्राशन (खाना) श्रेष्ठ है.। और बालकोंको

अन्नभोजन रिक्तादि कुतिथीयां और कुयोगोंको वर्जके श्रेष्ठ है. । पुत्रको छट्ठे मासमें, और कन्याको पांचमे मासमें अन्नप्राशन, सत्पुरुषोंने कहा है. । जे नक्षत्र कहे तिनमें और पूर्वोक्त वारमें सद्ग्रहोंके विद्यमान हुए अमावासी और रिक्ता, तिथीको वर्जके शुभ तिथीमें करणा. क्योंकि, लग्नमें रवि होवे तो, कुष्टी होवे; मंगल होवे तो, पित्तरोगी होवे; शनि होवे तो, वातव्याधि होवे; क्षीणचंद्र होवे तो, भीख मांगनेमें रत होवे; बुध होवे तो, ज्ञानी होवे; शुक्र होवे तो, भोगी होवे; बृहस्पति होवे तो, चिरायु होवे; और पूर्ण चंद्रमा होवे तो, यज्ञ करनेवाला और दान देनेवाला होवे. । कंटक ४ । ७ । १० । अंत्य १२ । निधन ८ । त्रिकोण ५ । ९ । इन घरोंमें पूर्वोक्त ग्रह होवे तो, शरीरमें शुभफल देते हैं. । छट्ठे और आठमे घरमें चंद्रमा अशुभ होता है, । केंद्र १ । ४ । ७ । १० । त्रिकोण ५ । ९ । इन घरोंमें सूर्य होवे तो, अन्ननाश होवे. ॥ तिसवास्ते छट्ठे मासमें बालकको, और पांचमे मासमें कन्याको पूर्वोक्त तिथी वार नक्षत्र योगोंमें बालकको चंद्रबलके हुए अन्नप्राशनका आरंभ करे. । तद्यथा । पूर्वोक्त वेषधारी गुरु, तिसके घरमें जाके सर्वदेशोत्पन्न अन्नोंको एकत्र करे; देशोत्पन्न और अन्य नगरोंमेंसें जे प्राप्त होवे, तिन सर्व फलोंको, और षट्विकृयोंको त्याग करे. । तदपीछे सर्व अन्नोंको, सर्व शाकोंको, सर्व विकृतीयोंको, घृत, तैल, इक्षुरस, गोरस, जल, इत्यादिकोंसें पकाये हुए बहुतप्रकारके पदार्थोंको पृथक् न्यारे २ करे. । तदपीछे अर्हत्प्रतिमाका बृहत्स्नात्रविधिसें * पंचामृतस्नात्र करके पृथक् पात्रोंमें तिन अन्न शाक विकृति पाकादिकोंको जिनप्रतिमाके आगे अर्हत्कल्पोक्त + नैवेद्यमंत्रकरके ढोवे. सर्वजातके फल भी ढोवे. । तदपीछे बालकको अर्हत्स्नात्रोदक पिलावे. । फिर जिनप्रतिमाके नैवेद्यसें उद्धरित बची हुइ तिन सर्ववस्तुयोंको सूरिमंत्रके मध्यगत अमृताश्रवमंत्रकरके श्रीगौतमप्रतिमाके आगे ढोवे, । तिससें उद्धरित वस्तुयोंको कुलदेवताके मंत्रकरके

* बृहत्स्नात्रविधि आचारदिनकरके ३२ मे उदयमें है ।

+ अर्हत्कल्पोक्त पूजाविधि इसीग्रंथके २७ मे स्तंभमें है.

गोत्रदेवीकी प्रतिमाके आगे चढावे,। तदपीछे कुलदेवीके नैवेद्यमेंसें योग्य आहार मंगलगीत गाते हुए माता पुत्रके मुखमें देवे.। और गुरु यह वेदमंत्र पढे.॥

यथा॥

"॥ ॐ अर्हं भगवानर्हन् त्रिलोकनाथस्त्रिलोकपूजितः सुधाधारधारितशरीरोपि कावलिकाहारमाहारितवान्। तपस्यन्नपि पारणाविधाविक्षुरसपरमान्नभोजनात् परमानंदादपि केवलं तद्देहिन्नौदारिकशरीरमाप्तस्त्वमप्याहारय आहारं तत्ते दीर्घमायुरारोग्यमस्तु अर्हं ॐ॥"

यह मंत्र तीनवार पढे.। तदपीछे साधुयोंको षट्विकृतियांकरके षट्रससंयुक्त आहार देवे, प्रतिगुरुके मंडलीपट्टोपरि परमान्नपूरित सुवर्णपात्र चढावे, गृहस्थगुरुको द्रोण द्रोण प्रमाण सर्वजातका अन्नदान करे,। तुला २ प्रमाण सर्व घृत, तैल, गुड लवणादि दान करे,। सर्वजातके एक सौ आठ २ फल देवे,। तांबेका चरु, कांश्यक थाल, और वस्त्रयुगल देवे.। सर्वजातिके अन्न, सर्वजातिके फल, सर्व विकृतियां, स्वर्ण, रूप्य, ताम्र, कांश्य, इनोंके पात्र (भाजन) इतनी वस्तुयां इस संस्कारसें चाहिये.॥ इत्याचार्यश्रीवर्द्धमानसुरिकृताचारदिनकरस्य गृहिधर्मप्रतिवद्ध अन्नप्राशनसंस्कारकीर्तननाम नवमोदयस्याचार्यश्रीमद्विजयानंदसूरिकृतो बालावबोधस्समाप्तस्तत्समाप्तौ च समाप्तोयमेकविंशस्तम्भः॥९॥

इत्याचार्यश्रीमद्विजयानन्दसूरिविरचिते तत्त्वनिर्णयप्रासादग्रंथे नवमान्नप्राशनसंस्कारवर्णनो नामैकविंशस्तम्भः॥ २१॥

॥ अथद्वाविंशस्तम्भारम्भः॥

अथ २२ मे स्तंभमें कर्णवेधसंस्कारविधि लिखते हैं.॥ उत्तरात्रय, हस्त, रोहिणी, रेवती, श्रवण, पुनर्वसू, मृगशीर्ष, पुष्य, इन नक्षत्रोंमें।

रेवती, श्रवण, हस्त, अश्विनी, चित्रा, पुष्य, धनिष्ठा, पुनर्वसू, अनुराधा, चंद्रसहित इन नक्षत्रोंमें कर्णवेध करना, मुनिजन कहते हैं. । लाभ ११, तृतीय ३, घरमें शुभ ग्रहोंकरके संयुक्त होवे, शुभराशि लग्नमें क्रूर ग्रहोंकरके रहित बृहस्पतिके लग्नाधिप, वा लग्नमें हुए कर्णवेध करणा. जिसमें चंद्र नक्षत्र, पुष्य, चित्रा, श्रवण, रेवती, जाणने. । मंगल, शुक्र, सूर्य, बृहस्पति, इन वारमें शुभ तिथीमें शुभ योगमें बालक और कन्याका कर्णवेध करणा. ॥ इन निर्दोष तिथि वार नक्षत्रमें बालकको चंद्रबलके हुए कर्णवेध आरंभ करे. । उक्तं च । "गर्भाधान, पुंसवन, जन्म, सूर्यचंद्रदर्शन, क्षीराशन, षष्ठी, शुचि, नामकरण, अन्नप्राशन, मृत्यु, इन संस्कारोंमें अवश्य कार्य होनेसें पंडित पुरुषोंने वर्षमासादिकी शुद्धि न देखणी. । कर्णवेधादिक अन्य संस्कारोंमें विवाहकीतरें वर्ष मास दिन नक्षत्रादिकोंकी शुद्धि अवश्यमेव विलोकन करणी. । यथा । तीसरे पांचमे सातमे निर्दोष वर्षमें बालकको बलवान सूर्य होवे, तिस मासमें इष्ट दिनमें, गुरु, बालकको और बालककी माताको अमृतामंत्र अभिमंत्रित जलकरके मंगलगानपूर्वक अविधवायोंके हार्थेकरी स्नान करावे. । और तहां कुलाचारसंपदा अतिशय विशेषकरके तैलनिषेकसाहित तीन पांच सात नव इग्यारह दिनांतक स्नानका विधि जाणना, । तिसके घरमें पौष्टिकाधिकारमें कहे सर्व पौष्टिकको करणा, षष्ठीको वर्जके मात्रष्टकपूजन पूर्ववत् करणा, । तदपीछे स्व २ कुलानुसार अन्य ग्राममें कुलदेवताके स्थानमें पर्वतउपर नदीतीरे वा घरमें कर्णवेधका आरंभ करे. । तहां मोदक नैवेद्यकरण गीतगान मंगलाचारादि स्व २ कुलागत रीतिकरके करणा. । तदपीछे बालकको पूर्वाभिमुख आसनऊपर बिठलाके तिसके कर्णवेध करे तहां गुरु यह वेदमंत्र पढे. ।

यथा ॥

"॥ ॐ अर्हं श्रुतेनाङ्गोपाङ्गैः कालिकैरुत्कालिकैः पूर्वगतैश्चूलिकाभिः परिकर्माभिः सूत्रैः पूर्वानुयोगैः छन्दोभिर्लक्षणैर्निरुक्तैर्धर्मशास्त्रैर्विद्धकर्णो भयात्अर्हं ॐ ॥"

शुद्रादिकोंको ॥ '॥ॐ अर्हं तव श्रुतिद्वयं हृदयं धर्मांविद्धमस्तु॥' ऐसें कहना. ॥

तदपीछे बालकको यानमें बैठाके, वा नर नारी उत्संगमें लेके धर्मागारमें लेइ जावे; तहां पूर्वोक्त विधिसें मंडलीपूजा करके बालकको गुरुके चरणांआगे लोटावे. तब यतिगुरु विधिसें वासक्षेप करे.। तदपीछे बालकको घरमें ल्याके गृहस्थगुरु कर्णाभरण पहिनावे.। यतिगुरुयोंको शुद्ध चार प्रकारका आहार वस्त्र पात्र देवे. । गृहस्थगुरुको वस्त्र स्वर्णदान देवे. ॥ इत्याचार्यश्रीवर्द्धमानसूरिकृताचारदिनकरस्य गृहिधर्मप्रतिबद्धकर्णवेधसंस्कारकीर्त्तननामदशमोदयस्याचार्यश्रीमद्विजयानंदसूरिकृतोबालावबोधस्समासस्तत्समाप्तौ च समाप्तोयं द्वाविंशस्तम्भः ॥ १० ॥

इत्याचार्यश्रीमद्विजयानंदसूरिविरचिते तत्त्वनिर्णयप्रासादग्रन्थे दशमकर्णवेधसंस्कारवर्णनो नाम द्वाविंशस्तम्भः ॥ २२ ॥

॥ अथ त्रयोविंशस्तम्भारम्भः ॥

अथ २३ मे स्तंभमें चूडाकरणसंस्कारविधि लिखते हैं. ॥ हस्त, चित्रा, स्वाति, मृगशीर्ष, ज्येष्ठा, रेवती, पुनर्वसू, श्रवण, धनिष्ठा, इन नक्षत्रोंमें।१।२।३।५।७।१३।१०।११। इन तिथियोंमें। शुक्र, सोम, बुध, इन वारोंमें चंद्र वा तारेके बल हुए, क्षौरकर्म करणा. । पर्वके दिनोंमें, यात्रामें, स्नानसेंपीछे, भोजनसेंपीछे, विभूषापीछे, तीन संध्यामें, रात्रिमें, संग्राममें, क्षयतिथिमें, पूर्वोक्त तिथिवारसें अन्य तिथिवारमें, और अन्य भी मंगलकार्यमें क्षौरकर्म न करणा. ॥ क्षौरनक्षत्रोंमें स्वकुलविधिकरके चूडाकरण करणा मुनींद्र कहते हैं; परं गुरु, शुक्र और बुध यह तीन ग्रह केंद्रमें १।४।७।१० होने चाहिये.। यदि केंद्रमें सूर्य होवे तो ज्वर होवे; मंगल होवे तो शस्त्रसें नाश होवे; शनि होवे तो पंगुपणा होवे; क्षीण चंद्र होवे तो नाश होवे.। षष्ठी (६), अष्टमी (८), चतुर्थी (४), सिनीवाली (चतुर्दशीयुक्तअमावास्या), चतुर्दशी (१४), नवमी (९), इन तिथीयोंमें और रवि, शनि, मंगल, इन वारोंमें क्षौरकर्म न करावणा.। धन २, व्यय १२,

त्रिकोण ५ । ९, इन ग्रहोंमें असद्ग्रह होवे तो, मृत्यु हुए भी क्षुरक्रिया सुंदर नही होवे; और इनही घरोंमें शुभ ग्रह होवे तो क्षुरक्रिया पुष्टिकी करणहार जाणनी. । तिसवास्ते बालकको सूर्यबलयुक्त मासके हुए, चंद्रताराबलयुक्त दिनमें, पूर्वोक्त तिथिवारनक्षत्रमें कुलाचारानुसार कुलदेवताकी प्रतिमाके पास अन्य ग्राममें, वनमें, पर्वतके ऊपर, वा घरमें शास्त्रोक्त रीतिसें प्रथम पौष्टिक करे. । तदपीछे षष्ठीपूजावर्जित मातृष्टपूजा पूर्ववत्. । तदपीछे कुलाचारानुसार नैवेद्य देवपक्कान्नादि करणा. । तदपीछे सुस्नात गृहस्थगुरु बालकको आसनऊपर बैठाके बृहत्स्नात्रविधिकृत जिनस्नात्रोदकसें शांतिदेवीके मंत्रकरके सिंचन करे. । तदपीछे कुलक्रमागत नापित (नाइ) के हाथसें मुंडन करवावे. । तीन वर्णके शिरके मध्यभागमें शिखा स्थापन करे. । और शूद्रको सर्वमुंडन. । चूडाकरण करते हुए यह वेदमंत्र पढे. ॥

यथा ॥

"॥ ॐ अर्हं ध्रुवमायुर्ध्रुवमारोग्यं ध्रुवाः श्रीयो ध्रुवं कुलं ध्रवं यशो ध्रवं तेजो ध्रुवं कर्म्म ध्रुवा च गुणसंततिरस्तु अर्हं ॐ ॥"

यह सातवार पढता हुआ बालकको तीर्थोदककरके सींचे. । गीत, वाजंत्र सर्वत्र जाणने. । तदपीछे पंचपरमेष्टिपाठपूर्वक बालकको आसनसें उठायकर स्नान करावे. । चंदनादिकरके लेपन करे. । श्वेतवस्त्र पहिनावे. । भूषणोंकरके भूषित करे. । तदनंतर धर्मागारमें लेजावे. । तदपीछे, पूर्वरीतिसें मंडलीपूजा गुरुवंदना वासक्षेपादि. । तदपीछे साधुयोंको शुद्ध वस्त्र, अन्न, पात्र और षड्रस विकृति दान देवे. । गृह्यगुरुको वस्त्र स्वर्ण, दान देवे. । नापितको वस्त्र कंकण दान देवे. ॥ इत्याचार्यश्रीवर्द्धमानसूरिकृताचारदिनकरस्य गृहिधर्मप्रतिबद्धचूडाकरणसंस्कारकीर्त्तननामैकादशोदयस्याचार्यश्रीमद्विजयानंदसूरिकृतो बालावबोधस्समासस्तत्समाप्तौ च समाप्तोयं त्रयोविंशस्तम्भः ॥ ११ ॥

इत्याचार्यश्रीमद्विजयानंदसूरिविरचिते तत्त्वनिर्णयप्रासादग्रंथे एकादशचूडाकरणसंस्कारवर्णनो नाम त्रयोविंशस्तम्भः ॥ २३ ।

॥ अथ चतुर्विंशस्तम्भारम्भः ॥

अथ २४ मे स्तंभमें उपनयनसंस्कारविधि लिखते हैं. ॥ तहां उपनयन नाम मनुष्योंको वर्णक्रममें प्रवेश करणेवास्ते संस्कारही वेषमुद्राके उद्व-हनसें स्व २ गुरुयोंके उपदेशो धर्ममार्गमें निवेश (प्रवेश) करता है. ।

यदुक्तमागमे ॥

धम्मायारे चरिए वेसो सवच्छ कारणं पढमं ॥
संजमलज्जाहेऊ साड्ढाणं तहय साहूणं ॥१॥

अर्थः—धर्माचारके आचरण करते हुए वेष जो है, सो सर्वत्र प्रथम कारण है. श्रावक तथा साधुयोंको संजमलज्जाका हेतु है. ॥

तथा च श्रीधर्मदासगणिपादैरुपदेशमालायामप्युक्तम् ॥

यथा ॥

धम्मं रक्खइ वेसो संकइ वेसेण दिक्खिओमि अहं ॥
उम्मग्गेण पडंतं रक्खइ राया जणवऊव्व ॥१॥

अर्थः—वेष धर्मकी रक्षा करता है. क्योंकि, वेष होनेसें अकार्य करता हुआ मनमें शंका करता है कि, मैं दीक्षितवेषवाला हूं, मुझको देखके लोक निंदा करेंगे, इसवास्ते उन्मार्गमें पडते हुएकी भी वेष रक्षा करता है, जैसें राजा देशकी रक्षा करता है. ॥ तथा इक्ष्वाकुवंशी, नारदवंशी, वैश्य, प्राच्य, उदीच्य, इन वंशोंके जैन ब्राह्मणको उपनयन और जिनो-पवीत धारण करणा. । तथा क्षत्रीयवंशमें उत्पन्न हुए जिन, चक्रि, बलदेव, वासुदेवोंको, श्रेयांसकुमार दशार्णभद्रादि राजायोंको, हरिवंश, इक्ष्वाकुवंश, विद्याधरवंश, इन वंशोंमें उत्पन्न हुएको भी, उपनयन जिनोपवीतधारण विधि है. । जिसवास्ते कहा है, आगममें,

"देवाणुप्पिआ, न एअं भूअं, न एअं भव्वं, न एअं भविस्सं, जन्नं, अरहंता वा, चक्कवट्टी वा, बलदेवा वा, वासुदेवा वा, अंतकुलेसु वा, पंतकुलेसु वा, किविणकुलेसु वा, तुच्छकुलेसु वा, दरिद्दकुलेसु वा, भिरकाग-कुलेसु वा, माहणकुलेसु वा, आयाइंसु वा आयाइंति वा, आयाइस्संति वा,

एवं खलु, अरहंता वा, चक्कवलवासुदेवा वा, उग्गकुलेसु वा, भोगकुलेसु वा, राइन्नकुलेसु वा, खत्तियकुलेसु वा, इरकागकुलेसु वा, हरिवंसकुलेसु वा, अन्नयरेसु वा, तहप्पगारेसु विसुद्ध जाइकुलवंसेसु आया इंसु वा, आयाइंति वा, आयाइस्संति वा, अत्थि पुण एसेवि भावे, लोगच्छेयभूए, अणंताहिं उसप्पिणि ऊसप्पिणीहिं वइक्कंताहिं, समुपज्जइ, नामगुत्तस्स, वा, कम्मस्स, अरकीणस्स, अवेइयस्स, अणिज्जिणस्स, उदएणं, जन्नं, अरहंता वा, चक्कवलवासुदेवा वा, अंतकुलेसु वा, पंतकिविणतुच्छदरिद्द भिरकागमाहणकुलेसु वा, आयाइंसु वा, आयाइंति वा, आयाइस्संति वा; नो चेव णं, जोणीजम्मणनिरकमणेणं निरकमिंसु वा, निक्खमंति वा, निक्खमिस्संति वा. तं जीअमेअं, तीअपच्चुप्पन्नमणागयाणं सक्काणं, देविंदाणं, देवराईणं, अरहंते भगवंते, तहप्पगारेहिंतो, अंतकुलेहिंतो, पंतकुलेहिंतो, तुच्छदरिद्दकिविण भिक्खागमाहणकुलहिंतो; तहप्पगारेसु उग्गभोगरायन्नखत्तियइरकागहरिवंसकुलेसु वा, अन्नयरेसु वा, तहप्पगारेसु विसुद्धजाइकुलवंसेसु साहरावित्तए. ॥" * तिसवास्ते कार्तिकशेठ कामदेवादि वैश्योंको भी उपनयन जिनोपवीत धारण करणा. । आनंदादि शुद्रोंको भी उत्तरीय धारण करणा. । शेष वणिगादिकोंको उत्तरासंगकी अनुज्ञा है. जिनोपवीत जो है सो भगवान् जिनकी गृहस्थपणेकी मुद्रा है. । सर्व बाह्य अभ्यंतर कर्मविमुक्त निर्ग्रंथ यतियोंको तो, नव ब्रह्मगुप्तिगुप्ता-ज्ञानदर्शनचारित्ररत्नत्रयी, हृदयमेंही है. क्योंकि, मुनिजन सर्वदा तद्भावनाभावितही होते हैं. इसवास्ते नवब्रह्मगुप्तियुक्तरत्नत्रयी सूत्ररूप बाह्यमुद्राको नही धारण करते हैं, तन्मय होनेसें. नही समुद्र, जलपात्रको हस्तमें करता है. । नही सूर्य दीपकको धारण करता है.

यत उक्तम् ॥

अग्नौ देवोस्ति विप्राणां हृदि देवोस्ति योगिनाम् ॥
प्रतिमास्वल्पबुद्धीनां सर्वत्र विदितात्मनाम् ॥ १ ॥

---

* इन पाठका भावार्थ यह है कि पूर्वोक्त अंतादिकुलमें अरिहंतादि नही उत्पन्न होते हैं, किंतु उग्रादि उपनयनादिसंयुक्त कुलमें उत्पन्न होते हैं, शुद्ध होनेसें. ॥

अर्थः—अग्निहोत्रि ब्राह्मणोंका तो, अग्निही देव है, अर्थात् अग्निविषेही देवबुद्धि है; और योगिजनोंके हृदयमेंही देव है; क्योंकि, योगाभ्यासी मुनिजन तों, अपने पिंडस्थ, पदस्थ, रूपस्थ, रूपातीत, ध्यानके बलसें अपने हृदयमेंही देवका स्वरूप ध्याय सकते हैं; और जो अल्पबुद्धि अर्थात् गृहस्थधर्मी श्रावकादि हैं, तिनोंको भगवान्‌की प्रतिमाही देव है; तिसकेही पूजन, ध्यान, प्रभावना, उत्सव, रथयात्रा, करनेसें कल्याण है. और जिनोंने आत्मस्वरूप जाना है, ऐसें यति, ऋषि, मुनियोंको तो सर्वजगें देव मालुम होता है; अर्थात् ध्याता, ध्येय, ध्यान, ज्ञाता, ज्ञेय, ज्ञान रूपकरके सर्व देवस्वरूपही है. ॥ इसवास्ते शिखासूत्रविवर्जित ब्रह्मगुप्तिरत्नत्रय करण कारण अनुमतिमें सदैव आदरवाले यतिजन हैं. । और गृहस्थी, ब्रह्मगुप्तिरत्नत्रयलेशश्रवणस्मरणमात्रसें ब्रह्मगुप्तिरत्नत्रयको सूत्रमुद्राकरके हृदयमें धारण करते हैं. । 'प्रतिमास्वल्पबुद्धीनां' इसवचनसें॥

तदात्मकत्वके न हुए मुद्राका धारण है. । जैसें छद्मस्थको बाह्य अभ्यंतर तपःका करणा है. । तथा नवतंतुगर्भत्रिसूत्रमय एक अग्र ऐसें तीन अग्र ब्राह्मणको, दो अग्र क्षत्रियको, एक अग्र वैश्यको, शूद्रको उत्तरीयक, और अपरको उत्तरासंगकी अनुज्ञा है. । ऐसा विशेष क्यों है ? सोही कहते हैं. । ब्राह्मणोंने नवब्रह्मगुप्तियुक्त ज्ञानदर्शनचारित्ररूप रत्नत्रय आप पालन करणे, अन्योंसें करावणे, अन्य करतांको अनुमति देणी. ॥ ब्रह्मगुप्तिगुप्ताइति । ब्राह्मण आप रत्नत्रयीको अध्ययन सम्यक्‌दर्शन चारित्र क्रियायोंकरके आचरते हैं, अन्योंसें अध्यापन सम्यक्त्वोपदेश आचार प्ररूपणाकरके रत्नत्रयीका आचरण करवाते हैं, और ज्ञानोपाशन सम्यग्‌दर्शन धर्मोपाशनादिकोंकरके श्रद्धा करनेवाले और अनुज्ञा मांगनेवाले अन्योंको अनुज्ञा देते हैं, इसवास्ते नवब्रह्मगुप्तिगर्भ रत्नत्रय करण कारण अनुमतिवाले ब्राह्मणोंको जिनोपवीतमें तीन अग्र. । और क्षत्रियोंको आप रत्नत्रयका आचरण करणा, और निजशक्तिसें न्यांयप्रवृत्तिकरके अन्योंसें आचरण करावणा योग्य है, परंतु तिन क्षत्रियोंको अन्य जनोंको अनुज्ञा देनी योग्य नही है. क्योंकि, वे ठकुराइवाले प्रभु

होनेसें अन्योंविषे नियमादिकी अनुज्ञा नही देते हैं, इसवास्ते क्षत्रियोंको जिनोपवीतमें दो अग्र. । वैश्योंने ज्ञानभक्तिकरके सम्यक्त्व धृतिकरके उपासकाचारशक्तिकरके स्वयमेव रत्नत्रय आचरणा, । तिन वैश्योंको असामर्थ्य होनेसें अनुपदेशक होनेसें रत्नत्रयका करावणा, और अनुमतिका देणा योग्य नही है; इसवास्ते वैश्योंको जिनोपवीतमें एक अग्र. । शूद्रोंको तो ज्ञानदर्शनचारित्ररूप रत्नत्रयके करणेमें आपही अशक्त है तो करावणा और अनुमतिका देणा तो दूरही रहा. । तिनोंको अधम जाति होनेसें, निःसत्त्व होनेसें और अज्ञान होनेसें; इसवास्ते तिनोंको जिनाज्ञारूप उत्तरीयका धारण है। तिनसें अपरवणिगादिकोंको देवगुरु धर्मकी उपासनाके अवसरमें जिनाज्ञारूप उत्तरासंगमुद्रा है.॥ जिनोपवीतका स्वरूप यह है.॥ स्तनांतरमात्रको चौराशीगुणा करिये तब एकसूत्र होवे, तिसको त्रिगुणा करणा, तिसको भी त्रिगुणा करके वर्त्तन करणा (वटना), ऐसें एक तंतु हुआ; इसी रीतिसें दो तंतु और योजन करिये, तब तीनो तंतु मिलाके एक अग्र होवे है. । तहां ब्राह्मणको तीन अग्र, क्षत्रियको दो और वैश्योंको एक. । परमतमें तो ऐसा कथन है॥-

" कृते स्वर्णमयं सूत्रं त्रेतायां रौप्यमेव च ॥
द्वापरे ताम्रसूत्रं च कलौ कार्प्पासमिष्यति ॥ १ ॥

कृतयुगमें स्वर्णमयसूत्र, त्रेतायुगमें रूपेका, द्वापरयुगमें तांबेका और कलियुगमें कपासका यज्ञोपवीत. ॥ " परंतु जिनमतमें तो, सर्वदा ब्राह्मणोंको सौवर्णसूत्र, * और क्षत्रियवैश्योंको सदा कार्पाससूत्रही है. ॥ इतिजिनोपवीतयुक्तिः ॥

अथ उपनयनविधि कहते हैंः—उपनीयते वर्णक्रमारोहयुक्तिकरके प्राणीको पुष्टिको प्राप्त करिये, इत्युपनयनं. । श्रवण, धनिष्ठा, हस्त, मृगशिर, अश्विनी, रेवती, स्वाति, चित्रा, पुनर्वसू, । तथा च ।

---

* आवश्यकेत्वेवमुक्तं ॥ स च (भरतः) काकिणीरत्नेन तान् लांच्छितवान्—आदित्ययशसस्तु काकिणीरत्नं नासीत् सुवर्णमयानि यज्ञोपवीतानि कृतवान् । महायशःप्रभृतयस्तु केचन रूप्यमयानि केचित् विचित्रपट्टसूत्रमयानीत्येवं यज्ञोपवीतप्रसिद्धिः ॥

मृगशिर, रेवती, श्रवण, धनिष्ठा, हस्त स्वाति, चित्रा, पुष्य, अश्विनी, इन नक्षत्रोंमें मेखलाबंध, और मोक्ष करणा, आचार्यवर्य्य कहते हैं.। गर्भाधानसें वा जन्मसें आठमे वर्षमें ब्राह्मणोंको मौंजीबंध कथन करते हैं; क्षत्रियोंको इग्यारह (११) वर्षमें, और वैश्योंको बारमे वर्षमें. । वर्णाधिपके बलवान हुए उपनीतिक्रिया हितकारिणी होती है, अथवा सर्व वर्णोंको गुरु चंद्र सूर्य बलवान् हुए, हित हैं. । बृहस्पतिवार होवे, बृहस्पति बलवान् होवे, वा केंद्रगत होवे, तो, द्विजोंको उपनयन श्रेष्ठ है. और बृहस्पति तथा शुक्र नीच घरमें होवे, शत्रुके घरमें होवे, वा पराजित होवे तो, श्रवणविधीमें स्मृतिकर्म हीन होवे । लग्नमें बृहस्पति होवे, त्रिकोणमें शुक्र होवे, और शुक्रांशमें चंद्रमा होवे तो वेदवित् होवे; शुक्रसहित सूर्य लग्नमें शनिके अंशमें स्थित होवे, तदा प्रोज्झितविद्याशील कृतघ्न होवे. । केंद्रमें बृहस्पति होवे तो, स्वअनुष्ठानमें रक्त होवे, प्रवरमतियुत होवे. शुक्र होवे तो, विद्या सौख्य अर्थयुक्त होवे. बुध होवे तो, अध्यापक होवे, सूर्य होवे तो, राजाका सेवक होवे, मंगल होवे तो, शस्त्रवृत्तिवाला होवे. चंद्रमा होवे तो, वैश्यवृत्तिवाला होवे. शनि होवे तो, अंत्यजोंका सेवक होवे. । शनिके अंशमें मूर्खता उदय होवे, सूर्यके भागमें क्रूरपणा होवे, मंगलके अंशमें पापबुद्धि होवे, चंद्रांशमें अतिजडपणा होवे, बुधांश होवे तो पटुपणा होवे, गुरुशुक्रके भागमें सुज्ञपणा होवे. । सूर्यसहित बृहस्पति होवे तो निर्गुण होवे अर्थहीन होवे, मंगलसहित सूर्य होवे तो क्रूर होवे, बुधसहित होवे तो पटु होवे, शनिसहित होवे तो आलसु और निर्गुण होवे, शुक्र और चंद्रमासहित होवे तो बृहस्पतिवत् जाणना. । पूर्वोक्त निर्दोष नक्षत्रोंमें मंगलविना अन्यवारोंमें सुतिथिमें दिनशुद्धिमें दिनमें शुभग्रहयुक्त लग्नमें । विवाहवत् त्याज्य नक्षत्रदिनमासादिको वर्ज देवे. ग्रहनिर्मुक्त पांचमे लग्नमें व्रत आचरे. ॥

प्रथम यथासंपत्तिकरके उपनेय पुरुषको सात, नव, पांच वा तीन, दिनतक सतैल निषेक स्नान करावे तदपीछे लग्नदिनमें गृह्यगुरु, तिसके घरमें ब्राह्म मुहूर्त्तमें पौष्टिक करे. तदनंतर उपनेयके शिरपर शिखावर्जके वपन मुंडन करावे, पीछे वेदी स्थापन करे, तिसके मध्यमें वेदीचतुष्किका चौ-

कीरूप वेदी करणी, अर्थात् चौतडा करणा, वेदीप्रतिष्ठा विवाहाधिकारसें जाणनी. तिस वेदीचतुष्किकाके ऊपर समवसरणरूप चतुर्मुख जिनबिंब अर्थात् चौमुखा स्थापन करे, तिसको पूजके गुरु, जिसने सदृश श्वेतवस्त्र पहिना है, वस्त्रका उत्तरासंग करा है, अक्षत नालिकेर क्रमुक हाथमें लिये हैं, ऐसे उपनेयको समवसरणको तीन प्रदक्षिणा करवावे. । तदपीछे गुरु उपनेयको वामे पासे स्थापके, पश्चिमदिशाके सन्मुख जिसका मुख है, तिस जिनबिंबके सन्मुख बैठके प्रथम ऋषभ अर्हत् देवस्तोत्रयुक्त शक्रस्तव पढे. । फेर तीन प्रदक्षिणाकरके उत्तराभिमुख जिनबिंबके सन्मुख तैसेंही शक्रस्तव पढे; । ऐसेंही त्रिप्रदक्षिणांतरित पूर्वाभिमुख, दक्षिणाभिमुख, जिनबिंबोंके आगे भी शक्रस्तव पढे. मंगलगीतवाजंत्रादिकोंका तिसवखत विस्तार करणा. । तदपीछे तहां आचार्य उपाध्याय, साधु, साध्वी, श्रावक श्राविकारूप श्रीश्रमणसंघको एकत्र करे. तदपीछे प्रदक्षिणा शक्रस्तवपाठके अनंतर गृह्यगुरु, उपनयनके प्रारंभवास्ते वेदमंत्रका उच्चार करे. और उपनेय जो है, सो दूर्वाफलादिकरके हस्तपूर्ण करके जिन आगे हाथ जोडके अर्थात् अंजलिकरके खडा होके श्रवण करे. ॥

उपनयनारंभ वेदमंत्रो यथा ॥

"ॐअर्हं अर्हद्भ्योनमः। सिद्धेभ्योनमः । आचार्येभ्योनमः । उपाध्यायेभ्यो नमः । साधुभ्यो नमः । ज्ञानाय नमः । दर्शनाय नमः । चारित्राय नमः । संयमाय नमः । सत्याय नमः । शौचाय नमः । ब्रह्मचर्याय नमः। आकिंचन्याय नमः । तपसे नमः । शमाय नमः। मार्द्दवाय नमः। आर्ज्जवाय नमः । मुक्त्यै नमः । धर्म्माय नमः। संघाय नमः। सैद्धांतिकेभ्यो नमः । धर्म्मोपदेशकेभ्यो नमः । वादिलब्धिभ्यो नमः । अष्टाङ्गनिमित्तज्ञेभ्यो नमः । तपस्विभ्यो नमः । विद्याधरेभ्यो नमः । इहलोकसिद्धेभ्यो नमः । कविभ्यो नमः । लब्धिमद्भ्यो नमः । ब्रह्मचारिभ्यो नमः ।

निष्परिग्रहेभ्यो नमः । दयालुभ्यो नमः । सत्यवादिभ्यो नमः । निःस्पृहेभ्यो नमः । एतेभ्यो नमस्कृत्यायं प्राणी प्राप्तमनुष्यजन्मा प्रविशति वर्णक्रमं अर्हं ॐ ॥"

ऐसें वेदमंत्रका उच्चार करके फिर भी पूर्ववत् तीन २ प्रदक्षिणा करके चारों दिशामें युगादिदेव स्तवसंयुक्त शक्रस्तव पाठ करे। तिस दिनमें, जल जवान्न भोजन करके आचाम्लका प्रत्याख्यान उपनेयको करावे। तदपीछे उपनेयको वामे पासे स्थापके सर्वतीर्थोदकोंकरके अमृतामंत्र-करके कुशाग्रोंसें सिंचन करे।

तदनंतर परमेष्ठिमंत्र पढके

"नमोऽर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्व्वसाधुभ्यः"

ऐसा कहके, जिन प्रतिमाके आगे उपनेयको पूर्वाभिमुख बैठावे; तद-पीछे गृह्यगुरु, चंदनमंत्रकरके अभिमंत्रण करे. ॥

चंदनमंत्रो यथा ॥

"॥ॐ नमो भगवते,चंद्रप्रभजिनेंद्राय, शशांकहारगोक्षीरधवलाय, अनंतगुणाय, निर्म्मलगुणाय, भव्यजनप्रबोधनाय, अष्टकर्म्ममूलप्रकृतिसंशोधनाय, केवलालोकावलोकितसकललोकाय, जन्मजरामरणविनाशनाय सुमंगलाय, कृतमंगलाय, प्रसीद भगवन् इह चंदनेनामृताश्रवणं कुरु २ स्वाहा॥"

इस मंत्रकरके चंदनको मंत्रके हृदयमें जिनोपवीतरूप, कटिमें मेखलारूप और ललाटमें तिलकरूप, रेखाकरे, तदपीछे उपनेय "नमोस्तु २" ऐसें कहता हुआ, गुरुके चरणोंमें पडके खडा होके हाथ जोडके ऐसें कहे.।

"॥ भगवन् वर्णरहितोऽस्मि। आचाररहितोऽस्मि। मंत्ररहितोऽस्मि। गुणरहितोऽस्मि। धर्म्मरहितोऽस्मि। शौचरहितोऽस्मि। ब्रह्मरहितोऽस्मि। देवर्षिपित्रातिथिकर्म्मसु नियोजय मां ॥"

वाक्यकों वेद मानते हैं; शेष ईश्वर, ईश्वरस्तुति, ईश्वरस्वरूप और वेदांत अद्वितीय ब्रह्मकी प्रतिपादक श्रुतियां, यह सर्व ऋषियोंने पीछे प्रक्षेप करी हैं, ऐसें मानते हैं. जैन मतका शास्त्रभी पूर्वोक्त मीमांसक मतकी गवाही देता है यदुक्तं षड्दर्शनसमुच्चये श्रीहरिभद्रसूरिपादैः ॥

जैमिनीयाः पुनः प्राहुः, सर्वज्ञादिविशेषणः ॥
देवो न विद्यते कोपि, यस्य मानं वचो भवेत् ॥ १ ॥
तस्मादतींद्रियार्थानां, साक्षाद्द्रष्टुरभावतः ॥
नित्येभ्यो वेदवाक्येभ्यो, यथार्थत्वविनिर्णयः॥ २ ॥
अतएव पुरा कार्यो, वेदपाठः प्रयत्नतः ॥
ततो धर्मस्य जिज्ञासा, कर्त्तव्या धर्मसाधनी ॥ ३ ॥
नोदनालक्षणो धर्मो, नोदना तु क्रियांप्रति ॥
प्रवर्तकं वचः प्राहुः, स्वः कामोग्निं यजेद्यथा ॥ ४ ॥

भाषार्थः—जैमनीय पुनः कहते हैं कि, सर्वज्ञादि विशेषणवाला ऐसा कोइ देव नहीं है कि, जिसका वचन प्रमाण होवे ॥ १ ॥ तिस वास्ते अतींद्रिय अर्थोंके साक्षात् द्रष्टाके अभावसें नित्य ऐसें वेदवाक्योंसें यथावस्थित पदार्थत्वका विशेष निर्णय होता है ॥ २ ॥ इस वास्ते प्रथम प्रयत्नसें वेदपाठ करना, पीछे धर्मसाधन करनेवाली धर्मजिज्ञासा करनी ॥ ३ ॥ वेदवचनकृतनोदना, प्रेरणालक्षण धर्म; और नोदना क्रियाके प्रतिप्रवर्त्तकका वचन, जैसें स्वर्गका कामी अग्निका यजन करे ॥ ४ ॥

और जिन सूक्तोंसें ईश्वरका स्वरूप कथन करा है, सो भी प्रमाणयुक्तिसें बाधित है, सो स्वरूप थोडासा आगेकों लिख दिखावेंगे. और वेदोंकी उत्पत्ति जैनमतवाले जैसें मानते हैं, तैसें जैनतत्वादर्श नामक (संवत १९४० का छपा) पुस्तकके ५१० सें लेके ५२२ पृष्ठतक जाननी. ब्राह्मण लोक जिसतरें वेदकी संहिता उत्पन्न भई मानते हैं, तैसें महीधरकृत यजुर्वेदभाष्य, और अज्ञानतिमिरभास्कर ग्रंथसें जान लेनी. इस वास्ते वेद सर्वज्ञ अष्टादश दूषणरहित भगवंतके कथन करे हूए नहीं हैं; तो फेर ये

विलस्तप्रमाण पृथुल (चौडा) और तीन विलस्तप्रमाण दीर्घ (लंबा) कौपिन दोनों हाथोंमें लेके ॥

"॥ ॐ अर्हं आत्मन् देहिन् मतिज्ञानावरणेन श्रुतज्ञानावरणेन अवधिज्ञानावरणेन मनःपर्यायावरणेन केवलज्ञानावरणेन इंद्रियावरणेन चित्तावरणेन आवृतोऽसि तन्मुच्यतां तवावरणमनेनावरणेन अर्हं ॐ ॥"

इस वेदमंत्रको पढता हुआ, उपनेयके अंतःकक्षको कौपीन पहरावे। तदपीछे उपनेय 'नमोस्तु २' कहता हुआ, फिर भी गुरुके पगोंमें पडे। फिर तीन २ प्रदक्षिणा करके चारों दिशामें शक्रस्तवपाठ करे॥

तदनंतर लग्नवेलाके हुए गुरु, पूर्वोक्त जिनोपवीतको अपने हाथमें लेवे पीछे उपनेय फेर खडा होकर हाथ जोडके ऐसें कहे॥

"॥ भगवन् वर्णोज्झितोऽस्मि। ज्ञानोज्झितोस्मि। क्रियोज्झितोस्मि। तज्जिनोपवीतदानेन मां वर्णज्ञानक्रियासु समारोपय॥"

ऐसें कहके 'नमोस्तु २' कहता हुआ गृह्यगुरुके पगोंमें पडे गुरु फिर पूर्वोक्त उत्थापनमंत्रकरके तिसको उठाके खडा करे। तदपीछे गुरु दक्षिण हाथमें जिनोपवीत रखके॥

"॥ ॐ अर्हं नवब्रह्मगुप्तीः स्वकरकारणानुमतीर्धारयेः तदक्षयमस्तु ते व्रतं स्वपरतरणतारणसमर्थो भव अर्हं ॐ॥"

क्षत्रियको

"॥ करणकारणाभ्यां धारयेः स्वस्य तरणसमर्थो भव॥"

वैश्यको

"॥ करणेन धारयेः स्वस्य तरणसमर्थो भव॥"

शेषं पूर्ववत्॥

ऐसें कहकर फिर "नमोस्तु २" ऐसें कहता हुआ, गुरुके चरणोंमें पडे; गुरु भी इस मंत्रको पढके उपनेयको चोटीसें पकडके खडा करे। मंत्रो यथा ॥

"॥ ॐ अर्हं देहिन् निमग्नोऽसि भवार्णवे तत्कर्षति त्वां भगवतोऽर्हतः प्रवचनैकदेशरज्जुना गुरुस्तदुत्तिष्ठ प्रवचनादानाय श्रद्धाहि अर्हं ॐ ॥"

ऐसें पढके उपनेयको खडा करके अर्हत्प्रतिमाके आगे पूर्वाभिमुख खडा करे. तदपीछे गृह्यगुरु, त्रितंतुवर्त्तित—तीन तंतुकी वुणी, एकाशीति (८१) हाथ प्रमाण, मुंजकी मेखलाको अपने दोनों हाथोंमें लेके, इस वेदमंत्रको पढे. ॥

"॥ ॐ अर्हं आत्मन् देहिन् ज्ञानावरणेन बद्धोऽसि दर्शनावरणेन बद्धोऽसि। वेदनीयेन बद्धोऽसि। मोहनीयेन बद्धोऽसि। आयुषा बद्धोऽसि। नाम्ना बद्धोऽसि। गोत्रेण बद्धोऽसि। अंतरायेण बद्धोऽसि। कर्माष्टकेन प्रकृतिस्थितिरसप्रदेशैश्च बद्धोऽसि। तन्मोचयति त्वां भगवतोर्हतः प्रवचनचेतना तद्बुध्यस्व मामुहः मुच्यतां तव कर्म्मबंधनमनेन मेखलाबंधेन अर्हं ॐ ॥"

ऐसा पढके उपनेयकी कटिमें नवगुणी मेखलाको बांधे। तदपीछे उपनेय 'नमोस्तु २' कहता हुआ, गृह्यगुरुके पगोंमें पडे। मेखलाको एकाशी (८१) हाथपणा विप्रको एकाशीतंतुगर्भ जिनोपवीत सूचनकेवास्ते, क्षत्रियको चौपन (५४) हाथ तावत्प्रमाणतंतुगर्भ जिनोपवीत सूचनकेवास्ते, और वैश्यको सत्ताइस (२७) हाथ तद्गर्भसूत्रसूचनकेवास्ते है। ब्राह्मणको नवगुणी क्षत्रियको छीगुणी, और वैश्यको त्रिगुणी, मेखला बांधनी। तथा मौंजी, कौपीन, जिनोपवीत, इनोंका पूजन, गीतादिमंगल, निशाजागरण, तिसके पूर्वदिनकी रात्रिमें करणा। मेखलाबंधनके पीछे फेर गृह्यगुरु, उपनेयके

तेष्वप्ययं परतरः प्रथितः पुराऽपि ।
लब्ध्वैनमेव हि गताः शिवमत्र लोकाः ॥ ४ ॥
जग्मुर्जिनास्तदपवर्गपदं यदेव ।
विश्वं वराकमिदमत्र कथं विनास्मान् ॥
एतद्विलोक्य भुवनोद्धरणाय धीरैः ।
मंत्रात्मकं निजवपुर्निहितं तदाऽत्र ॥ ५ ॥
इंदुर्दिवाकरतया रविरिंदुरूपः ।
पातालमंबरमिलासुरलोक एव ॥
किंजल्पितेन बहुना भुवनत्रयेऽपि ।
तन्नास्ति यन्न विषमं च समं च तस्मात् ॥ ६ ॥
सिद्धांतोदधिनिर्म्मथान्नवनीतमिवोद्धृतम् ॥
परमेष्ठिमहामंत्रं धारयेत् हृदि सर्वदा ॥ ७ ॥
सर्वपातकहर्त्तारं सर्ववांछितदायकम् ॥
मोक्षारोहणसोपाने मंत्रे प्राप्नोति पुण्यवान् ॥ ८ ॥
धार्योयं भवता यत्नात् न देयो यस्य कस्यचित् ॥
अज्ञानेषु श्रावितोयं शपत्येव न संशयः ॥ ९ ॥
* न स्मर्त्तव्योऽपवित्रेण न जने नाऽन्यसंश्रये ॥
नाऽविनीतेन नो दीर्घशब्देनाऽपि कदाचन ॥ १० ॥
न बालानां नाऽशुचीनां नाऽधर्म्माणां न दुर्द्दशाम् ॥
+ न प्लुतानां न दुष्टानां दुर्जातीनां न कुत्रचित् ॥ ११ ॥
अनेन मंत्रराजेन भूयास्त्वं विश्वपूजितः ॥
प्राणांतेऽपि परित्यागमस्य कुर्यान्न कुत्रचित् ॥ १२ ॥

---

* न स्मर्त्तव्योपचित्तेन न शठेनान्यसंश्रये इति पुस्तकांतरे ॥ तथा अन्येषु श्राद्धदिनकृतश्राद्धविधिकौमुदीपंचाशकादिषु शास्त्रेष्वेवमुक्तं यथा सा काप्यवस्था नास्ति यस्यां नमस्कारो न स्मर्त्तव्य इति ॥
+ नाऽपूतानां न दुष्टानां दुर्ज्जनानां न कुत्राचित् । इति पुस्तकांतरे ॥

इस वेदमंत्रकरके पंच परमेष्ठिमंत्र पढता हुआ उपनेयके कंठमें जिनोपवीत स्थापन करे। पीछे उपनेय तीन प्रदक्षिणा करके 'नमोस्तु २' कहता हुआ, गुरुको नमस्कार करे. गुरु भी " निस्तारगपारगो भव " ऐसा आशीर्वाद कहे। तदपीछे गृह्यगुरु पूर्वाभिमुख होके, जिनप्रतिमाके आगे शिष्यको वामेपासे बैठाके, सर्व जगत्में सार, महा आगमरूप क्षीरोदधिका माखण, सर्ववांछितदायक, कल्पद्रुम कामधेनु चिंतामणिके तिरस्कारका हेतु, निमेषमात्र स्मरण करनेसें मोक्षका दाता, ऐसें पंचपरमेष्ठिमंत्रको गंधपुष्पपूजित शिष्यके दक्षिणकानमें तीनवार सुणावे पीछे तीनवार तिसके मुखसें उच्चारण करावे ॥

यथा ॥

" ॥ नमो अरिहंताणं । नमो सिद्धाणं । नमो आयरियाणं ।
नमो उवज्झायाणं । नमो लोए सव्वसाहूणं ॥ "

पीछे उपनेयको मंत्रका प्रभाव सुणावे. ॥

तद्यथा ॥

सोलससु अरकरेसु इक्किक्कं अक्खरं जगुज्जोअं ॥
भवसयसहस्स महणो जम्मि ठिउ पंच नवकारो ॥ १ ॥

थंभेइ जलं जलणं चिंतियमत्तो इ पंच नवकारो ॥
अरिमारिचोरराउलघोरुवसग्गं पणासेइ ॥ २ ॥

एकत्र पंचगुरुमंत्रपदाक्षराणि ।
विश्वत्रयं पुनरनंतगुणं परत्र ॥
यो धारयेत्किल तुलानुगतं ततोऽपि ।
वंदे महागुरुतरं परमेष्ठिमंत्रम् ॥ ३ ।

ये केचनापि सुखमाघरका अनंता ।
उत्सर्पिणीप्रभृतयः प्रययुर्विवर्त्ताः ॥

पवित्रिका परिधापनमंत्रो यथा ॥

"पवित्रं दुर्लभं लोके सुरासुरनृवल्लभम् ॥
सुवर्णं हंति पापानि मालिन्यं च न संशयः ॥ १ ॥"

तदपीछे उपनीत, मुखसें पंचपरमेष्ठिमंत्र पढता हुआ, गंध पुष्प अक्षत धूप दीप नैवेद्यकरके चारों दिशासें जिनप्रतिमाको पूजे। तदपीछे जिनप्रतिमाको प्रदक्षिणाकरके और गुरुको प्रदक्षिणा करके 'नमोस्तु २' कहता हुआ, हाथ जोडके ऐसें कहे ॥ "भगवन् उपनीतोहं" गुरु कहे "सुष्ठूपनीतो भव।" फेर उपनीत 'नमोस्तु' कहता हुआ नमस्कार करके कहे। "कृतो मे व्रतबंधः।" गुरु कहे। "सुकृतोऽस्तु।" फेर 'नमोस्तु' कहके नमस्कार करके शिष्य कहे "। भगवन् जातो मे व्रतबंधः।" गुरु कहे "। सुजातोऽस्तु।" फेर नमस्कार करके शिष्य कहे। "जातोऽहं ब्राह्मणः। क्षत्रियो वा। वैश्यो वा।" गुरु कहे। "दृढव्रतो भव। दृढसम्यक्त्वो भव।" फेर शिष्य नमस्कार करके कहे। "भगवन् यदि त्वया कृतो ब्राह्मणोऽहं तदादिश कृत्यं।" गुरु कहे "अर्हद्गिरा दिशामि।" फेर नमस्कार करके शिष्य कहे। "भगवन् नवब्रह्मगुप्ति गर्भं रत्नत्रयंममादिष्टं।" गुरु कहे। "आदिष्टं। फेर नमस्कार करके शिष्य। "भगवन् नवब्रह्मगुप्तिगर्भं रत्नत्रयं मम समादिश।" गुरु कहे। "समादिशामि।" फेर नमस्कार करके शिष्य कहे। "भगवन् नवब्रह्मगुप्तिगर्भं रत्नत्रयं मम समादिष्टं।" गुरु कहे। "समादिष्टं।" फेर नमस्कार करके शिष्य कहे। "भगवन् नवब्रह्मगुप्तिगर्भं रत्नत्रयं ममानुजानीहि।" गुरु कहे। "अनुजानामि" फेर नमस्कार करके शिष्य कहे। "भगवन् नवब्रह्मगुप्तिगर्भं रत्नत्रयं ममानुज्ञातं।" गुरु कहे। "अनुज्ञातं"। फेर नमस्कार करके शिष्य कहे। "भगवन् नवब्रह्मगुप्तिगर्भं रत्नत्रयं मया स्वयं करणीयं।" गुरु कहे। "करणीयं" फेर नमस्कार करके शिष्य कहे। "भगवन् नवब्रह्मगुप्तिगर्भं रत्नत्रयं मया अन्यैः कारयितव्यं।" गुरु कहे। "कारयितव्यं।" फेर नमस्कार करके शिष्य कहे। "भगवन् नवब्रह्मगुप्तिगर्भं रत्नत्रयं कुर्वंतोऽन्ये मया अनु-

गुरुत्यागे भवेद्दुःखं मंत्रत्यागे दरिद्रता ॥
गुरुमंत्रपरित्यागे सिद्धोऽपि नरकं व्रजेत् ॥ १३ ॥
इति ज्ञात्वा सुगृहीतं कुर्या मंत्रममुं सदा ॥
सेत्स्यंति सर्वकार्याणि तवास्मान्मंत्रतो ध्रुवम् ॥ १४ ॥

गुरुने ऐसे शिक्षा दिया हुआ उपनेय तीन प्रदक्षिणा करके "नमोस्तु २" ऐसें कहता हुआ, गुरुको नमस्कार करे. पीछे गुरुको स्वर्णका जिनोपवीत, श्वेत वस्त्र रेशमी, और स्वर्णमौंजी स्वसंपदानुसारें देवे. और सर्वसंघको भी तांबूल वस्त्रादि देवे. ॥ इत्युपनयने व्रतबंधविधिः ॥

अथ व्रतादेशविधि लिखते हैं. ॥ तिसही अवसरमें, तिसही संघके संगममें, तिसही गीतवाजंत्रादि उत्सवसें, तिसही वेदचतुष्किकामें, प्रतिमास्थापन संयोगमें, व्रतादेशका आरंभ करे. तिसका यह क्रम है. । गृह्यगुरु, उपनीत पुरुषके कार्पास रेशमी अंतरीय उत्तरीय वस्त्र दूर करके मौंजी जिनोपवीत कौपीन येह वस्तुयों तिसकी देहमें तैसेंही स्थापके, तिसके ऊपर कृष्णसाराजिन (कालामृगचर्म) वा, वृक्षके वल्कलका वस्त्र पहिरावे. । हाथमें पलाशका दंडा देवे. और इस मंत्रको पढे.

" ॥ ॐ अर्हँ ब्रह्मचार्यसि । ब्रह्मचारिवेषोऽसि अवधिब्रह्मचर्योसि । धृतब्रह्मचर्योसि । धृताजिनदंडोसि । बुद्धोऽसि । प्रबुद्धोऽसि । धृतसम्यक्त्वोऽसि । दृढसम्यक्त्वोसि । पुमानसि । सर्वपूज्योऽसि । तदवधिब्रह्मव्रतं आगुरुनिदेशं धारयेः अर्हँ ॐ ॥ "

ऐसें पढके व्याघ्रचर्ममय आसनके ऊपर, वा कल्पित काष्ठमय आसनके उपर उपनीतकों बिठलावे. तिसके दक्षिण हाथकी प्रदेशिनी अंगुलीमें दर्भसहित कांचनमयी षोडश १६ मासे प्रमाण (पांच गुंजाका एक मासा जाणना) पवित्रिका मुद्रा पहरावे. ।

स्वज्ञातेरपि मिथ्यात्ववासितस्य पलाशिनः ॥
न भोक्तव्यं गृहे प्रायः स्वयंपाकेन भोजनम् ॥ ९ ॥
आमान्नमपि नीचानां न ग्राह्यं दानमंजसा ॥
भ्रमता नगरे प्रायः कार्यः स्पर्शो न केनचित् ॥ १० ॥
उपवीतं स्वर्णमुद्रां नांतरीयमपि त्यजेः ॥
कारणांतरमुत्सृज्य नोष्णीषं शिरसि व्यधाः ॥ ११ ॥
धर्म्मोपदेशः प्रायेण दातव्यः सर्वदेहिनाम् ॥
व्रतारोपं परित्यज्य संस्कारान् गृहमेधिनाम् ॥ १२ ॥
निर्ग्रंथगुर्वनुज्ञातः कुर्याः पंचदशापि हि ॥
शांतिकं पौष्टिकं चैव प्रतिष्ठामर्हदादिषु ॥ १३ ॥
निर्ग्रंथानुज्ञया कुर्याः प्रत्याख्यानं च कारयेः ॥
धार्यं च दृढसम्यक्त्वं मिथ्याशास्त्रं विवर्ज्जयेः ॥ १४ ॥
नानार्यदेशे गंतव्यं त्रिशुद्ध्याशौचमाचरेः ॥
पालनीयस्त्वया वत्स व्रतादेशो भवावधिः ॥ १५ ॥

॥ इतिब्राह्मणव्रतादेशः ॥

[भाषार्थः] परमेष्टिमहामंत्र सदा हृदयमें धारण करना, निर्ग्रंथ मुनींद्रोंकी नित्य उपासना करनी। तीन कालमें अरिहंतकी पूजा करनी, तीनवार सामायिक करनी, शक्रस्तवसें सातवार चैत्यवंदना करनी। छाने हुए शुद्ध जलसें त्रिकालमें वा, एककालमें स्नान करना, मदिरा, मांस, मधु, माखण * पांच जातिके उडुंबरफल, आमगोरससंयुक्त अर्थात् कच्चे विना गरम करे गोरस दूध दही छाछके साथ द्विदल अन्न, जिसपर नीली फूली आजावे सो अन्न जीवोत्पत्तिसंयुक्त संधान अर्थात् तीन दिन

* तक्रमें पडा हुआ माखण औषधादिकमें ग्राह्य होनेसें सूत्रकारने लिखा नही है, तथापि तक्रनिर्गत अंतर्मुहूर्त्तानंतर अभक्ष्य ही जाणना ॥

ज्ञातव्याः।" गुरु कहे।" अनुज्ञातव्याः" क्षत्रियको यह विशेष है 'भगवन् अहं क्षत्रियो जातः' आदेश समादेश दोनों कहने, अनुज्ञा न कहनी. करणकारणमें 'कर्त्तव्यं' 'कारयितव्यं' ऐसें कहना, 'अनुज्ञातव्यं' ऐसे न कहना.। और वैश्यको आदेश ही कहना, समादेश अनुज्ञा यह दोनों न कहने.। 'कर्त्तव्यं' कहना, 'कारयितव्यं' 'अनुज्ञातव्यं' यह न कहने.। तदपीछे उपनीत हाथ जोडके कहे.। 'हे भगवन्! आदिश्यतां व्रतादेशः।' तब गुरु आदेश करे अर्थात् व्रतादेश कथन करे.। तहां प्रथम ब्राह्मणप्रति व्रतादेश कहते हैं.

यथा. ॥ ॥ मूलम् ॥

परमेष्ठिमहामंत्रो विधेयो हृदये सदा ॥
निर्ग्रंथानां मुनींद्राणां कार्यं नित्यमुपासनम् ॥ १ ॥
त्रिकालमर्हत्पूजा च सामायिकमपि त्रिधा ॥
शक्रस्तवैस्सप्तवेलं वंदनीया जिनोत्तमाः ॥ २ ॥
त्रिकालमेककालं वा स्नानं पूतजलैरपि ॥
मद्यं मांसं तथा क्षौद्रं तथोदुंबरपंचकम् ॥ ३ ॥
आमगोरससंपृक्तं द्विदलं पुष्पितौदनम् ॥
संधानमपि संसक्तं तथा वै निशि भोजनम् ॥ ४ ॥
शूद्रान्नं चैव नैवेद्यं नाश्नीयान्मरणेऽपि हि॥
प्रजार्थं गृहवासेऽपि संभोगो न तु कामतः ॥ ५ ॥
आर्यवेदचतुष्कं च पठनीयं यथाविधि ॥
कर्षणं पाशुपाल्यं च सेवावृत्तिं विवर्जयेः ॥ ६ ॥
सत्यं वचः प्राणिरक्षामन्यस्त्रीधनवर्जनम् ॥
कषायविषयत्यागं विदध्याः शौचभागपि ॥ ७ ॥
प्रायः क्षत्रियवैश्यानां न भोक्तव्यं गृहे त्वया ॥
ब्राह्मणानामार्हतानां भोजनं युज्यते गृहे ॥ ८ ॥

पुस्तक प्राचीन हुए वा नवीन हुए तो इनसें कुछभी सत्य मोक्षमार्गकी सिद्धि नही होती है. यह किंचित्मात्र ग्रंथसमीक्षाविषयक लिखा, इसके आगे देवविषयक स्वरूप लिखा जायगा, जोकि ध्यान देकर वाचनेके योग्य है.

इति श्रीमद्विजयानन्दसूरिकृते तत्वनिर्णयप्रासादे ग्रंथसमीक्षाविषये प्रथमः स्तंभः ॥ १ ॥

अथ द्वितीयस्तम्भप्रारम्भः

अब इस द्वितीय स्तंभमें थोडासा देवविषयक लिखते हैं. क्योंकि, कोइ लोक कहते हैं कि, जैनमतवाले ब्रह्मा, महादेव और विष्णुकों नही मानते हैं. इस वास्ते जैनमत प्रमाणिक नही है; परंतु यह कहना उन मित्र लोकोंको अच्छा नही है. क्योंकि, असली ब्रह्मा, महादेव और विष्णु जो है, तिनकों तो जैनमतवालेही मानते हैं. और कल्पित जो ब्रह्मा, महादेव, विष्णु है तिनकों अन्य मतवाले मानते हैं.

पूर्वपक्षः—जैनमतवाले जैसें ब्रह्मा, महादेव और विष्णुकों मानते हैं, तिनका स्वरूप लिखो; जिससें हरेक वाचकवर्गकों मालुम हो जावे कि, जैनमतवाले ऐसे ब्रह्मा, महादेव और विष्णुकों मानते हैं.

उत्तरपक्षः—हे प्रियवर! मेरी इतनी बुद्धि वा शक्ति नही है, जो मैं यथार्थ ब्रह्मा, महादेव और विष्णुका पूरेपूरा स्वरूप लिख सकूं. तोभी पूर्वाचार्योंके प्रसादसे किंचित्मात्र लिखता हूं; जिसको ध्यान देके पढनेसें मालुम होगा कि, ब्रह्मा, महादेव और विष्णु ऐसे होते हैं.

प्रशांतं दर्शनं यस्य सर्वभूताभयप्रदं ॥
मांगल्यं च प्रशस्तं च शिवस्तेन विभाव्यते ॥ १ ॥

भाषार्थः—जिस महादेवका अथवा तिसकी प्रतिमाका दर्शन प्रशांत है, दर्शन करनेवालेके मनकों प्रशांत करनेका हेतु होनेसें प्रशांत दर्शन

उपरांतका आचार, रात्रिभोजन, शूद्रका अन्न, देवके आगे चढा नैवेद्य इन पूर्वोक्त वस्तुयोंको मरणांतमें भी न खाना । संतानोत्पत्तिकेवास्ते गृहवासमें स्त्रीसें संभोग करना न तु कामासक्त होके। चारों आर्यवेद विधिसें पढने, खेती, पशुपालपणा और सेवावृत्ति (नौकरी) येह नही करने। शुचिमान् ऐसे तैनें सत्य वचन बोलना, प्राणिकी रक्षा करनी, अन्य स्त्री और अन्य धन येह वर्जने, कषाय विषयको त्यागने, प्रायः क्षत्रिय और वैश्योंके घरमें तैनें भोजन न करना, आर्हत् ब्राह्मणोंके घरमें भोजन करना तुझको योग्य है । अपनी ज्ञातिका जो मिथ्यात्ववासित होवे, और मांसाहारी होवे तिसके घरमें भी भोजन नही करणा। प्रायः आपही पकाके भोजन करना। कच्चे अन्नका भी दान नीचोंका न ग्रहण करणा, नगरमें भ्रमण करतां किसीका भी प्रायः स्पर्श न करना। उपवीत, स्वर्णमुद्रा और अंतरीय, इनको त्याग न करने. कारणांतरको वर्जके शिरके ऊपर उष्णीष धारण न करना। प्रायः सर्व मनुष्योंको धर्मोपदेश देना, व्रतारोपको वर्जके निर्ग्रंथ गुरुकी आज्ञासें पंचदश १५ संस्कार गृहस्थोंको करने, तथा शांतिक, पौष्टिक, जिनप्रतिमाकी प्रतिष्ठादि करावने। निर्ग्रंथकी आज्ञासें प्रत्याख्यान करना, और अन्यको करावना; सम्यक्त्वको दृढ धारण करना, मिथ्याशास्त्रकी श्रद्धा वर्जनी। अनार्य देशमें जाना नही, तीनों शुद्धियां करके शौच आचरण करना; हे वत्स! तैनें पूर्वोक्त व्रतादेश जबतक संसारमें रहे तबतक पालना ॥ १५॥ इतिब्राह्मणव्रतादेशः॥

अथक्षत्रियव्रतादेशः ॥

॥ मूलम् ॥

परमेष्ठिमहामंत्रः स्मरणीयो निरंतरम् ॥
शक्रस्तवैस्त्रिकालं च वंदनीया जिनेश्वराः ॥ १ ॥
मद्यं मांसं मधु तथा संधानोदुंबरादि च ॥
निशि भोजनमेतानि वर्जयेदतियत्नतः ॥ २ ॥
दुष्टनिग्रहयुद्धादिवर्जयित्वा वधोंगिनाम् ॥
न विधेयः स्थूलमृषावादस्त्यक्तव्य एव च ॥ ३ ॥

परनारीं परधनं त्यजेदन्यविकत्थनम् ॥
युक्त्यासाधूपासनं च द्वादशव्रतपालनम् ॥ ४ ॥
विक्रमस्याविरोधेन विधेयं जिनपूजनम् ॥
धारणं चित्तयत्नेन स्वोपवीतांतरीययोः ॥ ५ ॥
लिंगिनामन्यविप्राणामन्यदेवालयेष्वपि ॥
प्रणामदानपूजादि विधेयं व्यवहारतः ॥ ६ ॥
सांसारिकं सर्वकर्म्म धर्मकर्म्मापि कारयेत् ॥
जैनविप्रैश्च निर्ग्रंथैर्दृढसम्यक्त्ववासितः ॥ ७ ॥
रणे शत्रुसमाकीर्णे धार्यो वीररसो हृदि ॥
युद्धे मृत्युभयं नैव विधेयं सर्वथापि हि ॥ ८ ॥
गोब्राह्मणार्थे देवार्थे गुरुमित्रार्थ एव च ॥
स्वदेशभंगे युद्धेत्र सोढव्यो मृत्युरप्यलम् ॥ ९ ॥
ब्राह्मणक्षत्रियोर्नैव क्रियाभेदोस्ति कश्चन ॥
विहायान्यव्रतानुज्ञाविद्यावृत्तिप्रतिग्रहान् ॥ १० ॥
दुष्टनिग्रहणं युक्तं लोभं भूमिप्रतापयोः ॥
ब्राह्मणव्यतिरिक्तं च क्षात्रियोदानमाचरेत् ॥ ११ ॥

॥ इतिक्षात्रियव्रतादेशः ॥

अथ क्षत्रियव्रतादेश कहते हैं. ॥ परमेष्ठिमहामंत्र निरंतर स्मरण करना शक्रस्तवोंकरके त्रिकाल जिनेश्वरको वंदन करना. । मद्य, मांस, मधु, संधान, पांच उदुंवरादि, आदिशब्दसें आमगोरससंयुक्त द्विदल, पुष्पितौदन, ग्रहण करना, और रात्रिभोजन, इनको यत्नसें वर्जे । दुष्टका निग्रह करना, और युद्धादि वर्जके प्राणियोंका वध न करना, स्थूलमृषावादत्याग करना, न वोलना इत्यर्थः। परस्त्रीका और परधनका त्याग करना; परकी निंदाका त्याग करे, युक्तिसें साधुयोंकी उपासना करे, और वारां व्रत पालन करे। अपनी शक्ति अनुसार जिनपूजन करना चित्तयत्नसें

अर्थात् उपयोगसें स्वउपवीत, और अंतरीयको धारण करना। लिंगियोंको, अन्य ब्राह्मणोंको, और अन्यदेवालयोंमें भी, प्रणाम दान पूजादि काम पडे तो, लोकव्यवहारसें करने। संसारिक सर्व कर्म जैनब्राह्मणों और धर्म कर्म निर्ग्रंथों करके करवावे. दृढसम्यक्त्वकी वासनावाला होवे। शत्रुयोंकरके समाकीर्ण रणमें हृदयके विषे वीररस धारण करना, युद्धमें मृत्युका भय सर्वथा नही करना। गौ ब्राह्मणके अर्थे, देवके अर्थे, गुरु और मित्रके अर्थे, स्वदेशके भंग होते, और युद्धमें, मृत्यु भी सहन करना योग्य है। ब्राह्मण और क्षात्रियकी क्रियामें कुछ भी भेद नही है, परं अन्यको व्रतअनुज्ञा देनी, विद्यावृत्ति प्रतिग्रह (स्वीकार-दान) इनको वर्जके दुष्टोंका निग्रह करना योग्य है, भूमि और प्रतापका लोभ करना, ब्राह्मणसें व्यतिरिक्त क्षत्रिय दान आचरण करे॥ ११॥ इति क्षत्रियव्रतादेशः॥

अथ वैश्यव्रतादेशः॥

॥ मूलम्म्॥

त्रिकालमर्हत्पूजा च सप्तवेलं जिनस्तवः॥
परमेष्ठिस्मृतिश्चैव निर्ग्रंथगुरुसेवनम्॥ १॥
आवश्यकं द्विकालं च द्वादशव्रतपालनम्॥
तपोविधिर्गृहस्थार्हो धर्मश्रवणमुत्तमम्॥ २॥
परनिंदावर्जनं च सर्वत्राप्युचितक्रमः॥
वाणिज्यपाशुपाल्याभ्यां कर्षणेनोपजीवनम्॥ ३॥
सम्यक्त्वस्यापरित्यागः प्राणनाशेपि सर्वथा॥
दानं मुनिभ्य आहारपात्राच्छादनसद्मनाम्॥ ४॥
कर्म्मादानविनिर्मुक्तं वाणिज्यं सर्वमुत्तमम्॥
उपनीतेन वैश्येन कर्त्तव्यमिति यत्नतः॥ ५॥

॥ इतिवैश्यव्रतादेशः॥

अथ वैश्यव्रतादेश कहते हैं॥ त्रिकाल अर्हत्पूजा करनी, सातवार जिनस्तव चैत्यवंदन करना, पंचपरमेष्ठिमंत्रका स्मरण करना, निर्ग्रंथ गुरुकी सेवा करनी.। दो कालमें (प्रातः कालमें और सायं कालमें) आवश्यक (प्रतिक्रमणादि) करना. बारां व्रत पालने, गृहस्थोचित तपोविधि करना, उत्तम धर्म श्रवण करना, परकी निंदा वर्जनी, सर्वत्र उचित काम करना, वाणिज्य, पशुपालन और खेती करके आजीविका करनी.। सर्वथाप्रकारे प्राणोंका नाश होवे तो भी, सम्यक्त्व नही त्यागना; मुनियोंको आहार, पात्र, वस्त्र, मकान (उपाश्रय) का दान करना.। कर्मादानसें रहित सर्व उत्तम वाणिज्य (व्यापार) करना, उपनीत वैश्यको ये पूर्वोक्त यत्नसें करणे योग्य है.॥ इतिवैश्यव्रतादेशः॥

अथ चातुर्वर्ण्यस्य समानो व्रतादेशः॥

॥ मूलम्॥

निजपूज्यगुरुप्रोक्तं देवधर्म्मादिपालनम्॥
देवार्चनं साधुपूजा प्रणामोविप्रलिंगिषु॥ १॥
धनार्जनं च न्यायेन परनिंदाविवर्जनम्॥
अवर्णवादो न क्वापि राजादिषु विशेषतः॥ २॥
स्वसत्त्वस्यापरित्यागो दानं वित्तानुसारतः॥
आयोचितो व्ययश्चैव काले काले च भोजनम्॥ ३॥
न वासोऽल्पजले देशे नदीगुरुविवर्जिते॥
न विश्वासो नरेन्द्राणां नागरीयनियोगिनाम्॥ ४॥
नारीणां च नदीनां च लोभिनां पूर्ववैरिणाम्॥
कार्यं विना स्थावराणामहिंसा देहिनामपि॥ ५॥
नासत्याहितवाक् चैव विवादो गुरुभिर्न च॥
मातापित्रोर्गुरोश्चैव माननं परतत्त्ववत्॥ ६॥

शुभशास्त्राकर्णनं च तथा नाऽभक्ष्यभक्षणम् ॥
अत्याज्यानां न च त्यागोप्यऽघात्यानामघातनम् ॥ ७ ॥
अतिथौ च तथा पात्रे दीने दानं यथाविधि ॥
दरिद्राणां तथांधानामापद्धारभृतामपि ॥ ८ ॥
हीनाङ्गानां विकलानां नोपहासः कदाचन ॥
समुत्पन्नक्षुत्पिपासाघृणाक्रोधादिगोपनम् ॥ ९ ॥
अरिषड्वर्गविजयः पक्षपातो गुणेषु च ॥
देशाचाराऽऽचरणं च भयं पापापवादयोः ॥ १० ॥
उद्वाहः सदृशाचारैः समजात्यन्यगोत्रजैः ॥
त्रिवर्गसाधनं नित्यमन्योन्याप्रतिबंधतः ॥ ११ ॥
परिज्ञानं स्वपरयोर्देशकालादिचिंतनम् ॥
सौजन्यं दीर्घदर्शित्वं कृतज्ञत्वं सलज्जता ॥ १२ ॥
परोपकारकरणं परपीडनवर्जनम् ॥
पराक्रमः परिभवे सर्वत्र क्षांतिरन्यदा ॥ १३ ॥
जलाशयश्मशानानां तथा दैवतसद्मनाम् ॥
निद्राहाररतादीनां संध्यासु परिवर्जनम् ॥ १४ ॥
प्रवेशोल्लंघनं चैव तटे शयनमेव च ॥
कूपस्य वर्जनं नद्यालंघनं तरणीं विना ॥ १५ ॥
गुर्वासनादिशय्यासु तालवृक्षे कुभूमिषु ॥
दुर्गोष्ठिषु कुकार्येषु सदैवासनवर्जनम् ॥ १६ ॥
न लंघनं च गर्त्तादेर्नदुष्टस्वामिसेवनम् ॥
न चतुर्थीदुनभस्त्रीशक्रचापविलोकनम् ॥ १७ ॥
हस्त्यश्वनखिनां चापवादिनां दूरवर्जनम् ॥
दिवासंभोगकरणं वृक्षस्योपासनं निशि ॥ १८ ॥

कलहे तत्समीपं च वर्जनीयं निरंतरम् ॥
देशकालविरुद्धं च भोज्यं कृत्यं गमागमौ ॥ १९ ॥
भाषितं व्यय आयश्च कर्त्तव्यानि न कर्हिचित् ॥
चातुर्वर्ण्यस्य सर्वस्य व्रतादेशोयमुत्तमः ॥ २० ॥

इतिचातुर्वर्ण्यस्यसमानोव्रतादेशः ॥

अथ चारों वर्णोंका समान व्रतादेश कहते हैं. ॥ अपने पूज्य गुरुके कहे देवधर्मादिका पालना, देवपूजा करनी, साधुकी यथायोग्य पूजा करनी, ब्राह्मण और लिंगधारीको प्रणाम करना. । न्यायसें धन उपार्जन करना. परकी निंदा वर्जनी, किसीका भी अवर्णवाद न बोलना, राजादिविषयक तो विशेषसें अवर्णवाद न बोलना. । अपने सत्वको छोडना नही, धनके अनुसार दान देना, लाभानुसार खरच करना, भोजनके कालमें भोजन करना. । थोडे जलवाले देशमें वसना नही, नदी और धर्मगुरुवर्जित देशमें भी नही वसना. । राजा, राज्याधिकारी, स्त्री, नदी, लोभी, पूर्ववैरी, इनोंका विश्वास नही करना. । कार्यविना स्थावर जीवोंकी भी हिंसा नही करनी. । असत्य अहितकारि वचन नही बोलना, गुरुओं (वडों) के साथ विवाद नही करना. माता, पिता और गुरु, इनको उत्कृष्ट तत्त्वकीतरें मान सत्कार करना. । शुभ अष्टादश दूषणरहित सर्वज्ञोक्त शास्त्रका श्रवण करना; अभक्ष्य (नही खाने योग्य) का भक्षण नही करना; जे त्यागने योग्य नही है, उनका त्याग नही करना; जे मारणे योग्य नही है, तिनको मारणा नही. अतिथि, सुपात्र, और दीन, इनको यथाविधि यथायोग्य दान देना; दरिद्र, अंधे, दुःखी, इनको भी यथाशक्ति दान देना. । हीन अंगवालोंको, और विकलोंको कदापि हसना नहीं. । भूख, तृषा, घृणा, क्रोधादि उत्पन्न हुए भी, गोपन करने. । षट् (६) अरिवर्गका विजय करना, गुणोंमें पक्षपात करना, देशाचार आचरण करना, पाप और अपवादका भय करना. । सदृश आचारवाले, समजाति, और अन्य गोत्रजोंके साथ विवाह करना; धर्म अर्थ कामको निरंतर परस्पर अप्रतिबंधसें साधन करना. । अपने और परायेका ज्ञान

करना, देशकालादिका चिंतन करना, सौजन्य धारण करना, दीर्घदर्शी होना, कृतज्ञ होना, लज्जालु होना. परोपकार करना, परको पीडा न करनी, अपना परिभव (तिरस्कार) होवे तब पराक्रम दिखाना, अन्यदा सर्वत्र क्षांति करनी.। जलाशय, श्मशान, देवल, इनमें और तीन संध्यामें निद्रा, आहार, मैथुनादि वर्जना.। कूपमें प्रवेश करना, कूपको उल्लंघन करना, कूपकांठेपर शयन करना, इन सबको वर्जना; तथा नावाविना नदीका लंघना वर्जना.। गुरुके आसनशय्यादिके ऊपर, ताडवृक्षके हेठें, बुरी भूमिमें, दुर्गोष्टिमें, कुकार्यमें, बैठना सदाही वर्जना। खाड कूदनी नही, दुष्ट स्वामीकी सेवा नही करनी; चौथका चंद्र, नग्न स्त्री, इंद्रधनुः, इनको देखना नही.। हाथी, घोडा, नखोंवाला, और निंदक, इनको दूरसें वर्जना.। दिनमें संभोग (मैथुन) न करना, रात्रिको वृक्षका सेवन न करना.। कलह, और कलहका समीप, निरंतर वर्जना.। देशकाल विरुद्ध, भोजन, कार्य, गमन, आगमन, भाषण, व्यय (खरच) और आय (लाभ) ये कदापि न करने. यह पूर्वोक्त उत्तम व्रतादेश चारों वर्णोंका है. ॥ २० ॥ इति चातुर्वर्ण्यस्य समानोव्रतादेशः ॥

गृह्यगुरु, पूर्वोक्त प्रकारसें शिष्यको व्रतादेश करके, आगे करके जिन प्रतिमाको तीन प्रदक्षिणा करावे. फिर पूर्वाभिमुख होके शक्रस्तव पढे.। तदपीछे गृह्यगुरु, आसन ऊपर बैठ जावे, और शिष्य 'नमोस्तु' कहता हुआ गुरुके पगोंमें पडके ऐसें कहे, "भगवन् भवद्भिर्मम व्रतादेशो दत्तः" तब गुरु कहे, "दत्तःसुगृहीतोस्तु सुरक्षितोस्तु स्वयं तर परं तारय संसारसागरात्" ऐसें कहके नमस्कार पढता हुआ उठके दोनों गुरु शिष्य चैत्यवंदन करें. तदपीछे ब्राह्मणने, विप्र क्षत्रिय वैश्यके घरमें भिक्षाटन करना; क्षत्रि यने शस्त्र ग्रहण करना; और वैश्यने अन्नदान करना. ॥

इत्युपनयने व्रतादेशः ॥

अथ व्रतविसर्गःकथ्यते:—अथ व्रतविसर्ग कहते हैं. ॥ ब्राह्मणने आठ वर्षसें लेके सोलां वर्षपर्यंत, दंड और अजिन धारण करके, भिक्षावृत्ति

करके भोजन करना, यह उत्तम पक्ष है. क्षत्रियने दंड अजिन धारण करके दश वर्षसें लेके सोलां वर्ष पर्यंत आपही पाक करके, देवगुरुकी सेवामें तत्पर होके, भोजन करना; और वैश्यने दंड अजिन धारण करके स्वकृत भोजन करके बारां वर्षसें लेके सोलां वर्ष पर्यंत भोजन करना; यह उत्तम पक्ष है. । यदि कार्यव्यग्रतासें तितने दिन न रह सके तो, छ (६) मास पर्यंत रहना. तदभावे एक मास पर्यंत, तदभावे पक्ष पर्यंत, तदभावे तीन दिन रहना. यदि तीन दिन भी न रह सके तो, तिसही उपनयनं-व्रतादेशके दिनमेंही विसर्ग करिये, सोही कहे हैं. । उपनीत, तीन २ प्रद-क्षिणा करके चारों दिशायोंमें जिनप्रतिमाके आगे पूर्ववत् युगादिजिनस्तोत्र सहित शक्रस्तव पढे. तदपीछे आसनपर बैठे गुरुके आगे नमस्कार करके हाथ जोडके ऐसें कहे ॥ " भगवन् देशकालाद्यपेक्षया व्रतविसर्गमादिश " ॥ गुरु कहे ॥ " आदिशामि ॥ " फिर नमस्कार करके शिष्य कहे ॥ "भगवन् मम व्रतविसर्ग आदिष्टः ॥ " गुरु कहे ॥ ' आदिष्टः ॥ " फिर नमस्कार करके शिष्य कहे ॥ " भगवन् व्रतबंधो विसृष्टः ॥ " गुरु कहे ॥ " जिनोपवीतधारणेन अविसृष्टोस्तु स्वजन्मतः षोडशाब्दीं ब्रह्मचारी पाठधर्मनिरतस्तिष्ठेः ॥ तदपीछे पंचपरमेष्ठिमंत्र पढता हुआ शिष्य, मौंजी, कौपीन, वल्कल, दंड, इनको दूर करके, गुरुके आगे स्थापन करे; और आप जिनोपवीत-धारी श्वेतवस्त्र उत्तरीय होके गुरुके आगे नमस्कार करके बैठे, तब गुरु तिस बारां तिलकधारी उपनीतके आगे उपनयनका व्याख्यान करे. ।

तद्यथा ॥ आठ वर्षके ब्राह्मणको, दश वर्षके क्षत्रियको, और बारां वर्षके वैश्यको, उपनयन करना तिसमें गर्भमास भी वीचमेंही गिणने ।

तथाच ॥

"जिनोपवीतमिति जिनस्य उपवीतं मुद्रासूत्रमित्यर्थः ॥ "

जिनका उपवीत अर्थात् मुद्रासूत्र सो कहावे जिनोपवीत. । नवब्रह्मगुप्ति गर्भरत्नत्रय, येह पुरा, श्रीयुगादिदेवने गृहस्थीवर्णत्रयको अपनी मुद्राका धारण करना यावत् जीवतांइ कहा था. । तदपीछे तीर्थके व्यवच्छेद हुए,

मिथ्यात्वको प्राप्त हुए ब्राह्मणोंनें हिंसा प्ररूपणेसें चारों वेदको मिथ्या पथमें प्राप्त करे हुए, पर्वत और वसुराजासें प्रायः हिंसक यज्ञके प्रवृत्त हुए, 'यज्ञोपवीत' ऐसा नाम धारण करा. मिथ्यादृष्टि यथेच्छासें प्रलाप करो! परंतु जिनमतमें तो, जिनोपवीतही नाम है, नतु यज्ञोपवीत. तिसवास्ते तैनें इस जिनोपवीतको अच्छीतरें धारण करना, मासमासपीछे नवीन धारण करना; प्रमादसें जिनोपवीत जाता रहे, वा टुट जावे तो, तीन उपवास करके नवीन धारण करना. प्रेतक्रियामें दक्षिण स्कंधके ऊपर, और वाम कक्षाके हेठें, ऐसें विपरीत धारण करना. क्योंकि, सो विपरीत कर्म है. । मुनि भी, मृत मुनिके त्यागनमें तथाविध विपरीतही वस्त्र पहेनते हैं, जिसवास्ते, तूं पुरा जन्मकरके शूद्र होता भया, सांप्रत संस्कारविशषकरक ब्रह्मगुप्तिके धारणेसें ब्राह्मण, वा क्षता-त्राणेन-त्राणकरके क्षत्रिय, वा न्यायधर्ममें प्रवेश करनेसें वैश्य हुआ है; तिसवास्ते, क्रियासहित इस जिनोपवीतको अच्छीतरें ग्रहण करना, अच्छीतरें रखना. तेरेको सद्धर्मवासना उपनयनविधि क्षयरहित होवे. ऐसें व्याख्यान करके परमेष्ठिमंत्र पढकर दोनों गुरु शिष्य खडे होवे. पीछे चैत्यवंदन, और साधुवंदन करे. ॥ इत्युपनयने व्रतविसर्गविधिः ॥

अथ गोदानविधिर्यथा ॥

अथ गोदानविधि लिखते हैं. ॥ तदा व्रतविसर्गके अनंतर शिष्यसहित गुरु, जिनको तीन २ प्रदक्षिणा करके पूर्ववत् चारों दिशामें शक्रस्तवका पाठ करे. पीछे गृह्यगुरु, आसनपर बैठे तब शिष्य गुरुको तीन प्रदक्षिणा करके नमस्कार करके हाथ जोडके खडा होके, गुरुको विज्ञापना करे.

यथा ॥

"॥ भगवन् तारितोहं निस्तारितोहं उत्तमः कृतोहं सत्तमः कृतोहं पूतः कृतोहं पूज्यः कृतोहं तद्भगवन्नादिश प्रमाद-बहुले गृहस्थधर्म्मे मम किंचनापि रहस्यभूतं सुकृतं ॥"

हे भगवन्! तारा मुझको, निस्तारा मुझको, उत्तम करा मुझको, अतिशयसाधु (श्रेष्ठ) करा मुझको, पवित्र करा, मुझको, पूज्य करा मुझको, तिसवास्ते हे भगवन्! प्रमादबहुल गृहस्थधर्ममें मेरेको कुछक रहस्यभूत सुकृत कथन करो.॥

तब गुरु कहे॥

"॥ वत्स सुष्ठ्वनुष्ठितं सुष्ठु पृष्टं ततः श्रूयताम्॥"

हे वत्स अच्छा करा, भला पूछा, तिसवास्ते तूं श्रवण कर.॥

दानं हि परमो धर्म्मो दानं हि परमा क्रिया॥
दानं हि परमो मार्ग्गस्तस्माद्दाने मनः कुरु॥ १॥
दया स्यादभयं दानमुपकारस्तथाविधः॥
सर्वो हि धर्म्मसंघातो दानेन्तर्भावमर्हति॥ २॥
ब्रह्मचारी च पाठेन भिक्षुश्चैव समाधिना॥
वानप्रस्थस्तु कष्टेन गृही दानेन शुद्ध्यति॥ ३॥
ज्ञानिनः परमार्थज्ञा अर्हन्तो जगदीश्वराः॥
व्रतकाले प्रयच्छन्ति दानं सांवत्सरं च ते॥ ४॥
गृह्णतां प्रीणनं सम्यक् ददतां पुण्यमक्षयम्॥
दानतुल्यस्ततो लोके मोक्षोपायोऽस्ति नाऽपरः॥ ५॥

अर्थः—दानही परम उत्कृष्ट धर्म है, दानही परमा क्रिया है; दानही परम मार्ग है, तिसवास्ते दान देनेमें मन कर.। अभयदानसें दया होवे है, दानसेंही तथाविध उपकार होवे है, सर्वही धर्मसमूह दानमें अंतर्भाव हो सक्ता है। ब्रह्मचारी पाठ करके, साधु समाधि करके, वानप्रस्थ कष्ट करके, और गृहस्थी दान करके शुद्ध होता है.। तीन ज्ञानके धर्त्ता परमार्थके जाणकार, ऐसें अर्हत भगवंत जगदीश्वर भी व्रतसमयमें सांवत्सर दान देते हैं.। दान ग्रहण करनेवालेको तो, दान तृप्त करता है; और देनेवालेको अक्षय पुण्य प्राप्त कराता है; तिसवास्ते दानके समान दूसरा कोई मोक्षका उपाय लोकमें नही है.॥ ५॥ जिसवास्ते हे वत्स! तैनें ब्राह्मण-

पणा, वा क्षत्रियपणा, वा वैश्यपणा प्राप्त करा है, अंगीकार करा है; तिसवास्ते हे वत्स! तूं गृहस्थधर्ममें मोक्षके सोपानरूप दान देनेका प्रारंभ कर. । तब नमस्कार करके शिष्य कहे, हे भगवन् ! मुझको दानका विधी कहो. । गुरु कहे 'आदिशामि' कहता हूं ।

यथा ॥

गावो भूमिः सुवर्णं च रत्नान्यन्नं च नक्तकाः ॥
गजाश्वाइति दानं तदष्टधा परिकीर्त्तयेत् ॥ १ ॥
एतच्चाष्टविधं दानं विप्राणां गृहमेधिनाम् ॥
देयं न चापि यतयो गृह्णन्त्येतच्च निःस्पृहाः ॥ २ ॥
यतिभ्यो भोजनं वस्त्रं पात्रमौषधपुस्तके ॥
दातव्यं द्रव्यदानेन तौ द्वौ नरकगामिनौ ॥ ३ ॥

अर्थः—गौ १, भूमि २, सुवर्ण ३, रत्न ४, अन्न ५, नक्तक* ६, हाथी ७, और घोडा ८, येह आठ प्रकारका दान कहिये । येह पूर्वोक्त आठ प्रकारका दान, गृहस्थी ब्राह्मणगुरुयोंको देना. और निःस्पृह यति साधु मुनिराज, इस दानको नही लेते हैं । यतियोंको तो, भोजन, वस्त्र, पात्र, औषध, पुस्तक, इनका दान देना. यतिको द्रव्य (धन) का दान देनेसें, देनेलेनेवाले दोनोंही नरकगामी होते हैं. ॥ ३ ॥ तिसवास्ते प्रथम गोदान ग्रहण करना. उपनीत, वछडेसाहित कपिला, वा पाटला, वा श्वेतरंगकी, स्नापित, चर्चित, भूषित, धेनुको, आगे ल्यायके, पूंछसे पकडके, रूप्यमय खुरा हैं जिसके, स्वर्णमय शृंग हैं जिसके, ताम्रमय पृष्ठ हैं जिसकी, कांस्यमय दोहपात्र हैं जिसका, ऐसी धेनु, गृह्यगुरुकेतांइ देवे । गुरु तिस गौकी पूंछको हाथमें धारण करके, यह वेदमंत्र पढे ।

यथा ॥

"॥ॐ अर्हं गौरियं धेनुरियं प्रशस्यपशुरियं सर्वोत्तमक्षीरदधिघृतेयं पवित्रगोमयमूत्रेयं सुधास्राविणीयं रसोद्भाविनीयं

*-नक्तकवस्त्रविशेष.

पूज्येयं हृद्येयं अभिवाद्येयं तद्दत्तेयं त्वया धेनुः कृतपुण्यो भव प्राप्तपुण्यो भव अक्षयं दानमस्तु अर्हं ॐ ॥"

यह कहकर गृह्यगुरु, धेनुको ग्रहण करे. शिष्य तिस गौकेसाथ द्रोणप्रमाण सात धान्य, तुलामात्र षट् (६) रस और पुरुषतृप्तिमात्र षट् (६) विकृती (विगय) देवे ॥ इतिगोदानम् ॥

अन्य सर्व भूमिरत्नादिदानोंविषे यह मंत्र पढना. ।

यथा ॥

"॥ ॐ अर्हं एकमस्ति दशकमस्ति शतमस्ति सहस्रमस्ति अयुतमस्ति लक्षमस्ति प्रयुतमस्ति कोट्यस्ति कोटिदशकमस्ति कोटिशतकमस्ति कोटिसहस्रमस्ति कोट्ययुतमस्ति कोटिलक्षमस्ति कोटिप्रयुतमस्ति कोटाकोटिरस्ति संख्येयमस्ति असंख्येयमस्ति अनंतमस्ति अनंतानंतमस्ति दानफलमस्ति तदक्षयं दानमस्तु ते अर्हं ॐ ॥"

इति परेषां दानानां मंत्रपाठः ॥

यहां उपनयनमें गोदानकाही निश्चय है, शेष दान क्रमकरके अन्यदा भी देना. गोदानादि दान गृह्यगुरु ब्राह्मणोंकोही देना. निःस्पृह यतियोंको न देना. तथा तिन यतियोंको, अन्न, पान, वस्त्र, पात्र, भेषज, वसति, पुस्तकादि दानमें 'धर्मलाभः' यही मंत्र जाणना. । अथ गृह्यगुरु, उपनीतसें गोदान लेके, पर्णानुज्ञा देके, चैत्यवंदन, और साधुवंदन करायके, तैसेंही संघके मिले हुए, मंगलगीतवाजंत्रोंके वाजते हुए, शिष्यको साधुयोंकी वसतिमें (उपाश्रयमें) ले जावे. तहां मंडलीपूजा, वासक्षेप, साधुवंदनादि सर्व पूर्ववत् करना. । तदपीछे चतुर्विध संघकी पूजा, और मुनियोंको वस्त्र, अन्न, पात्रादि दान करे. ॥ इति गोदानविधिः ॥ संपूर्णोयं चतुर्विधउपनयनविधि : ॥

अथ शूद्रस्योत्तरीयकन्यासविधिः—अथ शूद्रको उत्तरीयकन्यासविधि लिखते हैं. ॥ सात दिन तैलनिषेकस्नान पूर्ववत् जाणना. । तदनंतर यथाविधि

और तिनकी मूर्ति निरुपाधिक प्रशांतरूप होनेसें प्रशांत दर्शनवाली है. क्योंकि, जो त्रिभुवनमें प्रशांतरूप परिणामवाले परमाणु भगवान्के शरीरको लगे हैं, तैसें परमाणु तितनेही जगत्में हैं; इसवास्ते भगवान्के प्रशांतरूप समान अन्यरूप किसीका भी नही है. तथा तिनकी मूर्ति जैसी प्रशांताकारवाली है, तैसी जगत्में किसी भी देवकी नहीं है, इस वास्ते भगवान्का प्रशांत दर्शन है. और सर्वभूत प्राणियोंको अभयदान देनेवाला है, "अभय दयाणं इति वचनात्" क्योंकि, विद्यमान भगवान्के स्वरूप और तिनकी मूर्तिके स्वरूपमें कोईभी वस्तु भय देनेवाली नही है. जिसके हाथमें त्रिशूल, चक्र, परशु, तलवार आदि शस्त्र होवेंगे, वो देव अभय देनेवाला नही है, परंतु किसी वैरीके भयसें वा किसीके मारनेवास्ते शस्त्र धारण करे हैं. भगवान्में पूर्वोक्त दूषण नही हैं; इसवास्ते अभयदानका दाता है. और मांगल्यरूप है. "अरिहंता मंगलं इति वचनात्" और प्रशस्त भला है, प्रशस्त वस्तुरूप होनेसें. इस करके पूर्वोक्त विशेषणोंवाला होनेकरके शिव कहीये है. ॥ १ ॥

महत्वादीश्वरत्वाच्च यो महेश्वरतां गतः ॥
रागद्वेषविनिर्मुक्तं वंदेऽहं तं महेश्वरम् ॥२॥

भाषार्थः-प्रथम श्लोकमें शिवका स्वरूप कथन करा, अथ महेश्वरका स्वरूप कहते हैं. बडा होनेसें और ईश्वर होनेसें जो महेश्वरताकों प्राप्त हुआ है, तिहां महत् शब्दका अर्थ बडा है, शुद्ध स्वरूप शुद्ध ज्ञानादि गुणोंसें, बडा होनेसें और सर्व देवताओंका ठाकुर (पूज्य) अलंघनीय आज्ञावाला और सर्वका नायक, अग्रेश्वरी होनेसें ईश्वर. क्योंकि, जो चैतन्य जड पदार्थ जगत्में है, वे सर्व तिसकी स्याद्वाद मुद्रारूप आज्ञाका उलंघन नही कर सक्के हैं. और जो उलंघन करता है, सो तीन कालमें भी वस्तुस्वरूपकों प्राप्त नही होता है. उक्तं च श्रीमद्धेमचंद्रसूरिप्रवरैः ॥

आदीपमाव्योम समस्वभावं स्याद्वादमुद्रानतिभेदि वस्तु ॥
तन्नित्यमेवैकमनित्यमन्यदिति त्वदाज्ञाद्विषतां प्रलापाः ॥१॥

क्षात्राणामथ वैश्यानां देशकालादियोगतः ॥
त्यक्तोपवीतानां कार्यमुत्तरासंगयोजनम् ॥ ६ ॥
धर्मकार्ये गुरोर्दृष्टौ देवगुर्वालयेऽपि च ॥
धार्यस्तथोत्तरासंगः सूत्रवत् प्रेतकर्मणि ॥ ७ ॥
अन्येषामपि कारूणां गुर्वानुज्ञां विनापि हि ॥
गुरुधर्मादिकार्येषु उत्तरासंग इष्यते ॥ ८ ॥

अर्थः—सम्यक्त्वके संयुक्त द्वादश व्रत तैंने धारण करने, और कुलका मद न करना. । जैन ऋषियोंकी, और जैन ब्राह्मणोंकी उपासना करनी; तथा गीतार्थाचीर्ण तप करना. । किसी पापात्माको निंदना नही, अपनी प्रशंसा न करनी, हित इच्छके ब्राह्मणोंको मान देना. । शेष चतुर्वर्णशिक्षाश्लोकमें कहे आचारको आचरण करना; उत्तरीयके परिभ्रंशमें, वा भंगमें उपवीतवत् जाणना. । व्रत करना, प्रेतकर्म करना, हे वृषल-शूद्र ! उत्तरासंगकी अनुज्ञामें तैंने यह युक्ति करनी. । देशकालादियोगसें त्याग न किया है उपवीत जिनोंनें, वैसे क्षत्रिय और वैश्योंको, उत्तरासंग योजन करना. । धर्मकार्यमें, गुरुकी दृष्टिमें, देव और गुरुके मकानमें, तथा प्रेतकर्ममें, सूत्रकीतरें उत्तरासंग धारण करना. । और भी कारुयोंको गुरुकी आज्ञाके विना भी गुरुधर्मादिकार्योंमें उत्तरासंग इच्छते हैं. ॥ ऐसा व्याख्यान करके गुरु शिष्यको चैत्यवंदन करवावे. । परमेष्ठिमंत्रका उच्चार और मंत्रव्याख्यान पूर्ववत्. । इतना विशेष है. शूद्रादिकोंको ' नमो ' के स्थानमें 'णमो' उच्चारण कराना. इतिगुरुसंप्रदायः । तदपीछे शिष्यसहित गुरु, उत्सव करते हुए धर्मागारमें जावे. तहां मंडलीपूजा, गुरुनमस्कार, वासक्षेपादि पूर्ववत्. । तदपीछे मुनियोंको अन्न, वस्त्र, पात्र दान देवे. और चतुर्विध संघकी पूजा करे. ॥ इति उपनयने शूद्रादीनां उत्तरीयकन्यासोत्तरासंगानुज्ञाविधिः ॥

अथ वटूकरणविधिः—अथ बटूकरणविधि लिखते हैं. ॥ जिसवास्ते सम्यक् उपनीत, वेदविद्यासंयुक्त, दुःप्रतिग्रहवर्जित, अशूद्रान्नभोजन कर-

पौष्टिक, सर्व शिरका मुंडन, वेदिकरण, चतुष्किकाकरण, जिनप्रतिमास्थापन, पूर्ववत्. । तदपीछे गृह्यगुरु, जिनेश्वरकी अष्टप्रकारी पूजा करे. चारों दिशायोंमें शक्रस्तव पाठ करे. पीछे गुरु आसनऊपर बैठ जावे. तब शिष्य श्वेत-वस्त्र पहिरके, उत्तरासंगकरके समवसरण और गुरुको, प्रदक्षिणा करके, 'नमोस्तु २' कहता हुआ, गुरुको नमस्कार करके, हाथ जोडके, खडा होयके कहे. "॥ भगवन् प्राप्तमनुष्यजन्मार्यदेशार्यकुलस्य मम बोधिरूपां जिनाज्ञां देहि ॥" गुरु कहे "॥ ददामि ॥" शिष्य फिर नमस्कार करके कहे "॥ न योग्योहमुपनयनस्य तज्जिनाज्ञां देहि ॥" गुरु कहे "॥ ददामि ॥" तदपीछे द्वादश (१२) गर्भतंतुरूप, जिनोपवीतप्रमाण दीर्घ (लंबा) कार्प्पासका, वा रेशमका, उत्तरीयक, परमेष्ठिमंत्र पढता हुआ, जिनोपवीतवत् पहिरावे. पीछे गुरु, पूर्वाभिमुख शिष्यको चैत्यवंदन करवावे. । तदपीछे शिष्य 'नमोस्तु २' कहता हुआ, सुखसें बैठे गुरुके पगोंमें पडके, फिर खडा होके, हाथ जोडके, ऐसें कहे. "॥ भगवन् उत्तरीयकन्यासेन जिनाज्ञामारोपितोहं ॥" गुरु कहे "॥ सम्यगारोपितोसि तर भवसागरम् ॥" तदपीछे गुरु सन्मुख बैठे शूद्रके आगे व्रतानुज्ञा देवे. ॥

यथा ॥

सम्यक्त्वेनाधिष्ठितानि व्रतानि द्वादशैव हि ॥
धार्याणि भवता नैव कार्यः कुलमदस्त्वया ॥ १ ॥
जैनर्षीणां तथा जैनब्राह्मणानामुपासनम् ॥
विधेयं चैव गीतार्थाचीर्णं कार्यं तपस्त्वया ॥ २ ॥
न निंद्यः कोपि पापात्मा न कार्यं स्वप्रशंसनम् ॥
ब्राह्मणेभ्यस्त्वया मानं दातव्यं हितमिच्छता ॥ ३ ॥
शेषं चतुर्वर्णशिक्षाश्लोकव्याख्यानमाचरेत् ॥
उत्तरीयपरिभ्रंशे भंगे वाप्युपवीतवत् ॥ ४ ॥
कार्यं व्रतं प्रेतकर्मकरणं वृषल त्वया ॥
युक्तिरेषोत्तरासंगानुज्ञायां च विधीयते ॥ ५ ॥

शिखावर्जके मुंडन करवावे, तदपीछे तिसको तीर्थोदक मंत्रोंकरके मंत्रित जलकरके स्नान करवावे.।

तीर्थोदकाभिमंत्रणमंत्रोयथा ॥

"॥ॐ वं वरुणोसि वारुणमसि गांगमसि यामुनमसि गौदावरमसि नार्म्मदमसि पौष्करमसि सारस्वतमसि शातद्रवमसि वैपाशमसि सैंधवमसि चांद्रभागमसि वैतस्तमसि ऐरावतमसि कावेरमसि कारतोयमसि गौमतमसि शैतमसि शैतोदमसि रोहितमसि रोहितांशमसि सारेयवमसि हारिकांतमसि हारिसलिलमसि नारिकांतमसि नारकांतमसि रौप्यकूलमसि सौवर्णकूलमसि सालिलमसि रक्तवतमसि नैमग्नसलिलमसि उन्मग्नसलिलमसि पाद्ममसि महापाद्ममसि तैगिच्छमसि कैशरमसि जीवनमसि पवित्रमसि पावनमसि तदमुं पवित्रय कुलाचाररहितमपि देहिनं ॥"

इस मंत्रसें कुशाग्रकरी सात वार अभिसिंचन करे. पीछे नदीकांठे वा तीर्थऊपर, वा मंदिरसें, वा पवित्र गृहस्थानमें तिस बटूकरण योग्यको, प्रथम तीनगुणी कुशमेखला, तीन प्रकारसें बांधे.।

मेखलाबंधमंत्रो यथा ॥

"॥ ॐ पवित्रोसि प्राचीनोसि नवीनोसि सुगमोसि अजोसि शुद्धजन्मासि तदमुं देहिनं धृतव्रतमव्रतं वा पावय पुनीहि अब्राह्मणमपि ब्राह्मणं कुरु ॥ "

इस मंत्रका तीन वार पाठ करे. ॥ पीछे कौपीन पहिरावे.।

कौपीनमंत्रो यथा ॥

ॐ अब्रह्मचर्यगुप्तोपि ब्रह्मचर्यधरोपि वा ॥
व्रतः कौपीनबंधेन ब्रह्मचारी निगद्यते ॥ १ ॥

ऐसें तीन वार पढके कौपीन पहिरावणा. । तदपीछे पूर्वोक्त ब्राह्मणसमान उपवीत, मंत्रपूर्वक पहिरावे.।

नेवाले, माहनोंके आचारमें रक्त, सर्व गृह्यसंस्कारप्रतिष्ठादिकर्मोंके कराने-वाले, ऐसें ब्राह्मण, पूज्य होते हैं. । नही, वे पूर्वोक्त ब्राह्मण, क्षत्रियादि राजायोंको, सेवा, अन्नपाक, तिसके आज्ञा करनी, अभ्युत्थान, चाटुः—मनोहर वचन, प्रशंसा, विना नमस्कारके आशीर्वाद देना, विज्ञानकर्म, कृषिवाणिज्यकरणं, तुरंगवृषभादि शिक्षाकरण, इत्यादिवास्ते जोडने कल्पते हैं. इसवास्ते तथाविध पूर्वोक्त कर्मोंमें, बटूकृत ब्राह्मण, योजन करने योग्य होते हैं. इसवास्ते तिन ब्राह्मणोंको बटू करनेका विधि कहते हैं.

उक्तं च यतः ॥

च्युतव्रतानां व्रात्यानां तथा नैवेद्यभोजिनाम् ॥
कुकर्म्मणामवेदानामजपानां च शास्त्रिणाम् ॥ १ ॥
ग्राम्याणां कुलहीनानां विप्राणां नीचकर्म्मणाम् ॥
प्रेतान्नभोजिनां चैव मागधानां च बंदिनाम् ॥ २ ॥
घांटिकानां सेवकानां गंधतांबूलजीविनाम् ॥
नटानां विप्रवेषाणां पर्शुरामान्ववायिनाम् ॥ ३ ॥
अन्यजात्युद्भवानां च बंदिवेषोपजीविनाम् ॥
इत्यादिविप्ररूपाणां बटूकरणमिष्यते ॥ ४ ॥

अर्थः—व्रतसें भ्रष्ट हुए, संस्कारहीन, नैवेद्यका भोजन करनेवाले, कुकर्मके करनेवाले, वेदको नही जाणनेवाले, वेद मंत्रोंका जप न करनेवाले, शस्त्रको धारण करनेवाले, ग्रामके वसनेवाले, कुलहीन, नीच कर्मके करनेवाले, प्रेतके अन्नका भोजन करनेवाले, मागध—स्तुतिपाठ पढनेवाले बंदी—राजादिकी स्तुति पढनेवाले, घंटिका बजानेवाले, सेवा करनेवाले, गंधतांबूलकरके आजीविका करनेवाले, विप्रवेष धारण करनेवाले नट, पर्शुरामके संतानीय, अन्य जातिसें उत्पन्न हुए, बंदिवेषसें आजीविका करनेवाले, इत्यादि विप्ररूपको बटूकरणं इच्छते हैं । तिसका यह विधि है. प्रथम तिसके घरमें गृह्यगुरु, यथोक्त विधिसें पौष्टिक करे. पीछे तिसको

अर्थः—परनिंदा, परद्रोह, परस्त्री, परधनकी वांछा, मांसभक्षण, म्लेच्छकंद—लशुनादिभक्षण, इनको वर्जना. । वाणिज्यमें, स्वामीकी सेवामें, कदापि कपट न करना; ब्राह्मण, स्त्री, गर्भ और गौ, इन चारोंकी रक्षा करनी; देव, ऋषि और गुरुकी सेवा करनी. । अतिथीयोंका पूजन करना, धनके अनुसार दान देना, आत्मघात नही करना, परको पीडा न करनी. । जन्मपर्यंत यावजीवे तबतक विधिपूर्वक उपवीत धारण करना, शेष शिक्षाक्रम पूर्ववत् चारों वर्णोंका कथन करना. ॥ पीछे सो बटूकृत, गुरुको स्वर्ण, वस्त्र, धेनु, अन्न, दान करे. । यहां बटूकरणमें वेदी, चतुष्किका, समवसरण, चैत्यवंदन, व्रतानुज्ञा, व्रतविसर्ग, गोदान, वासक्षेपादि नही है. ॥ इति बटूकरणविधिः ॥ इत्याचार्यश्रीवर्द्धमानसूरिकृताचारदिनकरस्य गृ० उपनयनादिकीर्त्तननामद्वादशमोदयस्याचार्यश्रीमद्वि० बा० स० त० समाप्तोयं २४ स्तम्भः ॥ १२ ॥

इत्याचार्यश्रीमद्विजयानंदसूरिविरचिते तत्त्वनिर्णयप्रासादग्रंथे द्वादशमोपनयनादिसंस्कारवर्णनोनाम चतुर्विंशस्तम्भः ॥ २४ ॥

॥ अथपञ्चविंशस्तम्भारम्भः ॥

अथ पंचविंश स्तंभमें अध्ययनारंभविधि लिखते हैं ॥ अश्विनी, मूल, पूर्वा ३, मृगशीर्ष, आर्द्रा, पुनर्वसु, पुष्य, अश्लेषा, हस्त, शतभिषक्, स्वाति, चित्रा, श्रवण, धनिष्ठा, येह नक्षत्र और बुध, गुरु, शुक्र, येह वार विद्यारंभमें शुभ है. अर्थात् इनोंमें प्रारंभ करी विद्या प्राप्त होती है. रवि और चंद्र, मध्यम है. मंगल और शनिवार, त्यागने योग्य है. । अमावास्या, अष्टमी, प्रतिपत् (एकम), चतुर्दशी, रिक्ता, षष्ठी, नवमी, येह तिथियां विद्यारंभमें सदाही वर्जनी. ।

अथ उपनयनसदृश दिन और लग्नमें विद्यारंभसंस्कारका आरंभ करिये, तिसका यह विधि है. । गृह्यगुरु प्रथम विधिसें उपनीत पुरुषके घरमें पौष्टिक करे; पीछे गुरु, मंदिरमें, वा उपाश्रयमें, वा कदंबवृक्षकेतले,

मंत्रो यथा ॥

"॥ॐ सधर्म्मोसि अधर्मोसि कुलीनोसि अकुलीनोसि सब्रह्मचर्योसि अब्रह्मचर्योसि सुमनाअसि दुर्म्मनाअसि श्रद्धालुरसि अश्रद्धालुरसि आस्तिकोसि नास्तिकोसि आर्हतोसि सौगतोसि नैयायिकोसि वैशेषिकोसि सांख्योसि चार्वाकोसि सलिंगोसि अलिंगोसि तत्त्वज्ञोसि अतत्त्वज्ञोसि तद्भव ब्राह्मणोऽमुनोपवीतेन भवंतु ते सर्वार्थसिद्धयः ॥ "

इस मंत्रको नव वार पढके उपवीत स्थापन करे. । पीछे तिसके हाथमें पलाशका दंड देवे, और मृगचर्म तिसको पहिरावे, और भिक्षा मांगनी करवावे. भिक्षामार्गणकेपीछे उपवीतको वर्जके, मेखला, कौपीन, चर्मदंडादि दूर करे. ।

तदुपनयनमंत्रो यथा ॥

"॥ ॐ ध्रुवोसि स्थिरोसि तदेकमुपवीतं धारय ॥"

ऐसें तीन वार पढे. । पीछे गुरु, धारण किया है श्वेतवस्त्रका उत्तरासंग जिसने, ऐसे तिसको, आगे बिठलाके, शिक्षा देवे. ।

यथा ॥

परनिंदां परद्रोहं परस्त्रीधनवांछनम् ॥
मांसाशनं म्लेच्छकंदभक्षणं चैव वर्जयेत् ॥ १ ॥
वाणिज्ये स्वामिसेवायां कपटं मा कृथाः क्वचित् ॥
ब्रह्मस्त्रीभ्रूणगोरक्षां देवर्षिगुरुसेवनम् ॥ २ ॥
अतिथीनां पूजनं च कुर्य्याद्दानं यथा धनम् ॥
अथात्मघातं मा कुर्या मा वृथा परतापनम् ॥ ३ ॥
उपवीतमिदं स्थाप्यमाजन्मविधिवत्त्वया ॥
शेषः शिक्षाक्रमः कथ्यश्चातुर्वर्ण्यस्य पूर्ववत् ॥ ४ ॥

आहार वस्त्र पात्र पुस्तक दान देवे.। इत्याचार्यश्रीवर्द्धमानसूरिकृताचारदिनकरस्यगृहिधर्मप्रतिबद्धविद्यारंभसंस्कारकीर्त्तननामत्रयोदशमोदयस्याचार्यश्रीमद्विजयानंदसूरिकृतोबालावबोधस्समाप्तस्तत्समाप्तौ च समाप्तोयं पंचविंशस्तम्भः ॥ १३ ॥

इत्याचार्यश्रीमद्विजयानंदसूरिविरचिते तत्त्वनिर्णयप्रासादग्रंथे त्रयोदशमविद्यारंभसंस्कारवर्णनोनामपंचविंशस्तम्भः ॥ २५ ॥

अथषड्विंशस्तम्भारम्भः ॥

अथ २६ मे स्तंभमें विवाहविधि लिखते हैं ॥ विवाह जो है सो समकुलशीलवालोंकाही होता है.

यतउक्तं ॥

ययोरेव समं शीलं ययोरेव समं कुलम् ॥
तयोर्मैत्री विवाहश्च न तु पुष्टविपुष्टयोः ॥ १ ॥

तिसवास्ते समकुलशील, समजाति, जाने है देशकृत्य जिनोंके, तिनका विवाहसंबंध जोडना योग्य हैं; तिसवास्ते जो अविकृत है, तिसनें विकृतकुलकी कन्या ग्रहण नही करनी। विकृतकुलं यथा। जिनके कुलमें शरीरऊपर रोम बहुत होवे, अर्शरोग होवे, दाद होवे, चित्रकुष्टि होवे, नेत्ररोग होवे, उदररोग होवे, ऐसे वंशोंकी कन्या न ग्रहण करनी. विकृत कुल होनेसें.। कन्या विकृता यथा। वरसें लंबी होवे, हीन अंगवाली होवे, कपिला होवे, ऊंची दृष्टिवाली होवे, जिसका भाषण और नाम भयानक होवे, ऐसी कन्या विचक्षणोंको त्यागने योग्य है. तथा देवता, ऋषि, ग्रह, तारा, अग्नि, नदी, वृक्षादिकके नामसें जो कन्या होवे, तथा जिसके शरीरऊपर बहुत रोम होवे, पिंगाक्षी और घरघरास्वरवाली, ऐसी कन्या भी पाणिग्रहणमें वर्जनी. ॥ कन्यादाने वरस्य विकृतं कुलं यथा ॥ हीन होवे, क्रूर होवे, वधूसहित होवे, दरिद्री होवे, व्यसन (कष्ट) संयुक्त होवे, कन्यादानमें ऐसें कुल, और पुरुषको वर्जना. मूर्ख, निर्धन, दूर देशमें रहनेवाला,

कुशाके आसनउपर आप बैठके, शिष्यको वामेपासे कुशासनोपरि बिठलाके तिसके दक्षिण कानको पूजके तीनवार सारस्वत मंत्र पढे. पीछे गुरु, अपने घरमें वा अन्य उपाध्यायकी शालामें, वा पौषधागारमें, शिष्यको पालखी, वा घोडेपर चढायके मंगलगीतोंके गाते हुए, दान देते हुए, वाजंत्र बाजते हुए, यति गुरुकेपास लेजाके मंडलीपूजापूर्वक वासक्षेप करवाके, पाठशालामें लेजावे. पीछे गुरु शिष्यको आगे बिठलाके येह शिक्षाश्लोक पढे. ।

यथा ॥

अज्ञानतिमिरांधानां ज्ञानांजनशलाकया ॥
नेत्रमुन्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥ १ ॥
यासां प्रसादादधिगम्य सम्यक् शास्त्राणि विदन्ति परं पदं ज्ञाः॥
मनीषितार्थप्रतिपादकाभ्यो नमोस्तु ताभ्यो गुरुपादुकाभ्यः ॥२॥
सत्येतस्मिन्नरतिरतिदं गृह्यते वस्तु दूरा-
दप्यासन्नेप्यसति तु मनस्याप्यते नैव किंचित् ॥
पुंसामित्यप्यवगतवतामुन्मनीभावहेता-
विच्छा बाढं भवति न कथं सद्गुरूपासनायाम् ॥ ३ ॥
इति मत्वा त्वया वत्स त्रिशुद्ध्योपासनं गुरोः ॥
विधेयं येन जायंते गोधीकीर्त्तिधृतिश्रियः ॥ ४ ॥

ऐसें शिष्यको शिक्षा देके, और तिससें स्वर्ण वस्त्र दक्षिणा लेके, गुरु अपने घरको जावे. पीछे उपाध्याय, सर्वको पहिले मातृका पढावे; पीछे विप्रको प्रथम आर्यवेद पढावे, पीछे षडंगी, पीछे पुराणादि धर्मशास्त्र पढावे; क्षत्रियको भी ऐसेंही चतुर्दश विद्या पढावे. पीछे आयुर्वेद, धनुर्वेद, दंडनीति और आजीविकाशास्त्र पढावे. वैश्यको धर्मशास्त्र, नीतिशास्त्र, कामशास्त्र और अर्थशास्त्र पढावे. शूद्रको नीतिशास्त्र और आजीविकाशास्त्र पढावे, कारुयोंको तिनके उचित विज्ञानशास्त्र पढावे. पीछे साधुयोंको चतुर्विध

भाषार्थः—'आदीपं' दीपकसें लेके 'आव्योम, व्योम मर्यादीकृत्य' आकाशपर्यंत, सर्व वस्तु पदार्थस्वरूप जो हैं, सो समस्वभाव हैं; तुल्यरूप हैं स्वभावस्वरूप जिसका, सो समस्वभाव. क्योंकि, वस्तुका स्वरूप द्रव्यपर्यायात्मक है, ऐसा हम कहते हैं. तैसेंही वाचक मुख्य श्री उमास्वातिजी तत्वार्थसूत्रमें कहते हैं. "उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सदिति" जो उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यकरके युक्त है सोइ सत् है. और जो सत् है सोई वस्तुका लक्षण है. समस्वभाव सर्व वस्तुयों किस हेतुसें ? ऐसें पृछकके पूछें थके विशेषणद्वारकरके हेतु कहते हैं. 'स्याद्वादमुद्रानतिभेदि'—'स्यात्' ऐसा अव्यय अनेकांतका द्योतक है. तब तो स्याद्वाद (अनेकांतवाद) नित्य—अनित्यादि अनेक धर्मोंके शबल स्वभाववाला एक वस्तुका मानना, तिसकी मुद्रा (मर्यादा) तिसको जो उल्लंघन न करे (न तोडे) सो स्याद्वादमुद्रानतिभेदि वस्तु है. जैसें न्याय एकनिष्ठ न्यायतत्पर राजाके राज्यशासन चलाते हुए, सर्व तिसकी प्रजा तिसकी मुद्रा (मर्यादा) का अतिक्रम नही करती हैं. जेकर अतिक्रम करे तो तिसके सर्व अर्थकी हानि होवे है. ऐसेंही विजयवंत निःकंटक स्याद्वाद महानरेंद्रके हुए, तिसकी स्याद्वादमुद्राका सर्वही पदार्थ अतिक्रम (उल्लंघन) नही कर सकते हैं. जेकर उल्लंघन करे तो तिनको स्वरूप व्यवस्थाकी हानिकी प्रसक्ति होनेसें अवस्तुपणेका प्रसंग होवेगा. और सर्व वस्तुयोंका जो समस्वभाव कथन करा है, सो परवादियोंको जो अभीष्ट मान्य है, एक व्योमादि वस्तु नित्यही है, अन्यत् प्रदीपादि अनित्यही है, ऐसे वादके प्रतिक्षेप खंडनका बीज है. सर्वही भाव पदार्थ द्रव्यार्थिक नयापेक्षासें नित्य है, और पर्यायार्थिक नयके मतसें अनित्य है. तहां एकांत अनित्यपणेवादीयोंने अंगीकार करे प्रदीपको प्रथम नित्यानित्यपणेके व्यवस्थापनविषे दिङ्मात्र (संक्षेपमात्र) कथन करते हैं. तथाहि प्रदीपपर्यायको प्राप्त हुए तैजस परमाणु जे हैं, वे स्वभावें वा तैलके क्षयसें वा पवनके अभिघातसें ज्योतिःपर्यायको त्यागके तमोरूप पर्यायांतरको प्राप्त होते हुए भी एकांत अनित्य नही हैं. क्योंकि, पुद्गल द्रव्यरूपकरके वे सदा अवस्थितही हैं. इतने मात्रसेंही अनित्यता नही

शूर योद्धा सूरमा, मोक्षाभिलाषी, कन्यासें तीनगुणी अधिक आयुवाला; इनको भी कन्या न देनी. तिसवास्ते दोनों अविकृत कुलोंका, और दोनों विकृत कुलवालोंका विवाहसंबंध योग्य है. तथा पांच शुद्धियां देखके वधूवरका संयोग करना, सोही दिखावे हैं. राशि १, योनि २, गण ३, नाडी ४ और वर्ग ५, येह पांच शुद्धियां दोनोंकी देखके वरवधूका संयोग करना.। कुल १, शील २, स्वामिपणा ३, विद्या ४, धन ५, शरीर ६ और वय ७, येह सातो गुण वरमें देखने. अर्थात् येह सात गुण वरमें देखके कन्या देनी. आगे जो होवे, सो कन्याका भाग्य है. गर्भसें आठ वर्षसें लेके इग्यारह वर्षतांइ कन्याका विवाह करना. * तिसके ऊपरांत रजस्वला होती है. तिसको राका भी कहते हैं. तिसका विवाह शीघ्र होना चाहिये. वरको पाकरके चंद्रबलके हुए, तुच्छ महोत्सवके भी हुए, विवाह करना उचित है.

यतउक्तम् ॥

वर्षमासदिनादीनां शुद्धिं राकाकरग्रहे ॥
नालोकयेच्चंद्रबलं वरं प्राप्य विधापयेत् ॥ १ ॥

*पुरुषका आठ वर्षसें लेके ८० वर्षके बीच २ विवाह होना चाहिये. क्योंकि, अस्सीवर्ष उपरांत प्रायः पुरुष शुक्ररहित होता है.।

विवाह दो प्रकारके होते हैं, आर्यविवाह १, और पापविवाह २.। आर्य विवाहके चार भेद हैं. ब्राह्मविवाह १, प्राजापत्यविवाह २, आर्षविवाह ३, और दैवतविवाह ४. ये चारों विवाह मातापिताकी आज्ञासें होनेसें लौकिक व्यवहारमें धार्म्मिक विवाह गिने जाते हैं. पापविवाहके भी चार भेद हैं. गांधर्वविवाह १, आसुरविवाह २, राक्षसविवाह ३, और पैशाच-विवाह ४. ये चारों करनेसें स्वेच्छानुसार पापविवाह हैं.।

* यह कथन प्रायः लौकिकव्यवहारानुसार है. क्योंकि, जैनागममें तो "जोव्वणगमणमणुपत्ता" इतिवचनात्, जब वरकन्या योवनको प्राप्त होवे, तब विवाह करना. और 'प्रवचनसारोद्धार'में लिखा है कि, सोलां वर्षकी स्त्री, और पच्चीस वर्षका पुरुष, तिनके संयोगसें जो संतान उत्पन्न होवे, सो बलिष्ठ होवे है. इत्यादि मूलागमसें तो बाललग्नका और वृद्धके विवाहका निषेध सिद्ध होता है.॥

प्रथम ब्राह्म्यविवाहविधि लिखते हैं. । शुभ दिनमें, शुभ लग्नमें, पूर्वोक्त गुणसंयुक्त वरको बुलवाके स्नान अलंकार करके संयुक्त हुए तिस वरकेताइ, अलंकृत कन्या देवे. ।

मंत्रो यथा ॥

"॥ ॐ अर्हं सर्वगुणाय सर्वविद्याय सर्वसुखाय सर्वपूजिताय सर्वशोभनाय तुभ्यं वस्त्रगंधमाल्यालंकारालंकृतां कन्यां ददामि प्रतिगृह्णीष्व भद्रं भव ते अर्हं ॐ ॥"

इस मंत्रकरके बद्धांचलदंपती—स्त्रीभर्त्ता, अपने घरमें जावे. ॥ इति धार्म्यो ब्राह्म्यविवाहः ॥ १ ॥

प्राजापत्य विवाह जगत्में प्रसिद्ध है, इसवास्ते विस्तारसें कहेंगें. ॥ २ ॥

आर्ष विवाहमें वनमें रहनेवाले मुनि, ऋषि, गृहस्थ अपनी पुत्रीको, अन्यऋषिके पुत्रकेतांइ, गौ बैलके साथ देते हैं. तहां अन्य कोइ उत्सवादि नही होते हैं, इस विवाहका मंत्र जैनवेदोंमें नही है. जैन वेदकरके वर्णादिको आश्रित हुए जनोंके आचार कथन करनेसें, जैनोंको ऐसें विवाहके अकृत्य होनेसें. । दैवतविवाहमें भी ऐसेंही जाणना. । इन दोनों विवाहोंके मंत्र परसमयसें जाणने.॥ इति धार्म्य आर्षविवाहः ॥ ३ ॥

दैवत विवाहमें तो, पिता, अपने पुरोहितकेतांइ इष्ट पूर्त्त कर्मके अंतमें अपनी कन्याको दक्षिणाकीतरें देवे. ॥ इति दैवतो धार्म्य विवाहः ॥ ४ ॥

ये चार धार्म्यविवाह हैं. ॥

पितादिके प्रमाणविना, अन्योन्यप्रीतिकरके जो उद्यम होना, सो गांधर्वविवाह. । १ ।

पणवंधके विवाह करना, सो आसुरविवाह. ॥ २ ॥

हठसें कन्याको ग्रहण करे, सो राक्षसविवाह. ॥ ३ ॥

सुप्त, और प्रमत्तकन्याको ग्रहण करनेसें, पैशाच विवाह कहा जाता है. ॥ ४ ॥ माता, पिता, गुरु, आदिकी आज्ञा न होनेसें इन चारों विवाहोंको विवाहज्ञ पुरुष पापविवाह कहते हैं. ॥ तथा ब्राह्म्य १, आर्ष २, और दैवत ३,

येह तीन विवाह दुःखमकालकलियुगमें प्रवर्त्तते नही हैं. । * चारों पाप विवाहोंका वेदोक्तविधि भी नही है. अधर्म होनेसें. ॥

संप्रति वर्त्तमान प्राजापत्य विवाहका विधि कहते हैं ॥ मूल, अनुराधा, रोहिणी, मघा, मृगशिर, हस्त, रेवती, उत्तरा ३, स्वाति, इन नक्षत्रोंमें करग्रहण करना. । वेध, एकार्गल, लत्ता, पात, उपग्रहसंयुक्त नक्षत्रोंमें विवाह नही करना. । तथा युतिमें, और क्रांति साम्य दोषमें भी नही करना. । तीन दिनको स्पर्शनेवाली तिथिमें, अवम् (क्षय) तिथिमें, क्रूर तिथिमें, दग्ध तिथिमें, रिक्ता तिथिमें, अमावास्या, अष्टमी, षष्ठी, द्वादशी इनमें विवाह नही करना. । भद्रामें, गंडांतमें, दुष्टनक्षत्र तिथि वार योगोंमें, व्यतिपातमें, वैधृतिमें और निंद्य वेलामें, विवाह नही करना. । सूर्यके क्षेत्रमें बृहस्पति होवे, और बृहस्पतिके क्षेत्रमें सूर्य होवे तो, दीक्षा, प्रतिष्ठा, विवाह प्रमुख वर्जने. । चौमासेमें, अधिमासमें, गुरु शुक्रके अस्त हुए, मलमासमें, और जन्ममासमें, विवाहादि न करना. । मासांतमें, संक्रांतिमें, संक्रांतिके दूसरे दिनमें, ग्रहणादि सात दिनोंमें भी, पूर्वोक्त कार्य नही करना. । जन्मके तिथि, वार, नक्षत्र, लग्नमें; राशि और जन्मके ईश्वरके अस्त हुए, और क्रूर ग्रहोंकरके हत हुए भी, विवाह नही करणा. । जन्मराशिमें, जन्मराशि और जन्मलग्नसें वारमें और आठमेमें, और लग्नके अंशके अधिपके छट्ठे, और आठमे घरमें गए हुए, लग्न नही करना. । स्थिर लग्नमें, वा द्विस्वभावलग्नमें, वा सद्गुण करी संयुक्त चर लग्नमें, उदयास्तके विशुद्ध हुए, विवाह करना. परंतु उत्पातादिकरके विदूषितमें नही करना. । लग्न और सप्तम घर, ग्रहकरके वर्जित होवे; तीसरे, छट्ठे, और इग्यारमे घरमें, रवि, मंगल और शनि होवे. । छट्ठे और तीसरे घरमें, तथा पापग्रहवर्जित पांचमें घरमें राहु होवे; लग्नमें तथा पांचमे, चौथे, दशमे, और नवमे घरमें, बृहस्पति होवे. । ऐसेंही शुक्र, बुध, होवे; लग्न, छट्ठे, आठमे, वारमे घरसें, अन्यत्र चंद्रमा होवे, सो भी पूर्ण होवे. । क्रूरकरके दृष्ट, और क्रूरसंयुक्त चंद्र वर्जना; क्रूर, और अंतरस्थ लग्न और चंद्र वर्जने. । इत्यादि गुणसंयुक्त, दोष विवर्जित लग्नमें, शुभ

* गोमेधनरमेधाद्या यज्ञाः पाणिग्रहत्रय॥ सुताश्च गोत्रजंगुरोर्न भवंति कलौ युगे॥ इतिवचनात्॥

अंशमें, शुभ ग्रहोंकर दृष्ट हुए, पाणिग्रहण शुभ है. ॥ इत्यादि श्रीभद्रबाहु, वराह, गर्भ, लल्ल, पृथुयशः, श्रीपति, विरचितविवाहशास्त्रके अवलोकनसें शुभ लग्न देखके विवाहका आरंभ करना. ॥

श्लोकः ॥

ततश्च कुलदेशादि गुरुवाक्यविशेषतः ॥
अनुज्ञातं विवाहादि गर्ग्गादिमुनिभिः पुरा ॥ १ ॥

वृत्तम् ॥

सूर्यः षट् त्रिदशस्थितस्त्रिदशषट्सप्ताद्यगश्चंद्रमा
जीवः सप्तनवद्विपंचमगतो वक्रार्कजौ षट्त्रिगौ ॥
सौम्यः षट्द्विचतुर्दशाष्टमगतः सर्वेप्युपांते शुभाः
शुक्रः सप्तमषट्दशाष्टरहितः शार्दूलवत्त्रासकृत् ॥ १ ॥ "

स्त्रीयोंको बृहस्पति बलवान् होवे, पुरुषोंको सूर्य बलवान् होवे, और दंपतीको चंद्र बलवान् होवे तो, लग्न शोधना. ॥

प्रथम कन्यादानविधि कहते हैंः—पूर्वोक्त समान कुलशीलवाले, अन्य गोत्रीसें कन्या मांगनी. । पूर्वोक्त गुणविशिष्ट वरकेतांइ कन्या देनी. । कन्याके कुलज्येष्ठने वरके कुलज्येष्ठको, नालिकेर, क्रमुक (सुपारी) जिनोपवीत, व्रीही, दूर्वा, हरिद्रा अपने २ देशकुलोचित वस्तु दानपूर्वक कन्यादान करना.

तदा पक्षगुरु वेदमंत्र पढे । स यथा ॥

" ॥ ॐ अर्हं परमसौभाग्याय परमसुखाय परमभोगाय परमधर्म्माय परमयशसे, परमसन्तानाय भोगोपभोगांतरायव्यवच्छेदाय इमां अमुकनाम्नीं कन्यां अमुकगोत्रां अमुकनाम्ने वराय अमुकगोत्राय ददाति गृहाण अर्हं ॐ ॥ "

पीछे सर्व लोकोंकेतांइ कन्याके पक्षी तांबूल देवे. । तथा दूर रहे विवाहकालमें, वरके जीते हुए, सा कन्या अन्यको न देनी.

उक्तंच ॥

सकृज्जल्पन्ति राजानस्सकृज्जल्पन्ति पण्डिताः ॥
सकृत् प्रदीयते कन्या त्रीण्येतानि सकृत् सकृत् ॥ १ ॥

राजाओं एकवार बोलते हैं, पंडित जन एकवार बोलते हैं, कन्या एकवार देइए हैं. पूर्वोक्त तीन कार्य एकएकहीवार होते हैं. ॥ तथा वर भी, तिस कन्याको वस्त्र, आभरण, गंधादिउत्सवसहित, तिसके पिताके घरमें देवे. । कन्याका पिता भी, परिजनसंयुक्त वरको, महोत्सवसहित वस्त्र मुद्रिकादि देवे. ।

लग्नदिनसें पहिले मासमें, वा पक्षमें वैयक्र्यानुसारें दोनों पक्षोंके स्वजनोंको एकठे करके, सांवत्सर—ज्योतिषिकको उत्तम आसनऊपर बिठलाके, तिसके हाथसें विवाहलग्न भूमिके ऊपर लिखवावे; और रूप्य, स्वर्णमुद्रा, फल, पुष्प, दूर्वा करके जन्मलग्नवत् विवाहलग्नको पूजे. । पीछे ज्योतिषिकको दोनों पक्षोंके वृद्धनें वस्त्रालंकार तांबूलदान देवें.

इति विवाहारंभः ॥

तदपीछे कोरे शरावलोंमें यव बोवने । पीछे कन्याके घरमें मातृस्थापना, और षष्ठीस्थापना, षष्ठी आदि प्रक्रमोक्त प्रकारसें करना. । वरके घरमें जिनसमयानुसारियोंको मातृस्थापन, और कुलकरस्थापन करना। । परमतमें गणपति, कंदर्प स्थापन करते हैं. सो सुगम, और लोक प्रसिद्ध है.॥

अथ कुलकर स्थापनविधि कहते हैं. ॥ गृह्यगुरु भूमिपर पडे गोमय (गोबर) करके लीपी हुई भूमिमें, स्वर्णमय, रूप्यमय, ताम्रमय, वा श्रीपर्णीकाष्ठमय, पट्टा, स्थापन करे. । पट्टकस्थापन मंत्रः

"॥ ॐ आधाराय नमः आधारशक्तये नमः । आसनाय नमः ॥"

इस मंत्रकरके एकवार मंत्रके पट्टेको स्थापन करके, तिस पट्टेको अमृतामंत्रकरके तीर्थजलोंसें अभिषिंचन करे. । पीछे चंदन, अक्षत, दूर्वाकरके पट्टेको पूजे. । पीछे आदिमें

"॥ ॐ नमः प्रथमकुलकराय कांचनवर्णाय श्यामवर्णचंद्रयशःप्रियतमासहिताय हाकारमात्रोच्चारख्यापितन्याय्यपथाय विमलवाहनाभिधानाय इह विवाहमहोत्सवादौ आगच्छ २ इह स्थाने तिष्ठ २ सन्निहितो भव २ क्षेमदो भव २ उत्सवदो भव २ आनंददो भव २ भोगदो भव २ कीर्तिदो भव २ अपत्यसंतानदो भव २ स्नेहदो भव २ राज्यदो भव २ इदमर्घ्यं पाद्यं बलिं चर्चां आचमनीयं गृहाण २ सर्वोपचारान् गृहाण २ ॥ "

तदपीछे—

" ॥ ॐ गंधं नमः । ॐ पुष्पं नमः । ॐ धूपं नमः । ॐ दीपं नमः । ॐ उपवीतं नमः । ॐ भूषणं नमः । ॐ नैवेद्यं नमः । ॐ तांबूलं नमः ॥ "

पूर्व मंत्रकरी आव्हान करके, संस्थापन करके, सन्निहित करके, अर्घ्य, पाद्य, बलि, चर्चा, आचमनीय, दान देवे. अन्य ॐकारादिमंत्रोंकरके, गंध दो तिलक, दो पुष्प, दो धूप, दो दीप एक उपवीत, दो स्वर्णमुद्रा, दो नैवेद्य, दो तांबूल, देवे. ॥ १ ॥

पीछे दूसरे स्थानमें ॥

"॥ ॐ नमो द्वितीयकुलकराय श्यामवर्णाय श्यामवर्णचंद्रकांताप्रियतमासहिताय हाकारमात्रख्यापितन्याय्यपथाय चक्षुष्मदभिधानाय ॥" शेषं पूर्ववत् ॥ २ ॥

"॥ॐ नमस्तृतीयकुलकराय श्यामवर्णाय श्यामवर्णसुरूपाप्रियतमासहिताय माकारमात्रख्यापितन्याय्यपथाय यशस्व्यभिधानाय ॥" ॥ शेषं पूर्ववत् ॥

"॥ ॐ नमश्चतुर्थकुलकराय श्वेतवर्णाय श्यामवर्णप्रतिरूपा-प्रियतमासहिताय माकारमात्रख्यापितन्याय्यपथाय अभिचंद्रा-भिधानाय ॥" शेषं पूर्ववत् ॥

"॥ॐ नमः पंचमकुलकराय श्यामवर्णाय श्यामवर्णचक्षुःकांता-प्रियतमासहिताय धिक्कारमात्रख्यापितन्याय्यपथाय प्रसेनजिद-भिधानाय ॥" शेषं पूर्ववत् ॥ ५ ॥

"॥ॐ नमः षष्ठकुलकराय स्वर्णवर्णाय श्यामवर्णश्रीकांता-प्रियतमासहिताय धिक्कारमात्रख्यापितन्याय्यपथाय मरुदे-वाभिधानाय ॥" शेषं पूर्ववत् ॥ ६ ॥

"॥ॐ नमः सप्तमकुलकराय कांचनवर्णाय श्यामवर्णमरुदे-वाप्रियतमासहिताय धिक्कारमात्रख्यापितन्याय्यपथाय ना-भ्यभिधानाय ॥" शेषं पूर्ववत् ॥ ७ ॥ इतिकुलकरस्थापन पूजनविधि : ॥

यह कुलकरस्थापना और परसमयमें गणेशमदनस्थापना, विवाहके पीछे भी सात अहोरात्रपर्यंत रखनी चाहिये. । पीछे वरके घरमें शांतिक पौष्टिक करे. और कन्याके घरमें मातृपूजा पूर्ववत् । तदपीछे विवाहका-लसें पूर्व सात, नव, इग्यारह, वा तेरह, दिनोंमें वधूवरको अपने २ घरमें, मंगलगीतवाजंत्रपूर्वक, तैलाभिषेक और स्नान, नित्य विवाहपर्यंत कराना. । प्रथमतैलाभिषेकदिनमें, वरके घरसें कन्याके घरमें, तैल, शिरः प्रसाधनगंधद्रव्य, द्राक्षादि खाद्य शुष्कफल, भेजने. । नगरकी औरतें वरके घरमें, और कन्याके घरमें, तैल, धान्य, ढोकन करें । वधूवरके घरकी वृद्ध नारीयों तिन तैल धान्यढोकनेवाली नारीयोंको, पूडे आदि पक्वान्न देवें । तहां धारणादि देशाचार, कुलाचारोंसें करना. । तैलाभिषेक, कुलकर गणेशादि स्थापन, कंकणबंध, अन्यविवाहके उपचारादिक सर्व, वधूवरको चंद्रबलके हुए, विवाहवाले नक्षत्रमें करना. । तथा धूलिभक्त, कौरभक्त, सौभाग्यजलल्यावन प्रमुख, कर्म, मंगलगीतवाजंत्रादिसहित

देशाचार कुलाचार विशेषसें करना. । तदपीछे जेकर, वर, अन्य ग्रामांतर, नगरांतर, वा देशांतरमें होवे तो, तिसकी गमनयात्रा * कन्याके निवासस्थानप्रति करनी; तिसका विधि यह है. ॥

प्रथम एक दिनमें मातृपूजापूर्वक सर्व लोकोंको भोजन देना; पीछे दूसरे दिन सुस्नात होके, चंदनका लेपन करके, वस्त्रगंधमाल्यादिकरके अलंकृत होके, मुकुटकरके भूषित शिरको करके, घोडेपर, वा हाथीपर, वा पालखीमें आरूढ होके, वर चले. । तिसके समीप, अच्छे वस्त्रोंवाले, प्रमोदसहित, पानबीडे चावे हुए, संबंधी ज्ञातिजन, अपनी २ संपदानुसार घोडेआदि ऊपर चढे हुए, वा पगोंसें चलते हुए, वरकेसाथ चलें. । दोनों पासे, मंगलगानमें प्रसक्त ऐसी ज्ञातिकी नारीयां चलें और आगे ब्राह्मणलोक, ग्रहशांतिमंत्र पढते हुए चलें. ॥

स यथा ॥

"॥ॐ अर्हं आदिमोर्हन् आदिमो नृपः आदिमो यंता आदिमो नियंता आदिमो गुरुः आदिमः स्रष्टा आदिमः कर्त्ता आदिमो भर्त्ता आदिमो जयी आदिमो नयी आदिमः शिल्पी आदिमो विद्वान् आदिमो जल्पकः आदिमः शास्ता आदिमो रौद्रः आदिमः सौम्यः आदिमः काम्यः आदिमः शरण्यः आदिमो दाता आदिमो वंद्यः आदिमः स्तुत्यः आदिमो ज्ञेयः आदिमो ध्येयः आदिमो भोक्ता आदिमः सोढा आदिम एकः आदिमोऽनेकः आदिमः स्थूलः आदिमः कर्म्मवान् आदिमोऽकर्म्मा आदिमो धर्म्मवित् आदिमोऽनुष्ठेयः आदिमोऽनुष्ठाता आदिमः सहजः आदिमो दशावान् आदिमः सकलत्रः आदिमो निःकलत्रः आदिमो विवोढा आदिमः ख्यापकः आदिमो ज्ञापकः आदिमो विदुरः आ-

* जान–जनेत–बरातइतिलोकप्रसिद्ध. ॥

दिमः कुशलः आदिमो वैज्ञानिकः आदिमः सेव्यः आदिमो-
गम्यः आदिमो विमृश्यः आदिमो विम्रष्टा सुरासुरनरोरग-
प्रणतः प्राप्तविमलकेवलो यो गीयते सकलप्राणिगणहि-
तो दयालुरपरापेक्षापरात्मा परंज्योतिः परं ब्रह्म परमैश्व-
र्यभाक् परंपरः परापरो जगदुत्तमः सर्वगः सर्ववित् सर्व-
जित् सर्व्वीयः सर्व्वप्रशस्यः सर्ववंद्यः सर्वपूज्यः सर्वात्माऽसं-
सारोऽव्ययोऽवार्यवीर्यः श्रीसंश्रयः श्रेयः संश्रयः विश्वाव-
श्यायहृत् संशयहृत् विश्वसारो निरंजनो निर्म्ममो निःक-
लंको निःपाप्मा निःपुण्यः निर्मना निर्वाचा निर्देहो निःसं-
शयो निराधारो निरवधिःप्रमाणं प्रमेयं प्रमाता जीवाजी-
वाश्रववंधसंवरनिर्ज्जरावंधमोक्षप्रकाशकः स एव भगवान्
शान्तिं करोतु तुष्टिं करोतु पुष्टिं करोतु ऋद्धिं करोतु वृद्धिं
करोतु सुखं करोतु सौख्यं करोतु श्रियं करोतु लक्ष्मीं
करोतु अर्हँ ॐ ॥"

ऐसें आर्यवेदके पाठी ब्राह्मण, आगे चलें.। तदपीछे इसी विधिसें महोत्सवकरके, चैत्यपरिपाटी, गुरुवंदन, मंडलीपूजन, नगरदेवतादिपूजन करके, नगरके समीप रहे; पीछे पंथमें चलें.। तथा इसीरीतिसें कन्याधिष्ठित नगरमें प्रवेश करना.। तिसही नगरमें विवाहकेवास्ते चले हुए वरका भी, यही विधि जाणना.। तथा नित्यस्नानके अनंतर कौसुंभसूत्र करके वधूवरके शरीरका माप करना.। तदपीछे विवाहदिनके आये हुए, विवाहलग्नसें पहिले, तिसही नगरका वासी, वा अन्यदेशसें आया वर, तिसही पूर्वोक्त विधिसें, पाणिग्रहणकेवास्ते चले. तिसकी बहिनां विशेष करके लूणआदि उत्तारण करे.। पीछे वर, आडंबर और पद्मगुरुसहित कन्याके घरके द्वारमें आवे. तहां खडे हुए वरको, तिसके सासुजन, कर्पूरदीपकादिकरके आरात्रिक (आरति) करे.। तदपीछे अन्य स्त्री, जलते हुए अंगारे, और लवणकरके संयुक्त, त्रड त्रड ऐसे शब्द करते हुए,

सरावसंपुटको, वरको निरुंछन करके, प्रवेशमार्गके वामे पासे स्थापन करे.। तदपीछे अन्य स्त्री कौसुंभसूत्रसें अलंकृत, मंथानको लाके, तिसकरके तीन वार वरके ललाटको स्पर्श करे.। पीछे वर, वाहनसें नीचे उतरके, वामे पग करी तिस अग्निलवणगर्भसंपुटको खंडित करे (तोडे).। पीछे वरकी सासु, वा कन्याकी मामी, वा कन्याका मामा, कौसुंभवस्त्रको वरके कंठमें डालके, खेंचता हुआ वरको मातृघरमें ले जावे. तहां विभूषाकरके, कौतुकमंगलकरके, प्रथम आसनऊपर बैठी हुई कन्याके वामे पासे, मातृदेवीके सन्मुख, वरको बिठलावे.। तदपीछे गृह्यगुरु लग्नवेलामें शुभांशके हुए, पीसी हुई समी (खेजडी) की छाल, और पीपकी छाल, चंदनद्रव्यमिश्रितकरके, तिससें लीपे हुए, वधूवरके दोनों दाक्षिण हाथ जोडे.। उपर कौसुंभसूत्रसें बांधे. ॥

हस्तबंधनमंत्रः ॥

"॥ ॐ अर्हं आत्मासि जीवोसि समकालोसि समचित्तोसि समकर्म्मासि समाश्रयोसि समदेहोसि समक्रियोसि समस्नेहोसि समचेष्टितोसि समाभिलाषोसि समेच्छोसि समप्रमोदोसि समविषादोसि समावस्थोसि समनिमित्तोसि समवचाअसि समक्षुत्तृष्णोसि समगमोसि समागमोसि समविहारोसि समविषयोसि समशब्दोसि समरूपोसि समगंधोसि समस्पर्शोसि समेंद्रियोसि समाश्रवोसि समबंधोसि समसंवरोसि समनिर्जरोसि सममोक्षोसि तदेह्येकत्वमिदानीं अर्हं ॐ ॥" इति हस्तबंधनमंत्रः ॥

यहां समयांतरमें वैदिक मतमें मधुपर्क*भक्षण, देशांतरमें वरको दो गौयां देनी, और कुलांतरमें कन्याको आभरण पहिरावणे, इत्यादि करते

*ऋग्वेदके आश्वलायनसूत्रके दूसरे हिस्से गृह्यसूत्रके प्रथम अध्यायकी चौवीसमी कंडिकामें मधुपर्कका विधि किया है, तिसके सूत्र नीचे प्रमाणे हैं. ॥

हैं। तदपीछे वधुवरको मातृघरमें बैठे हुए, कन्याके पक्षी, वेदिकी रचना करें; तिसका विधि यह है. ॥ कितनेक काष्ठस्तंभ काष्ठाच्छादनों-करके चौकूणी वेदी करते हैं; और कितनेक चारों कूणोंमें स्वर्ण, रूप्य, ताम्र, वा माटीके सात सात कलशोंको ऊपर लघु लघु, अर्थात् प्रथम बडा उसके ऊपर छोटा, उसके ऊपर फिर छोटा, एवं स्थापन करके चारों पासे चार चार आर्द्र वांसोंसें बांधके वेदि करते हैं. चारों बार-णोंमें वस्त्रमय, वा काष्ठमय तोरण, और वंदनमालिका बांधते हैं; और अंदर त्रिकोण अग्निका कुंड करते हैं. । वेदी बनाया पीछे गृह्यगुरु, पूर्वोक्त वेष धारण करके वेदिकी प्रतिष्ठा करे. । तिसका विधि यह है. ॥

---

१ ऋत्विजो वृत्वा मधुपर्कमाहरेत् ।१–२४–१॥ २स्नातकयोपस्थिताय ।१।२४।२॥ ३राज्ञे च ।१।२४।३॥ ४आचार्यश्वशुरपितृव्यमातुलानां च ।१।२४। ४॥ ५ आचांतोदकाय गां वेदयन्ते। १।२४।२३ ॥ ६ हतो मे पाप्मापाप्मामे हत । इति जपित्वोंकुरुतेति कारयिष्यन् ।१।२४।२४॥ [नारायणवृत्ति–इम मत्र जपित्वा ओम् कुरुतेति ब्रूयात् यदि कारयिष्यन् मारयिष्यन् भवति तदा च दाता आलभेत्] ७ नामांसो मधुपर्को भवति ॥ १।२४।२६ ॥ [नारायणवृत्ति–मधुपर्कांगभोजनं अमांसं न भवतीत्यर्थः पशुकरणपक्षे तन्मासेन भोजनं उत्सर्जनपक्षे मांसांतरेण]–अर्थः ॥ यज्ञ करनेवास्ते ऋत्विज खडा करते वखत तिसको मधुपर्क देना चाहिये। इसीतरें विवाहवास्ते जो वर घरमें आवे तिसको, और राजा घरमें आवे तिसको मधुपर्क देना चाहिये। आचार्य, गुरु, श्वशूर, चाचा, मामा, येह घरमें आवे तो तिनको भी मधुपर्क देना चाहिये। मुख साफ करनेवास्ते पाणी देकर तिसके आगे गाय खडी रखनी चाहिये। सूत्रमें लिखा मत्र पढके ओम् कहके वरके स्वामिने गौका वध करना। मधुपर्कांगभोजन, विनामांसके नही होता है, इसवास्ते पशुके वधपूर्वक मधुपर्क करा होवे तो, तिसही पशुका मांस भोजनके काममें आवे, और पशुको छोड दीया होवे तो, और मांससें भोजन करणा चाहिये. ॥

तथा मणिलाल नभूभाइ द्विवेदी सिद्धांतसारमे लिखते हैं॥ "विवाहके संबंधमें मधुपर्ककी बात कहने-जोग है. ऐसा धर्माचार है कि आये हुए अतिथिकेवास्ते मधुपर्क करना चाहिये. वर भी अतिथिही है. असल जैसें यज्ञकेवास्ते गोवध विहित था, तैसे मधुपर्कवास्ते भी गौका वा बैलका वध विहित था. मांसविना मधुपर्क नही ऐसे आश्वलायन कहता है; और नाटकादिकोंसे मालुम होता है, कि अच्छे महर्षियोंवास्ते भी, मधुपर्कमे गोवध किया है. आश्चर्यकी बात है, कि जो गौ आज बहुत पवित्र गिणी जाती है, तिसको प्राचीन समयमे यज्ञकेवास्ते तथा मधुपर्ककेवास्ते मारनेका रीवाज था? हाल तो मधुपर्कमें फक्त दधि मधु और घृत येहां वापरते हैं. "—जैसे अनार्य वेदोमे हिंसक क्रिया कथन करी है, तैसें आर्य वेदोंमे नही है। और मधुपर्कमें तथा यज्ञमें प्रायः जीववध बंध हुआ है सो भी जैन, बौद्ध, वैष्णवादि संप्रदायोंके जोर (बल) का प्रताप है. मणिलाल नभुभाइ सिद्धांतसारमें लिखते हैं॥ "पाटण, खंभात, जैसलमेर, जेपुर आदि स्थलोंके जैनभंडार लाखों पुस्तकोंसें भरपूर हैं, और विद्याके खरे भंडाररूप हैं. इसतरें दक्ष

वास पुष्प अक्षतों करके हाथ भरके ॥

"॥ ॐ नमः क्षेत्रदेवतायै शिवायै क्षाँ क्षीँ क्षूँ क्षौँ क्षः इह विवाहमंडपे आगच्छ २ इह बलिपरिभोग्यं गृह्ण २ भोगं देहि सुखं देहि यशो देहि संततिं देहि ऋद्धिं देहि वृद्धिं देहि बुद्धिं देहि सर्वसमीहितं देहि २ स्वाहा॥"

ऐसें पढके चारों कोणोंमें न्यारे न्यारे वास, माल्य, अक्षत, क्षेप करना; तोरणकी प्रतिष्ठा भी ऐसेंही करनी.

तन्मंत्रो यथा ॥

"॥ ॐ ह्रीँ श्रीँ नमो द्वारश्रियै सर्वपूजिते सर्वमानिते सर्वप्रधाने इह तोरणस्थासर्वसमीहितं देहि २ स्वाहा॥"

॥ इतितोरणप्रतिष्ठा ॥

तदपीछे वेदिके मध्यमें अग्निकोणेमें अग्निकुंडमें मंत्रपूर्वक अग्निको स्थापन करे.।

अग्निन्यासमंत्रो यथा ॥

"॥ ॐ रं रां रीं रूं रैं रः नमोऽग्नये नमो बृहद्भानवे नमोनंततेजसे नमोनंतवीर्याय नमोनंतगुणाय नमो हिरण्यरेतसे नमश्छागवाहनाय नमो हव्यासनाय अत्र कुंडे आगच्छ २ अवतर २ तिष्ठ २ स्वाहा॥"

मूल डालके चला हुआ यह अहिंसारूप परम धर्म अपनी दृष्टिके आगे अद्यापि भी है. ब्राह्मणोंके धर्मको वेदमार्गको तथा यज्ञमे होती हिंसाको–खरा धक्का इसी धर्मने लगाया है. बुद्धके धर्मने वेदमार्गकाही इनकार किया था तिसको अहिंसाका आग्रह नहीं था. यह महादयारूप, प्रेमरूप धर्म, तो जैनकाही हुआ. सारे हिंदुस्थानमेंसें पशुयज्ञ निकल गया है, फक्त छेक दक्षिणमें, जहा बौद्ध के जैनकी छाया बराबर पड शकी नही है, तहाही चालु है. इतनाही नही परंतु उपनिषदोंका ज्ञानमार्ग सर्वथा सतेज होके, जैनोंके जीवाजीव तथा कर्म धर्मरूप वादपरत्वे, बहोत बहार आया है ऐसें शकारूप, बौद्ध तथा जैन धर्मोने दर्शनोंके परम धर्मका रस्ता किया है, तत्त्वदृष्टिको खरे रूपमे प्रवर्त्तनेका मार्ग किया है, और वर्ण जाति सब मूलाके, मनुष्यमात्रको परम प्रेममें एकात्मभाव प्राप्त करणहार ब्रह्मज्ञानका उदय सूचन किया है." यद्यपि साम्प्रत कितनेक अज्ञानी कदाग्रही पुनः हिंसक क्रियाको उत्तेजन कर रहे है, तथापि तिसका सार्वत्रिक होना असंभव है, प्रतिपक्षियोंकेविद्यमान होनेसें. ॥

है कि, पूर्व पर्यायका नाश और उत्तर पर्यायका उत्पाद होना. जैसें मट्टीरूप द्रव्य, स्थासक, कोश, कुशूल, शिबक, घटादि अवस्थांतरांको प्राप्त हुआ भी, एकांत विनष्ट नही होता है. तिन अवस्थायोंमें भी, मृत्तिकाद्रव्यके अनुगमको आबालगोपालादिकोंको प्रतीत होनेसें. और ऐसें भी न कहना कि, अंधकार, पुद्गलरूप नही है; नेत्रोंके विषयकी अन्यथा अनुपपत्ति होनेसें प्रदीपालोकवत् तिसको पौद्गलिकपणा सिद्ध है.

पूर्वपक्षः—जो चाक्षुष है, सो सर्व अपने प्रतिभासमें आलोककी अपेक्षा करता है. परंतु तम ऐसा नही है; तो फिर तमको कैसें चाक्षुषपणा होवे ?

उत्तरपक्षः—उलूकादिकोंको तिसके विनाभी अंधकारक प्रतिभास होनेसें. जिन अस्मदादिकोंने अन्यत् चाक्षुष घटादिक आलोक विना उपलंभ नही करीये है, तिनोही अस्मदादिकोंने तिमिरको देखीये है भावोंके विचित्र होनेसें. अन्यथा कैसें पीत श्वेतादि भी, स्वर्ण, मुक्ताफलादि पदार्थ आलोककी अपेक्षासें दीखते हैं, और प्रदीप चंद्रादि प्रकाशांतरकी अपेक्षा रहित दीख पडते हैं. इससें सिद्ध हुआ कि, तमः चाक्षुष द्रव्य है. नेत्रोंसें दीखनेवाला द्रव्य है, और रूपवान् होनेसें. स्पर्शवाला भी जाना जाता है, शीतस्पर्शके ज्ञानका जनक होनेसें. और जे अनिवडावयवत्व, अप्रतिघातित्व, अनुद्भूतस्पर्शविशेषवत्त्व, अप्रतीयमान खंडावयविद्रव्याविभागत्व, इत्यादि तमके पौद्गलिकपणेके निषेध वास्ते परवादियोंने साधन उपन्यास करे हैं, वे सर्व प्रदीप प्रभाके दृष्टांत करकेही प्रतिषेध करने योग्य हैं, तुल्ययोग क्षेम होनेसें. और ऐसें भी न कहना कि, तैजस परमाणु तमपणे कैसें परिणमते हैं ? क्योंकि, पुद्गलोंमें तिस तिस सामग्रीके सहकारी हुआ, विसदृशकार्यका उत्पादकपणा भी देखनेमें आता है. देखा है आर्द्रेंधनके संयोगसें, भास्वररूप भी अग्निसें, अभास्वररूप धूमकार्यका उत्पाद. इस हेतुसें सिद्ध हुआ कि, नित्यानित्यरूप प्रदीप है. जिस अवसरमें बूझनेसें पाहिले देदीप्यमान दीप है, तिस अवसरमें भी नवीन नवीन पर्यायोंके उत्पाद व्ययका भागी होनेसें और प्रदीप अन्वयके होनेसें नित्यानित्यरूपही दीपक है.

नतप्राणतारणाच्युतग्रैवेयकानुत्तरभवान् वैमानिकान् इंद्र-सामानिकपार्षद्यत्रायस्त्रिंशल्लोकपालानीकप्रकीर्णकलौकांतिकाभियोगिकभेदभिन्नांश्चतुर्णिकायानपि सभार्यान् सायुधबलवाहनान् स्वस्वोपलक्षितचिह्नान् अप्सरसश्च परिगृहितापरिगृहितभेदभिन्नाः ससखिकाः सदासिकाः साभरणा रुचकवासिनीर्दिक्कुमरिकाश्च सर्वाःसमुद्रनदीगिर्याकरवनदेवतास्तदेतान् सर्वान् सर्वाश्च इदमर्घ्यं पाद्यमाचमनीयं बलिं चरुं हुतं न्यस्तं ग्राहय २ स्वयं गृहाण २ स्वाहा अर्हँ ॐ॥"

तदपीछे अच्छीतरें हुत करके प्रदीप्त अग्निके हुए, गृह्यगुरु, तहांसें उठके दक्षिणपासे स्थित हुई वधूके सन्मुख बैठके, ऐसा कहे. ॥

"॥ ॐ अर्हँ इदमासनमध्यासीनौ स्वध्यासीनौ स्थितौ सुस्थितौ तदस्तु वां सनातनः संगमः अर्हँ ॐ ॥"

ऐसें कहके कुशाग्रतीर्थोदककरके दोनोंको सींचन करे.। पीछे वधूका पितामह, वा पिता, वा चाचा, वा भाइ वा मातामह, वा कुलज्येष्ठ, धर्मानुष्ठान करके उचित वेषवाला, वधूवरके आगे बैठे.। शांतिक पौष्टिकसें आरंभके विवाहसें मासपर्यंत, मंगलगान, वादित्रवादन, भोजन तांबूल वस्त्र सामग्री, सदैव गवेसीये हैं. ॥

तदपीछे गृह्यगुरु ॥

"॥ ॐ नमोर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधुभ्यः ॥"

ऐसें कहके, प्रथम अक्षतपूर्ण हाथवाला होके वधूवरके आगे ऐसा कहे. ॥

"विदितं वां गोत्रं संबंधकरणेनैव ततः प्रकाश्यतां जनाग्रतः"

जांना है तुमारा गोत्र, संबंध करनेसेंही; तिसवास्ते प्रकाश करो, लोकोंके आगे.। तब प्रथम वरके पक्षीय, अपने गोत्र, अपनी प्रवर, ज्ञाति और अपने अन्वय—वंशको प्रकाश करे,। पीछे वरकी माताके पक्षीय,

समयांतरमें, देशांतरमें वा कुलांतरमें, वेद्यंतरमेंही, हस्तलेपन करते हैं. देश कुलाचारादिसें मधुपर्क प्राशनके अनंतर, वेदि; और हस्तलेपसें पहिले परस्पर कंवायुद्ध, वधूवरास्फालन, वेडानयन, मणिग्रथन, स्नान, आष्टकर्म, पर्याणकर्म्म, वस्त्रकौसुंभसूत्रांतःकर्पणप्रमुख, कर्म्म करते हैं. वे देशविशेपलोकोंसें जाण लेने. व्यवहार शास्त्रोंमें नही कहे हैं. परंतु स्त्रीयोंको सौभाग्यप्राप्तिवास्ते, शोक आदि न होवे तिसके वास्ते, वरको वशीभूत करनेकेवास्ते करते हैं. ॥

तदपीछे युक्त हाथवाले, नारी और नरकी कटीउपर चढे हुए वधूवर दोनोंको, गीतवाजंत्रादि वहुत आडंवरसें दक्षिण द्वारसें प्रवेश कराके वेदिके मध्यमें लावे. । तदपीछे देशकुलाचारसें काष्ठासनोंके ऊपर, वा वेत्रासनोंके ऊपर, वा सिंहासनके ऊपर, वा अधोमुखी शरमय खारीके ऊपर, वधूवरको पूर्वसन्मुख विठलावे. । तथा हस्तलेपमें, और वेदिकर्ममें कुलाचारके अनुसार दसियां सहित कौरवस्त्र, वा कौसुंभवस्त्र, वा स्वभाववस्त्र वधूवरको पहिरावे हैं. । तदपीछे गृह्यगुरु, उत्तरसन्मुख मृगचर्म ऊपर वैठाहुआ, शमी, पिप्पल, कपित्थ (कवठ–कएतवेल) कुटज (कुडची–जिस वृक्षका फल इंद्रयव होता है), विल्व, आमलकके इंधनकरके अग्निको जगाके, इस मंत्रकरके घृत मधु तिल यव नाना फलोंका हवन करे ॥

मंत्रो यथा ॥

"॥ॐ अर्हं अग्ने प्रसन्नः सावधानो भव तवायमवसरः तदाह्वारयेंद्रं यमं नैर्ऋतं वरुणं वायुं कुवेरमीशानं नागान् ब्रह्माणं लोकपालान् ग्रहांश्च सूर्यशशिकुजसौम्यवृहस्पतिकविशनिराहुकेतून् सुरांश्चासुरनागसुपर्णविद्युदग्निद्वीपोदधिदिक्कुमारान् भुवनपतीन् पिशाचभूतयक्षराक्षसकिन्नरकिंपुरुषमहोरगगंधर्वान् व्यंतरान् चंद्रार्कग्रहनक्षत्रतारकान् ज्योतिष्कान् सौधर्म्मैशान् * सनत्कुमारमाहेंद्रब्रह्मलांतकशुक्रसहस्रारा-

* मत्यंतरे 'श्रीवत्सासंडकपद्मोत्तरवह्मोत्तर' इत्यधिकपाठो दृश्यते.

यह मंत्र पढके फेर ऐसा कहे.

"॥ तदस्तु वां सिद्धप्रत्यक्षं केवलिप्रत्यक्षं चतुर्णिकायदेवप्रत्यक्षं विवाहप्रधानाग्निप्रत्यक्षं नागप्रत्यक्षं नरनारीप्रत्यक्षं नृपप्रत्यक्षं जनप्रत्यक्षं गुरुप्रत्यक्षं मातृप्रत्यक्षं पितृप्रत्यक्षं मातृपक्षप्रत्यक्षं पितृपक्षप्रत्यक्षं ज्ञातिस्वजनबंधुप्रत्यक्षं संबंधः सुकृतः सदनुष्ठितः सुप्राप्तः सुसंबद्धः सुसंगतः तत्प्रदक्षिणीक्रियतां तेजोराशिर्विभावसुः ॥"

ऐसें कहके तैसेंही ग्रथित अंचल वरवधू, अग्निकी प्रदक्षिणा करें. तैसें प्रदक्षिणाकरके तैसेंही पूर्वरीतिसें बैठे. लाजा तीनकी तीनों प्रदक्षिणामें आगे वधू और पीछे वर होवे. दक्षिण पासे वधूका आसन, और वामे पासे वरका आसन. ॥ इति प्रथमलाजाकर्म ॥

तदपीछे वरवधूके आसन ऊपर बैठे हुए, गुरु वेदमंत्र पढे.

"॥ॐ अर्हं कर्म्मास्ति मोहनीयमस्ति दीर्घस्थित्यस्ति निबिडमस्ति दुःछेद्यमस्ति अष्टाविंशतिप्रकृत्यस्ति क्रोधोस्ति मानोस्ति मायास्ति लोभोस्ति संज्वलनोस्ति प्रत्याख्यानावरणोस्ति अप्रत्याख्यानोस्ति अनंतानुबंध्यस्ति चतुश्चतुर्विधोस्ति हास्यमस्ति रतिरस्ति अरतिरस्ति भयमस्ति जुगुप्सास्ति शोकोस्ति पुंवेदोस्ति स्त्रीवेदोस्ति नपुंसकवेदोस्ति मिथ्यात्वमस्ति मिश्रमस्ति सम्यक्त्वमस्ति सप्तति कोटाकोटिसागरस्थित्यस्ति अर्हं ॐ ॥"

यह वेदमंत्र पढके ऐसा कहे.

"॥ तदस्तु वां निकाचितनिविडबद्धमोहनीयकर्मोदयकृतः स्नेहः सुकृतोस्तु सुनिष्ठितोस्तु सुसंबंधोस्तु आभवमक्षयोस्तु तत् प्रदक्षिणीक्रियतां विभावसुः ॥"

गोत्र, प्रवर, ज्ञाति, और अन्वयको प्रकाश करे. । तदपीछे कन्याके पक्षीय, अपने गोत्र, प्रवर, ज्ञाति, अन्वयको प्रकाश करे. । फिर कन्याकी माताके पक्षीय, गोत्र, प्रवर, ज्ञाति, अन्वयको प्रकाश करे. ।

तदपीछे गृह्यगुरु. ॥

"॥ ॐ अर्हं अमुकगोत्रीयः इयत्प्रवरः अमुकज्ञातिः अमुकान्वयः अमुकप्रपौत्रः अमुकपौत्रः अमुकपुत्रः अमुकगोत्रीयः इयत्प्रवरः अमुकज्ञातीयः अमुकान्वयःअमुकप्रदौहित्रःअमुकदौहित्रः अमुकः सर्ववरगुणान्वितो वरयिता अमुकगोत्रीया इयत्प्रवरा अमुकज्ञातीया अमुकान्वया अमुकप्रपौत्री अमुकपौत्री अमुकपुत्री अमुकगोत्रीया इयत्प्रवरा अमुकज्ञातीया अमुकान्वया अमुकप्रदौहित्री अमुकदौहित्री अमुका वर्या तदेतयोर्वर्यावरयोर्वरवर्ययोर्निविडोविवाहसंबंधोस्तु शांतिरस्तु तुष्टिरस्तु पुष्टिरस्तु धृतिरस्तु वृद्धिरस्तु धनसंतानवृद्धिरस्तु अर्हं ॐ ॥" ऐसे कहे. ॥

तदपीछे गृह्यगुरु, वरवधूके पाससें गंध, पुष्प, धूप, नैवद्य करके अग्निकी पूजा करवावे. । पीछे वधू लाजांजलिको अग्निमें निक्षेप करे. । तदपीछे फिर तैसेंही दक्षिण पासे वधू, और वामे पासे वर बैठे. । पीछे गृह्यगुरु वेदमंत्र पढे.

"॥ ॐ अर्हं अनादिविश्वमनादिरात्मा अनादिकालः अनादिकर्म अनादिसंबंधो देहिनां देहानुमतानुगतानां क्रोधाहंकारछद्मलोभैः संज्वलनप्रत्याख्यानावरणाप्रत्याख्यानानंतानुबंधिभिः शब्दरूपरसगंधस्पर्शैरिच्छानिच्छापरिसंकलितैः संबंधोनुबंधः प्रतिबंधः संयोगः सुगमः सुकृतः स्वनुष्ठितः सुनिवृत्तः सुप्राप्तः सुलब्धो द्रव्यभावविशेषेण अर्हं ॐ ॥"

योगे अमुककरणे अमुकमुहूर्त्ते पूर्वकर्मसंबंधानुबद्धवस्त्रगंध-माल्यालंकृतां सुवर्णरूप्यमणिभूषणभूषितां ददात्ययं प्रतिगृह्णीष्व ॥"

ऐसें कहके वधूवरके योजित हाथमें जलक्षेप करे.। तब वर कहे. "प्रतिगृह्णामि" तदनंतर गुरु कहे.

"॥ सुप्रतिगृहीतास्तु शांतिरस्तु पुष्टिरस्तु ऋद्धिरस्तु वृद्धि-रस्तु धनसंतानवृद्धिरस्तु ॥"

तदपीछे प्रथम तीन लाजामें वरके हाथ ऊपर रहे कन्याके हाथको नीचे करे, और वरके हाथको ऊपर करे.। पीछे वरवधूको आसनसें ऊठाकर वरको आगे करे, और वधूको पीछे करे.। पीछे लाजाकी मुष्टि अग्निमें प्रक्षेप करके गुरु ऐसें कहे. "प्रदक्षिणीक्रियतां विभावसुः" वर-वधूको प्रदक्षिणा करते हुए, कन्याका पिता, यावत् कन्याका कुलज्येष्ठ, वा वरवधूके देनेयोग्य वस्त्र, आभरण, स्वर्ण, रूप्य, रत्न, ताम्र, कांश्य, भूमि, निःक्रय, हाथी, घोडा, दासी, गौ, बैल, पल्यंक, तूलिका, उत्सीर्षक, दीप, शस्त्र, पाकके भांडे, आदि सर्व वस्तुको वेदिमें ल्यावे.। और भी तिसके भाइ, संबंधी, मित्रादि, स्वसंपदाके अनुसारसें पूर्वोक्त वस्तुयों वेदिमें ल्यावें.। तदपीछे प्रदक्षिणाके अंतमें वरवधू, तैसेंही आसन ऊपर बैठें.। नवरं इतना विशेष है कि, चतुर्थ लाजाके अनंतर वरका आसन दाक्षिण पासे, और वधूका आसन वामे पासे करणा.। तदपीछे गृह्यगुरु, कुश दूर्वा अक्षत वास करके हस्त पूर्ण हुआ थका, ऐसें कहे.

"॥ शक्रादिदेवकोटिपरिवृतो भोग्यफलकर्मभोगाय संसारि-जीवव्यवहारमार्गसंदर्शनाय सुनंदासुमंगले पर्यणैषीत् ज्ञात-मज्ञातं वा तदनुष्ठानमनुष्ठितमस्तु ॥"

ऐसें कहके वास, दूर्वा, अक्षत, कुशको वरवधूके मस्तक ऊपर क्षेप करे.। तदपीछे गृह्यगुरुके कहनेसें वधूका पिता, जल, यव, तिल, कुशको

फेर भी तैसेंही अग्निकी प्रदक्षिणा करे. ॥ इति द्वितीयलाजाकर्म्म ॥

चारोंही लाजामें प्रदक्षिणाके प्रारंभमें वधू, अग्निमें लाजामुष्टि प्रक्षेप करे. तदपीछे तिन दोनोंके, तैसेंही बैठे हुए, गुरु, ऐसा वेदमंत्र पढे.

" ॥ ॐ अर्हं कर्म्मास्ति वेदनीयमस्ति सातमस्ति असातमस्ति सुवेद्यं सातं दुर्वेद्यमसातं सुवर्गणाश्रवणं सातं दुर्वर्गणाश्रवणमसातं शुभपुद्गलदर्शनं सातं दुःपुद्गलदर्शनमसातं शुभषड्रसास्वादनं सातं अशुभषड्रसास्वादनमसातं शुभगंधाघ्राणं सातं अशुभगंधाघ्राणमसातं शुभपुद्गलस्पर्शः सातं अशुभपुद्गलस्पर्शोऽसातं सर्वं सुखकृत् सातं सर्वं दुःखकृदसातं अर्हं ॐ ॥ "

इस वेदमंत्रको पढके ऐसें कहे.

" ॥ तदस्तु वां सातवेदनीयं माभूदसातवेदनीयं तत् प्रदक्षिणीक्रियतां विभावसुः ॥ "

इति पुनः अग्निको प्रदक्षिणा करके वधूवर दोनों तैसेंही बैठ जावे. ॥ इति तृतीयलाजाकर्म ॥

तदपीछे गृह्यगुरु ऐसा वेदमंत्र पढे.

" ॥ ॐ अर्हं सहजोस्ति स्वभावोस्ति संबंधोस्ति प्रतिबद्धोस्ति मोहनीयमस्ति वेदनीयमस्ति नामास्ति गोत्रमस्ति आयुरस्ति हेतुरस्ति आश्रवबद्धमस्ति क्रियाबद्धमस्ति कायबद्धमस्ति सांसारिकसंबंधः अर्हं ॐ ॥ "

ऐसा वेदमंत्र पढके, कन्याके पिताके, चाचेके, भाइके वा कुलज्येष्ठके, हाथको तिलयवकुशदूर्वासंयुक्त जलसें पूरके, ऐसें कहे.

" ॥ अद्य अमुकसंवत्सरे अमुकायने अमुकऋतौ अमुकमासे अमुकपक्षे अमुकतिथौ अमुकवारे अमुकनक्षत्रे अमुक-

ऐसें कहके करमोचन करे.। कन्याका पिता करमोचनपर्वमें जामातृ (जमाइ) के मांगेप्रमाण, स्वसंपत्तिके अनुसार बहुत वस्तु देवे.। दानविधि, पूर्वयुक्तिसेंही है.। तदपीछे मातृघरसें ऊठके, फेर वेदिघरमें आवें. तदपीछे गृह्यगुरु, आसनऊपर बैठे दोनोंको ऐसें कहे.

"॥ वृत्तम्। पूर्वं युगादिभगवान् विधिनैव येन विश्वस्य कार्यकृतये किल पर्यणैषीत्॥ भार्याद्वयं तदमुना विधिनास्तु युग्ममेतत्सुकामपरिभोगफलानुबंधि॥ १॥"

ऐसें कहके पूर्वोक्त विधिसें अंचलमोचन करके "वत्सौ लब्धविषयौ भवतां" ऐसें गुरुअनुज्ञात दोनो दंपती—स्त्रीभर्त्ता, विविध विलासिनीयोंके गणकरी वेष्टित, शृंगारगृहमें प्रवेश करें.। तहां पूर्वस्थापित मदनकी कुलवृद्धानुसार करी मदनपूजा करे.। पीछे तहां वधूवरको समहीकालमें क्षीरान्नभोजन कराना. तदपीछे यथायुक्तिकरके सुरतका प्रचार.। *

तदपीछे तिसही आगमनरीतिकरके उत्सवसहित अपने घरको जावे.। पीछे वरके मातापिता, वरको निरुंछनमंगलविधी स्वदेशकुलाचारकरके करे.। कंकणबंधन, कंकणमोचन, द्यूतक्रीडा, वेणीग्रंथनादि, सर्व कर्म भी, तिस २ देशकुलाचारकरके करणे चाहिये.। विवाहसें पहिलें वधूवर दोनोंके पक्षमें भोजन देना.। तदनंतर धूलिभक्त, जन्यभक्त, आदि देशकुलाचारसें करणे.। तदपीछे सात दिनके अनंतर वरवधू विसर्जन करना, तिसका विधि यह है.। सात दिनतक विविध भक्तिसें पूजित जमाइको, पूर्वोक्त रीतिसें अंचलग्रंथन करके अनेक वस्तुदानपूर्वक तिसही आडंबरसें स्वगृहको पहुंचावे.। पीछे सात रात्रपर्यंत, वा मासपर्यंत, वा छ मासपर्यंत, वा वर्षपर्यंत स्वकुलसंपत्तिदेशाचारानुसार महोत्सव करना. सात रात्रके अनंतर, वा मासअनंतर, कुलाचारानुसारकरके कन्याके पक्षमें पूर्वोक्त रीतिकरके मातृविसर्जन करना.—गणपतिमदनादिविसर्जन विधि लोकमें प्रसिद्ध है.—और वरपक्षमें कुलकर विसर्जनविधि कहते हैं.।

* इस कथनसे भी यही सिद्ध होता है कि, योवनप्राप्तोंकाही विवाह होना चाहिये. कामक्रीडाकरणात्.॥

हाथमें लेके, वरके हाथमें देके, ऐसें कहे. "सुदायं ददामि प्रतिगृहाण" तब वर कहे " प्रतिगृह्णामि प्रतिगृहीतं परिगृहीतं " गुरु कहे " सुगृहीतमस्तु सुपरिगृहीतमस्तु " पुनः तैसेंही वस्त्र, भूषण, हस्ति, अश्वादि दाय, देनेमें वधूके पिताका, और वरका यही वाक्य, और यही विधि है. । तद्पीछे सर्व वस्तुके दीए हुए गुरु ऐसें कहे.

"॥ वधूवरौ वां पूर्वकर्म्मानुबंधेन निविडेन निकाचितवद्धेन अनुपवर्त्तनीयेन अपातनीयेन अनुपायेन अश्लथेन अवश्यभोग्येन विवाहः प्रतिवद्धो बभूव तदस्त्वखंडितोऽक्षयोऽव्ययो निरपायो निर्व्यावाधः सुखदोस्तु शांतिरस्तु पुष्टिरस्तु ऋद्धिरस्तु वृद्धिरस्तु धनसंतानवृद्धिरस्तु ॥ "

ऐसा कहके तीर्थोदकोंकरके कुशाग्रसें सिंचन करे. । फेर गुरु तैसेंही वधूवरको उठाके मातृघरमें ले जावे, तहां ले जाके वधूवरको ऐसें कहे.

" ॥ अनुष्ठितो वां विवाहो वत्सौ सस्नेहौ सभोगौ सायुषौ सधर्मौ समदुःखसुखौ समशत्रुमित्रौ समगुणदोषौ समवाङ्मनःकायौ समाचारौ समगुणौ भवतां ॥ "

तद्पीछे कन्याका पिता, करमोचनेकेवास्ते गुरुप्रतें कहे. । तब गुरु ऐसा वेदमंत्र पढे.

" ॥ ॐ अर्हं जीवस्त्वं कर्मणा बद्धः ज्ञानावरणेन बद्धः दर्शनावरणेन बद्धः वेदनीयेन बद्धः मोहनीयेन बद्धः आयुषा बद्धः नाम्ना बद्धः गोत्रेण बद्धः अंतरायेण बद्धः प्रकृत्या बद्धः स्थित्या बद्धः रसेन बद्धः प्रदेशेन बद्धः तदस्तु ते मोक्षो गुणस्थानारोहक्रमेण अर्हं ॐ ॥ "

इस वेदमंत्रको पढके फेर ऐसें कहे.

" ॥ मुक्तयोः करयोरस्तु वां स्नेहसंबंधोऽखंडितः ॥ "

ऐसें आकाश भी उत्पादव्ययध्रौव्यात्मक होनेसें नित्यानित्यरूप है, सोही दिखाते हैं. अवगाहक जीव पुद्गलोंको अवगाह दानोपग्रहही तिसका लक्षण है. "अवकाशदं आकाशमिति वचनात्" यदा अवगाहक जीव पुद्गल प्रयोगसें वा स्वभावसें एक नभःप्रदेशसें प्रदेशांतरको प्राप्त होते है, तदा तिस नभःकाके तिन अवगाहकोंके साथ एक प्रदेशमें विभाग और उत्तर प्रदेशमें संयोग होता है और संयोग विभाग दोनों परस्पर विरुद्ध धर्म हैं, तिनके भेदसें अवश्य धर्मीका भेद है. तथा चाहुः–"अयमेव हिभेदो भेदहेतुर्वा यद्विरुद्धधर्माध्यासः कारणभेदश्च" यहही भेद वा भेदका हेतु है, जो विरुद्ध धर्माध्यास और कारणका भेद होना. तब तो सो आकाश पूर्वसंयोगविनाशलक्षण परिणामकी आपत्तिसें विनष्ट हुआ, और उत्तरसंयोगोत्पाद परिणाम अनुभावसें उत्पन्न हुआ, और दोनों जगे अनुगत होनेसें, उत्पाद व्यय दोनोंका एकाधिकरण हुआ. तब तो अनुगत होनेसें, उत्पाद व्यय दोनोंका एकाधिकरण हुआ. तब तो "यदप्रच्युतानुत्पन्नस्थिरैकरूपं नित्यम्" ऐसा नित्यका लक्षण कहते हैं. सो खंडित हुआ. क्योंकि, ऐसे लक्षणवाला कोई भी पदार्थ नही है. "तद्भावाव्ययं नित्यं" यह नित्यका लक्षण सत्य है. उत्पाद विनाश दोनोंके हुए भी, तद्भावात् अन्वयिरूपसें जो नाश न होवे सो नित्य है. ऐसें तिसके अर्थको घटमान होनेसें. जेकर अप्रच्युतादि लक्षण माने, तब तो उत्पाद व्यय दोनोंको निराधारत्वका प्रसंग होवेगा और तिनके योगसें नित्यत्वकी हानि भी नही है.

द्रव्यं पर्यायवियुतं, पर्याया द्रव्यवर्जिताः ॥
क्व कदा केन किंरूपा, दृष्टा मानेन केन वा ॥ १ ॥

इति वचनात्.

भाषार्थः—द्रव्य पर्यायांरहित, और पर्यायां द्रव्यसें रहित किसी जगे, किसी कालमें, किसीने, किसी रूपवाले, किसी प्रमाणसें, देखे हैं? अपि तु नही देखे हैं. और ऐसें भी न कहना कि, आकाश द्रव्य नही है. क्योंकि, लौकिकोंमें भी घटाकाश है, पटाकाश है; इस व्यवहारकी प्रसिद्धिसें आकाशको नित्यानित्यत्व सिद्ध होता है. यदा घटाकाश भी घटके दूर हुए, और पटकरके आक्रांत हुए यह पटाकाश है, ऐसा व्यवहार है और यह भी न कहना कि, यह औपचारिक होनेसें प्रमाण नही. क्योंकि,

कुलकरस्थापनानंतर, नित्य कुलकरकी पूजा करनी.। विसर्जनकालमें कुलकरोंका पूजन करके, गुरु पूर्ववत् " ॐ अमुककुलकराय " इत्यादि संपूर्णमंत्र पढके " पुनरागमनाय स्वाहा " ऐसें सर्वकुलकरोंको विसर्जन करे.॥ पीछे यह पढे.

" आज्ञाहीनं क्रियाहीनं मंत्रहीनं च यत्कृतं ॥
तत्सर्वं कृपया देव क्षमस्व परमेश्वर ॥ १ ॥ "

इतिकुलकरविसर्जनविधिः ॥

तदपीछे मंडलीपूजा, गुरुपूजा, वासक्षेपादि पूर्ववत्.। साधूओंको वस्त्र पात्र देना.। ज्ञानपूजा करणी.। ब्राह्मणोंको, बंदिजनोंको, अपर मागनेवालोंको, यथासंपत्तिसें दान करणा.।

तथा देशकुलसमयांतरमें विवाहलग्नके प्राप्त हुए, वरको स्वसुरके घरको प्राप्त हुए, षट् (६) आचार करते हैं. प्रथम अंगणमें आसन देना.। स्वसुर कहे " विष्टरं प्रतिगृहाण " तब वर कहे " ॐ प्रतिगृह्णामि " ऐसें कहके आसन ऊपर बैठे । १ । पीछे स्वसुर वरके पग प्रक्षालन करे । २ । पीछे दाहि चंदन अक्षत दूर्वा कुश पुष्प स्वेतसरसों और जलकरके स्वसुर जमाइको अर्घ देवे । ३ । पीछे आचमन देवे । ४ । पीछे गंधअक्षतसें तिलक करे । ५ । पीछे वरको मधुपर्क प्राशन करावे । ६ । पीछे गृहके अंदर वधूवरका परस्पर दृष्टिसंयोग, और परस्पर दोनोंका नामग्रहण, शेषं पूर्ववत्.॥ इत्याचार्यश्रीवर्द्धमानसूरिकृताचारदिनकरस्यगृहिधर्म्मप्रतिबद्धविवाहसंस्कारकीर्त्तननामचतुर्दशोदयस्याचार्यश्रीमद्विजयानंदसूरिकृतोबालावबोधस्समाप्तस्तत्समाप्तौचसमाप्तोयंषड्विंशःस्तंभः ॥ १४ ॥

इत्याचार्यश्रीमद्विजयानन्दसूरिविरचितेतत्त्वनिर्णयप्रासादग्रन्थेचतुर्दशविवाहसंस्कारवर्णनोनामषड्विंशःस्तम्भः ॥ २६ ॥

॥ अथसप्तविंशस्तम्भारम्भः ॥



अथ व्रतारोपसंस्कारविधि लिखते हैं. । इहां जैनमतमें गर्भाधानसें लेके विवाहपर्यंत चतुर्दश १४ संस्कारोंकरके संस्कृत भी पुरुष, व्रतारोपसंस्कारविना इस जन्ममें श्लाघा श्रेयः लक्ष्मीका पात्र नही होता है. और परलोकमें आर्यदेशादिभावपवित्रित मनुष्यजन्म स्वर्गमोक्षादिका भाजन नही होता है. इसवास्ते व्रतारोपही, मनुष्योंको परमसंस्कार है. यत उक्तमागमे ।

" बंभणो खत्तिओ वावि वेसो सुद्दो तहेवय ॥
पयई वावि धम्मेण जुत्तो मुक्खस्स भायणं ॥ १ ॥ "

अर्थः—ब्राह्मण, वा क्षत्रिय, वा वैश्य, वा शूद्र, धर्मसें युक्त हुआ, मोक्षका भाजन होता है. ॥ १ ॥

अपिच गाथा. ॥

" बाहत्तरिकलकुसला विवेयस हिया न ते नरा कुसला ॥
सव्वकलाण य पवरं जेधम्मकलं न याणंति ॥ १ ॥ "

अर्थः—बहत्तर कलाकुशल भी, विवेकसहित भी होवे, तो भी ते नर कुशल नही हैं; जे, सर्वकलायोंमें प्रधान जो धर्मकला तिसको नही जाणते हैं. ॥ १ ॥ परमतमें भी कहा है । ' उपनीतोपि पूज्योपि कलावानपि मानवः । न परत्रेह सौख्यानि प्राप्नोति च कदाचन ॥ १ ॥ ' इसवास्ते सर्वसंस्कार प्रधानभूत व्रतसंस्कार कहते हैं. । तिसका विधि यह है.

पीछले विवाहपर्यंत संस्कार गृह्यगुरु जैन ब्राह्मणने वा क्षुल्लकने करावने. परंतु व्रतारोपसंस्कार तो, निर्ग्रंथ यतिनेही करावना. प्रथम गुरुकी गवेषणा करणी.

यथा ॥

" पंचमहव्वयजुत्तो पंचविहायारपालणसमच्छो ॥
पंचसमिओ तिगुत्तो छत्तीसगुणो गुरु होइ ॥ १ ॥
पडिरूवो तेअस्सी जुगप्पहाणागमो महुरवक्को ॥
गंभीरो धीमंतो उवएसपरो य आयरिओ ॥ २ ॥
अपरिस्सावी सोमो संग्रहसीलो अभिग्रहमईय ॥
अविकच्छणो अचवलो पसंतहियओ गुरु होइ ॥ ३ ॥
कइयावि जिणवरिंदा पत्ता अयरामरं पहं दाउं ॥
आयरिएहि पवयणं धारिज्जइ संपयं सयलं ॥ ४ ॥ "

अर्थः—पांच महाव्रतयुक्त, ५, पांच प्रकारके आचार पालनेमें समर्थ, ५, पांच समिति, ५, और तीन गुप्तिसहित, ३, एवं छत्तीस गुणोंवाला गुरु होता है. । *प्रतिरूप, तेजस्वी, युग प्रधान, आगमका जानकार, मधुर वाक्यवाला, गंभीर, बुद्धिमान्, उपदेश देनेमें तत्पर, ऐसा आचार्य होता है. । किसीका आलोचित दूषण अन्यआगे प्रकाशे नही, सोमप्रकृतिवाला होवे, शिष्यादिका संग्रह करनेवाला होवे, द्रव्यादि अभिग्रहमें जिसकी मति होवे, किसीके दूषण न बोले, चपल न होवे, प्रशांतहृदयवाला होवे, ऐसें गुणोंयुक्त गुरु होता है. । कितनेही जिनवरेंद्र अजरामर पदका पंथ दिखाके मोक्षको प्राप्त हुए हैं; परं संप्रति कालमें तो, जिनप्रवचन, आचार्योंनेही धारण करा है. ॥

अब प्रकारांतरकरके गुरुके छत्तीस गुण कहते हैं.। आचारविनय, श्रुतविनय, विक्षेपनाविनय, दोषका परिघात, एवं चार प्रकारके विनयकी प्रतिपत्ति करनेवाले गुरु होवे. । अथवा सम्यक्त्व, ज्ञान, चारित्र, इन

* पंचिंदियसवरणो तह नवविहबंभचेरगुत्तिधरो । चउविहकसायमुक्को इअ अट्ठारसगुणेहिं संजुत्तो ॥ १ ॥ पांचे इंद्रियको रोकनार, नवविध ब्रह्मचर्यगुप्तिके धरनार, चतुर्विध कषायसें मुक्त, एव अष्टादश गुणोंकरी संयुक्त । इस पाठको गिणनेसें ३६ गुण पूर्ण होते है. ॥ पच महाव्रतादीनामष्टादशानामपि स्वयंकरणान्यकारणतो द्वैगुण्येन षट्त्रिंशद्गुणो गुरुर्भवतीति तु सम्यक्त्वरत्नवृत्तौ ॥

प्रत्येकके आठ २ भेद हैं; एवं २४, और तपके द्वादश १२ भेद हैं, ऐसें आचार्यके छत्तीस गुण होते हैं.।

अथवा आचारादि आठ ८, और दश प्रकारका स्थितकल्प १० द्वादश १२ तप, और षडावश्यक ६, येह छत्तीस गुण आचार्यके हैं.। *

अथवा संविग्न होवे १, मध्यस्थ होवे २, शांत होवे ३, मृदु—कोमल-स्वभाववाला होवे ४, सरल होवे ५, पंडित होवे ६, सुसंतुष्ट होवे ७, गीतार्थ होवे ८, कृतयोगी होवे ९, श्रोताके भावको जाननेवाला होवे १०, व्याख्यानादिलब्धिसंपन्न होवे ११, उपदेशदेनेमें निपुण होवे १२, आदेयवचन होवे १३, मतिमान् होवे १४, विज्ञानी होवे १५, निरुपपाति होवे १६, नैमित्तिक होवे १७, शरीरका बालिष्ठ होवे १८, उपकारी होवे १९, धारणाशक्तिवाला होवे २०, बहुत कुछ जिसने देखा होवे २१, नैगमादि नयमतमें निपुण होवे २२, प्रियवचनवाला होवे २३, अच्छे मधुर गंभीर स्वरवाला होवे २४, तप करणेमें रक्त होवे २५, सुंदर शरीरवाला होवे २६, शुभ भली प्रतिभावाला होवे २७, वादीयोंको जीतनेवाला होवे २८, परिषदादिको आनंदकारक होवे २९, शुचि—पवित्र होवे ३०, गंभीर होवे ३१, अनुवर्त्ती होवे ३२, अंगीकार करेका पालनेवाला होवे ३३, स्थिरचित्तवाला होवे ३४, धीर होवे ३५, उचितका जाननेवाला होवे ३६, येह पूर्वोक्त ३६, गुण आचार्यके सूत्रमें कहे हैं.॥

ऐसें पितापरंपरायसें माने गुरुके प्राप्त हुए, वा, तिसके अभावमें पूर्वोक्त गुणयुक्त अन्यगच्छीय गुरुके प्राप्त हुए, गृहस्थको व्रतारोपविधि योग्य है, सो विधि यह है.॥ चतुर्दश संस्कारोंकरके संस्कृत ऐसा गृहस्थी गृहस्थधर्मको अंगीकार करने योग्य होता है.।

---

* आचारसंपत् १ श्रुतसंपत् २ शरीरसंपत् ३ वचनसपत् ४ वाचनासपत् ५ मतिसपत् ६ प्रयोगमतिसंपत् ७ संग्रहपरिज्ञासपत् ८ इत्याचारसंपदादि अष्ट। और दशप्रकारका स्थित कल्प तथाहि आचेलक्य १ औद्देशिक २ शय्यातरपिंड ३ राजपिंड ४ कृतिकर्म ५ व्रत ६ ज्येष्ठरत्नाधिकपणा ७ प्रतिक्रमण ८ मासकल्प ९ पर्य्यूषणाकल्प १० येह दशप्रकारका स्थित कल्प जैन मतमे प्रायः प्रसिद्ध है.॥

यत उक्तमागमे ॥

धम्मरयणस्स जुग्गो अक्खुद्दो रूववं पगईसोमो ॥
लोअप्पिउ अकूरो भीरू असढो सुदक्खिणो ॥ १ ॥
लज्जालुओ दयालू मज्झत्थो सोमदिट्ठी गुणरागी ॥
सक्कह सपक्खजुत्तो सुदीदहंसी विसेसन्नू ॥ २ ॥
बढाणुगो विणीओ कयन्नुओ परहिअच्छकारीअ ॥
तहचेव लद्धलक्खो इगवीसगुणो हवइ सड्ढो ॥ २ ॥

अर्थः—अक्षुद्र १, रूपवान् २, प्रकृतिसौम्य ३, लोकप्रिय ४, अक्रूरचित्त ५, भीरु ६, अशठ ७, सुदाक्षिण्य ८, लज्जालु ९, दयालु १० मध्यस्थ सोमदृष्टि ११, गुणरागी १२, सत्कथी १३, सुपक्षयुक्त १४, सुदीर्घदर्शी १५, विशेषज्ञ १६, वृद्धानुग १७ विनीत १८, कृतज्ञ १९, परहितार्थकारी २०, और लब्धलक्ष २१, इन इकीस गुणोंवाला श्रावक धर्मरत्नके योग्य होता है; अर्थात् इकीस गुण जिस जीवमें होवे, अथवा प्रायः नवीन उपार्जन करे, तिस जीवमें उत्कृष्ट योग्यता जाननी. और थोडेसें थोडे इकीस गुणोंमेंसें चाहो कोइ दश गुण जीवमें होवे, तिसको जघन्य योग्यतावाला जानना, ११–१२–१३–१४–१५–१६–१७–१८–१९–२० शेष गुणवालेको मध्यमयोग्यतावाला जानना इन इकीस गुणोंका विस्तारसहित वर्णन अज्ञानतिमिरभास्करके द्वितीय खंडके ४६ पृष्ठसें लेके ८३ पृष्ठपर्यंत हमने लिखा है, इसवास्ते इहां नही लिखते हैं.

योगशास्त्रे श्रीहेमचंद्राचार्योक्तिर्यथा ॥

न्यायसंपन्नविभवः शिष्टाचारप्रशंसकः ॥
कुलशीलसमैः सार्द्धं कृतोद्वाहोऽन्यगोत्रजैः ॥ १ ॥
पापभीरुः प्रसिद्धं च देशाचारं समाचरन् ॥
अवर्णवादी न क्वापि राजादिषु विशेषतः ॥ २ ॥
अनतिव्यक्तगुप्ते च स्थाने सुप्रातिवेश्मिके ॥

अनेकनिर्गमद्वारविवर्जितनिकेतनः ॥ ३ ॥
कृतसंगः सदाचारैर्मातापित्रोश्च पूजकः ॥
त्यजन्नुपप्लुतं स्थानमप्रवृत्तश्च गर्तिते ॥ ४ ॥
व्ययमायोचितं कुर्वन् वेषं वित्तानुसारतः ॥
अष्टविधागुणैर्युक्तः शृण्वानो धर्ममन्वहं ॥ ५ ॥
अजीर्णे भोजनत्यागी काले भोक्ता च साम्यतः ॥
अन्योन्याप्रतिबंधेन त्रिवर्गमपि साधयन् ॥ ६ ॥
यथावदतिथौ साधौ दीने च प्रतिपत्तिकृत् ॥
सदानभिनिविष्टश्च पक्षपाती गुणेषु च ॥ ७ ॥
अदेशाकालयोश्चर्यां त्यजन् जानन्बलाबलं ॥
वृत्तस्थज्ञानवृद्धानां पूजकः पोष्यपोषकः ॥ ८ ॥
दीर्घदर्शी विशेषज्ञः कृतज्ञो लोकवल्लभः ॥
सलज्जः सदयः सौम्यः परोपकृतिकर्मठः ॥ ९ ॥
अंतरंगारिषड्वर्गपरिहारपरायणः ॥
वशीकृतेंद्रियग्रामो गृहिधर्माय कल्पते ॥ १० ॥

अर्थः—न्यायसें धन उपार्जन करनेवाला, शिष्टाचारकी प्रशंसा करनेवाला, जिनका कुलशील अपने समान होवे, ऐसे अन्य गोत्रवालेके साथ विवाह किया है जिसने; पापसें डरनेवाला, प्रसिद्ध देशाचारको करनेवाला, अर्थात् देशाचारका उल्लंघन नही करनेवाला, किसी जगे भी अवर्णवाद नही बोलनेवाला, राजादिकोंमें विशेषसें अवर्णवाद वर्जनेवाला; । अतिप्रकट, वा अति गुप्त स्थानमें नही रहनेवाला, अच्छा पाडोसी होवे तिस घरमें रहनेवाला, जिस मकानके अनेक आनेजानेके रस्ते होवें तिस घरको वर्जनेवाला; । सदाचारोंसें संग करनेवाला, माता-पिताकी पूजा भक्ति करनेवाला, उपद्रवसंयुक्त स्थानको त्यागनेवाला,

जगत्में जो कर्म निंदनीक होवे तिसमें प्रवृत्त नही होनेवाला; । अपनी आमदनीअनुसार खर्च करनेवाला, अपने धनके अनुसार वेष रखनेवाला; बुद्धिके आठ गुणोंकरी संयुक्त निरंतर धर्मोपदेश श्रवण करनेवाला; अजीर्णमें भोजनका त्यागी, वखतसर सात्म्यतासें भोजन करनेवाला, एक दूसरेकी हानी न करे इस रीतिसें धर्म अर्थ कामको सेवनेवाला; । यथायोग्य अतिथि साधु और दीनकी प्रतिपत्ति करनेवाला, सदा आग्रहरहित, गुणोंका पक्षपाती; । देशकालविरुद्धचर्या त्यागनेवाला, । कोइ भी कार्य करनेमें अपना बलाबल जाननेवाला, जे पांच महाव्रतमें स्थित होवे और ज्ञानवृद्ध होवे तिनकी पूजा भक्ति करनेवाला, पोषणयोग्यका पोषण करनेवाला, । दीर्घदर्शी, विशेषज्ञ, कृतज्ञ, लोकवल्लभ, लज्जालु, दयालु, सौम्य, परोपकार करणेमें समर्थ, काम, क्रोध, लोभ, मान, मद, हर्ष, इन षट् ६ अंतरंग वैरीयोंके त्याग करनेमें तत्पर, पांच इंद्रियोंके समूहको वश करनेवाला, ऐसा पुरुष गृहस्थधर्मके वास्ते कल्पता है ॥ १० ॥

ऐसे पुरुषको व्रतारोप करिये हैं । प्रायःकरके व्रतारोपमें गुरु शिष्यके वचन प्राकृत भाषासें होते हैं, क्यों कि गर्भाधानादि विवाहपर्यंत संस्कारोंमें प्रायः करके गुरुकेही वचन हैं, शिष्यके नहीं और गुरु प्रायः शास्त्रविद् होते हैं, इसवास्ते संस्कृतही बोलते हैं. । इहां व्रतारोपमें बाल, स्त्री, मूर्ख शिष्योंका क्षमाश्रवणदानपूर्वक वचनाधिकार है, तिसवास्ते तिनको संस्कृत उच्चार असामर्थ्य होनेसें प्राकृत वाक्य है. तिसकी साहचर्यतासें तिसके प्रबोधवास्ते, गुरुके वचन भी, प्राकृतही है. ॥

यतउक्तमागमे ॥

"॥ मुत्तूण दिठ्ठिवायं कालियउक्कालियंगसिद्धंतं ॥
थीबालवायणत्थं पाइयमुइयं जिणवरेहिं ॥ १ ॥"

अर्थः—दृष्टिवादको वर्जके कालिक उत्कालिक अंगसिद्धांतको स्त्रीबालकोंके वाचनार्थ जिनवरोंने प्राकृत कथन करे हैं. ॥

तथाच ॥

बालस्त्रीवृद्धमूर्खाणां नृणां चारित्रकांक्षिणाम् ॥
उच्चारणाय तत्त्वज्ञैः सिद्धांतः प्राकृतः कृतः ॥ १ ॥

और दृष्टिवाद बारमा अंग, परिकर्म १ सूत्र २ पूर्वानुयोग ३, पूर्वगत४, चूलिकारूप ५ पंचविध संस्कृतमेंही होता है, सो बालस्त्रीमूर्खको पठनीय नही है. संसारपारगामी तत्त्वउपन्यासके वेत्ता गीतार्थोंनेही पठनीय है. शेष एकादशांग कालिक उत्कालिकादिशास्त्र योगवाहि साधु साध्वी और संयमिबालकोंके पढने योग्य हैं. इसवास्तेही अरिहंत भगवंतोंनें एकादशांगादि शास्त्र प्राकृतमें करे हैं. तिसवास्ते व्रतारोपमें भी, गृहस्थ बाल स्त्री मूर्ख अवस्थाधारीयोंके, और तैसें यतियोंके भी, वचन, प्राकृतमें है. ॥

अथ मृदु, ध्रुव, चर, क्षिप्र नक्षत्रोंमें प्रथम भिक्षा, तप, नंदि, आलोचनादि कार्य करणे शुभ है. और मंगल, शनि, विना सर्व वारोंमें.। वर्ष, मास, दिन, नक्षत्र, लग्न शुद्धिके हुए, विवाहदीक्षा प्रतिष्ठावत्, शुभ लग्नमें गुरु तिसके घरमें शांतिक पौष्टिक करके, फेर देवघरमें, शुभ आश्रममें, अन्यत्र, वा, यथाकल्पित समवसरणको स्थापन करे.। तद्पीछे स्नान करके स्वघरमें महोत्सवसहित आये हुए श्रावकको पूर्वाभिमुख गुरु, अपने वामे पासें स्थापके ऐसें कहे—कैसे श्रावकको—सकक्ष श्वेत वस्त्र और श्वेत उत्तरासंग धारण किया है जिसने, तथा मुखवस्त्रिका हाथमें धारण करी है जिसने, तथा जिसकी चोटी वांधी हुई है, चंदनका मस्तकमें तिलक करा है जिसने, स्ववर्णानुसार जिनोपवीत, वा उत्तरीय, वा उत्तरासंग धारण किया है जिसने ऐसे श्रावकको—क्या कहे सो कहते हैं।

" सम्मत्तंमि उ लद्धे टइयाइं नरयतिरियदाराइं ॥
दिव्वाणि माणुसाणि अमुरखसुहाइं सहीणाइं ॥ १ ॥ "

अर्थः—सम्यक्त्वके लाभ हुए, नरकतिर्यंचगतिके द्वार ढांके है, और देवता मनुष्य मोक्षके सुख स्वाधीन है.। तदपीछे गुरुकी आज्ञासें श्राद्धजन, नालिकेर अक्षत सुपारी करके पूर्ण हस्त करके परमेष्ठिमंत्र पढता हुआ समवसरणको तीन प्रदक्षिणा करे.। तदपीछे गुरुके पास आयकर, गुरु श्राद्ध दोनोही इर्यापथिकीपडिक्कमे.। पीछे आसन उपर बैठे गुरुके आगे, श्राद्धजन ऐसें कहे ॥

" इच्छामि खमासमणो वंदिउं जावणिज्जाए निसीहिआए मत्थएण वंदामि ॥ भगवन् इच्छाकारेण तुब्भे अम्हं सम्मत्ताइतिगारोवणिअं नंदिकड्ढावणियं वासक्खेवं करेह ॥"

तदपीछे गुरु, वासांको, सूरिमंत्रसें, वा, गणिविद्या अर्थात् वर्द्धमान विद्यासें, अभिमंत्रके, परमेष्ठि और कामधेनु दोनों मुद्राकरके, पूर्वाभिमुख खडा होके, वामे पासे रहे श्रावकके शिरमें निक्षेप करे.। तिसके मस्तकके उपर हाथ रखके, गणधर विद्यासें रक्षा करे.। तदपीछे गुरु आसनउपर बैठ जावे, और श्राद्ध पूर्ववत् समवसरणको प्रदक्षिणा करके, गुरु आगे क्षमाश्रमण देके कहे.

" ॥ इच्छाकारेण तुब्भे अम्हं सम्मत्ताइतिगारोवणिअं चेइआइं वंदावेह ॥ "

तदपीछे गुरु और श्रावक दोनो, चार वर्द्धमानस्तुतियों करके चैत्यवंदन करें.। जे छंदसें वर्द्धमान होवे, और चरम जिनकी प्रथम स्तुतिवालीयां होवे, तिनको वर्द्धमानस्तुति कहते हैं.। पीछे चारस्तुतिके अंतमें "श्रीशांतिदेवाराधनार्थं करेमि काउसग्गं वंदणवत्तियाण पूअणवत्तियाण सक्कारव० स० जावअप्पाणं वोसिरामि" सत्ताइस उत्स्वासप्रमाण अर्थात् 'सागरवरगंभीरा' तक चतुर्विंशतिस्तव चिंतवन करे.। तदपीछे 'नमो अरिहंताणं' कहके पारे.। पारके—'नमोर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधुभ्यः' यह कहके स्तुति पढे।

यथा ॥

" श्रीमते शांतिनाथाय नमः शांतिविधायिने ॥
त्रैलोक्यस्यामराधीशमुकुटाभ्यर्च्चितांघ्रये ॥ १ ॥ "

अथवा ॥

" शांतिः शांतिकरः श्रीमान् शांतिं दिशतु मे गुरुः ॥
शांतिरेव सदा तेषां येषां शांतिर्गृहे गृहे ॥ १ ॥ "

पीछे

"॥ श्रुतदेवताराधनार्थं करेमि काउसग्गं अन्नच्छ उससिएणं--यावत्-अप्पाणं वोसिरामि॥ "

कायोत्सर्गमें एक नवकार चिंतन करे. पीछे 'नमो अरिहंताणं' कहके पारे, पारके 'नमोर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधुभ्यः' ऐसा कहके स्तुति (थूइ) पढे ।

यथा ॥

" ॥ सुअदेवया भगवई नाणावरणीयकम्मसंघायं ॥
तेसिं खवउ सययं जेसिं सुयसायरे भत्ती ॥ १ ॥"

अथवा ॥

" श्वसितसुरभिगंधालब्धभृंगी कुरंगं मुखशशिनमजस्त्रं
बिभ्रति या बिभर्त्ति॥ विकचकमलमुच्चैः सास्त्वचिंत्यप्र-
भावासकलसुखविधात्री प्राणभाजां श्रुतांगी ॥ १ ॥ "

पुनरपि ॥

" ॥-क्षेत्रदेवताराधनार्थं करेमि काउसग्गं अन्नच्छ उससिएणं--यावत्--अप्पाणं वोसिरामि ॥ "

कायोत्सर्गमें एक नमस्कार चिंतन करे, पीछे 'नमो अरिहंताणं' कहके पारे, पारके 'नमोर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधुभ्यः' कहके थूई पढे।

यथा ॥

यस्याः क्षेत्रं समाश्रित्य साधुभिः साध्यते क्रिया ॥
सा क्षेत्रदेवता नित्यं भूयान्नः सुखदायिनी ॥ १ ॥

पुनरपि ॥

"॥ भुवनदेवताराधनार्थं करेमि काउसग्गं अन्नच्छ उससिएणं—
यावत्—अप्पाणं वोसिरामि ॥"

कायोत्सर्गमें एक नमस्कार चिंतन करे, पीछे 'नमोअरिहताणं' कहके पारे, पारके 'नमोर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधुभ्यः' कहके स्तुति पढे.।

यथा. ॥

"ज्ञानादिगुणयुक्तानां नित्यं स्वाध्यायसंयमरतानां ॥
विदधातु भुवनदेवी शिवं सदा सर्वसाधूनाम् ॥ १ ॥"

पुनरपि ॥

"शासनदेवताराधनार्थं करेमि काउसग्गं अन्नच्छ०" कायोत्सर्गमें एक नमस्कार चिंतन करे, पीछे 'नमोअरिहंताणं' कहके पारे, पारके 'नमोर्हत्सिद्धा०' कहके स्तुति पढे.

यथा. ॥

"या पाति शासने जैनं सद्यः प्रत्यूहनाशिनी ॥
साभिप्रेतसमृद्ध्यर्थं भूयाच्छासनदेवता ॥ १ ॥"

पुनरपि. ॥

"समस्तवैयावृत्त्यकराराधनार्थं करोमि काउसग्गं अन्नच्छ०" कायोत्सर्गमें एक नमस्कार चिंतन करे, पीछे 'नमो अरिहंताणं' कहके पारे, पारके 'नमोर्हत्सिद्धा०' कहके स्तुति पढे.

यथा ॥

" ये ये जिनवचनरता वैयावृत्त्योद्यताश्च ये नित्यम् ॥
ते सर्वे शांतिकरा भवंतु सर्वाणुयक्षाद्याः ॥ १ ॥ "

पीछे. ॥

'नमो अरिहताणं' कहके बैठके "नमुथ्थुणं० जावंतिचेइयाइं० " और "अर्हणादिस्तोत्र" पढे.

यथा ॥

आरिहाण नमो पूअं अरहंताणं रहस्स रहिआणं ॥
पयओ परमिट्ठीणं अरुहंताणं धुअरयाणं ॥ १ ॥
निद्दड्ढअट्ठकम्मिंधणाण वरनाणदंसणधराणं ॥
मुत्ताण नमो सिद्धाणं परमपरमिट्ठिभूयाणं ॥ २ ॥
आयारधराण नमो पंचविहायारसुट्ठियाणं च ॥
नाणीणायरियाणं आयारुवएसयाण सया ॥ ३ ॥
बारसविहं अपूव्वं दिंताण सुअं नमो सुअहराणं ॥
सययमुवज्झायाणं सज्झायज्झाणजुत्ताणं ॥ ४ ॥
सव्वेसिं साहूणं नमो तिगुत्ताण सव्वलोएवि ॥
तवनियमनाणदंसणजुत्ताणं बंभयारीणं ॥ ५ ॥
एसो परमिट्ठीणं पंचन्हवि भावओ नमुक्कारो ॥
सव्वस्स कीरमाणो पावस्स पणासणो होइ ॥ ६ ॥
भुवणेवि मंगलाणं मणुयासुरअमरखयरमहियाणं ॥
सव्वेसिमिमो पढमो होइ महामंगलं पढमं ॥ ७ ॥
चत्तारि मंगलं मे हुंतु अरहा तहेव सिद्धा य ॥
साहू य सव्वकालं धम्मो य तिलोयमंगल्लो ॥ ८ ॥

चत्तारि चेव ससुरासुरस्स लोगस्स उत्तमा हुंति॥
अरिहंत सिद्ध साहू धम्मो जिणदेसियमुयारो॥ ९॥
चत्तारिवि अरिहंते सिद्धे साहू तहेव धम्मं च॥
संसारघोररक्खसभएण सरणं पवज्जामि॥ १०॥
अह अरहओ भगवओ महइ महा वद्धमाणसामिस्स॥
पणयसुरेसरसेहरवियालियकुसुमुच्चयकमस्स॥ ११॥
जस्स वरधम्मचक्कं दिणयरबिंबव्व भासुरच्छायं॥
तेएण पज्जलंतं गच्छइ पुरओ जिणंदस्स॥ १२॥
आयासं पायालं सयलं महिमंडलं पयासंतं॥
मिच्छत्तमोहतिमिरं हरेइ तिण्हंपि लोयाणं॥ १३॥
सयलंमिवि जियलोए चिंतियमित्तो करेइ सत्ताणं॥
रक्खं रक्खसडाइणिपिसायगहभूअजक्खाणं॥ १४॥
लहइ विवाए वाए ववहारे भावओ सरंतो अ॥
जूए रणे अ रायंगणे अ विजयं विसुद्धप्पा॥ १५॥
पच्चूसपओसेसुं सययं भव्वो जणो सुहज्झाणो॥
एअं झाएमाणो मुक्खं पइ साहगो होइ॥ १६॥
वेआलरुद्ददाणवनारिंदकोहंडिरेवईणं च॥
सव्वेसिं सत्ताणं पुरिसो अपराजिओ होइ॥ १७॥
विज्जुव्व पज्जलंती सव्वेसुवि अक्खरेसु मत्ताओ॥
पंचनमुक्कारपए इक्किक्के उवरिमा जाव॥ १८॥
ससिधवलसलिलनिम्मलआयारसहं च वन्नियं बिंदुं॥
जोयणसयप्पमाणं जालासयसहस्सदिप्पंतं॥ १९॥
सोलससु अक्खरेसु इक्किक्कं अक्खरं जगुज्जोअं॥
भवसयसहस्समहणो जंमि ठिओ पंच नवकारो॥ २०॥

जो गुणइ हु इक्कमणो भविओ भावेण पंच नवकारं ॥
सो गच्छइ सिवलोयं उज्जोअंतो दसदिसाओ ॥ २१ ॥
तवनियमसंजमरहो पंचनमोक्कारसारहिनिउत्तो ॥
नाणतुरंगमजुत्तो नेइ फुडं परमनिव्वाणं ॥ २२ ॥
सुद्धप्पा सुद्धमणा पंचसु समिईसु संजय तिगुत्तो ॥
जे तम्मि रहे लग्गा सिग्घं गच्छंति सिवलोअं ॥ २३ ॥
थंभेइ जलं जलणं चिंतियमित्तोवि पंच नवकारो ॥
अरिमारिचोरराउलघोरुवसग्गं पणासेइ ॥ २४ ॥
अट्ठेवय अट्ठसयं अट्ठसहस्सं च अट्ठकोडीओ ॥
रक्खंतु मे सरीरं देवासुरपणमिआ सिद्धा ॥ २५ ॥
नमो अरहंताणं तिलोयपुज्जो अ संथुओ भयवं ॥
अमरनररायमहिओ अणाइनिहणो सिवं दिसउ ॥ २६ ॥
निट्ठविअ अट्ठकम्मो सिवसुहभूओ निरंजणो सिद्धो ॥
अमरनररायमहिओ अणाइनिहणो सिवं दिसउ ॥ २७ ॥
सव्वे पओसमच्छरआहिअहिअया पणासमुवयंति ॥
दुगुणीकयधणुसद्दं सोउपि महाधणुसहस्सं ॥ २८ ॥
इय तिहुअणप्पमाणं सोलसपत्तं जलंतदित्तसरं ॥
अट्ठारअद्धवलयं पंचनमुक्कारचक्कमिणं ॥ २९ ॥
सयलुज्जोइअभुवणं निद्दाविअसेससत्तुसंघायं ॥
नासिअमिच्छत्ततमं विअलियमोहं गयतमोहं ॥ ३० ॥
एयस्स य मज्झथ्थो सम्मदिट्ठीवि सुद्धचारित्ती ॥
नाणी पवयणभत्तो गुरुजणसुस्सूसणापरमो ॥ ३१ ॥
जो पंच नमुक्कारं परमो पुरिसो पराइ भत्तीए ॥
परियत्तेइ पइदिणं पयओ सुद्धप्पओगप्पा ॥ ३२ ॥

अट्ठेवय अट्ठसया अट्ठसहस्सं च अट्ठलक्खं च ॥
अट्ठेवय कोडीओ सो तइयभवे लहइ सिद्धिं ॥ ३३ ॥
एसो परमो मंतो परमरहस्सं परंपरं तत्तं ॥
नाणं परमं णेअं सुद्धं ज्झाणं परं ज्झेयं ॥ ३४ ॥
एवं कवयमभेयं खाइयमच्छं पराभुवणरक्खा ॥
जोईसुन्नं बिंदु नाओ तारालवो मत्ता ॥ ३५ ॥
सोलसपरमक्खरबीअबिंदुगप्भो जगुत्तमो जोओ ॥
सुअबारसंगसायरमहच्छपुव्वच्छपरमच्छो ॥ ३६ ॥
नासेइ चोरसावयविसहरजलजलणबंधणसयाइं ॥
चिंतिज्जंतो रक्खसरणरायभयाइं भावेण ॥ ३७ ॥

॥ इतिअरिहणादिस्तोत्रम् ॥

इस अरिहणादि स्तोत्रको पढके " जय वीयराय जगगुरु० " इत्यादि गाथा पढे. । पीछे आचार्य उपाध्याय गुरु साधुयोंको वंदना करे. । यह शक्रस्तवविधि, गुरु और श्रावक दोनोंही करे. । चैत्यवंदनके अनंतर, श्राद्ध, क्षमाश्रमणदानपूर्वक कहे.

" ॥ भगवन् सम्यक्त्वसामायिकश्रुतसामायिकदेशविरतिसामायिकआरोवणिअं नंदिकड्ढावणिअं काउसग्गं करेमि ॥ "

गुरु कहे " करेह " तब श्रावक "सम्मत्ताइतिगारोवणिअं करेमि काउसग्गं अनच्छ० " इत्यादि कहके सत्ताइस ऊसास प्रमाणअर्थात् 'सागरवरगंभीरा' लग कायोत्सर्ग करे। पीछे नमो अरिहंताणं कहके पारके चतुर्विंशतिस्तव अर्थात् लोगस्स संपूर्ण पढे। पीछे मुखवस्त्रिका प्रतिलेखनपूर्वक श्रावक द्वादशावर्त्त वंदन करे, फिर क्षमाश्रमण देके कहे " भगवन् सम्मत्ताइतिगं आरोवेह " गुरु कहे " आरोवेमि " पीछे श्रावक गुरुके आगे खडा होके, अंजलि करी, मुखवस्त्रिकासें मुखाच्छादन करी, तीन वार परमेष्ठिमंत्र पढे। पीछे सम्यक्त्वदंडक पढे.

सयथा ॥

"॥ अहण्णं भंते तुम्हाणं समीवे मिच्छत्ताओ पडिक्कमामि सम्मत्तं उवसंपज्जामि । तंजहा दव्वओ खित्तओ कालओ भावओ । दव्वओणं मिच्छत्तकारणाइं पच्चक्खामि सम्मत्तकारणाइं उवसंपज्जामि नो मे कप्पइ अद्यप्पभिई अन्नउच्छिए वा अन्नउच्छिअदेवयाणि वा अन्नउच्छियपरिग्गहियाणि अरिहंतचेइआणि वंदित्तए वा नमंसित्तए वा पुव्विं अणालत्तेणं आलवित्तए वा संलवित्तए वा तेसिं असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा दाउं वा अणुप्पयाउं वा। खित्तओणं इहेव वा अन्नच्छ वा। कालओणं जावज्जीवाए। भावओणं जाव गहेणं न गहिज्जामि जाव छलेणं न छालिज्जामि जाव सन्निवाएणं नाभिभविस्सामि जाव अन्नेण वा केणइ परिणामवसेण परिणामो मे न परिवडइ ताव मे एअं सम्मद्दंसणं अन्नच्छ रायाभिओगेणं बलाभिओगेणं गणाभिओगेणं देवयाभिओगेणं गुरुनिग्गहेणं वित्तीकंतारएणं वोसिरामि ॥"

ऐसें तीनवार दंडक पाठ कहना ॥ अन्ये तु दंडकमिच्छमुच्चारयंति ॥ यथा ॥

"॥ अहणं भंते तुम्हाणं समीवे मिच्छत्ताओ पडिक्कमामि सम्मत्तं उवसंपज्जामि नो मे कप्पइ अज्जप्पभिई अन्नउच्छिए वा अन्नउच्छियदेवयाणि वा अन्नउच्छियपरिग्गहियाणि चेइआणि वंदित्तए वा नमंसित्तए वा पुव्विं अणालत्तेणं आलवित्तए वा संलवित्तए वा तेसिं असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा दाउं वा अणुप्पयाउं वा अन्नच्छ

रायाभिओगेणं गणाभिओगेणं बलाभिओगेणं देवयाभिओगेणं गुरुनिग्गहेणं वित्तीकंतारेणं तं चउव्विहं। तंजहा। दवओ खित्तओ कालओ भावओ। दव्वओणं दंसणदव्वाइं अंगीकयाइं। खित्तओणं उड्ढलोए वा अहोलोए वा तिरिअलोए वा। कालओणं जावज्जीवाए। भावओणं जाव गहेणं न गहिज्जामि जाव छलेणं न छलिज्जामि जाव सन्निवाएणं नाभिभविस्सामि अन्नेण वा केणइ परिणामवसेण परिणामो मे न परिवडइ ताव मे एसा दंसणपडिवत्ती ॥ "

इति गुरुविशेषेण द्वितीयो दंडकः ॥ प्रथम दंडक, वा यह दंडक दोनोंमेंसें कोइ एक दंडक तिन वार उच्चारण करे. ।

पीछे गाथा ॥

"इअ मिच्छाओ विरमिअ सम्मं उवगम्म भणइ गुरुपुरओ॥
अरिहंतो निस्संगो मम देवो दक्खणा साहू ॥ १ ॥"

गुरु तीन वार यह गाथा पढके श्राद्धके मस्तकोपरि वासक्षेप करे. । पीछे गुरु, निषद्याऊपर बैठे, बैठके गंध अक्षत वासांको सूरिमंत्रसें, वा गणिविद्यासें मंत्रे. । पीछे तिन गंधाक्षत वासांको हाथमें लेके जिन चरणोंको स्पर्श करावे. । पीछे तिनको साधु, साध्वी, श्रावक, श्राविकाओंको देवे. ते साधुआदि, मुट्ठीमें लेलेवे. । पीछे श्राद्ध आसनोपरि बैठे गुरुके आगे क्षमाश्रमण देके कहे ॥ "भयवं तुम्भे अम्हं सम्मत्ताइस माइयं आरोवेह । " गुरुकहे "आरोवेमि" फिर श्रावक क्षमाश्रमण देके कहे "संदिसह किं भणामि" गुरु कहे "वंदित्तु पवेयह" फिर श्रावक क्षमाश्रमण देके कहे "भयवं तुज्झेहिं अम्हं सामाइयातिअमारोविअं" गुरु कहे "आरोवियं २ खमासमणेणं हच्छेणं सुत्तेणंअच्छेणंतदुभएणं गुरुगुणेहिं वड्ढाहि निच्छारगपारगो होहि" श्रावक कहे "इच्छामो अणुसट्ठिं" पुनः श्रावक क्षमाश्रमण देके कहे "तुम्हाणं पवेइयं संदिसह साहूणं

पएवेमि" गुरु कहे "पवेयह" तदपीछे श्रावक परमेष्ठिमंत्र पढता हुआ, समवसरणको प्रदक्षिणा करे.। और संघ पूर्वे दीने हुए वासांको, तिसके मस्तकोपरि क्षेपण करे.। गुरु निषद्याऊपर वैठे, वहांसें लेके वासक्षेपपर्यंत क्रिया, तीन वार इसहि रीतिसें करना.। फिरश्रावक क्षमाश्रमण देके कहे "तुम्हाणं पवेइयं" फिर क्षमाश्रमण देके कहे "साहूणं पवेइयं संदिसह काउसग्गं करेमि" गुरु कहे "करेह" पीछे श्रावक-सम्मत्ताइतिगस्स थिरीकरणच्छं करेमि काउसग्गं अन्नच्छ०-सागरवरगंभीरातक कायोत्सर्ग करे. पारके संपूर्ण लोगस्स कहे.। पीछे चारथुइवर्जित शक्रस्तवसें चैत्यवंदन करे.। तदपीछे श्रावक, गुरुको तीन प्रदक्षिणा देवे. पीछे निषद्याऊपर वैठा हुआ गुरु, श्रावकको आगे बिठाके नियम देवे.॥

नियमयुक्तिर्यथा। गाथा ॥

पंचुंबरि च३ विगई अणायफलकुसुम हिम विस करे अ ॥
मट्टि अ राइभोयण घोलवडा रिंगणा चेव ॥ १ ॥
पंपुट्टय सिंघाडय वायंगण कायंबाणि य तहेव ॥
बावीसं दव्वाइं अभक्खणीआइं सड्ढाणं ॥ २ ॥

अर्थः-गुलर, प्लक्षण, काकोदुंबरि, वट और पिप्पल, येह पांच जातिके फल ५. मांस, मदिरा, माखण और मधु, ये चार विकृति ४-एवं ९-अज्ञात फल १०, अज्ञात पुष्प ११, हिम (वरफ) १२, विष १३, करहे (ओले-गडे)१४, सर्वसच्चित्तमिट्टी १५, रात्रिभोजन १६, घोलवडा-काचे दूध दहि छाछमें गेरा हुआ विदल १७, वइंगण १८, पंपोटा-खसखसका दोडा १९, सिंघाडे २०, * वायंगण २१, और कायंवाणि २२, येह वावीस द्रव्य श्रावकोंको भक्षण करने योग्य नही है.॥

* यद्यपि सिंघाडे अनंतकाय नही हैं, तथापि कामवृद्धिजनक होनसे वर्जनीय है.। तथा पुस्तकांतरमें अन्यप्रकारसें २२ अभक्ष्य लिखे हैं। यथा ॥ पंचुंबरि ५, चउविगई ४, हिम १०, विस ११, करगे अ १२, सव्वमट्टी अ १३, राइभोयणगं चिय १४, बहुवीय १५, अणंत १६, सधाणा १७, घोलवडा १८, विंइंगण १९, अमुणियनामाणि फुल्लफलयाणि २०, तुच्छफल २१, चलियरस २२, वज्जेअ अभक्ख बावीसं ॥ इनका विस्तारसहित अर्थ जैनतत्त्वादर्शके अष्टम परिच्छेदसें जाण लेना.

ऐसें नियम देके यह गाथा उच्चारण करवावे ॥

" अरिहंतो मह देवो जावज्जीवं सुसाहुणो गुरुणो ॥
जिणपणत्तं तत्तं इअ समत्तं मए गहिअं ॥ १ ॥ "

सुगमा ॥

तदनंतर अरिहंतको वर्जके अन्यदेवको नमस्कार करनेका, जिनयति महाव्रतधारी शुद्ध प्ररूपकको वर्जके अन्य यति विप्रादिकोंको भावसें अर्थात् मोक्षलाभ जानके वंदना करनेका, और जिनोक्त सप्त तत्त्वको वर्जके + तत्त्वांतरकी श्रद्धा करनेका, नियम करना.

अन्य देव और अन्य लिंगि विप्रादिकोंको नमस्कार और दान, लोकव्यवहारकेवास्ते करना. और अन्यमतके शास्त्रका श्रवण पठन भी, ऐसेंही जानना. । तदपीछे गुरु सम्यक्त्वकी देशना करे. ।

सा यथा ॥

मानुष्यमार्यदेशश्च जातिः सर्वाक्षपाटवम् ॥
आयुश्च प्राप्यते तत्र कथंचित्कर्मलाघवात् ॥ १ ॥
प्राप्तेषु पुण्यतः श्रद्धा कथकः श्रवणेष्वपि ॥
तत्त्वनिश्चयरूपं तद्बोधिरत्नं सुदुर्लभम् ॥ २ ॥

गाथा ॥

कुसमयसुईण महणं सम्मत्तं जस्स सुट्ठिअं हियए ॥
तस्स जगुज्जोयकरं नाणं चरणं च भवमहणं ॥ १ ॥

अर्थः—मनुष्यजन्म १, आर्यदेश २, उत्तमजाति ३, सर्वइंद्रि संपूर्ण ४, आयुः ५, येह कथंचित् कर्मकी लाघवतासें प्राप्त होवे हैं. । पुण्योदयसें पूर्वोक्त प्राप्ति हुये भी श्रद्धा १, शुद्ध प्ररूपकका जोग २, और सुणनेसें तत्त्वनिश्चयरूप बोधिरत्न सम्यक्त्व ३, येह अतिही दुर्लभ हैं. ॥ कुत्सितसमयएकांतवादियोंके शास्त्र तिनकी श्रुतियोंको मथन करनेवाला सम्यक्त्व,

+ पुण्य और पापको आश्रवतत्त्वके अंतर्गत गिणनेसे सप्त तत्त्व, अन्यथा नव तत्त्व जाणने. जिनोक्त स्वरूप जैनतत्त्वादर्शके पंचम परिच्छेदमें है.

जिसके हृदयमें अच्छीतरें स्थित है, तिस पुरुषको जगत्के उद्योत करनेवाले, और भव—संसारको मथनेवाले, ज्ञान और चारित्र प्राप्त होते हैं. ॥

॥ श्लोकाः ॥

या देवे देवताबुद्धिर्गुरौ च गुरुतामतिः॥
धर्मे च धर्मधीः शुद्धा सम्यक्त्वमिदमुच्यते॥ १॥
अदेवे देवबुद्धिर्या गुरुधीरगुरौ च या॥
अधर्म्मे धर्म्मबुद्धिश्च मिथ्यात्वं तद्विपर्ययात्॥ २॥
सर्वज्ञो जितरागादिदोषस्त्रैलोक्यपूजितः॥
यथास्थितार्थवादी च देवोऽर्हन् परमेश्वरः॥ ३॥
ध्यातव्योयमुपास्योयमयं शरणमिष्यताम्॥
अस्यैव प्रतिपत्तव्यं शासनं चेतनाऽस्ति चेत्॥ ४॥
ये स्त्रीशस्त्राक्षसूत्रादिरागाद्यंककलंकिताः॥
निग्रहानुग्रहपरास्ते देवा स्युर्न मुक्तये॥ ५॥
नाट्याट्टहाससंगीताद्युपप्लवविसंस्थुलाः॥
लंभयेयुः पदं शांतं प्रपन्नान् प्राणिनः कथं॥ ६॥
महाव्रतधरा धीरा भैक्ष्यमात्रोपजीविनः॥
सामायिकस्था धर्मोपदेशका गुरवो मताः॥ ७॥
सर्वाभिलाषिणः सर्वभोजिनः सपरिग्रहाः॥
अब्रह्मचारिणो मिथ्योपदेशा गुरवो न तु॥ ८॥
परिग्रहारंभमग्नास्तारयेयुः कथं परान्॥
स्वयं दरिद्रो न परमीश्वरी कर्त्तुमीश्वरः॥ ९॥
दुर्गतिप्रपतत्प्राणिधारणाद्धर्म उच्यते॥
संयमादिर्दशविधः सर्वज्ञोक्तो विमुक्तये॥ १०॥

अपौरुषेयं वचनमसंभवि भवेद्यदि ॥
न प्रमाणं भवेद्वाचां ह्याप्ताधीना प्रमाणता ॥ ११ ॥
मिथ्यादृष्टिभिराम्नातो हिंसाद्यैः कलुषीकृतः ॥
स धर्म इति वित्तोपि भवभ्रमणकारणम् ॥ १२ ॥
सरागोपि हि देवश्चेद्गुरुरब्रह्मचार्यपि ॥
कृपाहीनोपि धर्मः स्यात् कष्टं नष्टं हहा जगत् ॥ १३ ॥
शमसंवेगनिर्वेदानुकंपास्तिक्यलक्षणैः ॥
लक्षणैः पंचभिः सम्यक् सम्यक्त्वमुपलक्ष्यते ॥ १४ ॥
स्थैर्यं प्रभावनाभक्तिः कौशलं जिनशासने ॥
तीर्थसेवा च पंचास्य भूषणानि प्रचक्ष्यते ॥ १५ ॥
शंका कांक्षा विचिकित्सा मिथ्यादृष्टिप्रशंसनम् ॥
तत्संस्तवश्च पंचापि सम्यक्त्वं दूषयंत्यमी ॥ १६ ॥

अर्थः—साचे देवके जो देवपणेकी बुद्धि, साचे गुरुके विषे गुरुपणेकी बुद्धि और साचे धर्मके विषे धर्मकी बुद्धि, कैसी बुद्धि ? शुद्धा सूधी निश्चल संदेहरहित, इसको सम्यक्त्व कहिये हैं.। ऐसी सम्यक्त्वकी बुद्धि थोडे वखत भी जिसको आजावेगी, सो प्राणि अर्द्धपुद्गलपरावर्तकालमेंही संसारसें निकलके मोक्षको प्राप्त होगा, यह निश्चय जाणना.

यत उक्तम् ॥

अंतोमुहुत्तमित्तंपि फासियं जेहिं हुज्ज सम्मत्तं ॥
तेसिं अवड्ढ पुग्गलपरिअट्टो चेव संसारो ॥ १ ॥

भावार्थः—अंतर्मुहूर्तमात्र भी जिनोंनें सम्यक्त्व स्पर्श किया है, तिनोंका अर्द्धपुद्गलपरावर्त्तही उत्कृष्ट संसार जाणना, तदनंतर अवश्यमेव मोक्षको प्राप्त होवे. इति सम्यक्त्वस्वरूपम् ॥ १ ॥

अथ मिथ्यात्वस्वरूपमाह ॥ जिसमें देवके गुण नही हैं, ऐसे अदेवमें देवकी बुद्धि—जैसें तमसें उद्योतकी बुद्धि । जिसमें गुरुके गुण नहीं हैं,

ऐसें अगुरुमें गुरुकी बुद्धि—जैसें नींबमें आम्रकी बुद्धि। अधर्म यागादिमें जीवहिंसादिक, तिसके विषे धर्मकी बुद्धि—जैसें सर्पके विषे पुष्पमालाकी बुद्धि, सो मिथ्यात्व है. सम्यक्त्वसें विपर्यय होनेसें, अर्थात् साचे देवके ऊपर अदेवपणेकी बुद्धि, जैसें कौशिक (घूअड) की सूर्यके तेजऊपर अंधकारकी बुद्धि, साचे गुरुऊपर अगुरुपणेकी बुद्धि, जैसें फूलमालाके ऊपर सर्पकी बुद्धि। और साचे धर्मके ऊपर अधर्मपणेकी बुद्धि, जैसें श्वेतशंखके ऊपर काचकामलरोगवालेकी नीलशंखकी बुद्धि। तिसको मिथ्यात्व कहिये हैं.। सो मिथ्यात्व पांच प्रकारका है. १ आभिग्रहिक, २ अनाभिग्रहिक, ३ आभिनिवेशिक, ४ सांशयिक, ५ अनाभोगिक.॥

(१) प्रथम आभिग्रहिकमिथ्यात्व, सो, जो जीव मिथ्या कुशास्त्रोंके पढनेसें कुदेव कुगुरु कुधर्मके ऊपर आस्था करके दृढ हुआ है, और ऐसा जानता है कि, जो कुछ मैंने समझा है सोही सत्य है, औरोंकी समझ ठीक नही है, जिसको सचजूठकी परीक्षा करनेका मन भी नहीं है, और जो सचजूठका विचार भी नही करता है. यह मिथ्यात्व, दीक्षित शाक्यादि अन्यमतममत्वधारीयोंको होता है. वे अपने मनमें ऐसें जानते हैं कि, जो मत हमने अंगिकार किया है, वोही सत्य है; और सर्व मत झूठे हैं. ऐसें जिसके परिणाम होवे, सो आभिग्रहिक मिथ्यात्व है.

(२) दूसरा अनाभिग्रहिकमिथ्यात्व, सो सर्व मतोंको अच्छा जाणे, सर्व मतोंसें मोक्ष है, इसवास्ते किसीको बुरा न कहना, सर्व देवोंको नमस्कार करना, ऐसी जो बुद्धि, तिसको अनाभिग्रहिक मिथ्यात्व कहते हैं. यह मिथ्यात्व जिनोंने कोइ दर्शन ग्रहण नहीं करा ऐसें जो गोपाल बालकादि तिनको है. क्योंकि, यह अमृत और विषको एकसरिखे जाननेवाले हैं.

(३) तीसरा आभिनिवेशिक मिथ्यात्व, सो जो पुरुष जानकरके झूठ बोले, प्रथम तो अज्ञानसें किसी शास्त्रार्थको भूल गया, पीछे जब कोइ विद्वान् कहे कि, तुम इस विषयमें भूलते हो, तब अपने मनमें

सत्य विषयको जाणता हुआ भी, झूठे पक्षका कदाग्रह, ग्रहण करे, जात्यादि अभिमानसें कहना, न माने, उलटी स्वकपोलकल्पित कुयुक्तियों बनाकरके अपने मनमाने मतको सिद्ध करे, वादमें हार जावे तो भी न माने, ऐसा जीव, अतिपापी, और वहुल संसारी होता है. ऐसा मिथ्यात्व, प्रायः जो जैनी, जैन मतको विपरीतकथन करता है, उसमें होता है, गोष्ठमाहिलादिवत् ॥

(४) चौथा सांशयिकमिथ्यात्व, सो देव गुरु धर्म जीव काल पुद्गलादिक पदार्थोंमें यह सत्य है कि, यह सत्य है? ऐसी बुद्धि, तिसको सांशयिकमिथ्यात्व कहते हैं. यथा क्या वह जीव असंख्य प्रदेशी है? वा नही है? इसतरें जिनोक्त सर्व पदार्थमें शंका करनी। "सांशयिकं मिथ्यात्वं तदशेषया शंका संदेहो जिनोक्ततत्त्वेष्वितिवचनात् ॥"

(५) पांचमा अनाभोगिकमिथ्यात्व, सो जिन जिवोंको उपयोग नही कि, धर्म अधर्म क्या वस्तु है? ऐसें जे एकेंद्रियादि विशेषचैतन्यरहित जीव, तिनको अनाभोगमिथ्यात्व होता है.॥ २ ॥

अथदेवलक्षणमाह ॥ देव सो कहिये, जो सर्वज्ञ होवे, परंतु जैसें लौकिक मतमें विनायकका मस्तक ईश्वरने छेदन कर दिया, पीछे पार्वतीके आग्रहसें सर्वत्र देखने लगा, परं किसी जगे भी मस्तक न देखा, तव हाथीके मस्तकको ल्यायके विनायकके मस्तकके स्थानपर चेप दिया, जिसवास्ते विनायकका (गणेशका) नाम "गजानन" प्रसिद्ध हुआ. इत्यादि—यदि ईश्वर (महादेव) सर्वज्ञ होवे तो, पार्वतीका पुत्र जाणके विनायकका मस्तक कभी न छेदन करे. यदि छेदे, तो जगत्में विद्यमान तिस मस्तकको क्यों न देखे? इसवास्ते ऐसें अधूरेज्ञानवालेको देव न कहिये. । तथा 'जितरागादिदोषः' जे संसारके मूलकारण राग द्वेष काम क्रोध लोभ मोहादिक दोष, तिन सर्वको जिसने जीते हैं, निर्मूल किये हैं, तिसको देव कहिये. जिसमें रागादि दोष होवे, तिसको अस्मदादिवत् संसारी जीवही कहिये, तिसमें देवपणा न होवे. । तथा

'त्रैलोक्यपूजितः' स्वर्गमर्त्यपातालके स्वामी इंद्रादिक परम भक्तिकरके जिसको वांदे, पूजे, नमस्कार करे, सेवे, सो देव कहिये. परंतु कितनेक इस लोकके अर्थीयोंके वांदनेसें, वा पूजनादिकसें देवपणा नही होवे है.। तथा 'यथास्थितार्थवादी' जो यथास्थित सत्यपदार्थका वक्ता, सो देव कहिये, परंतु जिसका कथन पूर्वापरविरोधि होवे, और विचारते हुए सत्य २ मिले नही, सो देव न कहिये. ॥ देवोर्हन् परमेश्वरः ॥ येह पूर्वोक्त चार गुण पूर्ण जिसमें होवे, सो अरिहंत, वीतराग, परमेश्वर, देव, कहिये. इससें अन्य कोइ देव नही है. ॥ ३ ॥

ऐसा पूर्वोक्त साचा देव, पिछाणके आराधना, सोही कहते हैं। ध्यातव्योयमित्यादि—पूर्वे जे देवके लक्षण कहे, तिन लक्षणोंकरी संयुक्त जो देव, तिसको एकाग्र मन करी ध्यावना, जैसें श्रेणिक महाराजने श्रीमहावीरजीका ध्यान किया.। तिस ध्यानके प्रभावसें आगामी चउवीसीमें श्रेणिक महाराज, वर्ण, प्रमाण, संस्थान, अतिशयादिकगुणोंकरके श्रीमहावीरस्वामिसरिषा 'पद्मनाभ,' इस नामकरके प्रथम तीर्थंकर होगा. इसीतरें औरोनें भी तल्लीनपणे देवका ध्यान करना, तथा 'उपास्योयम्' ऐसे पूर्वोक्त देवकी सेवा करनी श्रेणिकादिवत्.।तथा इसी देवका, संसारके भयको टालनहार जाणके, शरण वांछना.। इसी देवका शासन, मत, आज्ञा, धर्म, अंगीकार करना. । 'चेतनास्ति चेत्' जो कोइ चेतना चैतन्यपणा है तो, सचेतन सजाण जीवको उपदेश दिया सार्थक होवे, परंतु अचेतन अजाणको दिया उपदेश क्या काम आवे? इसवास्ते 'चेतनास्ति चेत्' ऐसें कहा. ॥ ४ ॥

अथादेवत्वमाह ॥ अथ देवके लक्षण कहते है.॥ ये स्त्री० जिनके पास स्त्री (कलत्र) होवे तथा खड्ग धनुष्य चक्र त्रिशूलादिक शस्त्र (हथियार) होवे, तथा अक्षसूत्र जपमाला आदि शब्दसें कमंडलुप्रमुख होवे, येह कैसें है? रा० रागादिकके अंक—चिन्ह है, सोही दिखावे हैं. स्त्री रागका चिन्ह है,। जो पासे स्त्री होवे तो जाणना कि, इसमें राग है.। शस्त्र द्वेषका चिन्ह है, जो पासे हथियार देखीए तो, ऐसा जाणिये कि तिसने किसी

वैरीको मारना, चूरना है, अथवा किसीका भय है, जिस वास्ते शस्त्रधारण किये हैं.। अक्षसूत्र असर्वज्ञपणेका चिन्ह है, जो हाथमें माला धारण करे तो जाणिये कि, इसमें सर्वज्ञपणा नही है. यदि होवे तो, मणके विना गिणतीकी संख्या जाणलेवे. अथवा तिससें अधिक वडा अन्य कोइ है, जिसका वो जाप करता है. यादि अन्य कोई नही है तो, जपमालासें किसका जाप करता है ? । कमंडलु अशुचिपणेका चिन्ह है, यदि हाथमें कमंडलु पाणीका भाजन देखीए तो, ऐसा जाणिये कि, यह अशुचि है. शौच करणेके वास्ते यह कमंडलु धारण करता है. ।

यत उक्तम् ।

स्त्रीसंगः काममाचष्टे द्वेषं चायुधसंग्रहः ॥
व्यामोहं चाक्षसूत्रादिरशौचं च कमंडलुः ॥ १ ॥

इन पूर्वोक्त दोषोंकरके जे कलंकित दूषित है, तथा निग्रहा० जिसके उपर रुष्टमान होवे, तिसको निग्रह (बंधनमरणादिक) करें, और जिसके ऊपर तुष्टमान होवे, तिसको अनुग्रह (राज्यादिकके वर) देवें; तेदेवा० जे ऐसें रागादिकोंकरके दूषित हैं, वे देव, मुक्तिके हेतु नही होते हैं. ॥ ५ ॥

ऐसे पूर्वोक्त देव अपने सेवकोंको मोक्ष नही दे सकते हैं, सोही वात फिर कहते हैं. । नाट्याट्ट० जे देव नाटकके रसमें मग्न हैं, अट्टाट्टहास करते हैं, वीणा लेके संगीत गानादिक करते हैं, इत्यादि उपप्लव संसारकी चेष्टा तिनोंकरके जे विसंस्थुल निःप्रतिष्ठ अस्थिर हैं; लंभयेयुः—जे आपही ऐसे हैं, वे देव, अपने प्रपन्न आश्रित सेवकोंको शांतपद, संसार चेष्टारहित मुक्ति केवलज्ञानादिकपद, कैसें प्राप्त कर सकते हैं ? जैसें एरंडवृक्ष कल्पवृक्षकीतरें इच्छा नही पूर सकता है, यदि किसी मूढ पुरुषने एरंडको कल्पवृक्ष मान लिया तो, क्या वो कल्पवृक्षकीतरें मनोवांछित दे सकता है ? ऐसेंही किसी मिथ्या दृष्टीनें पूर्वोक्त दूषणोंवाले कुदेवोंको देव मान लिये तो, क्या वे देव परमेश्वर मोक्षदाता हो सकते हैं ? कदापि नही हो सकते हैं. ॥ ६ ॥

अथगुरुलक्षणमाह ॥ अथ गुरुके लक्षण कहते हैं ॥ महाव्र० अहिंसादि पांच महाव्रतके धारने पालनेवाले होवे, और आपदा आ पडे तब धीर साहसिक होवे, अपने व्रतोंको विराधे नही, कलंकित करे नही। बेंतालीश (४२) दूषणरहित भिक्षावृत्ति माधुकरी वृत्ति करी अपने चारित्रधर्मके तथा शरीरके निर्वाहवास्ते भोजन करे, भोजन भी ऊनोदरतासंयुक्त करे, भोजनकेवास्ते अन्न पाणी रात्रिको न राखे, धर्मसाधनके उपकरणविना और कुछ भी संग्रह न करे, तथा धन, धान्य, सुवर्ण, रूपा, मणि, मोती, प्रवालादि परिग्रह, न राखे.। सामा० रागद्वेषके परिणामरहित मध्यस्थ वृत्ति होकर सदा सामायिकमें वर्त्ते.। धर्मोप० जो धर्म जीवोंके उद्धारवास्ते सम्यग् ज्ञानदर्शनचारित्ररूप परमेश्वर अरिहंत भगवंतने स्याद्वाद अनेकांतस्वरूप निरूपण किया है, तिस धर्मका जे भव्य जीवोंकेतांइ उपदेश करे, परंतु ज्योतिषशास्त्र, अष्टप्रकारका निमित्त शास्त्र, वैद्यशास्त्र, धन उत्पन्न करनेका शास्त्र, राजसेवादि अनेकशास्त्र, जिनसें धर्मको बाधा पहुंचे तिनका उपदेश न करे; ऐसे गुरु कहियें.। काष्ठमय बेडीसमान आप भी तरें, और औरोंको भी तारें. ॥ ७ ॥

अथागुरुलक्षणमाह ॥ अथ अगुरुके लक्षण कहते हैं ॥ सर्वा० स्त्री, धन, धान्य, हिरण्य, रूपादि सर्व धातु, क्षेत्र, हाट, हवेली, चतुःपदादिक अनेक प्रकारके पशु, इन सर्वकी अभिलाषा है जिनको, वे सर्वाभिलाषिणः। सर्वभोजिनः। मधु, मांस, मांखण, मदिरा, अनंतकाय, अभक्ष्यादिक सर्व वस्तुके भोजन करनेवाले होवे, किसी भी वस्तुको वर्जे नही,। सपरिग्रहाः। जे पुत्र, कलत्र, धन, धान्य, सुवर्ण, रूपा, क्षेत्रादिककरीसहित हैं,। अब्रह्म० तथा अब्रह्मचारी हैं। मिथ्यो० मिथ्या वितथ झूठे धर्मका उपदेश करें, झूठाधर्म प्रकाशें, ज्योतिष, निमित्त, वैदक, मंत्र तंत्रादिकका उपदेश देवें, वे गुरु नही. लोहमय वेडी (नावा) समान, आप भी डूबें, और औरोंको भी डोबें. ॥ ८ ॥

पूर्वोक्त वातही कहते हैं ॥ परिग्रहा० स्त्री, घर, लक्ष्मी आदि परिग्रह, और क्षेत्र, कृषी, व्यवसायादि आरंभ इनमें जे मग्न है, आपही

भवसमुद्रमें डूबे हुए हैं, ता० वे, किसतरेंसें दूसरे जीवोंको संसार-सागरसें तार सकते हैं? इसवातमें दृष्टांत कहते हैं.। जो पुरुष आपही दरिद्री है, सो परको ईश्वर, लक्ष्मीवंत करनेको समर्थ नही है; तैसेंही वे कुगुरु, आपही संसारमें डूबे हुए, पर अपने सेवकोंको कैसें तार सके? ॥ ९ ॥

धर्मलक्षणमाह ॥ सत्य धर्मका स्वरूप कहते हैं. ॥ दुर्गति० नरक, तिर्यंच, कुमनुष्य, कुदेवत्वादि दुर्गतिमें गिरते हुए प्राणिकी रक्षा करे, गिरने न देवे, इसवास्ते धारण करनेसें धर्म कहिये. सो, संयमादि दशप्रकार सर्वज्ञका कथन करा हुआ धर्म, पालनेवालेको मोक्षकेवास्ते होता है.। संयमादि दश प्रकार येह हैं. संयम जीवदया १, सत्यवचन २, अदत्तादानत्याग ३, ब्रह्मचर्य ४, परिग्रहत्याग ५, तप ६, क्षमा ७, निरहंकारता ८, सरलता ९, निर्लोभता १०. ॥ इससें उलटा हिंसादिमय असर्वज्ञोक्त धर्म, दुर्गतिकाही कारण है. ॥ १० ॥

अधर्मत्वमाह ॥ अपौरुषेयं० अपौरुषेय वचन, असंभवि—संभवरहित है. क्यौंकि, जो वचन है, सो किसी पुरुषके बोलनेसेंही है, विना बोले नही. वच् परिभाषणे इति वचनात्. और अक्षरोत्पत्तिके आठ स्थान नियत है, सो भी पुरुषकोंही होते हैं. इसवास्ते वचन पुरुषके विना संभवे नही.। भवेद्यदि—न प्रमाणं। यदि होवे तो, वेदको प्रमाणता नही. क्यौंकि, । भवेद्वाचां ह्याप्ताधीना प्रमाणता। वचनोंकी प्रमाणता, आप्त पुरुषोंके अधीन है. ॥ ११ ॥

असर्वज्ञोक्त धर्म प्रमाण नही यह कहते हैं. ॥ मिथ्या० मिथ्यादृष्टि असर्वज्ञोंने अपनी बुद्धिसें कहा हुआ, पशुमेध, अश्वमेध, नरमेधादि यज्ञोंके कथनसें, और अपुत्रस्य गतिर्नास्ति इत्यादि कथनसें, जीववधादिकोंकरके जो धर्म मलीन है, सधर्म० सो धर्म है, अर्थात् यज्ञादि हिंसा धर्मही है, ऐसा अज्ञाण लोकोंमें विशेष प्रसिद्ध है. तो भी, भवभ्रमण (संसारभ्रमण) का कारण है. यथार्थ धर्मके अभावसें ॥ १२ ॥

कुदेवकुगुरुकुधर्मनिंदामाह ॥ सरागोपि० यदि जगत्में सरागः रागद्वेषा-दिकरी सहित भी देव होवे, अब्रह्मचारी मैथुनाभिलाषी भी गुरु होवे, और दयाहीन भी धर्म होवे, तो, हाहा ! इति खेदे बडा भारी कष्ट है, संसारलक्षण जगत् नष्ट हुआ, दुर्गतिमें पडनेसें. क्योंकि, पूर्वोक्त देव गुरु धर्मकरके डूबनाही होवे. ।

यत उक्तम् ॥

राग़ी देवो दोसी देवो नामिसूमंपि देवो रत्ता मत्ता कंता
सत्ता जे गुरू तेवि पुज्जा । मज्जे धम्मो मंसे धम्मो जीव
हिंसाइ धम्मो हाहा कट्ठं नट्ठो लोओ अट्टमट्टं कुणंतो ॥ १ ॥ १२ ॥

ऐसें पूर्वोक्त अदेव, अगुरु, अधर्मका परित्याग करके, सत्य देव, गुरु, धर्मकी, आस्था करनी, तिसका नाम सम्यक्त्व है. अर्थात् आत्माका जो शुभ परिणाम है, सोही सम्यक्त्व है. सो सम्यक्त्व हृदयमें है, ऐसा पांच लक्षणोंकरके मालुम होता है, वे पांच लक्षण कहते हैं. ॥

शमसं०—जिस जीवमें अनंतानुबंधि क्रोध मान माया लोभका उपशम देखिये, अर्थात् अपराध करनेवालेके ऊपर जिसको तीव्र कषाय उत्पन्न होवेही नही, यदि उत्पन्न होवे तो, तिस क्रोधादिको निष्फल कर देवे, इस शमरूप लक्षणसें जाणिये कि, इस जीवमें सम्यक्त्व है । १ । संवेग—जिसके हृदयमें संवेग संसारसें वैराग्यपणा होवे, तिस जीवमें संवेगरूप लक्षणसें सम्यक्त्व जाणिये हैं. । २ । संसारके सुखों ऊपर द्वेषी, वैराग्यवान्, परवशपणेसें कुटुंबादिकके दुःखसें गृहस्थपणेमें रहा हुआ मोक्षाभिलाषी, जो जीव है, तिसमें निर्वेदरूप लक्षणसें सम्यक्त्व है. । ३ । जिसके हृदयमें दुःखिजीवोंको देखके अनुकंपा (दया) उत्पन्न होवे, दुःखिजीवोंके दुःखोंको दूर करनेका जिसका मन होवे, जो दुःखिजीवको देखके अपने मनमें दुःखी होवे, शक्तिअनुसार दुःखिजीवके दुःखोंको दूर करे, तिसमें अनुकंपारूप लक्षणसें सम्यक्त्व उपलब्ध होता है. । ४ । जिनोक्त तत्त्वोंमें आस्ति-

भावका होना, सो आस्तिक्य । ५ । एतावता शम १, संवेग २, निर्वेद ३, अनुकंपा ४, और आस्तिक्य ५, इन पांचों लक्षणोंसें हृदयगत सम्यक्त्व जाणिये हैं. ॥ १४ ॥

सम्यक्त्वस्य पंचभूषणान्याह ॥ अथ सम्यक्त्वके पांच भूषण कहते हैं. ॥ स्थैर्य०—स्थैर्य जिनधर्मकेविषे स्थिरता । १ । जिनधर्मकी प्रभावना । २ । जिनधर्ममें भक्ति । ३ । जिनशासनमें कुशलता । ४ । और तीर्थसेवा । ५ । येह पांच सम्यक्त्वके भूषण हैं. ॥ १५ ॥

सम्यक्त्वस्य पंचदूषणान्याह ॥ अथ सम्यक्त्वके पांच दूषण कहते हैं. ॥ शंका०—शंका धर्म है, वा नही? इत्यादि संदेह । १ । आकांक्षा—अन्य २ धर्मकी अभिलाषा । २ । विचिकित्सा—धर्मके फलका संदेह । ३ । मिथ्या-दृष्टिकी प्रशंसा । ४ । और मिथ्यादृष्टियोंका परिचय । ५ । येह पांच सम्यक्त्वों दूषित करते हैं. ॥ १६ ॥

ऐसें पूर्वोक्त उपदेशकरके श्रेणिक, संप्रति, दशार्णभद्रादि सम्यक्त्वमें दृढ राजायोंके चरित्रोंके व्याख्यान करे. । उस दिनमें श्रावक एकभक्त आचाम्लादि तप करे. । साधुयोंको अन्न, वस्त्र, पुस्तक, वसति, यथा-योग्य देना. । मंडलीपूजा करनी. । चतुर्विधसंघवात्सल्य करना. । और संघपूजा करनी. ॥

इतिव्रतारोपसंस्कारे सम्यक्त्वसामायिकारोपणविधिः ॥

इत्याचार्यश्रीमद्विजयानंदसूरिविरचिते तत्वनिर्णयप्रासादे पंचद-शव्रतारोपसंस्कारांतर्गतसम्यक्त्वसामायिकारोपणविधिवर्ण-नोनाम सप्तविंशः स्तम्भः ॥ २७ ॥

॥ अथाष्टाविंशस्तम्भारम्भः ॥

अथ अष्टाविंश (२८) स्तंभमें व्रतारोपसंस्कारांतर्गत देशविरतिसामायि-कारोपणविधि लिखते हैं ॥ तदाही—सम्यक्त्व सामायिकारोपणानंतर तत्कालही, तिसकी वासनानुसारें, वा मास वर्षादिके अतिक्रम हुए, देश-विरतिमासायिक आरोपण करिये हैं. । तहां नंदि, चैत्यवंदन, कायोत्सर्ग,

वासक्षेप, क्षमाश्रमणआदि, पूर्ववत् जानने. परंतु सर्वत्र सम्यक्त्वसामायिकके स्थानमें देशविरतिसामायिकका नाम ग्रहण करना. । सर्वत्र तैसें करके फिर दूसरी नंदि दंडकोच्चारणसें प्रथम करनी. । व्रतोच्चारकालमें नमस्कार तीन पाठानंतर, हाथमें ग्रहण करे परिग्रह परिमाण टिप्पनक (फ़हरिस्त–नोंध) ऐसे श्रावकको, गुरु, देशविरतिसामायिकदंडक उच्चरावे. ॥

सयथा ॥

"॥ अहणं भंते तुम्हाणं समीवे थूलगं पाणाइवायं संकप्पओ बीइंदिआइजीवनिकायनिग्गहनियहिरूवं निरावराहं पच्चक्खामि जावज्जीवाए दुविहं तिविहेणं मणेणं वायाए काएणं न करेमि न कारवेमि तस्स भंते पडिक्कमामि निंदामि गरिहामि अप्पाणं वोसिरामि ॥"

यह पाठ तीनवार कहना ॥ १ ॥ इसीतरें सर्व व्रतोंमें तीन २ वार पाठ पढना. ॥

"॥ अहणं भंते तुम्हाणं समीवे थूलगं मुसावायं जीहाच्छेयाइनिग्गहहेऊअं कन्नागोभूमिनिक्खेवावहारकूडसक्खाइपंचविहं दक्खिन्नाइअविसए अहागहिअभंगएणं पच्चक्खामि जावज्जीवाए दुविहं तिविहेणं मणेणं वायाए काएणं० ॥ २ ॥"

"॥ अहणं भंते तुम्हाणं समीवे थूलगं अदिन्नादाणं खत्तखणणाइचोरकारकरं रायनिग्गहकरं सचित्ताचित्तवत्थुविसयं पच्चक्खामि जावज्जीवाए दुविहं तिविहेणं० ॥ ३ ॥"

"॥ अहणं भंते तुम्हाणं समीवे थूलगमेहुणं उरालियवेउव्वियभेअं अहागहिअभंगएणं तत्थ दुविहं तिविहेणं दिव्वं एगविहं तिविहेणं तेरिच्छं एगविहमेगविहेणं माणुस्सं पच्चक्खामि जावज्जीवाए दुविहं तिविहेणं० ॥ ४ ॥"

"॥ अहणं भंते तुम्हाणं समीवे अपरिमिअं परिग्गहं धण-धन्नाइनवविहवत्थुविसयं पच्चक्खामि इच्छापरिमाणं अहा-गहिअभंगएणं उवसंपज्जामि जावज्जीवाए दुविहं तिविहेणं० ॥ ५ ॥"

"॥ अहणं भंते तुम्हाणं समीवे पढमं गुणवूयं दिसिपरिमा-णरूवं पडिवज्जामि जावज्जीवाए दुविहं तिविहेणं० ॥ ६ ॥"

"॥अहणं भंते तुम्हाणं समीवे उवभोगपरिभोगवयं भोयणओ अणंतकायबहुबीयराई भोयणाइबावीसवत्थुरूवंकम्मणापन्न-रसकम्मादाणइंगालकम्माइबहुसावज्जंखरकम्माइरायनिओ-गं च परिहरामि परिमिअं भोगउवभोगं उवसंप-ज्जामि जावज्जीवाए दुविहं तिविहेणं० ॥ ७ ॥"

"॥ अहणं भंते तुम्हाणं समीवे अणत्थदंडगुणव्वयं अट्टरुद्द-ज्झाणपावोवएसहिंसोवयारदाणपमायकरणरूवं चउव्विहं जहासत्तीए पडिवज्जामि दुविहं तिविहेणं० ॥ ८ ॥"

"॥ अहणं भंते तुम्हाणं समीवे सामाइयं जहासत्तीए पडिव-ज्जामि जावज्जीवाए दुविहं तिविहेणं० ॥ ९ ॥"

"॥ अहणं भंते तुम्हाणं समीवे देसावगासिअं जहासत्तीए पडिवज्जामि जावज्जीवाए दुविहं तिविहेणं० ॥ १० ॥"

"॥ अहणं भंते तुम्हाणं समीवे पोसहोववासं जहासत्तीए पडिवज्जामि जावज्जीवाए दुविहं तिविहेणं० ॥ ११ ॥"

"॥ अहणं भंते तुम्हाणं समीवे अतिहिसंविभागं जहासत्तीए पडिवज्जामि जावज्जीवाए दुविहं तिविहेणं० ॥ १२ ॥"

" ॥ इच्चेयं सम्मत्तमूलं पंचाणुव्वइयं तिगुणव्वइयं चउ-सिक्खावइयं दुवालसविहं सावगधम्मं उवसंपज्जित्ताणं विहरामि ॥ इति ॥ "

दंडकोच्चारणानंतर कायोत्सर्ग, वंदनक, क्षमाश्रमण, प्रदक्षिणा, वास-क्षेपादिक पूर्ववत्.

परिग्रहप्रमाणटिप्पनकयुक्तिर्यथा ॥

पणमिअ अमुगजिणंदं अमुगा सड्ढी य अमुग सड्ढो वा ॥
गिहिधम्मं पडिवज्जइ अमुगस्स गुरुस्स पासंमि ॥ १ ॥
अरहंतं मुत्तूणं न करेमि अ अन्नदेवयपणामं ॥
मुत्तूणं जिणसाहू न चेव पणमामि धम्मत्थं ॥ २ ॥
जिणवयणभाविआइं तत्ताइं सच्चमेव जाणामि ॥
मिच्छत्तसत्थसवणे पढणे लिहणे अ मे नियमो ॥ ३ ॥
परतित्थिआण पणमण उब्भावण थुणण भत्तिरागं च ॥
सक्कारं सम्माणं दाणं विणयं च वज्जेमि ॥ ४ ॥
धम्मत्थमन्नतित्थे न करे तवदाणन्हाणहोमाई ॥
तेसिं च उचियकम्मे करणिज्जे होउ मे जयणा ॥ ५ ॥
तिअपंचसत्तवेलं चियवंदणयं जहाणुसत्तीए ॥
इगदुन्निअवाराओ सुसाहूनमणं च संवासो ॥ ६ ॥
इगदुन्नितिन्निवेलं जिणपूआ निच्च पवुन्हवणं च ॥
जयणा य कुलायारे पाणवहं सव्वजीवाणं ॥ ७ ॥
न करेमि अकज्जेणं कज्जे एगिंदिआण मह जयणा ॥
कन्नाईविसयअलियं वज्जेमि अ पंच नियमेणं ॥ ८ ॥
वज्जेमि धणं चोरंकारकरं रायनिग्गहकरं च ॥
दुविहतिविहेण दिव्वं एगविहं तिविहतेरिच्छं ॥ ९ ॥

उत्तरपक्षः–सहकारियोंने तिसको किंचित् उपकार करीये है, वा नही? जेकर नही करीये है, तब तो सहकारीयोंकी संनिधानसें पहिलेकी तरें क्यों नही अर्थक्रियामें उदास रहता है? जेकर उपकार करीये है, तब तो सो उपकार तिनोने भिन्न कयीये हैं वा अभिन्न? जेकर अभिन्न करीये हैं तब तो तिसकोही करीये हैं ऐसें तो लाभ इच्छते हुए मूलहानिही आ गई. कृतक होनेसें, तिसको अनित्यताकी आपत्तिसें. जेकर भेद है, तो सो उपकार तिसको कैसें हुआ? सह्य और विंध्याचलको क्यों न हुआ?

पूर्वपक्षः–तिसके साथ संबंध होनेसे तिसका यह उपकार है.

उत्तरपक्षः–उपकार्य उपकारका क्या संबंध है? संयोगसंबंध तो नही. क्योंकि, वो तो द्रव्योंकाही होता है. यहां तो उपकार्य द्रव्य है, और उपकार क्रिया है, इसवास्ते संयोगसंबंध तो नही है. और समवायसंबंध भी नही है. क्योंकि, तिसको एक होनेसें और व्यापक होनेसें, निकट दूरके अभावसें, सर्वत्र तुल्य होनेसें. नियतसंबंधियोंके साथ भी संबंधयुक्त नही है. क्योंकि, नियतसंबंधिसंबंधके अंगिकार करे हुए तिसका करा उपकार इस समवायका अंगिकार करना चाहिये. तैसें हुए उपकारको भेदाभेद कल्पना तैसेंही है. उपकारको समवायसें अभेद हुए समवायही करा सिद्ध हुआ. और भेद माने भी समवायको नियतसंबंधिसंबंधत्व नही है. तिस वास्ते एकांत नित्यभाव क्रमकरके अर्थक्रिया नही करता है. और युगपत भी अर्थक्रिया नही करता है. एक भाव सकल कालमें होनेवालीयां युगपत् सर्व क्रियाओंको करता है, ऐसी प्रतीति नही होती है. जेकर करे तो दूसरे समयमें क्या करेगा? जेकर करेगा तो क्रमभावी पक्षके दूषण होवेंगे. जेकर न करेगा तो अर्थक्रियाकारित्वके अभावसें अवस्तुत्वका प्रसंग है. ऐसें एकांत नित्यसें क्रमाक्रमकेसाथ व्याप्त अर्थक्रिया व्यापकानुपलब्धिके बलसें व्यापक निवर्तन होनेसें निवर्तमान होती हुई स्वव्याप्य अर्थक्रियाकारित्वको निवर्तन करे हैं. और अर्थक्रियाकारित्व निवर्तमान होता हुआ स्वव्याप्यसत्वको निवर्तन करता है. इस वास्ते, एकांत नित्य पक्ष भी युक्तिक्षम नही है. एकांत अनित्य पक्ष भी अंगीकार करने योग्य नही है. अनित्य जो है सो प्रतिक्षण-

पंचुंबरि चउ विगई हिम विस करगे अ सव्वमट्टी अ ॥
राईभोयणगं चिय बहुबीअ अणंत संधाणा ॥ २२ ॥
घोलवडा वायंगण अमुणिअनामाइं पुप्फफलयाइं ॥
तुच्छफलं चलिअरसं वज्जे वज्जाणि बावीसं ॥ २३ ॥
एआइं मुत्तूणं अन्नाण फलांण पुप्फपत्ताणं ॥
एआइं एआइं पाणंतेवि हु न भक्खेमि ॥ २४ ॥
इत्तिअमित्तअणंते फासुअरईएण होउ मे जयणा ॥
इत्तिअफले अपक्के अखंडिएवि हु न भक्खेमि ॥ २५ ॥
आजम्मं सच्चित्ता इत्तिअमित्ता य भक्खणिज्जा मे ॥
इत्तिअमित्ता दव्वा वंजणघिअदुद्धदहिपभिई ॥ २६ ॥
इत्तिअमित्ता विगई इत्तिअमित्ता य मे पइत्ताणा ॥
इत्तिअमित्ता गयतुरयरहवरा हुंतु जयणा मे ॥ २७ ॥
इत्तिअमित्ता पूगा इत्तिअमित्ता लवंग पत्ता य ॥
एला जाइफलाइ अ मह निच्चं इत्तिअपमाणा ॥ २८ ॥
चउविहवत्थाणंपि अ इत्तिअमत्ताण मज्झ परिहाणं ॥
इअजाई इअसंखा पुप्फाणं अंगभोगे मे ॥ २९ ॥
आसंदी सीहासण पीढय पट्टा य चउक्किआओ अ ॥
इत्तिअमित्ता पल्लंक तूलिया खट्टमाईओ ॥ ३० ॥
कप्पूरागरुकच्छूरिआओ सिरिहंडकुंकुमाई अ ॥
इत्तिअमित्ता मह अंगलेवणे पूयणे जयणा ॥ ३१ ॥
इत्तिअमित्ता नारीओ मज्झ संभोगमित्तिअं कालं ॥
इत्तिअघडेहि पूएहि फासुएहिं च मे न्हाणं ॥ ३२ ॥
इत्तिअवारा इत्तिअतिल्लेहिं इत्तिअप्पयारेहिं ॥
इत्तिअमित्तं भत्तं इत्तिअवाराइं भुंजामि ॥ ३३ ॥

नियमुत्ति अणुभवेणं बंभवयं नियमणंमि धारेमि ॥
माणुस्से जाजीवं काएणं मेहुणं वज्जे ॥ १० ॥
परनारिं परपुरिसं वज्जेमि अ अन्नओ अ जयणा मे ॥
अह य परिग्गहसंखा परिग्गहे नवविहे एसा ॥ ११ ॥
इत्तिअमित्ता टंका इत्तिअमित्ताइं अहव दम्मा वा ॥
तेसिं च वत्थुगहणे इत्तिअमित्ताइं संखा वा ॥ १२ ॥
इत्तियमित्ताण टंकयाण गणिमस्स वत्थुणो गहणं ॥
तुल्लिमस्सं इत्तिआण य मेअस्स य इत्तिआणं च ॥ १३॥
हत्थंगुलमेयाणं इत्तिअमित्ताण मज्झ संगहणं ॥
तहदिट्ठिसुल्लयाणं इत्तिअमित्ताण टंकाणं ॥ १४ ॥
इत्तिअखारी अन्नाण इत्तिअ मह परिग्गहे भूमी ॥
पुरगामहट्टगेहा खित्ता मह इत्तिअपमाणा ॥ १५ ॥
इत्तिअमित्तं कणयं इत्तिअमित्तं तहेव रूप्पं च ॥
कंसं तंबं लोहं तउं सीसं इत्तियं च घरे ॥ १६ ॥
इत्तिअमित्ता दासा दासीओ इत्तिआओ मह संखा ॥
संखा सेवयचेडाण इत्तिआणं च मह होउ ॥ १७ ॥
इत्तिअमित्ता करिणो इत्तिअ तुरया य इत्तिआ वसहा ॥
इत्तिअ करहा य सगडा गोमाहिसीओ इअपमाणा ॥ १८ ॥
इत्तिअमित्ता मेसा इत्तिअ छगलाओ इत्तिआ य हला ॥
अमुगस्स य अमुगस्स य कम्मस्स उ होइ मे नियमो ॥ १९ ॥
दससुवि दिसासु इत्तिअजोअणगमणं च जावजीवं मे ॥
अप्पस्स वसेणं चिअ जयणा पुण तित्थजत्तासु ॥ २० ॥
कम्मे भोगुवभोगे खरकम्मं कम्मदाणपन्नरसगं ॥
दुप्पोलाहारं चिअ अण्णायपुप्फं फलं वज्जे ॥ २१ ॥

अमुगस्स सुओ अमुगो सद्धो गिण्हेइ इत्थ गिहिधम्मं ॥
अमुगस्स अमुगकंता अमुगा वा साविआ चेव ॥ ४६ ॥
जुज्झंमि गोगहम्मि अ चेइअगुरुसाहुसंघउवसग्गे ॥
तह दुट्ठनिग्गहे चिअ जीवविघाए न मह दोसो ॥ ४७ ॥
जणदेसरक्खणत्थं हणणे मह सीहवग्घसत्तूणं ॥
नहु दोसो जलपिअणे गलणं अन्नत्थ जहसत्ती ॥ ४८ ॥
इत्थेव पमाएणं घुरुवयणेणं इमं तवं कुव्वे ॥
अप्पबहुभंगएणं तेणं जायइ मह विसोही ॥ ४९ ॥

भावार्थः—अमुक जिनेंद्रको नमस्कार करके, अमुक श्राविका, वा अमुक श्रावक अमुक गुरुके पासे, गृहस्थधर्मको अंगीकार करता है. ॥ १ ॥

श्री अरिहंतको वर्जके अन्य देवको नमस्कार न करुं, जिनमतके सुसाधुको छोडके अन्य लिंगिको धर्मार्थे नमस्कार न करुं. । २ । जिन वचन स्याद्वादयुक्त जो सत्त वा नव तत्त्व तिनको सत्य करी जानता हुं, मिथ्याशास्त्रोंके श्रवण पठन लिखनेका मुझको नियम होवे. । ३ । परतीर्थियांको प्रणाम, उद्भावन, स्तवन, भक्ति, राग, सत्कार, सन्मान, दान, विनय, वर्जु—न करुं. । ४ । धर्मकेवास्ते अन्य तीर्थमें तप, दान, स्नान, होमादिक नही करुं. तिनके उचित करने योग्य कर्ममें जयणा मुझको होवे. । ५ । तीन, वा पांच, वा सातवार यथाशक्तिसें चैत्यवंदन करुं; एक, वा दो वा तीन वार, प्रतिदिन सुसाधुको नमस्कार करुं, और तिसकी सेवा करुं. । ६ । एक, वा दो, वा तीनवार प्रतिदिन जिनपूजा करुं; और पर्वदिनमें स्नात्रादि अधिक अधिकतर पूजा करुं. इतिसम्यक्त्वम् ।

कुलाचार विवाहादि कृत्यमें जीववध होते जयणा करुं । ७ । विना प्रयोजन एकेंद्रियका भी बध न करुं, प्रयोजनके हुए जयणा करुं. । इतिप्रथमव्रतम् ।

इअ जावज्जीवं चिय सच्चित्ताईण भोगपरिभोगा ॥
एएसिं पुण संखं दिवसे दिवसे करिस्सामि ॥ ३४ ॥
इत्तिअमित्तं मणिकणयरूप्पमुत्ताइभूसणं अंगे ॥
इत्तिअमित्तं गीअं नट्टं वज्जं च उवभुज्जं ॥ ३५ ॥
वज्जेमि अट्टरुद्दं झाणं अरिघायवयरमाईयं ॥
दक्खिन्नाविसए पुण सावज्जुवएसदाणं च ॥ ३६ ॥
तह दक्खिणाविसए हिंसगगिहोवगरणाइदाणं च ॥
तह कामसत्थपढणं जूयं मज्जं परिहरेमि ॥ ३७ ॥
हिंडोलायविणोअं भत्तित्थीदेसरायथुइनिंदं ॥
पसुपक्खिजोहणं चिय अकालनिद्दं सयलरयणी ॥ ३८ ॥
इच्चाइपमायाइं अणत्थदंडे गुणव्वए वज्जे ॥
वरिसे इत्तिअसामाइआइं तह पोसहाइं इत्ताइं ॥ ३९ ॥
इत्ताइं जोअणाइं मह दिवसे दसदिसासु गमणं च ॥
साहूण संविभागं भोयणवत्थाइसु करेमि ॥ ४० ॥
पढमं जईण दाउण अप्पणा पणमिऊण पारेमि ॥
असईइ सुविहिआणं भुंजेमि अ कयदिसालोओ ॥ ४१ ॥
इअबारसविहमिमिणा विहिणा पालेमि सावगं धम्मं ॥
अगलिअजलस्सपाणं न्हाणं मरणेवि वज्जेमि ॥ ४२ ॥
कंदप्पदप्पनिट्ठीवणाइं सुअणं चउव्विहाहारं ॥
सजिणजिणमंडवंते विकहं कलहं च मुंचामि ॥ ४३ ॥
अमुगंमि महागच्छे अमुगस्स गुरुस्स सूरिसंताणे ॥
अमुगस्स सीसपासे पायंते अमुगसूरिस्स ॥ ४४ ॥
अमुगम्मि वच्छरे अमुगमासि अमुगम्मि पक्खसमयंमि ॥
अमुगतित्थि अमुगवारे अमुगे रिक्खे अ अमुगपुरे ॥४५॥

कर्ममें भोगोपभोगमें, खरकर्ममें, पंदरा कर्मादानमें, दुष्पोल आहार अज्ञात फूल फल इनको वर्जुं.। २१। पांच ऊंबर ५, चार महाविगइ ४, हिम १०, विष ११, करक १२, सर्व जातकी मट्टी १३, रात्रिभोजन १४, बहुबीजा १५, अनंतकाय १६, संधान (आचार) १७.। २२। घोलवडां (विदल) १८, वृंताक १९, अज्ञात फल फूल २०, तुच्छ फल २१, और चलितरस २२, येह बावीस वस्तुयोंको वर्जुं.। २३। इनको वर्जके अन्य फल फूल पत्रमेसें अमुक अमुक प्राणांतमें भी, भक्षण न करुं. २४। इतने मात्र प्रासुक अनंतकी मुझको जयणा होवे, इतने अपक्व फल और अखंडित भी भक्षण न करुं.। २५। आ जन्मतांइ इतनी सचित्त वस्तुयों मेरेको भक्षण करने योग्य है, इतने पुष्टिकारक द्रव्य, और इतने व्यंजन शाकादि मुझको कल्पे; तथा घृत, दुग्ध, दहि प्रभृति.। २६। इतनी विगइयां मुझको कल्पे. इतने पियादे, इतने गज, इतने तुरग और इतने प्रधान रथोंकी मुझको जयणा होवे.। २७। इतने पूगफल (सुपारी), इतने लवंग, इतने पत्र, इतने एलाफल (इलायची) जायफल आदि मेरेको नित्य इतने प्रमाण कल्पे.। २८। सौत्र, कौशेय, और्ण्ण, तार्ण्ण, इन चार प्रकारके वस्त्रोंमें भी इतने वस्त्र पहिरने मुझको कल्पे; और इतनी जातिके फूल मेरे अंगके भोगवास्ते कल्पे.। २९। आसंदी, सिंहासण, पीढी, पट्टे, चौकीयां, पल्लंक, तुलिका (तूलाई) और खाट आदि, येह सर्व इतने प्रमाण मुझको कल्पे.। ३०। कर्पूर, अगर, कस्तूरी, श्रीखंड, कुंकुमादि इतने मात्र मेरे अंगके लेपवास्ते कल्पे; और पूजामें जयणा.। ३१। इतनी नारीयां मेरे संभोगमें इतने कालमात्र, इतने घडे, छाणे हुए जलके और प्रासुक जलके मेरेको स्नानवास्ते कल्पे.। ३२। इतनी वार दिनमें इतनी जातिके तेल अभ्यंग (मर्दन) वास्ते, इतने प्रकारके भात रोटी आदिक भोजन, और दिनमें इतनी वार भोजन करना.। ३३। यह सचित्तादिका भोग परिभोग जावजीवतांइ है, इनका भी फेर प्रमाण दिनदिनमें करुं. *। ३४। इतने मात्र मणि, कनक, रूपा, मोती भूषण,

* दिन २ में जो प्रमाण करना है, सो दशम देसावकाशिकव्रतांतर्गत जाणना.॥

कन्या आदि पांच प्रकारका मृषावाद, नियमकरके वर्जता हुं. । इति-द्वितीयव्रतम् ।

जिससें चोर नाम पडे, और राजदंड होवे, ऐसा धन वर्जुं, अर्थात् चोरी वर्जुं. । इतितृतीयव्रतम् ।

दो करण तीन योगसें देवतासंबंधि, एकविध त्रिविधें करी तिर्यंच संबंधि मैथुनका नियम करता हुं. । ९ । अनुभव करके स्तंभसमान ब्रह्मव्रतको अपने मनमें धारण करूं, और जावजीव मनुष्यसंबंधि मैथुन कायाकरके वर्जुं. । १० । परनारीको, और परपुरुषको (स्त्री व्रतग्राहिता आश्रित) वर्जुं. इनके उपरांत अन्यकी मुझको जयणा. । इतिचतुर्थव्रतम् ।

अथ च नव प्रकारके परिग्रहमें परिग्रहकी संख्याका प्रमाण यह है. । ११ । इतने मात्र रूप्यक, इतने द्रम्म, तिनसें वस्तुका ग्रहण करना, इतने मात्र गिणतिमें. । १२ । इतने गिणतिमें रूप्यक, यह गणिमवस्तुका ग्रहण है. ॥ तोलमें इतनी वस्तु और मापसें इतनी वस्तु. । १३ । हाथ अंगुलसें मेय वस्तुका इतने प्रमाण मात्रमें मुझको संग्रह करना कल्पे, तथा दृष्टिसें देखके जिनका मोल करा जावे ऐसे पदार्थ इतने रुपइयोंके मोलके रखने. । १४ । इतनी खारीयां अन्नकी एक वर्षमें रखनी; इतनी मुझको परिग्रहमें भूमि रखनी कल्पे; इतने पुर, इतने गाम, इतनी हट्टां, इतने घर, और इतने प्रमाण क्षेत्र, मुझको कल्पे. । १५ । इतने सेर, वा इतने तोले प्रमाण सोना, इतने मात्र रूपा, इतना कांसा, इतना ताम्र (तांबा), इतना लोहा, इतना तरुया, इतना सीसा, अपने घरमें रखना. । १६ । इतने दास, इतनी दासी, इतने सेवक—नोकर और इतने दासचेटकोंकी संख्या मुझको रखनी कल्पे. । १७ । इतने हाथी, इतने घोडे, इतने बलद, इतने ऊंट, इतने गाडे, इतनी गायां, इतनी महिषीयां (भैंसां) । १८ । इतनी बकरीयां, इतनी भेडें, और इतने हल रखने मुझको कल्पे. और असुक असुक कर्मका मुझको नियम होवे. । १९ । इति पंचमव्रतम् ।

दसोंही दिशायोंमें अपने वशसें इतने योजन प्रमाण जावजीव गमन करना, और तीर्थयात्रामें जानेकी जयणा. । २० । इतिषष्ठव्रतम् ।

नवरं क्षत्रियकेवास्ते प्राणातिपात स्थानमें प्रथम व्रतमें ४७ । ४८ । यह दो गाथा, अधिक जाननी. । युद्धमें, कोइ गौयांको चुरा ले जाता होवे तिसके हटानेमें, चैत्य, गुरु, साधु, संघको उपसर्ग हुए. उपसर्ग देनेवालेको हटानेमें तथा दुष्टके निग्रहमें, जीवके बध हुए मुझको दोष नही ।४९। जनोंके, और देशके रक्षणवास्ते सिंह, वाघ, शत्रुयोंके हननेमें मुझको दोष नही; अर्थात् इन कामोंके करनेसें मेरा व्रत भंग न होवे. । जल पीनेमें छाणना, अन्यत्र ज्ञानादिमें यथाशक्ति. । ४८ । इनमें प्रमादके होनेसें, गुरुके वचनसें यह तप करुं; अल्प बहुत भांगेसें, तिससें मेरी विशुद्धि होवे. । ४९ ॥ इति परिग्रहप्रमाणटिप्पनकाविधिः ॥

इन बारांही व्रतोंमेंसें कोइ कितनेही व्रत अंगीकार करे, तिसको तितनेही उच्चार करावने. । जिसको छ मासिक सामायिक व्रत आरोपीये हैं, तिसका यह विधि है. ॥ चैत्यवंदना, नंदि, क्षमाश्रमणादि सर्व, पूर्ववत् सामायिकके अभिलाप करके; । और विशेष यह है; । कायोत्सर्गके अनंतर तिसके हस्तगत नूतन मुखवस्त्रिकाके ऊपर वासक्षेप करना. । तिसही मुखवस्त्रिकाकरके षट् (६) मासपर्यंत उभयकाल सामायिक ग्रहण करे. । पीछे तीनवार नमस्कारका पाठ करके दंडक पढावे.

तयथा ॥

"॥ करेमि भंते सामाइयं सावज्जं जोग पच्चक्खामि जावनियमं पज्जुवासामि दुविहं तिविहेणं मणेणं वायाए काएणं न करेमि न कारवेमि तस्स भंते पडिक्कमामि निंदामि गरिहामि अप्पाणं वोसिरामि । से सामाइए चउव्विहे तंजहा दव्वओ खित्तओ कालओ भावओ दव्वओणं सामाइअं पडुच्च खित्तओणं इहेव वा अन्नत्थ वा कालओणं जाव च्छम्मासं भावओणं जाव गहेणं न गहिज्जामि जाव छलेणं न छलिज्जामि जाव सन्नि वाएणं नाभिभविज्जामि ताव मे एसासामाइयपडिवत्ती ॥ "

अंगऊपर धारण करुं. इतने मात्र गीत, नृत्य, वाजंत्र, मुझको उपभोग-वास्ते कल्पे. । ३५ ॥ इतिसप्तमव्रतम् ॥

वैरिका घात वैर लेना इत्यादिक आर्त्त रौद्र ध्यान अदाक्षिण्यताविषे पापोपदेशका देना, इनको वर्जुं. । ३६ । अदाक्षिण्यताविषे हिंसाकारी गृहोपकरणादि देना तथा कामशास्त्रका पढना, जूया खेलना, मद्य पीना, इनको परिहरुं. । ३७ । हिंडोलेका विनोद, भक्त (भोजन), स्त्री, देश, और राजा, इनकी स्तुति, वा निंदा; पशु पक्षीका युद्ध, अकालमें नींद लेनी, संपूर्ण रात्रिमें सोना, । ३८ । इत्यादि प्रमादस्थानक, अनर्थदंडात्मक गुण व्रत में वर्जुं. । इत्यष्टमव्रतम् ॥

एक वर्षमें इतने सामायिक करुं. । इतिनवमव्रतम् ॥

इतने योजन मेरेको दिन, वा रात्रिमें दशोदिशायोंमें जाना कल्पे. । इतिदशमव्रतम् ।

एक वर्षमें इतने पौषध करुं. । इत्येकादशव्रतम् ॥

साधुयोंको संविभाग भोजन वस्त्र आदिकसें करुं. । ४० । प्रथम यतिको देके और नमस्कार करके पीछे आप पारणा करुं; जेकर सुविहित साधुयोंका योग न होवे तो, दिशावलोकन करके भोजन करुं. । ४१। इतिद्वादशव्रतम् ॥

यह द्वादश व्रतरूप श्रावकधर्म, पूर्वोक्त विधिसें पालुं, विना छाण्या जलका पान और स्नान, मरणांतमें भी न करुं. । ४२ । कंदर्प, दर्प, थूकना, सोना, चार प्रकारका आहार करना, विकथा, कलह, इत्यादि जिनमंडपमें वर्जुं. । ४३ ।

असुक महागच्छमें, असुक गुरु सूरिके संतानमें,असुकके शिष्यके पास, असुक सूरिके पादांतमें-। ४४। असुक संवत्सरमें, असुक माससें, असुक पक्षमें, असुक तिथिमें, असुक वारमें, असुक नक्षत्रमें, असुक नगरमें-। ४५। असुकका पुत्र, असुक नामका श्रावक, यहां गृहस्थधर्म ग्रहण करता है, असुककी पुत्री, असुककी भार्या, असुक नामकी श्राविका, वा व्रत ग्रहण करती है. । ४६ ।

विनाशी है सो क्रमकरके अर्थक्रिया करनेको समर्थ नही है, देशकृत कालकृत क्रमकेही अभावसें. क्रम जो है सो पूर्वापर है, सो क्षणिकमें संभवे नही है. क्योंकि, अवस्थितकोंही नाना देशकालव्याप्ति है; और देशक्रम कालक्रम भी कहिये है. और एकांत विनाशीमें सा है नही. 'यदाहुः'

> यो यत्रैव स तत्रैव यो यदैव तदैव सः ॥
> न देश कालयोर्व्याप्तिर्भावानामिह दृश्यते ॥ १ ॥

भाषाः—जो जहां है सो तहांही है. जो जिस कालमें है सो तिसही कालमें है. भावोंकी यहां देशकालोंविषे व्याप्ति नही दीखती है. और संतानकी अपेक्षाकरके भी पूर्वोत्तर क्षणोंको क्रम संभव नही है, संतानको अवस्तु होनेसें. वस्तुके हुए भी जेकर तिसको क्षणिकत्व है, तब तो क्षणोंसें कुछ भी विशेष नही है. जेकर अक्षणिकत्व है, तब तो क्षणभंगवाद समाप्त हुआ. अक्रमकरके भी क्षणिकमें अर्थक्रियाका संभव नही है. सो क्षणिक एक बीजपूरादि रूपादिक्षण युगपत् अनेक रसादि क्षणोंको उत्पादन करता हुआ एक स्वभावकरके उत्पन्न करता है, वा नाना स्वभावोंकरके? जेकर एककरके करता है, तब तो तिन रसादि क्षणोंका एकत्वपणा होवेगा; एक स्वभावसें जन्य होनेसें. अथ नाना स्वभावोंकरके उत्पन्न करता है, किंचित् रूपादि उपादानभावकरके, किंचित् रसादि सहकारिपणेकरके, तब तो वे स्वभाव तिसके आत्मभूत है वा अनात्मभूत है? जेकर अनात्मभूत है, तब तो स्वभावत्वकी हानि है. जेकर आत्मभूत है तब तो तिसको अनेकत्वपणा है, अनेक स्वभावत्व होनेसें. अथवा अनेक स्वभावोंको एकत्वका प्रसंग है. तिससें तिनको अव्यतिरिक्त होनेसें और तिसको एक होनेसें. अथ जोहि एकत्र उपादानभाव है सोही अन्यत्र सहकारिभाव है; इस वास्ते स्वभावभेद नही मानते हैं, तब तो नित्य एक रूपको भी क्रमकरके नाना कार्यकारिको स्वभावभेद और कार्यसांकर्य कैसे माना है क्षणिकवादियोंने? अथ नित्य जो है सो, एकरूपवाला होनेसें अक्रम है और अक्रमसें क्रमकरके होनेवाले नाना कार्योंकी कैसें

ऐसें तीनवार पढावना. । मस्तकोपरि वासक्षेप करना, अक्षतवासोंका अभिमंत्रणा, और संघके हाथमें वासक्षेप देना, यहां नहीं है. परंतु प्रदक्षिणा तीन, करवावनी. । इतिषाण्मासिक सम्यक्त्वारोपणाविधिः ॥

इसीतरें सम्यक्त्वका, और द्वादश व्रतोंका भी इसही दंडकसें तिस २ अभिलापसें मास, षट् (६) मास, वा वर्ष पर्यंत, सम्यक्त्व व्रतोंका उच्चारण करना. । नवरं सम्यक्त्वका सम्यक्त्वदंडसें उच्चार करना. नवरं इतना विशेष है कि, सम्यक्त्वकी अवधिमें 'जावज्जीवाए' यह पाठ न कहना. किंतु, 'मासं छम्मासं वरिसं' इत्यादि कहना. शेष व्रतोंमें भी जावज्जीवाएके स्थानमें 'मासं छम्मासं वरिसं' इत्यादि कहना. ॥

अथ प्रतिमोद्वहनाविधिः ॥ यावज्जीवतांइ नियम स्थिरीकरण प्रतिज्ञा जो है, तिसको प्रतिमा कहते हैं. तिनमें कालादिमें नियमव्यवच्छेद नही है. । ते प्रतिमा एकादश (११) गृहस्थोंकी हैं. ।

तद्यथा ॥

"॥ दंसण १, वय २, सामाइय ३, पोसह ४, पडिमाय ५,
बंभ ६, अचित्ते ७,॥ आरंभ ८, पेस ९, उद्दिट्ठवज्जए १०,
समणभूए य ११, ॥१॥"

अर्थः—तहां जिस प्रतिमामें मासतांइ श्रावक निःशंकितादि सम्यग् दर्शनवाला होवे, सा प्रथमदर्शनप्रतिमा १. व्रतधारी द्वितीया २. कृतसामायिक तृतीया ३. अष्टमी चतुर्दश्यादिमें चतुर्विध पौषध करना, चतुर्थी ४. पौषधकालमें, रात्रिकी आदि प्रतिमा, अंगीकार करनी, अस्नान, प्रासुकभोजी, दिनमें ब्रह्मचारी, रात्रिमें परिमाण करे, और कृतपौषध तो, रात्रिमें भी ब्रह्मचारी, इति पंचमी ५. सदा ब्रह्मचारी षष्ठी ६. सचित्ताहारवर्जक सप्तमी ७. आप आरंभ नही करना, अष्टमी ८. नौकरोंसें आरंभ नही करावना, नवमी ९. उद्दिष्टकृताहारवर्जक, क्षुरमुंडित, शिखासहित, वा निराधारीकृतधनका, पुत्रादिकोंको बतलानेवाला, इतिदशमी १०.

क्षुरमुंडित, लुंचितकेश, वा रजोहरणपात्रधारी, साधुसमान, निर्ममत्व, अपनी जातिमें आहारादिकेवास्ते विचरे, इत्येकादशी. ॥ ११ ॥

यहां पहिली एक मास, दूसरी दो मास, तीसरी तीन मास, एवं यावत् इग्यारहमी इग्यारह मास पर्यंत. तथा जो अनुष्ठान पूर्व प्रतिमामें कहा है, सोही अनुष्ठान, आगेकी सर्व प्रतिमायोंमें जानना. इनमें वितथ प्ररूपणा श्रद्धानादि करना, सो अतिचार है. । तिनमें पहिली 'दर्शन प्रतिमा' तिसमें नंदि, चैत्यवंदन, क्षमाश्रमण, वासक्षेप, इनोंका विधि दर्शनप्रतिमाके अभिलापसें सोही पूर्वोक्त जानना.

और दंडक ऐसें हैं।

"॥ अहणं भंते तुम्हाणं समीवे मिच्छत्तं दव्वभावभिन्नंपच्चक्खामि दंसणपडिमं उवसंपज्जामि नो मे कप्पइ अजप्पभिई अन्नउत्थिए वा अन्नउत्थिअदेवयाणि वा अन्नउत्थिअपरिग्गहिआणि वा अरिहंतचेइआणि वा वंदित्तए वा नमंसित्तए वा पुव्विंअणालत्तेणं आलवित्तए वा संलवित्तए वा तेसिं असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा दाउं वा अणुप्पयाउं वा तिविहं तिविहेणं मणेणं वायाए काएणं न करेमि न कारवेमि करंतंपि अन्नं न समणुजाणामि तहा अईअं निंदामि पडुप्पन्नं संवरेमि अणागयं पच्चक्खामि अरिहंतसक्खिअं सिद्धसक्खिअं साहुसक्खिअं अप्पसक्खिअं वोसिरामि तहा दव्वओ खित्तओ कालओ भावओ दव्वओणं एसा दंसणपडिमा खित्तओणं इहेव वा अन्नत्थ वा कालओणं जाव मासं भावओणं जाव गहेणं न गहिज्जामि जाव छलेणं न छलिज्जामि जाव सन्निवाएणं नाभिभविज्जामि ताव मे एसा दंसणपडिमा ॥"

शेषं पूर्ववत् । प्रदक्षिणात्रयादिक, दर्शनप्रतिमास्थिरीकरणार्थ कायोत्सर्गादि. यहां अभिग्रह मासतक यथाशक्ति आचाम्लादि प्रत्याख्यान

करना. तीनों संध्यामें विधिसें देवपूजन करणा. पार्श्वस्थादिवंदनका परिहार करना. शंकादि पांच अतिचारोंका त्याग करना. राजाभियोगादि छ (६) कारणोंसें भी यह दर्शन प्रतिमा नही त्यागनी. ॥ इतिदर्शनप्रतिमा. १।

अथ दूसरी व्रतप्रतिमा, सा, मास दोतक यावत् निरतिचार पांच अणुव्रत पालनविषया, गुणव्रत ३, शिक्षाव्रत ४, इनका पालना भी साथही जानना. अर्थात् दो मासपर्यंत निरतिचार द्वादश (१२) व्रतोंका पालना. यहां नंदिक्षमाश्रमणादि तिसतिस प्रतिमाके अभिलापसें पूर्ववत्। प्रत्याख्यान नियमचर्यादि सर्व तैसेंही जानने. दंडक भी तिसके अभिलापसें सोही जानना. ॥ इतिव्रतप्रतिमा ॥ २ ॥

अथ तीसरी सामायिक प्रतिमा, सा, तीन मासतक उभयसंध्यामें सामायिक करनेसें होती है. शेष नंदिनियम व्रतादिविधि सोइ अर्थात् पूर्वोक्तही जानना. और दंडक सामायिकके अभिलापसें कहना. ॥ इतिसामायिकप्रतिमा ॥ ३ ॥

अथ चौथी पौषधप्रतिमा, सा, चार मास यावत् अष्टमी चौदशको चार प्रकारके आहारके त्यागमें रक्तको चार प्रकारके पौषधके करनेसें होवे है. द्रव्यादिभेदसें दो आदि मासपर्यंत इस कथनसें यथाशक्ति सूचन किइ गइ. यहां नंदिव्रत नियमादिविधि सोही सोही और दंडक तिसके (पौषधप्रतिमाके) अभिलापसें कहना. ॥ इतिपौषधप्रतिमा ॥४॥

ऐसें पांचमासादिकालवालीयां शेषप्रतिमायोंमें भी यही पूर्वोक्त विधि है. नंदिक्षमाश्रमण दंडकादि तिसतिस प्रतिमाके अभिलापसें. व्रतचर्या सोही है, परं संप्रतिकालमें, पर्यायसें, वा संहननकी शिथिलतासें, पांचमी प्रतिमासें लेके इग्यारहमीतांइ प्रतिमाके अनुष्ठानका विधि शास्त्रोंमें नही दीखता है. प्रतिमाका आरंभ शुभ मुहूर्त्तमें करना. ॥ इतिव्रतारोपसंस्कारे देशविरतिसामायिकारोपणविधिः ॥

इत्याचार्यश्रीमद्विजयानंदसूरिविरचिते तत्त्वनिर्णयप्रासादे पंचदश व्रतारोपसंस्कारांतर्गतदेशविरतिसामायिकारोपणविवर्णनो नामाष्टाविंशः स्तम्भः ॥ २८ ॥

॥ अथैकोनत्रिंशस्तम्भारम्भः ॥

अथ एकोनत्रिंशस्तंभमें व्रतारोपसंस्कारांतर्गत श्रुतसामायिकारोपणविधि कहते हैं. ॥ तहां यति (साधु)योंको श्रुतसामायिकारोपण, योगोद्वहनविधिकरके होता है. और श्रुतारोपण, आगम पाठसें होता है. और योगोद्वहन आगमपाठ रहित गृहस्थोंको, श्रुतसामायिकारोपण, उपधानोद्वहनकरके होता है. और सुधारोपण, परमेष्ठिमंत्र, ईर्यापथिकी, शक्रस्तव, चैत्यस्तव, चतुर्विंशतिस्तव, श्रुतस्तव, सिद्धस्तवादि पाठकरके होता है.॥

उपधीयते ज्ञानादि परीक्ष्यते अनेनेत्युपधानं—जिससें ज्ञानादिकी परीक्षा करिये, तिसको उपधान कहते हैं. अथवा चार प्रकारके संवर समाधिरूप सुखशय्यामें उत्तम होनेसें उत्सीर्षक स्थानमें उपधीयते स्थापन करिये, तिसको उपधान कहिये. तिस उपधानमें छ (६) श्रुतस्कंधोंका उपधान होता है, सोही दिखाते हैं. परमेष्ठिमंत्रका १, ईर्यापथिकीका २, शक्रस्तवका ३, अर्हत् चैत्यस्तवका ४, चतुर्विंशतिस्तवका ५, श्रुतस्तवका ६.

सिद्धस्तवकी वाचना उपधानविना होवे है.

प्रथम परमेष्ठिमंत्र महाश्रुतस्कंधके पांच अध्ययन है, और एक चूलिका है. दो दो पदके आलापक (आलावे) पांच है, सात २ अक्षरके अर्हत् आचार्य उपाध्याय नमस्कृति (नमस्कार) रूप तीन पद है, सिद्धनमस्कृतिरूप दूसरा पद पांच अक्षरोंका है, साधुयांको नमस्काररूप पांचमा पद नव अक्षरोंका है, एवं पांच पद. तिसके पीछे चूलिका, तिसमें दो पदरूप प्रथम आलापक सोलां (१६) अक्षरोंका है, तृतीय पदरूप दूसरा आलापक आठ (८) अक्षरोंका है, और चौथे पदरूप तीसरा आलापक नव (९) अक्षरोंका है. तहां पंचपरमेष्ठिमंत्रमें पांचो पदोंमें तीन उद्देशे है, और चूलिकामें भी उद्देशे तीन है, एवं उद्देशे ६. ॥ प्रथमके पांचो पदोंमें पैंतीस (३५) अक्षर है, और चूलिकामें तेतीस (३३) अक्षर है.

पांच अध्ययन ऐसें हैं ॥

नमो अरिहंताणं १ । नमो सिद्धाणं २ । नमो आयरिआ-
णं ३ । नमो उवज्झायाणं ४ । नमो लोए सव्वसाहूणं ॥५॥

एका चूलिका यथा ॥

एसो पंच नमुक्कारो सव्वपावप्पणासणो मंगलाणं च सव्वे-
सिं पढमं हवइ मंगलं ॥ १ ॥

दो दो पदके आलापक यह हैं ॥

नमो अरिहंताणं । नमोसिद्धाणं । इत्येक आलापकः ॥ १ ॥
नमो आयरिआणं नमो उवज्झायाणं । इति द्वितीयालापकः ॥२॥
नमो लोए सव्वसाहूणं । इतितृतीयालापकः ॥ ३ ॥
एसो पंच नमुक्कारो सव्वपावप्पणासणो। इति चतुर्थालापकः॥४॥
मंगलाणं च सव्वेसिं पढमं हवइ मंगलं । इतिपंचमालापकः॥५॥

सात २ अक्षरके तीन पद यह हैं॥

नमो अरिहंताणं । ७ । नमो आयरिआणं । ७ ।
नमो उवज्झायाणं । ७ । यह एक उद्देशक है ॥ १ ॥

पांच अक्षरोंका दूसरा पद नमो सिद्धाणं। इति द्वितीय उद्देशकः ॥ २ ॥

पांचमा पद नव अक्षरप्रमाण नमो लोएसव्वसाहूणं। इति तृतीय उद्देशकः ॥ ३ ॥

चूलिकामें सोलां (१६) अक्षरप्रमाण प्रथम आलापक ॥

एसो पंच नमुक्कारो सव्वपावप्पणासणो । इति चूलिकायां प्रथम उद्देशः ॥ १ ॥

चूलिकामें आठ अक्षरप्रमाण दूसरा आलापक ॥

मंगलाणं च सव्वेसिं । इति चूलिकायां द्वितीय उद्देशकः ॥ २ ॥

चूलिकामें नव अक्षरप्रमाण तीसरा आलापक॥

पढमं हवइ मंगलं । इति चूलिकायां तृतीय उद्देशः ॥ ३ ॥

सर्व अक्षर अडसठ (६८) तिसका उपधान ऐसें है. ॥

नंदि, देववंदन, कायोत्सर्ग, क्षमाश्रमण, वंदनक, प्रमुख नमस्कारश्रुतस्कंधके अभिलापसें पूर्ववत् जाणना. और अभिमंत्रित वासक्षेप भी पूर्ववत् जाणना. । तहां पूर्वसेवामें एकभक्तके अंतरे उपवास पांच, एवं दिन ११, तहां प्रथम नांदिदिनमें एकभक्त, वा निविगइ, दूसरे दिन उपवास, तीसरे दिन एकभक्त, चौथे दिन उपवास, पांचमे दिन एकभक्त, छट्ठे दिन उपवास, सातमे दिन एकभक्त, आठमे दिन उपवास, नवमे दिन एकभक्त, दशमे दिन उपवास, एकादशमे दिन एकभक्त. ऐसें द्वादशम तप पूर्व सेवामें करना. । तहां पंचपरमेष्ठि पदांकी वाचना नंदिविना भी देनी. शक्रस्तवका पढना, वासक्षेपपूर्वक तीन नमस्कारोंका पढना, सर्व वाचनायोंमें जाणना. । तहां श्रेणिवद्ध आठ आचाम्ल करने, ऐसें एकोनविंशति (१९) दिन. तदपीछे वीसमे दिन एकभक्त, इकवीसमे दिन उपवास, बावीसमे दिन एकभक्त, तेइवीसमे दिन उपवास, चौवीसमे दिन एकभक्त, पच्चीसमे दिन उपवास. । ऐसें अष्टम तप उत्तर सेवामें. ।

तदपीछे चूलिकाकी वाचना ॥

एसो पंच यहांसें लेके हवइ मंगलं । इति नमस्कारस्योपधानं ॥

तदपीछे तिसकी वाचना, तिसका विधि यह है. ॥ पहिलां सामाचारीका पुस्तक पूजना, पीछे मुखवस्त्रिकासें मुख ढांकके ऐर्यापथिकी (इरियावहियं) पडिक्कमके क्षमाश्रमणपूर्वक कहें. ॥

"॥ भगवन् नमुक्कारवायणासंदिसावणियं वायणालेवावणियं वासक्खेवं करेह । चेइयाइं च वंदावेह ॥"

ऐसें नंदि करके छव्वीसमे दिनमें एकभक्त करें, वाचना देनी. चूलिकाके चारों पदोंके सर्व उपधानोंमें प्रतिदिन अव्यापार पौषध करना, सवेरे २ पौषध पारके पुनः २ (फिर२) नित्य पौषध ग्रहण करना, और नमस्कार सहस्र गुणना. ॥ इतिप्रथमसुपधानम् ॥ १ ॥

ऐर्यापथिकीका भी उपधान ऐसेंही है. आदिकी, और अंतकी, दोनोंही नंदि तिसके–ऐर्यापथिकीके अभिलापसें करनी. । तहां वाचनामें आठ अध्ययन, और वाचना दो,–एक पांच पदोंकी और दूसरी तीन पदोंकी; पांच पदोंकी एक चूलिका ॥

" ॥ इच्छामि पडिक्कमिउं इरिआवहिआए विराहणाए। १। गमणागमणे । २। पाणक्कमणे, बीयक्कमणे, हरियक्कमणे । ३। ओसाउत्तिंगपणगदगमट्टीमक्कडासंताणासंकमणे ।४। जे मे जीवा विराहिया ।५। यह एक वाचना, द्वादशम तपके पीछे देते हैं. ॥ १ ॥

" ॥ एगिंदिया, बेइंदिया, तेइंदिया, चउरिंदिया, पंचिंदिया ।६। अभिहया, वत्तिया, लेसिया, संघाइया, संघट्टिया, परियाविया, किलामिया, उद्दविया, ठाणाओ ठाणं संकामिया, जीवियाओ ववरोविया, तस्स मिच्छामि दुक्कडं ।७। तस्स उत्तरीकरणेणं, पायच्छित्तकरणेणं, विसोहीकरणेणं, विसल्लीकरणेणं, पावाणं कम्माणं निग्घायणट्ठाए, ठामि काउस्सग्गं ।८॥ " यह दूसरी वाचना, आठ आचाम्लके अंतमें देनी. ॥ २ ॥

इसके पीछे ॥

"॥अन्नथ्थ उससिएणं, नीससिएणं, खासिएणं, छीएणं, जंभाइएणं उड्डुएणं, वायनिसग्गेणं, भमलिए, पित्तमुच्छाए । १। सुहुमेहिं अंगसंचालेहिं, सुहुमेहिं खेलसंचालेहिं, सुहुमेहिं दिट्ठिसंचालेहिं । २। एवमाइएहिं, आगारेहिं, अभग्गो, अविराहिओ, हुज्ज मे काउस्सग्गो । ३। जाव अरिहंताणं, भगवंताणं, न मुक्कारेणं, न पारेमि ।४। ताव कायं, ठाणेणं, मोणेणं, झाणेणं, अप्पाणं वोसिरामि ।५॥" यह चूलिकाकी

वाचना, अंत दिनमें देनी. ॥ इत्यैर्यापथिक्याउपधानम् ॥ २ ॥

अथ शक्रस्तवका उपधान कहते हैं. ॥ तहां नंदिआदि सर्व शक्रस्तवके अभिलापसें पूर्ववत्. । तथा प्रथम दिनमें एकभक्त, दूसरे दिन उपवास, तीसरे दिन एकभक्त, चौथे दिन उपवास, पांचमे दिन एकभक्त, छट्ठे दिन उपवास, सातमे दिन एकभक्त; । तहां तीन संपदायोंकी प्रथम वाचना देते हैं. ॥

यथा ॥

" ॥ नमुथ्थुणं अरिहंताणं भगवंताणं । १ । आइगराणं तिथ्थयराणं सयंसंबुद्धाणं । २ । पुरिसुत्तमाणं पुरिससीहाणं पुरिसवरपुंडरीआणं पुरिसवरगंधहथ्थीणं । ३ । इत्येका वाचना ।

यह एक वाचना । नमुथ्थुणं । यह पद भिन्न है. । तीनोंही संपदा अनुक्रमे दो, तीन, चार पदवाली हैं. । तदपीछे एकश्रेणिकरके निरंतर सोलां (१६) आचाम्ल करने. । तिसमें पांच २ पदोंवाली तीन संपदाकी वांचना देते हैं. ॥

यथा ॥

॥ लोगुत्तमाणं लोगनाहाणं लोगहिआणं लोगपईवाणं लोगपज्जोअगराणं । ४ । अभयदयाणं चक्खुदयाणं मग्गदयाणं सरणदयाणं बोहिदयाणं । ५ । धम्मदयाणं धम्मदेसियाणं धम्मनायगाणं धम्मसारहीणं धम्मवरचाउरंतचक्कवट्टीणं । ६ । यह दूसरी वाचना ॥ २ ॥

तदपीछे फिर भी तिसही श्रेणिकरके सोलां आचाम्ल करने. । तिसमें दो तीन पदोंवाली तीन संपदाकी वाचना देनी. ॥

यथा ॥

॥ अप्पडिहयवरनाणदंसणधराणं विअट्टछउमाणं । ७ । जिणाणं जावयाणं तिन्नाणं तारयाणं बुद्धाणं बोहयाणं मुत्ताणं

मोअगाणं । ८ । सव्वन्नूणं सव्वदरिसिणं सिवमयलमरुअमणंतमक्खयमव्वाबाहमपुणराविातिसिद्धिगइनामधेयंठाणं संपत्ताणं नमो जिणाणं जिअभयाणं । ९ ॥ " यह तीसरी वाचना ॥ ३ ॥

"॥ जे अ अईआ सिद्धा जे अ भविस्संतिणागए काले ॥ संपइ अ वट्टमाणा सव्वे तिविहेण वंदामि ॥ " इस अंतिमगाथाकी वाचना भी, तीसरी वाचनाके साथही देनी. ॥ इतिशक्रस्तवोपधानम् ॥ ३ ॥

अथ चैत्यस्तवका उपधान कहते हैं. ॥ नंदिआदिपूर्ववत्. । प्रथम दिने एक भक्त, दूसरे दिन उपवास, तीसरे दिन एक भक्त; तदपीछे श्रेणिकरके लगतमार तीन आचाम्ल करने. अंतमें तीनोंही अध्ययनोंकी समकालं एकही साथ एक वाचना देनी. ॥

यथा ॥

"॥ अरिहंतचेइआणं करेमि काउस्सग्गं वंदणवत्तिआए पूअणवत्तिआए सक्कारवत्तिआए सम्माणवत्तिआए बोहिलाभवत्तिआए निरुवसग्गवत्तिआए । १ । सद्धाए मेहाए धीईए धारणाए अणुप्पेहाए वद्धमाणीए ठामिकाउस्सग्गं । २ । अन्नथ्थउससिएणं—यावत्—वोसिरामि । ३ ॥" यह एकही वाचना है. ॥ इति चैत्यस्तवोपधानम् ॥ ४ ॥

अथ चतुर्विंशतिस्तवका उपधान कहते हैं. ॥ नांदि, दो पूर्ववत् । प्रथम दिने एकभक्त, दूसरे दिन उपवास, तीसरे दिन एकभक्त, चौथे दिन उपवास, पांचमे दिन एकभक्त, छट्ठे दिन उपवास, सातमे दिन एकभक्त. । ऐसें अष्टम तप । अंतमें प्रथम गाथाकी एक वाचना. ॥

यथा ॥

"॥ लोगस्स उज्जोअगरे धम्मतित्थयरे जिणे। अरिहंते कित्त-
इस्सं चउवीसंपि केवली । १ । " यह एक वाचना. ॥ १ ॥

तदपीछे श्रेणिकरकेही बारां (१२) आचाम्ल करने. तिसके अंतमें तीन गाथाकी वाचना. ॥

यथा ॥

॥ उसभमजियं च वंदे संभवमभिणंदणं च सुमइं च ।
पउमप्पहं सुपासं जिणं च चंदप्पहं वंदे । २ । सुविहिं च
पुप्फदंतं सीअलसिज्जंसवासुपुज्जं च। विमलमणंतं च जिणं
धम्मं संतिं च वंदामि । ३ । कुंथुं अरं च मल्लिं वंदे मुणि-
सुव्वयं नमिजिणं च वंदामिरिट्ठनेमिं पासं तह वद्धमाणं च।४। यह
दूसरी वाचना. ॥ २ ॥

तदपीछे तिस श्रेणिकरकेही तेरा (१३) आचाम्ल करने. तिसके अंतमें तीसरी वाचना ॥

यथा ॥

॥ एवं मए अभिथुआ विहुरयमला पहीणजरमरणा चउवी-
संपि जिणवरा तित्थयरा मे पसीयंतु। ५। कित्तियवंदिय-
महिया जे ए लोगस्स उत्तमा सिद्धा । आरुग्गबोहिलाभं
समाहिवरमुत्तमं दिंतु । ६ । चंदेसु निम्मलयरा आइच्चेसु
अहियं पयासयरा । सागरवरगंभीरा सिद्धा सिद्धिं मम
दिसंतु ॥ ७ ॥ " यह तीसरी वाचना. ॥ ३ ॥ इति चतुर्विंशतिस्त-
वोपधानम् ॥ ५ ॥

अथ श्रुतस्तवका उपधान कहते हैं. । नंदि, दो पूर्ववत्. । प्रथमदिने एकभक्त, दूसरे दिन उपवास, तीसरे दिन एकभक्त, पीछे श्रेणिकरके पांच आचाम्ल करने. तिसके अंतमें दो गाथायोंकी, और दोनों वृत्तोंकी

समकालही वाचना. । तिसमें पांच अध्ययन है. । तिसमें प्रथमकी दो गाथायोंके दो अध्ययन ॥

यथा ॥

"॥ पुक्खरवरदीवड्ढे धायइसंडे अ जंबुदीवेअ। भरहेरवयविदेहे धम्माइगरे नमंसामि । १ । तमतिमिरपडलविद्धंसणस्स सुरगणनरिंदमहिअस्स । सीमाधरस्स वंदे पप्फोडिअमोहजालस्स। २।

तीसरा अध्ययन वसंततिलका वृत्तसें । यथा ॥

॥ जाईजरामरणसोगपणासणस्स कल्लाणपुक्खलविसालसुहावहस्स । को देवदाणव । नरिंदगणच्चिअस्स धम्मस्स सारमुवलब्भ करे पमायं । ३ ।

चौथा अध्ययन शार्दूलविक्रीडितवृत्तके पूर्वार्द्धसें । यथा ॥

॥ सिद्धे भो पयओ णमो जिणमए नंदीसयासंजमे देवंनागसुवन्नकिन्नरगणस्सप्भूयभावच्चिए । ४ ।

पांचमा अध्ययन शार्दूलविक्रीडितवृत्तके उत्तरार्द्धसें । यथा ॥

॥ लोगो जथ्थ पइट्ठिओ जगमिणं तेलुक्कमच्चासुरं धम्मो वड्ढउ सासओ विजयओ धम्मुत्तरं वड्ढउ । ४ । —५ ॥ " इति श्रुतस्तवोपधानम् । ६ । इति षडुपधानानि ॥

तथा सिद्धस्तवमें प्रथम तीन गाथाकी वाचना यथा ॥

" ॥ सिद्धाणं बुद्धाणं पारगयाणं परंपरगयाणं । लोअग्गमुवगयाणं नमो सया सव्वसिद्धाणं । १ । जो देवाणविदेवो जं देवा पंजली नमंसंति । तं देवदेवमहिअं सिरसा वंदे महावीरं । २। इक्कोवि नमुक्कारो जिणवरवसहस्स। वद्धमाणस्स । संसारसागराओ तारेइ नरं व नारिं वा ॥३॥ "

शेष दो गाथा । यथा ॥

॥ उज्जिंतसेलसिहरे दिक्खा नाणं च निसीहिआ जस्स।
तं धम्मचक्कवहिं अरिट्ठनेमिं नमंसामि ।४। चत्तारि अट्ठ
दस दो अ वंदिआ जिणवरा चउव्वीसं। परमट्ठनिट्ठिअट्ठा
सिद्धा सिद्धिं मम दिसंतु॥५॥" इत्युपधानवाचनास्थितिः॥
अथ विस्तार, निशीथसिद्धांतसें उधृत उपधानप्रकरणसें जानना.।
सयथा॥

पंचनमुक्कारे किल दुवालसतवो उ होइ उवहाणं॥
अट्ठ य आयामाइं एगं तह अट्ठमं अंते॥ १॥
एवंचिय नीसेसं इरियावहिआइ होइ उवहाणं॥
सक्कच्छंयंमि अट्ठममेगं बत्तीस आयामा॥ २॥
अरिहंतचेइअथए उवहाणमिणं तु होइ कायव्वं॥
एगं चेव चउत्थं तिन्नि अ आयंबिलाणि तहा॥ ३॥
एगंचिय किर छट्ठं चउथ्थमेगं तु होइ कायव्वं॥
पणवीसं आयामा चउवीसथ्थयम्मि उवहाणं॥ ४॥
एगं चेव चउथ्थं पंच य आयंबिलाणि नाणथए॥
चिइवंदणाइसुत्ते उवहाणमिणं विणिदिट्ठं॥ ५॥
अव्वावारो विकहा विवज्जिओ रुद्दझाणपरिमुक्को॥
विस्सामं अकुणंतो उवहाणं कुणइ उवउत्तो॥ ६॥
अह कहवि हुज्ज बालो बुड्ढो वा सत्तिवज्जिओ तरुणो॥
सो उवहाणपमाणं पूरिज्जा आयसत्तीए॥ ७॥
राईभोयणविरई दुविहं तिविहं चउव्विहं वावि॥
नवकारसहिअमाई पच्चक्खाणं विहेऊणं॥ ८॥
एगेए सुद्धआयंबिलेण इयरेहिं दोहिं उववासो॥
नवकारस्सहिएहिं पणयालीसाइं उववासो॥ ९॥

पोरसिचउवीसाए होइ अवट्ठेहिं दसहिं उववासो ॥
विगईचाएहिं तिहिं एगट्ठाणेहि अ चऊहिं ॥ १० ॥
आयरणाओ नेअं पुरिमट्ठा सोलसेहिं उववासो ॥
एगासणगा चउरो अट्ठ य बेकासणा तहय ॥ ११ ॥
भयवं बहू अ कालो एवं कारिंतस्स पाणिणो हुज्जा ॥
तो कहवि हुज्ज मरणं नवकारविवज्जिअस्सावि ॥ १२ ॥
नवकारवज्जिओ सो निव्वाणमणुत्तरं कह लभिज्जा ॥
तो पढमं चिअ गिएहओ उवहाणं होओ वा मा वा ॥१३॥
गोअम जं समयं चिअ सुओवयारं करिज्ज जो पाणी
तं समयं चिअ जाणसु गहिअवयट्ठं जिणाणाए ॥ १४ ॥
एवं कयउवहाणो भवंतरे सुलहबोहिओ होज्जा ॥
एअज्झवसाणोविहु गोअम आराहओ भणिओ ॥ १५ ॥
जो उ अकाऊणमिणं गोअम गिह्णिज्ज भत्तिमंतोवि ॥
सो मणुओ दट्ठव्वो अगिएहमाणोण सारिच्छो ॥ १६ ॥
आसायइ तित्थयरं तव्वयणं संघगुरुजणं चेव ॥
आसायणबहुलो सो गोयम संसारमणुगामी ॥ १७ ॥
पढमं चिअ कन्नाहेडएण जं पंचमंगलमहीअं ॥
तस्सवि उवहाणपरस्स सुलहिआ बोहि निद्दिट्ठा ॥ १८ ॥
इअ उवहाणपहाणं निउणं सयलंपि वंदण विहाणं ॥
जिणपूआपुव्वं चिअ पढिज्ज सुअभणिअनीईए ॥ १९ ॥
तं सरवंजणमत्ता बिंदुपयच्छेअठाणपरिसुद्धं ॥
पढिऊणं चिइवंदणसुत्तं अत्थं वियाणिज्जा ॥ २० ॥
तत्थ य जत्थेव सिआ संदेहो सुत्तअत्थविसयंमि ॥
तं बहुसो वीमंसिअ सयलं निस्संकियं कुज्जा ॥ २१ ॥

अह सोहणतिहिकरणे मुहुत्तनरकत्तजोगलग्गंमि ॥
अणुकूलंमि ससिबले सस्से सस्से अ समयम्मि॥ २२ ॥
नियविहवाणुरूवं संपाडिअभुवणनाहपूएण ॥
परमभत्तीइ विहिणा पडिलाभिअसाहुवग्गेण ॥ २३ ॥
भत्तिभरनिप्भरेणं हरिसवसुल्लसिअबहलपुलएणं ॥
सद्धासंवेगविवेगपरमवेरग्गजुत्तेणं ॥ २४ ॥
विणिहयघणरागद्दोसमोहमिच्छत्तमललंकेणं ॥
अइउल्लसंतनिम्मल अज्झवसाणेण अणुसमयं ॥ २५ ॥
तिहुअणगुरुजिणपडिमाविणिवेसिअनयणमाणसेण तहा ॥
जिणचंदवंदणाओ धन्नोहं मन्नमाणेणं ॥ २६ ॥
नियसिरिरइयकरकमलमउलिणा जंतुविरहिओगासे ॥
निस्संकं सुत्तथ्थं पए पए भावयंतेण ॥ २७ ॥
जिणनाहदिट्ठगंभीरसमयकुसलेण सुहचारित्तेणं ॥
अपमायाईबहुविहगुणेण गुरुणा तहा सद्धिं ॥ २८ ॥
चउविहसंघजुएणं विसेसओ नियबंधुसहिएणं ॥
इअविहिणा निउणेणं जिणबिंबं वंदणिज्जंति ॥ २९ ॥
तयणंतरं गुणड्ढे साहू वंदिज्ज परमभत्तीए ॥
साहम्मियाण कुज्जा जहारिहं तह पणामाई ॥ ३० ॥
जावय महग्घ मुक्किड्ढ चुक्खवथ्थप्पयाणपुव्वेणं ॥
पडिवत्तिविहाणेणं कायव्वो गरुअसम्माणो ॥ ३१ ॥
एआवसरे गुरुणा सुविइअगंभीरसमयसारेण ॥
अक्खेवणिविक्खेवणि संवेइणिपमुहाविहिणा उ ॥ ३२ ॥
भवनिव्वेअपहाणा सद्धासंवेगसाहणे णिउणा ॥
गरुएण पबंधेणं धम्मकहा होइ कायव्वा ॥ ३३ ॥

सद्धासंवेगपरं सूरी नाऊण तं तओ भव्वं ॥
चिइवंदणाइकरणे इअ वयणं भणइ निउणमई ॥ ३४ ॥
भो भो देवाणुपिया संपाविअ नियजम्मसाफल्लं ॥
तुमए अज्जप्पभिई तिक्कालं जावजीवाए ॥ ३५ ॥
वंदेअव्वाइं चेइआइं एगग्गसुथिरचित्तेणं ॥
खणभंगुराओ मणुअत्तणाओ इणमेव सारंति ॥ ३६ ॥
तत्थ तुमे पुव्वण्हे पाणंपि न चेव ताव पायव्वं ॥
नो जाव चेइआइं साहूविअ वंदिआ विहिणा ॥ ३७ ॥
मज्झण्हे पुणरवि वंदिऊण निअमेण कप्पए भुत्तुं ॥
अवरण्हे पुणरवि वंदिऊण निअमेण सुअणंति ॥ ३८ ॥
एवमभिग्गहबंधं काउं तो वद्धमाणविज्जाए ॥
अभिमंतिऊण गिण्हइ सत्त गुरु गंधमुट्ठीओ ॥ ३९ ॥
तस्सुत्तमंगदेसे नित्थारगपारगो हविज्ज तुमं ॥
उच्चारेमाणोविअ निक्खिवइ गुरु सपणिहाणं ॥ ४० ॥
एआए विज्जाए पभावजोगेण एस किर भव्वो ॥
अहिगयकज्जाण लहुं नित्थारगपारगो होउ ॥ ४१ ॥
अह चउविहोवि संघो नित्थारगपारगो हविज्ज तुमं ॥
धन्नो सलक्खणो जंपिरोत्ति निक्खिवइ से गंधे ॥ ४२ ॥
तत्तो जिणपडिमाए पुआदेसाओ सुरभिगंधड्ढं ॥
अमिलाणं सिअदामं गिण्हिअ गुरुणा सहत्थेणं ॥ ४३ ॥
तस्सोभयखंधेसुं आरोवंतेण सुद्धचित्तेणं ॥
निस्संदेहं गुरुणा वत्तव्वं एरिसं वयणं ॥ ४४ ॥
भो भो सुलद्धनिअजम्म निचिअअइगरुअपुन्नपप्भार ॥
नारयतिरिअगईओ तुज्झावस्सं निरुद्धाओ ॥ ४५ ॥

नो बंधगोसि सुंदर तुममित्तो अयसनीअगुत्ताणं ॥
नो दुल्लहो तुह जम्मंतरेवि एसो नमुक्कारो ॥ ४६ ॥
पंचनमुक्कारपभावओ अ जम्मंतरेवि किर तुज्झ ॥
जाईकुलरूवारुग्गसंपयाओ पहाणाओ ॥ ४७ ॥
अन्नं च इमाओच्चिय न हुंति मणुआ कयावि जीअलोए ॥
दासा पेसा दुभगा नीआ विगलिंदिआ चेव ॥ ४८ ॥
किं बहुणा जे इमिणा विहिणा एअं सुअं अहिजित्ता ॥
सुअभणिअविहाणेणं सुद्धे सीले अभिरमिज्जा ॥ ४९ ॥
नो ते जइ तेणं चिअ भवेण निव्वाणमुत्तमं पत्ता ॥
तोणुत्तरगेविज्जाइएसु सुइरं अभिरमेउं ॥ ५० ॥
उत्तमकुलम्मिउक्किट्ठलट्ठसव्वंगसुंदरा पयडा ॥
सव्वकलापत्तट्ठा जणमणआणंदणा होउं ॥ ५१ ॥
देविंदोवमरिद्धी दयावरा दाणविणयसंपन्ना ॥
निव्विणकामभोगा धम्मं सयलं अणुट्ठेउं ॥ ५२ ॥
सुहज्झाणानलनिदड्ढघाइकम्मिंधणा महासत्ता ॥
उप्पन्नविमलनाणा विहुयमला झत्ति सिज्झंति ॥ ५३ ॥
इअ विमलफलं मुणिउं जिणस्स महमाणदेवसूरिस्स ॥
वयणा उवहाणमिणं साहेह महानिसीहाओ ॥ ५४ ॥

॥ इत्युपधानप्रकरणम् ॥

भावार्थः—पांच नमस्कारमें पांच उपवासका उपधान होता है, आठ आचम्ल तथा अंतमें एक अष्टमतप. । ऐसेंही संपूर्ण उपधान इरियावहिका है; शक्रस्तवमें एक अष्टमतप, और बत्तीस आचाम्ल. चैत्यस्तवमें एक उपवास, और तीन आचाम्ल करणे. । चतुर्विंशतिस्तवमें एक षष्ट-

तप, एक उपवास, और पंचवीस (२५) आचाम्ल करणे. । श्रुतस्तवमें एक उपवास, और पांच आचाम्ल. । चैत्यवंदनादि सूत्रमें यह उपधान कथन करा है. । तीर्थंकर गणधरोंने. ॥ ५ ॥ व्यापाररहित, विकथाविवर्जित, रौद्र ध्यानकरके रहित, विश्राम नही करता हुआ, उपयोगसहित, उपधान करे. ॥ ६ ॥ यह उत्सर्ग कहा. अब अपवाद कहते हैं. । अथ कदापि उपधानवाही बालक होवे, वा वृद्ध होवे, वा शक्तिरहित तरुण (युवा) होवे तो, सो अपनी शक्तिप्रमाण उपधानप्रमाण पूर्ण करे. । रात्रिभोजनकी विरति, चतुर्विधाहार, वा त्रिविधाहार, वा द्विविधाहार प्रत्याख्यानरूप करे; नवकारसहिआदि पच्चक्खाण करके. । एक शुद्ध आंबिलकरके, और इतर दो आंबिलकरके, एक उपवास होता है. पणतालीस (४५) नवकारसहि करनेसें एक उपवास होता है. चौवीस (२४) पोरसि करनेसें, और दश (१०) अपार्द्ध करनेसें, एक उपवास होता है. तीन निविकृति करनेसें, और चार एकलठाणे करनेसें, एक उपवास होता है. आचरणासें सोलां (१६) पुरिमार्द्ध करनेसें उपवास होता है. चार एकासनेसें, और आठ वियासणे करनेसें भी, उपवास होता है. अर्थात् उपवासका जो फल है, सोही प्रायः पूर्वोक्त तपका फल है. इसवास्ते जिसकी पूर्वोक्त उपधानकी शक्ति न होवे सो, इन तपोंमेसें किसी भी तपके करनेसें उपधान प्रमाण पूर्ण करे. ॥ ११ ॥

गौतमस्वामी कहते हैं. हे भगवन् ! ऐसें करतेहुए प्राणीको बहोत काल होवे तो, कदापि नवकारवर्जित भी, तिसका मरण हो जावे, और नवकारवर्जित सो प्राणी अनुत्तर निर्वाण कैसें प्राप्त करें? तिसवास्ते नवकार प्रथमही ग्रहण करो, उपधान होवे, वा न होवे. ॥ १२ ॥

महावीर स्वामी कहते हैं. हे गौतम ! जो प्राणी जिस समयमें व्रतोपचार (उपधान) करे, तिसही समयमें, तूं जिनाज्ञाकरके ग्रहण करा है व्रतार्थ जिसनें, ऐसा तिसको जाण. ॥ १४ ॥ ऐसें जिसने उपधान करा है, सो प्राणी भवांतरमें सुलभबोधि होवे है. और इसके (उपधानके) अध्यवसायवालेको भी, हे गौतम ! आराधक कहा है. परंतु हे गौतम !

भक्तिवाला भी जो प्राणी, उपधानविना श्रुतको ग्रहण करे, तिसको नही ग्रहण करनेवालेके सदृश जाणना. तथा सो जीव, तीर्थंकरकी, तीर्थंकरके वचनोंकी, संघकी, और गुरुजनकी, आशातना करता है. सो आशातना बहुल प्राणी, हे गौतम संसारमें भ्रमण करता है. प्रथमही जिसने सुणके, पांच मंगल पढ लिया है, तिसको भी उपधानमें तत्पर होनेसें बोधि, जिनधर्मप्राप्ति, सुलभ कही है. यह उपधानकरके प्रधान, निपुण, संपूर्ण भी वंदनविधान, जिनपूजा, पूर्वकही श्रुतोक्त नीतिकरके पढना. तिस पंच मंगलको स्वर, व्यंजन, मात्रा, बिंदु, पदच्छेद, स्थानों-करके शुद्ध पढके, चैत्यवंदन सूत्रको, और अर्थको विशेषकरके जाणे. तिसमें जहां सूत्रविषे, वा अर्थविषे, संदेह होवे तो, तिसको बहुशः विचारके संपूर्ण निःशंक संदेहरहित करना. ॥ २१ ॥

अथ शुभतीथि, करण, मुहूर्त्त, नक्षत्र, जोग, लग्नमें, चंद्रबलके अनुकूल हुए, कल्याणकारी प्रशस्त समयमें, अपने विभवानुसार भगवान्का पूजन करा है जिसने, परम भक्तिसें विधिपूर्वक साधुवर्गको प्रतिलंभ करा है जिसने, भक्तिके अतिसमूहकरके सहित, हर्षवशसें खिडे हैं, बहोत पुलक (रोम) जिसके, श्रद्धासंवेगाविवेक परम वैराग्ययुक्त, दूर करे हैं, निविडरागद्वेषमोहमिथ्यात्वमलरूप कलंक जिसने, अति उल्लसायमान निर्मल अध्यवसाय करके, अनुसमय, त्रिभुवनगुरु जिन भगवान्की प्रति-मामें स्थापन किये हैं, नेत्र, और मन, जिसने, तथा जिन चंद्रको वंदना करनेसें मैं धन्य हूं ऐसें मानते हुए, अपने मस्तकके ऊपर रचा है, कर-कमलरूप मुकुट जिसने, जंतुरहित स्थानमें पदपदमें निःशंक सूत्रार्थको भावते (विचारते) हुए, ऐसें पूर्वोक्त विशेषणवाले उपधानवाहिने, जिनना-थके कथन करे गंभीर समयसिद्धांतमें कुशल, शुभचारित्रसंयुक्त, अप्रमादादि बहुविध गुणोंकरी संयुक्त, ऐसें गुरुके साथ, चतुर्विध संघसंयुक्त, विशेषसें निजबंधुसाहित, इस निपुणविधिकरके जिनबिंबको वंदना करनी. ॥ २९ ॥

तदनंतर उपधानवाही, गुणाढ्यसाधुयोंको परम भक्तिसें वंदना करे. तथा साधर्मियोंको यथायोग्य प्रणामादि करे. पीछे जितने बहुमोलके

उत्कृष्ट चोक्ष वस्त्र तिनके प्रदानपूर्वक भक्तिविधानकरके उपधानवाहिने, श्रीसंघका भारी सन्मान करना. ॥ ३१ ॥

इस अवसरमें अच्छीतरें जान्या है गंभीर समयसिद्धांतका सार जिसने, ऐसे गुरुने, आक्षेपिणी, विक्षेपिणी, संवेदिनी, और निर्वेदिनी, यह चार प्रकारकी धर्मकथा श्रद्धासंवेग साधनेमें निपुण भारी प्रबंध करके करनी. ॥ ३३ ॥

तदपीछे तिस भव्यजीवको श्रद्धासंवेगमें तत्पर जाणके, निपुणमति आचार्य, चैत्यवंदनादि करनेमें यह वचन कहे. ॥ ३४ ॥

भो भो देवानुप्रिय ! निज जन्म साफल्यताको प्राप्त करके तैंनें आजसें लेके जावजीवपर्यंत तिनोंही कालमें एकाग्र सुस्थिर चित्तकरके अर्हत्प्र-तिमायोंको वंदना करनी. क्योंकि, क्षणभंगुर मनुष्यपणेसें यही सार है, तहां तैंने पुर्वान्हमें जबतक जिनप्रतिमाको और साधुयोंको वंदना विधि-पूर्वक नही करी है, तबतक पानी भी नही पीना. मध्यान्हमें फिर वंदना करकेही भोजन करना कल्पे, और अपरान्हमें भी फिर वंदना करकेही सोना कल्पे, अन्यथा नही. ॥ ३८ ॥

ऐसें अभिग्रहबंधन करके पीछे वर्द्धमान विद्यासें अभिमंत्रके गुरु सात मुट्ठीप्रमाण गंध (वासक्षेप) ग्रहण करे. पीछे तिस उपधानवा-हीके मस्तकऊपर " नित्थारगपारगो हविज्ज तुमं " ऐसें उच्चारण करता हुआ गुरु, नमस्कारपूर्वक निक्षेप करे (डाले) इस विद्याके प्रभावके जोगसें निश्चय, यह भव्य अविकृत प्रारंभित कार्योंका शीघ्र निस्तार करनेवाला, और पार होनेवाला होवे. ॥ ४१ ॥

अथ चतुर्विध संघ, तूं, निस्तारक पारग हो, तूं धन्य है, सलक्षण है, इत्यादि बोलता हुआ, तिसके मस्तकऊपर वासक्षेप करे. ॥ ४२ ॥

तदपीछे जिनप्रतिमाके पूजादेशसें सुरभिगंधसंयुक्त अम्लान श्वेत-माला ग्रहण करके, गुरु अपने हाथोंसें तिस उपधानवाहीके दोनों खंधोंऊपर आरोपण करता हुआ, शुद्ध चित्तकरके निसंदेह ऐसा वचन कहे. ॥ ४४ ॥

अच्छीतरें प्राप्त किया निज जन्म जिसने, तथा संचय करा है अतिभारी पुण्यका समूह जिसने, ऐसें भो भो भव्य ! तेरी नरकगति, और तिर्यग्गति, अवश्यमेव बंद होगई. हे सुंदर ! आजसें लेके, तूं, अपजस, नीच गोत्रोंका बंधक नही है. तथा जन्मांतरमें भी, यह पंचनमस्कार तुझको दुर्लभ नही है. पांच नमस्कारके प्रभावसें जन्मांतरमें भी तुझको प्रधान जाति, कुल, आरोग्य संपदाएं प्राप्त होंगी. और इसके प्रभावसें मनुष्य कदापि संसारमें दास, प्रेष्य, दुर्भग, नीच, और विकलेंद्रिय नही होते हैं. किं बहुना. जे इस विधिसें इस श्रुतज्ञानको पढके श्रुतोक्त विधिसें शुद्ध शील आचारमें रमे—क्रिडा करे, वे, यदि तिसही भवमें उत्तम निर्वाणको प्राप्त न होवे तो, अनुत्तर ग्रैवेयकादि देवलोकोंमें चिरकाल क्रीडा करके उत्तम कुलमें उत्कृष्ट प्रधान सर्वांगसुंदर प्रकट सर्वकला प्राप्त करे हैं, अर्थ जिनोंने, ऐसें लोकोंके मनको आनंद देनेवाले होयके, देवेंद्रसमान ऋद्धिवाले, दयामें तत्पर, दानविनयसंयुक्त, कामभोगोंसें निर्विन्न-विरक्त संपूर्ण धर्मका अनुष्ठानकरके शुभ ध्यानरूप अग्निकरके चार घातिकर्मरूप इंधनको दग्ध किये हैं—जला दिये हैं जिनोंनें, ऐसें महासत्त्व, उत्पन्न हुआ है, विमल निर्मल केवल ज्ञान जिनोंको, सर्व मलकर्मसें रहित होकर शीघ्र सिद्ध होते हैं. ॥ ५३ ॥ यह निर्मल फल जाणके वहोत मान देने योग्य जो देव, सोही भये सूरि, ऐसें जो जिन तिनके वचनसें यह उपधान महानिशीथ सूत्रसें सिद्ध करो.—इस आंतिम गाथामें प्रकरणकर्त्ता श्रीमान देवसूरिने भगवान्के 'महमाणदेवसूरिस्स' इस विशेषणद्वारा अपना भी नाम, सूचन करा है. ॥ ५४ ॥ इत्युपधानप्रकरणभावार्थः ॥

॥ इत्युपधानविधिः ॥

अथ उपधान तपके उद्यापनरूप मालारोपणका विधि कहते हैं. ॥ तहां पिछलाही नंदि क्रम जाणना. । और इतना विशेष हे कि, मालारोपण उपधानतपके पूर्ण हुए तत्कालही, वा दिनांतरमें होता है. तहां यह विधि है. ॥ मालारोपणसें पहिले दिनमें साधुयोंको अन्न पान वस्त्र पात्र वसति पुस्तक दान देवे, संघको भोजन देवे, वस्त्रादिकसें संघकी

पूजा करे, तिस दिनमें शुभ तिथि वार नक्षत्र लग्नमें दीक्षाके उचित दिनमें परम युक्तिसें बृहत्स्नात्रविधिसें जिनपूजा करे, माता पिता परिजन साधर्मिकादिकोंको एकट्ठे करे, तदपीछे मालाग्राही कृतउचितवेष कृतधम्मिल उत्तरासंगवाला निजवर्णानुसारसें जिनोपवीत उत्तरीयादिधारी सज करके प्रचुरगंधादि उपकरण अक्षत नालिकेर हाथमें लेके पूर्ववत् समवसरणको तीन प्रदक्षिणा करे. । तदपीछे गुरुके समीपे क्षमाश्रमणपूर्वक कहे ॥ "इच्छाकारेण तुम्भे अम्हं पंचमंगलमहासुअक्खंध इरिआवहिआसुअक्खंधसक्कथ्थयसुअक्खंधचेइअथ्थयसुअक्खंध चउवीसथ्थयसुअक्खंध सुयथ्थयसुअक्खंध अणुजणावणिअं वासक्खेवं करेह"॥ तदपीछे गुरु भी अभिमंत्रित वासक्षेप करे. । फिर श्राद्ध क्षमाश्रमणपूर्वक कहे "चेइआइं च वंदावेह" तदपीछे वर्द्धमानस्तुतियोंसें चैत्यवंदन करना, शांतिदेवादि स्तुतियां पूर्ववत्. फिर शक्रस्तव अर्हणादि स्तोत्र कहना. पूर्ववत्. । तदपीछे ऊठके "पंचमंगलमहासुअक्खंध पडिक्कमणसुअक्खंध भावारिहंतथ्थय ठवणारिहंतथ्थय चउवीसथ्थय नाणथ्थय सिद्धथ्थय अणुजाणावणिअं करेमि काउस्सग्गं अन्नथ्थ उससिएणं—यावत्—अप्पाणं वोसिरामि" कहके चतुर्विंशतिस्तव चिंतन करे, पारके प्रकट चतुर्विंशतिस्तव पढे. । गुरु तीनवार परमेष्ठिमंत्र पढके निषद्याऊपर बैठ जावे, संघ और परिजनसहित श्राद्धको

भो भो देवाणुपिया संपाविअ निययजम्मसाफल्लं ॥
तुमए अज्जप्पाभिई तिक्कालं जावजीवाए ॥ १ ॥
वंदे अव्वाइं चेइआइं एगग्गसुथिरचित्तेणं ॥
खणभंगुराओ मणुअत्तणाओ इणमेव सारंति ॥ २ ॥
तथ्थ तुमे पुव्वण्हे पाणंपि न चेव ताव पायव्वं ॥
नो जाव चेइआइं साहूविअ वंदिआ विहिणा ॥ ३ ॥
मज्झण्हे पूणरवि वंदिऊण निअमेण कप्पए भुत्तुं ॥
अवरण्हे पुणरवि वादंऊण निअमेण सुअणंति ॥ ४ ॥

इत्यादि महानिशीथमध्यगत वीस गाथामें कही हुई देशना देके, तीन संध्यामें चैत्यवंदन साधुवंदन करनेके अभिग्रह विशेषोंको देवे. । तदपीछे वासमंत्रके सात गंधकी मुष्ठी "निथ्थारगपारगो होहि" ऐसें कहता हुआ गुरु, तिसके शिरमें प्रक्षेप करे.। तदपीछे अक्षतसहित वासक्षेपको मंत्रे । तिस समयमें सुरभिगंध अम्लान श्वेत पुष्पोंके समूहसें ग्रंथन करी हुई मालाको जिनप्रतिमाके पगोंऊपर स्थापन करे। सूरि खडा होके अभिमंत्रित वासांको जिनपगोंके ऊपर क्षेप करे, पास रहे साधु साध्वी श्रावक श्राविका जनको गंधाक्षत देवे.। श्राद्ध नमस्कारअनुज्ञाकेवास्ते तीन प्रदक्षिणा देवे.। तब गुरु "निथ्थारगपारगो होहि गुरुगुणेहिं वुड्ढाहि" ऐसें कहे. और जन (संघ) "पूर्णमनोरथवाला तूं हुआ है, तूं धन्य है, तूं पुण्यवान् है" ऐसें कहे.। ऐसें कहते हुए क्रमसें गुरुसंघादि वासक्षेप करे। तदपीछे फिर श्राद्ध समवसरणको तीन प्रदक्षिणा देवे। पीछे गुरुको तीन प्रदक्षिणा देवे। पीछे गुरुसहित समवसरणको तीन प्रदक्षिणा देवे। पीछे गुरुसंघसहित समवसरणको तीन प्रदक्षिणा देवे, पीछे नमस्कारादिश्रुतस्कंध अनुज्ञापनार्थ कायोत्सर्ग करे, चतुर्विंशतिस्तव चिंतन करे, पारके प्रकट लोगस्स कहे.। तदपीछे माला धारण करनेवाले तिसके स्वजनोंकेसाथ प्रतिमाके आगे जाके शक्रस्तव पढके "अणुजाणउ मे भयवं अरिहा" ऐसें कहके जिनपादऊपरि पूर्व स्थापित मालाको लेके निजबंधुके हाथमें स्थापन करके नंदिके समीप आय कर, श्राद्ध, मालाको गुरुसें मंत्रण करावे.। पीछे गुरु खडा होकर उपधानविधिका व्याख्यान करे. सो श्राद्ध भी, खडा होकर श्रवण करे. "परमपयपुरिपथ्थि" इत्यादि मालोबृंहण गाथायोंकरके गुरु देशना करे.।

तदनु ॥

तत्तो जिणपडिमाए पूआदेसाओ सुरभिगंधड्ढं ॥
अमिलाण सिअदामं गिण्हिअ गुरुणा सहथ्थेणं ॥ १ ॥
तस्सोभयखंधेसुं आरोवंतेण सुद्धचित्तेणं ॥
निस्संदेहं गुरुणा वत्तव्वं एरिसं वयणं ॥ २ ॥

भो भो सुलद्धनिअजम्म निचिअअइगरुअपुन्नपप्भार ॥
नारयतिरिअगईओ तुज्झावस्सं निरुद्धाओ ॥ ३ ॥
नो बंधगोसि सुंदर तुममित्तो अयकनीअगुत्ताणं ॥
नो दुल्लहो तुह जम्मंतरेवि एसो नमुक्कारो ॥ ४ ॥
पंचनमुक्कारभावओ अ जम्मंतरेवि किर तुज्झ ॥
जाईकुलरूवाग्गसंपयाओ पहाणाओ ॥ ५ ॥
अन्नं च इमाओच्चिअ न हुंति मणुआ कयावि जीअलोए ॥
दासा पेसा दुभगा नीआ विगलिंदिआ चेव ॥ ६ ॥
किं बहुणा जे इमिणा विहिणा एअं सुअं अहिजित्ता ॥
सुअभणि अविहाणेणं सुद्धे सीले अभिरमिज्जा ॥ ७ ॥
नो ते जइ तेणंचिअ भवेण निव्वाणमुत्तमं पत्ता ॥
तोणुत्तर गेविज्जाइएसु सुइरं अभिरमेउं ॥ ८ ॥
उत्तमकुलम्मि उक्किट्ठलठ्ठसव्वंगसुदरापयडा ॥
सव्वकलापत्तठ्ठा जणमणआणंदणा होउं ॥ ९ ॥
देविंदोवमरिद्धी दयावरा दाणविनयसंपन्ना ॥
निव्विणकामभोगा धम्मं सयलं अणुठेउं ॥ १० ॥
सुहज्झाणानलानिदड्ढघाइकम्मिंधणा महासत्ता ॥
उप्पन्नविमलनाणा विहुयमला झत्ति सिज्झंति ॥ ११ ॥

यह गाथा तीनवार गुरु कहे । इन गाथायोंका भावार्थ उपधानप्रकरणभावार्थमें लिख दिया है. ॥

तदपीछे तिसके स्कंधमें मालाप्रक्षेप करनी. ॥ पीछे श्राद्धवर्ग आरात्रिक (आरती) गीतनृत्यादि बहुत करे. । उपधानवाही श्रावकने तिस दिनमें आचाम्लादि तप करना; यदि पौषधशालामें मालारोपण होवे, तदा संघसहित जिनमंदिरमें जावे, चैत्यवंदना करके फिर पौषधागारमें आयकर मंडलीपूजादि करे. ॥ इस उपधानविधिको निशीथ, महानिशीथ,

सिद्धांतके पढनेवालोंने श्रुतसामायिककरके माना है. और निशीथ महा-निशीथके तिरस्कार करनेवालोंने नही अंगीकार करा है. तिनोंने तो प्रतिमोद्वहनविधिकोही श्रुतसामायिककरके कथन करा है. ॥ माला भी कितनेक कौशेयपट्टसुत्रमयी (रेशमी) स्वर्ण, पुष्प, मोति, माणिक्य गर्भित, आरोपते हैं. और कितनेक श्वेत पुष्पमयी आरोपते हैं. तिसमें तो, अपनी संपत्तिही प्रमाण है. ॥ इतिव्रतारोपसंस्कारे श्रुतसामायिकारोपणविधिः ॥

इत्याचार्यश्रीमद्विजयानंदसूरिविरचिते तत्त्वनिर्णयप्रासादे पंचदशव्रतारोपसंस्कारांतर्गतश्रुतसामायिकारोपणविधिवर्णनोनामैकोनत्रिंशःस्तंभः ॥ २९ ॥

॥ अथत्रिंशस्तम्भारम्भः ॥

अथ त्रिंशस्तंभमें व्रतसंस्कारांतर्गत प्रसंगसें कथन करी श्रावकोंकी दिनचर्या कहते हैं. दो मुहुर्त्त शेष रात्रि रहे श्रावक सूता ऊठे, मल-मूत्रकी शंका दूर करे, और शुचि होकर पवित्र आसनऊपर स्थित हुआ यथाविधिसें परमेष्ठि महामंत्रका जाप करे. पीछे कुलका, धर्मका, व्रतका, श्रद्धाका, विचार करके, और स्तोत्रपाठसंयुक्त चैत्यवंदन करके, अपने घरमें, वा धर्मघर (पौषधशालादि) में स्थित होकर, आवश्यक (प्रति-क्रमणादि) करे.। तदपीछे प्रत्युष कालमें अपने घरमें स्नान करके, शुचि होके, शुचि वस्त्र पहिरके, भोग संसारिक सुख, और मोक्ष देनेवाले, ऐसें अरिहंतकी पूजा करे.। तिसवास्ते जिनार्चनविधि, अर्हत्कल्पके कथ-नानुसारें कहते हैं. सोयथा ॥ श्राद्ध केवल दृढसम्यक्त्व, प्राप्तगुरुउपदेश, निजघरमें, वा चैत्यमें अर्थात् बडे मंदिरमें, धम्मिल (शिखा) बांधी, शुचि वस्त्र पहरि, उत्तरासंग करी, स्ववर्णानुसारकरके जिनोपवीत, उत्त-रीय, उत्तरासंगधारी, मुखकोश बांधी, एकाग्रचित्त, एकांतमें जिनार्च्चन, जिनपूजन, करे.। प्रथम जल, पत्र, पुष्प, अक्षत, फल, धूप, अग्नि, दीपक, गंधादिकोंको निःपापता करे. ॥

" ॥ ॐ आपोऽप्कायाएकेंद्रिया जीवा निरवद्यार्हत्पूजायां निर्व्यथाः संतु निरपायाः संतु सद्गतयः संतु न मेस्तु संघट्टनहिंसापापमर्हदर्च्चने ॥" इति जलाभिमंत्रणम् ॥

" ॥ ॐ वनस्पतयो वनस्पतिकाया जीवा एकेंद्रिया निरवद्यार्हत्पूजायां निर्व्यथाः संतु निरपायाः संतु सद्गतयः संतु न मेस्तु संघट्टनहिंसापापमर्हदर्च्चने ॥" इतिपत्रपुष्पफलधूपचंदनाद्यभिमंत्रणम् ॥

" ॥ ॐ अग्नयोऽग्निकायाजीवा एकेंद्रिया निरवद्यार्हत्पूजायां निर्व्यथाः संतु निरपायाः संतु सद्गतयः संतु न मेस्तु संघट्टनहिंसापापमर्हदर्च्चने॥" इति वन्हिदीपाद्यभिमंत्रणम् ॥

सर्वका अभिमंत्रण वासक्षेपसें तीन तीन वार करना. ॥

तदपीछे । पुष्पगंधादि हाथमें लेके ।

" ॥ ॐ त्रसरूपोहं संसारिजीवः सुवासनः सुमेध एकचित्तो निरवद्यार्हदर्च्चने निर्व्यथो भूयासं निःपापो भुयासं निरुपद्रवो भुयासं मत्सं श्रिता अन्येपि संसारिजीवा निरवद्यार्हदर्च्चने निर्व्यथा भूयासुः निःपापाभूयासुः ॥"

ऐसें कहके अपने आपको तिलक करना, पुष्पादिकरके अपना शिर अर्चन करना. ।

फिर पुष्प अक्षतादि हाथमें लेके ।

" ॥ ॐ पृथिव्यप्तेजोवायुवनस्पतित्रसकाया एकद्वित्रिचतुःपंचेंद्रियास्तिर्यङ्मनुष्यनारकदेवगतिगताश्चतुर्दशरज्ज्वात्मकलोकाकाशनिवासिनः इह जिनार्चने कृतानुमोदनाः संतु निःपापाः संतु निरपायाः संतु सुखिनः संतु प्राप्तकामाः संतु मुक्ताः संतु बोधमाप्नुवंतुः ॥"

ऐसें पढके दशों दिशायोंमें गंध, जल, अक्षतादि क्षेप करना.
तदपीछे ।

शिवमस्तु सर्वजगतः परहितनिरता भवंतु भूतगणाः ॥
दोषा प्रयांतु नाशं सर्वत्र सुखीभवंतु लोकाः ॥ १ ॥
सर्वेपि संतु सुखिनः सर्वे संतु निरामयाः ॥
सर्वे भद्राणि पश्यंतु मा कश्चिद्दुःखभाग् भवेत् ॥ २ ॥

यह आर्या और अनुष्टुप् छंद पढने. ।
तदपीछे ।

"॥ ॐ भूतधात्री पवित्रास्तु अधिवासितास्तु सुप्रोषितास्तु ॥"

ऐसें पढके प्रथम लीपी हुई भूमिमें जलसें प्रोक्षण (सेचन) करे. ।
तदपीछे ।

"॥ ॐ स्थिराय शाश्वताय निश्चलाय पीठाय नमः ॥"

ऐसें पढके धोयके चंदनसें लेपन करके स्वस्तिक करके अंकित (चिन्हित) ऐसा पूजापट्टस्थालादि स्थापन करे, और चैत्यमें तो स्थिरबिंब होनेसें इन दोनों मंत्रोंकरी तिसके भूमिजलपट्टादिकोंको अधिवासन करने. ।
तदपीछे ।

"॥ ॐ अत्र क्षेत्रे अत्र काले नामार्हंतो रूपार्हंतो द्रव्यार्हंतो भावार्हंतः समागताः सुस्थिताः सुनिष्ठिताः सुप्रतिष्ठिताः संतु ॥"

ऐसें पढके अर्हत् प्रतिमाको स्थापन करे निश्चलबिंबके हुए, चरण अधिवासन करे. ॥

तदपीछे अंजलिके अग्रभागमें पुष्प लेके ।

"॥ ॐ नमोर्हद्भ्यः सिद्धेभ्यस्तीर्णेभ्यस्तारकेभ्यो बुद्धेभ्यो बोधकेभ्यः सर्वजंतुहितेभ्यः इह कल्पनबिंबे भगवंतोर्हंतः सुप्रतिष्ठिताः संतु ॥"

ऐसें मौन करके कहके भगवत्के चरणोपरि पुष्प स्थापन करे. । फिर भी जलार्द्र फूलोसें पूजापूर्वक कहे. ॥

यथा ॥

"॥ स्वागतमस्तु सुस्थितमस्तु सुप्रतिष्ठास्तु ॥"

तदपीछे फिर पुष्पाभिषेक करके।

"॥ अर्घ्यमस्तु पाद्यमस्तु आचमनीय मस्तु सर्वोपचारै पूजास्तु॥"

इन वचनोंकरके वारंवार जिनप्रतिमाके ऊपर जलार्द्र पुष्पारोपण करे.। तदपीछे जल लेके ।

ॐ अर्हँ वं। जीवनं तर्पणं हृद्यं प्राणदं मलनाशनं॥
जलं जिनार्च्चनेत्रैव जायतां सुखहेतवे ॥ १ ॥

यह मंत्र पढके जलकरके प्रतिमाको भिषेक और स्नपन (स्नात्र) करे.॥ तदपीछे चंदन कुंकुम कर्प्पूर कस्तूरी आदि सुगंध हाथमें लेके।

ॐ अर्हँ लं। इदं गंधं महामोदं बृंहणं प्रीणनं सदा ॥
जिनार्चने च सत्कर्म्मसंसिद्ध्यै जायतां मम ॥ १ ॥

यह मंत्र पढके विविध गंधकरी जिनप्रतिमाको विलेपन करे. ॥ तदपीछे पुष्पपत्रादि हाथमें लेके ।

ॐ अर्हँ क्षं । नानावर्णं महामोदं सर्वत्रिदशवल्लभं ॥
जिनार्चनेत्र संसिद्ध्यै पुष्पं भवतु मे सदा ॥ १ ॥

यह मंत्र पढके जिनप्रतिमाके ऊपर सुगंधमय विविध वर्णके पुष्प चढावे. ॥

तदपीछे अक्षत (चावल) हाथमें लेके।

ॐ अर्हँ तं। प्रीणनं निर्मलं बल्यं मांगल्यं सर्वसिद्धिदं ॥
जीवनं कार्यसंसिद्ध्यै भूयान्मे जिनपूजने॥ १ ॥

यह मंत्र पढके जिनप्रतिमाके ऊपर अक्षत आरोपण करे. ॥

तदपीछे पूग (सुपारी) जायफल आदि वा वर्त्तमान ऋतुके (मोसमी) फल हाथमें लेके।

ॐ अर्हँ फुं। जन्मफलं स्वर्गफलं पुण्यमोक्षफलं फलं॥
दद्याज्जिनार्च्चनेत्रैव जिनपादाग्रसंस्थितम्॥ १॥

यह मंत्र पढके जिनपादाग्रे फल ढोवे.॥

तदपीछे धूप लेके।

ॐ अर्हँ रं। श्रीखंडागरुकस्तूरीद्रुमनिर्यासंसंभवः॥
प्रीणनः सर्व देवानां धूपोस्तु जिनपूजने॥ १॥

यह पढके अग्निमें धूपक्षेप करे.॥

पीछे फूल लेके।

ॐ अर्हँ रं। पंचज्ञानमहाज्योतिर्म्मयाय ध्वांतघातिने॥
द्योतनाय प्रतिमायादीपो भूयात्सदार्हते॥१॥

यह पढके दीपमध्ये पुष्प स्थापन करे.॥

तदपीछे फुलोंको लेके।

"॥ॐ अर्हँ भगवद्भ्योर्हद्भ्यो जलगंधपुष्पाक्षतफलधूपदीपैः संप्रदानमस्तु ॐ पुण्याहं पुण्याहं प्रीयंतां प्रीयंतां भगवंतोर्हंतस्त्रिलोकस्थिताः नामाकृतिद्रव्यभावयुताः स्वाहा॥" यह पढके फिर जिनपूजन करे.॥

तदपीछे वासक्षेप लेके।

"॥ॐ सूर्यसोमांगारकबुधगुरुशुक्रशनैश्चरराहुकेतुमुखाग्रहाः इह जिनपादाग्रे समायांतु पूजां प्रतीच्छंतु॥" ऐसें पढके जिनपादसें नीचे स्थापित ग्रहोंके ऊपर, वा स्नानपट्टके ऊपर वासक्षेप करे.॥

तदपीछे।

"॥आचमनमस्तु गंधमस्तु पुष्पमस्तु अक्षतमस्तु फलमस्तु धुपोस्तु दीपोस्तु॥" ऐसें पढके क्रमसें जल, गंध, पुष्प, अक्षत,

फल, धूप, दीपसें ग्रहोंका पूजन करे. ॥

तदपीछे अंजलिअग्रमें फूल लेके ।

"॥ ॐ सूर्यसोमांगारकबुधगुरुशुक्रशनैश्चरराहुकेतुमुखाग्रहाः सुपूजिताः संतु सानुग्रहाः संतु तुष्टिदाः संतु पुष्टिदाः संतु मांगल्यदाः संतु महोत्सवदाः संतु ॥" ऐसें कहके ग्रहोंके ऊपर पुष्पारोप करे. ॥

फिर इसी रीतिकरके ।

" ॥ ॐ इंद्राग्नियमनिर्ऋतिवरुणवायुकुबेरेशाननागब्रह्मणो लोकपालाः सविनायकाः सक्षेत्रपालाः इह जिनपादाग्रे समागच्छंतु पूजां प्रतीच्छंतु ॥ " ऐसें कहके पूजापट्टोपरि लोकपालोंको वासक्षेप करे. ॥

तदपीछे ।

"॥ आचमनमस्तु गंधमस्तु पुष्पमस्तु अक्षतमस्तु फलमस्तु धुपोस्तु दीपोस्तु ॥ " ऐसें पढके क्रमसें जल, गंध, पुष्प, अक्षत, फल, धूप, दीपसें लोकपालोंका पूजन करे. ॥

तदपीछे अंजलिमें पुष्प लेके ।

" ॥ ॐ इंद्राग्नियमनिर्ऋतिवरुणवायुकुबेरेशाननागब्रह्मणो लोकपालाः सविनायकाः सक्षेत्रपालाः सुपूजिताः संतु सानुग्रहाः संतु तुष्टिदाः संतु पुष्टिदाः संतु मांगल्यदाः संतु महोत्सवदाः संतु ॥" यह पढके लोकपालोपरि पुष्पारोपण करें.॥

तदपीछे पुष्पांजलि लेके ।

"॥ अस्मत्पूर्वजा गोत्रसंभवा देवगतिगताः सुपूजिताः संतु सानुग्रहाः संतु तुष्टिदाः संतु पुष्टिदाः संतु मांगल्यदाः संतु महोत्सवदाः संतु ॥" ऐसें कहके जिनपादाग्रे पुष्पांजलिक्षेप करे.॥

तदपीछे फिर भी पुष्पांजलि लेके ।

"॥ॐ अर्हँ अर्हद्भक्ताष्टनवत्युत्तरशतदेवजातयः सदेव्यः पूजां प्रतिच्छंतु सुपूजिताः संतु सानुग्रहाः संतु तुष्टिदाः संतु पुष्टिदाः संतु मांगल्यदाः संतु महोत्सवदाः संतु॥" ऐसें कहके जिनपादाग्रे अंजलिक्षेप करे. ॥

तदपीछे अंजलिके अग्रभागमें पुष्प धारण करके अर्हन्मंत्र स्मरण करके तिस फूलसें जिनप्रतिमाको पूजे।

अर्हन्मंत्रो यथा ॥

"॥ॐ अर्हँ नमो अरहंताणं ॐ अर्हँ नमो सयंसंबुद्धाणं ॐ अर्हँ नमो पारगयाणं ॥"

यह त्रिपद मंत्र श्रीमत् अर्हन् भगवंतोंके आगे नित्य स्मरण करे. कैसा है मंत्र? भोगदेवलोकादि सुख और मोक्षका देनेवाला है. तथा सर्व पापोंका नाश करनेवाला है. । विशेष इतना है कि, यह मंत्र अपवित्र पुरुषोंने, अन्यचित्तवाले अर्थात् उपयोगरहित पुरुषोंने, नही स्मरण करना. तथा सस्वर अर्थात् उच्चशब्दसें नही स्मरण करना, नास्तिकोंको नही सुनावना, और मिथ्यादृष्टियोंको भी नही सुनावना. । यह पूर्वोक्त अर्हन्मंत्र एकसौआठ (१०८) वार, वा तदर्द्ध अर्थात् ५४ वार जपे. ॥

तदपीछे दो पात्रोंकरके नैवेद्य ढौकन करे. पीछे एक पात्रमें जलका चुलुक लेके ।

ॐ अर्हँ । नानाषड्रससंपूर्णं नैवेद्यं सर्वमुत्तमं ॥
जिनाग्रे ढौकितं सर्वसंपदे मम जायतां ॥ १ ॥

यह पढके एकत्र नैवेद्यमें चुलुकक्षेप करे. ।

फिर दूसरा जलचुलुक लेके।

"॥ ॐ सर्वे गणेशक्षेत्रपालाद्याः सर्वेग्रहाः सर्वे दिक्पालाः सर्वेऽस्मत्पूर्वजोद्भवादेवाः सर्वे अष्टनवत्युत्तरशतं देवजातयः सदेव्योऽर्हद्भक्ताः अनेन नैवेद्येन संतर्पिताः संतु सानुग्रहाः संतु तुष्टिदाः संतु पुष्टिदाः संतु मांगल्यदाः संतु महो-

त्सवदाः संतु ॥" ऐसें कहके दूसरे नैवद्यके ऊपर चुलुकक्षेप करे. ॥

॥ इंद्रवज्रा ॥

यो जन्मकाले पुरुषोत्तमस्य सुमेरुशृंगे कृतमज्जनैश्च ॥
देवैः प्रदत्तः कुसुमांजलिस्स ददातु सर्वाणि समीहितानि ॥१॥

॥ वसंततिलका ॥

राज्याभिषेकसमये त्रिदशाधिपेन ।
छत्रध्वजांक तलयोः पदयोर्जिनस्य ॥
क्षिप्तोतिभक्तिभरतः कुसुमांजलिर्यः ।
स प्रीणयत्वनुदिनं सुधियां मनांसि ॥ २ ॥

॥ शार्दूल ॥

देवेंद्रैः कृतकेवले जिनपतौ सानंदभक्त्यागतैः ।
संदेहव्यपरोपणक्षमशुभव्याख्यानबुद्धयाशयैः ॥
आमोदान्वितपारिजातकुसुमैर्यः स्वामिपादाग्रतो ।
मुक्तस्स प्रतनोतु चिन्मयहृदां भद्राणि पुष्पांजलिः ॥३॥

इन तीनों वृत्तोंकरके तीन वार पुष्पांजलिक्षेप करे. ॥

॥ इंद्रवज्रा ॥

लावण्यपुण्यांगभृतोर्हतो यस्तद्दृष्टिभावं सहसैव धत्ते ॥
सविश्वभर्त्तुर्लवणावतारो गर्भावतारं सुधियां विहंतु ॥ १ ॥

॥ अनुष्टुप् ॥

लावण्यैकनिधेर्विश्वभर्त्तुस्तदवृद्धिहेतुकृत् ॥
लवणोत्तरणं कुर्याद्भवसागरतारणम् ॥ २ ॥

इन दो वृत्तोंकरके दो वार लवण उत्तारना. ॥

॥ अनुष्टुप् ॥

सक्षारतां सदासक्तां निहंतुमिव सोद्यमः ॥
लवणाब्धिर्लवणांबुमिषात्ते सेवते पदौ ॥ १ ॥

यह पढके लवणमिश्र जल उत्तारना. ॥

॥ आर्या ॥

भुवनजनपवित्रिताप्रमोदप्रणयनजीवनकारणं गरीयः
जलमविकलमस्तु तीर्थनाथक्रमसंस्पर्शिसुखावहं जनानाम्॥ १॥

यह पढके केवल जलक्षेप करे. ॥

॥ अनुष्टुप् ॥

सप्तभीतिर्विघातार्हं सप्तव्यसननाशकृत् ॥
यत् सप्तनरकद्वारसप्तारिरितुलां गतम् ॥ १ ॥

॥ वसंततिलका ॥

सप्तांगराज्यफलदानकृतप्रमोदं। सत्सप्ततत्त्वविदनंतकृतप्रबोधम्॥
तच्छक्रहस्तधृतसंगतसप्तदीपमारात्रिकं भवतु सप्तमसद्गुणाय ॥२॥

यह पढके आरात्रिकावतारण करे. ॥

॥ अनुष्टुप् ॥

विश्वत्रयभवैर्जीवैः सदेवासुरमानवैः ॥
चिन्मंगलं श्रीजिनेंद्रात् प्रार्थनीयं दिने दिने ॥ १ ॥

॥ वसंततिलका ॥

यन्मंगलं भगवतः प्रथमार्हतः श्री-
संयोजनैः प्रतिबभूव विवाहकाले ॥
सर्वासुरासुरवधूमुखगीयमानं ।
सर्वर्षिभिश्च सुमनोभिरुदीर्यमाणम् ॥ २ ॥
दास्यंगतेषु सकलेषु सुरासुरेषु ।
राज्येर्हतः प्रथमसृष्टिकृतो यदासीत् ॥
सन्मंगलं मिथुनपाणिगतीर्थवारि ।
पादाभिषेक विधिनात्युपचीयमानम् ॥ ३ ॥

लब्धिकी अपेक्षा ज्ञानशक्ति सादि अनंत है, और ज्ञानोपयोगलक्षणसें सादि सांत, और द्रव्यार्थक नयकी विवक्षासें अनादि, अनंत ऐसा विज्ञानरूप लक्षण है जिसका तथा मोहजाल अर्थात् अट्ठाइस (२८) उत्तरप्रकृतिरूप मोहका जाल जिसने हत (नष्ट) किया है, सो महादेव कहा जाता है ॥ ७ ॥

नमोऽस्तु ते महादेव महामद विवर्जित ॥
महालोभविनिर्मुक्त महागुणसमन्वित ॥ ८ ॥

भाषा—महामद करके विवर्जित (रहित), महालोभ करके रहित, और महागुणसंयुक्त, ऐसे हे महादेव ! तेरेकों नमस्कार होवे ॥ ८ ॥

महारागो महाद्वेषो महामोहस्तथैव च ॥
कषायश्च हतो येन महादेवः स उच्यते ॥ ९ ॥

भाषा—महाराग, महाद्वेष, महाअज्ञान, चशब्दसें सूक्ष्म सत्तागत जो स्वल्प भी राग, द्वेष, अज्ञान और षोडश प्रकारका कषाय ये पूर्वोक्त दूषण जिसने हने हैं, निःसत्ताकीभूत करे हैं सो महादेव कहा जाता है ॥ ९ ॥

महाकामो हतो येन महाभयविवर्जितः ॥
महाव्रतोपदेशी च महादेवः स उच्यते ॥ १० ॥

भाषा—महा काम, जो सर्व जगत्में व्यापक हो रहा है, तिसकों जिसने हण्या है, और जो सात प्रकारके महाभयकरके विवर्जित (रहित) है, और जो पंच महाव्रतका उपदेशक है, सो महादेव कहा जाता है ॥ १० ॥

महाक्रोधो महामानो महामाया महामदः ॥
महालोभो हतो येन महादेवः स उच्यते ॥ ११ ॥

महाक्रोध, महामान, महामाया, महामद, महालोभ, ये जिसने हनन किये हैं, सो महादेव कहा जाता है ॥ ११ ॥

महानन्दो दया यस्य महाज्ञानी महातपः ॥
महायोगी महामौनी महादेवः स उच्यते ॥ १२ ॥

भाषा—अतिशय आत्मानंद, और दया (परम करुणा) है जिसके, और जो

यह पढके पुष्पांजलिक्षेपण करे. ॥ इतिपुष्पांजलिक्षेपः ॥

॥ इंद्रवज्रा ॥

कर्प्पूरसिल्हाधिककाकतुंडकस्तुरिकाचंदनवंदनीयः ॥
धूपो जिनाधीश्वरपूजनेऽत्र सर्वाणि पापानि दहत्वजस्रम् ॥ १ ॥

यह पढके सर्वपुष्पांजलियोंके बीचमें धूपोत्क्षेप करे. ॥ और शक्रस्तव पढे. ॥ तदपीछे जलपूर्ण कलश लेके, श्लोक और वसंततिलका पढे. ॥

यथा ॥ ॥ अनुष्टुप् ॥

केवली भगवानेकः स्याद्वादी मंडनैर्विना ॥
विनापि परिवारेण वंदितः प्रभुतोर्जितः ॥ १ ॥

॥ वसंततिलका ॥

तस्येशितुः प्रतिनिधिः सहजश्रियाढ्यः ।
पुष्पैर्विनापि हि विना वसनप्रतानैः ॥
गंधैर्विना मणिमयाभरणैर्विनापि ।
लोकोत्तरं किमपि दृष्टिसुखं ददाति ॥ २ ॥

यह पढके प्रतिमाको कलशाभिषेक करे. ॥ इतिप्रातिमायाः कलशाभिषेकः ॥ पुष्प अलंकारादि उत्तारके, कलशाभिषेक करके, पीछे फिर पुष्पांजलि लेके, दो काव्य पढे. ।

यथा ॥ ॥ शार्दूलवृत्तम् ॥

विश्वानंदकरी भवांबुधितरी सर्वापदां कर्त्तरी ।
मोक्षाध्वैकविलंघनाय विमला विद्या परा खेचरी ॥
दृष्ट्या भावितकल्मषापनयने बद्धाप्रतिज्ञा दृढा ।
रम्यार्हत्प्रतिमा तनोतु भविनां सर्वं मनोवांछितम् ॥ १ ॥

॥ आर्या ॥

परमतररमासमागमोत्थप्रसृमरहर्षविभासिसन्निकर्षा ॥
जयति जगति जिनेशस्य दीप्तिः प्रतिमा कामितदायिनी जनानाम् २

॥ शार्दूल ॥

यद्विश्वाधिपतेः समस्ततनुभृत्संसारनिस्तारणे ।
तीर्थे पुष्टिमुपेयुषि प्रतिदिनं वृध्धिं गतं मंगलम् ॥
तत् संप्रत्युपनीतपूजनविधौ विश्वात्मनामर्हतां ।
भूयान्मंगलमक्षयं च जगते स्वस्त्यस्तु संघाय च ॥ ४ ॥

इन चारों वृत्तोंकरके मंगल प्रदीप करे.। पीछे शक्रस्तव पढे ॥ इतिजिनार्च्चनविधिः ॥

अथ अतिशय करी अर्हद्भक्तिवाला कोइक श्रावक, नित्य, वा पर्वदिनमें, वा किसी कार्यांतरमें, जिनस्नात्र करनेकी इच्छा करे, तिसका विधि यह है।

प्रथम स्नात्रपीठके ऊपर, दिक्पालग्रह अन्य देवतपूजन वर्जके, पूर्वोक्त प्रकारकरके जिनप्रतिमाको पूजके, मंगलदीप वर्जित आरात्रिक करके, पूर्वोपचारयुक्त श्रावक, गुरुसमक्ष संघके मिले हुए, चार प्रकारके गीतवाद्यादि उत्सवके हुए पुष्पांजलि हाथमें लेके।

"॥ नमो अरहंताणं' नमोर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधुभ्यः ॥"
यह पढके दो वृत्त (छंद) पढे.।

यथा ॥ ॥ शार्दूलवृत्तम् ॥

कल्याणं कुलवृद्धिकारि कुशलं श्लाघार्हमत्यद्भुतं ।
सर्वाघप्रतिघातनं गुणगणालंकारविभ्राजितम् ॥
कांतिश्रीपरिरंभणं प्रतिनिधिप्रख्यं जयत्यर्हतां ।
ध्यानं दानवमानवैर्विरचितं सर्वार्थसंसिद्धये ॥ १ ॥

॥ मालिनीवृत्तम् ॥

भुवनभविकपापध्वांतदीपायमानं ।
परमतपरिघातप्रत्यनीकायमानम् ॥
धृतिकुवलयनेत्रावश्यमंत्रायमानं ।
जयति जिनपतीनां धानमत्युत्तमानाम् ॥ २ ॥

व्योमस्थप्रसरच्छशांककिरणज्योतिःप्रतिच्छादको ॥
धुपोत्क्षेपकृतो जगत्रयगुरोस्सौभाग्यमुत्तंसतु ॥ १ ॥

॥ आर्या ॥

सिद्धाचार्यप्रभृतीन् पंच गुरून् सर्वदेवगणमधिकम् ॥
क्षेत्रे काले धूपः प्रीणयतु जिनार्च्चने रचितः ॥ २ ॥

यह पढके धुपोत्क्षेप करे। शक्रस्तव पढे.॥ पीछे फिर पुष्पांजलि लेके।

॥ वसंततिलका ॥

जन्मन्यनंतसुखदे भुवनेश्वरस्य ।
सुत्रामभिः कनकशैलशिरःशिलायाम् ॥
स्नात्रं व्यधायि विविधांबुधिकूपवापी ।
कासारपल्वलसरित्सलिलैः सुगंधैः ॥ १ ॥

॥ इंद्रवज्रा ॥

तां बुद्धिमाधाय हृदीहकाले स्नात्रं जिनेंद्रप्रतिमागणस्य ॥
कुर्वंति लोकाः शुभभावभाजो महाजनो येन गतः स पंथाः ॥२॥

यह पढके पुष्पांजलिक्षेप करे।

तदपीछे ॥ ॥ वृत्तपाठः ॥

परिमलगुणसारसद्गुणाढया वहुसंसक्तपरिस्फुरद्द्विरेफा ॥
बहुविधबहुवर्णपुष्पमाला वपुषि जिनस्य भवत्वमोघयोगा ॥१॥

यह वृत्त पढके पगोंसें लेके मस्तकपर्यंत जिनप्रतिमाको पुष्पारोपण करे.। पीछे 'कर्प्पूरसिल्हाधि०' इसकरके धूपोतक्षेप करे.। पीछे शक्रस्तव पढे.। पीछे फिर पुष्पांजलि हाथमें लेके।

॥ शार्दूल ॥

साम्राज्यस्य पदोन्मुखे भगवति स्वर्गाधिपैर्गुंफितो।
मांत्रित्वं बलनाथतामधिकृतिं स्वर्णस्य कोशस्य च ॥
बिभ्रद्भिः कुसुमांजलिर्विनिहितो भक्त्या प्रभोः पादयो-

यह पढके फिर पुष्पांजलिक्षेप करे. । पीछे पूर्वोक्त 'कर्प्पूरसिल्हा' वृत्तकरके धूपोत्क्षेप करे, और शक्रस्तव पढे. । पीछे फिर पुष्पांजलि हाथमें लेके, दो काव्य पढे. ॥

यथा ॥ ॥ पृथिवीवृत्तम् ॥

न दुःखमतिमात्रकं न विपदां परिस्फूर्जितं ।
न चापि यशसां क्षितिर्न विषमा नृणां दुस्थता ॥
न चापि गुणहीनता न परमप्रमोद क्षयो ।
जिनार्च्चनकृतां भवे भवति चैव निःसंशयम् ॥ १ ॥

॥ मंदाक्रांता ॥

एतत्कृत्यं परममसमानंदसंपन्निदानं ।
पातालौकः सुरनरहितं साधुभिः प्रार्थनीयम् ॥
सर्वारंभापचयकरणं श्रेयकां सं निधानं ।
साध्यं सर्वैर्विमलमनसा पूजनं विश्वभर्त्तुः ॥ २ ॥

यह पढके फिर पुष्पांजलिक्षेप करे. । तदपीछे धूप हाथमें लेके पढे. ।

यथा ॥ ॥ शार्दूल ॥

कर्प्पूरागरुसिल्हचंदनबलामांसीशशैलेयक ।
श्रीवासद्रुमधूपरालघुसृणैरत्यंतमामोदितः ॥
व्योमस्थप्रसरच्छशांककिरणज्योतिःप्रतिच्छादको ।
धूपोत् क्षेपकृतो जगत्रयगुरोस्सौभाग्यमुत्तंसतु॥ १ ॥

॥ आर्या ॥

सिद्धाचार्यप्रभृतीन् पंच गुरून् सर्वदेवगणमधिकम् ॥
क्षेत्रे काले धूपः प्रीणयतु जिनार्च्चने रचितः ॥ २ ॥

यह पढके धूपोत्क्षेप करे. । शक्रस्तव पढे. ॥ पीछे फिर पुष्पांजलि लेके ॥

॥ शार्दूलवृत्तम् ॥

कस्तूरीघनसारकुंकुममुराश्रीखंडकंक्कोल्लकै- ।
र्ह्रीबेरादिसुगंधवस्तुभिरलंकुर्वंति तत्संवरम् ॥
देवेंद्रा वरपारिजातबकुलश्रीपुष्पजातीजपा ।
मालाभिः कलशाननानि दधते संप्राप्तहारस्त्रजः ॥ ४ ॥
ईशानाधिपतेर्निजांककुहरे संस्थापितं स्वामिनं ।
सौधर्माधिपतिर्म्मिताद्भुतचतुःप्रांशूक्षशृंगोद्गतैः ॥
धारावारिभरैः शशांकविमलैः सिंचत्यनन्याशयः ।
शेषाश्चैव सुराप्सरस्समुदयाः कुर्वंतिकौतूहलम् ॥ ५ ॥

॥ वसंततिलका ॥

वीणामृदंगतिमिलार्द्धकटार्द्धनूर ।
ढक्काहुडुक्कपणवस्फुटकाहलाभिः ॥
सद्वेणुझज्झरकदुंदुभिघुंघुणीभि-
र्वाद्यैः सृजंति सकलाप्सरसो विनोदम् ॥ ६ ॥

॥ श्लोकः ॥

शेषाः सुरेश्वरास्तत्र गृहीत्वा करसंपुटे ॥
कलशांस्त्रिजगन्नाथं स्नपयंति महामुदः ॥ ७ ॥

॥ शार्दूलवृत्तम् ॥

तस्मिंस्तादृशउत्सवे वयमपि स्वर्लोकसंवासिनो ।
भ्रांता जन्मविवर्त्तनेन विहितश्रीतीर्थसेवाधियः ॥
जातास्तेन विशुद्धबोधमधुना संप्राप्य तत्पूजनं ।
स्मृत्वैतत्करवाम विष्टपविभोः स्नात्रं मुदामास्पदम् ॥ ८ ॥

॥ गाथा ॥

बालत्तणम्मि सामिअ सुमेरुसिहरम्मि कणयकलसेहिं ॥

दुःखौघस्य जलांजलिं सतनुतादालोकनादेव हि ॥ १ ॥

॥ इंद्रवज्रा ॥

चेतः समाधातुमनिंद्रियार्थं पुण्यं विधातुं गणनाव्यतीतम् ॥
निक्षिप्यतेऽर्हत्प्रतिमापदाग्रे पुष्पांजलिः प्रोद्गतभक्तिभावैः ॥२॥

यह पढके पुष्पांजलिक्षेप करे. । सर्व पुष्पांजलियोंके अंतमें धूपोत्क्षेप, और शक्रस्तवपाठ अवश्य करना. ॥ तदनंतर पुष्पादिकरके प्रतिमा पूजे.। तदपीछे मणि, स्वर्ण, रूप्य, ताम्र, मिश्रधातु, माटीमय, कलशे स्नात्रकी चौकीऊपरि स्थापन करना. तिनमें गंगोदकमिश्रित सर्व जलाशयोंके पानी स्थापन करे. चंदन, कुंकुम, कर्प्पूरादि सुगंध द्रव्योंकरके वासित करे. चंदनादि करके, और पुष्पमालायोंकरके, कलशोंको पूजे. जल पुष्पादिअभिमंत्रणमंत्र पूर्वे कहे हैं ते जानने. । तदपीछे सो एक श्रावक, अथवा बहुत श्रावक, पूर्वोक्त वेष शौचवाले गंधसें हस्तको लेपन करके, मालाभूषित कंठवाले तिन कलशोंको हाथऊपरि रक्खे. । तदपीछे स्वस्वबुद्धिअनुसारसें जिनजन्माभिषेकचिन्हित स्तोत्रोंको जिनस्तुतिगर्भित षट्पदादि (छप्पयआदि) को पढे । तदपीछे शार्दूलवृत्त पढे ।

यथा ॥ ॥ शार्दूलवृत्त ॥

जाते जन्मनि सर्वविष्टपपतेरिंद्रादयो निर्जरा ।
नीत्वा तं करसंपुटेन बहुभिः सार्द्धं विशिष्टोत्सवैः ॥
शृंगे मेरुमहीधरस्य मिलिते सानंददेवीगणे ।
स्नात्रारंभमुपानयंति बहुधा कुंभांबुगंधादिकम् ॥ १ ॥

॥ आर्या ॥

योजनमुखान् रजतनिष्कमयान् मिश्रधातुमृद्रचितान् ॥
दधते कलशान् संख्या तेषां युगषट्खदंतिमिता ॥ २ ॥
वापीकूपन्हदांबुधितडागपल्वलनदीझरादिभ्यः ॥
आनीतैर्विमलजलैः स्नानाधिकं पूरयंति च ते ॥ ३ ॥

दिपं गृहण २। नैवेद्यं गृहाण २। विघ्नं हर २। दुरितं हर २।
शांतिं कुरु २। तुष्टिं कुरु २। पुष्टिं कुरु २।ऋद्धिं कुरु २।
वृद्धिं कुरु २। स्वाहा ॥ " इति पुष्पगंधादिभिरिंद्रपूजनम् ॥ १ ॥

॥ वपछंदसिकवृत्तपाठ- ॥

बहिरंतरनंततेजसा विदधत्कारणकार्यसंगतिः ॥
जिनपूजनआशुशुक्षणे कुरु विघ्नप्रतिघातमंजसा ॥ १ ॥
"॥ ॐ अग्ने इह० शेषं पूर्ववत् ॥ " ॥ इत्यग्निपूजनम् ॥ २ ॥

॥ वसंततिलका ॥

दीप्तांजनप्रभतनो तनुसंनिकर्ष ।
वाहारिवाहनसमुद्धुरदंडपाणे ॥
सर्वत्र तुल्यकरणीयकरस्थधर्म ॥
कीनाश नाशय विपद्विसरं क्षणेत्र ॥ १ ॥
" ॐ यम इह० शेषं पूर्ववत् ॥ " इति यमपूजनम् ॥ ३ ॥

॥ आर्या ॥

राक्षसगणपरिवेष्टितचेष्टितमात्रप्रकाशहतशात्रो ॥
स्नात्रोत्सवेत्र निर्ऋते नाशय सर्वाणि दुःखानि ॥ १ ॥
"॥ ॐ निर्ऋते इह० शेषं पूर्ववत् ॥ " इति निर्ऋतिपूजनम् ॥ ४ ॥

॥ स्रग्धरा ॥

कल्लोलानीतलोलाधिककिरणगणस्फीतरत्नप्रपंच ।
प्रोद्भूतौर्वाग्निशोभं वरमकरमहापृष्टदेशोक्तमानम् ॥
चंचच्चीरिल्लिशृंगिप्रभृतिझषगणैरंचितं वारुणं नो ।
वर्ष्मंच्छिंद्यादपायं त्रिजगदधिपतेः स्नात्रसत्रे पवित्रे ॥ १ ॥
"॥ ॐ वरुण इह० शेषं पूर्ववत् ॥ " इति वरुणपूजनम् ॥ ५ ॥

तियसासुरेहिं ण्हविओ ते धन्ना जेहिं दिट्ठोसि ॥ ९ ॥

यह पढके कलशोंकरके जिनप्रतिमाको अभिषेक करे. । तदपीछे बडे छोटेके क्रमकरके सर्व पुरुष स्त्रियां भी गंधोदकोंकरके स्नात्र करे. । तदपीछे अभिषेकके अंतमें गंधोदकपूर्ण कलश लेके वसंततिलकावृत्त पढे.।

यथा ॥ ॥ वसंततिलका ॥

संघे चतुर्विध इह प्रतिभासमाने श्रीतीर्थपूजनकृतप्रतिभासमाने॥
गंधोदकैः पुनरपि प्रभवत्वजस्रं स्नात्रं जगत्त्रयगुरोरतिपूतधारैः॥१॥

यह पढके जिनपादोपरि कलशाभिषेक करके स्नात्रनिवृत्ति करे. । तदपीछे पुष्पांजलि लेके वृत्त पढे ।

यथा ॥ ॥ प्रहर्षिणी ॥

इंद्राग्ने यम निर्ऋते जलेश वायो
वित्तेशेश्वर भुजगा विरंचिनाथ ॥
संघस्याधिकतमभक्तिभारभाजः
स्नात्रेऽस्मिन् भुवनविभोः श्रीयं कुरुध्वम् ॥ १ ॥

यह पढके स्नात्रपीठके पास रहे कल्पित दिक्पालपीठऊपरि, पुष्पांजलिक्षेप करे. । तदपीछे प्रत्येक दिशामें यथाक्रमकरके दिक्पालोंको स्थापन करे. । पीछे एकैक दिक्पालका पूजन करे ।

यथा ॥ ॥ शिखरिणी ॥

सुराधीश श्रीमन् सुदृढतरसम्यक्त्ववसते ।
शचीकांतोपांतस्थितविबुधकोट्यानतपद ॥
ज्वलद्वज्राघातक्षपितदनुजाधीशकटक ।
प्रभोः स्नात्रे विघ्नं हर हर हरे पुण्यजयिनाम् ॥ १ ॥

"॥ ॐ शक्र इह जिनस्नात्रमहोत्सवे आगच्छ २ । इदं जलं गृहाण २ । गंधं गृहाण २ । पुष्पं गृहाण २ । धूपं गृहाण २ ।

महाज्ञानी, महातपःस्वरूप, महायोगी सर्व योगोंका जाननहार, और धारनहार है; और जो महामौनी, सावद्य वचनसें रहित है, सो महादेव कहा जाताहै ॥ १२ ॥

महावीर्यं महाधैर्यं महाशीलं महागुणः ॥
महामञ्जुक्षमा यस्य महादेवः स उच्यते ॥ १३ ॥

भाषा–महावीर्य, वीर्यांतरायकर्मके क्षय होनेसें अनंतवीर्य, महाधैर्य, छद्मस्थावस्थामें परीसह उपसर्गोंसें कदापि ध्यानसें चलायमान नहीं होनेसें, महाशील, अष्टादश सहस्र १८००० शीलांगवाले होनेसें, केवलज्ञानदर्शनादि अनंत महागुण, और महाकोमल मनोहर क्षमा है जिसके, सो महादेव कहा जाता है ॥ १३ ॥

स्वयंभूतं यतोज्ञानं लोकालोकप्रकाशकम् ॥
अनन्तवीर्यंचारित्रं स्वयंभूः सोभिधीयते ॥ १४ ॥

भाषा–स्वयमेवही आत्मस्वरूपसेंही ज्ञानावरणीयादि कर्मोंके क्षय होनेसें आविर्भूत हुआ है ज्ञानकेवलरूप लोकालोकका प्रकाशक जिसके, वीर्यांतराय कर्मके क्षय होनेसें आविर्भूत हुआ है अनंतवीर्य जिसके, और चारित्रमोहके क्षय होनेसें अनंतक्षायक चारित्र प्रगट हुआ है जिसके, तिस भगवान्कों स्वयंभू कहियेहैं. "शंभुः स्वयंभूर्भगवान्" इतिवचनात्॥१४॥

शिवो यस्माज्जिनः प्रोक्तः शंकरश्च प्रकीर्त्तितः ॥
कायोत्सर्गी च पर्यङ्की स्त्रीशस्त्रादिविवर्जितः ॥ १५ ॥

भाषा–शिव निरुपद्रव, अर्थात् जिसका स्वरूप निरुपद्रव है, और सर्व जगत्के निरुपद्रव होनेमें हेतु है; क्योंकि, जहां जहां भगवंत विचरते हैं, तहां तहां चारों तर्फ पच्चीस योजनतांइ दुष्ट व्यंतरकृत मरीज्वरादि नही होतेहैं. और स्वचक्रपरचक्रका भय नही होता है. और अवृष्टि, अतिवृष्टि तथा मूषक टीडप्रमुख धान्यके उपद्रवकारी जीव नही होते हैं. और जीवोंकों शिव अर्थात् मुक्तिपथका उपदेश देनेसें जिन भगवान् तीर्थंकरकोंही शिव कहतेहैं, चौतीस ३४ आतिशय संयुक्त होनेसें. पुनः तिसही भगवंतकों तीन भुवनके जीवोंकों उपदेशद्वारा शं (सुख) करनेसें शंकर

॥ मालिनी ॥

ध्वजपटकृतकीर्त्तिस्फूर्त्तिदीप्यद्विमान ।
प्रसृमरबहुवेगत्यक्तसर्वोपमान ॥
इह जिनपतिपूजासंनिधौ मातरिश्व-
न्नपनयसमुदायं मध्यबाह्यातपानाम् ॥ १ ॥

"॥ ॐ वायो इह० शेषं पूर्ववत् ॥" इति वायुपूजनम् ॥ ६ ॥

॥ वसंततिलका ॥

कैलासवास विलसत्कमलाविलास ।
संशुद्धहासकृतदौस्थ्यकथानिरास ॥
श्रीमत्कुबेरभगवत्स्नपनेत्र सर्वं ।
विघ्नं विनाशय शुभाशय शीघ्रमेव ॥ १ ॥

"॥ ॐ कुबेर इह० शेषं पूर्ववत् ॥" इति कुबेरपूजनम् ॥ ७ ॥

॥ वसंततिलका ॥

गंगातरंगपरिखेलनकीर्णवारि प्रोद्यत्कपर्दपरिमंडितपार्श्वदेशम् ॥
नित्यं जिनस्नपनहृष्टहृदः स्मरारे विघ्नं निहंतु सकलस्य जगत्रयस्य १

"॥ ॐ ईशान इह० शेषं पूर्ववत ॥" इतीशानपूजनम् ॥ ८ ॥

॥ वृत्तपाठः ॥

फणमणिमहसा विभासमानाः। कृतयमुनाजलसंश्रयोपमानाः॥
फणिन इह जिनाभिषेककाले। बलिभवनादमृतंसमानयंतु॥१॥

"॥ ॐ नागा इह० शेषं पूर्ववत् ॥" इति नागपूजनम् ॥ ९ ॥

॥ द्रुतविलंबितपाठः ॥

विशदपुस्तकशस्तकरद्वयः । प्रथितवेदतया प्रमदप्रदः ॥
भगवतः स्नपनावसरे चिरं । हरतु विघ्नभरं द्रुहिणो विभुः ॥१॥

"॥ ॐ ब्रह्मन् इह० शेषं पूर्ववत् ॥" इति ब्रह्मणः पूजनम् ॥ १० ॥

ऐसें क्रमसें दिकपालपूजन करे। तदपीछे फिर भी हाथमें पुष्पांजलि लेकर आर्या पढे॥

यथा॥ ॥ आर्या ॥

दिनकरहिमकरभूसुतशशिसुतबृहतीशकाव्यरवितनयाः ॥
राहो केतो क्षेत्रप जिनार्च्चने भवत सन्निहिताः ॥ १ ॥

यह पढके ग्रहपीठोपरि पुष्पांजलिक्षेप करे। तदपीछे पूर्वादिक्रमसें सूर्य, शुक्र, मंगल, राहु, शनि, चंद्र, बुध, बृहस्पति, इनको स्थापन करे. हेठ केतुको, और ऊपर क्षेत्रपालको स्थापन करे.। तदपीछे प्रत्येक ग्रहका पूजन करे.।

तद्यथा॥ ॥ वसंततिलका ॥

विश्वप्रकाशकृतभव्यशुभावकाश।
ध्वांतप्रतानपरिपातनसद्विकाश॥
आदित्य नित्यमिह तीर्थकराभिषेके।
कल्याणपल्लवनमाकलय प्रयत्नात्॥ १ ॥

"॥ ॐ सूर्य इह० शेषं पूर्ववत्॥" इति सूर्यपूजनम्॥ १॥

॥ मालिनी ॥

स्फटिकधवलशुद्धध्यानविध्वस्तपाप।
प्रमुदितदितिपुत्रोपास्यपादारविंद॥
त्रिभुवनजनशश्वज्जंतुजीवानुविद्य।
प्रथय भगवतोर्च्चां शुक्र हे वीतविघ्नाम्॥ १ ॥

"॥ ॐ शुक्र इह० शेषं पूर्ववत्॥" इति शुक्रपूजनम्॥ २॥

॥ आर्या ॥

प्रबलबलमिलितबहुकुशललालनाललितकलितविघ्नहते।
भौमजिनस्नपनेऽस्मिन् विघटय विघ्नागमं सर्वम्॥ १ ॥

"॥ ॐ मंगल इह० शेषं पूर्ववत्॥" इति मंगलपूजनम्॥ ३॥

॥ अनुष्टुप् ॥

अस्तांहः सिंहसंयुक्तरथ विक्रममंदिर ॥
सिंहिकासुत पूजायामत्र संनिहितो भव ॥ १ ॥

“॥ ॐ राहो इह० शेषं पूर्ववत् ॥” इति राहु पूजनम् ॥ ४ ॥

॥ वृत्तम् ॥

फलिनीदलनील लीलयांतःस्थगितसमस्तवरिष्ठविघ्नजात॥
रवितनय प्रबोधमेतात् जिनपूजाकरणैकसावधानान् ॥ १ ॥

“ ॥ ॐ शने इह० शेषं पूर्ववत् ॥ ” इति शनिपूजनम् ॥ ५ ॥

॥ द्रुतविलंवितपाठः ॥

अमृतवृष्टिविनाशितसर्वदोपचितविघ्नविषः शशलांछनः ॥
वितनुतात्तनुतामिह देहिनां प्रसृततापभरस्य जिनार्च्चने ॥ १ ॥

“ ॥ ॐ चंद्र इह० शेषं पूर्ववत् ॥ ” इति चंद्रपूजनम् ॥ ६ ॥

॥ वृत्तम् ॥

बुधविबुधगणार्च्चितांघ्रियुग्म प्रमथितदैत्य विनीतदुष्टशास्त्र ॥
जिनचरणसमीपगोधुनात्वं रचय मतिं भवघातनप्रकृष्टाम् ॥ १ ॥

“ ॥ ॐ बुध इह० शेषं पूर्ववत् ॥ ” इति बुधपूजनम् ॥ ७ ॥

॥ वृत्तम् ॥

सुरपतिहृदयावतीर्णमंत्रप्रचुरकलाविकलप्रकाश भास्वन् ॥
जिनपतिचरणाभिषेककाले कुरु बृहतीवर विघ्नविप्रणाशम्॥ १ ॥

“॥ ॐ गुरो इह० शेषं पूर्ववत् ॥ ” इति गुरुपूजनम् ॥ ८ ॥

॥ द्रुतविलंवित ॥

निजनिजोदययोगजगत्रयीकुशलविस्तरकारणतां गतः ॥
भवतुकेतुरनश्वरसंपदां सततहेतुरवारितविक्रमः॥ १ ॥

“॥ ॐ केतो इह० शेषं पूर्ववत् ॥ ” इति केतुपूजनम् ॥ ९ ॥

॥ आर्या ॥

कृष्णसितकपिलवर्णप्रकीर्णकोपासितांघ्रियुग्मसदा ॥
श्रीक्षेत्रपाल पालय भविकजनं विघ्नहरणेन ॥ १ ॥

"॥ ॐ क्षेत्रपाल इह० शेषं पूर्ववत्॥" इति क्षेत्रपालपूजनम् ॥१०॥

तदपीछे गंध, पुष्प, अक्षत, धूप, दीपसें पूर्व कहे मंत्रोंसेंही जिनप्रतिमाकी पूजा करे. तदपीछे हाथमें वस्त्र लेके वसंततिलकावृत्तपाठ पढे. । यथा ॥

॥ वसंततिलकावृत्त ॥

त्यक्त्वाखिलार्थवनितादिकभूरिराज्यं
निःसंगतामुपगतो जगतामधीशः ॥
भिक्षुर्भवन्नपि स वर्ष्मणि देवदूष्य-
मेकं दधाति वचनेन सुरेश्वराणाम् ॥ १ ॥

यह पढके वस्त्र चढावे. ॥ इति वस्त्रपूजा ॥

तदपीछे नानाविध खाद्य, पेय, भक्ष्य, लेह्यसंयुक्त नैवेद्य, दो स्थानमें करके तिनमेंसें एक पात्र जिनके आगे स्थापके, श्लोक पढे. । यथा ॥

॥ श्लोक ॥

सर्वप्रधानसद्भूतं देहिदेहिसुपुष्टिदम् ॥
अन्नं जिनाग्रे रचितं दुःखं हरतु नः सदा ॥ १ ॥

यह पढके जलचुलुककरके जिनप्रतिमाको नैवेद्य देवे. । तदपीछे दूसरे पात्रमें चुलुककरकेही, ग्रहदिक्पालादिकोंको श्लोक पढके नैवेद्य देवे. । श्लोको यथा ॥

भोभो सर्वेग्रहालोकपालाः सम्यग्दृशः सुराः ॥
नैवेद्यमेतद्गृह्णन्तु भवंतो भयहारिणः ॥ १ ॥

स्नान करायाविना भी पूजामें जिनप्रतिमाको इसही मंत्रकरके नैवेद्य देना. ॥ तदपीछे आरात्रिक मंगलदीपक पूर्ववत । और शक्रस्तव भी

पढना. ॥ जिस प्रतिमाका स्थानस्थितहीका स्नपन कराया जावे, तिसके वास्ते सर्वकुछ तहांही करना. ॥

श्रीखंडकर्प्पूरकूरंगनाभिप्रियंगुमांसीनखकाकतुंडैः ॥
जगत्रयस्याधिपतेः सपर्याविधौ विदध्यात्कुशलानि धूपः॥१॥

इस वृत्तकरके सर्वपुष्पांजलियोंके बिचाले धूपोत्क्षेप करना, और शक्रस्तवपाठ पढना. ॥

प्रतिमाविसर्जनं यथा ॥

"॥ ॐ अर्हँ नमो भगवतेर्हते समये पुनः पूजां प्रतीच्छ स्वाहा॥"

इति पुष्पन्यासेन प्रतिमाविसर्जनं ॥

"॥ ॐ न्हः इंद्रादयोलोकपालाः सूर्यादयो ग्रहाः सक्षेत्रपालाः सर्वदेवाः सर्वदेव्यः पुनरागमनाय स्वाहा ॥" इति पुष्पादिभिर्दिक् पालग्रहविसर्ज्जनम् ॥

तदपीछे ॥

आज्ञाहीनं क्रियाहीनं मंत्रहीनं च यत्कृतम् ॥
तत्सर्वं कृपया देवाः क्षमंतु परमेश्वराः ॥ १ ॥
आवाहनं न जानामि न जानामि विसर्ज्जनम् ॥
पूजां चैव न जानामि त्वमेव शरणं मम ॥ २ ॥
कीर्त्तिः श्रियो राज्यपदं सुरत्वं न प्रार्थये किंचन देवदेव ॥
मत्प्रार्थनीयं भगवत्प्रदेयं स्वदासतां मां नय सर्वदापि ॥३॥

इति सर्वकरणीयांते जिनप्रतिमादेवादिविसर्जनविधिः ॥

अर्हदर्चनाविधिमें भी ऐसेंही विसर्जन जानना.॥ इति लघुस्नात्रविधिः ॥

तदपीछे (गृहचैत्यपूजानंतर) बडे देवमंदिरमें जाकर, शक्रस्तवादि-स्तोत्रोंकरके जिनराजकी स्तवना करके, और जिनराजका पूजन करके,

प्रत्याख्यान चिंतवन करे. । पीछे चैत्यको प्रदक्षिणा करके, पौषधशाला (उपाश्रय) में जाकर, देवकीतरें बडे आनंदसें साधुयोंको वंदन करे. सुंदरबुद्धिवाला होकर, पूजासत्कार करे. । पीछे एकाग्रचित्त होकर साधुके मुखसें धर्मदेशना श्रवण करे. पीछे मनमें धारा हुआ प्रत्याख्यान करे. पीछें गुरुको नमस्कार करके कर्मादानको अच्छीतरें त्यागके, धन उपार्जन करे. यथायोग्य स्थानमें व्यापार समाचरे. कुत्सित बुरा कर्म प्राणोंके नाश हुए भी न करना. । पीछे अपने घरदेहरामें अर्हत्की मध्यान्हपूजा करके, अन्नपानी समाचरे. भक्तिसें साधुयोंको दान देके, अतिथीयोंकी पूजा आदरसत्कार करके, और दीन अनाथ मार्गणगणको संतोषके, अपने व्रत और कुलके उचित भोज्य वस्तुका भोजन करे. ॥ साधुको आमंत्रण ऐसें करे. ॥

क्षमाश्रमण पूर्वक गृहस्थ कहें ।

" ॥ हे भगवन् फासुएणं एसणिज्जेणं असणपाणखाइम-साइमेणं वथ्थकंबलपायपुच्छणपाडिग्गहेणं ओसहभेसज्जेणं पाडिहेररूवेण सिज्जासंथारएणं भयवं मम गेहे अणुग्गहो कायव्वो ॥ "

तदपीछे (भोजनानंतर) गुरुके पास शास्त्रका विचार करे, पढे, सुने. । पीछे धन उपार्जन करके घरको जाकर संध्यापूजा करके सूर्यके अस्त होनेसें दो घडी पहिले, निजवांछित भोजन करे. सायंकालमें धर्मा-गारमें सामायिककरके षडावश्यक प्रतिक्रमण करे. पीछे अपने घरमें आके शांतबुद्धिवाला हुआ, जब एक पहर रात्रि जावे तब अर्हत्स्तवादिक पढके प्रायः ब्रह्मचर्यव्रतधारी होके सुखसें निद्रा लेवे. जब नींदका अंत आवे तब परमेष्टिमंत्रस्मरणपूर्वक जिन, चक्री, अर्द्धचक्री, आदिके चरि-तोंको चिंतन करे. और व्रतादिकोंके मनोरथ अपनी इच्छासें करे, ऐसें अहोरात्रिकी चर्या अप्रमत्त होके समाचरता हुआ, और यथावत् कहे व्रतमें रहा हुआ, गृहस्थ भी शुद्ध अर्थात् कल्याणभागी होता है. । इति व्रतारोपसंस्कारे गृहिणां दिनरात्रिचर्या ॥

वासनागुरुसामग्री विभवो देहपाटवम् ॥
संघश्चतुर्विधो हर्षो व्रतारोपे गवेष्यते ॥ १ ॥
वरकुसुमगंधअक्खयफलजलनेवज्जधूवदीवेहिं ॥
अट्ठविहकम्ममहणी जिणपूआ अट्ठहा होइ ॥ २ ॥

इत्याचार्यश्रीवर्द्धमानसूरिकृताचारदिनकरस्य गृहिधर्मप्रतिबद्धपंचदशमव्रतारोपसंस्कारस्याचार्यश्रीमद्विजयानंदसूरिविरचितोबालावबोधस्समाप्तस्तत्समाप्तौ च समाप्तोयं त्रिंशः स्तंभः ॥ ३० ॥

इत्याचार्यश्रीमद्विजयानंदसूरीश्वरविरचिततत्त्वनिर्णयप्रासादग्रंथेपंचदशमव्रतारोपसंस्कारवर्णनोनामत्रिंशःस्तंभः ॥ ३० ॥

॥ अथैकत्रिंशस्तम्भारम्भः ॥

पूर्वोक्त २७।२८।२९।३०। स्तंभोंमें पंचदशम (१५) व्रतारोपसंस्कारका वर्णन किया, अब इस इकतीस (३१) स्तंभमें षोडशम (१६) अंत्यसंस्कारका वर्णन करते हैं. ॥

श्रावक यथावृत् वृत्तोंकरके निज भवको पालके कालधर्मके प्राप्त हुए, उत्कृष्ट प्रधान आराधना करे, तिसका विधि यह है. । जिन अरिहंतोंके कल्याणक स्थानोंमें निर्जीव शुचि पवित्र स्थंडिल–जगामें, वा अरण्यमें, वा अपने घरमें, विधिसें अनशन करना. । तहां शुभस्थानमें ग्लानकोपर्यंत आराधना करावनी । तथा अवश्यमेव अमुकवेला निकट मरण होवेगा ऐसें ज्ञानके हुए, तिथिवारनक्षत्रचंद्रबलादि न देखना। तहां संघका मीलना करना । गुरु, ग्लानको जैसें सम्यत्क्वारोपणमें तैसेंही नंदि करे. । नवरं इतना विशेष है. सर्व नंदि देववंदन कायोत्सर्गादि पूर्वोक्त विधि 'संलेहणा आराहणा' इस अभिलापकरके करावणा. और वैयावृत्त्य कर कायोत्सर्गानंतर ।

"॥ आराधना देवता आराधनार्थं करेमि काउस्सग्गं अन्नत्थउंससिएणं० जाव–अप्पाणं वोसिरामि ॥" कहके कायोत्सर्ग करे. कायोत्सर्गमें चार लोगस्स चिंतवन करना, पारके आराधना स्तुति कहनी. ।

सा यथा ॥

यस्याः सान्निध्यतो भव्या वांछितार्थप्रसाधकाः ॥
श्रीमदाराधना देवी विघ्नव्रातापहास्तु वः ॥ १ ॥ शेषं पूर्ववत् ॥

तदपीछे तिसही पूर्वोक्तविधिसें सम्यक्त्वदंडकका उच्चारण, द्वादशव्रतोंका उच्चारण करावणा. । वासक्षेपकायोत्सर्गादि भी, 'संलेखना आराधना' के आलापककरके तैसेंही जाणना. । प्रदक्षिणा करनी, ग्लानकी शक्तिके अनुसार होवे भी, और नही भी होवे. । दंडकादिमें 'जावनियमंपज्जुवासामि' के स्थानमें 'जावज्जीवाए' ऐसें कहना. । तदपीछे सर्व जीवोंकेसाथ अपराधकी क्षामणा करनी । पीछे श्रावक परमेष्ठिमंत्रोच्चारपूर्वक गुरुके सन्मुख हाथ जोडके कहें ।

खामेमि सव्वजीवे सव्वे जीवा खमंतु मे ॥
मित्ती मे सव्वभूएसु वेरं मज्झ न केणइ ॥ १ ॥

गुरु कहें ।

"॥ खामेह जो खमइ तस्स अथ्थी आराहणा जो न खमइ तस्स नथ्थि आराहणा ॥" तदपीछे श्रावक क्षमाश्रमणपूर्वक कहें "। भयवं अणुजाणह ।" गुरु कहें "। अणुजाणामि ।" श्रावक परमेष्ठिमंत्रपाठपूर्वक कहें ।

"॥ जे मए अणंतेणं भवप्भमणेणं पुढविकाइआ आउकाइआ तेउकाइआ वाउकाइआ वणस्सइकाइआ एगिंदिआ सुहुमा वा बायरा वा पज्जत्ता वा अपज्जत्ता वा कोहेण वा माणेण वा मायाए वा लोहेण पंचिंदिअट्टेण वा रागेण वा दोसेण वा घाइआ वा पीडिआ वा मणेणं वायाए काएणं तस्स मिच्छामि दुक्कडं ॥"

फिर परमेष्ठिमंत्र पढके ।

"॥ जे मए अणंतेणं भवप्भमणेणं बेइंदिआ वा सुहुमा वा बायरा वा० शेषं पूर्ववत् ॥"

फिर परमेष्ठिमंत्र पढके ।

"॥ जे मए अणंतेणं भवप्भमणेणं तेइंदिया सुहमा वा बायरा वा० शेषं पूर्ववत् ॥ "

फिर परमेष्ठिमंत्र पाठपूर्वक कहें ।

" ॥ जे मए अणंतेणं भवप्भमणेणं चउरिंदिआ सुहुमा वा बायरा वा० शेषं पूर्ववत् ॥ "

फिर परमेष्ठिमंत्र पाठपूर्वक कहें ।

" ॥ जे मए अणंतेणं भवप्भमणेणं पंचिंदिआ देवा वा मणुआ वा नेरइआ वा तिरक्खजोणिआ वा जलयरा वा थलयरा वा खयरा वा सन्निआ वा असन्निआ वा सुहमा वा बायरा वा० शेषं पूर्ववत् ॥ "

फिर परमेष्ठिमंत्र पाठपूर्वक श्रावक कहें ।

" ॥ जं मए अणंतेणं भयप्भमणेणं अलिअं भणिअं कोहेण वा माणेण वा मायाए वा लोहेण वा पंचिंदिअट्टेण वा रागेण वा दोसेण वा मणेणं वायाए काएणं तस्स मिच्छामि दुक्कडं ॥ "

फिर परमेष्ठिमंत्र पढके कहें ।

" ॥ जं मए अणंतेणं भवप्भमणेणं अदिन्नं गहिअं कोहेण वा माणेण वा० शेषं पूर्ववत् ॥ "

फिर परमेष्ठिमंत्र पढके ।

" ॥ जं मए अणंतेणं भवप्भमणेणं दिव्वं माणुस्सं तिरिच्छं मेहुणं सेवि अं कोहेण वा माणेण वा० शेषं पूर्ववत् ॥ "

फिर परमेष्ठिमंत्र पढके ।

" ॥ जं मए अणंतेणं भवप्भमणेणं अट्ठारस पावट्ठाणाइं कयाइं कोहेण वा माणेण वा० शेषं पूर्ववत् ॥ "

फिर परमेष्ठिमंत्र पढके ।

"॥ जं मे पुढविकायगयस्स सिलालेट्ठुसक्करासन्हावालुआगेरिअ-सुवन्नाइमहाधाउरूवं सरीरं पाणिवहे पाणिसंघट्टणे पाणिपीडणे पाववट्टणे मिच्छत्तपोसणे ठाणे संलग्गं तं निंदामि गरिहामि वोसिरामि ॥"

"॥ जं मे पुढविकायगयस्स सिलालेट्ठुसक्करासन्हावालुआगे-रिअवसुन्नाईमहाधाउरूवं सरीरं अरिहंतचेइएसु अरिहंतबिंबेसु धम्म-ट्ठाणेसु जंतुरक्खणट्ठाणेसु धम्मोवगरणेसु संलग्गं तं अणुमोआमि कल्लाणेणं अभिनंदेमि ॥"

फिर परमेष्ठिमंत्र पढके ।

"॥ जं मे आउकायगयस्स जलकरगमहिआओस्साहिमहरत-णुरूवं सरीरं पाणिवहे पाणिसंघट्टणे पाणिपीडणे पाववट्टणे मि-च्छत्तपोसणे ठाणे संलग्गं तं निंदामि गरिहामि वोसिरामि ॥"

"॥ जं मे आउकागयस्स जलकरगमाहिआओस्साहिमहरतणु-रूवं सरीरं अरिहंतचेइएसु अरिहंतबिंबेसु धम्मट्ठाणेसु जंतुरक्ख-णट्ठाणेसु धम्मोवगरणेसु जिणन्हाणेसु तन्हदाहावहरणेसु संलग्गं तं अणुमोआमि कल्लाणेणं अभिनंदेमि ॥"

फिर परमेष्ठिमंत्र पढके ।

"॥ जं मे तेउकायगयस्स अगणिइंगालमम्मुरजालाअलायविज्जु-उक्कातेअरूवं सरीरं पाणिवहे पाणिसंघट्टणे पाणिपीडणे पाववट्टणे मिच्छत्तपोसणे ठाणे संलग्गं तं निंदामि गिरिहामि वोसिरामि ॥"

"॥ जं मे तेउकायगयस्स अगणिइंगालमम्मुरजालाअलायवि-ज्जुउक्कातेअरूवं सरीरं सीआवहारे जिणपूआधूवकरणे नेवेज्जपाए

छुहाहरणाहारपाए संलग्गं तं अणुमोएमि कल्लाणेणं अभिनंदेमि ॥ "

फिर परमेष्ठिमंत्र पढके ।

" ॥ जं मे वाउकायगयस्स वाउझंझासासरूवं सरीरं पाणिवहे पाणिसंघट्टणे पाणिपीडणे पाववद्धणे मिच्छत्तपोसणे ठाणे संलग्गं तं निंदामि गरिहामि वोसिरामि ॥ "

" ॥ जं मे वाउकायगयस्स वाउझंझासासरूवं सरीरं पाणिरक्खणे पाणिजीवणे साहूण वेयावच्चे धम्मावहारे संलग्गं तं अणुमोएमि कल्लाणेणं अभिनंदेमि ॥ "

फिर परमेष्ठिमंत्र पढके ।

"॥ जं मे वणस्सइकायगयस्स मूलकट्ठछल्लिपत्तपुप्फफलवीअरसनिज्जासरूवं सरीरं पाणिवहे पाणिसंघट्टणे पाणिपीडणे पाववद्धणे मिच्छत्तपोसणे ठाणे संलग्गं तं निंदामि गरिहामि वोसिरामि ॥"

" ॥ जं मे वणस्सइकायगयस्स मूलकट्ठछल्लिपत्तपुप्फफलवीअरसनिज्जासरूवं सरीरं छुहाहरणेसु अरिहंतचेइअपूयणेसु धम्मट्ठाणेसु नेवज्जकरणेसु जंतुरक्खणेसु संलग्गं तं अणुमोएमि कल्लाणेणं अभिनंदेमि ॥ "

फिर परमेष्ठिमंत्र पढके ।

"॥ जं मे तसकायगयस्स रसरत्तमंसमेअअट्ठिमज्जासुक्कचम्मरोमनहनसारूवं सरीरं पाणिवहे पाणिसंघट्टणे पाणिपीडणे पाववद्धणे मिच्छत्तपोसणे ठाणे संलग्गं तं निंदामि गरिहामि वोसिरामि ॥ "

"॥ जं मे तसकायगयस्स रसरत्तमंसमेअअट्ठिमज्जासुक्कचम्मरोमनहनसारूवं सरीरं अरिहंतचेइएसु अरिहंतबिंबेसु धम्मट्ठाणेसु

जंतुरक्खणट्ठाणेसु धम्मोवगरणेसु संलग्गंतं अणुमोएमि कल्लाणेणं अभिनंदेमि ॥ ”

फिर परमेष्ठिमंत्र पढके ।

“ ॥ जं मए इथ्थ भवे मणेणं वायाए काएणं दुट्ठं चिंतिअं दुट्ठं भासिअं दुट्ठं कयं तं निंदामि गरिहामि वोसिरामि ॥ ”

“ ॥ जं मए इथ्थ भवे मणेणं वायाए काएणं सुट्ठु चिंतिअं सुट्ठु भासिअं सुट्ठु कयं तं अणुमोएमि कल्लाणेणं अभिनंदेमि ॥ ”

यहां पहिलां समारोपितसम्यक्त्व व्रतको भी, फिर सम्यक्त्व व्रतारोप करना. और जिसको पहिलें सम्यक्त्व व्रतारोप न करा होवे, तिसको भी अंतकालमें सम्यक्त्व व्रतारोप करना योग्य है. । जिसको पहिलां व्रतारोप करा होवे, तिसको इस अंतसमयमें एकसौचौवीस अतिचारोंकी आलोचना करनी. । वे अतिचार आवश्यकादि सूत्रोंसें जान लेने. । तदपीछे आलोचनाविधि करना, सो प्रायश्चित्तविधिसें जानना. । तदपीछे गुरु सर्व संघसहित वासअक्षतादि ग्लानके शिरमें निक्षेप करे. ॥ इत्यंतसंस्कारे आराधनाविधिः ॥

तदपीछे ग्लान (रोगी–बीमार) क्षमाश्रमण परमेष्ठिमंत्र पाठपूर्वक कहे ॥

आयरियउवज्झाए सीसे साहम्मिए कुलगणे अ ॥
जे मे कया कसाया सव्वे तिविहेण खामेमि ॥ १ ॥
सव्वस्स समणसंघस्स भगवओ अंजलिं करिय सीसे ॥
सव्वं खमावइत्ता खमामि सव्वस्स अहयंपि ॥ २ ॥
सव्वस्स जीवरासिस्स भावओ धम्मनिहियनियचित्तो ॥
सव्वं खमावइत्ता खमामि सव्वस्स अहयंपि ॥ ३ ॥

“॥ भयवं जं मए चउगइगएणं देवा तिरिआ मणुस्सा नेरइआ चउकसाओवगएणं पंचिंदिअवसट्टेणं इहम्मि भवे अन्नेसु वा भवग्गहणेसु मणेणं वायाए काएणं दूमिआ संताविआ अभिताइया

तस्स मिच्छामि दुक्कडं तेहिं अहं अभिदूमिओ संताविओ अभि-हओ तमहंपि खमामि ॥ ”

तदपीछे गुरु दंडकसहित इन तीनों गाथाका विस्तारसें व्याख्यान करे। तदपीछे ग्लान, गुरु साधु साध्वी श्रावक श्राविकायोंको प्रत्येक-क्षामणां करे.। यहां गुरुयोंको वस्त्रादि दान, और संघको पूजासत्कार जानना. ॥ इत्यंतसंस्कारे क्षामणाविधिः ॥

अथ मृत्युकालके निकट हुए, ग्लान, पुत्रादिकोंसें जिनचैत्योंमें महापूजा स्नात्रमहोत्सव ध्वजारोपादि करवावे, चैत्यधर्मस्थानादिमें धन लगवावे.। तदपीछे परमेष्ठिमंत्रोच्चारपूर्वक पढे.।

यथा ॥

जे मे जाणंतु जिणा अवराहा जेसु२ ठाणेसु ॥
तेहं आलोएमि उवट्ठिओ सव्वकालंपि ॥ १ ॥
छउमथ्थो मूढमणो कित्तियमित्तंपि संभरइ जीवो ॥
जं च न सुमरामि अहं मिच्छामि दुक्कडं तस्स ॥ २ ॥
जं जं मणेण बद्धं जं जं वायाइ भासिअं किंचि जं जं ॥
काएण कयं मिच्छामि दूक्कडं तस्स ॥ ३ ॥
खामेमि सव्वजीवे सव्वे जीवा खमंतु मे ॥
मित्ती मे सव्वभूएसु वेरं मज्झ न केणइ ॥ ४ ॥

इति ग्लानपाठः ॥

तदपीछे तीन नमस्कार पाठपूर्वक कहें।

“ ॥ चत्तारि मंगलं अरिहंता मंगलं सिद्धा मंगलं साहू मंगलं केवलिपन्नत्तो धम्मो मंगलं। चत्तारि लोगुत्तमा अरिहंता लोगुत्तमा सिद्धा लोगुत्तमा साहू लोगुत्तमा केव-लिपन्नत्तो धम्मो लोगुत्तमो । चत्तारि सरणं पवज्जामि अरिहंते सरणं पवज्जामि सिद्धे सरणं पवज्जामि साहू सरणं पवज्जामि केवलिपन्नत्तं धम्मं सरणं पवज्जामि ॥ ”

यह पाठ तीन वार पढे। पीछे गुरुके वचनसें अष्टादश (१८) पापस्थानकोंको वोसरावे व्युत्सर्जन करे.।

यथा ॥

"॥ सव्वं पाणाइवायं पच्चक्खामि । सव्वं मुसावायं पच्चक्खामि । सव्वं अदिन्नादाणं प० । सव्वं मेहुणं प० । सव्वं परिग्गहं प० । सव्वं राईभोअणं प० । सव्वं कोहं प० । सव्वं माणं प० । सव्वं मायं प० । सव्वं लोहं प० । सव्वं पिज्जं प० । सव्वं दोसं कलहं अप्भक्खाणअरईरईपेसुन्नं परपरिवायं मायामोसं मिच्छादसंणसल्लं इच्चेइआइं अट्ठारस पावट्ठाणाइं दुविहं तिविहेणं वोसिरामि अपच्छिमम्मि ऊसासे तिविहं तिविहेणं वोसिरामि ॥ "

तदपीछे गीतार्थगुरु, श्रीयोगशास्त्रके पांचमे प्रकाशके कथनसें, और कालप्रदीपादिशास्त्रके कथनसें, ग्लानके आयुका क्षय जानके * संघकी, ग्लानके संबंधियोंकी, तथा नगरके राजादिकी अनुमति लेके, अनशनका उच्चार करे.। ग्लान, शक्रस्तव पढके तीनवार परमेष्ठिमंत्रको पढके गुरुके मुखसें उच्चरे.।

यथा ॥

"॥ भवचरिमं पच्चक्खामि तिविहंपि आहारं असणं खाइमं साइमं अन्नथ्थणाभोगेणं सहसागारेणं महत्तरागारेणं सव्वसमाहिवत्तियागारेणं वोसिरामि ॥ " इति सागारानशनम् ॥

अंतर्मुहूर्त्त शेष रहे हूए, निरागार अनशन कराना.॥

---

* भक्तप्रत्याख्यानप्रकीर्णकशास्त्रमे लिखा है कि, यदि कोइ तथ्यज्ञानी कहे, अथवा कोइ सम्यग्दृष्टि देवता कहे कि, अमुकदिन तेरा अवश्य मरण है, तवतो अपना संहननधृतिवल जानके यावत् जीवका अनशन करना, अन्यथा सागारिक अनशन करना. परंतु, जो कोइ मरणदिनके निश्चयविना यावत् जीवका अनशन करे, करावे, सो आत्मघाती साधुश्रावकघाती पंचेंद्रियघाती है; इससे प्राय इस कालमे यावज्जीवका अनशन नही कराना सिद्ध होता है. ॥

यथा ॥

" ॥ भवचरिमं निरागारं पच्चक्खामि सव्वं असणं सव्वं पाणं सव्वं खाइमं सव्वं साइमं अन्नथ्थणाभोगेणं सहसागारेणं अईयं निंदामि पडिपुन्नं संवरेमि अणागयं पच्चक्खामि अरिहंतसक्खियं सिद्धसक्खियं साहुसक्खियं देवसक्खियं अप्पसक्खियं वोसिरामि ॥"

जइ मे हुज्ज पमाओ इमस्स देहस्स इमाइ वेलाए ॥
आहारमुवहिदेहं तिविहं तिविहेण वोसिरिअं ॥ १ ॥

तव गुरु "निथ्थारगपारगो होहि" ऐसें कहता हुआ संघसहित वासअक्षतादि ग्लानके सन्मुख क्षेप करे.। शांतिके वास्ते 'अट्ठावयंमि उसहो' इत्यादि स्तुति पढनी. और, 'चवणं जम्मणभूमी' इत्यादि स्तव पढना.। गुरु निरंतर ग्लानके आगे तीनभुवनके चैत्योंका व्याख्यान करे, अनित्यतादि बारां भावनाका व्याख्यान करे, अनादिभवस्थितिका व्याख्यान करे, अनशनके फलका व्याख्यान करे. । और संघ गीतनृत्यादि उत्सव करे.। ग्लान जीवितमरणइच्छाको त्यागके समाधिसहित रहे. । तदपीछे अंतर्मुहूर्त्तके आयां, ग्लान 'सव्वं आहारं सव्वं देहं सव्वं उवहिं वोसिरामि' ऐसें कहें । पीछे ग्लान पंचपरमेष्ठिस्मरणश्रवणयुक्त शरीरको त्यागे ॥ इत्यंतसंस्कारेऽनशनाविधिः ॥

मरणकालमें ग्लानको कुशकी शय्याऊपर स्थापन करना।"।जन्ममरणे भूमावेव इति व्यवहारः।"

अथ सर्वभावके भोक्ता कर्मके जोडनेवाले चेतनारूप जीवके गये हुए, अजीव पुद्गलरूप तिसके शरीरको सनाथता ख्यापनार्थे, तिसके पुत्रादिकोंकेवास्ते, तीर्थसंस्कारविधि कहते हैं. । सर्व ब्राह्मणको शिखा वर्जके शिर दाढी मूंछ मुंडन कराना चाहिये, कितनेक क्षत्रियवैश्यको भी कहते हैं.। तथा शबका संस्कार सर्व स्ववर्णज्ञातियोंने करना, अन्यवर्ण ज्ञातिवालोंने तिसका स्पर्श नही करना. । तदपीछे गंधतैलादिसें और भले गंधोदककरके शबको स्नान करावे, गंधकुंकुमादिसें विलेपन करे, मालाकरके अर्चे,

स्वस्वकुलोचित वस्त्राभरणेकरी विभूषित करे. शूद्र जातिका सर्वथा मुंडन नही. । तदपीछे नवीन काष्टकी पगविनाकी कुश संथरी भले वस्त्रसें ढांकी हुई शय्याके ऊपर शय्याके उपकरणसहित शवको स्थापन करे. । यहां गृहस्थके मृत्युनक्षत्रके नक्षत्रपूतलेका विधान, कुशसूत्रादिसें यतिकीतरें जानना. नवरं कुशपुत्रक गृहस्थवेषधारी करणे । वर्णानुसार तिसके ऊपर नानाविध वस्त्र सुवर्ण मणि विचित्र वस्त्रका करा प्रासाद स्थापन करे. । तदपीछे स्वज्ञातीय चारजणे परिजनके साथ स्कंधऊपर उठाए शबको, स्मशानमें ले जावे.। तहां उत्तरभागमें शबका शिर रखके चितामें स्थापन करके, पुत्रादि अग्निसें संस्कार करे. । अन्न नही खानेवाले बालकोंको भूमिसंस्कार इच्छते हैं. । तहां प्रेतप्रतिग्राहियोंको दान देवे । तदपीछे सर्व स्नान करके, अन्यमार्गे होकर अपने घरको आवे. तीसरे दिनमें चिताभस्मका, पुत्रादि नदीमें प्रवाह करे. । तिसके हाड, तीर्थोंमें स्थापन करे. । तिसके अगले दिनमें स्नान करके शोक दूर करे. । जिनचैत्योंमें जाके, परिजनसहित, जिनबिंबको विनास्पर्शे, चैत्यवंदन करे. । पीछे धर्मागारमें आके गुरुको नमस्कार करे. गुरु भी संसारकी अनित्यतारूप धर्मदेशना करे. । तदपीछे स्वस्वकार्यमें सर्व तत्पर होवे. । अंत्य आराधनासें लेके, शोक दूर करनेतक मुहूर्त्तादि न देखना, अवश्य कर्त्तव्य होनेसें. । यमलयोगमें, त्रिपुष्करयोगमें, आर्द्रा, मूल, अनुराधा, मिश्र, क्रूर और ध्रूव, इन नक्षत्रोंमें प्रेतक्रिया नही करनी. । * धनिष्ठासें लेके पांच नक्षत्रोंमें तृणकाष्ठादि संग्रह नही करना । शय्या, दक्षिणदिशकी यात्रा, मृतककार्य, गृहोद्यम, घर बनाना आदि नही करना. । रेवती, श्रवण, अश्लेषा, अश्विनी, पुष्प, हस्त, स्वाति, मृगशिर, इन नक्षत्रोंमें, और सोम, गुरु, शनि, इन वारोंमें प्रेतकर्म करना बुद्धिमान् कहते हैं. । स्वस्ववर्णके अनुसार जन्ममरणका सूतक एकसदृश होता है, और गर्भपातमें तीन दिनका सुतक होवे है.।

* मृगशिर । चित्रा । धनिष्ठा । मगल । गुरु । शनि । २ । १२ । ७ । इति यात्राणा योगे यमलयोग ॥ कृतिका । पूर्वाफाल्गुनी । विशाखा । उत्तरापाढा । पूर्वाभाद्रपदा । पुनर्वसु । मगल । गुरु । शनि । २।१२।७। इति त्रिपुष्करयोग ॥ कृतिका । विशाखा । भरणी । इति मिश्रनक्षत्राणि ॥ भरणी । मघा । पूर्वाफाल्गुनी । पूर्वापाढा । पूर्वाभाद्रपदा । इति क्रूरनक्षत्राणि ॥ रोहिणी । उत्तराफा० । उत्तरापा०। उत्तराभा० । इति ध्रुवनक्षत्राणि ॥

अन्य वंशवालेके मृत्यु हुए, वा जन्म हुए, विवाहित पुत्रिको सूतकवालेके अन्नके खानेसें, इन सर्वमें तीन दिनका सूतक होवे है. । अन्न नही खानेवाले बालकका सूतक तीन दिनका होवे है । आठ वर्षसें कम ऐसें बालकका भी त्रिभागोन सूतक होवे है. । स्वस्ववर्णानुसार सूतकके अंतमें जिनस्तव महोत्सवादि और साधर्मिकवात्सल्यादि करना, जिससें कल्याणप्राप्ति होवे. ॥

इत्याचार्यश्रीवर्द्धमानसूरिकृताचारदिनकरस्य गृहिधर्म्मप्रतिबद्धस्य षोडशमांत्यसंस्कारस्याचार्यश्रीमद्विजयानंदसूरिविचितोबालावबोधस्समाप्तस्तत्समाप्तौ च समाप्तमिदं षोडशसंस्कारविवरणम्म् ॥

इंदुबाणांकचंद्राद्बे (१९५१) श्रावणिकेसितच्छदे ॥
कृतोबालावबोधोयं विजयानंदसूरिणा ॥ १ ॥

इत्याचार्यश्रीमद्विजयानंदसूरिविरचिते तत्त्वनिर्णयप्रासादग्रंथे षोडशमांत्यसंस्कारवर्णनोनामैकत्रिंशः स्तंभः ॥ ३१ ॥

॥ विज्ञापनम्म् ॥

यह पूर्वोक्त सोळां संस्कारका विधि श्रीआचारदिनकरके अनुसार लिखा है, इसके लिखनेका यह प्रयोजन है कि, यह सांसारिक व्यवहारोंके संस्कारोंका विधि, श्रीऋषभदेवसें प्रचलित हूआ है, और जैसा श्रीऋषभदेवजीने प्रचलित करा था, तैसेंही श्री जैनाचार्योंने लिख दिखलाया है. । इनमें जो व्रतारोपसंस्कार है, सो तो गृहस्थका धर्मही जानना. शेष संस्कारोंमें धर्ममिश्रित जगत्व्यवहारकी रीति कथन करी है. । इस कालमें कोई यह नियम नही है कि, सर्व श्रावकोंने यह विधि अवश्य कर्त्तव्यही है; तथापि यदि यह विधि प्रचलित होवे तो अच्छी बात है. क्योंकि, श्रीजैनाचार्योंको यही विधि सम्मत है, और इसी वास्ते मुंबाइके श्रीजैनयुनियनक्लबके मेंबरोंकी, भरुचवाले शेठ अनुपचंद मलूकचंदकी, भावनगरकी श्रीजैनधर्मप्रसारकसभाके शाह कुंवरजी आनंदजीकी, बडोदेवाले शेठ गोकलभाइ दुल्लभदासकी, और कितनेक साधुओंकी सम्मतिसें हम-

ने यह विधि इस ग्रंथमें गुंथन किया है. जिससें कि, लोकोंको मालुम होवे कि, जैनमतमें भी षोडशसंस्कारोंका वर्णन है.। तथा इस जैनसंस्कारविधिको, मिथ्यात्व भी नही जानना. क्योंकि यह लौकिकव्यवहाररूप प्रायः है, धर्मरूपही नही है. और आगममें चरितानुवादसें किसी किसी संस्कारविधिका संक्षेपसें कथन भी है.। श्रीभगवतीसूत्र, ज्ञातासूत्र, आचारांगसूत्र, दशाश्रुतस्कंधसूत्रादि शास्त्रानुसारें चरितानुवाद जानना.

अब मैं श्रीसंघसें नम्रतापूर्वक विनती करता हूं कि, यह विधि लिखनेके समयमें एकही ग्रंथ विद्यमान था, और नकल करनेके समय दूसरा मिला था, तिससें प्रायः स्वमत्यनुसार शुद्ध करके लिखा है, तथापि, किसी स्थानपर द्रष्ट्यादिदोषसें अशुद्ध लिखा गया होवे, वा जिनाज्ञाविरुद्ध लिखा गया होवे, सो मुझे माफ करेंगे, और शुद्ध करके वांचेंगे.। इत्यलम्म् ॥

॥ अथद्वात्रिंशस्तम्भारम्भः ॥

अब इस स्तंभमें जैनमतकी प्राचीनताका थोडासा खुलासा करते हैं. ॥

पूर्वपक्षः—जैनमत जेकर प्राचीन होवे तो, तिसका लेख, वा नाम, वेदोंमें होना चाहिये; परं है नही, इसवास्ते जैनमत नवीन है, प्राचीन नही है. ॥

उत्तरपक्षः—प्रियकर! प्रथम तो वेदकाही कुछ ठिकाना नही है. क्योंकि, प्रथम ऋगवेदकी ८, कृष्णयजुर्वेदकी ८६, शुक्लयजुर्वेदकी १७, सामवेदकी १०००, और अथर्ववेदकी ९ शाखा. ये सर्व शाखायोंके वेदपाठमें परस्पर अन्यत्व है. जैसें जर्मनीके छपे शुक्लयजुर्वेदमें माध्यंदिनी, और काण्वशाखाके वेदपाठ पृथक् २ है. ऐसेंही सर्व शाखायोंमें जानना. इन शाखायोंमेंसें बहुत शाखा तो नष्ट होगइ हैं, तो फिर,

ऐसा ज्ञानी कौन है ? कि, जो कह देवे कि, किसी भी वेदकी शाखामें अर्हन्मतका नाम नही है !!

जब शंकराचार्य, जिसको हुए लगभग बारांसौ वर्ष व्यतीत हुए हैं, तिसके समयमें वेदादि पुस्तकोंमें बहुत गडबड करी गइ, पुराणे पुंस्तकोंमेंसें कितनेही हिस्से निकाले गए, और कितनेक हिस्से नवीन दाखल करे गए हैं, यह कथन इतिहास तिमिरनाशकमें है. और वेदोंके अर्थ करनेमें भी शंकर, माधव, सायणाचार्यादिकोंने अपने २ भाष्यमें बहुत अर्थ मनःकल्पित लिखे हैं. क्योंकि, प्राचीन वेदभाष्य इनको नही मिले हैं. इसवास्ते इनके करे अर्थ कितनेही अनन्वित है. और जो भाष्य इनोंने रचे हैं, तिनोंमें भाष्यके लक्षण भी नही है. केवल टीकाका नामही भाष्य रख दिया है. भाष्य तो वह होता है कि, जिसमें मूलसूत्रकारका जो अभिप्राय होवे, सो सर्व प्रकट करा होवे "। सूत्रं सूचनकृत भाष्यं सूत्रोक्तार्थप्रपंचकम् ।" इति वचनात् । जैसें आवश्यक सूत्रके प्रथमाध्ययनके ८६ अक्षर है, तिसकी निर्युक्तिका भाष्य ५०००, श्लोकप्रमाण प्राकृतगाथाबद्ध है, और तिसकी टीका २८०००, श्लोकप्रमाण संस्कृतमें है. ऐसेंही कल्पसूत्र (बृहत्) मूल ४७३, भाष्य १२०००, प्राकृतगाथाबद्ध, टीका ४२०००, श्लोकप्रमाण संस्कृतमें है. इत्यादि अनेक शास्त्रोंके इसीतरेंके भाष्य है. तथा जैसें पाणिनीयसूत्रोपरि पतंजलिकृत भाष्य हैं, येह तो भाष्य है. परंतु जो नवीन भाष्य रचे गये हैं, वे तो, अभिमानके उदयसें रचे मालुम होते हैं. जैसें दयानंदसरस्वतीजीने वेदोंपर नवीन भाष्य रचा है, यह भाष्य नही हैं, किंतु शास्त्रोंके सत्यार्थ बिगाडनेसें विटंबनारूप है. और दयानंदजीका भाष्य तो ऐसा है कि-

चार सुहाली सोले थाली, वांटणवाली अस्सी जणी;
सारे गाम ढंढोरा फेर्या, हंदि थोडी ने हलहल घणी. ।

और इस समयमें ऋग्वेदकी शाखा संख्यायनी १, शाकल २, वाष्कल ३, अश्वलायनी ४, मांडुक ५; कृष्णयजुर्वेद तैत्तिरीय तिसकी

शाखा आपस्तंब १, हिरण्यकेशी २, मैत्राणि ३, सत्याषाढ ४, बौद्धायनी ५; शुक्लयजुर्वेद याज्ञवल्क्यने रचा तिसकी शाखा काण्व १, माध्यंदिनी २, कात्यायनी ३, ये तीन हैं; सर्व यजुर्वेदकी शाखा ८; सामवेदकी शाखा कौथुमी १, राणायणी २, गोभील ३, ये तीन हैं. अथर्ववेदकी शाखा पिप्पलाद १, शौनकी २, ये दो हैं. इतनी शाखाके ब्राह्मण मालुम होते हैं. परंतु शाखासमान वेदपाठ, इतनेतरेंके मालुम नही होते हैं. माध्यंदिनी काण्ववत्. अब कौन जाने कि, किस शाखामें, किस वेदपाठमें क्या कथन था? और इस समयमें भी, तैत्तिरीय आरण्यककी भाष्यमें सायणाचार्य लिखते हैं कि, इसमें द्रविडदेशके ब्राह्मणोंके चौसठ (६४) अनुवाकका पाठ है; अंध्रोंके ८०, कितनेक कर्णाटकोंके ७४, और कितनेकके नवाशी, (८९) अनुवाकका पाठ है. परंतु हम अस्सी (८०) पाठवालेका व्याख्यान, पाठांतर सूचनासहित, प्रधानताकरके करेंगे.

तथाच तत्पाठः ॥

"॥ तत्र द्रविडानां चतुःषष्ट्यनुवाकपाठः । आंध्राणामशीत्यनुवाकपाठः । कर्णाटकेषु केषांचिच्चतुःसप्ततिपाठः । अपरेषां नवाशीतिपाठः । तत्र वयं पाठांतराणि यथासंभवं सूचयंतोशीतिपाठं प्राधान्येन व्याख्यास्यामः ॥ "

तथा कलकत्ताके छापेका पुस्तक तैत्तिरीय आरण्यकका जो हमारे पास है, तिसमें लिखा है कि, कितनेही पाठ भाष्यकारने त्यागे हैं, तिनका भाष्य नही करा है. और कितनेक पाठोंका भाष्य करा है, वे पाठ मूलपुस्तकमें नही है.

और तैत्तिरीय ब्राह्मण प्रथमाष्टक प्रथम प्रपाठक प्रथमानुवाकके प्रथम मंत्रके भाष्यमें भी सायणाचार्य लिखते हैं कि " ॥ वाजसनेयिनश्च विज्ञानमानंदं ब्रह्म—इति ॥ " परंतु यह श्रुति वाजसनेयसंहितामें मालुम नही होती है. इत्यादि अनेक प्रमाणोंसें सिद्ध होता है कि, वेदोंमें बहुत गडबड हुइ है; और बहुत हिस्से नष्ट हो गए हैं. और शेष रहे

हुएके भी अर्थोंमें, सायणाचार्य शंकराचार्यादिकोंने गडबड कर दीनी हैं.

अन्य एक यह भी प्रमाण है कि, जैनमतके आचार्य श्रीभद्रबाहुस्वामी, शब्दांभोनिधि महाभाष्यके कर्त्ता श्रीजिनभद्रगणि क्षमाश्रमण, इत्यादिकोंने तथा आवश्यकवृत्तिकार श्रीहरिभद्रसूरि, श्रीमलयगिरिजीने, जे जे श्रुतियां वेदोंकी लिखी हैं, तथा कल्पलता टीका, विधिकंदली, और उत्तराध्ययनसूत्रके पच्चीसमे अध्ययनमें, जे जे श्रुतियां आरण्यकादिकोंकी लिखी हैं; तिन पूर्वोक्त श्रुतियोंमेंसें कितनीक श्रुतियां, ऋग्वेद, यजुर्वेद, तैत्तिरीयारण्यक, बृहदारण्यक उपनिषदादिकोंमें मिलति हैं; और कितनीक श्रुतियां तिन पुस्तकोंमें नही मिलती हैं. इससें भी यही सिद्ध होता है कि, वे मंत्र श्रुतियां व्यवच्छेद होगइ होवेगी, वा ब्राह्मणोंने जानबूझके निकाल दीनी होवेगी, वे सर्व श्रुतियां आगे लिख दिखाते हैं. ॥

१ ॥ विज्ञानघनएवैतेभ्यो भूतेभ्यः समुत्थायतान्येवानुविनश्यति न प्रेत्य संज्ञास्ति ॥

२ ॥ सवै अयमात्मा ज्ञानमयः ॥

३ ॥ नहवै सशरीरस्य प्रियाप्रिययोरपहतिरस्त्यशरीरं वा वसंतं प्रियाप्रिये न स्पृशत इति ॥

४ ॥ अग्निहोत्रं जुहुयात्स्वर्ग्गकामः ॥

५ ॥ अस्तमिते आदित्ये याज्ञवल्क्यः चंद्रमस्यस्तमिते शांतेग्नौ शांतायां वाचि किं ज्योतिरेवायं पुरुषः आत्मा ज्योतिः सम्राडितीहोवाच ॥

६ ॥ पुरुष एवेदंग्निं सर्वं यद्भूतं यच्च भाव्यं उतामृतत्वस्येशानो यदन्नेनातिरोहति यदेजति यन्नेजति यद्दूरे यदु अंतिके यदंतरस्य सर्वस्य यदु सर्वस्यास्य बाह्यत इत्यादि ॥

७ ॥ ऊर्ध्वमूलमधः शाखमश्वत्थं प्राहुरव्ययम् । छंदांसि यस्य पर्णानि यस्तं वेद स वेदवित् ॥

८ ॥ तत्र स सर्वविद्यस्यैष महिमा भुवि दिव्ये ब्रह्मपुरे ह्येष व्योम्नात्मा सुप्रतिष्ठितस्तमक्षरं वेदयतेथ यस्तु स सर्वज्ञः सर्ववित् सर्वमेवाविवेश ॥

९ ॥ एकया पूर्णाहुत्या सर्वान् कामानवाप्नोति ॥

१० ॥ प्रथमो यज्ञो योग्निष्टोमः योनेनानिष्ट्वान्येन यजते स गर्त्तमभ्यपतत् ॥

११ ॥ द्वादश मासाः संवत्सरोग्निरुष्णोग्निर्हिमस्य भेषजमित्यादि ॥

१२ ॥ पुण्यः पुण्येन कर्मणा पापः पापेनेत्यादि ॥

१३ ॥ सत्येन लभ्यस्तपसा ह्येष ब्रह्मचर्येण नित्यं ज्योतिर्मयो हि शुद्धोयं पश्यंति धीरा यतयः संयतात्मान इत्यादि ॥

१४ ॥ स्वप्नोपमं वै सकलमित्येष ब्रह्मविधिरंजसा विज्ञेय इत्यादि ॥

१५ ॥ द्यावापृथिवी इत्यादि ॥

१६ ॥ पृथिवी देवता आपो देवता इत्यादि ॥

१७ ॥ पुरुषो वै पुरुषत्वमश्नुते पशवः पशुत्वमित्यादि ॥

१८ ॥ शृगालो वै एष जायते यः सपुरीषो दह्यते इत्यादि ॥

१९ ॥ अग्निष्टोमेन यमराज्यमभिजयत इत्यादि ॥

२० ॥ स एष विगुणो विभुर्न बध्यते संसरति वा न मुच्यते मोचयति वा न वा एष बाह्यमाभ्यंतरं वा वेद इत्यादि ॥

२१ स एष यज्ञायुधी यजमानोंजसा स्वर्गलोकं गच्छतीत्यादि ॥

२२ ॥ अपामसोमं अमृता अभूम अगमामज्योतिरविदाम-देवान् किं नूनमस्मात्तृणवदराति: किमुधूर्त्तिरमृतमर्त्यस्ये-त्यादि ॥

२३ ॥ को जानाति मायोपमान् देवानिंद्रयमवरुणकुबेरादी-नित्यादि ॥

२४ ॥ सोमसूर्यसुरगुरुस्वाराज्यानि जयतीत्यादि ॥

२५ ॥ इंद्र आगच्छ मेधातिथे मेषवृषणेत्यादि ॥

२६ ॥ नारको वै एष जायते यः शूद्रान्नमश्नाति इत्यादि ॥

२७ ॥ न ह वै प्रेत्य नरके नारकाः संति ॥

२८ ॥ जरामर्यं वा एतत्सर्वं यदग्निहोत्रम् ॥

२९ ॥ द्वे ब्रह्मणी वेदितव्ये परमपरं च तत्र परं सत्यं ज्ञान-मनंतं ब्रह्मेति ॥

३० ॥ सैषा गुहा दुरवगाहा ॥

३१ ॥ मषिरपि न प्रज्ञायत इति ॥

३२ ॥ ॐ लोकश्रीप्रतिष्ठान् चतुर्विंशतितीर्थंकरान् ऋषभादि-वर्द्धमानांतान् सिद्धांतान् शरणं प्रपद्यामहे । ॐ पवित्र-मग्निमुपस्पृशामहे येषां जातं सुप्रजातं येषां धीरं सुधीरं येषां नग्नं सुनग्नं ब्रह्मसुब्रह्मचारिणं उदितेन मनसा अनुदि-तेन मनसा देवस्य महर्षयो महर्षिभिर्जुहोति याजकस्य यजंतस्य च सा एषा रक्षा भवतु शांतिर्भवतु तुष्टिर्भवतु वृद्धिर्भवतु शक्तिर्भवतु स्वस्तिर्भवतु श्रद्धा भवतु निर्व्याजं भवतु ॥ [यज्ञेषु मूलमंत्र एष इति विधिकंदल्याम्]

३३ ॥ जिनप्रमाणांगुलादवीति ॥

३४ ॥ ऋषभं पवित्रं पुरुहूतमध्वरं यज्ञेषु यज्ञपरमं पवित्रं श्रुतधरं यज्ञं प्रति प्रधानं ऋतुयजनपशुमिंद्रमाहवेतिस्वाहा ॥

३५ ॥ त्रातारमिंद्रं ऋषभं वदंति अतिचारमिंद्रं तमरिष्ठनेमिं भवे भवे सुभवं सुपार्श्वमिंद्रं हवे तु शक्रं अजितं जिनेंद्रं तद्वर्द्धमानं पुरुहूतमिंद्रं स्वाहा ॥

३६ ॥ नमं सुवीरं दिग्वाससं ब्रह्मगर्भं सनातनम् ॥

३७ ॥ उपैति वीरं पुरुषमरुहंतमादित्यवर्णं तमसः पुरस्तात् ॥

३८ ॥ नैंद्रं तद्वर्द्धमानं स्वस्तिन इंद्रो वृद्धश्रवाः स्वस्तिनः पुरुषा विश्ववेदाः स्वस्ति नस्तार्क्ष्योरिष्ठनेमिः स्वस्तिनः ॥ [यजुर्वेदे वैश्वदेवऋचो]

३९ ॥ दधातु दीर्घायुस्त्वायबलायवर्चसे सुप्रजास्त्वाय रक्षरक्षरिष्टनेमिस्वाहा ॥ [बृहदारण्यके]

४० ॥ ऋषभएव भगवान् ब्रह्मा तेन भगवता ब्रह्मणा स्वयमेवाचीर्णानि ब्रह्माणि तपसा च प्राप्तः परं पदम् ॥

[आरण्यके]

और भी कइ एसी श्रुतियां जैनाचार्योंने लिखी है, जो कितनीक मिलती हैं, और कितनीक नही मिलती हैं.

अब जैनाचार्योंने जे जे पाठ पुराणादिके लिखे हैं, तिनमेसें थोडेकसें पाठ लिख दिखाते हैं. इनमेसें भी कितनेक पाठ सांप्रतकालके विद्यमान पुस्तकोंमें मालुम नही होते हैं. पुराणोंके पाठ लिखनेका प्रयोजन यह है कि, पुराण भी वेदव्यासजीके बनाये कहे जाते हैं।

१ ॥ नाभिस्तुजनयेत्पुत्रं मरुदेव्यां महाद्युतिं ॥
ऋषभं क्षत्रियज्येष्ठं सर्वक्षत्रस्य पूर्वजं ॥ १ ॥

ऋषभाद्भरतो जज्ञे वीरपुत्रशताग्रजः ॥
अभिषिच्य भरतं राज्ये महाप्रव्रज्यमाश्रितः ॥ २ ॥

२ ॥ इह हि इक्ष्वाकुकुलवंशोद्भवेन नाभिसुतेन मरुदेव्यानंदनेन महादेवेन ऋषभेण दशप्रकारो धर्मः स्वयमेवाचीर्णः केवलज्ञानलाभाच्च प्रवर्त्तितः ॥ [ब्रह्मांडपुराणे]

३ ॥ युगेयुगे महापुण्या दृश्यते द्वारिका पुरि ॥
अवतीर्णो हरिर्यत्र प्रभासे शशिभूषणं ॥ १ ॥
रेवताद्रौ जिनो नेमिर्युगादिर्विमलाचले ॥
ऋषीणामाश्रमादेव मुक्तिमार्गस्य कारणम् ॥ २ ॥
पद्मासनसमासीनः श्याममूर्तिर्दिगंबरः ॥
नेमिनाथ शिवेत्याख्या नाम चक्रेस्य वामनः ॥ ३ ॥

४ ॥ वामनावतारोहि—"वामनेन रैवते श्रीनेमिनाथाग्रे बलिबंधनसामर्थ्यार्थं तपस्तेपे ॥" इतितत्रकथास्ति ॥

५ ॥ ईशो गौरींप्रति—
कलिकाले महाघोरे सर्वकल्मषनाशनः ॥
दर्शनात् स्पर्शनादेव कोटियज्ञफलप्रदः ॥ १ ॥
उज्जयंतगिरौ रम्ये माघे कृष्णचतुर्दशी ॥
तस्यां जागरणं कृत्वा संजातो निर्मलो हरिः ॥ २ ॥ इत्यादि ॥

[प्रभासपुराणे]

६ ॥ कैलासे पर्वते रम्ये वृषभोयं जिनेश्वरः ॥
चकार स्वावतारं यः सर्वज्ञः सर्वगः शिवः ॥ १ ॥ [शिवपुराणे]

७ ॥ स्कंदपुराणे १८ सहस्रसंख्ये नगरपुराणे अतिप्रसिद्धनगरस्थापनादिवक्तव्यताधिकारे भवावताररहस्ये षट्सहस्रैः श्रीऋषभचरित्र समग्रमस्ति तत्र ॥

स्पृष्ट्वा शत्रुं जयं तीर्थं नत्वा रैवतकाचलम् ॥
स्नात्वा गजपदे कुंडे पुनर्जन्म न विद्यते ॥ १ ॥
पंचाशदादौ किल मूलभूमेर्दशोर्द्धभूमेरपि विस्तरोस्य ॥
उच्चत्वमष्टैव तु योजनानि मानं वदंतीह जिनेश्वराद्रेः॥ २॥
सर्वज्ञः सर्वदर्शी च सर्वदेवनमस्कृतः ॥
छत्रत्रयाभिसंयुक्तां पूज्या मूर्त्तिमसौ वहन् ॥ ३ ॥
आदित्यप्रमुखाः सर्वे बद्धांजलय इदृशं ॥
ध्यायंति भावतो नित्यं यदंघ्रियुगनीरजं ॥ ४ ॥
परमात्मानमात्मनं लसत्केवलनिर्मलम् ॥
निरंजनं निराकारं ऋषभं तु महाऋषिम् ॥ ५॥ [स्कंदपुराणे]

८॥ अष्टषष्ठिषु तीर्थेषु यात्रायां यत्फलं भवेत् ॥
आदिनाथस्य देवस्य स्मरणेनापि तद्भवेत ॥१॥ [नागपुराणे]

इत्यादि अनेक प्रमाणोंसें सिद्ध होता है कि, वेदादिशास्त्रोंमें बहुत गडबड हो गइ है. तथा इन पूर्वोक्त प्रमाणोंसें जैनमत वेदसें पहिलेका सिद्ध होता है, वेदमें जैनतीर्थंकरादिकोंके लेख होनेसें.

और ब्राह्मणोंके माननेमूजब, तथा इतिहास लिखनेवालोंकी मति-मूजब, श्रीकृष्णवासुदेवजीको हुए पांचसहस्र (५०००) वर्ष माने जाते हैं. तिनके समयमें व्यासजी, वैशंपायन, याज्ञवल्क्यादि, वेदसंहिताके बांधने-वाले, और शुक्लयजूर्वेद, शतपथ ब्राह्मणादि शास्त्रोंके कर्त्ता हुए हैं. तिन सर्व ऋषियोंमें मुख्य व्यासजी हैं, तिनोंने वेदांतमतके ब्रह्मसूत्र रचे हैं. तिसके दूसरे अध्यायके दूसरे पादके तेतीसमे सूत्रमें जैनमतकी स्याद्वाद-सप्तभंगीका खंडन लिखा है, सो सूत्र यह है- "नैकस्मिन्नसंभवात्" इस सूत्रका भाष्यमें शंकरस्वामीने, सप्तभंगीका खंडन लिखा है, सो, आगे लिखेंगे. जब व्यासजीके समयमें जैनमत विद्यमान था, तो फिर व्यास-

स्मृति, याज्ञवल्क्यस्मृति, शुक्लयजुर्वेद, शतपथब्राह्मणादिकोंमें जैनमतका नाम नही लिखा; ऐसेंही अन्यवेदोंके बनानेके समयमें भी वेदोंमें जैनमतका नाम विद्यमान था, तो भी नही लिखा. इससें जैनमत, क्या नवीन सिद्ध हो सक्ता है? कदापि नही.

तथा व्यासजीसें पहिलें तो चारों वेदोंकी संहितायोंही नही थी, किंतु ऋषियोंपास यजन याजन करनेकी हिंसक श्रुतियां थी; वे श्रुतियां, और ऋग्वेदके दश (१०) मंडल, जिन जिन ऋषियोंने श्रुतियां रचि हैं, और जिन २ ऋषियोंने तिन श्रुतियांके मंडल बांधे हैं, तिनके नाम ऋग्वेदभाष्यमें प्रकट लिखे हैं. तिन प्रार्थना अश्वमेधादि यज्ञवाली सर्व श्रुतियांकी, चार संहिता, व्यासजीने बांधी और तिनके नाम ऋग्, यजुः, साम, अथर्व, रक्खे. तिन हिंसक श्रुतियोंमें, वा पुस्तकोंमें अहिंसक जैनधर्मके लिखनेका क्या प्रयोजन था? कदापि लिखा होवेगा तो, निंदारूप लिखा होगा. जेसें यज्ञविध्वंसकारक, राक्षस, वेदबाह्य, दैत्य, इत्यादि ।

पूर्वोक्त व्यासजीके कथन करे सूत्रोंसें तो, जैनमत, चारों वेदोंकी संहिता बांधनेसें पहिलें विद्यमान था. क्योंकि, ग्रंथकार जिस मतका खंडन लिखता है, सो मत, तिसके समयमें प्रबल विद्यमान होता है, और ग्रंथकारके मतका विरोधि होता है, तब लिखता है. इससें भी यही सिद्ध होता है कि, जैनधर्म, सर्व मतोंसें पहिला सच्चा मत है.

पूर्वपक्षः—अनेक व्यासजी हो गए हैं, क्या जाने किस व्यासजीने, किस समयमें येह ब्रह्मसूत्र रचे हैं?

उत्तरपक्षः—आर्यावर्त्तके सर्व प्राचीन वैदिकमतवाले तो, जे कृष्णमहाराजके समयमें कृष्णद्वैपायन बादरायण नामसें प्रसिद्ध थे, तिन व्यासजीकोही ब्रह्मसूत्रोंके कर्त्ता मानते हैं, अन्यको नही. और शंकरदिग्विजयमें तो प्रकटपणें वेदव्यासजीकोही ब्रह्मसूत्रोंके कर्त्ता लिखे हैं.

पूर्वपक्षः—व्याससूत्रोंमें यह सप्तभंगीके खंडनेवाला सूत्र, किसीने पीछेसें दाखल करा है.

उत्तरपक्षः—यह कथन तुह्मारा मिथ्या है. क्योंकि, इस कथनके सच्चे करनेवाला तुह्मारे पास कोइ भी प्रमाण नही है.

पूर्वपक्षः—'नैकस्मिन्नसंभवात्' इस सूत्रके अर्थमें जो शंकरस्वामीने सप्तभंगीका खंडन लिखा है, सो अर्थ, इस सूत्रका नही, किंतु अन्य है.

उत्तरपक्षः—वाहजीवाह!! इस कथनसें तो तुमने शंकरस्वामीको अज्ञानी सिद्ध करे कि, जिनोंने अन्यार्थके स्थानमें अन्यार्थ समझा, और लिख दिया. इससें अधिक अन्य अज्ञान क्या होता है? और ऋग्वेदादि चारों वेदोंऊपरी भाष्यकर्त्ता, सायणमाधवाचार्य, अपने रचे शंकरदिग्विजयमें लिखते हैं कि, शंकरस्वामी, मतोंका खंडन करके, और व्याससूत्रोपरि शारीरक भाष्य रचके, बद्रीनाथ केदारनाथ हिमालयके शृंगोपरि गए. तहां व्यासजी आप आए, और शंकरस्वामीको सम्मति दीनी कि, जो तुमने मेरे रचे सूत्रोपरि भाष्य रचा है, सो मेरे अभिप्रायकेसमान है. तथा यह भी व्यासजीने कहा कि, मेरे इन सूत्रोंऊपर कइ जनोंने भाष्य पीछे रचे, और आगेको कइ जन रचेंगे, परंतु तुमारे भाष्यसदृश कोइ भी नही. क्योंकि, तुम सर्वज्ञ हो. इत्यादि—इस लेखसें भी, सप्तभंगीका खंडन, व्यासजीनेही करा सिद्ध होता है, इसवास्ते वेदसंहितासें पहिलेही, जैनमत विद्यमान था.

तथा महाभारतके आदिपर्वके तीसरे अध्यायमें यह पाठ है. ॥

"साधयामस्तावदित्युक्काप्रातिष्ठतोत्तंकस्ते कुंडले गृहीत्वा सोपश्यदथ पथि नग्नं क्षपणकमागच्छंतं मुहुर्मुहुर्दृश्यमानमदृश्यमानं च॥१२६॥"

भावार्थः—इसका यह है कि, उत्तंकनामा विद्यार्थी, उपाध्यायकी स्त्रीकेवास्ते कुंडल लेनेको गया; रस्तेमें पौष्यके साथ वार्त्तालाप हुआ, अन्ननिमित्त उत्तंकने पौष्यको अंधा होनेका शाप दिया, पौष्यने बदलेका शाप दिया कि, तूं अनपत्य (संतानरहित) होवेगा—अंतमें, हम शापाभावका निश्चय करते हैं. ऐसा कहके, कुंडलोंको लेके, उत्तंक चलता भया. तिस अवसरमें मार्गमें, उत्तंक, वारंवार दृश्यमान अदृश्यमान. ऐसे. नग्न क्षपणकको आता हुआ, देखता भया.

इस लेखसें भी यही सिद्ध होता है कि, जैनमत वेदसंहितासें भी पूर्व विद्यमान था. क्योंकि 'नग्नक्षपणक' इस शब्दका यह अर्थ है—क्षपणक नाम साधुका है, साथमें 'नग्न' इस विशेषणसें जैनमतका साधु सिद्ध होता है. जैनमतमें दो प्रकारके साधु होते हैं, स्थविरकल्पी, और जिनकल्पी. जिनकल्पी आठ प्रकारके होते हैं. जिनमें केइ जिनकल्पी, ऐसें होते हैं, जे, रजोहरण, मुखवस्त्रिकाके विना, अन्यकोइ वस्त्र नही रखते हैं, और प्रायः जंगलमेंही रहते हैं. तथा टीकाकार नीलकंठजीने भी, क्षपणकपदका अर्थ, पाषंड भिक्षु करा है.

पूर्वपक्षः—आपने जो नग्न क्षपणक पदका अर्थ, जिनकल्पी साधु, ऐसा करके जैनमतकी सिद्धि वेदव्यासजीसें, और वेदसंहितासें पहिलें करी, सो ठीक नही है. क्योंकि, वास्तविकमें वह साधु नही था, किंतु पातालभुवननिवासी नागदेवता था. और यही वर्णन, आगले पाठमें लिखा है.

उत्तरपक्षः—आपका कहना सत्य है, परंतु उस नागदेवताने जो नग्न क्षपणकका रूप धारण किया, सो तिस रूपधारी साधुयोंके विद्यमान हुए विना, कैसें धारण किया? और नग्न क्षपणक यह शब्द भी कैसें प्रवृत्त हुआ? तो सिद्ध हुआ कि, जैनमत वेदव्यासजीके समयमें तो विद्यमान थाही, परंतु वेदव्यासजीके, और वेदसंहितासें पहिलें भी, विद्यमान था, उत्तंकके देखनेसें.

तथा महाभारतके शांतिपर्वके २१८ अध्यायमें बौद्धमतका खंडन लिखा है, और जैनमत, बौद्धमतसें प्राचीन है, यह आगे सिद्ध करेंगे. तो इससें भी जैनमत वेदसंहिता, और वेदव्यासजीसें पहिलेंका सिद्ध होता है.

तथा मत्स्यपुराणके २४ अध्यायमें ऐसा पाठ है.

गत्वाथ मोहयामास रजिपुत्रान् बृहस्पतिः ।
जिनधर्मं समास्थाय वेदबाह्यं स वेदवित् ॥

भाषाटीकाः—और उन राजिके पुत्रोंको भी बृहस्पतिजीने उनके पास जाकर मोहा, और आज्ञा दी कि, तुम सब जैनधर्मके आश्रय हो जाओ. ऐसा कह कर बृहस्पतिजी भी, वेदसें बाह्य मतको चलाते भये, और वेदसेंरहित वेदत्रयी भी बनाते भये.

अब विचारना चाहिये कि, वेदव्यासजीसें प्रथम जैनमतके होनेमें कुछ भी शंका है? तथा इस पाठसें तो, जैनमत, वेदसंहितासें तो क्या, परंतु वेद श्रुतियोंसें भी, पूर्वका सिद्ध हो गया. क्योंकि, बृहस्पतिजीने राजिके पुत्रोंको कहा कि, तुम जैनधर्मके आश्रय हो जाओ. और वेदकी श्रुतियोंमें बृहस्पतिजीकी स्तुति है, तो सिद्ध हुआ कि, वेदकी श्रुतियोंसें बृहस्पतिजी प्रथम हुए. और, जैनधर्म बृहस्पतिजीसें भी, प्रथम हुआ.

पूर्वपक्षः—युक्ति प्रमाणोंसें, और स्वमतपरमतके पुस्तकोंसें तो, तुमने जैनमतको प्राचीन सिद्ध करा. परंतु वर्त्तमानमें जो वेदसंहिता, ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषदादि विद्यमान है, तिनमें भी, कोइ ऐसा लेख है, जिससें हम जैनमतको प्राचीन माने?

उत्तरपक्षः—प्रियवर! लेख तो इनमें भी जैनमतबाबतके बहुत मालुम होते हैं, परंतु भाष्यकारोंने कुछ अन्यके अन्यही अर्थ लिख दीए हैं. जैसें दयानंदसरस्वतिस्वामीने वेदोंके स्वकपोलकल्पित अर्थ, अपने वेदभाष्यमें लिखे हैं. तिनमेसें कितनेक पाठ संहिता आरण्यकके लिख दिखाते हैं.

यजुर्वेदसंहिता अध्याय ९ श्रुति ॥ २५ ॥

"॥ वाजस्य नु प्रसव आबभूवेमा च विश्वा भुवनानि सर्वतः स नेमिराजा परियाति विद्वान् प्रजां पुष्टिं वर्द्धमानो अस्मे स्वाहा ॥"

नुइत्यादिमहीधरकृतभाष्यकी भाषाः—'नु' ऐसा विस्मयार्थक अव्यय है, 'वाजस्य' अन्नका 'प्रसवः' उत्पादक प्रजापति ईश्वर 'इमा' इमानि 'विश्वा' विश्वानि भुवनानि—सर्वभूतप्राणी सर्वतः सर्वओरसें रहे

हुए, हिरण्यगर्भसें लेके स्तंब (सरकडे) पर्यंत सर्वको जो उत्पन्न करता हुआ है, 'सनेमि' चिरंतन राजा दीपता हुआ, सर्व स्थानोंमें अपनी इच्छासें जाता है. कैसा नेमि राजा? 'विद्वान्' अपने अधिकारको जानता हुआ, तथा हमारेविषे पुत्रादिसंततिको, और धनपोषको वृद्धि करता हुआ, सनेमि सुहुतमस्तु, तिसको आहूति होवे. ॥

अब इसही श्रुतिके भाष्यमें दयानंदसरस्वतिस्वामी ऐसा अर्थ लिखते हैं. ॥

(वाजस्य) वेदादिशास्त्रोंसें उत्पन्न हुए बोधको (नु) शीघ्र (प्रसवः) जो उत्पन्न करता है सो (आ) सर्वओरसें (बभूव) होवे (इमा) यह (च) (विश्वा) सर्व (भुवनानि) मांडलिकराजायोंके निवास करनेके स्थानक (सर्वतः) (सनेमि) सनातननेमिना धर्मेण धर्मकरके सहित वर्त्तमान जो होवे राज्यमंडल (राजा) वेदोक्त राजगुणोंकरके प्रकाशमान (परि) (याति) प्राप्त होता है (विद्वान्) सकल विद्याका जानकार (प्रजाम्) पालने योग्य (पुष्टिम्) पोषणको (वर्धयमानः) (अस्मे) हमारा (स्वाहा) सत्यनीतिकरके ॥

अब पक्षपातरहित होकर पाठक जनोंको विचार करना चाहिये कि, महीधरजीने इसही अध्यायकी सोलमी श्रुतिमें 'सनेमि' शब्दका अर्थ क्षिप्र करा है, और पच्चीसमी श्रुतिमें 'सनेमि' शब्दका अर्थ निघंटुके प्रमाणसें पुराणनाम तिसका अर्थ चिरंतन राजा करा है. दयानंदसरस्वतिजीने इस 'नेमि' शब्दका अर्थ सनातन धर्म करा है. अब इनमेंसें कौनसा अर्थ सत्य है? और कौनसा मिथ्या है? यह निश्चय, कदापि न होवेगा. क्योंकि, नेमिशब्दकी व्युत्पत्तिसें पूर्वोक्त तीनों अर्थोंमेंसें एक भी, नही निकलता है. इसवास्ते वेदोंकी श्रुतियोंके अर्थ, ठीकठीक प्रायः नही मालुम होते हैं. सो, प्रायः लिखही आये हैं. विशेषतः इस श्रुतिका अर्थ, जैसा पूर्वे लिखा है, वैसा घटमान भी नही लगता है, यथार्थ अभिप्रायके न ज्ञात होनेसें.

पूर्वपक्षः—आपके अभिप्रायमुजब इस श्रुतिका कैसा अर्थ होना चाहिये?

उत्तरपक्षः—हमारे अभिप्रायमुजब तो, इस श्रुतिका अर्थ, श्रीनेमि (२२) बावीसमे तीर्थंकरकी स्तुतिकरके तिनको आहुति दीनी है. यथा—(नु) विस्मयार्थमें है (वाजस्य) भावयज्ञस्य—भावयज्ञका * (प्रसवः) उत्पत्तिकारक, जिनकी प्ररूपणासें भावयज्ञ उत्पन्न हुआ है. क्योंकि, जो भावयज्ञ है, सोही पारमार्थिक यज्ञ है. भावयज्ञका स्वरूप ऐसा है.।

"॥ अग्निहोत्रमग्निकारिका सा चेह। कर्मेधनं समाश्रित्य दृढासद्भा-
वनाहुतिः। कर्मध्यानाग्निना कार्या दीक्षितेनाग्निकारिका ॥१॥"

भावार्थः—कर्मरूप इंधनको आश्रित्य अर्थात् कर्मरूप इंधनकरके दृढ-निश्चलसत् अच्छीभावनारूप आहुति, धर्मध्यानरूप अग्निकरके करणी. ऐसी अग्निकारिका, दीक्षित ब्राह्मणने करणी.। इत्यादि भावयज्ञका कथन, आरण्यकमें है.

तथा ॥

इंद्रियाणी पशून् कृत्वा वेदीं कृत्वा तपोमयीम् ॥
अहिंसामाहुतिं कृत्वा आत्मयज्ञं यजाम्यहम् ॥ १ ॥
ध्यानाग्निकुंडजीवस्थे दममारुतदीपिते ॥
असत्कर्मसमित्क्षेपे अग्निहोत्रं कुरुत्तमम् ॥ २ ॥
यूपं कृत्वा पशून् हत्वा कृत्वा रुधिरकर्दमम् ॥
यद्येवं गम्यते स्वर्गे नरके केन गम्यते ॥ ३ ॥

भावार्थः—इंद्रियोंको पशूकरके, तपोमयी वेदीकरके, अहिंसाको आहुतिकरके, आत्मयज्ञको, मैं करता हूं. वास्तविक यज्ञ तो यही है; बाकी, अनाथ पशुकों मारके यज्ञ करना, यह मोक्षार्थी पुरुषोंका काम नही है. महाभारतके शांतिपर्वके २६६ अध्यायमें भी, हिंसक

* श्रीमत्हेमचन्द्रसूरिने नानार्थद्वितीयकांडमे वाजनाम यज्ञका लिखा है। तथा पंडित भानुदत्तविशारदने शब्दार्थभानुके २८४ पृष्ठोपरि वाजशब्दका अर्थ यज्ञ लिखा है । तथा तारानाथतर्कवाचस्पतिभट्टाचार्यविरचितशब्दस्तोममहानिधिमें भी १०११ पत्रोपरि लिखा है ॥

कार्यं विष्णुः क्रिया ब्रह्मा कारणं तु महेश्वरः ॥
कार्यकारणसंपन्ना एकमूर्त्तिः कथं भवेत् ॥ २२ ॥

भाषा–विष्णु तो कार्यरूप है, ब्रह्मा क्रियारूप है, और महेश्वर कारणरूप है; तब कार्य कारण प्राप्त हुआंकी एकमूर्त्ति कैसें होवे? क्योंकि, कारण, कार्य, क्रिया ये तीनो एकरूप नही हो सक्के हैं ॥ २२ ॥

प्रजापतिसुतो ब्रह्मा माता पद्मावती स्मृता ॥
अभिजिज्जन्मनक्षत्रमेकमूर्त्तिः कथं भवेत् ॥ २३ ॥

भाषा–ब्रह्माके पिताका नाम प्रजापति, प्रजापति ऋषिका पुत्र ब्रह्मा हुआ; ब्रह्माकी माताका नाम पद्मावती, ब्रह्माका जन्म अभिजित् नक्षत्रमें हुआ था. अभिजित् नक्षत्रका अधिष्ठाता देवताका नाम ब्रह्मा है, इसवास्ते पुत्रका नाम ब्रह्मा रक्खा ॥ २३ ॥

वसुदेवसुतो विष्णुर्माता च देवकी स्मृता ॥
रोहिणी जन्मनक्षत्रमेकमूर्तिः कथं भवेत् ॥ २४ ॥
पेढालस्य सुतो रुद्रो माता च सत्यकी स्मृता ॥
मूलं च जन्मनक्षत्रमेकमूर्त्तिः कथं भवेत् ॥ २५ ॥

भाषा–वसुदेवका पुत्र विष्णु हुआ, और माता देवकी कही, और रोहिणी नक्षत्रमें जन्म हुआ, पेढालका पुत्र रुद्र हुआ, और माताका नाम सत्यकी, दूसरा नाम सुज्येष्ठा, और मूलनक्षत्रमें जन्म हुआ, इस पृथक् २ हेतुसें इन तीनोंकी एकमूर्त्ति कैसें होवे ॥ २४ ॥ २५ ॥

रक्तवर्णो भवेद्ब्रह्मा श्वेतवर्णो महेश्वरः ॥
कृष्णवर्णो भवेद्विष्णुरेकमूर्तिः कथं भवेत् ॥ २६ ॥
अक्षसूत्री भवेद्ब्रह्मा द्वितीयः शूलधारकः ॥
तृतीयः शंखचक्रांक एकमूर्तिः कथं भवेत् ॥ २७ ॥
चतुर्मुखो भवेद्ब्रह्मा त्रिनेत्रोऽयं महेश्वरः ॥
चतुर्भुजो भवेद्विष्णुरेकमूर्तिः कथं भवेत् ॥ २८ ॥

शरीर करीषांग है, तिसकरकेही तपरूप अग्निको दीपन करिये हैं, तद्भावभावित होनेसें तिसको. ज्ञानावरणीयादि आठ कर्म, इंधन है, तिस कर्मकोही तप करके भस्मीभाव करनेसें. जे संयम योग हैं, संयमके व्यापार हैं, वेही शांतिपाठ अध्ययनपद्धतिरूप हैं, सर्व प्राणियोंके विघ्नोंको दूर करनेवाले होनेसें. जीवहिंसारहित होनेसें, जो होम, सर्वऋषियोंको प्रशस्त है, तिस होमकरके तपरूप अग्निको, मैं तर्प्पण करता हूं. । यह भावयज्ञ अरिहंतके उपदेशसेंही प्रकट हुआ है, अन्यसें नही. यह आश्चर्य है. । (इमा) इमानि (विश्वा) विश्वानि सर्वाणि (भुवनानि) भूतानि और जो इन सर्वभूतजीवोंको (सर्वतः) सर्वओरसें (आबभूव) यथार्थस्वरूप कथन करनेसें प्रकट करता हुआ (सनेमि) सो नेमि बावीसमा जिनतीर्थंकर * (राजा) अपने घातिकर्मचारके नष्ट करनेसें, और केवलज्ञानादि शुद्ध स्वरूपसें दीपता हुआ (परियाति) सर्वओरसें अप्रतिबद्ध विहारी होके जाता है—देशोमें विचरता है. कैसा है नेमि (विद्वान्) सर्वज्ञ है, मेरे कथन करे धर्मका यह रहस्य है, और इस हेतुसें मैंनें जगतको उपदेश करना है, ऐसे अपने अधिकारको जानता है. तथा (प्रजां—पोषं—वर्धयमानः) प्रकर्षेण जायंते कर्मवशवर्त्तिनः प्राणिनोस्मिन् जगति इति प्रजा जीवसंघात इत्यर्थः तिसकी दयाके उपदेशसें, और धर्मकी पुष्टिकी वृद्धि करनेवाला (अस्मे) अस्मै नेमये—इस नेमिको हुत होवे अर्थात् आहुति होवे। इति ॥

तथा तैत्तिरीय आरण्यकके प्रथम प्रपाठकके प्रथमानुवाककी आदिमें शांतिकेवास्ते मंगलाचरण करा है, तिससें ऐसा पाठ है । '। स्वस्तिनस्तार्क्ष्योअरिष्टनेमिः। ' इसका भाष्यकारने ऐसा अर्थ करा है. । अरिष्टम् अहिंसा तिसको नेमीस्थानीयः नेमिसमान, जैसें लोहमयी नेमि काष्ठमय चक्रके भंगाभावकेवास्ते होती है, अर्थात् चक्रकी रक्षा करती है; ऐसेंही यह तार्क्ष्यः—गरुड भी सर्पादिकोंकी करी हुई हिंसाको निवारण करके, तिस-

* नमिर्नेमिः पार्श्वो वीरः इतिश्रीमद्धेमचन्द्रविरचितायामभिधानचिंतामणिनाममालायाम् ॥ तथा शब्दार्थभानुके १९९ पत्रोपरि । नेमिः (पुं.) जिनविशेष, एक जिनका नाम ॥

यज्ञको धूर्त्तनिर्मित कहा है.। ध्यानरूप अग्नि है जिसमें, ऐसें जीवरूपकुंडमें, दमरूप पवनकरके दीपित अग्निमें, असत्कर्मरूप काष्ठके क्षेपन करे हुए, उत्तम अग्निहोत्र कर.। यूप करके, पशुयोंको मारके, रुधिरका कर्दम (चिक्कड) करके, यदि स्वर्गमें जाइए-गमन करिये, तो नरकमें किस कर्मकरके गमन करिये!!!॥ तथा जैनसिद्धांतमें भावयज्ञका स्वरूप, ऐसा कहा है.। यज्ञ करनेवाले ब्राह्मणोंको, हरिकेशबलमुनि यज्ञका स्वरूप कहते हैं.। हिंसा १, मृषावाद २, अदत्तादान ३, मैथुन ४, परिग्रह ५, ये पांचो आश्रवद्वारोंको, पांच संवर, प्राणातिपातविरत्यादिव्रतोंकरके, इस नरभवमें आच्छादन करे–रोके; असंयमजीवितव्यकी इच्छा न करे, देहका ममत्व त्यागे, शुचि महाव्रतोंमें मलीनता न होवे, यह भावयज्ञ है. इसको यतिजन करते हैं.।

ब्राह्मण पूछते हैं कि, हे मुने! इस भावयज्ञके करनेके उपकरण कौनसें हैं? यज्ञ करनेका विधि क्या है? भावयज्ञ जो तेरे मतमें है, तिसमें अग्नि कैसा है? अग्निके रहनेका स्थान कौनसा है? शुचः घृतादिप्रक्षेप करनेवाली कडच्छी–चाटुआ कौनसा है? करीषांग कौनसा है? अग्निका उद्दीपक जिसकरके अग्निको संधु खाते हैं, सो क्या है? इंधन कौनसें हैं? जिनोंकरके अग्नि प्रज्वालिये हैं.। दुरितके उपशमन करनेका हेतु, ऐसा शांतिपाठ अध्ययनपद्धतिरूप कौनसा है? और हे मुने! तूं किस विधिसें आहुतियोंकरके अग्निको तर्पण करता है?

मुनि उत्तर देते हैं॥

"॥ तवो जोई जीवो जोईठाणं जोगा सुया सरीरं कारिसंगं।
कम्मं संजमजोगसंति होमं हुणामि इसिणं पसत्थं॥"

भावार्थः–बाह्य अभ्यंतरभेदभिन्न बारां प्रकारका जो तप है, सो अग्नि है, भावेंधन कर्म दाहक होनेसें. जीव है, सो अग्निके रहनेका स्थान है; तपरूप अग्निका आश्रय जीव होनेसें. मन, वचन, कायारूप तीनों योग जे हैं, वे शुच हैं; तिन्होंकरकेही, घृतस्थानीय शुभव्यापार होते हैं.

उपद्रवादि नाश हो जाते हैं; इसवास्ते तार्क्ष्य अरिष्टनेमि भगवान् हमको कल्याण—शांति करो. । इति ।

दूसरा अर्थ रिष्टनाम पाप उपद्रवका है, तिसके काटनेवास्ते नेमि चक्रकी धारासामान, सो कहिये रिष्टनेमि; अकार, रिष्टशब्द अमंगलवाचक होनेसें लगाया है. । यथा अपच्छिमा मारणंतिसंलेहणा । तथा तित्थयराणं अपच्छिमो इत्यादिवत् । शेषार्थ पूर्ववत् जानना ॥ येह दोनों अर्थ सम्यक् प्रकारसें घट सकते हैं. इसतरेंकी अनेक श्रुतियां सामवेदादि संहिताओंमें हैं, तहां भी, इसी रीतिसें अर्थोंकी घटना करलेनी ।

पूर्वपक्षः—अन्य सर्व तिर्थंकरोंको छोडके, 'श्रीनेमि' और 'अरिष्टनेमि' इन दोनों नामोंसें बावीसमे अर्हन् अरिष्टनेमिकी स्तुति वेदमें करनेका क्या प्रयोजन है ?

उत्तरपक्षः—जिस समयमें वेदोंकी संहिता बांधी गइ थी, शुक्ल यजुर्वेद और यजुर्वेदके ब्राह्मण, आरण्यक, रचे गये थे, तिस समयमें श्री अरिष्टनेमि २२ मे अरिहंत विद्यमान थे. और श्रीकृष्ण वासुदेवके ताए समुद्रविजयके पुत्र थे. तिनोंने संसार त्यागके दीक्षा लेके, केवलज्ञान उत्पन्न करके, धर्मतीर्थ प्रवर्त्तन करा. और श्रीकृष्ण वासुदेवजीने जिनकी भक्ति और मुनियोंको वंदना करनेसें तीर्थंकर गोत्र उपार्जन करा, जिसके प्रभावसें आगामि उत्सर्प्पिणीकालमें अमम नामा अरिहंत होके निर्वाणपदको प्राप्त होवेंगे. ऐसे अरिष्टनेमि भगवान्‌की तिन वेदोंमें स्तुति करनी असंभव नही है.

तथा तैत्तिरीय आरण्यक प्र० ४, अ० ५, मंत्र १७ मेमें प्रकटकरके अरिहंतकी स्तुति करी है.

यथा ॥

अर्हन् बिभर्षि सायकानिधन्व अर्हन्निष्कं यजतं विश्वरूपं ।
अर्हन्निदं दयसे विश्वमब्भुवं न वा ओजीयो रुद्र त्वदस्ति ॥

का पालक होनेसें, अरिष्टनेमि है. ऐसा गरुड हमको कल्याण निरुपद्रव करो.। यह भाष्यकी व्याख्या, असमंजस मालुम होती है. क्योंकि, प्रथम तो, गरुड पक्षी, तिर्यंचजाति है; सो कल्याण, शांति, निरुपद्रव, कैसें कर सकता है?

पूर्वपक्षः—गरुड विष्णुका वाहन है, इसवास्ते बडा सामर्थ्यवाला है; सो कल्याण शांति कर सकता है.

उत्तरपक्षः—तब तो वाहनकी स्तुतिसें विष्णुकीही स्तुति करनी उचित थी. क्योंकि, वो तो, कदापि सर्व सामर्थ्यवाला होनेसें कल्याण शांति कर सकता है, परंतु पक्षी नही. तथा अरिष्टनेमिरूप विशेषण रखके जो अर्थ चक्रकी नेमिका करा है, सो भी, अघटितही मालुम होता है. क्योंकि, विष्णुआदि अनेक पुरुष रक्षक माने हैं, तिन सर्वको छोडके उपमामें लोहमय नेमिको जा पकडा! जैसें कोइ कहे कि, सुवर्ण कैसा पीत है, जैसा सरसव शणका पुष्प तैसा है. यह तो उपमा ठीक है. परंतु जो कोइ कहे कि, सुवर्ण ऐसा पीत है, जैसा निःकेवल स्तनपान करनेवाले बालकका पुरीष पीत होता है, यह उपमा अघटित है. ऐसाही चक्रकी नेमिका विशेषण है; इसवास्ते यह सत्यार्थ नही मालुम होता है.

पूर्वपक्षः—आप इसका अर्थ कैसें कर सकते हैं?

उत्तरपक्षः—अरिष्टनेमिः यह विशेष्य है, और तार्क्ष्यः यह विशेषण है; कहीं कहीं विशेष्य, विशेषण, आगे पीछे भी होते हैं.। तब तो, तार्क्ष्यःसमान अरिष्टनेमि, हमको कल्याण—शांति करो। तहां अरिष्टनेमिपदका यह अर्थ है.। '।धर्मचक्रस्य नेमिवन्नेमिः।' धर्मरूप चक्रकी नेमिसमान, जैसें नेमि चक्रकी रक्षा करे हैं—बिगडने नही देवे हैं, तैसेंही भगवान् बावीसमे—धर्म अरिष्ट अहिंसा निरुपद्रवरूप तिसके पालनेवास्ते नेमिसमान, सो कहिये अरिष्टनेमिः; सो अरिष्टनेमि, तार्क्ष्यो—गरुडसमान है.। जहां जहां गरुड संचार करता है, तहां तहां सर्पादिकोंके विषादि उपद्रवोंका नाश होता है; तैसेंही अरिष्टनेमि बावीसमा अरिहंत विचरता है, तहां इति

शंकासमाधान लिख आए हैं. तथा तैत्तिरीय आरण्यकके १० मे प्रपाठकके अनुवाक ६३ में सायनाचार्य लिखते हैं.।

यथा ॥

"॥ कंथाकौपीनोत्तरासंगादीनां त्यागिनो यथाजातरूपधरा निर्ग्रंथा निष्परिग्रहाः ॥" इति संवर्त्तश्रुतिः ॥

भावार्थः–शीतनिवारणकंथा, कोपीन, उत्तरासंगादिकोंके त्यागि, और यथा जातरूपके धारण करनेवाले, जे हैं, वे, निर्ग्रंथ, और निष्परिग्रह, अर्थात् ममत्वकरके रहित होते हैं. यह लक्षण उत्कृष्ट जिनकल्पिका है. क्योंकि निर्ग्रंथ जो शब्द है, सो जैनमतके शास्त्रोंमेंहि साधुपदका बोधक है, अन्यत्र नहीं. और अंग्रेज लोकोंने भी, यह सिद्ध करा है कि, 'निर्ग्रंथ' शब्द जैनमतके साधुयोंकाही वाचक है. बौद्धलोकोंके शास्त्रमें भी 'निग्गंथनातपुत्त' अर्थात् निर्ग्रंथज्ञातपुत्र इस नामसें जैनमतके २४ मे वर्द्धमान महावीरस्वामिको कथन करे हैं. और जैनमतके शास्त्रमें तो, ठिकाने २ 'नो कप्पइ निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा–कप्पइ निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा–निग्गंथाण महेसीणं'–इत्यादि पाठ आवे हैं. तथा प्रायः-करके पूर्वकालमें जैनमतके साधुयोंको निर्ग्रंथही कहते थे, और सुधर्मास्वामी, जो श्रीमहावीरस्वामीके पांचमे गणधर हुए, उनोंकी शिष्यपरंपरामें जे साधु हुए, वे कितनेक कालपर्यंत निर्ग्रंथगच्छके साधु कहाते थे; पीछे कारण प्राप्त होकर तिस निर्ग्रंथगच्छका और नाम प्रसिद्ध हुआ, यावत् अद्यतन कालमें तपगच्छादि गच्छोंके नामसें कहे जाते हैं. तथा सिद्धांतसारमें मणिलाल नभुभाइ द्विवेदी भी लिखते हैं कि, ब्राह्मणोंके प्राचीन ग्रंथोंमें 'जैन' ऐसा नाम नही आता है; परंतु, विवसन, निर्ग्रंथ, दिगंवर, ऐसा नाम वारंवार आता है. इससें भी निर्ग्रंथशब्द, जैनमतानुयायी सिद्ध होता है. तव तो सिद्ध हुआ कि, जैनमत, श्रुतिस्मृतिसें भी प्राचीन है. तथा पूर्वोक्त हमारा लेख, "क्या जाने, कौनसी शाखामें क्या लिखा है?" इत्यादि सत्य हुआ. तवतो, कोइ भी कहनेको सामर्थ्य नही है कि, जैनमत नूतन है, वा जैनमतका वेदादिकोंमें नाम भी नही है.

व्याख्याः—हे अर्हन्! हे रुद्र! रोदयत्यसुरावतारभूतान् नृपान् वैदिकयज्ञादिकर्म्मानुष्ठानध्वंसनेनेति रुद्रः । सो हे रुद्र! तुम (अर्हन्) योग्यतासें विमोहनात्मक शास्त्ररूपी (सायकान्) बाणोंको (बिभर्षि) धारण करते हो तथा (धन्व) अर्थात् पुरुषार्थरूप धनुषको भी धारण करते हो और (हे अर्हन्) अपनी योग्यताहीसें (यजतं) अर्थात् पूजाके साधन (विश्वरूपम्) नानाप्रकारके मंत्रयंत्रादि धारण करते हो तथा (निष्कम्) नानाप्रकारके स्वर्णमय भूषणोंको (बिभर्षि) धारण करते हो और तैसेंही (विश्वम् अब्भुवम्) संपूर्ण जल और पृथिवीमें जो जीतने जीव हैं तिनको (दयसे—मा हिंस्यात् सर्वा भूतानि) इत्यादि वेदवाक्यानुकूल दयाकरके पालन करते हो इसीकारणसें (हे रुद्र) (त्वत्) तुह्मारे समान (ओजीयो) बलवान् (नवै अस्ति) कोई नहीं है, इससें आप हमारी भी रक्षा कीजिये—यहां जो कोई यह शंका करे कि मंत्रमें तो (अर्हन् बिभर्षि सायकानिधन्व) इससें मोहनादि शास्त्रोंका धारण नही पाया जाता (सायक) पदसें तो बाणोंकाही धारण पाया जाता है सो कहना ठीक नही. क्योंकि, बुद्ध अर्हन्मतानुयायी आजकल भी बडे यत्नसें जीवरक्षा करते हैं, तो फिर, उनमें धनुषबाणका धारण करना कैसें घट सकता है? कदापि नहीं. इससें यह जानना चाहिये कि, फिर जो इनको सायक और धनुषका धारण लिखा है, सो केवल प्रशंसार्थक है, वास्तवमें नही. सो इसी आरण्यकके प्र० ५, अनु० ४ में लिखा है।

यथा ॥

"॥ अर्हन् बिभर्षिसायकानिधन्वेत्याह स्तौत्येवैनमेतत् ॥"

यह अर्हन् भगवान्में जो (बिभर्षिसायकानिधन्व) यह लिखा है, सो (स्तौत्येवैनमेतत्) यह केवल स्तुतिमात्रही है, वास्तवमें नहीं. इससें विमोहनात्मक शास्त्रास्त्रोंका धारण अर्थ करनाही उचित है, अन्य नहीं. । इति ॥ इस मंत्रमें रुद्र, शिव, महावीर (हनुमान्), आदि किसीका भी अर्थ नही घट सकता है. क्योंकि, वे तो, सर्व शस्त्रधारीही है, और इस मंत्रमें तो, जो शस्त्रधारी नही है, तिसको शस्त्रधारी कहा है; जिसका

वचनोंसें यशको प्राप्त करे हैं, वे सर्व वचन, तुमारे स्याद्वादसिद्धांतरूप समुद्रके मंद थोडेसें बिंदुनिस्संद बिंदुओंसें झरे हुए पाणीसदृश हैं; अर्थात् वे सर्व वचन स्याद्वादरूप महोदधिके बिंदु उडके गए हैं. ॥ इसवास्ते पूर्वोक्त वेदादिवचन जैनोंको सर्व प्रमाण हैं; परंतु जे हिंसक, और अप्रमाणिक वचन हैं, वे सर्व, जैनोंको सम्मत नहीं हैं, असर्वज्ञ मूलक होनेसें. ।

यथा मनुस्मृतौ पंचमाध्याये ॥

यज्ञार्थं पशवः सृष्टाः स्वयमेव स्वयंभुवा ॥
यज्ञस्य भूत्यै सर्वस्य तस्माद्यज्ञे वधोऽवधः ॥ ३९ ॥
मधुपर्के च यज्ञे च पितृदैवतकर्मणि ॥
अत्रैव पशवो हिंस्या नान्यत्रेत्यब्रवीन्मनुः ॥ ४१ ॥
एष्वर्थेषु पशून् हिंसन् वेदतत्त्वार्थविद् द्विजः ॥
आत्मानं च पशुं चैव गमयत्युत्तमां गतिम् ॥ ४२ ॥
या वेदविहिता हिंसा नियतास्मिंश्चराचरे ॥
अहिंसामेव तां विद्याद्वेदाद्धर्मो हि निर्बभौ ॥ ४४ ॥

भावार्थः—स्वयंभु परमात्माने आप यज्ञकेवास्ते पशुयोंको उत्पन्न करे हैं, सर्व यज्ञकी भूतिकेवास्ते, तिसवास्ते, यज्ञमें जो बध है, सो, अबध है, अर्थात् बध नहीं है. । ३९ । मधुपर्कमें, यज्ञमें, पितृकर्ममें, दैवतकर्ममें, इनमेंही पशुयोंको मारने; अन्यत्र नहीं. ऐसें मनुजी कहते हैं. । ४१ । इन पूर्वोक्त कार्योंमें पशुयोंको मारता हुआ, वेदतत्त्वार्थका जानकार ब्राह्मण, आत्माको, और पशुको, उत्तम गतिमें प्राप्त करता है. । ४२ । जो वेदकथित हिंसा इस चराचर जगत्में नियत करी है, तिसको अहिंसाही जानो. क्योंकि, वेदसेंही धर्म दीपता है. । ४४ । इत्यादि हिंसक श्रुतियांऊपरही जैनोंका आक्षेपहै; इन आक्षेप वचनोंकोंही, कितनेक वैदिकमतवाले द्वेषयुक्त वचन कहते हैं. क्योंकि, उनको वैदिकमतके पक्षपातसें यथार्थ वचन भी, द्वेषयुक्त मालुम होते हैं. परंतु पक्षपात छोडके

पूर्वपक्षः—कितनेक सुज्ञजन कहते और लिखते हैं कि, जैनमतवालोंके, जे जे, वेदबाबत लेख हैं, वे सर्व, द्वेषबुद्धिपूर्वक मालुम होते हैं, सो कैसें है ?

उत्तरपक्षः—हे प्रियवर! जो जो वेदोंमें निवृत्तिमार्गका कथन है, सो सर्व जैनमतवालोंको सम्मत है. क्योंकि, जो जो युक्तिप्रमाणसें सिद्ध, संसारसें निवृत्तिजनक, और वैराग्यउत्पादक वाक्य, वेद, उपनिषद, ब्राह्मण, आरण्यक, स्मृति, पुराणादिकोंमें हैं, वे सर्व सर्वज्ञ भगवान्‌के वचन हैं. इस कथनमें श्रीसिद्धसेनदिवाकर, और श्रीभोजराजाका पंडित श्रीधनपालजी लिखते हैं।

यथा ॥

सुनिश्चितं नः परतंत्रयुक्तिषु स्फुरंति याः कश्चन सूक्तिसंपदः ॥
तवैव ताः पूर्वमहार्णवोत्थिता जगत्प्रमाणं जिनवाक्यविप्रुषः॥१॥
उदधाविव सर्वसिंधवः समुदीरणास्त्वयि नाथ दृष्टयः ॥
न च तासु भवान् दृश्यते प्रविभक्तसरित्स्विवोदधिः ॥ २ ॥
पावंति जसं असमंजसावि वयणेहिं जेहिं परसमया ॥
तुहसमयमहोअहिणो ते मंदा बिंदुनिस्संदा ॥ ३ ॥

भावार्थः—हे नाथ ! हमने यह निश्चित किया है कि, परतंत्रयुक्तियोंमें अर्थात् परमतके शास्त्रोंमें जे केई सूक्तिसंपदा, श्रेष्ठ वचन रचना हैं, वे सर्व, हे जिन ! तुमारेहि चतुर्दशपूर्वरूप महासमुद्रसें ऊठे हुए, वाक्यबिंदु हैं.। तथा हे नाथ ! जैसें समुद्रमें सर्व नदीयें प्रवेश करती हैं, तैसें तुमारेविषे सर्व दृष्टियें प्रवेश करती हैं, परंतु तिन दृष्टियोंकेविषे आप नहीं दीखते हो. जैसें पृथक् २ हुई नदीयोंकेविषे समुद्र नही दीखता है. अर्थात् समुद्रमें सर्व नदीयें समा सक्ती हैं, परंतु समुद्र किसी भी एक नदीमें नहीं समा सक्ता है; ऐसेंही सर्व मत नदीयेंसमान है, वे सर्व तो, स्याद्वादसमुद्ररूप तेरे मतमें समा सक्ते हैं; परंतु हे नाथ ! तेरा स्याद्वादसमुद्ररूप मत, किसी मतमें भी संपूर्ण नहीं समा सक्ता है. । हे नाथ! असमंजस भी जे परसमय, जैनमतके विना अन्यमतके शास्त्र, जगत्‌में जिन

मथुरायां जातो ब्रह्म राजगृहे महेश्वरः ॥

द्वारावत्यामभूद्विष्णुरेकमूर्तिः कथं भवेत् ॥ २९ ॥

हंसयानो भवेद्ब्रह्मा वृषयानो महेश्वरः ॥

गरुडयानो भवेद्विष्णुरेकमूर्त्तिः कथं भवेत् ॥३०॥

पद्महस्तो भवेद्ब्रह्मा शूलपाणिर्महेश्वरः ॥

चक्रपाणिर्भवेद्विष्णुरेकमूर्त्तिः कथं भवेत् ॥ ३१ ॥

भाषा–ब्रह्माके शरीरका रंग लाल, महादेवका श्वेत, और विष्णुका कृष्ण था. ब्रह्माने जपमाला धारण करी है, महादेवने शूल, और विष्णुने शंख, चक्र धारण करे हैं. ब्रह्माके चार मुख थे, महादेवके तीन नेत्र थे, और विष्णुकी चार भुजायां थी. ब्रह्मा मथुरानगरीमें उत्पन्न भया, महादेव राजगृहमें, और विष्णु द्वारिकामें. ब्रह्माका वाहन हंस था, महादेवका बैल, और विष्णुका गरुड. ब्रह्माके हाथमें कमल था, महादेवके हाथमें शूल (त्रिशूल), और विष्णुके हाथमें चक्र था. इत्यादि विलक्षण हेतुओंसें इन तीनोंकी एकमूर्त्ति कैसें होवे? ॥२६॥२७॥२८॥२९॥३०॥३१॥

कृते जातो भवेद्ब्रह्मा त्रेतायां च महेश्वरः ॥

द्वापरे जनितो विष्णुरेकमूर्त्तिः कथं भवेत् ॥ ३२ ॥

भाषा–कृतयुगमें अर्थात् सतयुगमें ब्रह्मा उत्पन्न भए, त्रेतायुगमें महेश्वर उत्पन्न हुए, और द्वापरयुगमें विष्णु उत्पन्न हुए, इन हेतुओंसें इन तीनोंकी एकमूर्त्ति कैसें होवे? ॥ ३२ ॥

इन पूर्वोक्त तीनो देवोंकी एकमूर्त्ति नही हो सक्ती है, पृथक् २ गुणोंके होनेसें. अब जिसतरें तीनोंकी एकमूर्त्ति होवेहै, सो दिखाते हैं.

ज्ञानं विष्णुस्सदा प्रोक्तं चारित्रं ब्रह्म उच्यते ॥

सम्यक्तं तु शिवं प्रोक्तमर्हन्मूर्त्तिस्त्रयात्मिका ॥ ३३ ॥

भाषा–ज्ञानकों सदा विष्णु कहते हैं, चारित्रकों ब्रह्मा कहते हैं, और सम्यक्त जो है तिसकों शिव कहते हैं. इसवास्ते 'अर्हन्' जो है, सो त्रयात्मक मूर्त्तिरूप है. अर्थात् ज्ञान, दर्शन, चारित्र इन तीनों गुणमयी अर्हन्की

विचार करे तो सर्व सत्य २ वचन प्रतीत होते हैं, योगजीवानंदसरस्वति स्वामीवत्.

पूर्वपक्षः--ऐसे महात्मा योगजीवानंदसरस्वतिस्वामीजी कौन है ?

उत्तरपक्षः--संवत् १९४८ आषाढ सुदि १० मीका लिखा, एक पत्र, गुजरांवाले होके हमारेपास माझापट्टीमें पहुंचा. तिस पत्रको वांचके हमने तिस लिखनेवाले निःपक्षपाती और सत्यके ग्रहण करनेवाले, महात्माकी बुद्धिको, कोटिशः धन्यवाद दीया, और तिसके जन्मको सफल माना. सो असलीपत्र तो, हमारे पास है; तिसकी नकल, अक्षर २, हम यहां भव्यजन पाठकोंके वाचनेवास्ते दाखिल करते हैं. ॥

"॥ स्वस्ति श्रीमज्जैनेंद्रचरणकमलमधुपायितमनस्क श्रीलश्रीयुक्तपरिव्राजकाचार्य परमधर्मप्रतिपालक श्रीआत्मारामजी तपगच्छीय श्रीन्मुनिराज । बुद्धिविजयशिष्यश्रीसुखजीको परिव्राजकयोगजीवानंदस्वामीपरमहंसका प्रदक्षिणत्रयपूर्वक क्षमाप्रार्थनमेतत् ॥ भगवन् व्याकरणादि नानाशास्त्रोंके अध्ययनाध्यापनद्वारा वेदमत गलेमें बांध मैं अनेक राजा प्रजाके सभाविजय करे देखा व्यर्थ मगज मारना है । इतनाही फल साधनांश होता है कि राजेलोग जानते समझते हैं फलाना पुरुष वडा भारी विद्वान् है परंतु आत्माको क्या लाभ हो सकता देखा तो कुछ भी नही। आज प्रसंगवस रेलगाडीसें उतरके बठिंडा राधाकृष्णमंदिरमें बहुत दूरसें आनके डेरा कीया था सो एक जैनशिष्यके हाथ दो पुस्तक देखे तो जो लोग (दो चार अच्छे विद्वान् जो मुझसे मिलने आये) थे कहने लगे कि ये नास्तिक (जैन)ग्रंथ है इसे नही देखना चाहिये अंत उनका मूर्खपणा उनके गले उतारके निरपेक्ष बुद्धिके द्वारा विचारपूर्वक जो देखा तो वो लेख इतना सत्य वो निष्पक्षपाती लेख मुझे देख पडा कि मानो एक जगत् छोडके दूसरे जगत्में आन खडे हो गये ओ आबाल्यकाल आज ७० वर्षसें जो कुछ अध्ययन करा वो वैदिक धर्म बांधे फिरा सो व्यर्थसा मालूम होने लगा जैनतत्त्वादर्श वो अज्ञानतिमिरभास्कर इन दोनों ग्रंथोंको तमामरात्रिंदिव मनन करता बैठा वो ग्रंथकारकी प्रशंसा वखानता बठिंडेमें बैठा हूं । सेतुबंधरामेश्वर-

यात्रासे अब मै नैपालदेश चला हूं परंतु अब मेरी ऐसी असामान्य महती इच्छा मुझे सताय रही है कि किसी प्रकारसे भी एकवार आपका मेरा समागम वो परस्परसंदर्शन हो जावे तो मै कृतकर्म्मा होजाऊं॥ महात्मन् हम संन्यासी है। आजतक जो पांडित्यकीर्त्तिलाभद्वारा जो सभाविजयी होके राजा महाराजोंमें ख्यातिप्रतिपत्ति कमायके एकनाम पंडिताईका हांसल करा है। आज हम यदि एकदम आपसे मिले तो वो कमायी कीर्त्ति जाती रहेगी ये हम खूब समझते वो जानते है परंतु हठधर्म्म भी शुभ परिणाम शुभ आत्माका धर्म्म नही। आज मैं आपके पास इतनामात्र स्वीकार कर सकता हूं कि प्राचीन धर्म्म परम धर्म अगर कोई सत्य धर्म रहा हो तो जैनधर्म्म था जिसकी प्रभा नाश करनेको वैदिक धर्म्म वो षट् शास्त्र वो ग्रंथकार खडे भये थे परंतु पक्षपातशून्य होके कोई यदि वैदिक शास्त्रोंपर दृष्टि देवे तो स्पष्ट प्रतीत होगा कि वैदिक वातें कही वो लीई गई सो सब जैनशास्त्रोंसे नमूना इकठी करी है। इसमें संदेह नही कितनीक वातें ऐसी है कि जो प्रत्यक्ष विचार करेविना सिद्ध नही होती हैं। संवत् १९४८ मिती आषाढ सुदि १०॥

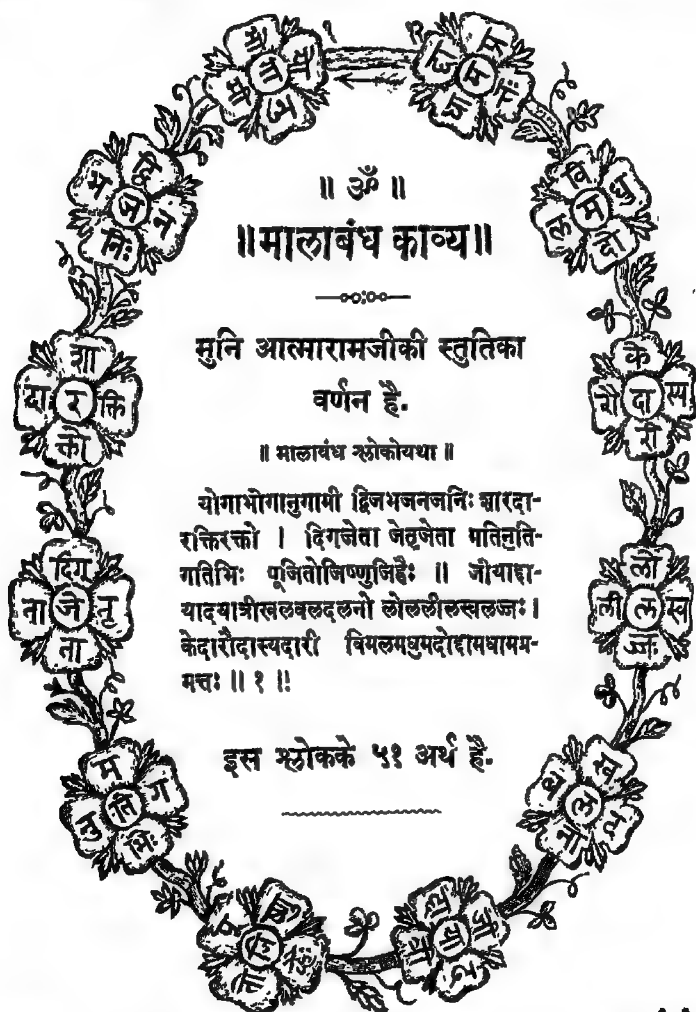
पुनर्निवेदन यह है कि यदि आपकी कृपापत्री पाइ तो एकदफा मिलनेका उद्यम करुंगा। इति योगानंदस्वामी। किंवा योगजीवानंदसरस्वतिस्वामि॥

मालाबंधश्लोकोयथा॥

योगाभोगानुगामी द्विजभजनजनिः शारदारक्तिरक्तो।
दिग्जेता जेतृजेता मतिनुतिगतिभिः पूजितो जिष्णुजिह्वैः॥
जीयादायादयात्री खलबलदलनो लोललीलस्वलज्जः।
केदारौदास्यदारी विमलमधुमदोद्दामधामप्रमत्तः॥ १॥

इस श्लोकके सब अर्थ जैनप्रशंसा वो श्रीआत्मारामजीकी विभूतिकी प्रशंसा निकले है, प्रत्येक पुष्पोंके वीचका जो अक्षर है वो तीनवार एक अक्षरको कहना चाहिये ऐसा काव्य दश वीस श्लोक वनायके ज़रूर

चाहता था कि जैनतत्त्वादर्श वो अज्ञानतिमिरभास्करमें जैनदेव प्रशंसा होनी चाहेती थी। एकवार आपको मिलनेबाद अपना सिद्धांतका निश्चय फिर करना बने तो देखी जायगी ॥"



यह लेख उनका एक कागजके टुकडेमें अलग था ॥ यह सर्व लेख पूर्वोक्त महात्माका है ॥ अब विचार करना चाहिये कि, इस कालमें

वैदिकमतवाले जैनमतको द्वेषबुद्धिसें नास्तिक कहते हैं; और महाविद्वान् परमहंस परिव्राजकजी निःपक्षपाती सद्बुद्धिवाले जैनमतकी बाबत कैसा विचार रखते हैं!! इससें हे प्रियवरो! जैनाचार्योंने जो जो वेदबाबत लेख लिखे हैं, वे सर्व यथार्थ तत्त्वके बोधवास्ते लिखे हैं, न तु द्वेषबुद्धिसें. और द्वेषयुक्त भी, मताग्रही पुरुषोंकोही मालुम होते हैं, नतु पक्षपातरहित पुरुषोंको. ॥

पूर्वपक्षः—जैनमतमें प्राचीन व्याकरण तर्कशास्त्र नहीं है, इससें जैनमत प्राचीन नहीं है. ऐसे कितनेक कहते हैं तिसका क्या उत्तर है?

उत्तरपक्षः—संप्रतिकालमें जो पाणिनीय अष्टाध्यायी व्याकरण है, तिससें तो जैनके व्याकरण प्राचीन हैं. क्योंकि, पाणिनीय व्याकरणके कर्त्ता पाणिनी, नवमे नंदके समयमें हुए हैं. सो पाणिनी, अपने रचे व्याकरणमें कहते हैं, यथा—"त्रिप्रभृतिषु शाकटायनस्य" और शाकटायनके कर्त्ता, तथा न्यासके कर्ता, शाकटायन और न्यासकी आदिमें मंगलाचरणमें ऐसें लिखते हैं.

"॥ शाकटायनोपि यपयापनाय यतिग्रामाग्रणीः स्वोपज्ञशब्दानुशासनवृत्तावादौ भगवतः स्तुतिमेवमाह । श्रीवीरममृतं ज्योतिर्नत्वादिसर्ववेदसाम् । अत्र च न्यासकृता व्याख्या । सर्ववेदसां सर्वज्ञानानां स्वपरदर्शनसंबंधिसकलशास्त्रानुगतपरिज्ञानानामादिप्रभवमुत्पत्तिकारणमिति ॥"

यह पाठ नंदिसूत्रवृत्तिमें है।

न्यासकी भाषाः—(सर्ववेदसाम्) सर्वप्रकारके ज्ञानोंका स्वपरदर्शनसंबंधी सकलशास्त्रानुगत परिज्ञानोंका (आदिप्रभवम्—प्रथमम्) पहिला उत्पत्तिकारण, ऐसे श्रीवीरं अर्थात् श्रीमहावीरको नमस्कार करके, कैसें श्रीमहावीरको (अमृतज्योतिम्) ।

इससें सिद्ध होता है कि, पाणिनीसें पहिलेके शाकटायन और न्यासकर्त्ता जैनमती थे. ।* तथा जैनेंद्र व्याकरण और इंद्रव्याकरण, येभी पाणिनीसें

* प्रसिद्धकर्ताकी प्रस्तावना देखो.

पहिले रचे गये हैं. और चतुर्दशपूर्वमें शब्दप्राभृत १, नाट्यप्राभृत २, वाद्यप्राभृत ३, संगीतप्राभृत ४, स्वरप्राभृत ५, योनिप्राभृत ६, इत्यादि सर्वजगत्की विद्याके प्राभृत थे. तिनमेंसें शब्दप्राभृतमें सर्व शब्दोंके रूपोंकी सिद्धि थी, नाट्यप्राभृतमें सर्व नाटकोंके विधिका कथन था, और प्रमाणनयप्राभृतमें सप्तशतार नयचक्रकी सवालक्ष कारिका थी, तिसकी एक कारिका ऊपरसें श्रीमल्लवादि आचार्यने द्वादशारनयचक्रतुंब नामक तर्कशास्त्र रचा, सो वृत्तिसहित अष्टादश सहस्र (१८०००,) श्लोकसंख्या है. तिसकी प्रथम कारिका यह है. ॥

विधिनियमभंगवृत्तिव्यतिरिक्तत्वादनर्थकमवोधं ।
जैनादन्यच्छासनमनृतं भवतीति वैधर्म्म्यम् ॥ १ ॥

तथा सम्मतितर्क मूल १६८, कारिका वृत्तिसहित २५००० श्लोक प्रमाण हैं. यह भी, पूर्वके प्रमाणनयप्राभृतसें उद्धार करके विक्रमादित्य राजाके समयमें वीरात् (वीर–महावीरका संवत्) ४७० वर्षके लगभग श्री सिद्धसेनदिवाकरने रचा है. । तथा शब्दांभोनिधिगंधहस्तिमहाभाष्य १, अनेकांतजय पताका २ धर्मसंग्रहणी ३, शास्त्रवार्त्तासमुच्चय ४, न्यायावतार ५, न्यायप्रवेश ६, सर्वज्ञसिद्धि ७, प्रमाणसमुच्चय ८, तत्वार्थ ९, षट्दर्शनसमुच्चय १०, इत्यादि अनेक प्रमाणग्रंथ पूर्वधारीयोंके समयमें रचे गए हैं. । तथा प्रमाणनय तत्त्वालोकालंकारसूत्र तिसकी ८४००० श्लोकप्रमाण स्याद्वादरत्नाकरनामा वृत्ति १, लघुवृत्ति ५००० श्लोकप्रमाण रत्नाकरावतारिकानामा २, प्रमेयरत्नकोश ३, लक्ष्मलक्षण ४, खंडनतर्क ५, नयप्रदीप ६, स्याद्वादकल्पलता ७, नयरहस्योपदेश ८, खंडखाद्य ९, स्याद्वादमंजरी १०, प्रमाणमीमांसा ११, प्रमाणसुंदर १२, इत्यादि सैंकडो प्रमाणग्रंथ पूर्वोक्त ग्रंथानुयायी रचे गए हैं. । और व्याकरणके ग्रंथ, जैनेंद्र इंद्रादि व्याकरणानुसारे बुद्धिसागर व्याकरण, और तिसका न्यास श्रीबुद्धिसागरसूरिने रचा है. और विद्यानंदसूरिने विद्यानंदव्याकरण रचा है, श्रीमलयगिरिजीने शब्दानुशासन व्याकरण रचा है, और श्रीसिद्धहेमव्याकरण श्रीहेमचंद्रसूरिजीने रचा है. तिसकी बाबत किसी कविने तिस व्याकरणको देखके यह श्लोक कहा है।

यथा ॥

भ्रातः संवृणु पाणिनिप्रलपितं कातंत्रकंथा वृथा ।
माकार्षीः कटुशाकटायनवचः क्षुद्रेण चांद्रेण किम् ॥
कः कंठाभरणादिभिर्बठरयत्यात्मानमन्यैरपि ।
श्रूयंते यदि तावदर्थमधुराः श्रीहेमचंद्रोक्तयः ॥ १ ॥

भावार्थः—हे भाइ ! जबतक अर्थोंकरके मधुर, ऐसी श्रीहेमचंद्रजीकी उक्तियों सुणते हैं, तबतक पाणिनिके प्रलापको बंद कर, कातंत्रकों वृथा कंथा (गोदडी) समान जान, कौडे (कटुक) शाकटायनके वचन मत कर अर्थात् उच्चारण न कर, तुच्छ चांद्रकरके क्या है ? कुछ भी नहीं, तथा कंठाभरणादि अन्य व्याकरणोंसें भी कौन पुरुष अपने आत्माको पीडित करे ? कोई भी नही. ॥ तथा शिशुपालबधके सर्ग २ के श्लोक ११२ में माघकवि, न्यासग्रंथका स्मरण करते हैं; इसवास्ते माघकवि, न्यासके प्रणेता जिनेंद्र, और बुद्धिपाद बुद्धिसागर आचार्योंसें पीछे हुए हैं.

ऐसे माघकाव्यके उपोद्घातके षष्ठ (६) पत्रोपरि जयपुरमहाराजाश्रित पंडित व्रजलालजीके पुत्र पंडित दुर्गाप्रसादजीने लिखा है, ।

इस लेखसें भी जैनव्याकरणोंके न्यास अतिचमत्कारी है, और प्राचीन पंडितोंको सम्मत हैं. नही तो, माघसरिखे महाकवि, न्यासका स्मरण किसवास्ते करते ?

पाणिनिकी उत्पत्तिका स्वरूप, सोमदेवभट्टविरचित कथासरित्सागर, तथा तारानाथतर्कवाचस्पतिभट्टाचार्यविरचित कौमुदीकी सरला नाम टीका, और इतिहासतिमिरनाशकके तीसरे खंडके अनुसारसें लिखते हैं ॥—पाटलिपुत्रनगरके नवमे नंदके वखतमें वर्ष उपवर्षनामा पंडित थे, तिनके तीन मुख्य विद्यार्थी थे, वररुचि (कात्यायन), व्याडी इंद्रदत्त, और एक जडबुद्धि पाणिनिनामा छात्र था. सो तहांसें हिमालयपर्वतमें जाके तप करता हुआ, तिसके तपसें तुष्टमान होके किसी शिवनामा देवताने

तिसकी इच्छानुसार नवीन व्याकरण रचनेका वर दीया, तब तिसने व्याकरणकी अष्टाध्यायी रची. और वररुचि आदिकोंको कहने लगा कि, मेरे साथ व्याकरणविषयमें शास्त्रार्थ करो. तब वररुचि आदिकोंने तिसकेसाथ शास्त्रार्थ करके सात दिनमें पाणिनिका पराजय करा; तब तिसकालमें महादेवने आकाशमें आके हुंकारशब्द करा, तब तिन पंडितोंका इंद्रव्याकरण नष्ट हो गया; तब पाणिनिने तिन सर्वपंडितोंको जीत लीये. तद पीछे वररुचिने हिमालय पर्वतमें जाके, शिवकी आराधनासें वर पाके, तिस अष्टाध्यायीकी न्यूनता पूरणेवास्ते वार्तिक रचा. ॥

इससें सिद्ध हुआ कि, पाणिनि नंदराजाके समय होनेसें श्रीवीरात् १५५ वर्ष पीछे लगभग हुआ. तो, क्या, पाणिनिसें पहिलें पंडितजन व्याकरणसें शून्य थे ? शून्य नही थे, किंतु जैनेंद्र, इंद्र, शाकटायनादि जैनव्याकरण प्रचलित थे, तो फिर, जैनमत व्याकरणशून्य कैसें सिद्ध होवे ? कदापि न होवे. तथा पातंजलिने जो अष्टाध्यायीके ऊपर भाष्य रचा है, सो भी प्रायः जैनेंद्र इंद्र शाकटायनादिव्याकरणानुसार रचा है.

पूर्वपक्षः—आपने कितनेही प्रमाणोंद्वारा जैनमतको प्राचीन ठहराया सो ठीक है; परंतु 'जैन' शब्द जिनशब्दसें तद्धित होके बनता है, और 'जिन' शब्द 'जि जये' धातुका बनता है, और 'जि' धातु प्राचीन नही है. क्योंकि, श्री बाबु शिवप्रसादजी सितारेहिंद अपने रचे इतिहासतिमिरनाशकके तीसरे खंडके पृष्ठ १७ में लिखते हैं कि, 'जि जय' धातु प्रमाणिक नही है. क्योंकि सायन और नृसिंहने अपने रचे उणादि और स्वरमंजरीमें इस धातुको छोड दिया है. यह धातु किसी प्रमाणिक ग्रंथमें नही मिलता है.

उत्तरपक्षः—हे प्रियवर ! बाबुसाहबने जो लिखा है, सो, क्या जाने किस अनुभवज्ञानसें लिखा है !! क्या बाबुजी सितारेहिंद वेदोंको प्रमाणिकग्रंथ नही मानते हैं ? क्योंकि, यजुर्वेद अध्याय १९ मंत्र ४२। ५७ में जि जयधातुके प्रयोग है. जिसको शंका होवे सो, यजुर्वेद देख लेवे. वेदोंके अप्रमाणिक होनेसें, फिर वो ऐसा वेदोंसें पुराना पुस्तक कौनसा है, जिसने जि जयधातुको अप्रमाणिक जानके छोड दिया है ? यह लेख

तो, किसीने जैनमतोपरि द्वेषबुद्धिसें लिखा मालुम होता है. किसी मताग्रहीको यह सूझा कि, जिस जि जयधातुसें जिन सिद्ध होता है. तिसधातुकोही उडा दो. इसीतरें द्वेषबुद्धिसें वेदोंमेंसें कितनीही ऋचा, मंत्र और शाखायोंको गुम्म करदी हैं. तो बिचारा जि जयधातु तो किस गिणतीमें है ?

पूर्वपक्षः—जैनमत वेदमतकी बातें लेकर रचा गया है, ऐसे कितनेक कहते हैं, तिसका क्या उत्तर है ?

उत्तरपक्षः—हे प्रेक्षावानो ! तुमको विचारना चाहिये कि, जेकर जैनमत वेदकी कितनीक बातें लेकर रचा गया होवे, तब तो जो कथन, जैनमतमें है, सो सर्व वेदोंमें होना चाहिये. परंतु, कर्मकी ८ मूलप्रकृति, और १४८ उत्तरप्रकृतियोंके स्वरूपके कथन करनेवाले षट्कर्मग्रंथ, पंचसंग्रह, कर्मप्रकृति, प्राभृतकी संग्रहणी, प्राचीन पांच कर्मग्रंथ, शतक, षडशीति कर्मग्रंथ, प्रज्ञापना उपांग, व्याख्याप्रज्ञप्ति, आदिमें लगभग अशीतिसहस्र (८००००) श्लोकोंका प्रमाण है. तिनको कथनका गंधभी, चार वेदसंहिता, ब्राह्मण, उपनिषत्, कल्पादिमें नही है, और साधुकी पदविभागसमाचारी, जिसके कथन करनेवाले सवालक्ष (१२५०००) श्लोक लगभग हैं; और जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आश्रव, संवर, निर्जरा, बंध, मोक्ष, इन पदार्थोंका जैसा स्वरूप, जैन मतके शास्त्रोंमें कथन करा है, तैसा स्वरूप वेदोंमें स्वप्नमें भी कदी नही दीख पडेगा. इसवास्ते प्रेक्षावानोंको चाहिये कि, वेद और जैनमतके शास्त्र पढके तिनका मुकाबला करें और विचारें, तब यथार्थ मालुम हो जावेगा कि, जैनमत वेदमेंसें रचा गया है, वा, वेदोंमें जे जे अच्छी बातें है, वे जैनमतमेंसें लेके रची गई हैं ? जो पूर्वोक्त ग्रंथोंका मुकाबला करके तत्त्व निश्चय करके धारेगा, तिसका कल्याण होवेगा.

तथा जैनमतके प्राचीन होनेमें एक अन्य भी प्रमाण मिला है सो ऐसें है. । श्रीकांतानामा नगरीका रहनेवाला धनेशनामा श्रावक यानपात्रकरके समुद्रमें जाता था; तिनके अधिष्ठायक देवताने तिस जहाजको

स्तंभन कर दीया. तदपीछे धनेशने तिस व्यंतरदेवताकी पूजा करी, तब तिस समुद्रकी भूमिसें तिस व्यंतरके उपदेशसें स्यामवर्णकी तीन प्रतिमा निकाली; तिनमेसें एक प्रतिमा तो चारूपग्राममें तीर्थप्रतिष्ठित करी, अन्य श्रीपत्तनमें आमलीके वृक्षके हैठ प्रासादमें श्रीअरिष्टनेमिकी प्रतिमा प्रतिष्ठित करी, और तीसरी प्रतिमा श्रीपार्श्वनाथकी स्थंभन ग्रामके पास सेढिकानदीके कांठे ऊपर तरुजाल्यांतरभूमिमें स्थापन करी.

पुरा गये कालसें शालिवाहनराजाके राज्यसें पहिले वा लगभग, नागार्जुन विद्यारससिद्धिवाला, बुद्धिका निधान, भूमिमें रहे हुए बिंबके प्रभावसें रसको स्थंभन करता हुआ; तदपीछे तिसने तहां स्थंभनक ग्राम निवेशन करा. । और तिस श्रीपार्श्वनाथकी प्रतिमाके, जो खंभातबंदरमें संप्रतिकालमें विद्यमान है, बिंबासनके पीछेके भागमें ऐसी अक्षरोंकी पंक्ति लिखी हुई परंपरायसें हम सुनते हैं; और यह बात लोकोंमें भी प्रायः प्रसिद्ध है. । सो लेख यह है ॥

नमेस्तीर्थकृतस्तीर्थे वर्षे द्विकचतुष्टये २२२२
आषाडश्रावको गौडोकारयत्प्रतिमात्रयम् ॥ १ ॥

अर्थः—जैनमतमें ऐसी दंतकथा चलती है कि, गत चौवीसीके सतारमे नमिनामा तीर्थंकरके शासन चलां पीछे २२२२ इतने वर्ष गए, आषाडनामा श्रावक, गौडदेशका वासी, तिसने तीन प्रतिमा बनवाई थीं, तिसमें यह रत्नमयी प्रतिमा भी, तिसनेही बनवाई थी.

जेकर इस चौवीसीके २१ के नमिनाथके शासन चलां पीछे २२२२, इतने वर्ष गए बनवाइ होवे, तो भी, ५८६६५० वर्षके लगभग व्यतीत हुए हैं.।

यह लेखसंबंधि कथन प्रभावकचरित्र, और प्रवचनपरीक्षा, अपरनाम कुमतिमत कौशिक सहस्त्रकिरणनामक ग्रंथोंमें है. इससें भी सिद्ध होता है कि, जैनमत अतीव प्राचीन है. इत्यलं विद्वज्जनपर्षत्सु ॥

इत्याचार्यश्रीमद्विजयानंदसूरिविरचिते तत्वनिर्णयप्रासादग्रंथे
जैनमतप्राचीनतावर्णनो नाम द्वात्रिंशः स्तम्भः ॥ ३२ ॥

॥ अथत्रयस्त्रिंशस्तम्भारम्भः ॥

बत्तीसमें स्तंभमें जैनमतकी प्राचीनता सिद्ध करी, अब इस तेतीसमें स्तंभमें जैनमत, बौद्धमतसें भिन्न, और प्राचीन है, सो सिद्ध करते हैं. ।

पूर्वपक्षः—कितनेक मानते हैं कि, जैनमत बौद्धमतमेंसें निकला है, वा, बौद्धमतकी एक शुद्ध शाखा है; तिसका क्या उत्तर है?

उत्तरपक्षः—हे प्रियवर! इस वातका निश्चय, पाश्चात्य विद्वानोंनें अच्छी तरेसें करा है कि, जैनमत, बौधमतसें पुराना और अलग मत है. आचारांग-सूत्रका तरजुमा जर्मन देशके वासी हरमॅनजाकोबी विद्वान (Hermann Jocabi)ने करा है, सो पुस्तक प्रोफेसर मेक्समुल्लर भट्टजी (Professor F. Max Müller)ने छपवाया है, तिसकी प्रस्तावनामें अनेक प्रमाणोंसें जैनमतको, बौद्धमतसें प्राचीन और भिन्नमत सिद्ध करा है. तिसमेंसें थोडीसी बातें नमूनेमात्र लिख दिखाते हैं.

वे लिखते हैं कि, जैनमतका मूल, और तिसकी वृद्धि, इन दोनों बातोंमें जो कितनेक यूरोपीयन विद्वान् वहेम (शंका) रखते हैं, सो ठीक नहीं. क्योंकि, बडाभारी, और प्राचीन, ऐसा जैन पुस्तकोंका जथा (समूह) हमारे हाथमें आया है; और तिनमेंसें जैनमतके प्राचीन इतिहासके पूरेपूरे साधन, जो कोइ एकट्ठे करनेको चाहे तो तिसको मिल सकते हैं और ये साधन ऐसे भी नहीं हैं कि, जिनके ऊपर अपनेको प्रतीत न आवे. हम जानते हैं कि, जैनोंके पवित्र पुस्तक प्राचीन हैं, और जिन संस्कृतग्रंथोंको तुम हम प्राचीन कहते हैं, तिन ग्रंथोंसें भी येह ग्रंथ अधिक प्राचीन, युरोपीयन विद्वानोंमें कबूल हुए हैं. इन पुस्तकोंमेंसें बहुते प्राचीन होनेकी बाबतमें उत्तरके बुद्धलोकोंके प्राचीनोंमें प्राचीन पुस्तकोंसें अधिकता करें ऐसे हैं, बुद्धमत और बुद्धमतके इतिहासके साधनोवास्ते उत्तरके बुद्धलोकोंके प्राचीन ग्रंथोंका उपयोग फतेहमंदीसें करनें आया है; तेसेंही जैनीयोंके इतिहासवास्ते प्रमाण करने योग्य मूलतरीके तिनके पवित्र पुस्तकों ऊपर हम तुम किसवास्ते अविश्वास रखते हैं? तिसका कारण अपनेको कुछ भी मालुम नही होता है.

जेकर जैनग्रंथोंका लेख संपूर्ण विरोधी होवे, अथवा इसमें लिखे संवत् मिति ऊपरसें विरोधि अनुमान होता होवे तो, ऐसे साधनों ऊपर आधार राखनेवाली सर्व कल्पनाओंको शंकासहित माननी अपनेको ठीक है; परंतु फिर बुद्धलोकोंके बलकि उत्तरके बुद्धलोकोंके ग्रंथोंसें इस बाबतमें जैनग्रंथोंका वर्ताव कुछ भी विशेष नही मालुम होता है, तब तो किसवास्ते खुद जैनमतके शास्त्रोंकी बातें अनुमानसें माननेमें आतीं हैं? तिससें जैनमतके पुस्तकोंके कथनसें जुदा (अन्यही) समय-काल और मूल जैनमतको अर्पित (आरोप) करनेको इतने सर्व ग्रंथकारोंकी प्रवृत्ति हुई है. इस प्रवृत्तिका प्रकट कारण तो यूरोपीयन पंडितोंको यह मालुम होता है कि, जैन और बुद्धमतमें कितनीक ऊपरऊपरकी व्यवहारिक बातोंका मिलतापणा देखके ऐसा धारण करनेमें आया है कि, जो ये दोनों पंथोंमें इतना मिलतापणा है, तो एकपंथ दूसरेसें स्वतंत्र (अन्य) होना नही चाहिये; परंतु एकपंथको अवश्य दूसरे पंथमेंसें निकलना चाहिये. इस आनुमानिक अभिप्रायसें बहुत यूरोपीयन परीक्षकोंकी बुद्धि लुप्त होगई है, अब भी लुप्तही होरही है. ऐसें भूलसें भरे हुए अभिप्रायको असत्य करनेवास्ते, और जैनोंके पवित्र पुस्तक जे सत्यता और प्रतिष्ठाके पात्र हैं, तिनकी सत्यता और प्रतिष्ठा स्थापन करनेवास्ते, मैं, अगले पत्रोंमें प्रयत्न करुंगा. जैनसंप्रदायका प्रवर्त्तावनेवाला, अथवा सर्वसें पीछेका तीर्थंकर महावीर (स्वामी), तिस विषयतक हकीकातसें लेके हम अपनी चरचाका प्रारंभ करते हैं—इत्यादि बहुत लेख लिखके पीछे लिखते हैं कि—बुद्ध तहांसें वैशालीमें गया, जहां लच्छवीयोंका अग्रेश्वरी जो निर्ग्रंथोंका (जैनके साधुयोंका) श्रावक था, तिसको बुद्धने प्रतिबोध करा—इत्यादि लिखके फेर लिखते हैं कि—बुद्धमतकेही शास्त्रमें लिखा है कि, बुद्धका प्रतिस्पर्द्धि (शत्रु), और जैनसाधु अथवा निर्ग्रंथोंके अग्रेश्वरीतरीके महावीर (स्वामी) को तिनका प्रसिद्ध नाम नातपुत्तकरके लिखा है, इनका गोत्र बुद्धलोकोंने अग्निवैशायन लिखा है, सो तिनका लिखना असत्य है. क्योंकि, यह गोत्र तो, इनके मुख्य गणधर सुधर्मा स्वामीके साथ संबंध रखता है, महावीर (स्वामी) के सर्व गणधरमेंसें यह सुधर्मा

स्वामी, एकलेही महावीरस्वामीके पीछे जीते रहे थे; और अपने गुरुके निर्वाणपीछे इनोंहीने अग्रेश्वरीपणा धारण करा था.

महावीरस्वामी बुद्धके सहकाली होनेसें, इन दोनोंके एकसदृशही सहकालिक थे, तिनका व्योरा (खुलासा) बिंबीसार, और तिसका पुत्र अभयकुमार, और अजातशत्रु लच्छवी और मल्लि, और मंखलिपुत्र गोशालक, इन पुरुषोंके नाम, दोनों मतोंके पवित्र पुस्तकोंमें हम तुम देखते हैं. अपनेको पीछेसें खबर हुई है, तैसेंही बुद्धलोककी पीठिकामेंसें ऐसा मालुम होता है कि, वैशालीमें महावीरस्वामीके भक्त श्रावक बहुत थे. यह बात जैनलोक कहते हैं कि, इस नगरके पासही महावीरस्वामीका जन्म हुआ था, तिसके साथ संपूर्ण, और फिर इस नगरीके मुख्य अधिकारीके साथ महावीरका संबंध था, सो पीठिकाके कथनके साथ अच्छीतरें मिलता आता है; इसके विना भी पीठिकामें निर्ग्रथोंका मत, जैसें क्रियावाद, (आत्मा नित्य है, तिसको अपने करे कर्मका फल इसलोक परलोकमें भोगना पडता है.) और पाणीमें जीव है, ऐसा मानना बुद्धलोकोंके शास्त्रोंमें लिखा है, सो जैनमतके साथ संपूर्ण मिलता आता है. सबसें पीछे नातपुत्तके निर्वाणका स्थल बुद्धलोक पापापुरमें मानते हैं, सो सच्च है—इत्यादि अनेक बुद्धके, और महावीरके वृत्तांतका परस्परविशेष दिखलाके, बुद्ध पुरुष बौद्धमतके चलानेवाला, और महावीर जैनमतका चलानेवाला, ये दोनों पुरुष अलग अलग थे. और बुद्धके मतसें जैनमत पहिलेंका है, ऐसा सिद्ध करा है. इससें जैनमत बुद्धमतसें नही निकला है, और न बुद्धमतकी शाखा है; किंतु बुद्धमतसें पहिलेंका प्राचीन मत है.

तथा "सेक्रेडबुक्स आफ धी इस्ट" के २५ मे भागतरीके उत्तराध्ययन, और सूत्रकृतांगके भाषांतर करनार प्रोफेसर हरमॅन जाकोबी. प्रसिद्ध करनार प्रोफेसर मॅक्ष मुल्लर. तिस पुस्तककी भूमिकामें लिखते हैं कि— बौद्धसिद्धांतका लिखान, नातपुत्तके पूर्वे निर्ग्रथोंके अस्तित्वसंबंधी अपने विचारोंसें विरुद्ध नहीं है; क्योंकि, जब बुद्धधर्म शुरु हुआ, तिस वखतमें

आत्मा है. क्योंकि, ये तीनों गुण आत्माद्रव्यसें, कथंचित् भेदाभेदरूप है. जब द्रव्यार्थिक नयके मतसें विचारिए, तब तो एक द्रव्य होनेसें एकही मूर्ति है. औंर जब पर्यायार्थिक नयके मतसें विचारिए, तब ज्ञान-दर्शनचारित्ररूप तीनो गुणोंके भिन्न २ होनेसें तीन रूप सिद्ध होते हैं. औंर स्याद्वादवादीके मतमें कथंचित् द्रव्यपर्यायके भेदाभेद होनेसें, एक-मूर्त्ति त्रयात्मक हैं. इस हेतुसें अर्हन्‌ही, ब्रह्मा, विष्णु, महादेवके रूपके धारक हैं; अन्य नही ॥ ३३ ॥

पूर्वपक्षः—जैसें आपने ज्ञानदर्शनचारित्रकी अपेक्षा, अर्हन्मूर्ति त्रयात्मक मानी हैं, तैसेंही, ब्रह्मा, विष्णु, महादेवकी मूर्त्ति माननेमें क्या दोष है?

उत्तरपक्षः—हे प्रियवर! ऐसी मानी जाय और पूर्वोक्त ज्ञानदर्शनचारित्र उनोंमें सिद्ध होवे, तब तो कोइ भी दोष न आवे. अन्यथा वेश्याका सतीके गुणोंसें वर्णन करनेसदृश है. क्योंकि, लौकिकमतवालोंने जैसें ब्रह्मा, विष्णु, महादेव माने हैं, तिनोंमें पुराणादि शास्त्रोंके लेखसें, पूर्वोक्त ज्ञान, दर्शन, चारित्रमेसें एक भी सिद्ध नही होता है. सोही हम लिख दिखाते हैं—यथा मत्स्यपुराणे तृतीयाध्याये॥

सावित्रीं लोकसृष्ट्यर्थं हृदि कृत्वा समास्थितः ॥
ततः संजपतस्तस्य भित्त्वा देहमकल्मषम् ॥ ३० ॥
स्त्रीरूपमर्द्धमकरोदर्द्धं पुरुषरूपवत् ॥
शतरूपा च साख्याता सावित्री च निगद्यते ॥ ३१ ॥
सरस्वत्यथ गायत्री ब्रह्माणी च परन्तपं ॥
ततः स्वदेहसंभूतामात्मजामित्यकल्पयत् ॥ ३२ ॥
दृष्ट्वा तां व्यथितस्तावत्कामबाणार्दितो विभुः ॥
अहोरूपमहोरूपमिति चाह प्रजापतिः ॥ ३३ ॥
ततो वसिष्ठप्रमुखा भगिनीमिति चुक्रुशुः ॥
ब्रह्मा न किंचिद्ददृशे तन्मुखालोकनादृते ॥ ३४ ॥

तथा पूर्वोक्त पुस्तकमेंही लिखा है कि—उत्तराध्ययनके २३ मे अध्ययनकी १३ मी गाथामें कहा है कि, पार्श्वनाथकी सामाचारीमूजब साधु ऊपरका और नीचेका कपडा पहरते थे; परंतु महावीरस्वामीकी सामाचारीमें कपडेकी मनाइ थी. जैनसूत्रोंमें नग्नसाधुका नाम वारंवार अचेलक लिखा है, जिसका अक्षरार्थ कपडेविनाके ऐसा होता है.

बौद्धलोक अचेलक, और निर्ग्रंथके बीचमें कुछक तफावत रखते हैं. बौद्धोंके धम्मपद (धर्मपद) नामके पुस्तकऊपर बुद्धघोषकी करी हुई टीकामें कितनेक भिक्षुसंबंधि ऐसें कहनेमें आया है कि, वे, अचेलकसें निर्ग्रंथोंको विशेष पसंद करते हैं. क्योंकि, अचेलक तदन नग्न होते हैं, (सव्वासोअपटिच्छन्ना) परंतु निर्ग्रंथ एक जातका कपडा नीतिमर्यादाके-वास्ते रखते हैं.

कपडा रखनेका कारण बौद्धभिक्षुयोंने यह दिया है कि, नीतिमर्यादा सचवाती है—रहती है. यह कारण खोटा है; बौद्ध अचेलक, अर्थात् मंखलिगोशालेके और तिसके पहिलें हुए किस संकिच्च तथा नंदवच्छके अनुयायी समझने, ऐसें जानते हैं. और तिनके मज्झिमनिकायके ३६ मे प्रकरणमें अचेलकोंकी धर्मसंबंधी क्रियाओंका वर्णन भी लिखा है.

इस ऊपरके लेखसें यह सिद्ध हुआ कि, निर्ग्रंथमत, अर्थात् जैनमत, बौद्धमतसें पृथक् भिन्न मत है, और बौद्धमतसें प्राचीन है.

अब हम प्रोफेसर हरमॅन जाकोबीके करे उत्तराध्ययनके २३ मे अध्ययनकी १३ मी गाथाके तरजुमेकी समालोचना करते हैं. । क्योंकि, उन्होंने जो अर्थ करा है, सो अपनी बुद्धीसें करा है, न तु जैनसंप्रदायानुसार; क्योंकि, जैनमतमें निर्युक्ति, भाष्य, चूर्णि, टीकादिके अनुसार अर्थ करा हुआ मान्य है, नतु स्वबुद्धिउत्प्रेक्षित. जेकर स्वबुद्धिकी कल्पनासें अर्थ करे जावें, तब तो, अन्यमतोंके शास्त्रोंकीतरें जैनमतके शास्त्रोंके अर्थ भी, नाना पुरुषोंकी नाना कल्पनासें नाना प्रकारके हो जावेंगे; तब तो असली सर्व सच्चे अर्थ व्यवच्छेद हो जावेंगे; और उत्सूत्रार्थकी प्रवृत्ति होनेसें जैनमतही नष्ट हो जावेगा.

निर्ग्रंथ एक अगत्यकी कोम होनी चाहिये. इस अनुमानका हेतु यह है कि, बौद्धोंके पिटकोंके बीच वारंवार कथन करनेमें आया है कि, निर्ग्रंथ बुद्धके, वा तिसके शिष्योंके विरुद्ध पक्षवाले हैं. अथवा तिनमेंसें कितनेकको बौद्धमतमें लेनेमें आए. तथा निर्ग्रंथ एक नवीन स्थापन करी हुई कोम है, ऐसा किसी जगे भी कहनेमें आया नही है; और अनुमान भी करनेमें नही आया है. तिससें हम तुम निश्चय कर सकते हैं कि, बुद्धके जन्म पहिलें बहुत वखत हुए निर्ग्रंथ होने चाहिये. इस निर्णयको दूसरी एक बातका आधार मिलता है. बुद्ध, और महावीरस्वामीके वखतमें हुए मंखलिगोशालेका कहना ऐसा है कि, मनुष्यजातिके छ (६) विभाग है. (देखो बौद्धोंका दीर्घनिकायका सामान्यफलसूत्र) इस सूत्रके ऊपर बुद्धघोषने सुमंगलविलासिनी इस नामकी टीका रची है, तिसके अनुसारें मनुष्यजातिके छ विभागमेंसें तीसरे विभागमें निर्ग्रंथोंका समावेश करनेमें आया है. निर्ग्रंथ, तिसही समयकी नवीन उत्पन्न हुई कोम होती तो, तिनको गोशाला मनुष्यजातिका एक पृथक् जुदा अर्थात् अगत्यका विभाग गिणे, ऐसा संभव नही होता है.

मेरे मत (मानने) मूजब जैसें प्राचीन बौद्ध, निर्ग्रंथोंको, एक अगत्यकी, और पुरानी कोमतरीके जानते थे, तैसेंही गोशालेने भी निर्ग्रंथोंको बहुत अगत्यकी, और पुरानी कोमतरीके जानी हुई होनी चाहिये. इस मेरे मतकी तरफेणमें आखिर दलील यह है कि, बौद्धोंके मज्झिम (मध्यम) निकायके ३५ मे प्रकरणमें बुद्ध, और निर्ग्रंथके पुत्र सच्चकके साथ हुई चर्चाकी बात लिखि हुई है. सच्चक आप निर्ग्रंथ नही है. क्योंकि, वो आप वादमें नातपुत्त (ज्ञातपुत्र महावीर) को हरानेका अभिमान जनाता है. और जिन तत्त्वोंका आप बचाव करता है, वे तत्त्व जैनोंके नहीं हैं. जब एक नामांकितवादी, जिसका पिता निर्ग्रंथ था, सो बुद्धके वखतमें हुआ, तब निर्ग्रंथोंकी कोम बुद्धकी जिंदगीकी अंदर स्थापनेमें आई होवे, यह बन सकता नहीं है.

तरजुमा करते हैं, सो वडी भूल करते हैं; इसवास्ते उनको चाहिये कि टीकाके अनुसारही तरजुमा करें.

अब यहां प्रसंगोपात हम वहुत नम्रतासें दिगंबर जैनमतके माननेवालोंसें विनती करते हैं कि, हे प्रियबांधवो ! तुम भी अपने मतके कदाग्रहको छोडके पक्षपातसें रहित होकर जरा विचार करो कि, जैनमतकी वडी भारी दो शाखायें हो रही हैं; श्वेतांवर १, दिगंबर २, इन दोनोंमेंसें यथार्थ जैनमत कौनसा है ?

दिगंबरः—यह जो श्वेतांबर मत है, सो तो विक्रम राजाके मरे पीछे एकसोछत्तीस (१३६) वर्षपीछे सौराष्ट्रदेशकी वल्लभीनगरीमें उत्पन्न हुआ है. ऐसा कथन हमारे देवसेनाचार्य दर्शनसार ग्रंथमें कर गए हैं. तथाहि ॥

छत्तीसे वरिससए, विक्कमरायस्स मरणपत्तस्स ॥
सोरट्ठे वलहीए, सेवडसंघो समुप्पण्णो. ॥ ११ ॥
सिरिभद्दबाहुगणिणो, सीसो णामेण संतिआयरिओ ॥
तस्स य सीसो दुट्ठो, जिणचंदो मंदचारित्तो. ॥ १२ ॥
तेण कियं मदमेदं इत्थीणं अत्थि तप्भवे मोरको ॥
केवलाणाणीण पुणो, अट्ठक्खाणं तहा रोओ. ॥ १३ ॥
अंबरसहिओवि जइ, सिज्झइ वीरस्स गप्भचारित्तं ॥
परलिंगेवि य मुत्ती, पासुयभोज्जं च सव्वत्थ ॥ १४ ॥
अण्णं च एवमाई, आगमउट्ठाइ मिच्छसत्थाइं ॥
विरइत्ता अप्पाणं, पडिठवियं पढमए णिरए. ॥ १५ ॥

भाषार्थः—विक्रमराजाके मरण प्राप्त हुएपीछे १३६ वर्षे सोरठदेशमें वल्लभीनगरीमें श्वेतपट श्वेतांबरसंघ उत्पन्न हुआ, श्रीभद्रबाहुगणिका शांतिसूरिनामा शिष्य हुआ, तिसका मंदचारित्रवाला जिनचंद्रनामा दुष्ट शिष्य हुआ, तिसने यह मत उत्पन्न किया. स्त्रीको तिसही भवमें मोक्षप्राप्ति १, केवलज्ञानिको आहार तथा रोग २, वस्त्रसहित ऐसा भी यति

इसवास्ते अव्यवच्छिन्नसंप्रदायसें पंचांगी अनुसारही, अर्थ मुज्ञ जनोंको मानना चाहिये, परंतु अन्य प्रकारसें नहीं. *

ऊपर लिखि गाथाका यथार्थ अर्थ ऐसा है. "अचेलगो य जे धम्मो" इत्यादि—अचेलकश्चाविद्यमानचेलकः । परिजुन्नमप्पमुल्लं इत्यागमान्नञः कुत्सार्थत्वात् कुत्सितचेलको वा यो धर्मो वर्द्धमानेन देशित इत्यपेक्षते। जो इमोत्ति । यश्चायं सांतराणि वर्द्धमानशिष्यवस्त्रापेक्षया कस्यचित् कदाचित् मानवर्णविशेषितानि उत्तराणि च बहुमूल्यतया प्रधानानि वस्त्राणि यस्मिन्नसौ सांतरोत्तरोधर्मः पार्श्वेन देशितः । इतिटीका ।

भाषार्थः—अचेलक कहिये, अविद्यमानचेलक, अर्थात् वस्त्ररहित; अथवा पक्षांतरमें दूसरा अर्थ, परिजीर्ण सर्वथा पुराने वस्त्र, अल्पमोलके, इस आगमके वचनसें नकारको कुत्सार्थवाचक होनेसें कुत्सितवस्त्रवाला जो धर्म, तिसको अचेलक धर्म कहिये; ऐसा अचेलक धर्म, वर्द्धमान महावीरस्वामीने उपदेश्या है. और यह, जो, सांतर, वर्द्धमानस्वामीके शिष्योंकी अपेक्षासें किसीको किसी वखत मान, वर्ण, विशेषसहित; उत्तर बहुमोले होनेकरके प्रधानवस्त्र है जिसमें, ऐसा सांतरोत्तर धर्म, पार्श्वनाथने उपदेश्या है.

भावार्थः—इसका यह है कि, मुखवस्त्रिका रजोहरण वर्जके पहिरनेके सर्ववस्त्ररहित सर्वोत्कृष्ट जिनकल्पीकी अपेक्षा अचेल धर्म है; और जीर्ण अल्पमोलके वस्त्र रखने यह भी अचेल धर्मही है, परंतु एकांत वस्त्ररहितकाही नाम अचेलधर्म है, ऐसा जैनमतके शास्त्रोंका अभिप्राय नहीं है. क्योंकि, जैनमतके शास्त्रोंमें ठिकाने ठिकाने वस्त्रादि ग्रहण करनेका विधि कथन करा है, यदि अचेल शब्दका अर्थ नग्न ऐसाही जैनमतके शास्त्रोंको सम्मत होवे तो, वस्त्रग्रहणविधि क्यों लिखते हैं ? इसवास्ते अचेल शब्दसें कुत्सित अर्थात् जीर्णप्रायः वस्त्रकाही अर्थ करना उचित है. क्योंकि, नञ् (नकार) को षट् (६) अर्थमें सर्व विद्वानोंने माना है. इसवास्ते यूरोपीयन (पाश्चात्य) पंडित जो स्वकल्पनासें जैनमतादि शास्त्रोंका

* जैसें कल्पसूत्र, आचारांग, उपासकदशांग उपोद्घातादिमें केइ पाश्चात्यविद्वानोंने करे हैं.

एक सहस्रमल्लशिवभूतिनामकरके पुरुष था, तिसकी भार्या तिसकी माताकेसाथ (सासुकेसाथ) लडती थी कि, तेरा पुत्र दिन २ प्रति आधी रात्रिको आता है; मैं, जागती, और भूखी पियासी तबतक बैठी रहती हूं. तब तिसकी माताने अपनी वहुसें कहा कि, आज तूं दरवाजा बंद करके सो रहे, और मैं जागुंगी. वहु दरवाजा बंद करके सो गई, माता जागती रही; सो अर्द्धरात्रि गए आया, दरवाजा खोलनेकों कहा, तब तिसकी माताने तिरस्कारसें कहा कि, इस वखतमें जहां उघाडे दरवाजे हैं, तहां तूं जा. सो वहांसे चल निकला, फिरते फिरतेने साधुयोंका उपाश्रय उघाडे दरवाजेवाला देखा, तिसमें गया. नमस्कार करके कहने लगा, मुझको प्रव्रजा (दीक्षा) देओ. आचार्योंने ना कही, तब आपही लोच करलिया, तब आचार्योंने तिसको जैनमुनिका वेष दे दीया. तहांसें सर्व विहार कर गए. कितनेक कालपीछे फिर तिसी नगरमें आए, राजाने शिवभूतिको रत्नकंबल दीया, तब आचार्योंने कहा, ऐसा वस्त्र यतिको लेना उचित नही; तुमने किसवास्ते ऐसा वस्त्र ले लीना? ऐसा कहके तिसको विनाहीपूछे आचार्योंने तिस वस्त्रके टुकडे करके रजोहरणके निशीथिये कर दीने. तब, सो गुरुयोंके साथ कषाय करता हुआ.

एकदा प्रस्तावे गुरुने जिनकल्पका स्वरूप कथन करा, जैसें जिनकल्पिसाधु दो प्रकारके होते हैं; एक तो पाणिपात्र, और ओढनेके वस्त्रोंरहित होता है; दूसरा पात्रधारी, और वस्त्रोंकरके सहित होता है. जो वस्त्रधारी होता है, सो आठ तरेंका होता है. रजोहरण, मुखवस्त्रिका, एवं दो उपकरणधारी ।१। दो पीछले और एक पछेवडी (चादर) एवं तीन उपकरणधारी ।२। दो पछेवडी होवे तो चार ।३। तीन पछेवडी होवे तो पांच ।४। रजोहरण मुखवस्त्रिका २, पात्र ३, पात्रबंधन ४, पात्रस्थापन ५, पात्रकेसरिका ६, तीन पडले ७, रजस्त्राण ८, गोच्छक ९, एवं नव उपकरणधारी ।५। पूर्वोक्त नव, और एक पछेवडी, एवं दश उपकरणधारी ।६। दो पछेवडी और पूर्वोक्त नव, एवं इग्यारह उपकरणधारी ।७। तीन पछेवडी और पूर्वोक्त नव, एवं बारां उपकरण-

सिद्ध होता है ३, वीर भगवानका गर्भपरावर्त्तन ४, परलिंगमें भी मुक्ति ५, प्रासुकभोजन ऊंच नीच सर्व कुलोंका साधुको कल्पे ६, इत्यादि और भी आगमको उत्थापके मिथ्याशास्त्र बनायके अपने आत्माको प्रथम नरकमें स्थापन करा. इति—तथा मुनि वस्त्र रक्खे १, केवली आहार करे २, स्त्रीकी मुक्ति होवे ३, इत्यादि श्वेतांवरमतके माने कितनेही पदार्थोंका खंडन हमारे अकलंक देवविरचित लघुत्रयी बृहत्त्रयीमें, तथा प्रमेयकमलमार्त्तंड, षट्पाहुडादि अनेक ग्रंथोंमें प्रमाण युक्तिसें करा है, तो फिर हम श्वेतांवरमतको असली सच्चा जैनमत कैसें माने ?

श्वेतांबरः—प्रियवर! जैसें तुम्हारे देवसेनाचार्य, जो कि विक्रमसंवत् ९९० के लगभगमें हुए हैं, तिनोंने दर्शनसारमें—जो कि विक्रमसंवत् ९९० में बनाया है—श्वेतांवरमतकी उत्पत्ति विक्रमके मृत्युपीछे १३६ वर्षे लिखि है; तैसेंही पूर्वोंके ज्ञानधारी श्वेतांबरीयोंने आवश्यकनिर्युक्ति, भाष्य, चूर्णिमें दिगंबरमतकी उत्पत्ति लिखि है, सो ऐसें है.

छव्वाससयाइं नवुत्तराइं तईया सिद्धि गयस्स वीरस्स ॥
तो बोडियाण दिट्ठी, रहवीरपुरे समुप्पण्णा ॥ ९२ ॥
रहवीरपुरं नगरं, दीवगमुज्जाणमज्जकण्हेय ॥
सिवभूईस्सुवहिम्मि, पुच्छा थेराण कहणा य ॥ ९३ ॥
ऊहाएपन्नत्तं, बोडियसिवभूइउत्तराहि इमं ॥
मिच्छादंसणमिणमो, रहवीरपुरे समुप्पण्णं ॥ ९४ ॥
बोडियसिवभूईओ, बोडियलिंगस्स होइ उप्पत्ती ॥
कोडिन्नकोट्टवीरा, परंपराफासमुप्पन्ना ॥ ९५ ॥

भाषार्थः—श्रीमहावीर भगवंतके निर्वाण हुआ पीछे ६०९ वर्षे बोटिकोंके मतकी दृष्टि अर्थात् दिगंबरमतकी श्रद्धा रथवीरपुर नगरमें उत्पन्न हुई । अब जैसें बोटिकोंकी दृष्टि उत्पन्न हुई है तैसें संग्रह-गाथाकरके दिखलाते हैं । रहवीर—रथवीरपुर नगर तहां दीपकनामा उद्यान तहां कृष्णनामा आचार्य समोसरे, तहां रथवीरपुर नगरमें

यह अर्थ मैंने श्रीहरिभद्रसूरिकृत टीकासें लिखा है. ऐसाही अर्थ, मूलभाष्यकारने करा है. विशेषार्थ देखना होवे तो, श्रीजिनभद्रगणिक्षमाश्रमणकृतशब्दांभोनिधिगंधहस्तिमहाभाष्य, और तिसकी वृत्तिसें देखना.

तथा दिगंबरीय मूलसंघ नंद्याम्नाय सरस्वतिगच्छ बलात्कारगणकी पट्टावलीमें, और श्रीइंद्रनंदिसिद्धांतीकृत नीतिसारकाव्यमें ऐसें लिखा है। यथा ॥

पूर्वं श्रीमूलसंघस्तदनुसितपटः काष्टसंघस्ततोहि।
तत्राभूद्द्राविडाख्यः पुनरजनि ततो यापुलीसंघ एकः॥
तस्मिन् श्रीमूलसंघे मुनिजनविमले सेननंदी च्च संघौ।
स्यातां सिंहाख्यसंघोभवदुरुमहिमा देवसंघश्चतुर्थः॥१॥

भाषार्थः—पहिले श्रीमूलसंघविषे प्रथम दूसरा श्वेतपटीगच्छ हुआ।१। तिसपीछे काष्टसंघ हुआ।२। तिस पीछे द्राविडगच्छ हुआ।३। तिसके पीछे यापुलीयगच्छ हुआ ॥४॥ इन गच्छोंके कितनेक कालपीछे श्वेतांबरमत हुआ।५। और यापनीय गच्छ।१। केकिपिच्छ।२। श्वेतवास।३। निःपिच्छ।४। द्राविड।५। येह पांच संघ जैनाभास कहे हैं. जैनसमान चिन्हभास दीखे हैं, सो इन पांचोंने अपनी अपनी बुद्धिके अनुसारें सिद्धांतोंका व्यभिचार कथन करा है. श्रीजिनेंद्रके मार्गको व्यभिचाररूप करा. यह कथन श्रीइंद्रनंदिसिद्धांतीकृत नीतिसारमें है.

तथाहि श्लोकाः॥

कियत्यपि ततोतीते काले श्वेतांबरोभवत् १॥
द्राविडो २ यापनीयश्च ३ केकिसंघश्च नामतः॥ १॥
केकिपिच्छः १ श्वेतवासाः २ द्राविडो ३ यापुलीयकः ४॥
निःपिच्छश्चेति ५ पंचैते जैनभासाः प्रकीर्त्तिताः॥ २॥
स्वस्वमत्यानुसारेण सिद्धांतव्यभिचारिणं॥
विरचय्य जिनेंद्रस्य मार्गं निर्भेदयंति ते॥ ३॥

इन तीनों श्लोकोंका भावार्थ ऊपर लिख आए हैं.

धारी ।८। एवं सर्व आठ विकल्प होते हैं. पहिला भेद जो पाणिपात्र, और वस्त्ररहित कहा है, सोही आठ विकल्पोंमेंसें प्रथम विकल्पवाला जानना.

जव आचार्योंने जिनकल्पका ऐसा स्वरूप कथन करा, तब शिवभूतिने पूछा कि, किसवास्ते आप अब इतनी उपाधि रखते हों ? जिनकल्प क्यों नही धारण करते हो ? तब गुरुने कहा कि, इस कालमें जिनकल्पकी सामाचारी नही कर सकते हैं. क्योंकि, जंबूस्वामिके मुक्ति गमनपीछे जिनकल्प व्यवच्छेद हो गया है. तब शिवभूति कहने लगा कि, जिनकल्प व्यवच्छेद हो गया क्यों कहते हो ? मैं करके दिखाता हूं. जिनकल्पही परलोकार्थीको करना चाहिये. तीर्थंकर भी अचेल थे, इसवास्ते अचेलताही अच्छी है. तब गुरुयोंने कहा, देहके सद्भाव हुए भी कषायमूर्च्छादि किसीको होते हैं, तिसवास्ते देह भी तेरेको त्यागने योग्य है. और जो अपरिग्रहपणा मुनिको सूत्रमें कहा है, सो धर्मोपकरणोंमें भी मूर्च्छा न करनी; और तीर्थंकर भी एकांत अचेल नही थे. क्योंकि, कहा है कि, सर्व तीर्थंकर एक देव दूष्यवस्त्र लेके संसारसें निकले हैं; यह आगमका वचन है. ऐसें स्थविरोंने तिसको कथन करा, यह गाथाका अर्थ हुआ. ।९३। ऐसें गुरुयोंने तिसको समझाया भी, तो भी, कर्मोदयकरके वस्त्र छोडके नग्न होके जाता रहा. तिस शिवभूतिकी उत्तरा नामा बहिन जो आर्या हुइ थी, उद्यानमें रहे शिवभूतिको वंदना करनेको गई. तिसको नग्न देखके तिसने भी वस्त्र उतार दीने, और नग्न हो गई, और नगरमें भिक्षाको गई, तब गणिकाने देखी, तब विचारा कि, इसका कुत्सिताकार देखके लोक हमारे ऊपर विरक्त न हो जावें, इसवास्ते तिसकी उरः (छाती) ऊपर वस्त्र बांधा. * वो तो वस्त्र नही चाहती है; तब शिवभूतिने कहा कि, यह वस्त्र तूं रहने दे, देवताने तुझको यह वस्त्र दीना है, इसवास्ते. । तिस शिवभूतिने दो चेले करे. कौडिन्य १, कोट्टवीर २, इन दोनोंकी शिष्यपरंपरासें कालांतरमें मतकी वृद्धि होगई. ऐसें दिगंबरमत उत्पन्न हुआ.

* किसी जगह ऐसे भी लिखा है कि तिसके ऊपर झरोखेसे एक वस्त्र ऐसें गेरा जिस्सें उसका नग्नपणा ढांका गया.

अहोरूपमहोरूपमिति प्राह पुनः पुनः ॥
ततः प्रणामनम्रां तां पुनरेवाभ्यलोकयत् ॥ ३५ ॥
अथ प्रदक्षिणं चक्रे सा पितुर्वरवर्णिनी ॥
पुत्रेभ्यो लज्जितस्यास्य तद्रूपालोकनेच्छया ॥ ३६ ॥
आविर्भूतं ततो वक्त्रं दक्षिणं पाण्डु गण्डवत् ॥
विस्मयस्फुरदोष्ठं च पाश्चात्यमुदगात्ततः ॥ ३७ ॥
चतुर्थमभवत्पश्चाद्वामं कामशरातुरम् ॥
ततोन्यदभवत्तस्य कामातुरतया तथा ॥ ३८ ॥
उत्पतन्त्यास्तदाकारा आलोकनकुतूहलात् ॥
सृष्ट्यार्थं यत्कृतं तेन तपः परमदारुणम् ॥ ३९ ॥
तत्सर्वं नाशमगमत् स्वसुतोपगमेच्छया ॥
तेनोर्ध्वं वक्त्रमभवत्पंचमं तस्य धीमतः
आविर्भवज्जटाभिश्च तद्वक्त्रं चावृणोत्प्रभुः ॥ ४० ॥
ततस्तानब्रवीद्ब्रह्मा पुत्रानात्मसमुद्भवान् ॥
प्रजाः सृजध्वमभितः सदेवासुरमानुषीः ॥ ४१ ॥
एवमुक्तास्ततः सर्वे ससृजुर्विविधाः प्रजाः ॥
गतेषु तेषु सृष्ट्यर्थं प्रणामावनतामिमाम् ॥ ४२ ॥
उपयेमे स विश्वात्मा शतरूपामनिंदिताम् ॥
सम्बभूव तया सार्द्धमतिकामातुरो विभुः ॥
सलज्जां चकमे देवः कमलोदरमन्दिरे ॥ ४३ ॥
यावदब्दशतं दिव्यं यथान्यः प्राकृतो जनः ॥
ततः कालेन महता तस्याः पुत्रोऽभवन्मनुः ॥ ४४ ॥

भाषा–प्रथम ब्रह्माजी लोककी रचनाके निमित्त बडी सावधानीसें हृदयमें सावित्रीको धारण करके उसको जपते हुए पापरहित देहको भेदन करके

तिस मूलसंघमेंही चार संघ उत्पन्न हुए, सेनसंघ । १ । नंदिसंघ । २। सिंहसंघ । ३ । देवसंघ । ४। दूसरे भद्रबाहुके शिष्य अर्हद्वलि, तिसके चार शिष्योंने चार संघ स्थापन करे. प्रथम शिष्य माघनंदि, तिसने नंदिवृक्षके नीचे चतुर्मास करा, तिसने नंदिसंघ स्थापन करा । १ । दूसरा शिष्य चंद्र, तिसने तृणके नीचे चतुर्मास करा, तिसने सेनसंघ स्थापन करा ।२। तीसरा कीर्ति, तिसने सिंहकी गुफामें चतुर्मास करा, तिसने सिंहसंघ स्थापन करा । ३ । चौथा भूषण, तिसने देवदत्ता वेश्याके घरमें वर्षायोग धारा सो देवसंघ हुआ ।४।

तथा च नीतिसारका श्लोक ॥

अर्हद्वलिगुरुश्चक्रे संघसंघट्टनं परं ॥
सिंहसंघो नंदिसंघः सेनसंघो महाप्रभः ॥ १ ॥
देवसंघ इतिस्पष्टं स्थानस्थितिविशेषतः ॥

इसका भावार्थ उपर लिख आए हैं.

अव विचार करना चाहिये कि, पूर्वोक्त लेखमें श्वेतांबरोत्पत्तिका संवत् नही लिखा है. तथा इस मूलसंघकी पट्टावलिमें, और नीतिसारमें प्रथम श्वेतपटीगच्छ । १ । पीछे काष्टसंघ । २ । पीछे द्राविडगच्छ । ३ । पीछे यापुलीयगच्छ । ४ । इन गच्छोंके कितनेक कालपीछे श्वेतांबर मत हुआ, ऐसें लिखा है. यह कथन देवसेनाचार्यकृत दर्शनसारके कथनसें विरोधि है. क्योंकि, दर्शनसारमें प्रथम श्वेतांबर । १ । पीछे यापुलीय । २ । पीछे श्वेतपट । ३ । पीछे द्राविड । ४ । पीछे काष्टसंघ, ऐसें लिखा है.

तथा च तत्पाठः ॥

छत्तीसे वरीससए विक्कमरायस्स मरणपत्तस्स ॥
सोरट्ठे वलहीए सेवडसंघो समुप्पण्णो ॥ ११ ॥
कल्लाणे वरणयरे दुण्णिसए पंच उत्तरे जादो ॥
जाउलियसंघभेओ सिरिकलसादोहु सेवडदो ॥ २९ ॥

पंचसए छव्वीसे विक्कमरायस्स मरणपत्तस्स ॥
दक्खिणमहुरा जादो दाविडसंघो महामोहो ॥ २८ ॥
सत्तसये तेवण्णे विक्कमरायस्स मरणपत्तस्स ॥
णंदियडेवरगामे कट्ठो संघो मुणेयव्वो ॥ ३८ ॥

भाषार्थः—एकादश (११) गाथाका अर्थ प्रथम लिख आए हैं, दिगंबरके पक्षमें. कल्याणी नगरीमें २०५ वर्षे यापुलीय संघका भेद हुआ, और श्रीकलशसें श्वेतपट हुआ. ॥ २९ ॥ विक्रमराजाके मरण प्राप्त हुए पीछे ५२६ वर्षे दाक्षिणमथुरामें महामोहसें द्राविडनामा संघ उत्पन्न हुआ. ॥ २८ ॥ विक्रमराजाके मरण पीछे ७५३ वर्षे नंदियडेवरगाममें काष्टसंघ उत्पन्न हुआ जानना. ॥ ३८ ॥

इस काष्टसंघकी मूलसंघकी पट्टावलिमें तथा नीतिसारमें निंदा नही लिखि है, परंतु देवसेनने काष्टसंघकी दर्शनसारमें बहुत निंदा लिखि है.। तथाहि ॥

सिरिवीरसेणसीसो जिणसेणो सयलसत्थविन्नाणी ॥
सिरिपउमनंदि पच्छा चउसंघसमुद्धरो धीरो ॥ ३० ॥
तस्स य सीसो गुणवं गुणभद्दो दिव्वणाणपरिपुण्णो ॥
परकव्वसयहमद्दी महातवो भावलिंगो य ॥ ३१ ॥
तेणप्पणोवि मच्चुं णाऊणं मुणिस्स विणयसेणस्स ॥
सिद्धंते घोसित्ता सयं गयं सग्गलोयस्स ॥ ३२ ॥
आसी कुमारसेणो णंदियरे विणयसेणमुणिसीसे ॥
सण्णासभंजणेण य अगहियपुणुदिक्खओ जादो ॥ ३३ ॥
परिवज्जिऊण पिच्छं चमरं घित्तूण मोहकलिदेण ॥
उम्मग्गं संकलियं वागडविसएसु सव्वेसु ॥ ३४ ॥
इत्थीणं पुण दिक्खा खुल्लयलोमस्स वीरचरियत्तं ॥
कक्कसकेसग्गहणं छट्ठं गुणव्वदं णाम ॥ ३५ ॥

आयमसत्थपुराणं पायच्छित्तं च अण्णहा किंपि ॥
विरइत्ता मिच्छत्तं पवत्तियं मूढलोएसु ॥ ३६ ॥
सो सवणसंघवज्झो कुमारसेणो हु समयमिच्छत्तो ॥
चत्तोवसमो रुद्दो कट्ठं संघं पवत्तवेदि ॥ ३७ ॥
सत्तसए तेवण्णे विक्कमरायस्स मरणपत्तस्स ॥
णंदियडेवरगामे कट्ठो संघोमुणेयव्वो ॥ ३८ ॥

भाषार्थः—श्रीवीरसेनका शिष्य सकल शास्त्रका ज्ञाता जिनसेन हुआ, तिसके पीछे चार संघका उद्धार करनेवाला धीर पुरुष श्री पद्मनंदि हुआ, तिसका गुणवान् दिव्यज्ञानपरिपूर्ण परकाव्यको मर्दन करनेवाला महातपस्वी भावलिंगी गुणभद्र नामा शिष्य हुआ, तिसने अपना मृत्यु जानके विनयसेन मुनिको सिद्धांत पढाके स्वयं स्वर्गलोकको गमन किया. विनयसेन मुनिका शिष्य कुमारसेन हुआ, तिसने संन्यास भांग दीया, फिर विनाही गुरुके ग्रहण करे दीक्षित हुआ, पिच्छको त्यागके चामर ग्रहण करके मोहसंयुक्त होके तिसने सर्ववागडदेशमें उन्मार्ग चलाया; स्त्रीको दीक्षा क्षुल्लकलोमको वीरचारियत्त कर्कशकेशग्रहण छट्ठागुणव्रत आगमशास्त्रपुराणप्रायश्चित्त इत्यादि कितनीक अन्यथा रचना करके मूढलोकोंमें मिथ्यात्व प्रवर्त्ताया, सो सर्वसंघसें बाह्य ऐसा कुमारसेन रुद्र उपशमको त्यागके मिथ्यासिद्धांत, और काष्टसंघको प्रवर्त्तावता हुआ. विक्रमराजाके मरण पीछे सातसौ त्रेपन (७५३) वर्षे नंदियडेवरगाममें काष्टसंघ उत्पन्न हुआ जानना. इति ॥

तथा अन्य दिगंबर ग्रंथोंमें लोहाचार्यसें काष्टसंघकी उत्पत्ति लिखि है, और दर्शनसारमें कुमारसेनसें काष्टसंघकी उत्पत्ति लिखि है.

मूलसंघकी बलात्कारगणकी पट्टावलिमें भद्रबाहु श्रीवीरनिर्वाणसें ४९८ वर्षे पट्टस्थ हुए लिखा है. तथाहि । बहुरि श्रीवीरस्वामीकूं मुक्ति गयें पीछें च्यारिसैं सत्तरि (४७०) वर्ष गये पीछें श्रीमन्महाराज विक्रमराजाका जन्म भया, बहुरि पूर्वोक्त सुभद्राचार्यतें विक्रमराजाको जन्म हैं.

बहुरि विक्रमके राज्यपदसैं वर्षचत्वारि (४) पीछैं पूर्वोक्त दूसरा भद्रबाहुकूं आचार्यका पट्ट हुवा. । बहुरि श्रीमहावीरस्वामी पीछैं च्यारिसैं बाणवैं (४९२) वर्ष गये सुभद्राचार्यका वर्त्तमान वर्ष चोईस (२४) सो विक्रमजन्मतैं बावीस (२२) वर्ष, बहुरि ताका राज्यतैं वर्ष च्यार (४) दूसरा भद्रबाहु हुवा जांणना. बहुरि श्रीमहावीरतैं च्यारसैंसत्तरि (४७०), वर्ष पीछैं विक्रम राजा भयो, ताके पीछैं आठ वर्षपर्यंत बालक्रीडा करि, ताके पीछैं सोलह वर्षतांई देशांतरविषैं भ्रमण करि, ताके पीछैं छप्पनवर्षतांई राज कीयो नानाप्रकार मिथ्यात्वके उपदेश करि संयुक्त रह्यौ, बहुरि ताके पीछैं चालीसवर्षतांई पूर्व मिथ्यात्वको छोड़ि जिनधर्मकूं पालिकरि देवपदवी पाई, ऐसें विक्रमराजाकी उत्पत्ति आदि है.

तदुक्तं विक्रमप्रबंधे गाथा ॥

सत्तरिचदुसदजुत्तो तिणकाले विक्कमो हवइ जम्मो ॥
अठवरसबाललीला सोडसवासेहिं भम्मिए देसे ॥ १ ॥
रसपणवासारज्जं कुणंति मिच्छोपदेससंजुत्तो ॥
चालीसवासजिणवरधम्मं पालेय सुरपयं लहियं ॥ २ ॥

इससें सिद्ध होता है कि, दूसरे भद्रबाहु श्रीवीरनिर्वाणसें ४९८ वर्षे पट्टपर हुए. क्योंकि, श्रीवीरनिर्वाणसें ४७० वर्षे विक्रमराजाका जन्म हुआ, ८ वर्ष विक्रमराजाने बालक्रीडा करी, १६ वर्ष देशाटन करा, एवं सर्व मिलाके ४९४ वर्ष हुए; पीछे विक्रमका राज्यपद हुआ, तिसके राज्यके ४ संवत्में भद्रबाहुका पट्टपर होना, एवं ४९८ वर्ष हुए. और सर्वार्थसिद्धिकी भाषाटीकामें श्रीवीरनिर्वाणसें ६४३ वर्षे भद्रबाहु हुए लिखे हैं.

पूर्वोक्त पट्टावलिमें प्रथम ऐसें लिखा है, बहुरि श्रीमहावीरस्वामीपीछैं च्यारसैं अडसठि (४६८) वर्ष गए सुभद्राचार्य भया, ताके वर्त्तमान कालके वर्ष छह (६) बहुरि ताके पीछैं तथा श्रीमहावीरस्वामीपीछैं च्यारसैं चहोत्तरि (४७४) वर्ष गये यशोभद्राचार्य भये, ताका वर्त्तमानकालके वर्ष अठारह (१८) है. और आगे जाके लिखा है कि, बहुरि श्रीमहावीरस्वामीपीछैं च्यारिसैं बाणवैं (४९२) वर्ष गये सुभद्राचार्यका वर्त्तमान वर्ष चोईस (२४).

तथा "वहुरि ताकै पीछैं तथा श्रीवीरनाथकूं मुक्ति हुवां पीछैं च्यारसैं वाणवैं (४९२) वर्ष गये दूसरा भद्रवाहु नामा आचार्य भया, याका वर्त्तमान कालका वर्ष तेईस(२३) का हैं." ऐसें प्रथम लिखा है. पीछे "विक्रम राजकूं राज्यपदस्थके दिनतें संवत् केवल ४ के चैत्रशुक्ल १४ चतुर्दशीदिने श्रीभद्रवाहुआचार्य भये " ऐसें लिखा है, सो भी पूर्वापरविरोधवाला है. इसकी गिणती पूर्वे लिख आए हैं.

पूर्वोक्त पट्टावलिमेंही "वहुरि ताके पीछैं तथा श्रीवीरस्वामीपीछैं पांचसैं पंदरह (५१५) वर्ष गयें लोहाचार्य भये ताका वर्त्तमान काल पचास(५०) वर्षका है"—ऐसें लिखके फिर लिखा है कि—"श्रीवर्द्धमानस्वामीको मुक्ति हुये पांचसैं पैंसठि (५६५) वर्ष गयें अर्हद्वलिआचार्य भये ताका वर्त्तमान काल वर्ष अष्टाविंशति (२८) का है" प्रथम ऐसें लिखके फिर आगे जाके भद्रवाहुस्वामीसें पाटानुक्रम लिखा है, तिसमें ऐसें लिखा है, "वहुरि ताके पीछैं संवत् केवल छहवीस (२६)का फाल्गुनशुक्ल १४ दिनमें गुप्तगुप्तिनामा आचार्य जातिपरवार भये" यह लेख भी विरोधी है, क्योंकि, प्रथमके लेखमें भद्रवाहुके पीछैं लोहाचार्य, और पीछे अर्हद्वलिको कथन करा; और पिछले लेखमें भद्रवाहुके पीछेही अर्हद्वलिको कथन करा.—गुप्तगुप्तिकाही नाम अर्हद्वलि है, विशाखाचार्य भी इसहीका नाम है.—तथा पूर्वोक्त लेखमें अर्हद्वलिको श्रीवीरनिर्वाणसें ५६५ में पट्टपर हुआ लिखा है, और पिछले लेखसें श्रीवीरनिर्वाणसें ५२० वर्षे अर्हद्वलिपट्टऊपर हुआ सिद्ध होता है.

तथा प्रश्नचरचा समाधानमें लिखा है कि " महावीर भगवान्के निर्वाणपीछे संवत् ६८३ वर्षे धरसेनमुनि गिरनारकी गुफामें बैठे थे, तिस कालमें ग्यारां (११) अंग विच्छेद गये थे " यह लेख विक्रमप्रवंध, और पूर्वोक्त मूलसंघकी पट्टावलिसें विरोधी है. क्योंकि, पट्टावलिमें ऐसें लिखा है "वहुरि ताके पीछैं तथा श्रीसन्मतिनाथ (महावीर) पीछैं छहसैं चउदह (६१४) वर्ष गयें धरसेनाचार्य भये, ताका वर्त्तमान वर्ष इकईसका है" तथा पूर्वोक्त पट्टावलिमेंही भूतवलि आचार्यतक एक अंगके धारी मुनि लिखे हैं, सो आगे लिख दिखावेंगे.

पुनः पूर्वोक्त चरचासमाधानमें लिखा है, "धरसेनमुनि ज्ञानवान रहै कर्मप्राभृत दूसरे पूर्वकी कंठाग्रथा, तिनके अल्पायु अपनी जानकर ज्ञानके अविवच्छेद होनेके कारणते जिनयात्रा करने संघ आया था, तिनपास पत्री ब्रह्मचारीके हाथ भेजकर, तिक्ष्ण बुद्धिमान् भूतबलि, पुष्पदंत, नामे दो मुनि बुलवाये, तिनकूं ज्ञान सिखाया, तिनकूं विदाय करा." यह लेख भी पूर्वोक्त ग्रंथोंसें विसंवादी है. क्योंकि, पूर्वोक्त ग्रंथोंमें ऐसें लिखा है. बहुरि ताके पीछैं तथा श्रीवीर भगवान्कूं निर्वाण भये पीछैं छहसै तेतीस वर्ष भुक्ते पुष्पदंताचार्य भये, ताका वर्त्तमान काल वर्ष तीस (३०) का भया, बहुरि ताके पीछैं तथा श्रीमहावीरपीछैं छहसैं तिरेसठि (६६३) वर्ष गये भूतबल्याचार्य भये, ताका वर्त्तमान काल वीस (२०) वर्षका भया, ऐसैं अनुक्रमसैं अनुक्रमते भये बहुरि श्रीमहावीरस्वामीकूं मुक्ति गयें पीछैं छहसैं तियांसी (६८३) वर्ष तांई पूर्व अंगकी परिपाटी चाली, फिरि अनुक्रमकरि घटती रही. और पूर्वोक्त अर्हद्बल्याचार्यादि पांच आचार्यका वर्त्तमान काल एकसो अठारह (११८) वर्षका है, इहांतांई एकांगके धारी मुनि भये हैं, बहुरि ताके पीछैं श्रुतिज्ञानी मुनि भये, ऐसैं आचार्यनिकी परिपाटी हैं.

तथा च विक्रमप्रबंधे ॥

पंचसये पण्णट्ठे अंतिमजिणसमयजादेसु ॥
उप्पण्णा पंचजणा इयंगधारी मुणेयव्वा ॥ १२ ॥
अहवल्लि माहणंदि य धरसेणं पुप्फयंत भूतबली ॥
अडवीसं इगवीसं उगणीसं तीस वीस पुण वासा ॥ १३ ॥
इगसयअठारवासे इगंगधारी य मुणिवरा जादा ॥
छस्सयतिगसियवासे णिव्वाणा अंगछित्ति कहिय जिणे ॥ १४ ॥

इसका भावार्थ ऊपर लिख आए हैं.

अब विचार करो कि श्रीवीरनिर्वाणसें ६८३ वर्षे धरसेन मुनि कहांसें आए? भूतबलि पुष्पदंतको किसने बुलवाया? भूतबलि पुष्पदंत कहांसें

आए? किसने पढाये? कौन पढे? क्योंकि, धरसेनका मृत्यु ६३३ में हुआ, पुष्पदंतका मृत्यु ६६३ में हुआ, और भूतबलिका मृत्यु ६८३ में हुआ, पूर्वोक्त लेखसें सिद्ध होता है, तो फिर, चरचासमाधान बनानेवालेने श्रीवीरनिर्वाणसें ६८३ वर्ष तीनोंका मिलाप कैसें कराय दिया? और तिन दोनों भूतबलिपुष्पदंतने जेष्ठसुदि ५ को तीन सिद्धांत बनाये यह कैसें लिख दिया? यह तो ऐसें हुआ, जैसें कोइ कहे—"मम मुखे रसना नास्ति, वा मम माता वंध्या वर्त्तते"—इसवास्तेंही श्वेतांबरमतोत्पत्तिकी बाबत जो लेख लिखा हैं, सो स्वकपोलकल्पित हैं; सत्य नहीं है. तथा मथुराके पुराने टीलेमेंसें खोदनेसें स्तंभ तथा महावीरस्वामीकी मूर्ति ऊपर शिलालेख निकले हैं, तिन लेखोंके वाचनेसें जो कल्पना दिगंबराचार्योंने श्वेतांबरमतकी उत्पत्तिबाबत लिखी है, सो सर्व मिथ्या सिद्ध होती है; वे सर्व लेख आगे चलकर लिखेंगे.

दिगंबरः—तत्त्वार्थसूत्रकी सर्वार्थसिद्धिभाषाटीकाके प्रारंभमेंही श्वेतांबरमतकी बाबत ऐसा लेख लिखा है—तथाहि—श्रीवर्द्धमान अंतिम तीर्थंकरके निर्वाण भया पीछे तीन केवली तथा पांच श्रुतकेवली इस पंचमकालविषे भये, तिनमें अंतके श्रुतकेवली श्रीभद्रबाहुस्वामीके देवलोक गया पीछे कालदोषतें केतेइक मुनि शिथलाचारी भये, तिनका संप्रदाय चल्या, तिनमें केतेइक वर्षपीछे एकदेवर्षिगणि नामा साधु भया, तिन विचारी जो हमारा संप्रदाय तो बहुत बध्या, परंतु शिथलाचारी कहावे है, सो यहु शक्ति नहीं, तथा आगामी हमतें भी हीनाचारी होयगे, सो ऐसा करीये जो इस शिथलाचारकूं कोइ बुद्धिकल्पित न कहे. तब तिसके साधनेनिमित्त सूत्र रचना करी, चोरासी सूत्र रचे, तिनमें श्रीवर्द्धमानस्वामी और गौतमस्वामी गणधरका प्रश्नोत्तरका प्रसंग ल्याय शिथलाचारपोषणके हेतु दृष्टांतयुक्ति बनाय प्रवृत्ति करी, तिन सूत्रनिके आचारांगादि नाम धरे, तिनमें केतेइक विपरीत कथन कीये; केवली कवलाहार करे, स्त्रीकूं मोक्ष होय, स्त्री तीर्थंकर भया, परीग्रहसहितकूं मोक्ष होय, साधु उपकरण वस्त्र पात्र आदि चौदह राखे, तथा रोगग्लान आदि वेदनाकरी

पीडित साधु होय तो मद्यमांससहितका आहार करे तो दोष नही. इत्यादि लिखा. तथा तिनकी साधककल्पित कथा बनाय लिखी. एक साधुको मोदकका भोजन करताही आत्मनिंदा करी तब केवलज्ञान उपज्या, एक कन्याको उपाश्रयमें बुहारी देतेही केवलज्ञान उपज्या, एक साधु रोगी गुरुको कांधे लेचल्या आखडता चाल्या गुरु लाठीकी दई तब आत्मनिंदा करी ताको केवलज्ञान उपज्या तब गुरु वाके पग पड्या; मरुदेवीको हस्तीपरी चढेही केवलज्ञान उपज्या, इत्यादिक विरुद्ध कथा, तथा श्रीवर्द्धमानस्वामी ब्राह्मणीके गर्भमें आये, तब इंद्र वहांते काढि सिद्धार्थ राजाकी राणीके गर्भमें थापे, तथा तिनकूं केवल उपजे पीछे गोसालानाम गरूड्याकूं दिख्या दइ, सो वाने तप बहुत किया, वाके ज्ञान वध्या, रिद्ध फुरी, तब भगवानसूं वाद किया, तब वादमें हाऱ्या, सो भगवानसूं कषाय करि तेजूलेश्या चलाइ सो भगवानके पेचसका रोग हुवा, तब भगवानके खेद बहुत हुवा, तब साधानें कही एक राजाकी राणी बिलाके निमित्त कूकडा कवूतर मारि भुतलस्याहै, सो वै महारेंताई ल्यावो, तब यह रोग मिट जासी, तब एक साधु वह ल्याया, भगवान खाया, तब रोग मिट्या; इत्यादि अनेक काल्पित कथा लिखी. अर स्वेतवस्त्र पात्रा दंडआदि भेषधारी स्वेतंबर कहाये, पीछे तिनकी संप्रदायमें केइ समझवार भये, तिननें विचारी ऐसे विरुद्ध कथनते लोक प्रमाण करसी नही, तब तिनके साधनेंकूं प्रमाणनयकी युक्ति बणाय नयविवक्षा खडी करी. ऐसे जैसें तैसें साधी, तथापि कहांताइ साधै, तब केइ संप्रदायी तिन सूत्रनमें अत्यंत विरुद्ध देखे, तिनकूं तो अप्रमाण ठहराय गोपि कीये, कमि राखें, तिनमें भी केइकने पैंतालीस राखे, केइकने बत्तीस राषे, ऐसे परस्पर विरोध वध्या तब अनेक गच्छ भये, सो अवताई प्रसिद्ध है. इनिके आचार विचारका कछू ठिकाणा नही. इनहीमें ढूंढिये भयें है, तिने निपटही निंद्य आचरण धाऱ्या है, सो कालदोष है, किछू अचिरज नांही, जैनमतकी गोणता इसकालमें होणी है ताके निमित्त ऐसे बणे.

श्वेतांबरः—यह सर्वार्थसिद्धिभाषाटीकामें जो लेख लिखा है, प्रायः द्वेषबुद्धिसें लिखा मालुम होता है. जैसें देवसेनाचार्य दर्शनसारमें लिखते

हैं कि, श्वेतांबरमत चलानेवाला जिनचंद्र प्रथम नरकमें गया. अब विचार करो कि, देवसेनने संवत् ९९० में दर्शनसार बनाया तो, क्या उस वखत देवसेनको कोइ अवधिज्ञान हुआ था कि, जिससें उसने जाना कि, जिनचंद्र पहिली नरकमें गया ? इस देवसेनके लेखसेंही सिद्ध होता है कि, श्वेतांबरमतकी बाबत जो कल्पना करी है सर्व असत्य और द्वेष-संयुक्त है. ऐसेंही सर्व दिगंबराचार्योंकी कल्पनाबाबत जान लेना चाहिये. तथापि सर्वार्थसिद्धिभाषाटीकाके पाठकी समालोचना दिङ्मात्र करते हैं. इस लेखमें बहुत मुनि शिथिलाचारी हो गए, तिनका संप्रदाय चला लिखा है, और अंतके श्रुतकेवली प्रथम भद्रबाहुस्वामीके पीछे चला लिखा है, यह श्वेतांबरमतकी मूल उत्पत्ति लिखी है. परंतु जिनचंद्रका नाम, वा उत्पत्तिका संवत् यह कुछ भी नही लिखा है. तथा दिगंबरपट्टावलिमें, और विक्रमप्रबंधादि ग्रंथोंमें श्रीवीरनिर्वाणसें १६२ वर्षे प्रथम भद्रबाहु अंतिम श्रुतकेवलीको स्वर्गवासी लिखे हैं; और देवसेनने श्वेतांबरमत चलानेवाले जिनचंद्रको श्रीवीरनिर्वाणसें ७२६ वर्षे हुआ लिखा है, इसवास्ते यह लेख भी परस्पर विरोधी है, इसीवास्ते स्वकपोलकल्पित है.

तथा देवर्षिगणिने शिथिलाचारके पोषणवास्ते श्वेतांबरोंके माने आचारांगादि सूत्र रचे, यह कथन भी अज्ञानविजृंभितही है. क्योंकि, प्रथम तो देवर्षिगणिनामा श्वेतांबरोंका कोई साधुही नही हुआ है तो, रचना दूरही रही!! परंतु प्रथम सर्व पुस्तक ताडपत्रोपरि लिखने लिखानेवाले श्रीदेवर्द्धिगणिक्षमाश्रमण पूर्वके ज्ञानके धारक हुए हैं, वे तो श्रीवीरनिर्वाणसें ९८० वर्ष पीछे हुए हैं, तो, क्या श्वेतांबरोका मत विनाही शास्त्रके ८१८ वर्षतक चलता रहा ? लिखनेवालेकी कैसी अज्ञानता थी कि, विनाही शोचे विचारे असमंजस लेख लिख दीया !! तथा देवर्द्धिगणिक्षमाश्रमणजीने तो, शास्त्र पुस्तकारूढ करे हैं, परंतु रचे नहीं हैं. जैनश्वेतांबर आगमोंकी रचना तो, यूरोपीयन सर्व विद्वान मंडलने २२ सौ वर्षसें भी अधिक पुराणी सिद्ध करी है, * तो फिर किसी अज्ञने देवर्षिगणिके

* देखो सेक्रेडबुकके अंतर्गत आचारांगसूत्रके अंग्रेजी तरजुमेकी उपोद्घात (प्रस्तावना) में और बुल्हरकृत मथुराके शिलालेखोके भाषणोंमें ॥

रचे लिखे हैं तो, क्या विद्वान् तिस अप्रमाणिक लेखको सत्य मान लेवेंगें ? कदापि नहीं.

और जो लिखा है कि, कितनेक विपरीत कथन किये. केवली कवल आहार करे १, स्त्रीकों मोक्ष २, स्त्री तीर्थंकर भया ३, परिग्रहसहितको मोक्ष होय ४, साधु वस्त्रपात्रादि चतुर्दश (१४) उपकरण राखे ५, तथा रोगग्लानादिपीडित साधु होय तो मद्यमांससहितका आहार करे तो दोष नहीं ६, इत्यादि लिखा, इनका उत्तर—प्रथम तीन बातें तो सत्य हैं. क्योंकि, केवलीका कवल आहार और स्त्रीको मोक्ष ये दोनों तो प्रमाणयुक्तीसेंही सिद्ध है, जो आगे लिखेंगे. परंतु दिगंबराचार्य लौकिकव्यवहारके भी अनभिज्ञ थे क्योंकि, लौकिकमतवालोंने अपने मतके आदिदेवते बुद्ध, ब्रह्मा, विष्णु, महादेव, ईसादिकोंको सर्वज्ञ माने हैं, परंतु वे आहार नही करते थे ऐसा किसीने भी नही माना है, और सर्वज्ञ आहार करे तो दूषण है, ऐसा भी किसीने नही माना है. और जगत् व्यवहारमें भी यह बात मान्य नही है कि, देहधारी आहार न करे, और शरीरकी वृद्धि होवे. क्योंकि, विदेहक्षेत्रमें तथा यहां चतुर्थ आरेकी आदिमें नव वर्षके मुनिको केवलज्ञान होवे, तब तिसकी विना कवल आहारके किये पांचसौ धनुष्यकी अवगाहना कैसें वृद्धि होवे ? इसवास्ते दिगंबरोंका कथन असमंजस है. और स्त्री तीर्थंकर हुआ यह तो श्वेतांबरही आश्चर्यभूत मानते हैं तो, इसमें तर्कही क्या है ? । ३ ।

और परिग्रहधारीको जो मोक्ष लिखी है, सो तो मृषावादही है. क्योंकि, श्वेतांबर तो परीग्रहधारीमें साधुपणा भी नही मानते हैं तो, मुक्तिका होना तो कहां रहा ? श्वेतांबरी तो, मूर्च्छाको परिग्रह मानते हैं, नतु धर्मोपकरणको.

यदुक्तं श्रीदशवैकालिकसूत्रे श्रीशय्यंभवसूरिपादैः ॥

जंपि वत्थं च पायं वा कंबलं पायपुच्छणं ॥
तंपि संजमलज्जठ्ठा धारंति परिहंति य ॥
न सो परिग्गहो वुत्तो नायपुत्तेण ताइणा ॥
मुच्छा परिग्गहो वुत्तो इइ वुत्तं महेसिणा ॥

भाषार्थः—जो वस्त्र प्रच्छादकादि शीतनिवारणवास्ते और भिक्षा अन्न-जलादि लेनेवास्ते पात्र, और कंबल वर्षाकल्प पादपुंछन रजोहरणादि, ये सर्व उपकरण संयम और लज्जाकेवास्ते मुनि धारण करते हैं, और पहिरते हैं. अर्थात् संयमकेवास्ते पात्रादि धारण करते हैं, और लज्जाके वास्ते चोलपट्टकादि वस्त्र पहिरते हैं. इसवास्ते इसको षट्कायके जीवोंके रक्षक ज्ञातपुत्र अर्थात् श्रीमहावीर तीर्थंकरने परिग्रह नही कहा है, परंतु मूर्च्छाको परिग्रह कहा है. अर्थात् जिस वस्तु शरीरादि ऊपर मूर्च्छा ममत्व करना है, सोही परिग्रह कहा है, नतु धर्मसाधनके उपकरणोंको; महाऋषि गौतम सुधर्मादिकोंका ऐसा कथन है.

तथा दिगंबराचार्य शुभचंद्रकृत ज्ञानार्णवके षोडश (१६) प्रकरणमें भी लिखा है ।

यतः ॥

निःसंगोपि मुनिर्न स्यात् संमूर्च्छन् संगवर्जितः ॥
यतो मूर्च्छैव तत्त्वज्ञैः संगसूतिः प्रकीर्त्तिता ॥ ५ ॥

भाषार्थः—जो मुनि निःसंग होय, बाह्य परिग्रहराहित होय, और ममत्व करता होय तो, निःपरिग्रही न होय, जाते तत्त्वज्ञानिनने मूर्च्छा ममत्व परिणामहीकूं परिग्रहकी उत्पत्ति कही है ॥ ५ ॥ इसवास्ते धर्मोपकरण धर्मसाधनकेतांइ रखने, तिनऊपर मूर्च्छा नही करनी, इसवास्ते परिग्रह नही है. तिस धर्मोपकरणधारी मुनिको केवलज्ञान, और मुक्ति दोनोंही सिद्ध है.

दिगंबरः—जब धर्मोपकरण रखेगा, तब तो मूर्च्छा अवश्यमेवही होवेगी तो फिर, तिसको परिग्रहका त्यागी कैसें माना जावे ?

श्वेतांबरः—अहो देवानांप्रिय ! तूं तो अपने मतके शास्त्रोंका भी जानने-वाला नही है, क्योंकि, ज्ञानार्णवके अष्टादश (१८) प्रकरणमें यह पाठ है।

तथाहि ॥

शय्यासनोपधानानि शास्त्रोपकरणानि च ॥
पूर्वं सम्यक् समालोक्य प्रतिलिख्य पुनः पुनः ॥१५॥

गृह्णतोस्य प्रयत्नेन क्षिपतो वा धरातले ॥
भवत्यविकला साधोरादानसमितिः स्फुटम् ॥१६॥

भाषार्थः—शय्या आसन उपधान शास्त्र उपकरण इनकूं पहिले नीके देख अर फेरिफेरि प्रतिलेषण कर अर ग्रहण करे, ताकै अर वडा यत्न कर पृथ्वीतलमैं धरे, ताकै संपूर्ण आदाननिक्षेपणसमित प्रगट कही है. तथा योगेंद्रदेवकृत परमात्मप्रकाशकी टीकामें दिगंबरसुनिको तृणके अर्थात् घासके प्रावरण—प्रच्छादन रखने कहे हैं, और मोरपीछी कमंडल तो प्रसिद्धही है. जब दिगंबरमुनि शय्या १, आसन २, उपधान——गिंडुक तकिया ३, शास्त्र ४, शास्त्रके उपकरण पाटी ५, बंधन ६, दोरा ७, ठिहि-का ८, तृणके प्रावरण ९, पीछी १०, कमंडलु ११, इत्यादि उपकरण रखते थे, वा दिगंबर मुनिको रखनेकी आज्ञा है, तब तो वे भी तुम्हारे कहनेसें तिन ऊपर मूर्च्छा ममत्व करते होवेंगे; तब तो दिगंबर मुनियोंको परिग्रह धारी होनेसें कदापि साधुपणा, केवलज्ञान, मुक्ति न होवेगी, तब तो दिगं-बरमत प्रेक्षावानोंको उपादेय नही होवेगा. इससें तो तुमने श्वेतांबरो-की हानि करते हुयोंने, अपनेही पगमें कुठार मारा सिद्ध होवेगा. । ४ ।

पांचमे अंकमें लिखा है साधु उपकरण चौदह राखे, सो सत्य है क्यों-कि, उपकरणोंके विना राखे प्रायः संयमका पालना नही होता है. इसवास्तेही तो दिगंवर साधु सर्व व्यवच्छेद होगए. हां कल्पित साधु कहांतक रह सकते हैं !

दिगंवरः—हमारे मतके नग्नसुनि कर्णाटक आदि देशोमें जैनवद्री मूलबद्री आदि नगरोंमें अब भी हैं.

श्वेतांवरः—यह तुम्हारा कहना महामिथ्या है. क्योंकि, कर्णाटक देशके रहनेवाले नागराज नामा जैन ब्राह्मणको, तथा मारवाडी, कच्छी, गुज-राती, श्वेतांबर तथा दिगंबर जे कर्णाटकादि देशोंके जैनबद्री मूलबद्री आदि नगरोमें यात्रा करके आए हैं, तिनसें हमनें अच्छीतरेसें पूछा है कि, तुमने यथोक्त मुनिवृत्तिका पालनेवाला दिगंबरमतका नग्न साधु, कोई देखा, वा सुना है ? तब तिन्होंने कहा कि, नग्न-

दिगंबरमुनि हमने कोइ भी देखा, वा सुना नही है. परंतु भट्टारक परिग्रहधारी, और भट्टारककी आज्ञासें श्रावकोंके पाससें रूपइए उग्राह करके भट्टारकोंको ल्यादेनेवाले, ऐसे 'क्षुल्लक' नामसें प्रसिद्ध, वे तो हैं। इसवास्ते यथोक्तवृत्ति पालनेवाला नग्न दिगंबरसाधु अद्यतनकालमें कोइ भी नही है. जेकर अंग्रेजी राज्यमें रेल तारके हुए भी, श्रावगीलोग (दिगंबरमतावलंबी) अपने सच्चे गुरुकी शोध नही करेंगे तो, कब करेंगे!!! सत्य तो यह है कि, ऐसे गुरु हैही नही. क्योंकि, ऐसी अनुचितवृत्ति तो कथन कर दीनी, परंतु तिसको पाले कोन? इसवास्ते चउदह उपकरणधारी श्वेतांबरीही साधु है, अन्य नहीं.* । ५ ।

छट्ठे अंकका उत्तर—रोगी ग्लानी साधु मद्यमांससहितका आहार करे तो दोष नही, ऐसा पाठ श्वेतांबरके किसी भी आगममें नही है. । ६ ।

और जो लिखा है कि, तिनीकी साधक कल्पित कथा बणाय लिखी, एक साधुको मोदकका भोजन करताही आत्मनिंदा करी, तब केवलज्ञान उपज्या,

उत्तर यह लेख मिथ्या है श्वेतांबरशास्त्रमें ऐसा लेख नही है.

एक कन्याको उपाश्रयमें बुहारी देतेही केवलज्ञान उपज्या, यह लेख भी मिथ्या है, शास्त्रमें न होनेसें। गुरुचेलेकी बाबत लिखा है, सो भी मिथ्या है, ऐसा लेख न होनेसें. महावीरजीको गर्भसें बदला, यह अच्छेरा हुआ माना है. फिर इसमें तर्क क्या है? और जो गोसालेने श्रीमहावीरजीके ऊपर तेजोलेश्या फेंकी सो सत्य है. और तिस तेजोलेश्याकी गरमीसें भगवंतके शरीरमें पित्तज्वर और पेचसका रोग उत्पन्न हुआ, यह कथन तो सत्य है, परंतु यह तो सर्व श्वेतांबरोंके शास्त्रमें अच्छेराभूत माना है. और असातावेदनीयकर्मका

---

† फर्रुखनगरनिवासी चौधरी जियाालालजीने जैनबद्री मूलबद्रीके वर्णनका पुस्तक प्रसिद्ध करा है, तिसमें मूलबद्रीमें ३० घर लिखे हैं, और जैनबद्रीमें १०० घर जैनीयोंके लिखे हैं, परंतु ऐसा कहीं नही लिखा है कि, हम यात्रा करते हुए फलाने नगरमें गए, और हमने मुनमहाराजके दर्शन पाए, पाप कटाए; दिगंबर जैनबद्री बंगलूरकों कहते है, और मूलबद्री मूडबद्रीको कहते है. ॥

* चतुर्दश (१४) उपकरण औघिकउपधिकी अपेक्षा जाणने. क्योंकि, जैनमतके शास्त्रोंमें दो प्रकारकी उपधि कही है. औधिक और औपग्राहिक. ॥

उदय केवलीके दिगंबरोंने भी माना है. पार्श्वपुराण भूदरकृत भाषाग्रंथमें दिगंबरोंने भी कितनेक अच्छेरे माने हैं. तो फिर, अच्छेरेभूत कथनको नही मानना, यह क्या प्रेक्षावानोंका काम है ? नही कदापि नही. । तुम्हारे बडोंने तो, जब अपने ग्रंथ अलग रचे तब जो जो कथन उनको अच्छा न लगा, सो सो उन्होंने न लिखा. जैसें केवलीको कवल आहार १, स्त्री तीर्थंकर २, स्त्रीको मोक्ष ३, भगवान्का गर्भपरावर्त्तन ४, गोसालेका उपसर्ग ५, केवलीकोरोग ६, इत्यादि। और श्वेतांबराचार्य तो भवभीरु थे, इसवास्ते उन्होंने सिद्धांतोंका पाठ जैसा था, वैसाही रहने दीया. जेकर श्वेतांबराचार्य तिन वस्तुयोंको न मानते तो, तिनके मतकी कुछ भी हानि नही थी. और माननेसें कुच्छ मतकी पुष्टि भी नही है. परंतु अरिहंतका कथन अन्यथा करनेसें, वा माननेसें मिथ्यादृष्टिपणा, और अनंतसंसारीपणा होजाता है. इसवास्तेही तुम्हारीतरें आगमका कथन अन्यथा नही कर सके हैं. और तुम्हारे सर्वग्रंथोंकी रचनासें श्वेतांबरोंके आगम प्राचीन रचनाके हैं; ऐसी गवाही (साक्षी) सूत्ररचनाके कालके जाननेवाले सर्व यूरोपीयन विद्वानोंने दीनी है. इसवास्ते श्वेतांबरोंके आगमादिमें जो कथन है, सो सर्वज्ञ अरिहंतका कथन करा हुआ है; और तुम्हारे सर्व ग्रंथ पीछेसें रचे गये हैं, इसवास्ते तिनमें मनःकल्पित बातें भी बहुत लिखीं गई हैं.

और जो यह लिखा है कि, भगवान्ने साधाने कहा एक राजाकी राणी बिलाके निमित्त कूकडा कबूतर मारि भुतलस्या है, सो वै माहरें ताई ल्यावो, तब यहु रोग मिट जासी, तब एक साधु वह ल्याया, भगवान खाया, तब रोग मिट्या.

उत्तरः—यह लेख किसी अज्ञानीका लिखा मालुम होता है, क्योंकि, श्वेतांबरके शास्त्रोंमें ऐसा लेखही नहीं है.

और जो यह लिखा है कि, प्रथम चौरासी (८४) सूत्र रचे, पीछे तिनमें विरोध देखके कितनेकनें पैंतालीस माने, राखे, कितनेकनें बत्तीस माने, ऐसें परस्पर विरोध वध्या, तब अनेक गच्छ भए, सो अबतांइ प्रसिद्ध है. इनके आचार विचारका कछू ठिकाणा नाही.

उत्तरः—प्रथम तो यह लेखही मिथ्या है. क्योंकि, हमारे (श्वेतांवरोंके) शास्त्रमें ऐसा लेखही नही है कि,हमारे मतके चौरासी आगम हैं. परंतु श्रीनंदिसूत्रमें द्वादशांगोंसें पृथक् चौदह हजार (१४०००) प्रकीर्ण शास्त्र लिखे हैं. तिनमेंसें कालदोषकरके जितने व्यवच्छेद हो गए हैं, वे तो गए, जो बाकी शेष रहे हैं, तिन सर्वको हम मानते हैं. परंतु हमारे मतमें एवकार नही है कि, चौरासी, वा पैंतालीस, वा बत्तीसही मानने. जे मानते हैं, वे सर्व, मिथ्यादृष्टि, और जिनमतसें बाह्य हैं. और जो गच्छोंके भेदका दूषण दीया है, सो तो तुम्हारे मतमें भी समान है. तुम्हारे आचर्योंनेही दिगंबरमतमें अनेक गच्छोंके भेद लिखे हैं, जिनमेंसें कितनेक ऊपर लिख आए हैं. परंतु इतना विशेष है कि, श्वेतांवरोंमें जितने गच्छ, वा मत कहे जाते हैं, वे सर्व, स्त्रीको मोक्ष १, केवलीको कवलाहार २, स्त्री तीर्थंकर ३, गोसालेने तेजोलेश्या चलाई ४, केवलीको रोग ५, साधुको चतुर्दशादि उपकरण ६, इत्यादि सर्व बातें मानते हैं.

और यह जो सर्वार्थसिद्धिवालेनें लिखा है कि " तिनको (वर्द्धमान स्वामीको) केवल उपजे पीछे गोसालानाम गरूड्याकूं दिखा दइ " सो यह लेख भी, असत्य है. क्योंकि, गोसाला गरूड्या नही था, किंतु मंखलीपुत्र था. तथा भगवानने तिसको दीक्षा नही दीनी थी, किंतु उसने आपही शिर मुंडन करवायके शिष्यबुद्धि धारण करी थी. वास्तविकमें वो शिष्य नही था. क्योंकि, श्वेतांबरोंके शास्त्रोंमें इसको शिष्याभास लिखा है. तथा यह वृत्तांत भगवान् जब छद्मस्थ अवस्थामें विचरते थे, तिस वखतका है; परंतु केवलज्ञान हुए पीछेका नही है.

और जो ढूंढियोंकी बाबत लिखा है, सो भी मिथ्या है. क्योंकि, ढूंढकपंथ जैन श्वेतांबरमतमें नही है. यह तो, सन्मूर्च्छिमपंथ है. संवत् १७०९ में सुरतके वासी लवजीने निकाला है. जैसें दिगंबरोंमें तेरापंथी, गुमानपंथी, आदि. तथा कितनेक विना गुरुके नग्न दिगंबर मुन, भोले श्रावगीयोंसें धन लेनेकेवास्ते बने फिरते हैं, और क्षुल्लक बने फिरते हैं, ऐसेंही श्वेतांबर मतके नामको कलंकित करनेवाला, आचार विचारसें भ्रष्ट,

ढूंढकमत उत्पन्न हुआ है. इनका निंद्य आचरण, इनकोंही दुःखदायी होवेगा, न तु श्वेतांबरमतवालोंको. इसवास्ते इनकेसाथ हमारा कुछ भी संबंध नही है; वीसपंथी, तेरापंथी, गुमानपंथी आदिवत्. ॥

और तुम अपनी तर्फ नही देखते हो कि, हमारा पंथ नवीनही निकाला है, और सर्व शास्त्र नवीनही रचे हुए हैं. क्योंकि, प्रश्नचर्चा-समाधाननामाग्रंथके १३५ मे प्रश्नमें लिखा है कि, "महावीर भगवान्के नीर्वाणपीछे संवत् ६८३ वर्षे, धरसेन मुनि, गिरनारकी गुफामें वैठे थे, तिस कालमें ग्यारा अंग विच्छेद गए थे, धरसेन मुनि ज्ञानवान् रहे. कर्मप्राभृत दूसरे पूर्वकी कंठाग्र था, तिनके अपनी अल्पायु जान कर, ज्ञानके अव्यवच्छेद होनेके कारणतें, जिनयात्रा करने संघ आया था, तिनपास पत्री ब्रह्मचारीके हाथ भेज कर, तीक्ष्ण बुद्धिमान् भूतबलि १, पुष्पदंत २, नामे दो मुनि बुलवाये; तिनको ज्ञान सिखाया, तिनको विदा करा, आप मृतु हुइ. पीछे तिन दोनों मुनिओंने, ज्येष्ठ शुदि ५ कूं तीन सिद्धांत बनाये. सित्तरहजार (७००००) श्लोकप्रमाण धवल १, साठहजार (६००००) श्लोकप्रमाण जयधवल २, चालीसहजार (४००००) श्लोकप्रमाण महाधवल ३, इनकों पढे, सो सिद्धांती कहलाये. इन शास्त्रोंमेंसूं नेमिचंद्रसिद्धांतिने चामुंडरायकेवास्ते गोमट्टसार रचा." तथा आचार्य श्रीसकलकीर्त्तिविरचित प्रश्नोत्तरोपासकाचारके दूसरे अध्यायमें

श्रीसुधर्ममुनींद्रेण चोक्तं श्रीजंबुस्वामिना ॥
केवलज्ञाननेत्रेण ज्ञानं गार्हस्थ्यगोचरम् ॥ ३३ ॥
त्रिषादिमुनिभिः सर्वैर्द्वादशांगश्रुतांतगैः ॥
प्रणीतं भव्यसत्वानामुपकाराय तच्छ्रुतम् ॥ ३४ ॥
ततः कालादि दोषेण प्रायुर्मेधांगहानितः ॥
हीयते प्रांगपूर्वादिश्रुतं श्रीधर्मकारणम् ॥ ३५ ॥

ततः श्रीकुंदकुंदाचार्यादिमुख्या यतीश्वराः ॥
प्रकाशयंति सज्ज्ञानं सद्गृहाधिष्ठितात्मनाम् ॥ ३६ ॥
क्रमात्तद्धि समायातं परिज्ञाय महाश्रुतम् ॥
वक्ष्ये सद्धर्मबीजं हि ज्ञानं भव्यसुखप्रदम् ॥ ३७ ॥

तथा तत्त्वार्थसूत्रकी भाषाटीका सर्वार्थसिद्धिमें लिखा है " बहुरि भद्रबाहुस्वामीपीछे दिगंबरसंप्रदाय, केतेक वर्ष तौ अंगज्ञानकी व्युच्छित्ति भई, अर आचार यथावत् रहवोही कीयो. पीछे दिगंबरनिका आचार कठिन, सो कालदोषते तथावत् आचारी विरले रहि गए. तथापि, संप्रदायमें अन्यथा परूपणा तो न भई. तहां श्रीवर्द्धमान स्वामिकूं निर्वाण गये पीछे छहसैतियालीस (६४३) वर्ष पीछे दूसरे भद्रबाहु नामा आचार्य भये, तिनके पीछे केतेइक वर्षपीछे दिगंबरनिके गुरुके नाम धारक च्यार साखा भई. नंदि १, सेन २, देव ३, सिंह ४, ऐसें इनमें नंदिसंप्रदायमें श्रीकुंदकुंदमुनि, तथा उमास्वामीमुनि, तथा नेमिचंद्र, पूज्यपाद विद्यानंदि, वसुनंदि, आदि वडे वडे आचार्य भये. तिनने विचारी जो, सिथलाचारी श्वेतांवरनिका संप्रदाय तौ, बहुत वध्या, सो तौ कालदोष है; परंतु यथार्थ मोक्षमार्गकी प्ररूपणा चली जाय, ऐसे ग्रंथ रचीए तौ, केई निकटभव्य होय, ते यथार्थ समझि श्रद्धा करे. यथाशक्ति चारित्र ग्रहण करें तौ, यह वडा उपकार है, ऐसें विचारके ग्रंथ रचे. " इत्यादि लेखोंसें यह सिद्ध होता है कि, दिगंबरोंके मतके सर्व ग्रंथ नवीन रचे हुए हैं; प्राचीन पुस्तक कोइ नहीं. जेकर दिगंबरमत सच्चा होता तो, गणधरादि मुनियोंका रचा कोइ ग्रंथ, प्रकरण, अध्याय, वस्तु, प्राभृतादि अवश्य होता, सो है नहीं; इसवास्ते यही सिद्ध होता है कि, अपना मत चलानेवास्ते दिगंबरोंने स्वकल्पनाके ग्रंथ नवीन रच लीने हैं. और दिगंबरमतके तत्त्वार्थादिग्रंथोंकी वार्तिकाटीकादिमें श्रीदशवैकालिक, उत्तराध्ययनादि कितनेही पुस्तकोंके नाम लिखे हैं. इसमें हम यह पूछते हैं कि, अंग और पूर्वोंका प्रमाण तो, तुम्हारे मतमें बहुत वडा

लिखा है; इसवास्ते तुम उनका तो, व्यवच्छेद मानते हो; परंतु दशवैकालिक, उत्तराध्ययनादि, कहां गए?

दिगंबरः—वे भी व्यवच्छेद होगए.

श्वेतांबरः—बडे आश्चर्यकी बात है कि, धरसेनमुनिके कंठाग्र समुद्रसमान दूसरे पूर्वका कर्मप्राभृत तो रह गया, और एकादशांग, और दशवैकालिक, उत्तराध्ययनादि, अल्पग्रंथवाले प्रकीर्णक ग्रंथ व्यवच्छेद हो गए!! ऐसा कथन प्रेक्षावान् तो, कदापि नही मानेंगे, परंतु मत कदाग्रहीही मानेंगे. तथा पूर्वोक्त लेखोंसे यह भी सिद्ध होता है कि, कुंदकुंदादिकोंने, श्वेतांबरमतकी वृद्धि देखके, श्वेतांबरकी महिमा घटानेवास्ते, स्पर्द्धासें, अनुचित कठिन व्रतिके कथन करनेवाले शास्त्र रचे हैं. रागद्वेषके वशीभूत हुआ जीव, क्या क्या उत्सूत्र नही रच सकता है? इन उत्सूत्ररूप ग्रंथोंके चलानेवास्तेही, पिछले अंग प्रकीर्णादि ग्रंथ छोड दीये सिद्ध होते हैं. क्योंकि, अकलंकदेवने राजवार्तिकमें पांचमे अंगव्याख्याप्रज्ञप्तिके कितनेक अधिकार लिखे हैं, वे सर्व, वर्त्तमान श्वेतांबरोंके माने व्याख्याप्रज्ञप्ति पांचमें अंगमें विद्यमान है; तो फिर, अकलंकदेवने किस व्याख्याप्रज्ञप्तिको देखके यह लेख लिखा? जेकर कहो कि, गुरुपरंपरायसें कंठ थे तो, व्याख्याप्रज्ञप्ति व्यवच्छेद कैसें हो गई?

तथा प्रश्नचर्चासमाधानके १६ मे प्रश्नमें ऐसें लिखा है " विद्यमान भरतक्षेत्रमें पंचमकालमें सम्यग्दृष्टी जीव केते पाइए—

समाधानः—जिनपंचलब्धिरूप परिणामकी परणतविषे सम्यक्त्व उपजे है, ते परिणाम इस कलिकालमें महादुर्लभ, तिसतें दोय, तथा तीन, अथवा चार कहे हैं; पांच छह तो दुर्लभ है. इस कथनकी साख स्वामी कार्तिकेय टीकाविषे है.

तथाहि ॥

विद्यंते कति नात्मबोधविमुखाः संदेहिनो देहिनः
प्राप्यंते कतिचित् कदाचन पुनर्जिज्ञासमानाः क्वचित् ॥
आत्मज्ञाः परमप्रमोदसुखिनः प्रोन्मीलदंतर्दृशो

द्वित्राः स्युर्बहवो यदि त्रिचतुरास्ते पंचषा दुर्लभाः ॥
ते संति द्वित्रा यदि इति कथनात् ज्ञानार्णवेप्युक्तम् ॥

इस कालमें घने जीव आपकूं सम्यग्दृष्टि मानें हैं तो, मानो; परंतु शास्त्रविषे तीनचारही कहे हैं. और पंचलब्धिका स्वरूप भलीभांति जाना होइ तो, आपको सम्यग्दृष्टिका अनुमान भी न करै. कोई ऐसे भी कहे हैं, निश्चयकरी भगवान् जाने, अनुमानसों मेरे सम्यक्त है यह भी श्रद्धान, मिथ्या है. जाते सम्यक्त अनुमानका विषय नही. ॥ " इस लेखका समालोचन—जब भरतखंडमें दो तीन जघन्य, और उत्कृष्ट पांच, वा छह (६) सम्यक्त्वधारी जीव वर्तमानकालमें लाभे हैं, वे भी गृहस्थ हैं, वा साधु हैं, यह निश्चय नही. तब तो, सर्व भरतखंडमें दो, वा छ (६) तक वर्जके, जितने दिगंबर श्रावक, श्राविका, नग्नसाधु, भट्टारक, पांडे, और क्षुल्लक, ये सर्व मिथ्यादृष्टि सिद्ध होवेंगे. प्रथम तो, साधु, साध्वीके व्यवच्छेद हो जानेसें, श्रावक श्राविकारूप दोही संघ रह गए हैं. स्वामीकार्तिकेयादिने तो, दिगंबरोंको सम्यग्दृष्टि होनेकी भी, नहींही लिख दीनी. ग्रंथकारोंने भूल करके तो, नहीं दो तीन सम्यग्दृष्टि लिख दीए होवेंगे! क्योंकि, दो संघियोंमें तो, सम्यग्दर्शनका संभवही नही है.

प्रश्नः—दो संघिये कौन है?

उत्तरः—प्रियवर! संप्रतिकालमें, जो भरतखंडमें दिगंबरमत चलता है, सो दो संघिया है. क्योंकि, इनके मतमें साधु साध्वी तो हैही नहीं. श्रावक श्राविका नाममात्र दो संघ है, इसवास्ते ये दो संघिये हैं; और इसीवास्ते ये मिथ्यादृष्टि हैं. क्योंकि, तीर्थंकर भगवान्के शासनमें तो चतुर्विध संघ कहा है; इसवास्ते ये जिनराजके शासनमें नही मालुम होते हैं, दो संघिये होनेसें.

प्रश्नः—इनके दो संघ, किसवास्ते व्यवच्छेद होगए?

उत्तरः—प्रथम तो श्रीवीरनिर्वाणसें ६०९ वर्षे, इनका मत चला था, तबसेंही इनके तीन संघ चले हैं. क्योंकि, पंचमहाव्रतधारणवाली साध्वी तो इनके मतमें होही नही सकती है, वस्त्र रखनेसें. तिसको तो ये

उत्कृष्टी श्राविकाही मानते हैं. शेष रहा नग्नमुनि, तिनके वास्ते जो अनुचित कठिन वृत्ति लिख दीनी है, सो तिसका पालना पंचमकालमें अशक्य है; और दिगंबरमत चलानेवाले इनके आचार्य भी दीर्घदर्शी नही थे. क्योंकि, जो कठिनवृत्ति, वज्रऋषभनाराचसंहननवालोंकेवास्ते थी, वोही वृत्ति सेवार्त्तसंहननवालेके वास्ते लिख मारी. क्या हाथिका बोझ, गर्दभ उठा सकता है ?

प्रथम तो दिगंबराचार्योंको पांच प्रकारके निर्ग्रंथोंके स्वरूपहीका यथार्थ बोध नही मालुम होता है. क्योंकि, उनोंने राजवार्त्तिकादिग्रंथोंमें जैसा पांच निर्ग्रंथोंका स्वरूप लिखा है, तिस स्वरूपवाले बुक्कस १, प्रतिसेवना निर्ग्रंथ २, ये दोनों जे इस पंचमकालमें पाईये हैं, तैसें स्वरूपवाले इस भरतखंडमें दीख नही पडते हैं. जब प्रत्यक्षप्रमाणसेंही तुम्हारा (दिगंबर) मत बाधित है, तो फिर अन्यप्रमाणकी क्या आवश्यकता है? और श्वेतांबरमतके व्याख्याप्रज्ञप्ति, उत्तराध्ययननिर्युक्ति, पंचनिर्ग्रंथी संग्रहणी, उमास्वातिकृत तत्त्वार्थसूत्र, और तत्त्वार्थसूत्रकी भाष्य, तथा सिद्धसेनगणिकृत तत्त्वार्थभाष्यवृत्ति प्रमुख शास्त्रोंमें जो पांच निर्ग्रंथोंका स्वरूप लिखा है, तिनमेंसें बुक्कस १, प्रतिसेवनानिर्ग्रंथ २, जैसें स्वरूपवाले लिखे हैं, तैसें स्वरूपवाले साधु, साध्वी, इस पंचमकालमें प्रत्यक्ष प्रमाणसें भी सिद्ध है. तो फिर श्वेतांबरमतही असली जैनमत, और दिगंबरमत पीछेसें निकला क्यों नही होवेगा? अपितु होवेहीगा.

एक बात याद रखनी चाहिये कि, जो जो कथन जिनेंद्रदेवके कथनानुसार दिगंबरमतके शास्त्रोंमें है, तिस कथनको हम बहुमान देते, और अनंतवार नमस्कार करते हैं; परंतु जो जो दिगंबरोंने स्वकपोलकल्पनासें रचना करी है; तिसकाही हम समालोचन करते हैं.

और जो दिगंबर कहते हैं कि, श्वेतांबरोंने केवलीको कवल आहार १, स्त्रीको तद्भवे मोक्ष २, साधुको चउदह (१४) उपकरण राखने, इत्यादि विरुद्ध कथन लिखे हैं.

उत्तरः-प्रथम तो श्रीमद्यशोविजयोपाध्यायजी, जो के स्याद्वादकल्पलता १, वैराग्यकल्पलता २, अध्यात्मोपनिषद् ३, अध्यात्मसार ४, अध्यात्मरहस्योपदेश ५, ज्ञानसार, ६, ज्ञानबिंदु ७, नयोपदेश ८, नयप्रदीप ९, अमृततरंगिणी १०, समाचारी ११, खंडखाद्य १२, धर्मपरीक्षा १३, अध्यात्ममतपरीक्षा १४, पातंजलचतुर्थपादवृत्ति १५, कर्मप्रकृतिवृत्ति १६, अनेकांतजैनमतव्यवस्था १७, देवतत्त्वनिर्णय १८, गुरुतत्त्वनिर्णय १९, धर्मतत्त्वनिर्णय २०, तर्कभाषा २१, द्वात्रिंशतद्वात्रिंशिका २२, अष्टक २३, षोडशकवृत्ति २४, इत्यादि शत (१००) ग्रंथके कर्त्ता, और षट्दर्शनतर्कके वेत्ता, तथा काशीमें सर्वपंडितोंने जिनको जयपताका, और न्यायविशारदकी पदवी दीनी थी, ऐसे श्रीयशोविजयोपाध्यायजी लिखते हैं कि, जितने दिगंबरोंके तर्कशास्त्र हैं, वे सर्व, श्वेतांवरोंके तर्कशास्त्रोंने दले हुए, अर्थात् खंडन करे हुए हैं; तिनमेंसें नमूनामात्र यहां लिख दिखाते हैं.

अर्हं । केवलीको कवल आहारके हुए, सर्वज्ञपणेके साथ विरोध होता है, ऐसे मानते हुए दिगंबरोंका खंडन करते हैं.

नच कवलाहारवत्वेन तस्यासर्वज्ञत्वम् ॥
कवलाहारसर्वज्ञत्वयोरविरोधात् ॥

व्याख्याः-केवलीको कवलाहारी होनेकरके, सर्वज्ञपणेकेसाथ विरोध नही है सोही दिखाते हैं. कवलाहार, और सर्वज्ञपणेका जो विरोध, दिगंबर मानते हैं सो साक्षात् मानते हैं, वा परंपराकरके मानते हैं ? यदि आदि पक्ष दिगंबर मानेंगे, सो ठीक नहीं. क्योंकि, सर्वज्ञपणेके हुए केवलीको कवलाहार प्राप्ति नही होता है, यह बात नहीं है. और कवलाहार मिल तो सकता है, परंतु केवली खा नही सकता है, यह भी नही है. अथवा केवली खा तो सकता है, परंतु खानेसें केवलज्ञान दौड जायगा, इस शंकासें नही खा सकता है यह बात भी नहीं है; इन पूर्वोक्त तीनों बातोंमें हेतु कहते हैं; अंतराय कर्म, और केवलावरण कर्मोंका समूल नाश करनेसें, पूर्वोक्त तीनो बातें नही हो सकती है. जेकर दिगंबर दूसरे परंपराविरोधपक्षको अंगीकार करके विरोध कहे तो, सो भी बालकोंकी

क्रीडामात्र है. क्या ऐसें हुए, कवल आहारका, व्यापक १, कारण २, कार्य ३, सहचरादिका सर्वज्ञताके साथ विरोध है? और सो विरोध परस्पर परिहाररूप है, या सहानवस्थानरूप है? यदि प्रथम पक्ष मानोगे तब तो, तुम्हारे भी ज्ञानके साथ कवल आहारके व्यापकादिकोंका परस्पर परिहारस्वरूप विरोधके सद्भाव होनेसें, तुम (दिगंबरों) को भी कवल आहारका अभाव होवेगा. अहो तुमारा पुरुषकार!! जिसवास्ते अपने कहनेसेंही पराभवको प्राप्त हुए हो. और दूसरे पक्षको माने तब तो, कवल आहारका व्यापक, हानिको नही प्राप्त होता है. क्योंकि, कवल आहारका व्यापक तो, शक्तिविशेषके वससें उदरकंदरारूप कोनेमें प्रक्षेप करना है, सो तो, सर्वज्ञके हुए अतिशयकरके संभव करिये हैं. क्योंकि, वीर्यांतरायकर्म समूल उन्मूलन करनेसें; तहां तिस आहारके क्षेप करने-वाली शक्तिविशेषका संभव होनेसें.

और आहारका कारण भी बाह्यरूप, विरोधको प्राप्त होता है? वा अभ्यंतररूप कारण, विरोधको प्राप्त होता है? बाह्यरूपकारण भी खाने-योग्य वस्तु १, वा तिस वस्तुके उपहारहेतु पात्रादिक २, वा औदारिक शरीर ३? प्रथम तो नही. क्योंकि, जो, केवलज्ञान, खानेयोग्य पुद्गलोंके साथ विरोधि होवे, तब तो, अस्मदादिकोंका ज्ञान भी तैसाही होना चाहिये. ऐसा नही होता है कि, सूर्यकी किरणोंके साथ जो अंधकारका समूह, विरोधी हैं; सो, प्रदीपालोकके साथ विरोधी न होवे. तैसें हुए, हमारे भी, खानेकी वस्तु हाथमें लेनेसें, तिसके ज्ञानके उत्पन्न होतेही, तिसका अभाव होना चाहिए. बहुत आश्चर्यकारि नूतनही तुम्हारा कोइ तत्त्वालोक कौशल है, अपने आपकोभी आहारकी अपेक्षा नहीं है!!

पात्रादिपक्ष भी ठीक नही है. अर्हंतभगवंतोंको पाणि (हस्त) पात्र होनेसें; और इतर केवलियोंको स्वरूपसेंही पात्रविरोध है? वा, ममताका कारण होनेसें है? तहां प्रथम पक्ष तो अनंतरपक्षके उत्तरसेंही खंडित हो गया. और दूसरा पक्ष भी है नही, केवलीको निर्मोह होने करके, तिनको (केवलीको) पात्रादिविषे ममकारके न होनेसें. ऐसें भी न कहना कि, पात्रादिकके हुए, अवश्य ममकार होना चाहिये. क्योंकि,

ऐसा अवश्यभाव है नही. जेकर इसीतरें मानोगे, तब तो, केवलीको शरीरके हुए, अवश्य ममकार होना चाहिये, सो है नही, इतर जनोंमें शरीरपात्रादिके होए भी ममकार देखनेसें.

और औदारिक शरीर भी, सर्वज्ञपणेके साथ विरोध नही धरता है. यदि विरोध धारण करे तो, केवलज्ञानकी उत्पत्तिके अनंतरही, औदारिक शरीरका अभाव होना चाहिये. और अभ्यंतर भी, आहारका विरोधि, कारण, शरीर है ? वा, कर्म है ? तिनमेंसें प्रथम कारण तो विरुद्ध नही है. क्योंकि, मुक्तिका हेतु, तैजसशरीरका सर्वज्ञकेसाथ रहना तुमने भी माना है. । दूसरे पक्षमें कर्म भी, घाति, वा अघाति ? घाति भी मोहरूप है, वा इतर है ? इतर भी ज्ञानदर्शनावरण है, वा, अंतराय है ? आदिके ज्ञानदर्शनावरण तो नही है. क्योंकि, तिनको तो ज्ञानदर्शनावरणमात्रमेंही चरितार्थ होनेसें, केवल आहारके कारणकी अनुपपत्ति है. । दूसरा पक्ष भी नही है. अंतरायके नाश होनेसेंही, आहारकी प्राप्ति होनेसें, और अंतरायकर्मका संपूर्ण नाश केवलीके तो तुमने भी माना है. । और मोह भी, खानेकी इच्छा लक्षण जो है, सो तिसका कारण है, वा सामान्य प्रकार करके कारण है ? प्रथम पक्ष (बुभुक्षालक्षण) में सर्व जगे खानेकी इच्छारूप मोह कारण है, वा अस्मदादिकोंविषे (हमारेतुम्हारेमें) ही है ? प्रथमपक्ष तो प्रमाणमुद्राकरके दरिद्र है, अर्थात् प्रथम पक्षको सिद्ध करनेवाला कोइ प्रमाण नही है.

दिगंबरः—हमारेपास प्रमाण है, सो यह है. जो चेतनक्रिया है, सो इच्छापूर्वकही है, जैसें अंगीकार करी हुई (क्रिया), तैसीही भुजिक्रिया है, सोही दिखाते हैं. प्रथम तो, प्रमाता, वस्तुको जानता है. तदपीछे तिसकी इच्छा करता है, पीछे उद्यम करता है, और तदपीछे करता है.

श्वेतांबरः—जैसें तुम कहते हो, तैसें नही है; सुप्तमत्तमूर्च्छितादिकोंकी क्रियाकरके व्यभिचार होनेसें.

दिगंबरः—हम, स्ववशचेतनक्रिया, ऐसा विशेषणवाला हेतु, अंगीकार करेंगे, तब पूर्वोक्त व्यभिचार न रहेगा.

श्वेतांबरः—ऐसें विशेषणवाला भी हेतु, केवलीगतगतिस्थितिनिषद्यादि क्रियायोंके साथ व्यभिचारी है.।

दूसरे पक्षमें तो तुमने हमारे सिद्धकोंही साध्या है, केवलीविषे वेदनीयादिकारणोंकरके भुक्तिके सिद्ध होनेसें. और सामान्यप्रकारसें भी, मोह, कवल करनेका कारण नही है. जेकर होवे, तव तो, गतिस्थितिनिषद्यादिकोंका भी मोहही कारण सिद्ध होवेगा. जेकर तैसें होवेगा, तब तो केवलीमें मोहके अभाव हुए, केवलीको गतिस्थित्यादिकोंका भी अभाव होवेगा. तव तो, तीर्थकी प्रवृत्ति कदापि नही होवेगी. जेकर कहोगे, गति आदि कर्मही, तिन गत्यादिकोंका कारण है, परं मोह नही है. तव तो, वेदनीयादि कर्मही, कवल आहारका कारण है, परं मोह नही; एसें भी मान लेवो.

दिगंबरः—अघाति कर्म, तिस कवल आहारका कारण है.

श्वेतांबरः—अघातिकर्म तिस कवल आहारका कारण है तो, क्या आहारपर्याप्ति, नामकर्मका भेद, तिसका कारण है; वा वेदनीय कर्म? येह दोनोंही भिन्नभिन्न कारण नही है. क्योंकि, तथाविध आहारपर्याप्ति नामकर्मोदयके हुए, वेदनीयोदयकरके प्रवल ज्वलत् जठराग्निकरके उपतप्यमानही पुरुष, आहार करता है. ऐसें हुए, दोनोंही एकठे हुए, तिस कवल आहारके कारण होते हैं. किंतु सर्वज्ञपणेके साथ विरोधी नही है. क्योंकि, सर्वज्ञविषे तुमने भी तो तिन दोनोंको माने हैं.

दिगंबरः—मोहकरके संयुक्तही, पूर्वोक्त दोनों कवलाहारके कारण हैं.

श्वेतांबरः—यह तुमारा कथन असंगत है. गतिस्थित्यादिकर्मोंकीतरें कवलाहारको भी, मोह साहायकरहितकोही, तिसके कारित्व होनेके अविरोधी होनेसें.

दिगंबरः—अशुभ कर्म प्रकृतियांही, मोहकी सहायताकी अपेक्षा करती है, नही अन्यगत्यादिक. और यह असातावेदनीय, अशुभप्रकृति है; इसवास्ते मोहकी सहायता चाहती है.

श्वेतांबरः—क्या यह परिभाषा, अस्मदादिकोंमें तैसें देखनेसें कल्पना करते हो?

दिगंबरः—हां. ऐसेंही करते हैं.

श्वेतांबरः—शुभ प्रकृतियां भी, अस्मदादिकोंमें, मोहसहकृतही अपने कार्यको करती देखनेमें आती हैं. तब तो, केवलीकी गतिस्थितिआदि शुभ प्रकृतियां भी, मोहसहकृतही होनी चाहिये. इसवास्ते पूर्वोक्त दोनों प्रकृतियों-को मोहापेक्ष होकरके कवलाहारका कारणपणा नही है, किंतु स्वतंत्रकोही कारणपणा हैं. सो कारण केवलीमें अविकल अर्थात् संपूर्ण विद्यमानही है, तिसवास्ते कवलाहारका कारण, केवलीकेसाथ विरोधी नही है. यदि कार्यका विरोध मानो तो जो कार्य केवलज्ञानके साथ विरोधी है सो कवलाहारका कार्य, केवलिमें मत उत्पन्न हो. परंतु अविकल कारणवाला उत्पद्यमान कवलाहार तो, अनिवार्य है; अर्थात् कवलाहारको कोइ निवा-रण नही कर सकता है.

एक अन्यबात है कि, सो कौनसा कार्य है ? जो, केवलज्ञानकेसाथ विरोधी है. क्या रसनेंद्रियसें उत्पन्न हुआ मतिज्ञान ? (१) ध्यानमें विघ्न ? (२) परोपकार करनेमें अंतराय? (३) विसूचिकादि व्याधि ? (४) ईर्यापथ ? (५) पुरीषादि जुगप्सितकर्म ? (६) धातुउपचयादिसें मैथुनेच्छा ? (७) निद्रा ? (८) आद्य पक्ष तो नही है. क्योंकि, रसनेंद्रियकेसाथ आहा-रका संबंध होनेमात्रसेंही जेकर मतिज्ञान उत्पन्न होता होवे तब तो, देवतायोंके समूहने जो करी है, महासुगंधित फूलोंकी निरंतर वर्षा, तिनकी सुगंधी नासिकामें आनेसें घ्राणेंद्रियजन्य मतिज्ञान भी होना चाहिये ॥ १ ॥ दूसरा पक्ष भी नही है. क्योंकि, केवलीका ध्यान शाश्वत है; अन्यथा तो, केवलीको चलते हुए भी, ध्यानका विघ्न होना चाहिये. ॥ २ ॥ तीसरा पक्ष भी नहीं है, क्योंकि, दिनकी तीसरी पौरुषीमें एक मुहूर्त्तमात्रमेंही भगवंतके आहार करनेका काल है, बाकी शेषकाल परोपकारकेवास्तेही है. ॥ ३ ॥ चौथा पक्ष भी नहीं है, जं नकरके, हित मित आहार करनेसें. ॥ ४ ॥ पांचमा भी नहीं. अन्यथा, नादि करनेसें भी ईर्यापथका प्रसंग होवेगा. ॥ ५ ॥ छट्ठा भी नहीं. पुरीषा करते हुए, केवलीको आपही जुगुप्सा होती है,

वा, अन्यजनोंको ? तिनकों तो, नही होती है. क्योंकि, भगवंतको निर्मोह होनेसें, जुगुप्साका अभाव है. जेकर अन्य जनोंकों होती है, तो क्या, मनुष्य, अमर, इंद्र, इंद्राणि, इत्यादि सहस्र जनोंकरके सकुल सभाके- विषे, वस्त्ररहित भगवंतके बैठे हुए, तिनोंकों जुगुप्सा नही होती है ?

दिगंबरः—भगवंतको अतिशयवंत होनेसें, तिनका नग्नपणा नही दीखता है.

श्वेतांबरः—अतिशयके प्रभावसें भगवंतका निहार भी मांसचक्षुवालोंके अदृश्य होनेसें, दोष नही है. और सामान्यकेवलियोंने तो, विविक्तदेशमें मलोत्सर्ग करनेसें दोषका अभाव है. ॥ ६ ॥ सातमा और आठमा पक्ष भी ठीक नही है. मैथुनेच्छा, और निद्रा, इनको मोहनीकर्म और दर्शनावरणकर्मके कार्य होनेसें; और भगवंतमें ये दोनोंही कर्म, नही है. तिसवास्ते कवलाहारका कार्य भी केवलज्ञानके साथ विरोधि नही है. ॥७॥ ८॥ और सहचरादि भी विरुद्ध नही है. जिसवास्ते, सो सहचर, छद्मस्थपणा है, वा अन्य कोई ? आदि पक्ष तो नही है. क्योंकि, दोनोंही वादियोंने (श्वेतांबर दिगंबर दोनोंहीने) केवलीमें छद्मस्थपणा माना नही है. जेकर अस्मदादिकोंमें तैसें देखनेसें, छद्मस्थपणेके साहचर्यका नियम माना जावे, तब तो, गमनादिकोंको भी, छद्मस्थपणेके सहचर मानने पडेंगे. और अन्य, जो कर, मुख, चालनादि, तिसके सहचारी हैं, वे भी केवलज्ञानके साथ विरोधी नही है. ऐसेंही उत्तरचरादि भी केवलज्ञानके साथ विरोधी नही है. इसवास्ते यह सिद्ध हुआ कि, कवलाहार सर्वज्ञपणेके साथ विरोधी नही है. इससें केवलिके कवलाहारका करना सिद्ध हुआ. ॥ इति केवलीभुक्तिव्यवस्था ॥

दिगंबरः—स्त्रीको तद्भवमें मोक्ष नही होवे है. ।

तथा च प्रभाचंद्रः ॥

"॥ स्त्रीणां न मोक्षः पुरुषेभ्यो हीनत्वान्नपुंसकादिवदिति ॥"

भाषार्थः—स्त्रियोंको मोक्ष नही है; पुरुषोंसेंही न होनेसें, नपुंसकादिवत्.।

श्वेतांबरः—यहां तुमने सामान्यकरके धर्मिपणे स्त्रियां ग्रहण करी हैं, वा विवादास्पदीभूत स्त्रियां ग्रहण करी हैं ? प्रथम पक्षमें पक्षके एकदेशमें

सिद्धसाध्यता है. क्योंकि, असंख्यात वर्षायुवाली दुषमादि कालमें उत्पन्न हुई तिर्यंचस्त्री, देवस्त्री, अभव्य स्त्री, इत्यादि वहुत स्त्रियोंको हम भी मोक्ष नही कहते हैं. । १ । और दूसरे पक्षमें पक्षकी न्यूनता है. विवादास्पदीभूता, ऐसे विशेषण विना, नियतस्त्री के लाभके अभाव होनेसें. । २ ।

दिगंबरः—विवादास्पदीभूता स्त्रीही, हमारा पक्ष है.

श्वेतांबरः—हेतुकृत पुरुषापकर्ष, पुरुषोंसें हीनपणा, स्त्रियोंमें किसतरें है? (१) सम्यग्दर्शनादि रत्नत्रयके अभावसें? (२) विशिष्टसामर्थ्यके न होनेसें? (३) पुरुषोंकरके अनभिवंद्य होनेसें? (४) स्मारणादि न करनेसें? महर्द्धिक न होनेसें? (६) मायादिप्रकर्ष होनेसें? प्रथम पक्षमें किसवास्ते स्त्रियोंको रत्नत्रयका अभाव है?

दिगंवरः—वस्त्ररूपपरिग्रहके होनेसें, चारित्रका अभाव है, इसवास्ते.

श्वेतांवरः—यह कहना ठीक नही है. परिग्रहरूपता, वस्त्रको, शरीरके संवंधमात्रसें है? वस्त्रके भोग करनेसें? मूर्च्छा हेतु होनेसें? वा जीवसंसक्तिहेतुत्वसें? प्रथम पक्षमें तो, भूमिआदिका सदा स्पर्श शरीरकेसाथ होनेसें, परिग्रहरहित, कोइ भी सिद्ध नही होवेगा; तव तो तीर्थकरादिकोंको भी मोक्ष मिलना नही चाहिये. एतावता लाभ प्राप्त करते हुए तुमने तो, मूलकाही नाश करा! दूसरे पक्षमें वस्त्रका परिभोग, तिनको, अशक्य त्याग करके है, वा गुरुउपदेशसें है? प्रथम पक्ष तो ठीक नही. क्योंकि, प्राणोंसें अधिक और कुछ भी प्रिय नही है, तिनको भी धर्मआदिकेवास्ते स्त्रीयां त्यागती दीखती हैं. तो तिनको वस्त्र त्यागने क्या वडी बात है? दूसरा पक्ष भी ठीक नही. क्योंकि, विश्वदर्शी परमगुरु भगवंतने, मोक्षार्थी स्त्रियोंको, जो संयमका उपकारि है, सोही वस्त्रोपकरण, "नो कप्पादि निग्गंथीए अचेलाए होत्तए" निर्ग्रंथी (साध्वी) को नही कल्पे हैं, वस्त्ररहित होना. इत्यादि कथनसें, उपदिशा है, अर्थात् ऐसा उपदेश दिया है; प्रतिलेखन (मोरपीछी) कमंडलु इत्यादिवत्. इसवास्ते कैसें तिसके परिभोगसें परिग्रहरूपता होवे? अन्यथा प्रतिलेखन आदि धर्मोपकरणकों भी, परिग्रह होनेका प्रसंग होवेगा।

तथाच्चार्या ॥

यत्संयमोपकाराय वर्त्तते प्रोक्तमेतदुपकरणम् ॥
धर्मस्य हि तत्साधनमतोन्यदधिकरणमाहार्हन् ॥

अर्थः—जो संयमके उपकारकेतांइ वर्त्ते, सो उपकरण कहा है.—और सो उपकरण धर्मकाही साधन है, 'उपकारकं हि करणमुपकरणमिति वचनात्' और इससें भिन्न सर्व अधिकरण* है, ऐसें अर्हन् भगवान् कहते हैं.

दिगंबरः—प्रतिलेखन कमंडलु तो, संयम पालनेअर्थे भगवंतने कहे हैं; परंतु वस्त्र किसवास्ते?

श्वेतांबरः—वस्त्र भी भगवंतने संयम पालनेवास्तेही कथन करे हैं. क्योंकि, प्रायः अल्पसत्व होनेकरके, उघाडे अंगोपांगके देखनेसें उत्पन्न हुआ है, चित्तभेद (विकार) जिनोंको, ऐसें पुरुषोंकरके स्त्रियां, अभिभवको प्राप्त होती हैं; जैसें उघाडी घोडीयां घोडायोंसें. इसवास्ते वस्त्र संयमके साधक है, परंतु बाधक नही है. तथा स्त्रियां अबला होती हैं, तिनोंका पुरुष बलात्कारसें भी उपभोग करते हैं, इसवास्ते तिनको वस्त्रविना संयमबाधाका संभव आता है. पुरुषोंको तैसें नही आता है, ऐसें कहो तो, सो ठीक है. परंतु, एतावता वस्त्रसें चारित्राभाव सिद्ध नही हुआ; किंतु आहारादिकीतरें, वस्त्र भी चारित्रके उपकारक हुए.

दिगंबरः—जिन अल्पसत्ववाली स्त्रियोंको, प्राणीमात्र भी अभिभव कर सकते हैं तो, ऐसी स्त्रियां, महासत्ववानोंकरके साध्य जो मोक्षमार्ग, तिसको कैसें साध सकती हैं?

श्वेतांबरः—यह कहना अयुक्त है. क्योंकि, यहां मोक्षसाधनमें, जिसके शरीरका सामर्थ्य अधिक होवे, सोही जीव मोक्ष साधनेके योग्य

---

* अधिक्रियते घाताय प्राणिनोस्मिन्नित्यधिकरणमिति ॥

होना चाहिये, ऐसा नियम नही है. अन्यथा, पंगु, वामन, अत्यंत रोगी पुरुषोंको, स्त्रियांकरके अभिभव होते देखीए हैं, तव तो, वे भी, तुच्छ शरीरसत्ववाले पुरुष, कैसें मुक्तिके साधनेवाले सत्वके भागी होवेंगे? जैसें तिनके शरीरसामर्थ्यके न हुए भी, मोक्षसाधनसामर्थ्य अविरुद्ध है, तैसें स्त्रियांको भी जानना.

दिगंबरः—जेकर वस्त्रोंके हुए भी, मोक्ष मानते हो तो, गृहस्थको मोक्ष क्यों नही मानते हो?

श्वेतांबरः—गृहस्थको ममत्व होनेसें, मोक्ष नही होवे है. क्योंकि, ऐसा नही हो सकता है कि, गृहस्थी वस्त्रमें ममत्व न करे. और जो ममत्व है, सोही परिग्रह है; ममत्वके हुए, नग्न भी परिग्रहवान् होता है; और शरीरमें भी ममत्वके होनेसें परिग्रहवान् होता है. और आर्यिका (साध्वी) को तो, ममत्वके अभावसें, उपसर्गादि सहनेकेवास्ते, वस्त्र परिग्रह नही है. यतिमुनिको भी ग्राम घर वनादिमें रहनेवालेको, ममत्वके अभावसें परिग्रह नही है. और जिन महात्मा स्त्रियोंने अपने आत्माको वश करा है, तिनको किसी वस्तुमें भी मूर्च्छा नही है. ।

यतः ॥

निर्वाणश्रीप्रभवपरमप्रीतितीव्रस्पृहाणां ।
मूर्च्छा तासां कथमिव भवेत् क्वापि संसारभागे ॥
भोगे रोगे रहसि सजने सज्जने दुर्जने वा ।
यासां स्वांतं किमपि भजते नैव वैषम्यमुद्राम् ॥ १ ॥

भावार्थः—निर्वाणरूप लक्ष्मीके उत्पन्न करनेमें परमप्रीतिकरके तीव्र उत्कट स्पृहा अभिलाषा है जिनोंकी, और जिनोंका स्वांत—अंतःकरण—मन भोगमें रोगमें एकांतमें समुदायमें सज्जनमें वा दुर्जनमें इत्यादि किसीभी संसारक भागमें वैषम्यमुद्रा—अशांततादिकारादिको नही भजता है, तैसी महात्मा स्त्रियोंको मूर्च्छा कैसें होवे? कदापि न होवे इत्यर्थः ॥

तथा चागमेप्युक्तम् ॥

"॥ अवि अप्पणोवि देहंमि नायरंति ममाइयम् ॥" इति ॥

महात्माजन अपनी देहमें भी ममत्व नही आचरण करते हैं. इस कहनेसें मूर्च्छा हेतु होनेसें, यह भी पक्ष, खंडित होगया. शरीरवत् वस्त्रको भी, किसीको मूर्च्छाहेतुत्वके अभाव होनेसें, परिग्रहरूपत्वका अभाव है.

अपिच। शरीर भी मूर्च्छाका हेतु है, वा नही ? नही, ऐसा तो, नही कह सकते हो. क्योंकि, शरीरके विना मूर्च्छा होतीही नही है. यदि हेतु है, तो वस्त्रकीतरें किसवास्ते त्याज्य नही है ? दुस्त्याज्य है इसवास्ते ? वा मुक्तिका अंग है इसवास्ते ? दुस्त्याज्य है इसवास्ते, ऐसे कहो तो, सो सर्वपुरुषोंको, वा किसी किसीको ? सर्वको कहो तो ठीक नही. क्योंकि, बहुत वन्हिप्रवेशादिकसें शरीर त्यागते हुए दीखते हैं. किसी किसीको कहो तो, सो ठीक है; जैसें किसीको शरीर दुस्त्याज्य है, तैसेंही वस्त्र भी हो. और मुक्तिअंग कहो तो, वस्त्र भी अशक्तको स्वाध्यायादि उपष्टंभरूप होकर, मुक्तिका अंग है, इसवास्ते त्याज्य नही है. यदि जीवसंसक्तिहेतुत्वसें कहो तो, शरीरको भी जीवसंसक्तिहेतुसें परिग्रहरूप मानना चाहिये. क्योंकि, कृमि गंडुक (गंडोये) आदिकी उत्पत्ति तिसमें भी प्रतिप्राणीको विदित है. यदि कहो कि, शरीरप्रति तो, परम यत्न होनेसें सो अदुष्ट है तो, यही न्याय वस्त्रको लगानेमें क्या बाध है ? तिसवखत क्या तिस न्यायको वायस (काग) भक्षण कर गये हैं ? वस्त्रका भी सीवन, क्षालन, इत्यादि यत्नसेंही होता है, इसवास्ते तिसमें भी जीवसंसक्तिका संभव कहां रहा ? इसवास्ते वस्त्रसद्भावके हुए चारित्राभाव सिद्ध नही हुआ. तिसवास्ते सम्यग्दर्शनादि रत्नत्रयके अभावकरके स्त्रियोंको पुरुषोंसें हीनता नही है. ॥ १ ॥

और विशिष्टसामर्थ्यके न होनेसें स्त्रीको मोक्ष नही, यह भी कथन, ठीक नही है; क्या सप्तम नरकमें जानेके अभावसें विशिष्टसामर्थ्य नही है ? वादादिलब्धियोंसें रहित होनेसें ? अल्पश्रुतवाली होनेसें ?

वा अनुपस्थाप्यता, पारांचितकप्रायश्चित्तोंसें रहित होनेसें? प्रथम पक्ष ठीक नही. जिसवास्ते यहां सप्तम पृथ्वीगमनाभाव, जिस जन्ममें स्त्रियोंको मुक्तिगामीपणा है, तिसही जन्ममें कहते हो, वा सामान्यतः कहते हो? प्रथम पक्षमें तो, चरमशरीरियोंके साथ अनेकांत है, अर्थात् यदि आद्य पक्ष मानो, तब तो पुरुषोंको भी, जिस जन्ममें मोक्ष मिलता है, तिसही जन्ममें सप्तम पृथ्वीगमनयोग्यत्व होता नही है, इसवास्ते तिनको भी मुक्तिके अभावका प्रसंग मानना पडेगा.

यदि दूसरा पक्ष कहते हो तो, तुमारा यह आशय होगा. सर्वोत्कृष्ट पदकी प्राप्ति, सो सर्वोत्कृष्ट अध्यवसायसें होवे. और सर्वोत्कृष्ट ऐसें दोही पद हैं. सर्वदुःखस्थानरूप सप्तमी नरकपृथ्वी, और सर्वसुखस्थान ऐसा मोक्ष. तब तो जैसें स्त्रियोंको तिसके गमन योग्य मनोवीर्याभावके हुए, सप्तम पृथ्वीगमन आगममें निषिद्ध है, तैसें मोक्ष भी, तथाविध शुभमनोवीर्याभावके हुए, नही होना चाहिये. प्रयोग भी इसतरें है. । मुक्तिका कारणरूप, ऐसा शुभमनोवीर्य परम प्रकर्ष, स्त्रियोंमें है नही, क्योंकि, सो प्रकर्ष है इसवास्ते, सप्तम पृथ्वीगमनकारणरूप, अशुभमनोवीर्य प्रकर्षकीतरें. । इति पूर्वपक्षः।

उत्तरपक्षः—यह सर्व अयुक्त है; क्योंकि, व्याप्तिही नही है. बहिर्व्याप्तिमात्रसें हेतुका गमकत्व नही हो सकता है, अंतर्व्याप्ति भी चाहिये; अन्यथा, तत्पुत्रत्वात् यह हेतु भी गमकत्व होगा. अंतर्व्याप्ति है सो प्रतिबंधबलसेंही सिद्ध होती है; और यहां तो प्रतिबंध है नही, इसवास्ते यह हेतु संदिग्धविपक्षव्यावृत्तिवाला है, सो चरम शरीरीसें निश्चित व्यभिचारवाला है, क्योंकि, तिनको सप्तम पृथ्वीगमनहेतुरूप मनोवीर्यप्रकर्षके अभाव हुए भी, मुक्ति हेतुरूप मनोवीर्यप्रकर्षका सद्भाव है. तैसेंही मत्स्य, इस उदाहरणमें भी व्यभिचार आवेगा; तिनको सप्तम पृथ्वीगमनहेतु मनोवीर्यप्रकर्षके हुए भी, मोक्षहेतु शुभमनोवीर्य प्रकर्ष नही होता है. तथा जिनको अधोगमनशक्ति थोडी है, तिनको उर्ध्वगमनप्रति भी थोडी ही शक्ति है, ऐसा नियम नही है. क्योंकि, भुजपरिसर्प्पादिमें व्यभिचार

आता है. देखो ! भुजपरिसर्प नीचे दूसरी पृथ्वीतक जाता है, तिससें नीचे नही जाता है; पक्षी तीसरीतक; चतुष्पद चतुर्थीतक; उरग पांचमीतक; और सर्व उत्कृष्टसें उर्ध्व सहस्रारपर्यंत जाते हैं. और यह भी नियम नही है कि, उत्कृष्ट अशुभ गति उपार्जन सामर्थ्याभावके हुए, उत्कृष्ट शुभ गति उपार्जनसामर्थ्य भी नही होना चाहिये; अन्यथा तो, प्रकृष्टशुभगति उपार्जनसामर्थ्याभावके हुए, प्रकृष्ट अशुभ गति उपार्जनसामर्थ्य भी नही है, ऐसें क्यों न होजावे ? और तैसें हुए, अभव्य जीवोंको सप्तम नरकगमन नही होवेगा, इस वास्ते सप्तम पृथ्वीगमनायोग्यत्वको लेके, विशिष्टसामर्थ्यासत्त्व, स्त्रियोंको नही कह सकते हो.

अथ । वादादिलब्धिरहित होनेसें, स्त्रियोंको विशिष्टसामर्थ्याभाव है; जिसमें निश्चित इस लोकसंबंधी, वाद, विक्रिया, चारणादिलब्धियोंका भी हेतु, संयमविशेषरूप सामर्थ्य नही है, तिसमें मोक्षहेतु संयमविशेषरूप सामर्थ्य होवेगा, ऐसा कौन बुद्धिमान् मानेगा ?

श्वेतांबरः—यह कहना शोभानिक नही है, व्यभिचार होनेसें; माषतुषादिमुनियोंको तिन लब्धियोंके अभाव हुए भी, विशिष्टसामर्थ्यकी उपलब्धि होनेसें. और लब्धियोंको संयमविशेषहेतुकत्व आगमिक नही है. क्योंकि, आगममें लब्धियोंका हेतु, कर्मका उदय, क्षय, क्षयोपशम, और उपशम कहा है. तथा चक्रवर्त्ति, बलदेव, वासुदेव, आदि लब्धियां, संयमहेतुक नही है. होवे संयमहेतुक लब्धियां, तो भी स्त्रियोंमें तिन सर्व लब्धियोंका अभाव कहते हो, वा कितनीक लब्धियोंका ? आद्य पक्ष तो नही. क्योंकि, चक्रवर्त्यादि कितनीक लब्धियोंका तिनमें अभाव है; परंतु आमर्षौषध्यादि बहुतसी लब्धियां तो तिनमें है. और दूसरे पक्षमें व्यभिचार है; पुरुषोंको सर्व वादादि लब्धियोंके अभाव हुए भी, विशिष्टसामर्थ्य अंगीकार करनेसें, वासुदेवरहित, अतीर्थंकरचक्रवर्त्यादिकोंको भी मोक्षका संभव होनेसें.

और अल्पश्रुतपणा भी, मुक्तिकी प्राप्तिकरके, अनुमित विशिष्टसामर्थ्यवाले माषतुषादिकोंके साथ अनेकांत होनेसें, कहनेयोग्यही नही है.

अनुपस्थाप्यतापारांचितककरके शून्य होनेसें स्त्रियोंमें विशिष्टसामर्थ्याभाव है, यह भी कहना अयुक्त है. क्योंकि, तिनके निषेधसें विशिष्टसामर्थ्यका अभाव नही होता है. क्योंकि, योग्यताकी अपेक्षाहीसें शास्त्रोंमें नानाप्रकारका विशुद्धिका उपदेश है. ।

उक्तं च ॥

संवरनिर्जररूपो, बहुप्रकारस्तपोविधिः शास्त्रे ॥
रोगचिकित्साविधिरिव, कस्यापि कथंचिदुपकारी ॥

भावार्थः—जैसें रोग चिकित्साका विधि, किसीको किसीतरें, और किसीको किसीतरें, उपकारी होता है, तैसेंही शास्त्रमें कहा हुआ, संवरनिर्जरारूप, बहुप्रकारवाला तपका विधि उपकारी है. ॥ २ ॥

पुरुष वंदन नही करते हैं, इसकरके भी, स्त्रियोंमें हीनता सिद्ध नही होती है. क्योंकि, तैसा अनभिवंद्यत्व, सो भी सामान्यतः मानते हो, वा गुणाधिक पुरुषकी अपेक्षासें मानते हो? आद्यपक्ष असिद्ध है. क्योंकि, तीर्थंकरकी माता आदिको, पुरंदरादि इंद्रादि भी पूजते हैं, नमस्कार करते हैं तो, शेषपुरुषोंका तो कहनाही क्या है! और दूसरे पक्षमें आचार्य अपने शिष्योंको वंदना नहीं करते हैं, तब तो, आचार्यसें हीन होनेसें, शिष्योंको मुक्ति न होनी चाहिये; परंतु ऐसें है नहीं क्योंकि, चंद्ररुद्रादिके शिष्योंको मुक्ति हुइ शास्त्रोंमें सुननेमें आती है तथा गणधरोंको भी तीर्थंकर नमस्कार नही करते हैं; तब तो, तिनको भी हीन गिणने चाहिये, और तिनको मोक्ष न होना चाहिये! इसवास्ते मूल हेतु व्यभिचारी है. अपरं च । चतुर्वर्णसंघ, सो तीर्थंकरोंको वंद्य है; और स्त्रियों भी संघमेंही है, इसवास्ते जे संयमवती हैं, तिनको तीर्थंकरवंद्यत्व सिद्ध हुआ; तब तो, स्त्रियोंको हीनत्व कहां रहा! ॥ ३ ॥

स्मारणादिके न करनेसें. यह पक्ष अंगीकार करोगे, तब तो, केवल आचार्योंकोंही मुक्ति होनी चाहिये; शिष्योंको नहीं. क्योंकि, वे स्मारणादि करते नही हैं.

दिगंबरः—पुरुषविषे स्मारणादि अकर्तृत्व यहां विवक्षित है, नतु स्मारणादि अकर्तृत्वमात्र; और नही, स्त्रियां कदापि पुरुषोंको स्मारणादि करती हैं.

श्वेतांबरः—तब तो 'पुरुषविषे' ऐसें कहना योग्य था. यदि ऐसें कहो, तो भी असिद्धता दोष है. क्योंकि, कितनीक सर्वज्ञके आगमके रहस्यकरके वासित है सप्तधातु जिनोंकी, ऐसी स्त्रियोंको किसी जगें तथाविध अवसरमें स्खलायमान वृत्तिवाले साधुको स्मारणादिका करना, विरोध नहीं है. ॥ ४ ॥

अथ अमहर्द्धिक होनेसें स्त्रियां पुरुषोंसें हीन हैं. यह पक्ष भी ठीक नही है. क्या आध्यात्मिक समृद्धिकी अपेक्षा अमहर्द्धिकत्व है, वा बाह्यसमृद्धिकी अपेक्षा? प्रथम पक्ष तो नही. क्योंकि, आध्यात्मिकसमृद्धि, सम्यग्दर्शनादि रत्नत्रय है; तिसका तो, स्त्रियोंमें भी सद्भाव है. बाह्यसमृद्धिवाला पक्ष भी ठीक नही. क्योंकि, तीर्थंकरकी ऋद्धिकी अपेक्षा गणधरादि, और चक्रधरादिकी अपेक्षा अन्य क्षत्रियादि, सर्व अमहर्द्धिक हैं; तब तो, गणधरादिकोंको भी मोक्ष न होना चाहिये.

दिगंबरः—पुरुषवर्गकी तीर्थंकररूप जो महती समृद्धि है, सो स्त्रियोंमें नही है; इसवास्ते स्त्रियोंको अहमर्द्धिकपणेकी हम विवक्षा करते हैं.

श्वेतांबरः—इस तुह्मारे कथनमें भी असिद्धता दोष है. कितनीक परम पुण्यपात्रभूत स्त्रियोंको भी, तीर्थंकरत्वके अविरोधसें; तिसके विरोधसाधक किसी भी प्रमाणके अभावसें,तुम्हारे कहे अनुमानको अद्यापि विवादास्पद होनेसें, और अनुमानांतरके अभावसें. ॥ ५ ॥

मायादि प्रकर्षवत्त्वसें मोक्ष नही. यह भी कथन श्रेष्ठ नही है. मायादि प्रकर्षवत्त्वको, स्त्रीपुरुष दोनोंमें तुल्य देखनेसें, और आगममें सुननेसें; तथा नारदादि चरमशरीरीको भी मायादि प्रकर्षवत्त्व सुनते हैं. तिसवास्ते स्त्रियोंको, पुरुषोंसें हीनत्व होनेसें निर्वाण नही है, यह कहना अच्छा नही है. ॥ ६ ॥

दिगंबरः—निर्वाणकारण ज्ञानादि परम प्रकर्ष, स्त्रियोंमें नही है; परम प्रकर्ष होनेसें, सप्तम पृथ्वीगमनकारण पाप परमप्रकर्षवत्.

श्वेतांबरः—यह कहना ठीक नही है. क्योंकि, "परम प्रकर्ष होनेसें" यह तुमारा हेतु व्यभिचारी है; स्त्रियोंमें मोहनीय स्थिति परम प्रकर्ष, और स्त्रीवेदादि परम प्रकर्षके बांधनेके अशुभ अध्यवसायके होनेसें.

दिगंबरः—स्त्रियोंको मोक्ष नही है, परिग्रहवत्त्व होनेसें, गृहस्थवत्.

श्वेतांबरः—यह कहना भी अच्छा नही है; वस्त्रादि धर्मोपकरणोंको अपरिग्रहपणे अच्छीतरेंसें सिद्ध करनेसें. ॥ इति स्त्रीनिर्वाणे संक्षेपेण बाधकोद्धारः ॥

और साधक प्रमाणोंका उपन्यास ऐसें है। कितनीक मनुष्यस्त्रिया निर्वाणवाली है, अविकलनिर्वाणके कारण होनेसें, पुरुषवत्. निर्वाणका अविकलसंपूर्णकारण तो सम्यग्दर्शनादि रत्नत्रय है, वे तो स्त्रियांविषे हैही. और नपुंसकादिविपक्षसें अत्यंतव्यावृत्त होनेसें, यह हेतु, विरुद्ध अनेकांतिक भी नही है. तथा मनुष्यस्त्रीजाति, किसी व्यक्तिकरके मुक्तिके अविकल कारणवाली है, प्रव्रज्याकी अधिकारित्व होनेसें, पुरुषवत्. और यह असिद्धसाधन भी नही है. "गुव्विणी बालवच्छा य पव्वावेउं न कप्पइ" गुर्विणी—गर्भवंती, और बालकवाली स्त्री, प्रव्रज्या देनेको नही कल्पती है. इस सिद्धांतकरके तिनको अधिकारीपणा कथन करनेसें विशेष प्रतिषेध (निषेध) को शेष स्त्रियोंको अनुज्ञा होनेसें. ॥ इति स्त्रीमुक्तिव्यवस्था ॥

यह पूर्वोक्त कथन (केवलिभुक्ति, और स्त्रीमुक्ति) प्रमाणनय तत्वालोकालंकारसूत्रकी रत्नाकरावतारिका नामा लघुवृत्तिसें दिग्दर्शनमात्र करा है; और अन्यग्रंथोंमें तो, वहुत विस्तारसें खंडन लिखा हुआ है, सो भी काम पडेगा तो लिखेंगे. इसवास्ते दिगंबरोंके सर्व तर्कशास्त्र, श्वेतांबरोंके तर्कशास्त्रोंने दले हुए हैं; यदि कोई विनादली तर्क दिगंबरोंपास है तो, प्रकट करें; तिसको भी श्वेतांबर दलेंगे.

अथ कुछक दिगंबरश्वेतांबरके मतका स्वरूप, प्रश्नोत्तररूप करके लिखते हैं. क्योंकि, पूर्वोक्त कथन प्रायः चर्चाचंचूही समझ सकेंगे, और यह प्रश्नोत्तररूपकथन तो, थोडी समझवाले भी समझेंगे. ॥ "प्रश्न—दिगंबर" ॥ "उत्तर—श्वेतांबर" ॥

प्रश्नः—भगवान् तो भुवनतिलकरूप है, इसवास्ते तिनको तिलक नही करना चाहिये.

उत्तरः—यह कहना अनभिज्ञोंका है. क्योंकि, जैसें भगवान् तीन लोकके छत्ररूप हैं, तो भी, तिनके मस्तकोपरि छत्र धारण करनेमें आवे हैं; तैसेंही तिलक भी जाणना. तथा तुमारे संस्कृत हरिवंशपुराणमें भी, भगवंतको तिलक करना लिखा है.

तथाहि ॥

त्रैलोक्यतिलकस्यास्य ललाटे तिलकं महत् ॥
अर्चीकरन्मुदेंद्राणी शुभाचारप्रसिद्धये ॥ १ ॥

भावार्थः—तीन लोकके तिलक इस भगवंतके ललाटमें खुशी होके इंद्राणी शुभाचारकी प्रसिद्धिवास्ते तिलक करती हुई. । १ ।

प्रश्नः—लेपरहित, और रागद्वेषरहित, अरिहंतको विलेपन किसवास्ते करते हो?

उत्तरः—हरिवंशपुराणमेंही लिखा है.

यतः ॥

जिनेंद्रांगमथेंद्राणी दिव्यामोदिविलेपनैः ॥
अन्वलिप्यत भक्त्यासौ कर्म्मलेपविघातनम् ॥ १ ॥

भावार्थः—जिनेंद्रके अंगको अथ इंद्राणी प्रधान आनंद देनेवाले विलेपनोंकरके भक्तिसें लेपन करती हुई. कैसा विलेपन? कर्मलेपका घातक।१।

और पाहुडवृत्तिमें पंचामृतस्नात्र करना भी लिखा है. और जिनवर तो, त्रिभुवनके छत्र है तो, तुम तिनके ऊपर छत्र क्यों करते हो? जैसें भगवान् त्रिभुवनतिलक है, तेसेंही त्रिभुवनछत्र भी है; तब तिलक नही करना, और छत्र करना, यह कैसा अन्याय है!

प्रश्नः—भगवंतको तुम आभरण किसवास्ते चडाते हो?

उत्तरः—हमारे तो पूर्वधर श्रीसंघदासगणिक्षमाश्रमणजीने, व्यवहारसूत्रकी भाष्यमें कहा है कि, जिनराजके बिंबको बहुत आभरणोंसें श्रृंगार करना; जिसको देखके भव्यजनोंके चित्तमें बहुत आनंद उत्पन्न होवे. और तत्त्वार्थसूत्रादि पांचसौ (५००) ग्रंथके कर्त्ता श्रीउमास्वातिवाचकने, पूजापटलनामा ग्रंथमें २१ प्रकारकी जिनराजकी पूजा कही है; जिसमें भी आभरणपूजा कही है. तथा अन्य आगमोमें भी, आभरण चडानेका पाठ है. इसवास्ते चडाते हैं. परंतु तुमारे मतके घत्ताबंध हरिवंशपुराणमें ऐसा पाठ है.।

यतः ॥

"॥ एण्हविऊण खीरसायरजलेण भूसिओ आहरणउज्जलेण ॥" इत्यादि

भाषार्थः—क्षीरसारगके जलकरके स्नान करवाके देदीप्यमान आभरणोंकरके भूषित करा। इत्यादि—तो फिर तुम, प्रतिमाको आभरण क्यों नही पहिराते हो?

दिगंबरः—ऊपरके तीन उत्तरमें जो हमारे ग्रंथोंकी साक्षी दिनी है, सो तो ठीक है; परंतु हम तो ग्रंथोक्तबातें जन्मकल्याणककी अपेक्षा मानते हैं.

श्वेतांबरः—तुम जो भगवंतको नित्य स्नान कराते हो, और यात्रा करके शुद्ध जल ल्याके तिस यात्राजलसें स्नान कराते हो, सो किस कल्याणककी अपेक्षा कराते हो? जेकर कहोगे जन्मकल्याणककी अपेक्षा कराते हैं, तब तो, साथही वस्त्राभरण कटक कुंडल मुकुटादि भी पहिराने चाहीये, ग्रंथोक्त होनेसें. जेकर कहोगे, योगावस्थाकी अपेक्षा कराते हैं, तब तो, पानीसें स्नान करानेसें तुम लोक अपराधी ठहरोगे. तथा जब तुम लोक भगवंतके बिंबको रथ, वा पालकी, वा तामझाममें आरोहण करते हो, तब कौनसी अवस्था मानते हो? जेकर कहोगे जन्मकल्याणक, वा, गृहस्थावस्था मानके करते हैं, तब तो, वस्त्राभरणकटककुंडलमुकुटादि भी पहिराने चाहिये. जेकर कहोगे, योगावस्थाकी अपेक्षा करते हैं, तब तो, बहुत अनुचित काम करते हो!! क्योंकि, भगवंत तो योग लीयां-

पीछे किसी भी सवारीमें नही चढे हैं; तो, तुम किसवास्ते लोकोंमें भगवंतको योग लीयांपीछे सवारीमें चढनेवाले सिद्ध करते हो?

दिगंबरः—यह तो हम, हमारी भक्तिसें करते हैं.

श्वेतांबरः—तब तो भक्तिसें कटककुंडलादि क्यों नही पहिराते हो?

दिगंबरः—कटककुंडलमुकुटादि पहिरानेसें जिनमुद्रा बिगड जाती है.

श्वेतांबरः—रथमें वा पालकीमें बैठे हुए भगवंतकी मुद्रा भी, बिगड जाती है. क्योंकि, चाहो नग्न होवे, चाहो वस्त्रादिसहित होवें; जब रथ, वा पालकीमें बैठा होवेगा, तब तिसको कोइ भी त्यागी, वा योगी, वा योगमुद्राका धारक, नही कहेगा. जैसें तुमारे मतके नग्न मुनिको रथमें, वा पालकीमें, वा हाथी, घोडे, ऊंट, ऊपर चढाके लिये फिरे तो, तिसको कोइ भी दिगंबरी वंदन नही करेगा; और न उसको मुनिअवस्था, वा योगमुद्रा, मानेगा. इसवास्ते हठ छोडके श्वेतांबरोंकीतरें पूजा भक्ति, चंदन, पुष्प, धूप, दीपाभरणारोहणसें करो, जिससें तुह्मारा कल्याण होवे. और श्वेतांबरमतमें तो, जिनप्रतिमाका अचिंत्य स्वरूप माना है; इसवास्ते सर्व अवस्था जिनप्रतिमामें विराजमान है. भक्तजन जैसी अवस्था कल्पन करे हैं, तैसीही अवस्था तिनको भान होती है. और भगवंतकी सर्व अवस्था सम्यग्दृष्टिको आनंदोत्पादक है. इसी हेतुसें जिनमतमें पंचकल्याणक कहे हैं. और कल्याणक शब्दका यह अर्थ है कि, पांच वस्तु गर्भ १, जन्म, २, दीक्षा ३, केवल ४, और निर्वाण ५, में उत्सवभक्ति करनेसें, जो, भक्तजनोंको कल्याण अर्थात् मोक्षका हेतु होवे, सो कल्याणक. । हम दिगंबरोंको पूछते हैं कि, तुम जिन जन्मकल्याणककी भक्ति करते हो, सो धर्म मोक्षका मानके करते हो, वा पाप जानके? जेकर धर्म मोक्षका हेतु जानकर करते हो, तब तो, चिरंजीवी रहो; तुमारी भक्ति ठीक है, सदैव कर्त्तव्य है. जेकर पाप मानते हो, तब तो अल्पबुद्धि हो. क्योंकि, लाखों द्रव्य खरचके, पापोपार्जन करके, दुर्गति जाना, यह मूर्खोंहीका काम है; दोनों हानियें करनेसें, ढूंढकवत्. जैसें ढूंढकमतवाले दीक्षामहोत्सव करते हैं, साधुसाध्वीके दर्शनोंको जाते हैं, साधुसाध्वीयोंके

विमार हुए दवाइ आदि करते हैं, पर्युषणादिकोंमें मोदकादिकी प्राभवना करते हैं, तपस्या करनेवालेको पारणा कराते हैं, इत्यादि अनेक कामोंमें हजारों द्रव्य खरचते हैं; और फिर कहते हैं कि, यह तो संसार खाता है. वाहरे वाह ! ! ! बच्छडेके भाइयोंने बहुतही ज्ञान संपादन करा !

प्रश्नः—भगवंतकी प्रतिमाके शरीरमें अन्यवस्तु कुछ भी जडनी न चाहिये, निःकेवल जिस दल, वा धातुकी प्रतिमा होवे, सोही होना चाहिये.

उत्तरः—तुम्हारे मतकी द्रव्यसंग्रहकी वृत्तिमेंही लिखा है कि, जिनप्रतिमाका उपगूहन (आलिंगन) जिनदासनामा श्रावकने करा. और पार्श्वनाथकी प्रतिमाको लगा हुआ रत्न, माया ब्रह्मचारीने अपहरण कराचुराया.

तथा च तत्पाठः ॥

"॥ मायाब्रह्मचारिणा पार्श्वभट्टारकप्रतिमालग्नरत्नहरणं कृतमिति ॥"

प्रश्नः—जिनप्रतिमाके किसी भी अंगमें चंदनादि सुगंधका लेपन, न करना चाहिये.

उत्तरः—तुह्मारे मतके भावसंग्रहमें जिनप्रतिमाके चरणोंमें चंदनका सुगंध लेपन करना लिखा है.

तथाहि । गाथा ॥

चंदणसुअंधलेओ जिणवरचलणेसु कुणइ जो भविओ ॥
लहइ तणु विक्किरियं सहावससुअंधयं विमलं ॥ १ ॥

भावार्थः—जिनवरके चरणोंमें जो भव्यजीव चंदनसुगंधका लेप करे, सो स्वाभाविक सुगंधसाहित निर्मल वैक्रिय शरीर पामे, अर्थात् देवता होवे. ॥ तथा पद्मनंदिकृत अष्टकमें लिखा है.

यतः ॥

"॥ कर्पूरचंदनमितीव मयार्पितं सत्
त्वत्पादपंकजसमाश्रयणं करोतीत्यादि ॥"

भाषार्थः—मेरा अर्पण करा हुआ कर्पूरचंदन, हे जिनेंद्र! तुमारे चरणकमलमें सम्यक् आश्रय करता है. इत्यादि* ॥

तथा त्रैलोक्यसारमें लिखा है. ।

यतः ॥

"॥ चंदणाहिसेयणच्चणसंगीयवलोयमंदिरेहिंजुदा
कीडणगुणणगिहहिअविसालवरपट्टसालाहिं ॥"

भाषार्थः—चंदनकरके अभिषेक नृत्य संगीत अवलोकन मंदिरमें युक्त क्रीडाकरण गुणणा गृहस्थोंने विशालप्रधान पट्टशालांकरके ॥

तथा तत्त्वार्थसूत्रकी राजवार्त्तिक नामा अकलंकदेवकृत टीकामें लिखा है कि, मंदिरका गंधमाल्य (पुष्पमाला) धूपादि जो चुरावे, सो अशुभनाम कर्म उपार्जन करे.

तथाहि ॥

"॥मिथ्यादर्शनपिशुनतास्थिरचित्तस्वभावताकूटमानतुलाकरणसुवर्णमणिरत्नाद्यनुकृतिकुटिलसाक्षित्वांगोपांगच्यावनवर्णगंधरसस्पर्शान्यथाभावनयंत्रपंजरक्रियाद्रव्यांतरविषयसंबंधनिकृतिभूयिष्ठतापरनिंदात्मप्रशंसानृतवचनपरद्रव्यादानमहारंभपरिग्रहोज्वलवेषरूपमदपरुषासत्यप्रलापाक्रोशमौखर्यसौभाग्योपयोगवशीकरणप्रयोगपरकुतूहलोत्पादनालंकारादरचैत्यप्रदेशगंधमाल्यधूपादिमोषणविलंबनोपहासेष्टकापाकदवाग्निप्रयोगप्रतिमायतनप्रतिश्रयारामोद्यानविनाशतीव्रक्रोधमानमायालोभपापकर्मोपजीवनादिलक्षणः स एष सर्वोशुभस्य नाम्नः ॥"

अब विचार करना चाहिये कि, गंध पुष्प मालादि चढावनेही नही; ऐसा होवे तो, मंदिरमें गंधमाल्यधूपादि कहांसें आवेंगे ? और तिनके वि-

---

* पूर्वोक्त काव्यकी टीकामें ऐसे लिखा है—अनेन वृत्तेन चंदनं आक्षिप्यते टीपका च दीयते—इस वृत्तको पढके चंदनप्रक्षेप करिये और चरणोपरि टिपिका (तिलक) करिये. ॥

द्यमान न हुए, चुरावेगा क्या ? और अशुभनाम कर्मका आश्रव (आगमन) किसको होवेगा ? तब तो, स्वामी अकलंकदेवका लिखना तुमारी श्रद्धा मूजिब मिथ्या ठहरेगा ! इसवास्ते सिद्ध होता है कि, दिगंबरोंको अपने चलाये–माने मतका आग्रहही है, न तु न्यायबुद्धि. ॥

प्रश्नः–जिनवरकी प्रतिमाको लिंगका आकार करना चाहिये. क्योंकि, भगवान् तो, दिनरात्र वस्त्ररहितही होते हैं. इसवास्ते जिस जिनप्रतिमाको लिंगका आकार न होवे, सो जिनप्रतिमाही नही है. क्योंकि जिनवरके रूपसमानही जिनबिंब बनाना चाहिये; अन्यथा ध्यानमें विलंब होता है. इसवास्ते वस्त्रादिककी शोभा करे, स्थिर ध्यान नही हो सकता है.

उत्तरः–जिनेंद्रके तो अतिशयके प्रभावसें लिंगादि नही दीखते हैं, और प्रतिमाके तो अतिशय नही है, इसवास्ते तिसके लिंगादि दीख पडते हैं; तो फिर, जिनवरसमान तुमारा माना जिनबिंब कैसे सिद्ध हुआ? अपितु नही सिद्ध हुआ. और तुमारे मतके खडे योगासन लिंगवाली प्रतिमाके देखनेसें, स्त्रियोंके मनमें विकृति (विकार) होनेका भी संभव है; जैसें सुंदर भग कुचादि आकारवाली स्त्रीकी मूर्त्ति देखनेसें पुरुषके मनमें विकृति होवे है. और लिंग देखनेसें जिनप्रतिमा, सुभग भी नही दीखती है. और उदयपुरके जिलेमें वागडदेशमें तुमारे मतके लिंगाकार प्रकट वाले नेमीश्वरादिके खडे योगके ऐसें बिंब हैं कि जिनके दर्शन करनेवास्ते सगे बहिनभाइ भी प्रायः साथ एककालमें नही जाते हैं. और अन्यमतवाले भी, ऐसे बिंबको देखके उपहास्य करते हैं. यद्यपि महादेवका केवल लिंगही अन्यमतवाले पूजते हैं, परंतु जिसने यह शिवजीका लिंग है, ऐसा नही सुना है, वो लिंगको प्रथमही देखनेसें नही जान सकता है कि, यह किसीका लिंग है. क्योंकि, उसमें लिंगकी पूरी पूरी आकृति नही है; किंतु केवल अव्यक्त एक पत्थरकी लंबीसी पिंडी दीखती है; तथापि, प्रायः संन्यासी लोक, नग्न होनेसें तिसके दर्शन नही करते हैं; ऐसा सुनते हैं.

और तुमने तो पुरुषाकार प्रतिमाके वृषणोंके ऊपर ऐसा लिंगाकार बनाया है कि, जिसको जो कोइ देखेगा, तिसकोही अच्छा नही लगेगा; तो फिर, जिनवरसमान तुमारा जिनबिंब किसतरें सिद्ध हुआ ?

और जो तुम जिनसमान जिनका बिंब मानते हो, तब तो, जिनबिंबके भमूह (भाफण) श्याम करने चाहियें; आंखें खुणेसें लाल, डोले श्वेत, आना काला, कीकी अतिकाली, ऐसी बनानी चाहिये; दाडीमूंछ काली बनानी चाहिये; हाथपगके तले रक्त (लाल) करने चाहियें; जेकर ऐसें न करोगे, तब तो, जिनवरसमान तुमारा जिनबिंब कदापि सिद्ध नही होवेगा.

तथा जेसा समवसरणमें जिनेश्वरका आकार है, तैसाही आकार तुम प्रतिमाका मानते हो; तव तो, पार्श्वनाथ भगवंतके शिरपर करा हुआ धरणेंद्रका सर्प्पाकार छत्र क्यों बनाते, और मानते हों ? क्योंकि, धरणेंद्रने तो छद्मस्थावस्थामें खडे पार्श्वनाथ भगवंतके शिरपर छत्र फणाकारका करा था, नतु समवसरणमें बैठोंके. और जिस जिनेंद्रको बैठें केवलज्ञान उत्पन्न हुआ, तिसका बिंब खडे योग क्यों बनाते हो ? और जिनवरका रूप तो, लक्षभूषणोंके आकारवाला देदीप्यमान था; और तुमारी प्रतिमाका तो, तैसा रूप है नही. तो फिर, जिनस्वरूपका स्मरण तुमको कैसें हो सकता है ? और पार्श्वनाथ भगवंतका वर्ण तो, प्रियंगुवर्ण—मोरकी ग्रीवासमान था; और तुम तो श्याम, रक्त, पीत, श्वेतवर्णकी प्रतिमा बनाते हो. तो फिर, तदनुरूप कैसें सिद्ध हुई ? इसवास्ते कटक कुंडल मुकुटादि आभरणोंसंयुक्त, और धूप दीप नैवेद्य पुष्प फलादिसें जिनराजका पूजन करना चाहिये. क्योंकि दिगंबराम्नायके शास्त्रोंमें भी ऐसेही पूजाविधान लिखा है; सो यत्किंचित् लिखते हैं.

श्रीउमास्वामीने श्रावकाचार किया है, तिसमें पूजा प्रकरणमें ऐसें लिखा है. ॥

स्नानैर्विलेपनविभूषितपुष्पवासदीपैः प्रधूपफलतंदुलपत्रपूगैः ॥
नैवेद्यवारिवसनैश्चमरातपत्रवादित्रगीतनृतस्वस्तिककोषदूर्वा ॥ १ ॥

इत्येकविंशतिविधा जिनराजपूजा चान्यत्
प्रियं तदिह भाववशेन योज्यम् ॥

भावार्थः—स्नान १, विलेपन २, पुष्प ३, वास ४, दीप ५, धूप ६, फल ७, तंदुल ८, पत्र ९, सुपारी १०, नैवेद्य ११, जल १२, वस्त्र १३, चामर १४, छत्र १५, वादित्र १६, गीत १७, नाटक १८, स्वस्तिक १९, कोष (भंडार) २०, और दूर्वा २१, यह इकवीस प्रकारकी श्रीजिनराजकी पूजा जाणनी, तथा और भी, जो प्रिय होवे, सो शुद्ध भावोंसें पूजनमें योजन करना.

तथा भगवदेकसंधिविरचित श्रीजिनसंहितामें ऐसें लिखा है. ॥

नित्यपूजाविधाने तु त्रिजगत्स्वामिनः प्रभोः ॥
कलशेनैककेनापि स्नापनं न विगृह्यते ॥ १ ॥
विदध्यात्कलहमित्यादि—॥

भावार्थः—नित्यपूजाविधानमें त्रिजगत्स्वामी भगवान्‌को एक कलशसें भी स्नान जो नही कराते हैं, तिनको कलह कुलका नाश आदि प्राप्त होवे हैं, ऐसें जाणना.

तथा श्रीउमास्वामिविरचित श्रावकाचारमें ऐसें कहा है. ॥

प्रभाते घनसारस्य पूजा कुर्याज्जिनेशिनाम् ॥

तथा ॥

चंदनेन विना नैव पूजा कुर्यात्कदाचन ॥

भावार्थः—प्रभातके समय घनसार (बरास) सें श्रीजिनराजकी पूजा करनी. । तथा—चंदनके विना कदापि पूजा नही करनी.

तथा वसुनंदीजिनसंहितामें ऐसें लिखा है. ॥

अनर्चितपदद्वंद्वं कुंकुमादिविलेपनैः ॥
बिंबं पश्यति जैनेंद्रं ज्ञानहीनः स उच्यते ॥ १ ॥

भावार्थः—कुंकुम (केसर) आदि सुगंधित द्रव्योंके लेपसें रहित चरण है जिसके, ऐसे जिनबिंबका जो दर्शन करता है, तिसको ज्ञानहीन पुरुष कहिये हैं.

तथा आराधना कथाकोषमें ऐसें लिखा है.॥

अहिछत्रपुरे राजा वसुपालो विचक्षणः ॥
श्रीमज्जैनमते भक्तो वसुमत्यभिधा प्रिया ॥ १ ॥
तेन श्रीवसुपालेन कारितं भुवनोत्तमम् ॥
लसत्सहस्रकूटे श्रीजिनेंद्रभवने शुभे ॥ २ ॥
श्रीमत्पार्श्वजिनेंद्रस्य प्रतिमापापनाशिनी ॥
तत्रास्ति चैकदा तस्यां भूपतेर्वचनेन च ॥ ३ ॥
दिने लेपं दधत्युच्चैर्लेपकाराः कलान्विताः ॥
मांसादिसेवकास्ते तु ततो रात्रौ सलेपकः ॥ ४ ॥
पतत्येव क्षितौ शीघ्रं कदर्थ्यंते खिला भृशम् ॥
एवं च कतिचिद्वारैः खेदाखिन्ने नृपादिके ॥ ५ ॥
तदेकेन परिज्ञात्वा लेपकारेण धीमता ॥
देवताधिष्ठितां दिव्यां जिनेंद्रप्रतिमां हि ताम् ॥ ६ ॥
कार्यसिद्धिर्भवेद्यावत्तावत्कालं सुनिश्चलम् ॥
अवग्रहं समादाय मांसादेर्मुनिपार्श्वतः ॥ ७ ॥
तस्यां लेपः कृतस्तेन सलेपः संस्थितस्तदा ॥
कार्यसिद्धिर्भवत्येवं प्राणिनां व्रतशालिनाम् ॥ ८ ॥
तदासौ वसुपालेन भूभुजा परया मुदा ॥
नानावस्त्रसुवर्णाद्यैः पूजितो लेपकारकः ॥ ८ ॥

भावार्थः—अहिछत्रपुरनामा नगरका राजा वसुपालनामा हुआ, जो विचक्षण और श्रीजैनधर्मका भक्त था, तिसकी राणीका नाम वसुमती था, तिस वसुपाल राजाने अपने बनवाये सहस्रकूट नामा श्रीपार्श्वनाथके मंदिरमें पापोंके नाश करनेवाली श्रीपार्श्वनाथकी प्रतिमा स्थापन करी; एकदा प्रस्तावे तिस राजाने लेपकारोंको श्रीपार्श्वनाथजीकी प्रतिमाके ऊपर लेप करनेकी आज्ञा करी, तब कलावान् लेपकार, दिनमें अतिशय

मेहनत करके लेप करते हैं, परंतु लेपकार मांसादिके सेवनेवाले होनेसें सो लेप रात्रिकेविषे जलदी भूमिऊपर गिर पडता है, जिससें लेपकारादि बहुत कदर्थनाको प्राप्त होते हैं. कितनेहीवार ऐसें करते रहें, परंतु लेप ठहरता नहीं है, और राजादि खेदको प्राप्त हुए; तब बुद्धिमान् एक लेपकारने तिस जिनेंद्रकी दिव्यप्रतिमाको देवताधिष्ठित जानके, जबतक कार्यसिद्धि न होवे, तबतक, अर्थात् तितने कालका मांसादि नही खानेका मुनिके पाससें नियम लेके, तिस प्रतिमाके ऊपर लेप करा; तब सो लेप ठहर गया. ऐसें व्रतशालि प्राणियोंको कार्यसिद्धि होवे हैं. तब वसुपाल राजाने परमहर्षसें अनेक प्रकारके वस्त्रसुवर्णादिकोंकरके तिस लेपकारका पूजन करा.

वसुनंदीकृत प्रतिष्ठापाठमें ऐसें लिखा है. ॥

कर्पूरैलालवंगादिद्रव्यमिश्रितचंदनैः ॥
सौगंधवासिताशेषदिङ्मुखैश्चर्चयेज्जिनम् ॥ १ ॥

भावार्थः—सुगंधकरके वासित करी है संपूर्ण दिशायें जिनोंने, ऐसें कर्पूर, एलाफल (इलायची), लवंग, आदि द्रव्योंकरके मिश्रित चंदनसें जिनको चर्चे अर्थात् लेप करें.

तथा धर्मकीर्त्तिकृत नंदीश्वरस्थ जिनबिंबकी पूजामें ऐसे लिखा है. ॥

कर्पूरकुंकुमरसेन सुचंदनेन
येजैनपादयुगलं परिलेपयंति ॥
तिष्ठंति ते भविजनाः सुसुगंधगंधा-
दिव्यांगनापरिवृताः सततं वसंति ॥ १ ॥

भावार्थः—जे भव्यप्राणि कर्पूरकुंकुमके रसकरी, और भले चंदनकरके, जिनपादयुगलको लेप करते हैं, वे भविजन सुसुगंध शरीरवाले होके, दिव्यरूपवाली देवांगनाओंके साथ परिवरे हुए निरंतर सागरोंतक बसते हैं.

तथा पूजासारनामा जिनसंहितामें ऐसें लिखा है. ॥

समृद्धिभक्त्या परया विशुद्ध्या कर्पूरसंमिश्रितचंदनेन ॥
जिनस्य देवासुरपूजितस्य सुलेपनं चारु करोमि मुक्त्यै ॥ १ ॥

भावार्थः—अपनी समृद्धिपूर्वक परमविशुद्ध भक्तिसें मिश्रितचंदनकरके देवअसुरादिकोंसें पूजित ऐसें जिनको मुक्तिकेवास्ते भला लेपन करता हूं.

तथा त्रिवर्णाचारमें ऐसें लिखा है. ॥

जिनांघ्रिचंदनैः स्वस्य शरीरे लेपमाचरेत् ॥
यज्ञोपवीतसूत्रं च कटिमेखलया युतम् ॥ १ ॥
जिनांघ्रिस्पर्शितां मालां निर्मले कंठदेशके ॥
ललाटे तिलकं कार्यं तेनैव चंदनेन च ॥ २ ॥

भावार्थः—जिनमूर्त्तिके चरणकमलके चंदनसें अपने शरीरको लेप करे, और कटिमेखला (कंदोरा—तरागडी) संयुक्त यज्ञोपवीत अपने शरीर-ऊपर धारण करे; । तथा जिनमूर्त्तिके चरणोंको स्पर्शी हुई मालाको अपने कंठमें धारण करे, तथा अपने ललाटऊपर तिसही चंदनसें तिलक करे. ॥

तथा पूजासारमें ऐसें लिखा है. ॥

ब्रह्मघ्नोथवा गोघ्नो वा तस्करः सर्वपापकृत् ॥
जिनांघ्रिगंधसंपर्कान्मुक्तो भवति तत्क्षणम् ॥ १ ॥

भावार्थः—जो ब्रह्मघाती, तथा गोघाती, तथा तस्कर—चौर, तथा सर्व पापोंके करनेवाला पुरुष है, सो भी, जिनेंद्रके चरणोपरि लगे हुए गंधके स्पर्शसें, अर्थात् तिस गंधको भक्तिपूर्वक अपने शरीरको लगानेसें, तत्क्षण शीघ्रही पूर्वोक्त पापोंसें मुक्त होता है—छूट जाता है. ॥

तथा श्रीपालचरित्रमें ऐसें लिखा है.

दिवसाष्टकपर्यंतं प्रपूजय निरंतरम् ॥
पूजाद्रव्यैर्जगत्सारैरष्टभेदैर्जलादिकैः ॥ १ ॥

तच्चंदनसुगंध्यंबुस्रजोव्याधिहराः स्फुटम् ॥
प्रत्यहं त्वत्पतेर्भक्त्या प्रयच्छ रोगहानये ॥ २ ॥

भावार्थः—मदनसुंदरीको महामुनिने कहा कि, श्रीसिद्धचक्रका आठ दिनपर्यंत निरंतर जगत्में सारभूत ऐसें जलादि आठ प्रकारके पूजाके द्रव्यसें, अर्थात् अष्टद्रव्यसें पूजन कर; और निरंतर व्याधिको हरनेवाले, ऐसें सिद्धचक्रको स्पर्शे हुए, चंदन, सुगंध, जल, और माला, रोगके दूर करने वास्ते भक्तिसें अपने पतिको लगाव.

तथा निर्वाणकांडमें ऐसें लिखा है. ॥

गोमट्टदेवं वंदामि पंच सयंधणुहदेहउच्चंतं ॥
देवा कुणंति विट्ठिं केसरकुसुमाण तस्सउवरिम्मि ॥ १ ॥

भावार्थः—गोमट्टदेव (बाहुबल) को मैं वंदना करता हूं, कैसें हैं गोमट्टदेव? जिसका पांचसौ धनुष्य प्रमाण उच्चदेह है, और तिसके ऊपर देवता केसर और पुष्पोंकी वर्षा करते हैं.

तथा षट्कर्मोपदेशरत्नमालामें ऐसें लिखा है. ॥

इतीमं निश्चयं कृत्वा दिनानां सप्तकं सती ॥
श्रीजिनप्रतिबिंबानां स्नपनं समकारयत् ॥ १ ॥
चंदनागरुकर्पूरसुगंधैश्च विलेपनम् ॥
सा राज्ञी विदधे प्रीत्या जिनेंद्राणां त्रिसंध्यकम् ॥ २ ॥

भावार्थः—यह (पूर्वोक्त) निश्चय करके मदनावलीनामा राणी, श्रीजिनेंद्रप्रतिमाको सात दिन स्नान कराती भई; और प्रीतिसें त्रिसंध्यामें जिनेंद्रको चंदन अगरकर्पूरादि सुगंध द्रव्योंसें विलेपन करती भई.

तथा प्रतिष्ठापाठमें ऐसें लिखा है. ॥

जिनांघ्रिस्पर्शमात्रेण त्रैलोक्यानुग्रहक्षमाम् ॥
इमां स्वर्गरमादूतीं धारयामि वरस्रजम् ॥ १ ॥

भावार्थः—मैं प्रधानमालाको धारण करता हूं, कैसी माला? जिनेंद्रके चरणके स्पर्शमात्रसें तीनों लोकोंको अनुग्रह करनेमें समर्थ, और स्वर्गकी लक्ष्मीकी प्राप्तिमें दूतीसमान.

तथा आराधनाकथाकोषमें करकंडुके चरित्रमें ऐसें लिखा है. ॥

तदा गोपालकः सोपि स्थित्वा श्रीमज्जिनाग्रतः ॥
भो सर्वोत्कृष्ट ते पद्मं ग्रहाणेदमिति स्फुटम् ॥ १ ॥
उक्त्वा जिनेंद्रपादाब्जोपरि क्षिप्त्वाशु पंकजम् ॥
गतो मुग्धजनानां च भवेत्सत्कर्मशर्मदम् ॥ २ ॥

भावार्थः—तब सो गोपाल भी श्रीजिनमूर्त्तिके आगे स्थित होके, भो सर्वोत्कृष्ट! यह कमल ग्रहण कर, ऐसा कहके श्रीजिनेंद्रके चरणकमलोपरि कमलको शीघ्र क्षेपन करके, गया; इत्यादि.

तथा श्रीजिनयज्ञकल्पप्रतिष्ठाशास्त्रमें ऐसें लिखा है. ॥

"॥ श्रीजिनेश्वरचरणस्पर्शादनर्घ्या पूजा जाता सा माला महाभिषेकावसाने बहुधनेन ग्राह्या भव्यश्रावकेनेति ॥ "

भावार्थः—श्रीजिनेश्वरके चरणस्पर्शसें अमूल्य पूजा हुई, सो महाभिषेक अंतमें भव्य श्रावकने बहुत धनकरके ग्रहण करनी.

तथा व्रतकथाकोषमें ऐसे लिखा है. ॥

तत्प्रश्नाच्छ्रेष्ठिपुत्रीति प्राह भद्रे शृणु ब्रुवे ॥
व्रतं ते दुर्लभं येनेहामुत्र प्राप्यते सुखम् ॥ १ ॥
शुक्लश्रावणमासस्य सप्तमीदिवसेर्हताम् ॥
स्नापनं पूजनं कृत्वा भक्त्याष्टविधमूर्जितम् ॥ २ ॥
ध्रीयते मुकुटं मूर्ध्नि रचितं कुसुमोत्करैः ॥
कंठे श्रीवृषभेशस्य पुष्पमाला च ध्रीयते ॥ ३ ॥

भावार्थः—तिसके प्रश्नसें आर्यिकाजी कहती भई, हे भद्रे श्रेष्ठिपुत्रि! सुण, मैं तुजको व्रत कहती हूं; जिस व्रतके प्रभावसें इसलोकमें, और परलोकमें दुर्लभ सुख प्राप्त करिये हैं;। सोही व्रत दिखावे हैं. शुक्लश्रावणमासकी सप्तमीके दिन अर्हन् भगवान्की मूर्त्तियोंको भक्तिसें स्नान करायके, अष्टद्रव्यकरके जिनेंद्रका पूजन करके, कुसुमोंके (पुष्पोंके) समूहसें रचे

हुए मुकुटको जिनेंद्रके मस्तक ऊपर धारण करिये, और श्रीऋषभदेवके कंठमें पुष्पमाला धारण करिये. इत्यादि ॥

तथा श्रीपाल चरित्रमें ऐसें लिखा है. ॥

तत्र नंदीश्वराष्टम्यां सिद्धचक्रस्य पूजनम् ॥
चक्रे सा विधिना दिव्यैर्जलैः कर्पूरचंदनैः ॥ १ ॥
अक्षतैश्चंपकाद्यैश्च पक्वान्नैर्वरदीपकैः ॥
धूपैः सुगंधिभिर्भक्त्या नालिकेरादिसत्फलैः ॥ २ ॥
तद्विलेपनगंधांबुपुष्पाणि सा ददौ मुदा ॥
श्रीपालायांगरक्षेभ्यः पाणिभ्यां रुग्विहानये ॥ ३ ॥

भावार्थः—तब मदनसुंदरी, अष्टान्हिकाविषे सिद्धचक्रका विधिसें, दिव्य जल, कर्पूर, चंदन, अक्षत, चंपकादि पुष्प, पक्वान्न, दीपक, सुगंधिधूप, और नालिकेरादि सुंदर फल, इत्यादि विविध द्रव्योंकरके पूजन करती भई; और तिस पूजनके विलेपन गंधोदक पुष्पोंको (अर्थात् नैर्माल्यको) श्रीपालकेतांइ, तथा अंगरक्षकोंकेतांइ रोगहानिके वास्ते, अर्थात् रोगके दूर करनेवास्ते अपने हाथोंसें देती भई. ॥

तथा भय्या भगवतीदासकृत ब्रह्मविलासमें ऐसा कवित्त कहा है

जगतकै जीव तिन्है, जीतिकै गुमानी भयो ।
ऐसो कामदेव एक, जोधा यो कहायो है ॥
ताकै सर जानी यत, फूलनीके वृंद बहु ।
केतकी कमल कूंद, केवरा सुहायो है ॥
मालती महासुगंध, वेलकी अनेक जाती ।
चंपक गुलाब जिन, चरनन चढायो है ॥
तेरीही सरन जिन, जोर न वसाय याको ।
सुमनसुं पूजो तोही, मोहि ऐसो भायो है ॥ १ ॥

तथा योगींद्रदेवकृत श्रावकाचारमें ऐसें लिखा है. ॥

"॥ दीवंदइ दिणइ जिणवरहं मोहहं होइ णट्ठाइ ॥"

भावार्थः—जो श्रीजिनेंद्रकी दीपकसें पूजा करता है, तिसका मोह अर्थात् अज्ञान नष्ट होता है. ॥

तथा जिनसंहिताविषे ऐसा लिखा है. ॥

ॐकैवल्यावबोधार्को द्योतयत्यखिलं जगत् ॥
यस्य तत्पादपीठाग्रे दीपान् प्रद्योतयाम्यहम् ॥ १ ॥

भावार्थः—जिसका केवलज्ञानरूपी सूर्य संपूर्ण जगत्को प्रकाश करता है, तिस जिनेंद्रके पादपीठके आगे मैं दीपकोंको प्रकाशता हूं. ॥

तथा भय्या भगवतीदासकृत ब्रह्मविलासमें ऐसें लिखा है. ॥

दीपक अनाये चहुं गतिमें न आवे कहुं ।
वर्त्तिके बनाये कर्मवर्त्ति न बनतु हैं ॥
आरती उतारतही आरत सब टर जाय ।
पाय ढिंग धरै पापपंकति हरतु हैं ॥
* * * * * * * * *
वीतराग देवजुकी कीजे दीपकसों चित्त लाय ।
दीपत प्रताप शिवगामी यों भनतु हैं ॥ १ ॥

तथा श्रीउमास्वामिविरचितश्रावकाचारमें ऐसें लिखा है. ॥

मध्याह्ने कुसुमैः पूजा संध्यायां दीपधूपयुक् ॥
वामांगे धूपदाहश्च दीपं कुर्याच्च सन्मुखम् ॥ १ ॥
अर्हतो दक्षिणे भागे दीपस्य च निवेशनम् ॥

भावार्थः—मध्यान्हमें कुसुम (फूलों) सें पूजा करनी, संध्यामें दीपधूपसंयुक्त पूजा करनी, भगवानके वामपासे धूपदाह करना, और सन्मुख दीपक करना, और अर्हन्के दक्षिण पासे दीपकको स्थापन करना. ॥

तथा बणारसीदासजीने कहा है. ॥

॥ दोहा. ॥ पावक दहे सुगंधकूं, धूप कहावत सोय ॥
खेवत धूपे जिनेशकुं, अष्टकर्म क्षय होय ॥ १ ॥

तथा षड्विधपूजाप्रकरणमें ऐसें लिखा है. ॥

एवं काऊण रओ खुहियसमुद्दोव गज्जमाणेहिं ॥
वरभेरीकरडकाहलजयघंटासंखणिवहेहिं ॥ १ ॥
गुलगुलंति तिविलेहिं कंसतालेहिं झमझमंतेहिं ॥
धुमंतफडहमद्दलहुडकमुखेहिं विविहेहिं ॥ २ ॥
चिट्ठेज्ज जिणगुणारोवणं कुणंतो जिणंदपडिबिंबे ॥
इट्ठविलग्गसुदएइ चंदणातिलयं तओ दिज्जइ ॥ १ ॥
सव्वावयवेसु पुणो मंत्तण्णासं कुणिज्ज पडिमाए ॥
विविहच्चणं च कुज्जा कुसुमेहिं बहुप्पयारेहिं ॥ २ ॥
वलिवत्तिएहिं जुवारेहिय सिद्धत्थपण्णरुक्खेहिं ॥
पुव्वुत्तवयरणेहि य रइज्ज पूयं सविहवेण ॥ १ ॥
गहिऊण सिसिरकरकिरणणियरधवलरयणभिंगारं ॥
मोत्तिपवालमरगयसुवण्णमणिखचियवरकंठं ॥ १ ॥
सुयवुत्तकुसुमकुवलयरजपिंजरसुरहिविमलजलभारियं ॥
जिणचलणकमलपुरओ खेविज्जउ तिण्णधाराओ ॥ २ ॥
कप्पूरकुंकुमायरुतरुक्कमिस्सेण चंदणरसेण ॥
वरबहुलपरिमलामोयवासियासासमूहेण ॥ ३ ॥
वासाणुमग्गसंपत्तामयमत्तालिरावमुहलेणं ॥
सुरमउडघडियचलणं भत्तिए समल्लहिज्ज जिणं ॥ ४ ॥
ससिकंतखंडविमलेहि विमलजलोहिं सित्तअइसुअंधेहिं ॥
जिणपडिमपइट्ठिए जिय विसुद्धपुण्णंकुरेहिं च ॥ ५ ॥
वरकलमसालितंदुलचाणिहसुछंडियदीहसयलेहिं ॥
मणुयसुरासुरमहियं पूजिज्ज जिणिंदपयजुयलं ॥ ६ ॥

मालियकयंबकणयारियंपयासोयबउलतिलएहिं ॥
मंदारणायचंपयपउमुप्पलसिंदुवारेहिं ॥ ७ ॥
कणवीरमल्लियाइं कचणारमयकुंदर्किकराएहिं ॥
सुरवणजजुहियापारिजास्रवणढगरेहिं ॥ ८ ॥
सोवण्णरूवमेहि य मुत्तादामेहि बहुवियप्पेहिं ॥
जिणपयसंकयजुयलं पूजिज्ज सुरिंदसयमहियं ॥ ९ ॥
दहिदुद्धसप्पिमिस्सेहि कमलमत्तएहिं बहुप्पयारेहिं ॥
तेवट्ठिवंजणेहि य बहुविहपक्कणभेएहिं ॥ १० ॥
रूप्पसुवण्णकंसाइथालणिहिएहिं विविहभरिएहिं ॥
पूयं वित्थारिज्जा भत्तिए जिणंदपयपुरओ ॥ ११ ॥
दीवेहि णियपहोहामियक्कतेएहिं धूमरहिएहि ॥
मंदमंदाणिलवसेण पञ्चंतहिं अच्चणं कुज्जा ॥ १२ ॥
घणपडलकम्मणिचयव्व दूरमवसारियंधयारेहिं ॥
जिणचलणकमलपुरओ कुणिज्ज रयणं सुभत्तिए ॥ १३ ॥
कालायरुणहचंदणकप्पूरसिल्हारसाइदव्वेहि ॥
णिप्पण्णधूमवत्तिहि परिमलापंतियालीहिं ॥ १४ ॥
उग्गसिहादेसिएहि सग्गमोक्खमग्गहि बहुलधूमेहि ॥
धुविज्ज जिणिंदपायारविंदजुयलं सुरिंदणुयं ॥ १५ ॥
जंबीरमोयदाडिमकवित्थपणसूयनालिएरेहिं ॥
हिंतालतालखज्जुरविंवणारंगचारेहिं ॥ १६ ॥
पुइफलतिंदुआमलयजंबूबिल्लाइसुरहिमिट्ठेहिं ॥
जिणपयपुरओ रयणं फलेहि कुज्जा सुपक्केहिं ॥ १७ ॥
अट्ठविहमंगलाणि य बहुविहपूजोवयरणदव्वाणि ॥
धूवदहणाइ तहा जिणपूयत्थं वितीरिज्जइ ॥ १८ ॥

भावार्थः–ऐसें पूर्वोक्त प्रकार शब्द करी, कैसा शब्द ? क्षोभकों प्राप्त हुआ समुद्र तिसका जो गरजारव तिसकी उपमा योग्य श्रेष्ठ, भेरी १, करड २, काहल ३, जयघंटा ४, शंख ५, इन वाजित्रके समूहके शब्दकरी गुलगुल अर्थात् अव्यक्तशब्द होय है; तथा तिविल १, और कांसी, ताल, मंजीरे, आदि वाजित्रोंके झमझम शब्द होय है; तथा पटहढोल १, मृदंग २, आदि वाजित्रके शब्दोंकरी एकधूम मची रही है;। इत्यादि ॥ नाटक करनेका विधि है.

तथा–जिनेंद्रके गुणोंका आरोपण, जिनप्रतिमामें स्थापन करता हुआ बैठे; और इष्टलग्नोदयके हुए, जिनप्रतिमाको तिलक देवें । पीछे प्रतिमाके सर्व अवयवोंमें मंत्रन्यास करें; पीछे बहुप्रकारके कुसुम–पुष्पोंकरके अनेक प्रकारकी पूजा करें.

तथा–वारनाकरी, तथा जवारेके हरित अंकुरोंकरी, तथा सरसवपत्र, और वृक्षोंकरी, तथा पूर्वोक्त उपकरणोंकरी, अपने विभवानुसार जिनप्रतिमाका पूजन करें. ॥

अथ पूजाविधिरुच्यते–अब आगे पूजाका विधि कहते हैं ॥ चंद्रमाके किरणसमान उज्वल रत्नोंसें जडी हुई झारीको ग्रहण करी, जिनप्रतिमाके चरणकमलके आगे तीन धारा जलकी दीजे; (जिनप्रतिमाको न्हवण करानेका विधि प्रथमकी गाथायोंमें है–एवं चत्तारिदिणा–इत्यादि) कैसी है झारी ? मोती, प्रवाल, (गुलीयां), मरकत, स्वर्ण, मणि, इनोंकरके खचित–जडा हुआ है कंठ, अर्थात् सुंदर मणिमोतीसुवर्ण आदिकोंसें जडी हुई प्रनालिका–जल नीकलनेकी टूटी है जिसकी, तथा सूत्रोक्त पुष्प और कमलादिकोंकी रजकरी पीत, और सुगंधित, ऐसा निर्मल जल भरा है जिसमें. ॥ इतिजलपूजा–॥

कर्पूर, केसर, अगर, मलयागिरमिश्रित चंदनरसकरके घसनेसें प्रचुर सुगंधकरके वासित करा है दिशासमूह जिसने, तथा सुगंध द्रव्यके अनुमार्गकरके प्राप्त हुए, भ्रमरोंकी जो मदोन्मत्त पंक्ति तिसकरके वाचालकृत अर्थात् जिस गंधके प्रचुर सुगंधसें चारों तर्फ भ्रमर फिर रहे हैं

तथा अव्यक्त ध्वन्युच्चार कर रहे हैं. ऐसी सुंदर सुगंधसें देवताके मुकुटकरके घटित स्पर्शित चरणकमल है जिसके, ऐसें श्रीजिनेश्वरदेवको विलेपन करें. ॥ इतिगंधपूजा—॥

चंद्रमाकी चांदनीसमान अतिउज्वल अखंडित निर्मल अतिसुगंधित, तथा निर्मल जलकरके धोए हुए, ऐसें अक्षत (चावलों) करके जिन-प्रतिमाके प्रतिष्ठित हुए पूजन करना; कैसें पूर्वोक्त चावल ? मानुं पुण्यके अंकुर हैं; । अति मिष्ट कलमशाली और तंदुलके समूहको स्वच्छ करके तिन चावलोंकरके, मनुष्य सुरासुरकरके पूजित ऐसें श्रीजिनेंद्रके पदयुगलकों पूजें. ॥ इत्यक्षतपूजा—॥

मालती, कदंब, सूर्यमुखी, अशोक, बकुल, (बोलसिरी) तिलकवृक्षके पुष्प, मंदारनामा पुष्प, नागचंपेके पुष्प, उत्पल—कमल, निर्गुंडीके, कण-वीर (कंडीर) के, मल्लिकानामा, कचनारके, मचकुंदके, किंकर, कल्पवृ-क्षके, जूईके, पारिजातिकके, जासूसके पुष्प, डमरेके पत्र, सोनेके पुष्प, चांदीके पुष्प, इत्यादि अनेक प्रकारके पुष्पोंकरके, तथा मोतीकी माला आदि अनेक प्रकारकी मालायोंकरी, देवेंद्रादिकोंकरके पूजित ऐसे श्रीजिनेंद्रके चरणयुगलोंका पुजन करे. ॥ इतिपुष्पपूजा—॥

दहिदुग्धघृतकरी मिश्रित मिष्टतंदुलका भात करी, तथा नानाप्रकारके शाक आदि व्यंजन (तीमन) करी, तथा नानाप्रकारके पकान्नकरी सोना चांदी कांसी आदिके थालोंमें मोदकादि अनेकप्रकारके भक्ष्यको स्थापन करी, श्रीजिनवरके चरणकमलके आगे भक्तिसें पूजाका विस्तार करें. ॥ इतिनैवेद्यपूजा—॥

तथा भगवान्के चरणकमलके आगे भक्तिसें दीपककी रचना करें. कैसें दीपककी ? अपनी प्रभाके समूहकरके सूर्यके सदृश प्रताप धारण करा है जिनोंने, तथा धूमकरके रहित शिखा है जिनकी, तथा मंदमंद पवनके वशसें नृत्यकेसमान नृत्य करते संते, तथा अतिसघनकर्मके पटलके समूहके समान जो अंधकार तिसको अपने प्रकाशके आतिशय-

करके दूर करते संते, ऐसें दीपकोंकी रचना, भक्तिसें प्रभुके चरण-कमलके आगे करनी. ॥ इति दीपकपूजा-॥

कालागुरु (अगर), अंबर, चंदन, कर्पूर, सिल्हारसादि सुगंध द्रव्योंकरके उपनी जो वर्त्तियां, तिनोंकरके सुरेंद्रकरके स्तवे हुए श्रीजिनेंद्रके चरणकमलको धूपित करे. कैसी वर्त्तियां? सुगंधकी पंक्ति, और धूमकी उग्र शिखा, तिनोंकरके दिखाया है स्वर्ग और मोक्षका मार्ग जिनोंने. ॥ इति धूपपूजा- ॥

जंबीरफल, कदलीफल (केला), दाडिम (अनार), कपित्थ (कोठ), पनस, तूत, नालिएर, हिंताल, ताल, खर्जूर, किंदूरी (गोल्हफल), नारंगी, सुपारी, तिंदुक, आमला, जांबू, बिल्व, इत्यादि अनेक प्रकारके आगे सुगंधित, और मिष्ट पक हुए फलोंकरके जिनेंद्रके चरणकमलके आगे रचना करनी. ॥ इति फलपूजा- ॥

अष्टविध मंगल द्रव्य झारी १, कलश २, चामर ३, छत्र ४, ध्वजा ५, तालबींजना ६, स्वास्तिक ७, दर्प्पण ८, तथा बहुविध पूजाके उपकरण, तथा धूपदहन आदि, भगवानकी पूजाके अर्थे विस्तारना. ॥ इति पूजाविधानम्-॥

इत्यादि अनेक शास्त्रोंमें, तथा और भी मुक्तावलिपूजा, नरेंद्रसेनभट्टारककृत प्रतिष्ठापाठ, प्रभाकरसेनकृत प्रतिष्ठापाठ, आशाधरकृत प्रतिष्ठापाठ, योगींद्रदेवकृत श्रावकाचार, भगवदेकसंधिकृतजिनसंहितादि शास्त्रोंमें नानाप्रकारका पूजाविधान कथन करा है. ॥ तथा भगवज्जिनसेनाचार्यकृत आदिपुराणमें लिखा है कि, उत्तमकुलके मनुष्यको जैसें गुरुजनकी माला, अपने शिरपर धारण करने योग्य है, तैसेंही जिनपदस्पर्शितपुष्पकी माला, अपने शिरऊपरि धारने योग्य है. । तथा श्रीअजितनाथ तीर्थंकरकी माता जयसेनाने बाल्यावस्थामें अट्ठाइमहोत्सव करके, अर्हन्के शरीरको विलेपन करा, पुष्पमाला चढाई. पीछे जिनप्रतिमाके चरणकों स्पर्शी हुई तिस मालाको लेके अपने पिताको देई, पिताने भी खुशीसें लेके पुत्रीको पारणा करनेकों विदाय करी. इत्यादि कथन श्रीअजितनाथ पुराणमें है. तथा सुलोचनाने ऐसेंही गंधोदक, और पुष्पमाला, अपने पिता अकंपनामा राजाको दीनी.

जो कथन श्रीआदिपुराणमें है. तथा पद्मनंदिआचार्यने, पद्मनंदिपच्चीसीमें दीपकोंकी श्रेणिकरके प्रभुको आरती करनी कही है. । तथा जिनसंहितामें, कार्त्तिकमासमें कृत्तिकानक्षत्रके संध्यासमयमें श्रीजिनमंदिरमें कार्त्तिकोत्सव करनेका विधि लिखा है; जिसमें लिखा है कि, यथोक्त विधिकरके नानाप्रकारके नैवेद्य जिनाग्रे धारण करने, और पूजास्थानादि कितनेक स्थानोंमें घृत पूरित कर्पूरकी बत्ती आदिके दीपक करने, और मंडप, दरवाजा, परिवारगृह, प्राकारतट, तोरणादि ऊर्ध्व अधःस्थानोंमें तैलादि पूरित दीपक करने, इत्यादि. । तथा षट्कर्मोपदेशपरत्नमालामें, कर्पूरघृतादिकसें त्रिकाल दीपकपूजन लिखा है. इत्यादि अनेक शास्त्रोंमें पूजासंबंधि वर्णन है. इन सर्व लेखोंसें मालुम होता है कि, भगवान्‌की प्रतिमाको अंगीयांकी रचना नही करनी, यह केवल दिगंबर भाइयोंका हठही है; क्योंकि, चांदीकी, सुवर्णकी, मोतीकी, इत्यादि माला, और पुष्पका मुकुट, तथा सर्व शरीरकों विलेपन, इत्यादि करने तो ऊपर हम दिगंबरीय शास्त्रानुसारही लिख आए हैं. तो, श्वेतांबरकी अंगरचना, आभूषण पूजादिकोपरि क्यों संदेह करना चाहिये ? क्योंकि, जिसवास्ते श्वेतांबर पूर्वोक्त कार्य करते हैं, तिसहीवास्ते दिगंबरी भी करते हैं; सोही दिगंबरीय पुस्तकका पाठ थोडासा लिखते हैं. । तथाहि । " बहुरि सोनारूपाके पुष्प, तथा मोतीनिकी मालाका चढावना कह्या हैं, सो जिनमंदिरमें बहुद्रव्योपार्जनके अर्थ, बहुरि अतिशोभाके अर्थ, तथा प्रभावनाकी वृद्धिके अर्थ, तथा उत्कर्षभावकी वृद्धिके अर्थ, तथा बहुधनत्यागनेके अर्थ, कृपणाई हरिवेके अर्थ, तथा अतिउपमाके अर्थ, इत्यादि. ॥ " परंतु मालाको चरणोपरि चढावनी, और गलेमें नही पहिरावनी, यह भी मनःकल्पित वृत्ति है. क्योंकि, माला गलेमेंही पहरी जाती है, सो आबालगोपालांगनामें प्रसिद्ध है. यदि गलेमें पहिरावनेसें आभरण हो जावे हैं, इसवास्ते नही पहिरावनी चाहिए, ऐसें कहो तो, मुकुट भी तो आभरणही है, और मुकुटको मस्तकोपरि स्थापन करना दिगंबरीय शास्त्रमेंही लिखा है; जो पाठ पूर्व लिख आए हैं.

दिगंबरीः—यह पूर्वोक्त पूजा विषयिक आपका श्रम, प्रायः व्यर्थ है क्योंकि, हमारेही शास्त्रोंके पाठ हैं, और इन सर्वपाठोंको हम मानते हैं और इन सर्वपाठानुसार हम करते भी हैं.

श्वेतांबरीः—यह आपका कथन सत्य है, परंतु हमारे पूर्वोक्त लेखों कितनाक श्रम, वीसपंथी दिगंवरी आदि सर्व दिगंबराम्नायके वास्तेही है जिसमें भी, पूजाविषयक श्रम तो, प्रायः तेरापंथी दिगंवरीयोंकेवास्ते है

तेरापंथी दिगंवरीः—पुष्पादिकसें पूजन करनाहि पाप है. क्योंकि इसमें बडी हिंसा होती है. और धर्म तो, अहिंसामय है. अभिषेकों और पुष्पादिके चढावनेमें वहुत सावद्यारंभ होता है, इसवास्ते हम पूर्वोक्त विधान नही करते हैं.

उत्तरः—वाहजी वाह!! आपको भी ढुंढकमतका स्पर्श हुआ मालुम होता है. क्योंकि, ऐसी जैनागमविरुद्ध श्रद्धा तो, अपठित ढुंढकमता वलंबीयोंकी हैं; परंतु दिगंबराम्नायकी तो ऐसी श्रद्धा नही है. बलकि, दिगंबराम्नायके श्रीयोगींद्रदेवकृत श्रावकाचारमें, तथा सारसंग्रहमें, तथा आराधनाकथाकोशादि शास्त्रोंमें लिखा है कि, श्रीजिनाभिषेकमें, पुष्पादिकसें जिनपूजा करनेमें, और तीर्थयात्रा, जिनबिंब, प्रतिष्ठा आदि कार्योंमें, जो आरंभ कहता है, और सावद्ययोग कहता है, तथा हिंसा रंभ कथन करता है, सो मिथ्यादृष्टि है, दर्शनभ्रष्ट है, पापी है, सम्यग् दर्शनका घातक है, और श्रीजिनधर्मका द्रोही है.

तथाहि ॥

आरंभे जिणण्हावियए जो सावज्जं भणंति दंसणं तेण ॥
जिमइमलियो इच्छुण कांइओभंति ॥ १ ॥
जिनाभिषेके जिनवैप्रतिष्ठाजिनालये जैनखुयात्रयायां ॥
सावद्यलेशो वदते स पापी स निंदको दर्शनघातकश्च ॥ १ ॥
श्रीमज्जिनेंद्रचंद्राणां पूजा पापप्रणाशिनी ॥
स्वर्गमोक्षप्रदा प्रोक्ता प्रत्यक्षं परमागमे ॥ १ ॥

यः करोति सुधीर्भक्त्या पवित्रो धर्महेतवे ॥
स एकदर्शने शुद्धो महाभव्यो न संशयः ॥ २ ॥
यस्तस्या निंदकः पापी स निंद्यो जगति ध्रुवम् ॥
दुःखदारिद्र्यरोगादिदुर्गतिभाजनं भवेत् ॥ ३ ॥ इत्यादि.

भावार्थ ऊपरही कह दिया है. ॥ इसवास्ते शास्त्रोक्त श्रद्धान करके कर्त्तव्यता युक्त है. क्योंकि, पुष्पादिकोंकरके जिनोंने श्रीजिनराजका पूजन करा है, तिनोंने तिसका फल स्वर्गलोकादि यावत् क्रमसें मोक्ष पाया है; तिसका कथायुक्त पुण्याश्रव, तथा व्रतकथाकोश, तथा आराधनाकथाकोश, तथा षट्कर्मोपदेशरत्नमालादि अनेक दिगंबरीय शास्त्रोंमें विस्तारसें वर्णन करा है. परंतु, किसी भी जैनमतके शास्त्रमें, ऐसा नही लिखा है कि, फलाने पुरुषने, वा असुक स्त्रीने पुष्पादिकोंसें श्रीजिनराजकी पूजा करी, और तिस पूजाके प्रभावसें नरक प्राप्त करी !!! और श्वेतांबरमतके श्रीराजप्रश्नीय (रायपसेणी) सूत्रमें तो, पूजाके पांच फल लिखे हैंः—

तथाहि ॥

"॥हियाए सुहाए खमाए निसेयसाए अणुगामित्ताए भविस्सइ ॥"

भावार्थः—श्री जिनप्रतिमा पूजनेका फल पूजनेवालोंको हितकेवास्ते, सुखकेवास्ते, योग्यताके वास्ते, मोक्षके वास्ते, और जन्मांतरमें भी साथही आनेवाला है. ॥ इसवास्ते हठकदाग्रहको छोडके, शास्त्रोक्तही श्रद्धान करना योग्य है. यदि पूर्वोक्त फूल आदि द्रव्योंमें हिंसा मानके पूजन करना छोड देवोगे, तब तो, जिनप्रतिमा, जिनमंदिर, और गुलालवाडा, आदिका बनावना भी तुमको छोड देना पडेगा, पूर्वोक्त कार्योंसें अधिकतर (तुमारी श्रद्धामुजिब) सावद्यारंभ होनेसें. तथा प्रतिष्ठा भी, नही करनी चाहियेगी, सावद्यारंभ होनेसें. वाहजी वाह !! दिगंबर नाम धरायके भी, दिगंबराचार्यकाही कथन यथार्थ नही मानते हो, तो औरोंके कथनका तो क्याहि कहना है ?

और जिनप्रतिमा, जिनमंदिरके बनवानेका फल दिगंबराचार्योंनेही ऐसें कहा है.

तथाहि पूजाप्रकरणे ॥

कुंथुभरिदलमेत्ते जिणभवणे जो ठवेइ जिणपडिमं ॥
सरिसवमेत्तंपि लहइ सो णरो तित्थयरपुण्णं ॥ १ ॥
जो पुण जिणिंदभवणं समुण्णयं परिहितोरणसमग्गं ॥
णिम्मावइ तस्स फलं को सक्कइ वण्णिउं सयलं ॥ २ ॥

भावार्थः—कुंथुभरि (कुठुंबर) वृक्षके पत्रप्रमाण जिनभवनमें सरसवमात्र जिनप्रतिमाको जो स्थापन करे, सो भव्यप्राणी तीर्थंकर पूण्यप्रकृतिकों प्राप्त करे हैं. । और जो प्राणी भावोंसहित बडा ऊंचा शिखरबंध प्रदक्षिणा तोरणसहित जिनभवन बनवावे है, तिसके संपूर्ण फलका वर्णन करनेको कौन समर्थ है ? अपितु कोइ नही. ॥ तथा पूजाके फलका भी वर्णन पृथक् २ दिगंबराचार्योंने कहा है.

तथाहि षड्विधपूजाप्रकरणे ॥

जलधाराणिक्खवणे पावमलं सोहणं हवे णियमा ॥
चंदणलेवेण णरो जायइ सोहग्गसंपण्णो ॥ १ ॥
जायइ अक्खयणिहिरयणसामिओ अक्खएहि अक्खोहो ॥
अक्खीणलद्धिजुत्तो अक्खयसोक्खं च पावेइ ॥ २ ॥
कुसुमहिं कुसेसयवयणतरुणिजणणयणकुसुमवरमाला ॥
वलयेणच्चिय देहो जायइ कुसुमाउहो चेव ॥ ३ ॥
जायइ णिविज्जदाणेण सत्तिगो कंतितेयसंपण्णो ॥
लावण्णजलहिवेलातरंगसंपावीयसरीरो ॥ ४ ॥
दीवेहिं दीविया सेसजीवदव्वाइं तच्च सब्भावो ॥
सब्भावजणियकेवलपदीवतेएण होइ णरो ॥ ५ ॥

धूवेण सिसिरयरधवलकित्तिधवलीयजयत्तओपुरिसो ॥
जायइ फलेहिं संपत्तपरमणिव्वाणसोक्खफलो ॥ ६ ॥
घंटाहिं घंटसद्दाऊलेसु पवरच्छराणमज्झम्मि ॥
संकीडइ सुरसंघायसाहिओ वरविमाणेसु ॥ ७ ॥
छत्तेहि एस छत्तं भुंजइ पुहवीं च सत्तुपरिहीणो
चामरदाणेण तहा विज्जिज्जइ चमरणिवदेहिं ॥ ८ ॥
अहिसेयफलेण णरो अहिसिंचिज्जइ सुदंसणस्सुवरिं ॥
खीरोयजलेणसुरिंदपमुहदेवेहि भत्तीए ॥ ९ ॥
विजयपडाणहिं णरो संगाममुहेसु विजइओ होइ ॥
छक्खंडविजयणाहो णिप्पडिवक्खो जसस्सी य ॥ १० ॥
किं जंपिएण बहुणा तीसुवि लोयेसु किंपि जं ॥
सोक्खं पूजाफलेण सव्वं पाविज्जइ णत्थि संदेहो ॥ ११ ॥

भावार्थः—जो नर, जिनेंद्रदेवके आगे जलधारा निक्षेप करे है, तिस-
का निश्चयकरी तिस जलधाराके प्रभावकरके पापमलका शोधन होवे
है; और जिनेंद्रको चंदनलेपन करनेसें नर, सौभाग्यसंयुक्त होता है. ।
जो प्राणी, भक्तिसें जिनेंद्रके अक्षतके पुंजकरी अक्षतपूजा करता है, सो
अक्षय निधिवाला होता है, रत्नोंका स्वामी होता है, अर्थात् षट्खंडस्वामी-
चक्रवर्त्ती होता है, क्षोभकरकेरहित होता है, अक्षीणलब्धियुक्त होता है,
. यावत् अक्षय सुख मोक्षको प्राप्त होता है. । प्रभूकी पुष्पोंसें पूजा
करनेसें कमलवदनी तरुणीजनके नेत्ररूप पुष्पोंकी वरमालाकरके आवृत
देहका धारी होता है, और कामदेवसमान रूपवान् होता है. । प्रभुके
आगे नैवेद्यप्रदान करनेसें पुरुष शक्तिमान् होता है, कांतिमान् होता है,
तेजस्वी होता है. तथा लावण्यताके समुद्रकी वेला तरंगसमान शरीरको
प्राप्त करता है. । दीपकपूजा करनेसें जैसें दीपक अंधकारको दूर करके
वस्तुको प्रकाश करता है, तैसेंही तिस प्राणिको अज्ञानांधकार दूर होकर

केवलज्ञानरूप दीपकके तेजसें जीवाजीवादितत्त्वोंका प्रकाश होता है; अर्थात् वो प्राणी, भावांधकार अज्ञानको दूर करके स्वात्मप्रकाश केवलज्ञानको प्राप्त करता है, जिसके प्रभावसें सर्व तीनलोकके चराचर पदार्थोंको आपही देखता है. । प्रभुके आगे धूपको प्रज्वलीत करके जो प्राणी धूपपूजा करता है, सो प्राणी धूपपूजाके प्रभावसें चंद्रमासमान अति उज्ज्वल कीर्त्तिकरके धवलित करा है जगत्त्रय जिसने, ऐसा पुरुष होता है; और फलपूजाके प्रभावसें प्राणी मोक्षके सुखफलको प्राप्त होता है.। जो प्राणी प्रभुके मंदिरसें घंट देता है, सो प्राणी तिसके फलसें घंटोंके शब्दोंकरके व्याप्त ऐसें प्रधान देवविमानोंमें सुंदर अप्सरायोंके वृंदोंमें देवतायोंके समूहसहित क्रीडा करता है. । छत्रदानकरके अर्थात् भगवान्के ऊपरि छत्र चढावनेसें प्राणी शत्रुरहित एकछत्र पृथ्वीका राज्य प्राप्त करता है; और जो भगवान्को चामर करता है, तिसके प्रभावसें उस प्राणिको राजाआदि चामर करते हैं. यहां चामर चमरीगायके केशोंका जाणना, अन्य नही. क्योंकि, भगवज्जिनसेनाचार्यने श्रीआदिपुराणमें चमरीगायके केशोंकेही चामर लिखे हैं.

"॥स्वकीर्त्तिनिर्मलैर्वीज्यमानं चमरिजन्मभिः ॥" इतिवचनात्॥

तथा श्रीजिनेंद्रको जलादिपंचामृतकरके अभिषेक करनेके फलसें प्राणी मेरुपर्वतके ऊपरि देवता, और इंद्रादिकोंकरके भक्तिपूर्वक क्षीरसागरके जलकरके करे हुए अभिषेकको प्राप्त करता है. । भगवान्के मंदिरके ऊपरि विजयपताका (ध्वजा) चढावनेसें प्राणी संग्रामादिकोंके विषे विजयकों प्राप्त करता है, षट्खंडस्वामी—चक्रवर्त्ती होता है, निःप्रतिपक्ष (शत्रुरहित) होता है, और यशस्वी होता है. । बहुता क्या कहना? तीनों लोकोंमें जो जो सुख है, सो सर्व पूजाके फलसें प्राप्त होता है; इसमें संदेह नही है.॥ इतिपूजाफलम्— ॥

तेरापंथी दिगंबरीः—तुमने कहा सो तो सत्य है, परंतु शास्त्रोंमें जलपूजाविषे तो गंगाजल, अक्षतपूजामें मोतीके अक्षत, पुष्पपूजामें कल्पवृक्षके पुष्प, और दीपकपूजामें रत्नके दीपकादि लिखा है, सो यह

भी नही करनेसें आज्ञाका भंग होता है; इसवास्ते गंगाजलादि पूर्वोक्त द्रव्यविना और सामान्य जल, शालिके तंदुल आदि नही चढावने चाहिये.

उत्तरः—हे भ्रातः! शास्त्रोंमें तो सर्वही प्रकारकी वस्तु कही हैं, जो प्रथम लिखही आए हैं; इसवास्ते जिसको जैसी मिले, तैसी पवित्र सार वस्तुसें पूजादि करनी; और श्रद्धान सर्वहीका करना. क्योंकि, श्रीउमास्वामीने श्रद्धानवान्कोही उत्कृष्ट फल लिखा है.

तदुक्तम्॥

जं सक्कइ तं कीरइ जं च ण सक्कई तं च सद्दहई॥
सद्दहमाणो जीवो पावइ अजरामरं ठाणं॥ १॥

भावार्थः—जो करशकीए तिसको करना, और जो न करशकीए तिसका श्रद्धान करना. क्योंकि, श्रद्धावान् जीव, अजरामरस्थानको प्राप्त करता है.। इसवास्ते शास्त्रोक्त आचरणही यथार्थ है, अन्य नही.।

तेरापंथी दिगंबरीः—तुमने प्रथम जो जो लेख लिखे हैं, वे सर्व प्रतिष्ठादिनकेवास्ते हैं, अन्य दिनोंकेवास्ते नही.

उत्तरः—यह तुमारा कथन ठीक नही है. क्योंकि, पूर्वोक्त पाठ प्रतिष्ठादिनाश्रित नही है; किंतु, कोइ मुकुटसप्तमी, कोइ मुक्तावलीतपोद्यापन, कोइ नवपदमहिमा, कोइ नंदीश्वरपूजा इत्यादि आश्रित है. तथा षड्विधपूजाप्रकरणमें चार प्रकार पूजाका वर्णन करा है; तिसमें क्षेत्रपूजा, और कालपूजाका वर्णन करा है;

तथाहि॥

जिणजम्मण णिक्खवणं णाणुपत्ती य मोक्खसंपत्ती॥
णिसिहिसु खेत्तपूजा पुव्वविहाणेण कायव्वा॥ १॥
गब्भावयारजम्माहिसेयणिक्खवणणाणणिव्वाणं॥
जम्हि दिणे संजाइयं जिणण्हवणं तद्दिणे कुज्जा॥ २॥
इक्खुरससप्पिदहिखीरगंधजलपुण्णविविहकलसेहिं॥
णिसिजागरं च संगीयणाडयाइहिं कायव्वं॥ ३॥

णंदीसरअट्ठदिवसेसु तहा अण्णेसु उचियपव्वेसु ॥
जं कीरइ जिणमहिमा वण्णेया कालपूजा सा॥ ४॥

भावार्थः—तीर्थंकरोंकी जन्मभूमिकाकी, तीर्थंकरोंकी तपभूमिकाकी, केवलज्ञानप्राप्तिकी भूमिकाकी, और निर्वाणकल्याणकी भूमिकाकी, पूर्वोक्त विधानकरके जो पूजा करनी, सो क्षेत्रपूजा है. भावार्थ यह है कि, अयोध्यापुरी आदि चतुर्विंशति तीर्थंकरोंकी जन्मपुरी, तपोवन अर्थात् दीक्षाभूमी, ज्ञानोत्पत्तिक्षेत्र, तथा अष्टापद, सम्मेत शिखर, गिरनार, चंपापुरी, पावापुरी, आदि निर्वाणक्षेत्र, इन स्थानोंमें जायके जलादिद्रव्योंसें पूर्वोक्त विधिकरके तत्रस्थ चैत्यालयस्थ जिनप्रतिमाकी, वा जिनचरणयुगलकी पूजा करनी, सो क्षेत्रपूजा है. ॥ तीर्थंकरके गर्भावतारका दिन, जन्माभिषेकका दिन, दीक्षाका दिन, ज्ञानका दिन, और निर्वाणका दिन, अर्थात् जिनेंद्रके पांचकल्याणक, पूर्वे जिन दिनोंमें हुए, तिन दिनोंमें पूर्वोक्त विधिसें पूजा करनी; और विशेषतः इक्षुरस, घृत, दहि, दुग्ध, और सुगंध जलके भरे हुए पवित्र विविध प्रकारके कलशोंकरके जिनमूर्त्तिको अभिषेक करना; तथा रात्रिकेविषे संगीत, नाटक, जिनगुणगायनादिकोंकरके रात्रिजागरण करना; तथा नंदीश्वरादि अष्टदिनोंमें और अन्य भी षोडश कारण, दश लाक्षण, पुष्पांजलिसुगंध दशमी, अनंतव्रत, रत्नत्रय आदि धर्मोचित पर्वके दिनोंमें श्रीजिनमंदिरमें जिनपूजा प्रभावनादि कार्य करने; सो कालपूजा जाणनी. ॥ इत्यलमतिप्रपंचेन ॥

प्रश्नः—मुनिको पीछी कमंडलूविना अन्य कुछ भी रखना न चाहिये.

उत्तरः—यह तुमारा कथन अयोग्य, और स्वशास्त्रानभिज्ञताका सूचक है. क्योंकि, ब्रह्मचारिपांचाख्यकृत तत्त्वार्थसूत्रावचूरि, जो कि ब्रह्मचारिश्रुतसागरकृत तत्त्वार्थटीकासें उद्धार करी हुई है, तिसमें पांचसमितियोंके अधिकारमें आदाननिक्षेपसमितिका ऐसा स्वरूप लिखा है.

तथाहि ॥

"॥ पिच्छादिना धर्मोपकरणानि प्रतिलिख्य स्वीकरणं विसर्ज्जनं सम्यगादाननिक्षेपसमितिः ॥"

भावार्थः—पिच्छादिकोंकरके धर्मोपकरणोंको प्रतिलेखके अंगीकार करने, और रखने, सो सम्यग् आदानसमिति है. । यहां पीछी आदि लिखा है, सो आदिशब्दसें क्या क्या ग्रहण करना? और प्रतिलेखके ग्रहण करने, रखने वे धर्मोपकरण, कौनकौनसें हैं?

तथा पूर्वोक्त तत्त्वार्थसूत्रावचूरिमेंही ॥

" ॥ संयमश्रुतप्रतिसेवनातीर्थलिंगलेश्योपपादप्रस्थानविकल्पतः साध्याः ॥ "

इस सूत्रके अधिकारमें लिखा है. । तथाहि ॥

" ॥ लिंगं द्विभेदं द्रव्यभावलिंगभेदात् तत्र भावलिंगिनः पंचप्रकारा अपि निर्ग्रंथा भवंति द्रव्यलिंगिनः असमर्था महर्षयः शीतकालादौ कंबलादिकं गृहीत्वा न प्रक्षालयंते न सीव्यंति न प्रयत्नादिकं कुर्वंति अपरकाले परिहरंतीति भगवत्याराधना प्रोक्ताभिप्रायेणोपकरणकुशीलापेक्षया वक्तव्यम् ॥ "

भावार्थः—लिंग दो प्रकारके हैं, द्रव्यलिंग और भावलिंग; तिनमें भावलिंगी पांचप्रकारके निर्ग्रंथ होते हैं, और द्रव्यलिंगी असमर्थ महाऋषि हैं. जे शीतकालादिमें कंबलादिकों ग्रहण करके धोवे नही हैं, सीवते नही हैं, प्रयत्नादि करते नही हैं, और शीतकालके दूर हुए त्याग करते हैं; इति । यह कथन, भगवत्याराधनामें कथन करे हुए अभिप्रायकरके उपकरण कुशीलकी अपेक्षा जाणना. ॥

तथा प्रवचनसारवृत्तिमें उपधिका भेद कहा है. । यतः ॥

छेदो जेण ण विज्जदि गहणविसग्गेसु सेवमाणस्स ॥
समणो तेणिह वट्टदि दुक्कालं खेत्तं वियाणित्ता ॥

भावार्थः—जिसके करनेसें न होवे छेद, लेने और छोडनेमें, इस रीतिसें उपधि आहार निहार कारणे सेवना करतेको, तिस्सें तिसमें श्रमणपणा वर्त्ते हैं, दुषमकालको, और क्षेत्रको जानके. ॥

तथा प्रवचनसारकी वृत्तिमें जिनेश्वरके अधिकारमें साधुकी उपाधि धर्मध्वजकरके कही है. । तथाहि ॥

"॥ न विद्यते लिंगानां धर्मध्वजानां ग्रहणं यस्येति बहिरंगयातिलिंगाभावस्येति ॥"

भाषार्थः—नही है लिंग धर्मध्वजोंका ग्रहण जिस जिनेश्वरके, अर्थात् बहिरंगयतिलिंगका अभाव है. ॥

भावसंग्रहमें भी उपकरण विशेष कहे हैं। तथा च तत्पाठः ॥

उवयरणं तं गहियं जेण ण भंगो हवेइ चरियस्स॥
गहियं पुत्थयवाणं जोगं जं जस्स तं तेण ॥

भाषार्थः—उपकरण सो ग्रहण करिये हैं, जिसके ग्रहण करनेसें चारित्रका भंग नही होता है; और ग्रहण करा पुस्तक पाना पुस्तकोपकरणादिभी, चारित्रका भंग नही करे हैं. क्योंकि, जो जिसके योग्य उपकरण हैं, सो तिसकेवास्ते ग्रहण करना है. ॥

कुंदकुंदमुनिकृत मूलाचारमें साधुकी उपधि प्रकटपणे कथन करी है. । तथाहि ॥

णाणुवहिं संजमुवहिं तउवुवहिमण्णमविउवहिं वा ॥
पयदं गहणिक्खेवो समिद्धी आदाणनिक्खेवा ॥

भाषार्थः—ज्ञानोपधि, पुस्तकपट्टिकाबंधनादि; संयमोपधि, जिसके रखनेसें संयम पाल सकें; और तपोपधि, तथा अन्य प्रकारकी भी उपधि, इन पूर्वोक्त सर्व उपधियोंको प्रयत्नसें ग्रहण निक्षेप करना, तब संपूर्ण आदान निक्षेपसमिति होती है. ॥

और बोधपाहुडकी वृत्तिमें जिनमुद्राका कथन है. । यतः ॥

शिरःकूर्चश्मश्रुलोचोमयूरपिच्छधरः कमंडलूकरः ।
अधःकेशरक्षणं जिनमुद्रा सामान्यत इति ॥

भाषार्थः—मस्तक दाढी मूंछका तो लोच करा हुआ, मोर पीछी धारण करी हुई, और कमंडलू हाथमें, अधःकेशोंका रखना, यह जिनमुद्रा सामान्य प्रकारसें है. वाहरे! दिनमें राह भूलेहुये मेरे दिगंवर भाइयो! क्या तीर्थंकर भी शिरदाढीमूंछका लोच करते थे? और पीछी कमंडलू रखते थे, जिससें तुमने जिनमुद्राका ऐसा स्वरूप लिखा है? इससें यह सिद्ध होता है कि, तुम जिनमुद्राका स्वरूप भी यथार्थ नही जानते हो. तथा प्रवचनसारकी वृत्तिसें, और बोधपाहुडकी वृत्तिसें सिद्ध होता है कि, पीछी कमंडलूसें अन्य भी उपधि साधु रख लेवें. क्योंकि, वोध पाहुडवृत्तिमें पीछी कमंडलू रखना जिनमुद्रा कही है, और प्रवचनसार-वृत्तिमें वहिरंगयतिलिंगका जिनेश्वरकों अभाव कहा है; तो, वो वहिरं-गयतिलिंग कौनसा है, जो जिनेश्वरमें नही है? ॥

तथा योगेंद्रदेवविरचित परमात्मप्रकाशकी टीकामें भी साधुको उपकरण ग्रहण करने लिखे हैं.। तथा च तत्पाठो यथा ॥

"॥परमोपेक्षासंयमाभावे तु वीतरागशुद्धात्मानुभूतिभावसंय-मरक्षणार्थं विशिष्टसंहननादिशक्त्यभावे सति यद्यपि तपःपर्यायशरीरसहकारिभूतमन्नपानसंयमशौचज्ञानोपकर-णतृणमयप्रावरणादिकं किमपि गृह्णाति तथापि ममत्वं न करोतीति ॥"

तथाचोक्तं ॥

रम्येषु वस्तुवनितादिषु वीतमोहो।
मुह्येद्वृथा किमिति संयमसाधनेषु ॥
धीमान् किमामयभयात् परिहृत्य भुक्तिं।
पीत्वौषधं व्रजति जातुचिदप्यजीर्णम् ॥ १ ॥

भाषार्थः—परमोपेक्षासंयमके अभाव हुए, वीतराग शुद्ध आत्माके अनुभव भाव संयमकी रक्षा करनेवास्ते, विशिष्टसंहननआदि शक्तिके अभाव हुए, यद्यपि तप, पर्याय, और शरीरके सहकारिभूत, अर्थात् साहाय्य देनेवाले,

अन्न, पाणी, और संयम, शौच, ज्ञान, इनके उपकरण, तथा तृणमय प्रावरण, घांसका उत्तरीय वस्त्र, इत्यादि कुछ भी ग्रहण करता है; तथापि तिनमें ममत्व नही करता है. इति । सोही कहा है. । रमणीय धनधान्यादि वस्तु, और वनिता—स्त्री, आदिशब्दसें माता, पिता, पुत्र, पुत्री, भाइ, बहिन, इत्यादिकोंमें जिसने मोह त्याग दिया है, सो निर्मोही, क्या, संयमके साधनोंमें वृथाही मोह करेगा? अपितु कभी भी नही. इसबातके दृढ करनेवास्ते दृष्टांत कहे हैं. बुद्धिमान् रोगके भयसें भोजनको त्यागके और औषधको पीके क्या कभी भी अजीर्णकों प्राप्त होता है? कदापि नहीं. ऐसेंही जन्ममरणादिदुःखरूप रोगके भयसें संसारके मोहरूप भोजनको त्यागके, निःसंग होके, जिनवचनामृतरूप औषधको पीके, संयमके साधनोंमें अजीर्णरूप मोहकों प्राप्त नही होता है. ॥

तथा । राजवार्त्तिकमें भी उपकरणविषयक लेख है. । तथाहि ॥

"॥ अतिथिसंविभागश्चतुर्विधो भिक्षोपकरणौषधप्रतिश्रयभेदात्॥ २८॥" अतिथिसंविभागश्चतुर्धाभिद्यते। कुतः । भिक्षोपकरणौषधप्रतिश्रयभेदात् । मोक्षार्थमभ्युत्थितायातिथये संयमपरायणाय शुद्धाय शुद्धचेतसा निरवद्या भिक्षा देया धर्मोपकरणानि च सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रोपबृंहणानि दातव्यानि औषधं प्रायोग्यमुपयोजनीयं प्रतिश्रयश्च परमधर्मश्रद्धया प्रतिपादयितव्यइति। च शब्दोवक्ष्यमाणगृहस्थधर्मसमुच्चयार्थः ॥

भाषार्थः—अतिथिसंविभागनामा बारमे (१२) व्रतके चार (४) भेद होते हैं; भिक्षा १, उपकरण २, औषध ३, और उपाश्रय ४; मोक्षकेवास्ते उद्यत संयममें तत्पर ऐसें शुद्ध अतिथि साधुकेतांइ शुद्धचित्तसें निरवद्य—दूषणरहित भिक्षा देनी १, और सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र, इनकी वृद्धि करनेवाले उपकरण देने २, योग्य औषध प्राप्त कर देना ३, और परम धर्म

श्रद्धाकरके उपाश्रय प्राप्त कर देना ४; च शब्द वक्ष्यमाण गृहस्थधर्मके समुच्चय वास्ते है. ॥

तथा। राजवार्त्तिकमेंही । यतः ॥

"॥ धर्मोपकरणानां ग्रहणविसर्जनं प्रति यतनमादाननिक्षेपणासमितिः॥७॥" धर्माविरोधिनां परानुपरोधिनां द्रव्याणां ज्ञानादिसाधनानां ग्रहणे विसर्जने च निरीक्ष्य प्रपूज्य प्रवर्त्तनमादाननिक्षेपणासमितिः ॥

भाषार्थः—धर्मके अविरोधी, परके अनुपरोधी, ज्ञानादिके साधन, ऐसें द्रव्योंके ग्रहणमें और त्यागमें देखके और प्रमार्जन करके प्रवर्त्तना, सो आदाननिक्षेपणासमिति है. ॥

तथा राजवार्त्तिकमेंही । यतः ॥

"॥ संसक्तान्नपानोपकरणादिविभजनं विवेकः ॥ " संसक्तानामन्नपानोपकरणादीनां विभजनं विवेक इत्युच्यते ॥

भाषार्थः—संसक्त जीवोत्पत्तिवाले अन्न, पाणी, उपकारणादिकोंका त्याग करना (परठना), सो विवेक कहिये हैं. ॥

तथा राजवार्त्तिकमेंही पांच प्रकारके निर्ग्रंथोंका स्वरूप लिखा है, तिनमें बकुशका स्वरूप ऐसें लिखा है. । यतः ॥

" ॥ बकुशो द्विविधः उपकरणबकुशः शरीरबकुशश्चेति ॥" तत्र उपकरणाभिष्वक्तचित्तो विविधविचित्रपरिग्रहयुक्तः बहुविशेषयुक्तोपकरणकांक्षी तत्संस्कारप्रतीकारसेवी भिक्षुरुपकरणबकुशो भवति शरीरसंस्कारसेवी शरीरबकुशः ॥

भाषार्थः—बकुश दोप्रकारका होता है, उपकरणबकुश १, और शरीरबकुश २; तिनमें जो उपकरणोंमें रक्त चित्तवाला नाना प्रकारके विचित्र परिग्रहयुक्त, बहुत सुंदर उपकरणोंका इच्छक, और तिन उपकरणोंका संस्कार प्रतिकार करनेवाला, भिक्षु साध, सो उपकरणबकुश होता है; और शरीरका संस्कार करनेवाला, शरीरबकुश होता है. ॥

तथा बकुशनिर्ग्रंथमें सामायिक, और च्छेदोपस्थापन, यह दो संयम दिगंबराचार्योंने माने हैं. । तथाहि ॥

"॥पुलाकबकुशप्रतिसेवनाकुशीलाःद्वयोः संयमयोः सामायिकच्छेदोपस्थापनयोर्भवंति ॥" इतिराजवार्त्तिकटीकायाम् ॥

तथा ज्ञानार्णवमें शय्या, आसन, उपधान (तकीया) आदि, मुनिकी उपधि कही है; जो पाठ ऊपर लिख आए हैं. । इत्यादि कितनेही दिगंबरशास्त्रोंमें मुनिकी अनेक प्रकारकी उपधि कही है. ऐसें उपकरण रखनेसें दिगंबरमतका मुनि तो, परिग्रहधारी नही हुआ, और श्वेतांबरमतका मुनि, चतुर्दशादि उपकरण रक्खे, तिसको परिग्रहधारी मानना, यह मतांधपणा नही तो, अन्य क्या है ?

और दिगंबराचार्योंको द्रव्यक्षेत्रकालभावकी अनभिज्ञता होनेसें, और अनुचित कठिन मुनिवृत्तिके कथन करनेसें, प्रथम तो मुननी, अर्थात् साध्वी व्यवच्छेद होगई; पीछे साधु व्यवच्छेद होगए. आचार्योपाध्यायका तो कहनाही क्या है !!! और श्वेतांबरमतमें तो, श्रीमहावीरजीसें लेके आजतांइ अव्यवच्छिन्न चतुर्विध संघ चला आता है. और बकुशकुशील इस कालमें जे पाइये हैं, तिनका आचार, व्याख्याप्रज्ञप्ति (भगवतीसूत्र) आदि शास्त्रोंमें कथन करा है, तैसें आचारके पालनेवाले साधु साध्वी सांप्रतिकालमें भी उपलब्ध होते हैं. इस हेतुसें दिगंबरशास्त्रोंकी असत्यता, और श्वेतांबरके शास्त्रोंकी सत्यता, प्रत्यक्ष प्रमाणसेंही देख लो; अन्यप्रमाणकी कुछ आवश्यकता नहीं है.

प्रश्नः—केवली कवलाहार नही करता है, और तुम केवलीको कवलाहार मानते हो, सो, किस प्रमाणसें मानते हो ?

उत्तरः—आगमप्रमाणसें मानते हैं. क्योंकि, श्रीतत्त्वार्थसूत्रमें परिषहोंका अधिकार चला है, तहां केवली—जिनके क्षुधापिपासादि—इग्यारें परिषह कहे हैं, और तुमारे मतकी द्रव्यसंग्रहकी वृत्तिमें चारित्रके अधिकारमें कहा है कि, तीन योगोंका व्यापार जिन—

केवलीके चारित्रको मलिन करे हैं, जिसको प्रदेशोंका चंचलभाव है, तिसकोंही यह योगत्रयव्यापार है; और कर्मग्रंथोंमें बेतालीस (४२) कर्मप्रकृतियां उदयमें केवलीको कही है, वे, अपना अपना नाना-प्रकारका रस दिखाती हैं.। अवयवोंका जो प्रकर्षसें चलाना है, सो प्रवचनसारमें क्रियाविशेष कहनेकरके केवलीकों कहा है; समय-सारमें भी अंगसंचालन कहा है, भक्तामरस्तोत्रमें भगवंतको चरणोंसें चलना कहा है, एकीभावस्तवनमें जिनवरचरणोंका न्यास कहा है, भावपाहुडकी वृत्तिमें तीर्थंकरके चरणोंका न्यास कहा है, वीरनंदिकृत श्रीचंद्रप्रभचरित्रमें और हरिश्चंद्रकायस्थविरचित धर्मशर्माभ्युदयमें भी, भगवान्‌का विचरना लिखा है.

अब पूर्वोक्त शास्त्रोंके पाठ, अर्थसहित, अनुक्रमसें लिखते हैं.। तत्रादौ तत्त्वार्थसूत्रपाठो यथा ॥

"॥ सूक्ष्मसंपरायछद्मस्थवीतरागयोश्चतुर्दशएकादशजिने ॥"

भाषार्थः—सूक्ष्मसंपराय, और छद्मस्थ वीतरागमें अर्थात् दशमे इग्यारमे बारमे (१०। ११। १२।) गुणस्थानमें चौदह (१४) परीषह हैं; और जिन—के-वलीमें इग्यारह (११) परीषह हैं. तब तो, क्षुधापरीषहके हुए, केवलीको कवलाहार सिद्ध हुआ. परंतु कितनेक दिगंबरटीकाकारोंने, टीकामें नकार ग्रहण करा है, सो महाउत्सूत्र है. "एकादशजिने न संतीतिशेषः" ऐसी मिथ्याकल्पना सिद्ध करी है. क्योंकि, दिगंबरटीकाकार सूत्रशैलीके अनभिज्ञ मालुम होते हैं. जब सूत्रमें नकार कहाही नही है, तो टीका-कारने नकार कहांसें काढ मारा? जेकर नकार माना जावे, तब तो, संलग्न सर्वसूत्रके साथ 'न संति' क्रियाका संबंध मानना चाहिये. तब तो, ऐसा अर्थ होवेगा, सूक्ष्मसंपराय, और छद्मस्थ वीतरागके चतुर्दश परीषह नही है; परंतु मतांधपुरुष मिथ्यात्वके उदयसें क्या क्या झूठी कल्पना नही करसकता है? अपितु सर्व करसकता है. जब केवलीमें वेदनीय कर्मके उदयसें इग्यारह परीषह हैं, तो फिर, क्षुधाके लगनेसें

केवली कवलाहार क्यों नही करें? क्योंकि, औदारिकशरीरकी स्थिति कवलाहारविना नही हो सकती है. ॥ १ ॥

द्रव्यसंग्रहवृत्तिपाठो यथा ॥

" ॥ सयोगिकेवलिनो यथाख्यातं चारित्रं न तु परमयथाख्यातं चारित्रं चौराभावेपि चौरसंसर्गिवत् मोहोदयाभावेपि योगत्रयव्यापारश्चारित्रमलं जनयतीति ॥ "

भाषार्थः—सयोगिकेवलीके यथाख्यात चारित्र है, परंतु परमयथाख्यात चारित्र नही है. जैसें चोरके अभावसें भी, चोरकी संगतिवाला चोर है; तैसेंही मोहोदयके अभाव हुए भी, योगत्रयका व्यापार चारित्रमें मल उत्पन्न करता है. ॥ २ ॥

प्रवचनसारपाठो यथा ॥

ठाणनिसेज्जविहारा धम्मुवदेसो अ णिअदवो तेसिं ॥
अरहंताणं काले मायाचारोव्व इत्थीणं ॥

भाषार्थः—स्थान, निषध्या, विहार, धर्मोपदेश, यह सर्व तिन अरिहंतोंकों स्वाभाविक है. स्त्रियोंको मायाचारकीतरें. ॥ ३ ॥

उन्निद्रहेम—इत्यादि भक्तामरके काव्यमें भगवान् कमलोपरि पादन्यास, स्थापन करते हैं.

"॥ पादौ पदानि तव यत्र जिनेंद्र धत्तः ॥" ॥ इति वचनात् ॥ ४ ॥

एकीभावस्तोत्रमें भी पादन्यास लिखा है. ॥

"॥पादन्यासादपि च पुनतो यात्रया ते त्रिलोकीमित्यादि॥" ॥५॥

तीर्थंकरकमलऊपर पादन्यास करते हैं.॥

"॥तीर्थंकराःकमलोपरि पादौ न्यसंतीति" भावपाहुडवृत्तिवचनात्॥६॥

चंद्रप्रभचरित्रमें भगवान्का विहार लिखा है. ॥

"॥ इत्थं विहृत्य भगवान् सकलां धरित्रीमित्यादिवचनात् ॥" ॥ ७ ॥

धर्मनाथचरित्रमें भी भगवानका विचरना लिखा है. ॥

अथ पुण्यैः समाकृष्टो भव्यानां निःस्पृहः प्रभुः ॥
देशे देशे तमश्छेत्तुं व्यचरद्भानुमानिव ॥

भाषार्थः–भव्यप्राणियोंके पुण्योंसें खिचा हुआ, निःस्पृह भी भगवान्, देशोदेशमें मिथ्यात्वरूप अंधकारको छेदनेवास्ते, सूर्यकीतरें विचरता भया. ॥ ८ ॥

तथा जिन, जो अंग न चलावे तो, शुभ विहायगति, और अशुभ विहायगतिका उदय किसतरें होवे? नही होवे. और जिनके सात योग, कैसें होवे? और जो कल्पनाकुयुक्तिसें कहते हैं कि, देवते तीर्थंकरको उठाते, बिठलाते हैं, और चलाते हैं; सो कहना महा मिथ्या है. क्योंकि, प्राचीन दिगंबरमतके शास्त्रोंमें, ऐसा लेख किसी जगेमें नही है. तो फिर, केवलीको देवते, उठना, बैठना, चलना, कराते हैं; ऐसा कलंकरूपकथन, मिथ्यादृष्टिदीर्घसंसारीविना कौन कर सकता है?

और जो तीर्थंकरकेवलीके, परम औदारिक शरीर कहते हैं, सो भी इनके ग्रंथोंसें विरुद्ध है. क्योंकि, कायाबोधपाहुडमें औदारिकही कहा है. सो पाठ यह है. ॥

एरिसगुणाहिं सहियं अइसयवंतं सुपरिमलामोअं॥
ओरालीयं च कायं णायव्वं अरुहपुरुसस्स ॥ १ ॥

भाषार्थः–इन पूर्वोक्त गुणसहित, अतिशयवंत, सुपरिमलआमोदसंयुक्त, औदारिककाया, अरिहंतपुरुषोंकी जाननी.

प्रश्नः–स्त्रीको सर्वचारित्र और मोक्ष नही है.

उत्तरः–तुमारे मतके शास्त्रोंमेंही, स्त्रीको चारित्र, और मोक्ष होना लिखा है.

यतः ॥

जइ दंसणेण सुद्धा उत्तामग्गेण सावि संजुत्ता ॥
घोरं चरियं चरित्ता–इत्यादि

भाषार्थः—यदि दर्शनसम्यक्त्व करके स्त्री, शुद्ध है, उक्तमार्गकरके सो भी, संयुक्त है, घोर दुरनुचरचारित्र आचरणकरके—इत्यादि ॥ और इस पाठकी वृत्तिमेंही महाव्रतका उच्चार कहा है; अन्यथा चतुर्विध संघ कैसें होवे ?

और त्रैलोक्यसारमें स्त्रीको मोक्ष कहा है. । तथा च तत्पाठः ॥

वीस नपुंसकवेआ इत्थीवेया य हुंति चालीसा ॥
पुंवेआ अडयाला सिद्धा इक्कंमि समयंमि ॥ १ ॥

भाषार्थः—नपुंसकवेद वीस (२०) स्त्रीवेद चालीस (४०), पुरुषवेद अड्तालीस (४८), ये सर्व, एकसौ आठ (१०८) एक समयमें सिद्ध हुए हैं.

प्रश्नः—नग्न दिगंबरमुनिके चिन्हविना, किसीको भी केवल ज्ञान नही होता है.

उत्तरः—ब्रह्मदेवकृत समयपाहुडकी वृत्तिमें लिखा है कि, भरतराजाने भावसें परिग्रह छोडा है. । तथा प्राकृतबंध हरिवंशपुराणमें लिखा है कि, शिरमें कर-हाथ डालतेही भरतनृपतिने केवलज्ञान लह्या. । और द्रव्यलिंगरहित पांडवोंने, कर्मोंका अंत किया. ॥

"॥ जा चिहुरुप्पालण खिवइ हत्थु ता केवल उप्पण्णो पसत्थु॥"—इतिहरिवंशपुराणे ॥

प्रश्नः—आप प्रथम लिख आए हैं कि, वे सर्व लेख आगे चलके लिखेंगे तो, अब बतलाइए, वे लेख कौनसें हैं ?

उत्तरः—वे लेख सर ए. कनिंगहाम (SIR A. CUNNINGHAM) के 'आर्चीओलोजिकल रीपोर्ट' (ARCHÆOLOGICAL REPORT) के तीसरे वोल्युममें (१३–१६५) छपाए हुए मथुराके प्रख्यात शिलालेख हैं; जिनकी नकल नीचें लिखते हैं

"॥ सिद्धंसं २० ग्रमा १ दि १०+५ को हियतो गणतो वाणि-यतो कुलतो वैरितो शाखातो शिरिकातो भत्तितो वाचकस्य अर्यसंघसिंहस्य निर्वर्त्तनं दत्तिलस्य......वि....लस्य कोठुंबिकिये जयवालस्य देवदासस्य नागादिनस्य च नाग-दिनाये च मातुये श्राविकाये दिनाये दानं-इ (श्री) वर्द्ध-मानप्रतिमा ॥."

भाषांतरः—"॥ जय !* संवत् २० का उष्णकालका मास पहिला (१) मिति १५, श्रीवर्द्धमानकी प्रतिमा, दत्तिलकी बेटी वि .. लकी स्त्री जयवाल जयपाल देवदास और नागदिन अर्थात् नागदिन्न वा नागदत्त और नागदिना अर्थात् नागदिन्ना वा नागदत्ताकी माता दिना अर्थात् दिन्ना वा दत्ता घरकी मालिकिणी गृहस्थ शिष्यणी श्राविका तिसने अर्पण करी—यह प्रतिमा—कौटिकगच्छमेंसें वाणिजनामा कुलमेंसें वैरीशाखाके भागके आर्य—संघ-सिंहकी निर्वर्त्तन है अर्थात् प्रतिष्ठित है.॥" ॥ १ ॥

"॥ सिद्धं महाराजस्य कनिष्कस्य राज्ये संवत्सरे नवमे ९. मासे प्रथ १ दिवसे ५ अस्यां पूर्वाये कोटियतो गणतो वाणियतो कुलतो वैरितो शाखातो वाचकस्य नागनंदिस निर्वरतनं ब्रह्मधूतुये भट्टिमितसकुटुंबिनिये विकटाये श्रीव-र्द्धमानस्य प्रतिमा कारिता सर्वसत्वानं हितसुखाये ॥"

यह लेख श्री महावीरकी प्रतिमाऊपर है.

भावार्थः—जय! कनिष्कमहाराजाके राज्यमें नव (९) मे वर्षमें पहिले (१) महिनेमें मिति पांचमी (५)में—इसदिनमें सर्व प्राणियोंके कल्याण

* "सिद्ध" इस शब्दका 'जय' अर्थ यूरोपीयन पंडितोने किया है, सो यथार्थ नही है. क्योंकि, जैन-मतमे प्रायः 'ॐ' 'अर्ह' 'सिद्ध' इत्यादि शब्द मंगलार्थ, और नमस्कारार्थ वाचक मानके, आदिमें लिखे जाते हैं. ॥

तथा सुखकेवास्ते भट्टिमित्रकी स्त्री और ब्रह्मकी विकटा नामा पुत्रीने श्रीवर्द्धमानकी प्रतिमा बनवाई है-यह प्रतिमा-कोटिगणके वाणिज कुलके और वइरी शाखाके आचार्य नागनंदिकी निर्वर्त्तन प्रतिष्ठित है. ॥२॥

"॥ संवत्सरे ९० व..... ....स्य कुटुंबनि. व. दानस्य वोधुय कोटियतो गणतो प्रश्नवाहनकतो कुलतो मज्झमातो शाखातो....सनिकायभतिगालाए थवानि........... ॥"

इस लेखकेवास्ते डा० बुल्हर कहते हैं कि, इस लेखकी ली हुइ नकल मेरे वसमें नही हैं, इसवास्ते इसका पूर्णरूप मैं स्थापन नही कर सकतां हूं, परंतु पहिली पंक्तिके एक टुकडेके देखनेसें ऐसा अनुमान हो सकता है कि, यह प्रतिमा किसी स्त्रीने अर्पण करी है (बनवाई है) और सो स्त्री एक पुरुषकी मालकणी (कुटुंबिनी) और दूसरे पुत्रकी स्त्री (वधु) थी, ऐसें लिखा है।-संघमें कोटियगच्छके प्रश्नवाहन कुलकी मध्यमशाखाके-इत्यादि-॥ ३ ॥

"॥ स० ४७ ग्र. २ दि २० एतस्या पूर्वाये चारणे गणेपेतिधमिककुलवाचकस्य रोहनदिस्य शिसस्य सेनस्य निवंतनसावक-इत्यादि ॥ "

संवत् ४७ उष्णकालका महिना दूसरा (२) मिति २० इस मितिमें यह संसारी शिष्यका देवार्पण किया हुआ पाणी पीनेका एक ठाम है यह रोहनंदिका शिष्य चारणगणके प्रैतिधर्मिककुलका आचार्यसेन तिसका प्रतिष्ठित है. ॥ ४ ॥

"॥ सिद्धं नमो अरहतो महावीरस्य देवनाशस्य राज्ञा वासुदेवस्य संवत्सरे ९८ वर्ष मासे ४ दिवसे ११ एतस्या पूर्वाये

इन पूर्वोक्त षट् (६) गणोंमेंसें १।४।६ गणोंके, उनके कुलोंके, और उनकी शाखायोंके नाम, मथुराके शिलालेखोंमें लिखे हैं. और देवसेन भट्टारक अपने रचे दर्शनसारग्रंथमें लिखते हैं कि, विक्रमराजाके मरण-पीछे एक सौ छत्तीस वर्ष गए सोरठदेशके वल्लभी नगरमें श्वेतांबर संघ उत्पन्न हुआ; तथा मूलसंघ, नंद्याम्नाय, सरस्वतिगच्छ, बलात्कारगण, इन चारों नामोंकी मथुराके शिलालेखोंमें गंध भी नही है; जेकर श्वेतांबरीय शास्त्रोंके पूर्वोक्त गणोंके लेख कल्पित मानें, तो भूमिमेंसें वे लेख कैसें निकलते? इसवास्ते श्वेतांबरीय शास्त्रोंके लेख सत्य सिद्ध होते हैं. और दिगंबरोंके लेख मिथ्या सिद्ध होते हैं. क्योंकि, श्वेतांबर बाबत देवसेनके लेखसें मथुराके शिलालेख प्राचीनतर है; इसवास्ते श्वेतांबरीय शास्त्रोंमें जे जे गण कुल शाखाके नाम लिखे हैं, वे सत्य हैं. और जे जे दिगंबरोंने मूलसंघ १, नंद्याम्नाय २, सरस्वतिगच्छ ३, बलात्कारगण ४, लिखे हैं, वे नवीन कल्पित सिद्ध होते हैं. जब श्वेतांबरमतकी सत्यताकी गवाही भूमिके शिलालेखही देते हैं, तब तो, प्रेक्षावान्को तिसकोही सत्यकरके मानना चाहिये. ॥

॥ इति प्रसंगतः संक्षेपतो दिगंबरमतसमालोचनं समाप्तम् ॥

॥ इत्याचार्यश्रीमद्विजयानंदसूरिविरचिते तत्त्वनिर्णयप्रासादे जैनमतस्य प्राचीनताबौद्धमतान्यतावर्णनो नाम त्रयस्त्रिंशः स्तम्भः ॥ ३३ ॥

॥ अथचतुस्त्रिंशस्तम्भारम्भः ॥

तेतीसमे स्तंभमें जैनमतकी प्राचीनताका, और बौद्धमतसें पृथक्ताका वर्णन कीया; अब इस चौतीसमे स्तंभमें जैनमतकी कितनी बातेंपर आधुनिक कितनेक पंडिताभिमानी शंका करते हैं, उनके उत्तर लिखते हैं.

प्रश्नः—जैनमतमें ऋषभदेव अरिहंतकी जो पांचसौ (५००,) धनुषप्रमाण अवगाहना लिखि है, ओर चौरासी लक्ष (८४०००००) पूर्वकी आयु

लिखी है, ऐसें लेखको वांचके कितनेक लोक, जो अंग्रेजी फारसी पढे हुए हैं, वे उपहास्य करते हैं; सो ऐसी अवगाहना, और आयुको जैन-मतवाले क्योंकर सत्य मानते हैं ?

उत्तरः—हे भव्य! जबतक पक्षपात छोडके सूक्ष्मबुद्धिसें विचार नही करते हैं, तबतक वस्तुके तत्त्वकों नही प्राप्त होते हैं. क्योंकि, पृथिवीमें अधिक रस होनेसें तिस पृथिवीकी वनस्पतिमें भी अधिक रसवीर्य होता है, और तिस वनस्पतिके खानेवाले पुरुषादिकोंमें अधिक बल होता है, और तिनके शरीरमें वीर्य—धातु भी अधिक होता है, और जिसका वीर्य अधिक होता है, तिसका संतान भी कदावर (वडी अवगाहनावाला) होता है, हाथीवत्. । तथा पंजाबकी भूमिसें गुजरात देशकी भूमि रसमें न्यून है, इसवास्ते पंजाबकी वनस्पति खानेवाले पंजाबीयोंका शरीर गुजरातीयोंकी अपेक्षा कदावर और बलवान् है; और पंजाबसें काबुलकी भूमि अधिक रसवीर्यवाली है, इसवास्ते वहांकी मेवादि वनस्पति हिंदुस्थानकी अपेक्षा बहुत रसवीर्यवाली होनेसें, वहांके पुरुष भी कदावर, और अधिक बलवान् है. इस लिखनेका यह प्रयोजन है कि, जैनमतके सिद्धांतानुसार वर्त्तमानकाल 'अवसर्प्पिणी' चलता है, अर्थात् जिस कालमें समय समय भूमि आदि पदार्थोंका अच्छा वर्ण, गंध, रस, स्पर्श, घटता जावे तिसको अवसर्प्पिणी काल कहते हैं.

यदुक्तं पंचकल्पभाष्ये ॥

भणियं च दुसमाए गामा होहिंति ऊमसाणसमा ॥
इय खेत्तगुणा हाणी कालेवि उ होहि इमा हाणि ॥ १ ॥
समये २ णंता परिहायंते उ वण्णमाईया ॥
दव्वाई पज्जाया होरत्तं तत्तियं चेव ॥ २ ॥
दूसमअणुभावेणं साहूजोग्गा उ दुल्लहा खेत्ता ॥
कालेवि य दुप्भिक्खा अभिक्खणं हुंति डमरा य ॥ ३ ॥

दूसमअणुभावेण य परिहाणी होहि ओसहिबलाणं ॥
तेणं मणुयाणंपि उ आउगमेहादिपरिहाणी ॥ ४ ॥ इत्यादि ॥

भाषार्थः—कहा है दूसमनामा अवसर्प्पिणीकालके पांचमे आरे (हिस्से)-में गाम प्रायः मसाणसरिखे होवेंगे, येह क्षेत्रके गुणोंकी हानी जाननी. और कालमें भी यह वक्ष्यमाण हानी होवेगी, सोही बतावे हैं. समय समयमें अनंते अनंते द्रव्यपर्यायोंके वर्ण आदिशब्दसें रस, गंध, स्पर्श, जे जे शुभ शुभतर हैं उनोंकी हानी होवेगी, परंतु अहोरात्र तावन्मात्रही रहेगा, दूसमकालके प्रभावसें साधुयोंके योग्य क्षेत्र प्रायः दुर्लभ होवेंगे, और सुकालमें भी साधुयोंके योग्य भिक्षा दुर्लभ होवेगी, दुर्भिक्ष और राज्यादि उपद्रव वारंवार होवेंगे, तथा दूसमकालके प्रभावसें औषधि अन्नादिकोंके बलकी तथा रसादिककी हानी होवेगी, और तिसकरके मनुष्योंके आयु बुद्धि, आदिशब्दसें अवगाहना बलपराक्रमादिकोंकी भी हानी होवेगी, इत्यादि अवसर्प्पिणीका वर्णन किया है; सो अवसर्प्पिणीकाल प्रथम आरेसें प्रारंभ हुआ है, तबसें भूमिआदि पदार्थोंके रस—वीर्य घटनेसें पुरुषादिकोंकी अवगाहना आयु भी घटने लगी; सो अबतक, तथा आगे कितनेक कालतांइ घटती जायगी. क्रमसें घटते घटते हमारे समयतक असंख्य वर्ष गुजर चुके हैं; लाखों करोडों वर्षोंके व्यतीत होनेसें थोडी २ घटते २ हमारे समयमें थोडी अवगाहना आयु-रह गइ है; इसवास्ते असंख्य काल पहिले बडी अवगाहनाका होना संभवे है. इस कालमें जो नही मानते हैं, वे क्या, असंख्य काल असंख्य वर्ष अतीतकालका पूरा पूरा स्वरूप देख आए हैं, जो नही मानते हैं?

अब अतीतकालमें पुरुषादिकोंके शरीर बडे २ कद्दावर थे, इस कथन ऊपर हम थोडासा प्रमाण भी लिखते हैं. । सन १८५० ई० में मारुआं नजदीक, भूमिमें खोदते हुए, राक्षसी कदके मनुष्यके हाड भूमिमेंसें निकलेथे; उनमें जबाडेका हाड, आदमीके पगजितना लंबा था, और एक बुशल अर्थात् चौवीस (२४) सेर पक्के गेहूं तिसकी खोपरीमें समा सक्तेथे, एक २ दांतका वजन पउणा आंउस (कुछक न्यून दो तोले)

प्रमाण था. । और कीनटोलोकस नामका राक्षस पंदरा (१५) फुट ६ इंच ऊंचाथा, उसके खंभेकी चौडाइ १० फुटकी थी; और सारलामेनके वख़-तसें मालुम हुआ फरटीग्स नामका सखस २८ फुट ऊंचा था; यह कथन गुजरातमित्रके ३० मे पुस्तकके तारीख १८ सपटेंबर सन १८९२ के अंकमें लिखा है.

तथा तारीख १२ नवेंबर सन १८९३ के बुंबईका गुजराती पत्रमें लिखा है कि, हंगरीमें राक्षसीकदके एक मेंडक (दुर्दर—देडका) का हाडपिंजर मिला है; इस मेंडकको 'लेब्रीरीनथोडोन' के नामसें पिछाननेमें आते हैं. प्राचीन शोधोंके करनेसें मालुम होता है कि, ऐसी जातके मेंडक तिस अतीतकालमें वहुत अस्ति धराते थे. परंतु आजकालमें ऐसे मेंड-ककी अस्ति है नही. इस मेंडककी खोपरी इतनी वडी है कि, उसकी दोनों आंखोंके खाडोंके बीचमें १८ इंचका अंतर है; इस खोपरीका वजन ३१२ रतल प्रमाण है, और सर्व हाडोंके पिंजरका वजन १८६० रतल प्रमाण, अर्थात् लगभग एक टन प्रमाण होता है. तथा प्रोफेसर थी-ओडोर कुक अपने वनाए भूस्तर विद्याके ग्रंथमें लिखते हैं कि, पूर्वकालमें उडते गिरोली (छपकली—किरली) जातके प्राणी ऐसें वडे थे, जिसकी पांख २७ फुट लंबी थी. जब ऐसें प्राणी पूर्व कालमें इतने वडे थे, तो फिर मनुष्योंकी अवगाहना वहुत वडी होवे तो, इसमें क्या आश्चर्य है? ये पूर्वोक्त सर्व शोधें अंग्रेजोंने करी है. अब जो कोइ कहे कि, इतने वडे शरीरवाले मनुष्य, मेंडक, गिरोलीको हम नही मानते हैं, तो फिर हम उनको क्या प्रमाण देवे? क्योंकि, ऐसें अकलके पुतलों (बारदानों) को तो सर्वज्ञ भी नही समझा सकते हैं. और जो कोइ भूस्तर विद्याकी शोधको सत्यकरके मानते हैं, उनकेवास्ते तो पूर्वोक्त प्रमाण वहुत वलवत् है कि, पिछले जमानेमें मनुष्योंके शरीर वहुत वडे कद्दावर थे; इससें वहुत प्राचीनतर कालमें जो अवगाहना जैन सिद्धांतमें लिखी है, सो भी सत्य सिद्ध होसकती है. । तथा मनुस्मृतिकी टीकामें श्रीराम-चंद्रजीकी आयु दशसहस्र (१००००) वर्षकी लिखी है. । तथा महाभार-

तके षोडश (१६) अध्यायमें ब्रह्माकी बेटी कश्यपकी स्त्री कद्रूके अंडेको पकनेका काल पांचसौ (५००) वर्ष लिखा है, और वनिताके अंडेको पकनेका काल एक सहस्र (१०००) वर्ष लिखा है. । तथा महाभारतके एकोनविंश (१९) अध्यायमें राहुका शिर, पर्वतके शिखर जितना वडा लिखा है. । तथा एकोनत्रिंश (२९) अध्यायमें षट् (६) योजन ऊंचा, और बारां योजन लंबा, हाथी लिखा है.* तथा तीन योजन ऊंचा, और दश योजनका परिघ (घेरा), ऐसा कुर्म (कच्छु—काचवा) लिखा है. । तथा तौरेतग्रंथमें नुह आदि कितनेक मनुष्योंकी ९००, वा ८००, सौ वर्षकी आयु लिखी है. इससें मालुम होता है कि इस्सें पहिले प्राचीनतर जमानेमें मनुष्योंमें बहुत बडी आयुवाले मनुष्य थे. इस समयमें भी हिंदुस्थानकी अपेक्षा कितनेक देशोंमें अधिक आयुवाले मनुष्य विद्यमान हैं; तो फिर, असंख्यकालके पहिले मनुष्योंकी सर्व देशोंमें शत (१००) वर्ष प्रमाणही आयु माननी, यह वुद्धिमानोंको उचित है ? नहीं. इसवास्ते सर्वज्ञोक्त पुस्तकोंमें जो जो लेख है, सो सर्व सत्यही है. परंतु जो तुमारी समझमें नही आता है, सो तुमारी वुद्धिकी दुर्वलता है. क्योंकि, जो कोइ इस समयमें किसी नवीन पुस्तकमें लिख जावे कि, एक पुरुष सौ (१००) मण वोजा उठा सकता है, और एक पुरुष २७ मणकी लोहमयी मूंगली (मुद्गर-मोगरी) उठा सकता है, तो क्या तिस लेखको आजसें ५० वर्ष पीछे तुच्छबुद्धिवाले मान सकते हैं? नहीं. परंतु यह वार्त्ता हमारे प्रत्यक्ष है. पंजाब देशके लाहोर जिलेमें वलटोहे गामका रहनेवाला, फत्तेसिंह नामका एक सिख ४०, वा, ५०, वा १००, मणके वोजेवाले अरहट (रेंट) को उठा लेता है; और पूर्वोक्त जिलेमें चम्रांवाला गामका रहनेवाला, हीरासिंह नामका एक पुरुष २७ मण लोहेकी मूंगली (मुद्गर—मोगरी) उठाता है, यह हमारे प्रत्यक्ष देखनेमें आया है. इसीतरें सर्वज्ञके कथन किये प्राचीन लेख, कालांतरमें अल्पबुद्धिवालोंकी समझमें आने कठिन है.

---

* वावु शिवप्रसाद सितारे हिंद (स्टार आफ इंडिया)ने लिखा है कि, वडे कदके आदमीको चढनेकेवास्ते इतना वडा घोडा कहासे मिलता होगा ? सो इसका उत्तर भी जाणना कि, यदि इतना वडा हस्ती उस जमानेमे होता था, तो क्या घोडे नही होते होंगे ! ! !

प्रश्नः—कितनेक कहते हैं कि, जैनमतमें पृथिवी स्थिर, और सूर्य चलता है, ऐसा लेख है; और विद्यमान कालमें तो, कितनेक पाश्चात्यादि विद्वान् कहते हैं कि, पृथिवी चलती है, और सूर्य स्थिर है; और कितनेक कहते हैं कि, पृथिवी भी चलती है, और सूर्य भी अपनी मध्यरेखापर चलता है; यह क्यों कर है ?

उत्तरः—प्रथम तो हे भव्य! जैनमतके चौदहपूर्व, एकादशांग, उपांग, प्रकीर्णक, निर्युक्ति, वार्त्तिक, भाष्य, चूर्णी, आदि जैसें सुधर्म स्वामी गणधर आदिकोंने रचे थे, और जैसें वज्रस्वामी दशपूर्वधारीने उनका उद्धार करके नवीन रचना करी, सो ज्ञान प्रायः सर्व, स्कंदिलाचार्यके समयमें व्यवच्छेद हो गया है; उनमेसें जो शेष किंचित्मात्र रहा, सो नाममात्र रह गया. फिर उस ज्ञानको स्कंदिलादि आचार्य साधुयोंने नाममात्र आचारांगादिको एकत्र करके रचना करी, परंतु स्कंदिलादि आचार्य साधुयोंने स्वमतिकल्पनासें कुच्छ भी नही रचा है; जो शेष रह गया था, उसकोही तिस तिस अध्ययन उद्देशेमें स्थापन किया. फिर देवार्द्धिगणिक्षमाश्रमणआदिकोंने ताडपत्रोंपर मूलपाठ, निर्युक्ति, भाष्य, चूर्णि, वृत्ति, आदि और अन्यप्रकरणप्रमुख एक कोटि (१०००००००,) पुस्तक लिखें. वे पुस्तक भी, जैनोकी गफलत, मतोंके झगडे, मुसलमानोंके जुलमसें, और गुजेर देशमें अग्नि आदिके उपद्रवसें, बहुतसें नष्ट होगए; और कितनेक भंडारोंमें बंद रहनेसें गल गए; जैसें पाटणमें फोफलियावाडेके भंडारमें एक कोठडीमें ताडपत्रोंके पुस्तकोंका चूर्ण हुआ भुसकीतरें पडा है. और जैसलमेरमें तो, प्राचीन पुस्तकोंका भंडार कहां है, सो स्थानही श्रावकलोक भूल गए हैं. तो भी, डॉक्टर बुह्लर साहिबने, मुंबई हातेमें डेढ लाख (१५००००) जैनमतके पुस्तकोंका पता लगाया है; और उनका सूचीपत्र भी अंग्रेजीमें छपवाया है, ऐसा हमने सुना है. जब इतने पुस्तक जैनमतके नष्ट होगए हैं तो, हम लोक क्यों कर जैनमतके पुस्तकोंके लेखानुसार सर्व प्रश्नोंका समाधान कर सके कि, इस अभिप्रायसें यह कथन किया है!

और इस कालमें जो बुद्धिमानोंने पृथिवी सूर्य आदिके चलनेका स्वरूप प्रकट किया है, सो अनुमान बांधके प्रकट करा है; परंतु सर्वस्वरूप किसीने आंखोंसें नही देखा है. क्योंकि, दक्षिण उत्तर ध्रुव बतलाते हैं, और उनका स्वरूप लिखते हैं, और यह भी कहते हैं कि, दक्षिण उत्तर ध्रुवोंतक कोइ भी पुरुष नही जा सकता है. और ध्रुवकी तरफ जानेका प्रयत्न करनेवाली कई मंडलिओंका पता भी बरफके पहाडोंमें लगा नहीं है. जब ऐसें है, तो फिर, उनके लिखे कल्पित—आनुमानिक स्वरूपकी सत्यता कैसें मानी जावे? क्योंकि, पृथिवीके कितनेही हिस्से ऐसें हैं कि, वे अभितक जाननेमें नही आये हैं. थोडे अरसेकी बात है, एक अखबार (न्युसपेपर) में हमने बांचा है कि, अमेरिकन शोधकोंने यह विचार किया कि, यह धूमस (धूवां) कहांसे आती है? तलाश करते हुए उनको एसा मालुम हुआ कि, दूर फांसलेपर एक शहर तीसहजार (३००००) घर, वा मनुष्योंकी वस्तीवाला दीख पडा; उस विषयमें वे लिखते हैं कि, हम नही जानते है कि, इस शहरका क्या नाम, और किस बादशाहकी हकुमत इसपर है? ऐसेंही पृथिवीके अनेक विभाग, विना जाने पडे हैं. तो फिर, हम कैसें सर्व कल्पित—आनुमानिक बातोंको सत्यकरके मान लेवें? तथा मि० वीरचंद राघवजी गांधी, बी. ए. के पास एक अमेरिकन विद्वानका बनाया हुआ 'अर्थ नॉट ए ग्लोब' *(EARTH NOT A GLOBE)* नामका पुस्तक हमने देखा, जिसमें ऐसा लिखा सुणा है, कि पृथिवी गोल नही, किंतु चपटी (सपाट) है, और पृथिवी फिरती नही है, किंतु सूर्य फिरता है, ऐसें सिद्ध किया है. तथा आकाशमें ऐसें तारे हैं, उनको देख हम ऐसा अनुमान करसकते हैं कि, पृथिवी स्थिर है, और सूर्य चलता है, और जो कोइ हमारे पास आके यह बात देखना चाहे तो, उसको हम दिखला सकते भी हैं. तथा वेदोंमें भी सूर्य चलता है, ऐसें लिखा है.

तथाहि प्रथम ऋग्वेदे ॥

तरणिर्विश्वदर्शतोज्योतिष्कृदसिसूर्य ॥ विश्वमाभासिरोचनं ॥४॥

ऋ० अ० १ अ० ४ व० ७।

भाष्यका भाषार्थः—हे सूर्य! तूं तरणि—तरिता है, अन्य कोइ न जासके ऐसे बडे अध्व मार्गमें जानेवाला है;॥

तथा च स्मर्यते ॥

योजनानां सहस्रे द्वे द्वे शते द्वे च योजने ॥
एकेन निमिषार्द्धेन क्रममाण नमोस्तु ते ॥ १ ॥ इति ॥

भाषार्थः— दो सहस्र दो सौ और दो (२२०२), इतने योजन सूर्य आंख मीचके खोले तिसकालसें आधे कालमें चलता है, इत्यादि—। तथा ऋग्वेद अ० १ अ० ३ व० ६ में लिखा है कि, सुवर्णमय रथमें बैठके जगत्को प्रकाश करता हुआ, और देखता हुआ, सूर्य आजाता है.। तथा देव दीपता हुआ सूर्य, प्रवणवत मार्गकरके जाता है, तथा उर्ध्वदेशयुक्त मार्गकरके जाता है, उदयानंतर आमध्यान्हतांइ उर्ध्व मार्ग है, तिसके उपरात आसायंकाल प्रवणमार्ग है, यह भेद है; और यजन करनेके देशमें सूर्य श्वेतवर्णके अश्वोंकरके जाता है, और दूर आकाश देशसें यहां आता है.।

तथा ऋ० अ० २ अ० १ व० ५ में लिखा है.। यथा ॥

"॥ सूर्योहि प्रतिदिनं एकोनषष्ट्याधिकपंचसहस्रयोजनानिमेरुं प्रादक्षिण्येन परिभ्राम्यतीत्यादि ॥"

भाषार्थः—सूर्य प्रतिदिन ५०५९ योजन मेरुको प्रदक्षिणा करके परिभ्रमण करता है. इत्यादि.।

तथा ऋ० अ० २ अ० ५ व० २ में लिखा है.। यथा ॥

"॥ अचरंती अविचले द्वे एवैते द्यावापृथिव्यौ॥" इत्यादि.।

अविचल अचल अर्थात् स्थिर दोही है स्वर्ग १, और पृथिवी २, इत्यादि ऋचायोंसें सूर्यका चलना, और पृथिवीका स्थिर रहना कथन किया है. ऐसेंही यजुर्वेदादिसंहिता, और ब्राह्मणभागोंमें सूर्यके चलनेका कथन है. वैबलके हिस्से तौरेतमें भी लिखा है कि यहसुया जब लडा-

इमें लडता था, तब सूर्य कितनेक घंटेतक चलनेमें थम गया था; इत्यादि सर्व धर्मपुस्ककोंमें प्रायः सूर्यका चलनाही लिखा है.

प्रश्नः—कितनेक कहते हैं कि, जैनमतमें जो भरतखंडकी लंबाई, और चौडाइ, कही है, सो बहुत है; और देखनेमें हिंदुस्तान थोडासा है, इसका क्या सबब है?

उत्तरः—जैनमतमें हिंदुस्तानका नाम कुच्छ भरतखंड नही लिखा है; किंतु आर्य, अनार्य, सर्व देश मिलाके ३२००० देश जिसमें वसते थे, उसका नाम जैनमतमें भरतखंड लिखा है. वे अनार्य, आर्य देश जौनसें हैं, उनके नाम श्रीप्रज्ञापना उपांग सूत्रसें लिखते हैं.। प्रथम अनार्य देशोंके नाम लिखते हैं.। शक १, यवन २, चिलात ३, शबर ४, बर्ब्बर ५, काय ६, मुरुंड ७, ओड्ड ८, भडग ९, तीर्ण्णक १०, पक्कण ११, नीक १२, कुलक्ष, १३, गोंड १४, सीहल १५, पारस १६, गोध १७, अंध्र १८, दमिल १९, चिल्लल २०, पुलिंद २१, हारोस २२, दोव २३, बोक्कण २४, गंधहार २५, बहलि २६, अर्जल २७, रोम २८, पास २९, बकुश ३०, मलका ३१, बंधकाय (चूंचुका) ३२, सूकलि (चूलिक) ३३, कुंकण ३४, मेद ३५, पल्हव ३६, मालव ३७, मग्गर (महुर) ३८, आभासिक ३९, कण (अणक) ४०, वीरण (चीन) ४१, ल्हासिक ४२, खस ४३, खासिक ४४, नेदूर ४५, मढ ४६, डोंबिलग ४७, लकुस ४८, खकुस ४९, केकेय ५०, अरब ५१, हूणक ५२, रोमक ५३, भमरु ५४, इत्यादि.। और शक १, यवन २, शबर ३, बर्ब्बर ४, काय ५, मरुंड ६, उड्ड ७, भंडड ८, भित्तिक ९, पकाणिक १०, कुलाक्ष ११, गोंड १२, सिंहल १३, पारस १४, क्रौंच १५, अंध्र १६, द्रविड १७, चिल्वल १८, पुलिंद्र १९, आरोषा २०, डोवा २१, पोक्काणा २२, गंधहारका २३, बहलीका २४, जल्ला २५, रोसा २६, माषा २७, बकुशा २८, मलया २९, चूंचुका ३०, चूलिका ३१, कोंकणगा ३२, मेदा ३३, पल्हवा ३४, मालवा ३५, महुरा ३६, आभाषिका ३७, अणक्का ३८, चीना ३९, लासिका ४०, खसा ४१, खासिका ४२, नेट्टरा ४३, महाराष्ट्रा ४४, मुढा ४५, मौष्टिका ४६, आरब ४७, डोंबिकल ४८, कु-

हुणा ४९, केकया ५०, हूणा ५१, रोमका ५२, रुरुवा ५३, मरुका ५४, इत्यादि अनार्यदेशके वासी मनुष्योंके नाम, प्रश्नव्याकरण सूत्रमें लिखे हैं. । और शक १, यवन २, शबर ३, वर्व्वर ४, काय ५, मुरुंड ६, दुगोण ७, पक्कण ८, अक्खाग ९, हूण १०, रोमस ११, पारस १२, खस १३, खासिक १४, दुबिल १५, यल १६, वोस १७, वोक्कस १८, भिलिंद १९, पुलिंद २०, क्रौंच २१, भ्रमर २२, रुका २३, क्रौंचाक २४, चीन २५, चंचूक २६, मालंग २७, दमिल २८, कुलक्षय २९, केकय ३०, किरात ३१, हयमुख ३२, खरमुख ३३, तुरगमुख ३४, मेंढकमुख ३५, हयकर्ण ३६, गजकर्ण ३७, इत्यादि अनार्यदेशोंके नाम, सूत्रकृतांगकी निर्युक्तिमें कहे हैं. । इत्यादि एकतीस सहस्र नवसौ साडेचुहत्तर (३१९७४॥) अनार्य देश जिसमें वसते हैं. और साडे पच्चीस (२५॥) आर्यदेश हैं, उनके नाम प्रज्ञापना सूत्रसें लिखते हैं. । राजगृहनगर–मगधजनपद १, अंगदेश–चंपानगरी २, वंगदेश–ताम्रलिप्तीनगरी ३, कलिंगदेश–कांचनपुरनगर ४, काशीदेश–वाणारसीनगरी ५, कोशलदेश–साकेतपुर अपर नाम अयोध्यानगर ६, कुरुदेश–गजपुर (हस्तिनापुर) नगर ७, कुशावर्त्तदेश–सौरिकपुरनगर ८, पंचालदेश–कांपिलपुरनगर ९, जंगलदेश–अहिछत्तानगरी १०, सुराष्ट्रदेश–द्वारावती (द्वारिका) नगरी ११, विदेहदेश–मिथिलानगरी १२, वत्सदेश–कौशांबीनगरी १३, शांडिल्यदेश–नंदिपुरनगर १४, मलयदेश–भद्दिलपुरनगर १५, वच्छदेश–वैराटनगर १६, वरणदेश–अच्छापुरीनगरी १७, दशार्णदेश–मृत्तिकावतीनगरी १८, चेदिदेश–शौक्तिकावतीनगरी १९, सिंधुदेश–वीतभयनगर २०, सौवीरदेश–मथुरानगरी २१, सूरसेनदेश–पापानगरी २२, भंगदेश–मासपुरिवट्टानगरी २३, कुणालदेश–श्रावस्तीनगरी २४, लाढदेश–कोटिवर्षनगर २५, श्वेतंविकानगरी केकय आधा (०॥) देश, यह साडे पच्चीस (२५॥) आर्यदेश हैं. क्योंकि, इन देशोंमेंही जिन–तीर्थंकर, चक्रवर्त्ती, बलदेव, वासुदेवादि आर्य–श्रेष्ठ पुरुषोंका जन्म होता है, इसवास्ते इनको आर्यदेश कहते हैं. येह सर्व आर्यदेश विंध्याचल, और हिमालयके बीचमें हैं. हैम, अमरा-

दिकोशोंमें भी ऐसेंही आर्यदेश कहा है. ऐसे अनार्य आर्य सर्व देश मिलाके बत्तीस हजार (३२०००) देश जिसमें वास करते हैं, तिसको जैनमतमें भरतखंड कहा है; नतु हिंदुस्तानमात्रको. । ऐसे पूर्वोक्त भरतखंडकी भूमिपर बहुत जगोंपर समुद्रका पाणी फिरनेसें खुली भूमि थोडी रह गइ है; यह बात जैन ग्रंथोंसें, और परमतके ग्रंथोंसें भी सिद्ध होती है. और अनुमानसें भी कितनेक बुद्धिमान सिद्ध करते हैं. जैसें सन १८९२ सपटेंबर मास तारीख ५ को 'नवमी ओरीएंटल कांग्रेस' (NINTH ORIENTAL CONGRESS) जो लंडनशहरमें भरी थी, तिसमें पंडित मोक्षमुल्लरने अपने भाषणमें ऐसा सिद्ध करा है कि, एसीयासें लेके अमेरिकातांइ किसीसमयमें समुद्रका पानी बीचमें नही था; किंतु केवल एकही भूमिका सपाट थी. पीछे समुद्रके जलके आजानेसें बीचमें देशोंके टापु बन गए हैं. और ईसा (इसु खीस्तसें) पहिले १५०००, तथा २००००, वर्षके लगभग सामान्य भाषाके बोलनेवाले प्राचीन लोक, पृथिवीके किसी भागमें वसते थे.* तथा डॉक्टर बुल्हर साहिबने अपने भाषणमें जैन लोकोंके संबंधमें एक निबंध वांचके सुनाया था कि, जैनलोकोंकी शिल्प विद्या कितनेक दरजे (कितनीक बाबतोंमें) बुद्ध लोकोंकी शिल्पविद्याके साथ मिलती आती हैं, तो भी, जैन लोकोंने, वे सर्व बुद्धलोकोंके पाससें नही ली है; किंतु वो विद्या, जैन लोकोंके घरकीही है, ऐसा सबूत कर दीया था.—यह समाचार, गुजराती पत्रके १३ मे पुस्तकके अकटोबर सन १८९२ के ४० मे और ४१ मे अंकमें है. यह यहां प्रसंगसें लिखा है. इसवास्ते चीन, रूस, अमेरिकादि सर्व भरतखंडमेंही जानने. ॥ पूर्वोक्त साढेपच्चीस आर्यदेशोंको, जैनमतमें क्षेत्र आर्य कहते हैं.

प्रश्नः—यदि क्षेत्रकी अपेक्षा येह २५॥ देश आर्य है, और शेष ३१९७४॥ देश अनार्य है तो, क्या आर्य अन्य तरेंके भी है, जिसवास्ते इनको क्षेत्रापेक्षा आर्य कहते हो ?

---

* इस कथनसें जो इसाइ लोक मानते है कि, इस पृथिवीके रचेको, वा मनुष्य रचेको छ सहस्र (६०००) वर्ष हुए है, सो मिथ्या ठहरता है.

उत्तरः—हां. अन्यतरेंके भी आर्य है, जैनमतके प्रज्ञापना सूत्रमें नव-प्रकारके आर्य कहे हैं. । तथाहि ॥ क्षेत्रार्य १, जाति आर्य २, कुलार्य ३, कर्मार्य ४, शिल्पार्य ५, भाषार्य ६, ज्ञानार्य ७, दर्शनार्य ८, चारित्रार्य ९. ।

अब प्रथम आर्य पदका अर्थ लिखते हैं. ।

"॥तत्रारात् हेयधर्मेभ्यो याताः प्राप्ता उपादेयधर्मैरित्यार्याः पृषोदरादयइति रूपनिष्पत्तिः ॥"

तहां आरात् त्यागने योग्य धर्मोंसें जाते रहे हैं,और प्राप्त है अंगीकार करने योग्य धर्मोंकरके वे कहिये, आर्य. ॥

१. क्षेत्रार्य—क्षेत्रार्यका स्वरूप तो, ऊपर लिख आए हैं. ॥ १ ॥

२. जातिआर्य—अम्बष्ठ १, कलिंद २, वैदेह ३, वेदंग ४, हरित ५, चुञ्चुण ६, रूप ये इभ्यजातियां प्रसिद्ध है, तिसवास्ते इन जातियोंकरके जे संयुक्त है, वे जातिके आर्य है, शेष नही. यद्यपि शास्त्रांतरोंमें अनेक जातियें कथन करी है, तो भी, लोकोंमें येही जातियें पूजने योग्य प्रसिद्ध है. ॥ २ ॥

३. कुलार्य—उग्रकुल १, भोगकुल २, राजन्यकुल ३, इक्ष्वाकुकुल ४, ज्ञातकुल ५, कौरवकुल ६. । जिनको श्रीऋषभदेवजीने कोतवालका पद दिया था, उनका जो वंश चला, तिसका नाम उग्रकुल १, जिनको श्रीऋषभदेवजीने पूज्य बडाकरके माना, उनका वंश भोगकुल २, जो श्रीऋषभदेवके मित्रस्थानीये थे, उनका वंश राजन्यकुल ३, जो श्रीमहावीरजीका वंश, सो ज्ञात (न्यात) कुल ४, जो श्रीऋषभदेवजीका वंश, सो ईक्ष्वाकुकुल ५, जो श्रीऋषभदेवजीके कुरुनामा पुत्रसें वंश चला, सो कौरववंश ६. चंद्रवंश, और सूर्यवंश, जो श्रीऋषभदेवके पोते चंद्रयश, और सूर्ययशके नामसें प्रसिद्ध हुए हैं, इक्ष्वाकुवंशके अंतरभूतही गिने हैं, न्यारे नही. ॥ ३ ॥

४. कर्मार्य—इनके अनेक भेद हैं । दोसिका जातिविशेष १, सौत्तिका २, कप्पासिका ३, सुक्तिवैतालिका जातिविशेष ४, भंडवेतालुका जाति-

विशेष ५, कोलादिक ६, नरवाहीनिका ७, इत्यादि अनेक प्रकारके हैं. ॥ ४ ॥

५. शिल्पार्य—इनके भी अनेक प्रकार हैं.। दरजीका काम करनेवाले १, तंतुवायाकुविंदा २, पट्टकारा पट्टकूलकुविंदा ३, दृतिकारा ४, विच्छिका ५, जण्विका ६, कठादिकारा ७, काष्टपादुकाकारा ८, छत्रकारा ९, बभारा १०, पप्भारा ११, पोत्थारा १२, लेप्पारा १३, चित्तारा १४, संखारा १५, दंतारा १६, भंडारा १७, जिप्भागारा १८, सेल्लारा १९, कोडिगारा २०, इत्यादि अनेक प्रकारके शिल्पार्य जानने ॥ ५ ॥

६. भाषार्य—जहां अर्द्धमागधी भाषाकरी बोलते हैं, और जहां ब्राह्मी लिपिके अठारह (१८) भेद प्रवर्त्ते हैं, अर्थात् लिखते हैं, सो भाषार्य.। ब्राह्मी लिपिके भेद ऊपर लिख आए हैं, और अठारह देशकी भाषा एकत्र मिली हुइ बोली जाती है, सो अर्द्धमागधी भाषा, ऐसें निशीथ चूर्णिमें लिखा है. ॥ ६ ॥

७. ज्ञानार्य—इनके पांच भेद हैं. मतिज्ञानार्य १, श्रुतज्ञानार्य २, अवधिज्ञानार्य ३, मनःपर्यवज्ञानार्य ४, केवलज्ञानार्य ५. इन पांचों ज्ञानोमेंसें जिसको ज्ञान होवे, सो ज्ञानार्य. इन पांचों ज्ञानोंका स्वरूप नंदिसूत्रसें जान लेना. ॥ ७ ॥

८. दर्शनार्य—इनके दो भेद हैं. सरागदर्शनार्य १, वीतरागदर्शनार्य २; सरागदर्शनार्य, कारणभेद होनेसें कार्यभेद नयके मतसें दश प्रकारके हैं.। निसर्गरुचि १, उपदेशरुचि २, आज्ञारुचि ३, सूत्ररुचि ४, बीजरुचि ५, अभिगमरुचि ६, विस्ताररुचि ७, क्रियारुचि ८, संक्षेपरुचि ९, धर्मरुचि १०.। इनका स्वरूप ऐसें है.। भूतार्थत्वेन सद्भूता सच्चे हैं येह पदार्थ, ऐसें रूपसें जिसने जीव १, अजीव २, पुण्य ३, पाप ४, आश्रव ५, संवर ६, बंध ७, निर्जरा ८, मोक्षरूप ९, नव पदार्थ* जाने हैं; कैसें जाने

* श्रीमेघविजयजी उपाध्यायविरचित "तत्त्वगीता" मे जीवका प्रतिपक्षी अजीव, पुण्यका पाप, आश्रवका संवर, बंधका मोक्ष, और निर्जराकी प्रतिपक्षिणी वेदना, ऐसें दश पदार्थ लिखे हैं; और श्री भगवती सूत्रमें भी नवपदार्थोंका वर्णन करके अनंतरही वेदनाका वर्णन किया है. ॥

हैं ? परोपदेशविना, जातिस्मरणप्रतिभारूप अपनी मतिकरके जाने हैं, और उनके सत्य होनेकी रुचि आत्माके साथ तत्त्वरूपकरके परिणाम जो करता है, तिसको निसर्गरुचि जाननी. इस कथनकोही स्पष्टतर कहते हैं. जो पुरुष जिनेंद्र देवके देखे हुए पदार्थोंको द्रव्य १, क्षेत्र २, काल ३, भाव ४ सें, वा नाम १, स्थापना २, द्रव्य ३, भाव ४ भेदसें, चार प्रकारसें स्वयमेव आपही परके उपदेशविना जाने, और श्रद्धे; किस उल्लेखकरके ? ऐसेंही है, येह जीवादिपदार्थ, जैसें जिनेंद्र देवोंने देखे हैं, अन्यथा नही है, यह निसर्गरुचि है. । १ । इनही जीवादि नव पदार्थोंको, जो, छद्मस्थके उपदेशसें, वा जिन–तीर्थंकर–सर्वज्ञके उपदेशसें श्रद्धे, उसको उपदेशरुचि जाननी. । २ । जो हेतु विवक्षितार्थगमककों नही जानता है, केवल जो प्रवचनकी आज्ञा है, तिसको सत्यकरके मानता है, जो प्रवचनोक्त है, सोही सत्य है, अन्य नही, यह आज्ञारुचि जाननी. । ३ । जो अंगप्रविष्ट, वा अंगबाह्य सूत्रको पढता हुआ, तिस श्रुतकरकेही सम्यक्त्वको अवगाहन करे, सो सूत्ररुचि जाननी. । ४ । जीवादि किसी एक पदकरके जीवादि अनेकपदोंमें सम्यक्त्ववान् आत्मा पसरेही है; कैसें पसरे है ? जैसें पानीके एकदेशगत तैलका बिंदु समस्त जलको आक्रमण करता है, तैसें एकदेशउत्पन्नरुचि भी, तथाविध क्षयोपशम भावसें शेषतत्त्वोंमें भी रुचिमान् होता है; ऐसें बीजरुचि जाननी. । ५ । जिसने आचारादि एकादश (११) अंग, उत्तराध्ययनादि प्रकीर्णक, दृष्टिवाद बारमा अंग, और उपांगरूप श्रुतज्ञान, अर्थसें देखा है, और तत्त्वरुचि प्राप्त करी है, तिसको अधिगमरुचि कहते हैं. । ६ । धर्मास्तिकायादि सर्व द्रव्योंके भाव (पर्यायों) को यथायोग्य प्रत्यक्षादि सर्व प्रमाणोंकरके, और सर्व नैगमादि नयोंके भेदोंकरके जिसने जाना है, सो विस्ताररुचि जाननी; सर्व वस्तुपर्याय प्रपंचके जाननेकरके तिस रुचिको अतिविमल होनेसें. । ७ । ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तपमें विनय, तथा ईर्यादि सर्व समितियोंविषे, और मनोगुप्तिप्रमुख सर्व गुप्तियोंविषे, जो क्रियाभावरुचि, अर्थात् जिसको भावसें ज्ञानादि आचारोंमें अनुष्ठान

करनेकी रुचि है, उसका नाम क्रियारुचि है, ।८। जिसने कुदृष्टि मिथ्यामत ग्रहण नही करा है, और जो जिनप्रवचनमें कुशल नही है, और जिसने कपिलादि मत उपादेयकरके ग्रहण नही करे हैं, तथा जिसको परदर्शनमात्रका भी ज्ञान नही है, ऐसें संक्षेपरुचिवाला जानना. ।९। जो जीव धर्मास्तिकायादिके धर्म, गत्युपष्टंभकादि स्वभावको और श्रीजिनेंद्रके कहे श्रुतधर्म और चारित्रधर्मको श्रद्धे, सो धर्मरुचिवाला जानना. ।१०। ऐसें निसर्गादि दशप्रकारका रुचिरूप दर्शन कहा.॥ अब जिनलिंगचिन्होंकरके, सम्यग्‌दर्शन उत्पन्न हुआ जानीये, निश्चय करीए, वे लिंगचिन्ह दिखाते हैं. ॥ बहुमानपुरस्सर जीवादि पदार्थोंके जाननेवास्ते अभ्यास करना; जिनोंने जीवादि पदार्थोंका स्वरूप अच्छीतरेंसें जाना है, उनकी सेवा करनी, अर्थात् यथाशक्ति उनकी वैयावृत करनी; जिनकी जैनेंद्र मार्गकी श्रद्धा भ्रष्ट हो गइ है, ऐसे जो निन्हवादि, और कुदर्शन मिथ्या श्रद्धावाले शाक्यादिक, उनको वर्जना, अर्थात् उनोंका संग परिचय न करना; इन लिंगोंकरके सम्यक्त्व है, ऐसा श्रद्धीये. ॥ इस दर्शनके आठ आचार है, वे सम्यक्‌प्रकारसें पालने योग्य है. यदि उनका उल्लंघन करे तो, दर्शन (सम्यक्त्व)का भी अतिक्रम उल्लंघन होवे हैं; वे आठ आचार येह है. । निःशंकित शंकारहित होवे. शंका दो तरेंकी है; एक देशशंका, और दुसरी सर्वशंका; देशशंका जैसें सर्व जीवके समान जीवत्वके हुए भी, फिर कैसें एक भव्य है, और दूसरा अभव्य है? और सर्व शंका, प्राकृतनिबद्ध होनेसें सकलही यह प्रवचनकल्पित होवेगा. । यह देश और सर्वशंका करनी उचित्त नही है; जिस कारणसें यहां शास्त्रोंमें दो प्रकारके पदार्थ कहे हैं. एक हेतुसें ग्रहण होते हैं, और दूसरे विनाहेतुके ग्रहण होते हैं. जीवास्तित्वादि जे हैं, उनके सिद्ध करनेवाले प्रमाणके सद्भाव होनेसें, वे हेतुग्राह्य हैं. और अभव्यत्वादि अहेतुग्राह्य हैं, अस्मदादिकोंकी अपेक्षाकरके उनके साधक हेतुयोंके अभाव होनेसें, उनके हेतु प्रकृष्ट ज्ञानगोचर होनेसें; और प्राकृतमें जो प्रवचनका निबंध है, सो बालादिकोंके अनुग्रहार्थे है. ॥

उक्तंच ॥

बालस्त्रीमूढमुर्खाणां नृणां चारित्रकांक्षिणाम् ॥
अनुग्रहार्थं तत्त्वज्ञैः सिद्धांतः प्राकृतः कृतः ॥ १ ॥

एक अन्यबात भी है कि, प्राकृतमें भी प्रवचनका निबंध दृष्टेष्ट अविरोधी है, तो फिर, कैसें अवांतर परिकल्पनाकी शंका उत्पन्न होवे ? क्योंकि, सर्वज्ञके विना अन्य कोइ भी दृष्टेष्ट अविरोधवचन, नही कह सकता है. यह निःशंकित नामा प्रथम आचार है. । १ । निःकांक्षित, वांछा करनेका नाम कांक्षा है, सो कांक्षा जिसथकी नीकल गइ है, सो कहिये निःकांक्षित, अर्थात् देश, सर्व कांक्षारहित होवे; तहां देशकांक्षा, एक दिगंबरादि दर्शनकी वांछा करे; और सर्वकांक्षा, सर्वही दर्शन अच्छे हैं, ऐसें चिंतन करना; येह दोनों प्रकारकी कांक्षा करनी ठीक नही है. क्योंकि, शेष दर्शनोंमें षट् जीवनिकायपीडासें, और असत् प्ररूपणाके होनेसें; इति निःकांक्षितनामा दूसरा आचार. । २ । विचिकित्सा, मतिभ्रम फलप्रति संशय करना, जिनशासनतो अच्छा है, किंतु प्रवृत्त हुए मुझको इस कर्त्तव्यसें फल होवेगा, वा नही ? क्योंकि, कृषीकर्मादिक्रियामें दोनोंही देखनेमें आते हैं, इत्यादि विकल्परहित होवे. क्योंकि, नही अविकल उपायके हुए उपेयकी प्राप्ति नही होती है, अपितु होवेही है; ऐसा निश्चय जो होना, सो निर्विचिकित्स नामा तीसरा आचार जानना. । ३ । अमूढदृष्टि, बाल तपस्वीके तप, विद्या, अतिशयको देखनेसें मूढस्वभावसें चलचित्त न होवे; सुलसा श्राविकावत्, सो अमूढदृष्टिनामा चौथा आचार. । ४ । समानधार्मिक जनोंके गुणोंकी प्रशंसा करके उनकी वृद्धि करनी, सो उपबृंहणानामा पांचमा आचार. । ५ । धर्मसें सीदाते (डोलतेहूए) को फिर धर्ममेंही स्थापन करना, सो स्थिरीकरणनामा छट्ठा आचार. । ६ । समानधार्मिक जनोंको अन्नपाणी वस्त्रादिकोंसें उपकार करना, सो वात्सल्यतानामा सातमा आचार. । ७ । प्रभावना, धर्मकथा, धर्ममहोत्सवादिकोंकरके तीर्थका प्रकाश करना, उन्नति करनी, सो प्रभावना नामा आठमा आचार. । ८ । इन आठों आचारोंसहित सम्यग्दर्शनसंयुक्त जो होवे सो दर्शनार्य. ॥ ८ ॥

९. चारित्रार्य—इनके भेद श्रीप्रज्ञापनासूत्रमें अनेक प्रकारके करे हैं. परंतु सामान्य प्रकारसें जो अहिंसा १, अनृत २, अस्तेय ३, ब्रह्मचर्य ४, अकिंचिन्य ५, इन पांचों महाव्रतोंका पालक होवे, सो चारित्रार्य जानना.॥९॥

येह नवभेद आर्योंके हैं. यह आर्यपद जैनमतके शास्त्रोंमें हजारों जगे उच्चारनेमें आताहै.

जैसें ॥

" ॥ अज्जसुहम्मे अज्जजंबू अज्जपप्भव इत्यादि ॥ "

एक कल्पाध्ययनमेंही सैंकडों जगे उच्चार हैं. और जैनमतकी साध्वीयोंका नाम भी, आर्या है; इसवास्ते यह आर्य शब्द श्रेष्ठताका वाचक है. सांप्रतिकालमें दयानंदिये (दयानंदमतानुयायी) भी, अपने आपको आर्य समाजी कहलाते हैं. परंतु जो अर्थ, आर्यपदका हम ऊपर लिख आए हैं, सो जिसमें घटे सोही आर्यपदवाच्य है, अन्य नही है. । इति संक्षेपतः कतिपय शंकानिराकरणं समाप्तम् ॥

इत्याचार्यश्रीमद्विजयानंदसूरिविरचिते तत्त्वनिर्णयप्रासादे चतुस्त्रिंशः स्तम्भः ॥ ३४ ॥

॥ अथ पंचत्रिंशस्तम्भारम्भः ॥

विदित होवे कि, व्यास सूत्रोंमें जैनमतके कहे तत्त्वोंका तीन सूत्रोंमें खंडन किया है, उन सूत्रोंपर शंकरस्वामीने भाष्य रचके तिसमें विस्तारसें पूर्वोक्त तत्त्वोंका खंडन लिखा है. बहुतसें जैनमती यह भी नही जानते हैं कि, शंकरस्वामी कौन थे? कब हुए हैं? और उनोंने हमारे मतका किस रीतिसें खंडन किया है? और बहुत ब्राह्मण लोक शंकरस्वामीने जैनीयोंके बेडे जहाज भरवाके डुबवा दिये थे, इत्यादि अनेक मिथ्या वातें कर रहे हैं, वे सर्व मालुम हो जावेंगी. इसवास्ते इस पंचत्रिंश (३५) स्तंभमें हम शंकरस्वामीकी उत्पत्ति, शंकरस्वामीके शिष्य अनंतानंदगिरिकृत शंकरविजय, और माधवाचार्यकृत दूसरी शंकरविजय ग्रंथानुसार लिखते हैं. और जिन जैनमतके तत्त्वोंका खंडन जिस-

तरें व्यासजी, शंकरस्वामी आदिकोंने लिखा है, वैसाही खंडनपूर्वक, छत्तीस (३६) मे स्तंभमें लिखेंगे.

केरलदेशके एक नगरमें सर्वज्ञनामा ब्राह्मण, और कामाक्षी नामा तिसकी भार्या रहते थे; उनोंकी एक विशिष्टानामा पुत्री, जब आठवर्षकी हुई, तव तिसके पिताने विश्वजित्नामा ब्राह्मणके पुत्रको विवाह दी. विशिष्टा, शिवके आराधनमें तत्पर, और विवेकवाली थी. ऐसी विशिष्टाको त्यागके तिसका पति विश्वजित्, अरण्यमें तप करनेकेवास्ते निश्चय करता हुआ; तवसें विशिष्टा अकेली रहगई. और महादेवको पूजाभक्तिसें अतिप्रसन्न करती भई. तब महादेव सर्वव्यापी है, तो भी, उसके वदनकमलमें प्रवेश करके उसके उदरमें पुत्ररूप गर्भपणे उत्पन्न हुआ. गर्भकालसें पीछे जन्म हुआ, पुत्रका नाम शंकर रक्खा. ॥ इतिशंकरस्वामीजन्मवर्णनम् ॥

बाल्यावस्थामेंही शकरने गुरुमुखसें सर्व विद्या पढली. पीछे शंकरस्वामी माताकी आज्ञा लेके नर्मदा नदीके किनारेपर वनमें जाकर गोविंदनाथ संन्यासीके शिष्य हुए; तहांसें चलके शंकरस्वामीने काशीमें आके कितनेक दिन निवास किया, और अपनी ब्रह्मविद्याका, सुननेवालोंको उपदेश करते रहे; तहां उनके कितनेही शिष्य होते भये. तहांसें चलके हिमालयपर्वतके बदरीआश्रममें जा रहे; तहां वेदांत, उपनिषद्, गीतादिका भाष्य रचते हुए, और शिष्योंको अपने रचे हुए भाष्यका पठन कराते हुए. तदपीछे शारीरिकसूत्रोंका भाष्य रचा, तदपीछे कुमारिलभट्टपाससें वार्त्तिक करवानेकी इच्छा उत्पन्न भई, तब हिमालयसें दक्षिण दिशाको चले. प्रथम कुमारिलभट्टके जीतनेवास्ते प्रयाग आये, तहां त्रिवेणीस्नान करके शिष्योंसहित किनारेपर बैठे. तब लोकोंके मुखसें ऐसी वार्त्ता सुनी, "जिसने पर्वतसें छलांक(फलांग)मारके वेदवाणीकों प्रामाण्य सिद्ध करी, सो यह कुमारिल, सर्व वेदार्थोंका जाननेवाला, अपना दोष दूरकरनेकेवास्ते तुषाग्निकरके दग्ध होता है. सर्व शरीर तो जलगया है, एक मुख शेष रहता है."—यह सुनके संकरस्वामी तुरत वहां गए, और तुषराशिमें बैठे, कुमारिल

को देखा, और प्रभाकरादि शिष्यवर्ग रुदन कर रहे हैं. कुमारिलने अदृष्ट, अश्रुतपूर्व, शंकरस्वामीको देखके बडा आनंद पाया. तब शंकरस्वामीने उसको अपना भाष्य दिखलाया, तब कुमारिलने कहा तुमारा भाष्य तो ठीक है, परंतु इस भाष्यके प्रथमाध्यायमें अष्टसहस्र (८०००) वार्त्तिका चाहिये. जेकर मैंने दीक्षा नही लि होती तो, मैं इसकी वार्त्तिका करता; परंतु प्रथम तो मैं, बौद्धोंसें वादमें हारा, और उनकाही शरण मैंनें लिया; तब मैं उनका सिद्धांत सुनता रहा. कुशाग्रीयबुद्धिवाले बौद्धोंने वैदिकमत खंडन करा, तब मेरी आंखोंसें आंसु गिरे, और पासवालोंने मुझे देखा. तबसें उनोनें मेरेपरसें विश्वास छोड दीया कि, यह अपने मतके माननेवाला नही है, हमने विरोधीमतवाले ब्राह्मणको पढाया, और इसने हमारे मतका तत्त्व जान लिया, इसवास्ते इसको उपद्रव करना चाहिये. ऐसी सलाह करके बौद्धोंने मुझको उच्चप्रासादसें नीचे गिराया, तब मैं ऊपर चढ आया, और मुखसें कहा कि, यदि श्रुतियां सत्य है तो, मैं, गिरता हुआ भी, जीता रहूं. मेरे जीते रहनेसें श्रुतियां सत्य हो गई, परंतु गिरनेसें मेरी एक आंख फुट गई, सो तो, विधिकी कल्पना है. एक अक्षरका प्रदाता गुरु होता है, शास्त्र पढानेवालेका तो क्याही कहना है ? मैंने सर्वज्ञ बुद्धगुरुपाससें शास्त्र पढके उसकाही बुरा किया, उसके कुलकाही प्रथम नाश किया, और जैमनिमत माननेसें मैंने ईश्वरका खंडन किया, अर्थात् ईश्वर जगत्कर्त्ता सर्वज्ञ नही है, ऐसा सिद्ध किया. इन दोनों दूषणोंके वास्ते, यह प्रायश्चित्त मैंने किया है, परंतु, तूं, मेरे बहनोइ, माहिष्मतिनगरनिवासी, मंडनमिश्रको जीत लेवेगा तो, तेरा मत सर्वजगे प्रचलित होवेगा. इतना कहकर भट्ट मृत्युको प्राप्त हुआ.*

---

* आनदगिरिकृत शकरविजयके ६९ प्रकरणमे लिखा है। तब परमगुरु, भट्टाचार्यको देखके कहता हुआ, हे द्विज ! तूने अज्ञानकरके यह अवस्था प्राप्त करी है, हे मूढ ! तू गूढ अर्थवाले व्याख्यानोंको नहीं जानता है. यतः।

हंता चेन्मन्यते हंतुं हतश्चेन्मन्यते हतम् ॥
उभौ तौ न विजानीतो नायं हंति न हन्यते ॥

इतिश्रुते । मारनेवालेको जो हता–हिंसक मानता है, और हतको मरा मानता है, वे दोनोंही अज्ञ है.

शंकरस्वामीने माहिष्मति नगरीमें जाके मंडनमिश्रको पराजय करा, तब उसकी भार्याने शंकरस्वामीको कामशास्त्रकी बातें पूछी, शंकरस्वामीको उनका उत्तर नही आया. तब शंकरस्वामी वहांसें चले गये, किसी देशमें अमरक नामा राजेका मुरदा देखा, तब एक पर्वतकी गुफामें जाके अपने शिष्योंको कहा कि, जबतक मैं पीछा इस शरीरमें न आऊं तबतक तुमने इसकी रक्षा करनी; ऐसा कहकर योग महात्मसें शंकरके शरीरको छोडके शंकरका जीव, उस राजाके शरीरमें प्रवेश कर गया; तब राजाका शरीर धीरे धीरे अंग हिलाके जीता होगया. तब सर्व राणीयां मंत्री आदि आनंदित हुए, बडे उत्सवसें राजमंदिरमें लेगए; मंत्रियोंने परस्पर विचार किया कि, यह किसी योगीका जीव राजाके शरीरमें प्रवेश कर गया है, नही तो, राज्य करनेकी ऐसी कुशलता कहांसें होवे? यह गुण समुद्र, फिर तिस शरीरमें न चला जावे, इसवास्ते. जो मृतक शरीर होवें, वे सर्व, जला दो, ऐसी अपने नोकरोंको आज्ञा दे दी.*

इधर परम निपुण शंकरस्वामी, अपने मंत्रियोंको राज्य चलाना सौंपके, आप, राजाकी राणीयोंसें भोग करने लगे. कैसें भोग? जो अन्य राजाओंको मिलने दुर्लभ हैं, बहुत सुंदर महेलोंमें राणीयोंके साथ पासाओंकरी द्यूतक्रीडा करते हुए, अधरदशन, बाहुउद्वहन, कमलसें ताडना, रतिविपर्यय ग्लहपण करते हुए, अधरसें उत्पन्न हुआ सुधाअमृतके श्लेषसें मनोहर मुखके पवनके संबंधसें सुगंधी कांता—स्त्रियोंके हाथसें प्राप्त हुआ इसवास्तेही अतिप्रिय मदका करनेहारा, ऐसा मदिरा

क्योंकि, न यह किसीको मारता है, और न किसीसे मरता है. ऐसे कहा हुआ भट्टाचार्य, परम गुरुको कहता हुआ; जाग्रतकालानागत नूतन बौद्धतर, किसवास्ते यहां आकरके, तू, मुझको तपाता है? तब गुरुने कहा, मैं, बौद्ध नही हूं; किंतु, शंकराचार्य, शुद्धाद्वैतमार्गदाता, प्रसंगार्थे यहां आया हूं. यह वचन सुनके अदग्धशेषशरीर भट्टाचार्यने कहा, मेरी बहिनका पति, मंडनमिश्र, सर्वज्ञसदृश, सकलविद्यामें पितामहसमान है, उसके साथ, तू, वाद करनेकी खाजकी निवृत्तिपर्यंत, प्रसंग कर. इत्यादि ॥

* आनंदगिरीकृत शंकरदिग्विजयमे राणीने शरीर जला देनेकी आज्ञा नौकरोंको दी इत्यादि लिखा है, तद्विषयिक वर्णन हमारे बनाए "जैनतत्त्वादर्श" से जान लेना.

(शराब) यथा इच्छासें आप पीपीकर, कांतायोंको भी पिलाते हुए; मंदाक्षर थोडेसें पसीनेयुक्त मनोहर भाषण है जिसमें, निभृतरोमांचित सीत्कारयुक्त कमलकीतरें सुगंधित प्रसरणशील मन्मथ है जहां, ऐसे कांतामुखको पीके शंकर राजा, कृत्यकृत्य होते हुये; आवरणरहित जघन है जिसमें, दश्या है तले (नीचे)का होठ जिसमें, अतिशयकरके मर्दन करे हैं स्तनयुगल जिसमें, रतिकूजितशब्द है जिसमें, पाया है उत्साह जिसमें, पाया है क्रियाभेद संवेशन वा जिससें, नृत्य कर रहे हैं गात्र जिसमें, गइ है इतरकी भावना जिसमें, ऐसा वचनके अगोचर, अतिशायिक सुख, उत्पन्न हुआ है; वहां भी, ब्रह्मानंदही, अनुभव करते रहें, सोही दिखाते हैं. श्रद्धा प्रीति रति धृति कीर्ति कामसें उत्पन्न हुइ विमलामोदिनी घोरा मदनोत्पादिनी मदामोहिनी दीपनी वशकरी रंजनी इतनी कामकी कला स्त्रीके अंगोंमें सर्व है, और स्त्रीके अंगोंमें अमुक २ तिथिमें मदन वास करता है, ऐसी कामकी कलामें जानकार मनोज्ञ है चेष्टा जिसकी, सकल विषयोंमें व्यापारयुक्त इंद्रियां हैं जिसकी, सदा प्रमदा उत्तम करी है जो कुचलक्षणगुरुकी उपासना तिसकरके अत्यंत भला निर्वृत है अंतःकरण जिसका, सो निरर्गल निराबाध निधुवन मैथुन तिसमें जो प्रधान ब्रह्मानंद तिसको भोगते हुए. सो शंकररूप राजा पूर्वकीतरें राणीयोंके साथ भोगोंको भोगता हुआ, जैसें वात्स्यायनने कामशास्त्रमें मैथुन सेवनेकी विधि लिखी है, तैसें शंकरस्वामी मैथुन सेवते हुए. सो कामशास्त्र स्वयमेव साक्षात् देखते हुये, वात्स्यायनके कहे सूत्र, और उनकी भाष्यको सम्यग् देखके, एक अभिनवार्थ गर्भित निबंध कामशास्त्र, नृपवेशधारी शंकरस्वामीने रचा. शंकरस्वामी तो, विलासिनीयोंसें उक्त रीतिसें भोग करते रहे.

इधर शंकरस्वामीके शिष्य, आपसमें कहने लगे कि, गुरुजीने एक मासकी अवधि कीथी, सो भी पांच छ दिन अधिक हो गये है. तो भी, गुरु अपने शरीरमें आकर हमारी अनुकंपा नही करते हैं. हम क्या करे? कहां ढूंढें? कहां जावें? ऐसी चिंता करके किसी एकको शरीरका रक्षक

ठहराके, आप सर्व ढूंढनेको गये; वे पर्वतादि देखते हुए अमरकनृपके देशमें आए. उनोंने वहां श्रवण किया कि, यहांका राजा मरके फिर जी उठा है. तव शिष्योंको धैर्यता आइ, और जाना कि, यही हमारा गुरु है. और जाना कि, यह राजा गीतका लोभी, और स्त्रीयोंमें आसक्त है, तव उनोंने गानेवालोंका वेष किया, तब नगरमें उनके गानेकी प्रसिद्धि हुइ, तब राजाने उनको गान सुननेकेवास्ते बुलवाये, तब उनोंने गानमें "तत्त्वमसि" का उपदेश किया, जो आनंदगिरिकृत विजयमें, और माधवकृत विजयसें प्रकट है. उनका उपदेश सुनके शंकरस्वामी होशमें आये. और राजाका शरीरको छोडकर अपने शरीरमें प्रवेश करगये. परंतु तिस अवसरमें राजाके चाकर, शंकरस्वामीके शरीरको अग्निसें दाह कर रहेथे, तब शरीरमें प्रवेश करके शंकरस्वामीने अग्निको शांत करनेकेवास्ते नरसिंहका स्तोत्र पढा, जो टीकामें लिखा है. अग्नि शांत हुआ, तब शंकरस्वामी वहांसें चलके शिष्योंके साथ जा मिले. वहांसें मंडनमिश्रके घरमें आये, और तिसकी भार्याके प्रश्नोके उत्तर देके उनको जीते. मंडनको अपना शिष्य किया, वहांसें दक्षिण दिशाको चले, महाराष्ट्रादि देशोंमें अपने रचे ग्रंथोंका प्रचार करते हुए; और अपने शिष्योंसें पाशुपत, वैष्णव, वीर, शैव, माहेश्वरादि मतोंको खंडन करवाते हुए; अनेक तीर्थोंकी यात्रा की, अपनी मातासें मिलने गये, तिसका अंत्यसंस्कार किया, पीछे दाक्षिणादि देशोंमें फिरे. वहांसे चलके विदर्भ देशके सुधन्वा नामा राजाको अपना शिष्य किया; सुधन्वाने मना भी किया तो भी, शंकरस्वामीने कर्णादिदेशोंमें कापालियोंका पराजय किया; वहांसें विचरते हुए, उज्जयनी नगरीमें आये. सर्व जगे दिग्विजय करके जिन २ मतवालोंको जीते, तिन सर्वके नाम आनंदगिरिने अपने रचे शंकरविजयमें लिखा है. जैनमतका खंडन शंकरने जैसा किया है, सो आनंदगिरिने ऐसा लिखा है.

तिस लेखकी भाषाः—तदपीछे शंकरस्वामीके पास 'जैन' आया. कैसा है जैन? कौपीनमात्रधारी है, मलकरके जिसका अंग भरा

है, सदा ' अर्हन् ' ऐसा वारवार उच्चारन करता हुआ, शून्यांकशून्यपुंड्र धृतबिंदु पुंड्र, शिष्योंसहित पिशाचवत्, सर्व जनको भयंकर, आकरके सकल लोकगुरु शंकरस्वामीको यह कहता हुआ; भो स्वामिन् ! मेरा मत अत्यंत सुगम है, तुम श्रवण करो. जिनदेव सर्वज्ञ सर्वका मुक्तिदाता है; ' जि ' इस पदके वाच्य ' जीव ' को ' न ' इति पदकरके ' पुनर्भव ' ऐसा, सोही दिव्यत इति ' देव ' है. सर्व प्राणियोंके हृदयकमलोंमें जीवरूपसें व्यवस्थित है ऐसें ज्ञानमात्रसें, देहके पात होनेसें अनंतर मुक्ति है, जीवको नित्य मुक्तिरूप होनेसें, तिससें करचरणादि साधनद्वारा जो जो कर्म किया है, सो सत्य है, तिसको तिसके आधीन होनेसें. इसवास्ते जीव शुद्ध है, और देह मलपिंड है, स्नानादिकरके तिसकी शुद्धिका अभाव होनेसें वृथा प्रयोजन है, इसवास्ते स्नानादि कर्म करने योग्य नही हैं. ऐसें प्राप्त हुआ सिद्ध हुआ. । इति जैनमतपूर्वपक्षः ॥

श्रीपरमगुरु कहते हैं, भो जैन ! तूने अति मूढने क्या कहा ? जीवकी जो देहकी निवृत्ति सोही मुक्ति है? और निःप्रयोजन होनेसें स्नानादिकर्म करना योग्य नही, यह तेरा कथन अयुक्त है. क्योंकि, जीवके तीन तरेंके देह हैं. स्थूल १, सूक्ष्म २, कारण ३, भेदसें. और स्थूलका लक्षण, पंचीकृतपंचमहाभूतस्वरूप है, सो, चोवीस (२४) तत्वात्मक है. । १ । सूक्ष्मका सतारें (१७) तत्वात्मक लक्षण है, एकादश (११) इंद्रिय, पंचमहाभूत ५, और बुद्धि १, एवं सप्तदश (१७). । २ । और कारण अज्ञानमात्र है. । ३ । और स्थूलका सूक्ष्ममें, सूक्ष्मका कारणसें, कारणका सगुणमें, सगुणका निर्गुणपरमात्मामें, तिस तिस अधिपतिविशिष्ट देहोंका ऐसें लय हुए, सत्चिदानंदलक्षणलाक्षित परमात्माही, जीव होता है. और जीव है, सोही, परमात्मा है. तैसें भेदभ्रमकी निवृत्ति हुए, मुक्ति है, ऐसें निरवद्य है.

पूर्वपक्षः—प्रत्यक्ष देखे शरीरसें शरीरांतर कल्पना निरर्थक है, तिसके होनेमें प्रमाणका अभाव होनेसें. यदि है तो, जीवका तीनो शरीरोंमें संचार कथन करना चाहिये, मनःकल्पित स्वप्नमें मैंने गंगा देखी है, हिमवान् देखा है, ऐसा ज्ञान तो है. क्योंकि, देहसें आत्माके निर्गमनको युक्त होनेसें, कारण शरीरत्वके हुये मनके कल्पित जीवका भी निर्गम

नही कहना चाहिये, जीवके निर्गमके हुये फिर प्राप्तिके अभावसें स्वप्नांतरमेंही मरण प्रसक्ति है, चौवीस तत्त्वोंमेंही लिंगशरीका अंतर्भाव होनेसें उसकी कल्पना व्यर्थ है. भूतजाति इंद्रियोंको तद्रूप होनेसें. इसवास्ते इस क्लिष्ट कल्पनाके करनेसें कोइ प्रयोजन नही है, तिसवास्ते एकही देह भिन्न २ जीवोंके हे, तिसके पातानंतर जीवकी मुक्ति है.

उत्तरः—तब शंकरस्वामीने कहा. हे जैन! तूं मूढतर है, तूने तत्त्व नही सूना है, पंचीकृतभूतोंकरके पच्चीस (२५) संख्या हुइ है, तिसकरके चौवीस (२४) तत्त्व हुए हैं, पंचविंशति (२५) संख्याको ज्ञानरूप होनेसें, चौवीसी (२४) करकेही देह सिद्धि होवेगी, ऐसें नही है. अपंचीकृतपंचभूतके अभावसें, इस कारणसें, पंचीकृत और अपंचीकृत भूतोंकरके देहकी सिद्धि कहनी चाहिये, इसवास्ते स्थूल अपेक्षाकरके लिंगशरीर अंगीकार किया है. स्थूलशरीरके पातानंतर, जीव, सूक्ष्मशरीर आसक्त हुआ, परलोक गमनारंभ होता है, और अरूढ पुरुषके लिंगशरीरके नाश हुए, सर्व मनमेंही अध्यस्त होवे है. और सो शुद्ध मन तो जाग्रदादि अवस्था स्वामीयोंसें विश्व तैजस प्राज्ञोंसें भी ऊपरि विराजमान, अंगुष्ठमात्र सर्व जगत् प्रभु मनोन्माख्यको प्राप्त होता है, सोही कारण शरीरका लय है, ऐसा प्रसिद्ध है. ऐसें तीनो शरीरोंके नष्ट हुए, सगुण, निर्गुण, उभयात्मक, मनोन्मनपरमात्मामें लीन होता है; सोही मोक्ष है. ऐसें सर्व अतींद्रिय ज्ञानवानोंने कहा है. ऐसा अत्यंत दुःसाध्य मोक्षकी प्राप्ति देहपातके अनंतर नही संभव होती है, ऐसा सिद्धांत है; ऐसा शंकरस्वामीने कहा हुआ, जैन, शिष्योंके साथ स्ववेषभाषासें रहित होया हुआ शंकरस्वामीका दिनप्रति चावलादि वस्तु आकर्षणशील वणिग्जन (मोदी) होता भया. ॥ इत्यनंतानंदगिरिकृतौ जैनमत निवर्हणं नाम सप्तविंशं प्रकरणम् ॥

और जो माधवने द्वादश (१२) श्लोकोंमें जैनमतके सप्ततत्त्व, और सप्तभंगीका खंडन, अपने रचे विजयमें लिखा है, सो व्यासकृत सूत्रकी शंकररचित भाष्यके अनुसारे लिखा है, तिसका उत्तर आगे चलके स-

स्थानमें लिखेंगे, वहांसें जानलेना. तदनंतर नैमिश, दरद, भरत, सूरसेन, कुरु, पंचालादि देशोंको जीतता हुआ, गुरु भट्ट उदयनादिसें अजीत, ऐसे खंडनकार श्री हर्षको शंकरस्वामीने जीता. पीछे कामरूप देशविशेषोंमें जाके शंकरस्वामी शाक्तभाष्यके कर्त्ता, अभिनवगुप्तको जीतते हुये. तब अभिनवगुप्तने शंकरको कार्मण करनेका विचार किया तब शिष्यों-सहित शंकरस्वामीके साथ शिष्यकीतरें वर्त्तने लगा, और शंकरके बध करनेका उद्यम करने लगा, सो अभिनवगुप्त, शंकरस्वामीको अभिचारिक कर्म करता हुआ. कैसा अभिचारिक कर्म? जिसकी वैद्य भी चिकित्सा न कर सके, ऐसा. तिससें भगंदरनामा रोग उत्पन्न हुआ, तिस रोगसें झरते हुए लोहीके कीचडसें शंकरकी धोती भीज गइ. अजुगुप्सपरिशोधनादिरूप सेवा, तोटकाचार्यनामा शंकरस्वामीका शिष्य करता हुआ.* शंकरस्वामीको रोगकी उपेक्षा करते देखके शिष्योंने बहुत

---

* शकरस्वामीका मृत्यु भी इसी रोगसे हुआ है, तथापि सन् १८८४ के सत्यार्थप्रकाशके २८७ पृष्ठोपरि स्वामिदयानदसरस्वतिजीने लिखा है. “ जब वेदमतका स्थापन हो चुका और विद्या प्रचार करनेका विचार करतेही थे इतनेमें दो जैन ऊपरसे कथनमात्रवेदमत और भीतरसे कट्टरजैन अर्थात् कपट-मुनि थे, शकराचार्य उनपर अति प्रसन्न थे, उन दोनोने अवसर पाकर शकराचार्यको ऐसी विषयुक्त वस्तु खिलाई कि उनकी क्षुधा मद होगई, पश्चात् शरीरमें फोडे, फुन्सी होकर छ महीनेके भीतर शरीर छूट गया.” इस लेखसे सिद्ध होता है कि, स्वामिजीने स्वमतकी प्रसिद्धिकेवास्ते असत्य २ लेख लिखके और निंदा करके भोले लोकोको फसानेकेवास्ते जाल खडा किया है तथा दयानंदसरस्वतिको जैनमतका ज्ञातपणा भी नही था, यदि होता तो, पूर्वोक्त पुस्तकमेही ४४७ पत्रोपरि ऐसें क्यो लिखने? कि “ दिगबरोका श्वेताबरोके-साथ इतनाही भेद है कि दिगबरलोग स्त्रीका संसर्ग नहीं करते और श्वेताबर करते है. ” अफसोस स्वामिजीके लिखनेपर कि जिसको इतना भी ज्ञात नही! जब जैनमतका यथार्थ ज्ञातपणाही नही था तो, उसका करा खडन किसको प्रमाण होगा? किसीको भी नही. जगत्मे कहलावत भी है ‘ आहारसदृशोद्गार. ’ जैसा आहार भोजन होवे वैसाही उद्गार (डकार) आता है. सो स्वामिजीके चित्तमे तो, एक स्त्रीको कइ पति करने ऐसा निश्चय वसा था, तो फिर, ब्रह्मचर्यके तरफ ख्याल कहासें होवे? अथवा स्वामिजीने जानबूझकेही जैनीयोकी निंदा करनेकेवास्ते ऐसा गपोडा ठेक दिया होगा! क्योंकि, स्वामिजीके लेखसेंही सिद्ध होता है कि, झूठ लिखके किसीका मत खडन होवे तो, अच्छा है. देखो सत्यार्थप्रकाश पत्र २८७ पक्ति २९. “ अब इसमें विचारना चाहिये कि जो जीवब्रह्मकी एकता जगत् मिथ्या शकराचार्यका निजमत था तो वह अच्छामत नहीं और जो जैनियोंके खडनके लिये उस मतका स्वीकार किया हो तो कुछ अच्छा है. ” वाहजी वाह! क्या सुदर श्रद्धान है! यह कपट नही तो अन्य क्या है? यह तो ऐसे हुआ कि, दूसरेको अपशकुन करनेकेवास्ते अपना नाक कटवाना!!!

समझाया कि, तुम रोगकी चिकित्सा करो. तव शंकरस्वामीने कहा कि, रोग, जन्मांतरके पापोंसें होता है, सो भोगनेसेंही नाश होता है, इसवास्ते भोगनेसेंही नाश करने योग्य है. जेकर न भोगा जावे तो, जन्मांतरमें भोगना पडता है, यह शास्त्रका कहना है. शिष्योंके अतिआग्रहसें शंकरस्वामीने चिकित्सा करानी मान्य की, तव शिष्योंने हजारों वैद्योंसें चिकित्सा करवाइ, परंतु भगंदर तो वढ गया. तव सर्व वैद्य, अपने २ घरोंको चले गए. तव शंकरस्वामीने महादेवका स्मरण किया, तव अश्विनीकुमार वैद्यको ब्राह्मणके वेषमें महादेवने भेजे, अश्विनीकुमार भी हाथमें पुस्तक लेके शंकरस्वामीके पास आके वैठ गये, और कहने लगे कि, भो यतिवर! यह तेरा रोग, दूर नही हो सकता है. क्योंकि, अभिचारकरके यह उत्पन्न हुआ है, ऐसा कहके वे निजस्थानमें जाते रहे. तव शंकरस्वामीके शिष्य पद्मपादने क्रोधमें आके ऐसा मंत्र जपा, जिससें अभिनवगुप्त मर गया. शंकरस्वामी पीछे काश्मीरमें गये, वहां सरस्वतिका मंदिर चतुर्द्वारवाला, जिसके मध्यमें सर्वज्ञपीठ नामा चौंतरा है, तिसपर जो चढे, सो सज्जनोंमें सर्वज्ञ होता है, और सोही उस मंदिरमें प्रवेश करनेमें समर्थ होता है, अन्य नही. शंकरस्वामी उस मंदिरके दक्षिण दरवाजेको खोलनेवास्ते वहां आये, और दक्षिणका दरवाजा खोला, अनेक वादीयोंके प्रश्नोंके उत्तर दीए, जव अभ्यंतर (अंदर) जानेको उत्सुक हुए, तव सरस्वतिने कहा कि, केवल इस पीठिका ऊपर चढनेवालाही सर्वज्ञ नही होता है, परंतु चढनेवालेमें शुद्धता भी होनी चाहिये. सो शुद्धता तुमारेमें है, वा नही? क्योंकि, यतिधर्ममें निष्ठ ऐसे तुमने सम्यक्प्रकारसें स्त्री भोगी है. और कामकलारहस्यप्रवीणताके तुम पात्र हुए हो. इसवास्ते ऐसे पदपर चढनेकी तुमारेमें किसी प्रकारसें भी, योग्यता नही है.

यह सुनकर शंकरस्वामीने कहा, हे अंबे! जो तूने कहा कि, अंगना-(स्त्री) भोगी, सो इसका उत्तर यह है कि, जिस देहांतरमें कर्म किया है, तिससें यह देह अन्य है; इसवास्ते इस देहको पाप नही लगता है. यह

सुनकर सरस्वतिने शंकरस्वामीका पूजन करा. शंकरस्वामीने भी शारदापीठमें कितनेक काल वास किया, वहांसें केदार गये, और मृत्युको प्राप्त हुए. ॥ इति संक्षेपतः शंकरविजयानुसारिशंकरस्वामिस्वरूपकथनम् ॥

अब हमको जो कछुक कहना है, सो लिखते हैं. जो ब्राह्मणादि लोक कहते हैं कि, शंकरस्वामीने जैन बौद्धोंके बेडे भरके डुबवा दीए थे, सो कहना मिथ्या है. क्योंकि, जब भगंदर हुआ पीछे शारदामठमें वास किया है, और मरनेके थोडेसें दिन बाकी (शेष) थे, तब तो, 'जैन' 'बौद्ध' 'पतंजलि' आदि वादी, विद्यमान लिखे हैं. और शंकरविजयोंमें भी, पूर्वोक्त लेख नही है. इसवास्ते पूर्वोक्त ब्राह्मणादिकोंका कहना, महामिथ्या है. निःकेवल मिथ्यामतको मिथ्या बोलके सच्चा करा चाहते हैं, स्वामी दयानंदसरस्वतिवत्.

और पतिकेसंगमविना, आनंदगिरिने शंकरस्वामीकी माताजीके गर्भमें शंकरस्वामीकी उत्पत्ति लिखी है, सो प्रमाण बाधित है. क्योंकि पुरुषवीर्यको स्त्रीकी योनिमें प्रवेश करेविना, कदापि गर्भकी उत्पत्ति नही होती है; यह कहना प्रमाणसिद्ध है. इस कालमें पाश्चात्य विद्वानोंने सायन्स ('SCIENCE) विद्याके बलसें अनेक वस्तुयोंके संयोगसें अनेक कार्यकी उत्पत्ति कर दिखलाइ है, परंतु किसी भी पदार्थोंके मिलापसें मनवाले मनुष्यकी उत्पत्ति, स्त्री पुरुषके संयोग, वा पुरुषवीर्यको स्त्रीकी योनिमें प्रवेश करेविना, नही कर सकते हैं. ऐसा तो किसी कालमें भी नही हो सकता है कि, स्त्री पुरुषके संगमविना, वा पुरुषवीर्य स्त्रीकी योनिमें प्रवेश करेविना, स्त्रीको गर्भकी उत्पत्ति होवे. परंतु मतानुरागी पुरुष, अपने मताध्यक्षपुरुषको, विना पिताके वीर्यसें उत्पन्न होना लिखते हैं, सो, मूढोंको आश्चर्य करनेकेवास्ते, वा व्यभिचार छिपानेकेवास्ते, और अपने मताध्यक्षकी अन्य मनुष्योंसें उत्तमता जनानेकेवास्ते, और ईश्वरकी अत्यद्भुत शक्ति प्रसिद्ध करनेके वास्ते, लिखते हैं. परंतु यह नही जानते थे कि, ऐसें अप्रमाणिक लेखको प्रेक्षावान् कदापि नही मानेंगे, और ऐसें लेखसें उनकी मातुश्रीको

व्यभिचारका कलंक उत्पन्न होवेगा. क्योंकि, जब ईश्वरीय शक्तिसें उनका उत्पन्न होना मानते हैं तो, क्या ईश्वर स्त्रीके गर्भविना अपने आपको मनुष्यरूप नही बना सकता था ? इसवास्ते प्रत्यक्ष अनुमान आसागमसें विरुद्ध ऐसा लेख, प्रेक्षावान् तो कोई भी नही लिख सकता है. यद्यपि परमाप्तागममें ऐसा लेख है कि, पांच कारणोंसें, स्त्री, पुरुषके संगमविना भी, गर्भ धारण कर सकती है. वे कारण यह हैं. ॥

" ॥ पंचहिं ठाणेहिं इत्थी पुरिसेण सद्धिं असंवसमाणीवि गप्भं धरेज्जा तंजहा दुव्वियडा दुन्निसन्ना सुक्कपोग्गले अहिट्ठेज्जा ॥ १ ॥ सुक्कपोग्गलसंसिट्ठे से वत्थे अंतो जोणीए अणुपविसेज्जा ॥ २ ॥ सयं वा से सुक्कपोग्गले अणुपविसेज्जा ॥ ३ ॥ परो वा से सुक्कपोग्गले अणुपविसेज्जा ॥ ४ ॥ सीओदगवियडेण वा से आयममाणीए सुक्कपोग्गले अणुपविसेज्जा ॥ ५ ॥

भावार्थः—वस्त्ररहित विरूपताकरके गुह्यप्रदेशकरके कथंचित् पुरुषनिसृष्ट शुक्र (वीर्य) पुद्गलवाले भूमिपट्टादिक आसनको आक्रमण करके बैठी हुइ, तिस आसनपर स्थित हुए पुरुषनिसृष्ट शुक्रपुद्गलोंको कथंचित् योनिसें आकर्षण करके ग्रहण करे. ॥१॥ तथा शुक्रपुद्गलसें लिबडा (भीजा) हुआ वस्त्र, उपलक्षणसें तथाविध और भी केशादि, स्त्रिकी योनिमें प्रवेश करे, अथवा अनजानपने तथाविध वस्त्रको पहिना हुआ योनिमें प्रवेश करे, और शुक्रपुद्गलको ग्रहण करे. ॥ २ ॥ तथा आपही पुत्रार्थिनी होनेसें और शीतलरक्षकत्व होनेसें शुक्रपुद्गलोंको योनिमें प्रवेश करवावे. ॥ ३ ॥ तथा पर, सासुआदि पुत्रकेवास्ते वहुके गुह्यप्रदेशमें वीर्यपुद्गलोंको प्रवेश करवावे. ॥ ४ ॥ पल्वल द्रहप्रमुखगत जो शीतल जल, तिसमें स्नान करती हुइ स्त्रीकी योनिमें कथंचित् पूर्वपतित उदकमध्यवर्त्ती शुक्रपुद्गल प्रवेश करे. ॥ ५ ॥ इन पांच कारणोंसें स्त्री पुरुषसंगमविना भी गर्भधारण कर सकती है.

इन पूर्वोक्त पांचों कारणोमें भी, स्त्रीकी योनिमें पुरुषवीर्यके प्रवेश होनेसेंही, गर्भोत्पत्ति कही है. इसीतरें अन्य किसी स्त्रीकी योनिमें पूर्वोक्त पांच कारणोंसें वीर्य प्रवेश करजावे, और तिससें उसके गर्भोत्पन्न हो जावे तो, विरुद्ध नही. परंतु इन पूर्वोक्त पांचो कारणोंविना, और अपने पतिकेसंगमविना, जेकर गर्भोत्पत्ति हो जावे तो, अवश्यमेव तिस स्त्रीने व्यभिचारसें गर्भ धारण किया, ऐसा सिद्ध होवेगा. इसवास्ते पुरुषका वीर्य, जबतक योनिद्वारा स्त्रीके गर्भाशयमें नही जावेगा, तबतक कदापि गर्भोत्पत्ति नही होवेगी. इसवास्ते आनंदगिरिका लेख, युक्तिप्रमाणसें बाधित है.

और जो शंकरस्वामीको महादेवका अवतार, और सर्वज्ञ लिखा है, सो भी मिथ्या है. क्योंकि, जब शंकरस्वामी मंडनमिश्रकेसाथ वाद करनेको गए हैं, तब मंडनमिश्रकी दासीको मंडनमिश्रका घर पूछा ! क्या सर्वज्ञ ऐसेको कहते हैं कि, जिसको मंडनमिश्रके घरकी भी खबर नही थी कि, कहां है ? मंडनकी भार्याके पूछे प्रश्नोंका उत्तर नही आया, क्या सर्वज्ञसें भी कोई बात छीपी है ? मंडनमिश्रके घरमें व्यासजी, और जैमनीने श्राद्धका भोजन करा, क्या वेदांतीयोंके मतका यही पर्यवसान फल है, कि मरे पीछे, वा वेदांतीयोंकी मुक्ति हुए पीछे, वा ब्रह्म हुए पीछे भी, लोकोंके घरमें श्राद्ध जीमते फिरते हैं ? क्या सर्व वेदांती भी, इसीतरें लोकोंके घरमें श्राद्ध जीमते फिरेंगे ? जब व्यासजीही भूखे, और भोजन जीमते फिरते हैं तो, यह जगत्ही सबके काममें आता है, फिर जगत्को मिथ्या कहते हैं तो, क्या मिथ्या कहनेवालेही मिथ्यावादी नही है ? बलहारि है वेदांतियों ! तुमारे सिद्धांतका कैसा रहस्य है कि, मरे पीछे भी वेदांती, लोकोंके घरमें रोटीयां खाते फिरते हैं !!!

पूर्वपक्षः—मंडनकी भार्याके प्रश्नोंका उत्तर शंकरस्वामीने यह विचारके नही दिया कि, मेरे उत्तर देनेसें मेरे यतिधर्मका क्षय हो जावेगा.

उत्तरपक्षः—जब राजाके मृतक शरीरमें प्रवेश करके मदिरापान किया, सैंकडों राणीयोंसें वात्स्यायनोक्त चौरासी (८४) आसनोंसें मैथुन सेवन

किया, और एकमाससें अधिक कालपर्यंत उन राणीयोंके मुखके थूक-लालाको अमृतसमान मनोहर मानके चूसा-चाटा, और कामशास्त्र सीखा, तिस थूक चाटनेमें भी ब्रह्मानंदही भोगा ! क्या ऐसा काम करनेसें तो यतिधर्म क्षय नही हुआ, और कामप्रश्नोंके उत्तर देनेसें यतिधर्म क्षय होता था ? हा ! इसके उपरांत अन्य बडा आश्चर्य कौनसा है ? और शंकर तो 'ऊर्द्धरेतः' था, राणीयोंकेसाथ भोग करनेसें 'अधोरेतः' किसतरें हो गया ?

पूर्वपक्षः—शंकरस्वामीके शरीरमें यह व्यवस्था थी, परंतु देहांतरमें यह नही. इसीवास्ते तो शंकरस्वामीने काश्मीरवासिनी सरस्वतीके प्रश्नोत्तरमें कहा है कि, देहांतरका किया पाप, इस देहको नही लगता है.

उत्तरपक्षः—हमारी समझमूजब तो, तुमारी मानी सरस्वती, तुमारे कहनेसेंही अज्ञानिनी सिद्ध होती है. क्योंकि, पहिले तो उसने शंकरस्वामीको परस्त्रीयोंसें भोग करनेवाले जानके निर्दोष पुरुष नही जाने, और फिर शंकरस्वामीका उत्तर सुनके चुपकी होके शंकरस्वामीकी पूजा करने लग गई !! अब हम यहां यह प्रश्न पूछते हैं कि, पाप करने और पापके फल भोगनेवाला वोही देह है, वा अन्यदेह ? जेकर वोही देह है, तब तो जन्मांतरमें पापका फल भोगनेवाला देह नही है, तो फिर शंकरस्वामीकी देहने जन्मांतरके देहके किये पापसें भगंदरका भारी दुःख क्योंकर भोगा ? और जब देहही पापका करने और भोगनेवाला है, तब तो, जीव, सदा मुक्त होना चाहिये, पुण्यपापसें रहित होनेसें, और देहके साथ संबंध न होनेसें. जेकर कहोगे, जीवही पुण्यपापका कर्त्ता, और भोक्ता है, तब तो, शंकरस्वामीही परस्त्रीगमनरूप पापके कर्त्ता और भोक्ता, सिद्ध होवेंगे; और कामशास्त्र पढनेसें असर्वज्ञ सिद्ध होवेंगे. तथा देहांतरमें प्रवेश करनेसें जैसें उनकी ब्रह्मविद्या जाती रही, तैसेंही सर्व वेदांतीयोके मरे पीछे, ब्रह्मविद्या नष्ट हो जावेगी. क्योंकि, वेदांतीयोंके कहने मूजब ब्रह्मविद्या, देहके साथही संबंधवाली है; नही तो, देह छोडनेसें शंकरस्वामीकी ब्रह्मविद्या, नष्ट क्यों होती? जेकर शंकरस्वामीकी

ब्रह्मविद्या नष्ट न होती तो, उनके शिष्य उनको 'तत्त्वमसि' का उपदेश क्यों करते? और शंकरस्वामी यदि सर्वज्ञ होते तो, अपनी करी मासकी अवधिको क्यों भूल जाते? और देहांतरमें कामशास्त्र सीखनेको क्यों जाते? क्या सर्वज्ञसें कोई शास्त्र छीपा है? और उत्तर देनेसें मेरा यतिधर्म क्षय हो जायगा ऐसा विचार क्यों करते? क्योंकि, फिर भी तो उसीही शरीरमें प्रवेश करके मंडनमिश्रकी भार्याको उत्तर दिये; क्या उस वखत उत्तर देनेसें यतिधर्म क्षय न हुआ? और शंकरस्वामीको साक्षात् महादेव माने हैं तो, क्या पार्वतीजीसें भोग करनेसें तृप्त न हुए? जिससें मृतक शरीरमें प्रवेश करके परस्त्रीयोंसें भोग करके उनके ओष्ठपुटोंकों चूसके ब्रह्मानंदका स्वाद लिया!!! और महादेवको तो, तुमने सर्वव्यापी माना है तो, राजाके मृतक शरीरमें अन्य कौन प्रवेश कर गया? और कौन निकल आया? क्योंकि, शंकर तो, आगेही सर्व जगे व्यापक है. और शंकरस्वामीको जो भगंदरका रोग हुआ, सो पूर्व जन्मांतरके पापोंके फलसें लिखा है तो, क्या पूर्वजन्मांतरोंमें शंकरस्वामीने पाप करे मानते हो? तथा तुम तो, पुण्यपापके फलका प्रदाता, ईश्वरको मानते हो तो, फिर क्या शंकरने अपने किये पापके फल भोगनेवास्ते, आपही अपनी गुदामें भगंदररूप फोडा करलिया? और अभिनवगुप्तने, जो अभिचारक कर्म करके शंकरको भगंदर फोडा किया तो, क्या अभिनवगुप्त शंकरसें अधिक सामर्थ्यवान् था? वा, शंकर अपने बदलेके मंत्रसें उसको दूर नही कर सकता था? क्योंकि, शंकरको तो, तुम सर्वशक्तिमान् मानते हो.

और शंकरस्वामीके शिष्य पद्मपादने नरसिंहरूप करके, और मंत्रजाप करके, भैरव, कपाली, और अभिनवगुप्तको मार डाला. क्या पद्मपाद अज्ञानी, रागी, द्वेषी था, जो ऐसा काम किया? क्या ब्रह्मवित् नही था? यदि था तो, शंकरकीतरें समभाव क्यों नही किया? इसवास्ते यही सिद्ध होता है कि, शंकर, और शंकरके शिष्योंमेंसें कोइ भी, रागद्वेष अज्ञान मोहसें रहित, और सर्वज्ञ, नही था. और जो जो कल्पना करके,

आनंदगिरि, और माधवने अपने २ रचे विजयोंमें शंकरकी यावत् अधिक वडाइ लिखी है, सो अपने गुरु, और अपने मतके आचार्यके अनुरागसें लिखी है. जैसें दयानंदसरस्वतिके शिष्योंने इस कालमें "दयानंददिग्विजयार्क" रचा है. परंतु जैसी दयानंदसरस्वतिने मतोंकी विजय करीहै, और जैसी उसके मतकी धूल अन्यमतोंवाले लोक उडा रहे हैं, सो हम प्रत्यक्ष देख रहे हैं. संवत १९४७ में सरकारी गिनती मुजव चालीस हजार (४००००) के लगभग दयानंदसरस्वतिके मतके माननेवाले आर्यसमाजी गिने गए हैं, उनमें भी प्रायः वडा भाग पंजावीयोंका है. ऐसीही शंकरविजय होवेगी. क्योंकि, थोडेसेंही वर्ष हुए हैं, पंजावदेशमें उदासी और निर्मले साधुयोंने, वृत्तिप्रभाकर, विचारसागर, निश्चलदासकृत भाषावेदांतके पुस्तक, और उपनिषदादिकोंके अनुसारे, वेदांतमत, प्रचलित किया है. और वेदांतमत माननेवाले जितने पंजावी हैं, इतने अन्य लोक नही मालुम होते हैं, और दक्षिणमें प्रायः रामानुजके मतवालोंने, मध्वर्क, निंवार्क आदि वैष्णवमतवालोंने, और तुकारामादि भक्तिमार्गवालोंने, शंकरस्वामीके चलाये शुद्धाद्वैतमतकी वहुत हानि करी. और गुजरात, कच्छ, मालवा, मेदपाट, हडौती, ढुंढाड (जयपुर), अजमेर, मारवाड, दिल्ली मंडलादि देशोंमें प्रायः शंकरस्वामीका मत, प्रचलित नही हुआ मालुम होता है, क्योंकि, पूर्वोक्त देशोंमें प्रायः जैनमतकाही प्रवल वहुत था. और शंकरस्वामीके मतके असली रहस्य, अंतमें नास्तिकोंके समान महा अज्ञान, और मिथ्यात्व मोहसें उन्मत्तता, और प्रायः सत्कर्मोंसें भ्रष्टता, आदि कुचलन देखनेमें आते हैं.

और जो शंकरस्वामीका शिष्य आनंदगिरि, जिसने शंकरविजय पुस्तक रचा है, उसको तो, जैनमतकी किंचित् भी, खबर नही थी. क्योंकि उसने लिखा है कि, कौपीन (लंगोटी) मात्रधारी, मस्तकमें विंदु-तिलकका धरनेवाला, मलदिग्ध अंग, ऐसा जैनमती, शंकरस्वामीके पास शिष्योंसहित आया. यह लेख तो, आनंदगिरिने अवश्यमेव किसी भंगा-

दिके नशे चढेमें लिखा मालुम होता है. क्योंकि, ऐसे वेषका धारक तो श्वेतांबर, दिगंबर, दोनों मतोंमें नही लिखा है. श्वेतांबरमतमें तो, रजोहरण, मुखवस्त्रिका, चौलपट्टक, आदि चतुर्दश (१४) औघिक उपकरण, और कितनेही औपग्राहिक उपकरणधारी मुनि लिखा है. और दिगंबरमतमें पीछी कमंडलू आदिका धारी मुनि लिखा है. परंतु मस्तकमें बिंदु–तिलक करना, दोनों जगे, मुनिको निषेध है. इसवास्ते जैनमतका साधु तो, शंकरके पास गया, कोइ भी सिद्ध नही होता है. और श्रावक भी, नही. क्योंकि, जैन–श्रावक तो, नित्य त्रिकाल जिनेंद्रकी स्नानपूर्वक पूजा करनेवाला, स्फटिकरत्नसमान, अभ्यंतर बाहिरसें निर्मल लिखा है. उसके शरीरमें तो, मलका होना, कौपीनमात्र धारन करना, संभवही नही है. और शिष्योंका होना असंभव है. और दिगंबरमतका क्षुल्लक भी, नही था. क्योंकि, उसका भी वेष उक्त प्रकारका नही है. और सांप्रतिकालमें (आजकल) जे स्नानरहित, मलदिग्धांग, परमेश्वरकी पूजारहित, ढुंढकमतके माननेवाले प्रसिद्ध हैं, वे तो शंकरस्वामीके समयमें थेही नही, तो फिर, आनंदगिरिका लिखना भंगादिके नशेके वशसें नही तो, अन्य क्या है ?

और जो आनंदगिरिने, 'जिनदेव' शब्दकी व्युत्पत्ति आदि पूर्वपक्ष लिखा है, सो सर्व, स्वकपोलकल्पित महामिथ्या लिखा है. क्योंकि, वैसा पक्ष जैनीयोंको सम्मतही नही है. और शंकरस्वामीने उसका खंडन किया लिखा है, सो ऐसा है, जैसा वंध्यासुतका शृंगार वर्णन करना. इस हेतुसें शंकरविजयोंमें जो कथन जैन बौद्धमतकी बाबत लिखा है, सो सर्व, स्वकपोलकल्पित होनेसें मिथ्या है.

वाचकवर्ग ! ऐसें न समझें कि, यह ग्रंथ लिखनेवालेने द्वेष बुद्धिसें शंकरस्वामीविषयक, और दोनों शंकरविजयोंविषयक लेख, लिखे हैं. परंतु जब तुम सर्व मतोंका पक्षपात छोडके मध्यस्थ होके विचारोगे, तब तुमको ग्रंथकारका लेख सत्य २ प्रतीत होजावेगा.

और कुमारिलभट्ट, और शंकरस्वामीकी बाबत, हिंदुस्थानका संक्षिप्त इतिहास लिखनेवाले डॉक्टर हंटर, सि, आई, इ; एल एल, डी,

(DR. SIR WILLIAM HUNTER, C. I E . LL. D.) ने लिखा है; उसका तरजूमा गुजराती भाषामें सरकारकी तरफसें हुआ है. उसके सन १८८६ के छपे पुस्तकके पृष्ठ १०९ में लिखा है कि, ईसवी सन ८०० में विहारका वासी कुमारिल ब्राह्मण हुआ, और उक्त सन ९०० में, शंकरस्वामी हुआ लिखा है. और पृष्ठ १०३ में लिखा है कि, ईसवी सनके ८०० में सैकेमें कुमारिलने उपदेश करनेका प्रारंभ किया, वेदानुसार पुराना मत यह है कि, सगुणस्त्रष्टा, और ईश्वर है. ऐसे मतका उसने बोध किया. बौद्धधर्ममें सगुण ईश्वर नही था; पीछेकी एक कथामें ऐसा लिखा है कि, कुमारिलने बौद्धमतके विरुद्ध उपदेश किया, इतनाही नही, बलकि; उनके ऊपर बहुत जुलम करनेके वास्ते किसी दक्षिण हिंदके राजाके मनमें ऐसा निश्चय करवाया कि, उस राजाने अपने सेवकोंको आज्ञा दी कि, बौद्धमत माननेवाले वृद्ध, और बालकपर्यंत, सेतुबंधरामेश्वरसें लेके हिमालयपर्यंत, जहां होवे, तहां सर्वको मार दो, और जो न मारे, उसको भी मार दो. तथापि, हिमालयसें लेके कन्याकुमारीतक, जुलम करनेकी सत्ता जिसके हाथमें होवे, सो उक्त काम कर सके; परंतु ऐसा भारी राजा, उसकालमें हिंदमें नही था. हां, दक्षिणहिंदके बहुतसें राजाओंमेंसें किसीएक राजाने अपने राज्यमें ऐसा जुलम गुजारा होवे तो, होवे. परंतु यह तो, एक छोटीसी बातको बडी करके दिखलाइ है.

तथा प्रो० मणिलाल नभुभाई द्विवेदी, अपने बनाये सिद्धांतसारमें ऐसें लिखते हैं—सातमे आठमे सैकेमें शंकराचार्य कुमारिल विगेरेने, इस (बौद्ध) धर्मके सामने बहुत प्रयत्न किया है. कदापि किसी स्थलमें लडाई झगडा भी हुआ होगा, तो भी बौद्धधर्मको ब्राह्मणोंने, राजाओंके पास निकलवा दिये और बौद्धधर्मके अनुयायी (माननेवालों) को कतल करवा दिये यह बात तो, केवल पुराणकल्पनाही लगती है. [स्वर्गवासी पंडित भगवानलालजीका भी यही मत था.] तो बौद्धधर्म हिंदुस्थानमेंसें कैसें लोप हो गया ? तिसवास्ते उस धर्मका बंधारणही जवाबदार है. प्रथमसेंही इस धर्मकी नीति बहुत सखत थी, इसमें साधु होके रहना बहुत मुश्किल था;

और सर्वोपरि यह कसर (खामी) थी कि, यह धर्म, केवल अभावरूप था. तिससें सामान्य लोकोंको एकवार इसपर जो रुचि हुइ थी, तिसको कायम रखनेके साधन–अच्छे ग्रंथ–सामान्य लोकोंको, और विद्वान लोकोंको रुचे, ऐसें संग्रह इत्यादि–इस धर्ममें नही थे. इसवास्ते कालांतरमें लोकोंने वेदांतादि धर्मका सार, शंकरद्वारा स्पष्ट होनेसें, इसको (बौद्धधर्मको) छोड दीया; आपही इस धर्मका नाश हो गया.

तथा सन १८९५ अकटोबर तारिख १३ मीके छपे गुजराती पत्रमें "प्राचीन गुजरातका एक चित्र (२१)" इस विषयमें लिखा है कि, ब्राह्मणोऊपरांत अन्नसत्रके निर्वाहवास्ते, देवालयके निर्वाहवास्ते, टूटे फूटेके बनानेवास्ते, मठोंके निर्वाहवास्ते, इत्यादि भी दानपत्र मिलते हैं, उसमें वल्लभीके वखतमें बौद्धविहारको दान दीयेका भी प्रमाण मिलता है, ताम्रपत्रोंके दान बहुतकरके स्मार्त्तधर्मके प्रवर्त्तनवास्ते मालुम होते हैं, परंतु बौद्धधर्म चलता था, उसका ऊपर लिखा प्रमाण मिलता है. इसके सिवाय हीवेनथ्सेंगके पुस्तकोंसें भी भरुच, खेडा, वल्लभी, सुराष्ट्र, मालवादिकोंमें बौद्धधर्मका प्रचार देखनेमें आता है. प्राचीन समयमें उसका जो राजकीय, और दूसरा प्राबल्य था, सो देखनेमें नही आता है. और वो शनैः शनैः (धीमे धीमे) निर्बल होगया होना चाहिये. तो भी, धारवाड जिल्लेके डंबलगाममें एक शिलालेख, इ. स. १०९५ का है. उसमें बुद्धके विहारको, और आर्यतारादेवीके विहारको दान दीये हैं. जिससें देखनेमें आता है कि, कर्नाटकतरफ, बौद्धधर्म, यावत् इग्यार (११) मे सैकेतक चलता था, और उसको दानादिकोंसें आश्रय मिलता था. कन्हेरीकी गुफामें शक ७७५, और ७९९, के लेख हैं. येह राष्ट्रकूट राजा अमोघवर्षके खंडणी (मातहत) कोंकणके शिलारराजा कपर्दीके वखतके हैं. तिसमें भी, बौद्धगुफाको दान कियेका लेख मिलता है. अर्थात् पौराणिक, स्मार्त्तधर्म, और कापालिकमतका शैवधर्म, बहुत प्रबल था; तथापि, बौद्धमत, यावत् बारमे (१२) सैकेतक चालु–विद्यमान रहनेके प्रमाण मिलते हैं.

इन पूर्वोक्त लेखोंसें माधवरचित शंकरविजयका जो यह लेख है.।

आसेतुरातुसाद्रिश्च बौद्धानां वृद्धबालकं।
न हंति यः स हंतव्यो भृत्यानित्यवदन्नृपाः॥

भावार्थः—सेतुबंधरामेश्वरसें लेकर, हिमालयतक, बौद्धोंके वृद्धसें लेकर बालकपर्यंतको, जो न हणे, (न मारे) उसको मार देना; ऐसें अपने नोकरोंप्रति राजे लोक कथन करते हुए. सो मिथ्या सिद्ध होता है.

और माधवने जहां बौद्ध लिखा है, वहां भी, आनंदगिरीने जैन लिखा है. माधवकृत विजयके सर्ग ७ के पृष्ट ११–१२ में, और आनंदगिरिकृत विजयके पृष्ट २३६ में देखो. क्या जाने, आनंदगिरिको जैनीयोंने बहुत सताया होगा, इसवास्ते, बौद्धोंकी जगे भी, जैनमतीही लिख दिये!!! परंतु हमारी समझमूजब तो, आनंदगिरिको जैन और बौद्धमतके पृथक् २ जाननेकी भी, बुद्धि नही थी. और शंकरने, जैनमतोपरि कुमारिलवत्, जुलम गुजारा, ऐसा तो, दोनोंही विजयग्रंथोंमें नही लिखा है.

ऐसे पूर्वोक्त स्वरूपवाले शंकरस्वामीने, वेदांतमतके व्याससूत्रोपरि, भाष्य रचा है. उसमें व्यासजीके कथनानुसार, जैनमतका खंडन, लिखा है. सो खंडन खंडनपूर्वक, आगेके स्तंभमें लिखेंगे.। इत्यलम्।

इत्याचार्यश्रीमद्विजयानंदसूरिविरचिते तत्त्वनिर्णयप्रासादे
शंकरस्वामिस्वरूपवर्णनोनामपंचत्रिंशःस्तम्भः॥ ३५॥

॥ अथ षट्त्रिंशस्तम्भारम्भः॥

पंचत्रिंश (३५) स्तम्भमें शंकरस्वामीका स्वरूप कथन किया, अथ इस छत्तीस (३६) मे स्तम्भमें शंकरस्वामीने जैसें जैनमतकी सप्तभंगीका खंडन किया है सो, और उसके खंडनका खंडन लिखते हैं. तहां प्रथम जैनमतवाले जैसा सप्तभंगीका स्वरूप मानते हैं, तैसा भाषामें लिखते हैं, जिससें वाचकवर्गको मालुम हो जायगा कि, शंकरस्वामीने,

जो सप्तभंगीका खंडन लिखा है, सो, जैनमतानुसार है, वा अन्यथा है? और शंकरस्वामीको जैनमतकी सप्तभंगीका बोध, यथार्थ था, वा अयथार्थ था?

जैनमत माननेवालोंको प्रथम सप्तभंगीका स्वरूप जानना चाहिये. क्योंकि, सप्तभंगीही, जैनीयोंके प्रमाणकी भूमिकाको रचती है. दुर्दम जो परवादीयोंके वादरूप हाथी है, उनके पकडने अर्थात् पराजय करनेवास्ते, और अपने सिद्धांतके रहस्य जाननेवास्ते, श्रेष्ठ जे वादी है, वे सम्यक् प्रकारसें सप्तभंगीका अभ्यास करते हैं. ।

यदुक्तं ॥

या प्रश्नाद्विधिपर्युदासभिदया बाधच्युता सप्तधा ।
धर्मं धर्ममपेक्ष्य वाक्यरचना नैकात्मके वस्तुनि ॥
निर्दोषा निरदेशि देव भवता सा सप्तभंगी यया ।
जल्पन् जल्परणांगणे विजयते वादी विपक्षं क्षणात् ॥१॥

भावार्थः—प्रश्नवशसें विधि, और पर्युदास, भेदकरके अनेकात्मक वस्तुमें, एक एक धर्मकी अपेक्षा, सातप्रकारकी सर्वप्रमाणोंसें अबाधित, और निर्दोष, जो वचनकी रचना है, सो सप्तभंगी है. हे अर्हन्! देव! ईश्वर! ऐसी सप्तभंगी, तुमने कथन करी है, जिस सप्तभंगीकरके, वादरूपी ये संग्राममें, वादी, प्रतिवादीयोंको एकक्षणमें जीत लेते हैं. ॥ १ ॥ तथा यह जो शब्द है, सो यत् किंचित् सदंश, असदंश, भंगकरके अपने अर्थको प्रतिपादन करता हुआ, सप्तभंगहीको प्राप्त होता है. सर्वजगे यह ध्वनि विधिनिषेधकरके अपने अर्थको कहता हुआ, सप्तभंगीको प्राप्त होता है; यह तात्पर्यार्थ है. सो सप्तभंगी, कैसे स्वरूपवाली है? उसका लक्षण कहते हैं.

"॥ एकत्र वस्तुनि एकैकधर्मपर्यनुयोगवशात् अविरोधेन व्यस्तयोः समस्तयोश्च विधिनिषेधयोः कल्पनया स्यात्कारांकितः सप्तधा वाक्प्रयोगः सप्तभंगीति ॥"

अर्थः—जीव, अजीव आदि एक पदार्थकेविषे, एक एक धर्ममें प्रश्नके करनेसें, सकल प्रमाणोंसें अबाधित, भिन्न भिन्न विधि प्रतिषेध और अभिन्न विधि प्रतिषेधके विभागकरके, कहा हुआ, 'स्यात्' शब्दकरके लांछित, जो सातप्रकारके वचनका उपन्यास, सो सप्तभंगी जाननी. 'विधिःसदंशः' विधि जो है, सो सत्‌अंश है. 'प्रतिषेधो सदंशः' और प्रतिषेध, निषेध जो है, सो, असत् अंश है. पदार्थसमूहके सदंश असदंश धर्मादि अनेक प्रकारके विभाग करनेसें अनंतभंगीका प्रसंग होता है, जिसके दूर करनेकेवास्ते सूत्रकारने एकपद (एकत्र) का ग्रहण किया है. अनंतधर्मसंयुक्त जीव अजीवादि एक एक वस्तुमें भी विधि निषेधकरके, अनंतधर्मके परिप्रश्नकालमें अनंतभंगका संभव है; उसकी व्यावृत्तिकेवास्ते एक एक धर्ममें पर्यनुयोग ऐसे पदका ग्रहण करा है. इस कहनेसें अनंतधर्मसंयुक्त अनंत पदार्थोंके हुए भी, प्रतिपदार्थके प्रतिधर्मके परिप्रश्नकालमें एक एक धर्ममें एक एकही सप्तभंगी होती है, यह नियम कथन किया है. और अनंतधर्मकी विवक्षाकरके सप्तभंगीयोंका भी, नाना कल्पना करना हमको अभीष्टही है. यह बात सूत्रकारनेही कही है. ।

तथाहि ॥

"॥ विधिनिषेधप्रकारापेक्षया प्रतिपर्यायं वस्तुन्यनंतानामपि सप्तभंगीनां संभवात् प्रतिपर्यायं प्रतिपाद्यपर्यनुयोगानां सप्तानामेव संभवादिति ॥"

भावार्थः—विधिनिषेधप्रकारकी अपेक्षाकरके वस्तुके प्रतिपर्यायमें सातही भंगोंका संभव है, किंतु अनंतोंका नही. क्योंकि, एक एक पर्यायप्रति, शिष्यके सातही प्रश्न होनेसें. ऐसे हुए, अनंत पर्यायात्मक पूर्ण वस्तुमें, अनंत सप्तभंगीयोंका भी संभव होनेसें, अनंतसप्तभंगी हो सकती है, किंतु अनंतभंगी नही.

अथ सप्तभंगी स्वरूपसें दिखाते हैं. ।

तथाहि ॥

"॥ स्यादस्त्येव सर्वमिति सदंश कल्पनाविभजनेन प्रथमो भंगः ॥ १ ॥"

"॥ स्यान्नास्त्येव सर्वमिति पर्युदासकल्पना विभजनेन द्वितीयो भंगः ॥ २ ॥"

"॥ स्यादस्त्येव स्यान्नास्त्येवेति क्रमेण सदंशासदंशकल्पनाविभजनेन तृतीयो भंगः ॥ ३ ॥"

"॥ स्यादवक्तव्यमेवेति समसमये विधिनिषेधयोरनिर्वचनीयकल्पनाविभजनया चतुर्थो भंगः ॥ ४ ॥"

"॥ स्यादस्त्येव स्यादवक्तव्यमेवेति विधिप्राधान्येन युगपद्विधिनिषेधानिर्वचनीयख्यापनाकल्पनाविभजनया पंचमो भंगः ॥ ५ ॥"

"॥ स्यान्नास्त्येव स्यादवक्तमेवेति निषेधप्राधान्येन युगपन्निषेधविध्यनिर्वचनीयकल्पनाविभजनया षष्ठो भंगः ॥६॥"

"॥ स्यादस्त्येव स्यान्नास्त्येव स्यादवक्तव्यमेवेति क्रमात् सदंशासदंशप्राधान्यकल्पनया युगपद्विधिनिषेधानिर्वचनीयख्यापनाकल्पनाविभजया च सप्तमो भंगः ॥७॥"

अथ अर्थसें प्रथमभंग प्रगट करते हैंः—प्रथमभंग विधिकी प्रधानतामें है. 'स्यात्' ऐसा अनेकांतका द्योतक, अर्थात् अनेकांतका प्रकाशक, अव्यय है. स्यात् इस कहनेकरके कथंचित् किसीप्रकारसें अपने द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावरूप चतुष्टयकरके घटादिवस्तु, अस्तिरूपही है; और अन्यवस्तुसंबंधी द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव चतुष्टयरूपकरके घटादिवस्तु, नास्तिरूपही है.—तथाहि—घट जो है, सो, द्रव्यसें पृथिवीरूपकरके तो है, जलादिरूपकरके नही; क्षेत्रसें पाटलिपुत्रके क्षेत्रसें है, कान्यकुब्जके क्षेत्रसें नही; कालसें शिशरऋतुका बना हुआ है, वसंतऋतुका नही; भावसें रक्तरंगसें है, पीतरंगसें नही. ऐसेंही अन्यपदार्थ भी जानने. कथंचित् अर्थात् अपने द्रव्यादिचारोंकी अपेक्षाकरके, विद्यमान होनेसें, कथंचित् अस्तिरुप, घट है, और परद्रव्यादिचारोंकी अपेक्षाकरके, अविद्यमान होनेसें कथंचित् नास्तिरूप, घट है, ऐ-

सा उल्लेख अर्थात् स्वरूप है, जेकर अन्यपदार्थको अन्यपदार्थके रूपकी प्राप्ति होवे तो, पदार्थके स्वरूपकी हानिकी प्रसक्ति होवे. एवकारके पठन करनेसें ऐसे स्वरूपवाला भंग है, ऐसा एवकारसें अवधारण होता है. और अवधारण तो, अवश्य करना चाहिये. नही तो, किसीजगे कथन करा हुआ भी नाकथनसरीखा होवेगा. तथा जेकर 'अस्त्येव कुंभः' इतनाही कथन करीये तबतो, कुंभको स्तंभादिकपणे अस्तित्वकी प्राप्ति होनेसें प्रतिनियत स्वरूपकी अनुपपत्ति होवेगी, इसवास्ते उसके प्रतिनियत स्वरूपकी प्रतिपत्तिके वास्ते 'स्यात्' ऐसा अव्यय, जोडा जाता है. कथंचित् रूपकरके स्वद्रव्यादिचतुष्ट यकी अपेक्षा अस्ति, और परद्रव्यादिचतुष्टयकी अपेक्षा नास्ति है; ऐसे प्रयोगकी प्रतिपत्तिकेवास्ते तथा तिस 'स्यात्' अव्ययको व्यवच्छेदफल 'एवकार' कीतरें जहांकहीं शास्त्रमें 'स्यात्' पद प्रकट नही भी कहा है, वहां भी, 'स्यात्' पद अवश्यमेव जानना.

तदुक्तम् ॥

सोप्यप्रयुक्तो वा तज्ज्ञैः सर्वत्रार्थात् प्रतीयते ।
यथैवकारो योगादिव्यवच्छेदप्रयोजनः ॥ १ ॥

अर्थः-जिसजगे 'स्यात्' पद, नही कहा है, तहां भी, तिस स्यात् अव्ययके जानने वालोंनेअर्थसें जान लेना; अयोगव्यवच्छेदादि प्रयोजनवाले एवकारवत्. तिसवास्थे एवकार, और स्यात्कार ये दोनों सातोंही भंगमें ग्रहण करना. विधिप्रधान होनेसें विधिरूपही प्रथम भंग है. ॥ १ ॥

अथ अर्थसें दूसरा भंग दिखाते हैं:-स्यान्नास्त्येवेति निषेधप्रधानकल्पनयायं भंगः॥ कथंचित् यह नही है, ऐसे निषेधप्रधानकल्पनाकरके यह दूसरा भंग है. जो नियमकरके साध्यके सद्भावसें अस्तित्व है, सोही साध्यके अभावमें नास्तित्व कथन करीये हैं; जैसें, घट, स्वद्रव्यचतुष्टयकरके अस्तिरूप सिद्ध है, तैसें मुद्गरादिके संयोगसें नष्ट हुआ थका, वोही घट, नास्तित्वरूपकरके सिद्ध होता है; अस्तित्वको नास्तित्वके अविनाभावि होनेसें; तथाच क्षणविनश्वरभावोंकी उत्पत्तिही, विनाशमें कारण मानते हैं.

तदुक्तम् ॥

उत्पत्तिरेव भावानां विनाशे हेतुरिष्यते ॥
यो जातश्च न च ध्वस्तो नश्येत् पश्चात् स केन च ॥१॥

अर्थः—उत्पत्तिही, भावोंके विनाशमें हेतु है, जो उत्पन्न हुआ और नाश नही हुआ, सो पीछे किसकरके नाश होवेगा ? उत्पत्ति अस्तित्वकी सिद्धिको करती है, सोही उत्पत्ति, विनाश अपरपर्याय नास्तित्वका मूल-कारण होनेसें अविनाभाव सिद्ध करती है.

पूर्वपक्षः—जिस स्वरूपसें अस्ति है, जेकर तिसही स्वरूपसें नास्ति है, तब अस्तिनास्ति दोनोंको एकजगे होनेसें भाव, अभाव, दोनोंकी एकतापत्तिरूप अनिष्टका प्रसंग होवेगा.

उत्तरपक्षः—अस्तिनास्ति दोनोंकी भिन्नभिन्न समयमें प्ररूपणा होनेसें पूर्वोक्त दूषण नही, पदार्थोंका प्रतिसमय नाश होनेसें. तथा हम ऐसें नही मानते हैं कि, जिस समयमें जिसका उत्पाद है, तिसही समयमें उसका विनाश है; तिसवास्ते अस्तित्वके अविनाभावि नास्तित्व सिद्ध हुआ. ऐसें सर्ववस्तु, स्वपरद्रव्यादिचतुष्टयकी अपेक्षा अस्तिनास्तिरूपसें सिद्ध है. अस्तित्वकी प्रधानदशामें प्रथमभंग है और निषेधदशामें दूसरा भंग है. ॥ २ ॥

अथ अर्थसें तीसरा भंग प्रकट करते हैंः—स्यादस्त्येव स्यान्नास्त्येवेति ॥ सर्ववस्तु, क्रमकरकेही, स्वपरद्रव्यादि चतुष्टयके आधार अनाधारकी विवक्षासें, प्राप्त अप्राप्त पूर्वअपर भावोंकरके, विधि और प्रतिषेध-प्रधानकरके विशेषित तीसरे भंगको भजनेवाला होता है, घटवत्. जैसें, घट, अपने द्रव्यादिचारकी अपेक्षा कथंचित् अस्तिरूपही है, और कथंचित् परद्रव्यादिचारकी अपेक्षा नास्तिरूपही है. विधिप्रतिषेध दोनोंकी प्रधानता कथन करनेवाला, यह तीसरा भंग है. ॥ ३ ॥

अथ अर्थसें चौथा भंग प्रकट करते हैंः—स्यादवक्तव्यं युगपद्विधि-निषेधकल्पनया चतुर्थ इति ॥ सदंश असदंश इन दोनोंका समकाल प्ररूपणानिषेधप्रधान यह भंग है.

तथाहि ॥ विधिप्रतिषेध युगपत् प्रधानभूत दोनों धर्मोंको एक पदार्थमें युगपत् विधिनिषेध दोनोंकी प्रधानाविवक्षामें तैसें शब्दको अनिर्वचनीय होनेसें घटादिवस्तु अवक्तव्य है, विधिप्रतिषेध दोनों धर्मोंकरके आक्रांत भी तिस पदार्थको युगपत् दो धर्मोंको अवक्तव्यरूप होनेसें, युगपत् विरुद्ध दो धर्मका प्रयोग नही हो सकता है; शीतउष्णकीतरें, सुखदुःखकीतरें. क्रमकरकेही शब्दमें अर्थ कथन करनेका सामर्थ्य होनेसें, युगपत् एककालमें नहीं. क्तक्तवतुकरके संकेतित निष्ठाशब्दवत्, अथवा पुष्पदंत शब्दकरके संकेतित सूर्यचंद्रवत्. निष्ठाशब्दकरके, वा, पुष्पदंतशब्दकरके क्रमसेंही क्तक्तवतुका, और सूर्यचंद्रका अर्थ प्रत्यय होता है, अर्थात् निश्चय होता है. तिसकरके द्वंद्वादिपदोंका भी, युगपत् अर्थप्रत्यायकपणा, खंडन किया. 'धवखदिरौ स्त इति' यहां भी क्रमकरकेही ज्ञान होता है, युगपत् नही. क्योंकि, तैसेंही ज्ञान प्रत्यय होनेसें, और समकालमें शब्दको अवाचकपणा होनेसें, अवक्तव्य है. जीवादिवस्तु, युगपत् विधिप्रतिषेध विकल्पनाकरके संक्रांतही स्थित होता है; यद्यपि वस्तु, अस्तित्वनास्तित्वधर्मोंकरके संयुक्त भी है, तो भी, अस्तित्वनास्तित्वधर्मोंकरके एककालमें कहा नही जाता है, इसवास्ते अवक्तव्य, अर्थात् अनिर्वचनीय घट है. ऐसें फलितार्थ चतुर्थ भंग हुआ. ॥ ४ ॥

अथ अर्थसें पांचमा भंग लिखते हैंः—स्यादस्त्येव स्यादवक्तव्यमिति ॥ सदंशपूर्वक युगपत् सदंश असदंशकरके अनिर्वचनीय कल्पनाप्रधानरूप यह भंग है. अपने २ द्रव्यादिचतुष्टयकरके विद्यमान हुआ भी, सदंश असदंशकरके प्ररूपणा इस भंगमें करनेकी सामर्थ्यता नही है, जीवादि सर्ववस्तु स्वद्रव्यादिचतुष्टयकी अपेक्षाकरके है, परंतु विधिप्रतिषेधरूपोंकरके कहनेको अनिर्वचनीय है. 'अस्त्यत्र प्रदेशे घटः' है, इस प्रदेशमें, घट सत्रूप असत्रूप दोनोंकरके एककालमें उन दोनोंका स्वरूप कथन करनेकी सामर्थ्यता न होनेसें, विधिरूप हुआ भी, अवक्तव्य है. ऐसें फलितार्थ पांचमा भंग हुआ. ॥ ५ ॥

अथ अर्थसें छठा भंग प्रकट करते हैंः—स्यान्नास्त्येव स्यादवक्तव्यमिति ॥ निषेधपूर्वक युगपत् विधिनिषेधकरके अनिर्वचनीय प्रधान यह

भंग है. परद्रव्यादिचतुष्टयके अविद्यमानत्वके हुए भी, सदंश असदंश ऐसी प्ररूपणा करनेको यह भंग असमर्थ है. इस भंगमें सर्ववस्तु जीवादि, परद्रव्यादिचतुष्टयकी अपेक्षाकरके नास्ति भी है, तो भी विधि-प्रतिषेधरूपोंकरके कहनेको अनिर्वचनीय है. 'नास्त्यत्र प्रदेशे घटः' नही है, इस प्रदेशमें, घट, सत्रूप असत्रूपकरके युगपत्स्वरूपके कथन करनेमें असामर्थ्य होनेसें नास्तित्वके हुए भी, अवक्तव्य है. इतिफलितार्थः षष्ठो भंगः ॥ ६ ॥

अथ अर्थसें सातमा भंग प्रकट करते हैं:—स्यादस्त्येव स्यान्नास्त्येव स्यादवक्तव्यमिति ॥ अनुक्रमकरके अस्तित्वनास्तित्वपूर्वक युगपत् विधि-निषेध प्ररूपणानिषेधप्रधान यह भंग है. इति शब्द सप्तभंगीकी समाप्तिमें है; स्वद्रव्यादिचतुष्टयकी अपेक्षाकरके अस्तित्वके हुए भी, परद्रव्यादिचतुष्टयकी अपेक्षा नास्तित्वके हुए भी, विधि वा प्रतिषेध कथन करनेको असमर्थ है. इस भंगमें सर्वजीवादिवस्तु, स्वद्रव्यादि अपेक्षा अस्ति है, परद्रव्यादि अपेक्षा नास्ति है, तो भी, एककालमें विधिनिषेध-रूपोंके साथ युगपत् प्रतिपादन करनेको असमर्थ है. जैसें स्वद्रव्यादि अपेक्षासें है, इसप्रदेशमें, घट, परद्रव्यादि अपेक्षासें, नही है; यहां घट, विधिप्रतिषेधरूपोंकरके युगपत्स्वरूप कथन करनेको असमर्थ होनेसें अवक्तव्य है. इति प्रकटार्थ है. इसवास्ते स्यादस्त्येव स्यान्नास्त्येव स्यादवक्तव्यं कथंचित् है, कथंचित् नही, और कथंचित् अवक्तव्य, इसभंग-करके दिखलाया है. इतिसप्तमभंगः ॥ ७ ॥

तथा यह जो सप्तभंगी है, सो सकलादेश, विकलादेश, दोतरेंके भंगवाली है.

तदुक्तं प्रमाणनयतत्वालोकालंकारे. ॥

"॥ इयं सप्तभंगी प्रतिभंगं सकलादेशस्वभावा विकलादेशस्वभावा च ॥ ४३ ॥ प्रमाणप्रतिपन्नानंतधर्मात्मकवस्तुनः कालादिभिरभेदवृत्तिप्राधान्यादभेदोपचाराद्वा यौगपद्येन प्रतिपादकं वचः सकलादेशः ॥ ४४ ॥ तद्विपरीतस्तु विकलादेशः ॥ ४५ ॥ इतिचतुर्थपरिच्छेदे. ॥

अर्थः—यह सप्तभंगी, प्रतिभंगसकलादेशस्वभाववाली, और विकलादेशस्वभाववाली है. तिनमें प्रमाणकरके अंगीकार करा, जो अनंतधर्मात्मक वस्तु, उसको कालादि आठोंकरके अभेदकी प्राधान्यतासें अर्थात् धर्मधर्मीके अभेदकी मुख्यतासें, अथवा कालादि अष्टकरके भिन्नाभिन्न स्वरूपवाले भी, धर्मधर्मी है, तो भी, अभेदके उपचारसें, एककालमें कथन करे, ऐसा जो वाक्य, सो सकलादेश है. और इसीका नाम प्रमाणवाक्य है. भावार्थ यह है कि, युगपत् अर्थात् एकहीवार संपूर्ण धर्मोंकरके युक्त वस्तुको कालादि अष्टकरके अभेदकी मुख्यता, अथवा अभेदके उपचारकरके प्रतिपादन करता है, सो सकलादेश प्रमाणके आधीन होनेसें है; और सकलादेशसें जो विपरीत है, सो विकलादेश है; अर्थात् क्रमकरके भेदके उपचारसें, अथवा भेदकी मुख्यतासें भेदहीको कहे, सो नयके आधीन होनेसें विकलादेश है.

प्रश्नः—क्रम क्या है? और युगपत् क्या है?

उत्तरः—जब अस्तित्वादि धर्मोंकी, कालादि अष्टकरके भेदसें कथन करनेकी इच्छा होवे, तब एक शब्दको अनेक अर्थके बोधन करानेकी शक्ति न होनेसें क्रम होता है; और जब तिनही धर्मोंका कालादि अष्टकरके अभेदस्वरूप माने, तब एकही शब्दकरके एक धर्मके बोधन करानेद्वारा तिस धर्मसें अभेदरूप संपूर्णधर्मस्वरूप वस्तुका प्रतिपादन होनेसें, यौगपद्य होता है.

अथ कालादि अष्ट येह हैं. काल १, आत्मरूप २, अर्थ ३, संबंध ४, उपकार ५, गुणिदेश ६, संसर्ग ७, और शब्द ८. ।

तदुक्तम् ॥

कालात्मरूपसंबंधाः संसर्गोपक्रिये तथा ॥
गुणिदेशार्थशब्दाश्चेत्यष्टौ कालादयः स्मृताः ॥ १ ॥

इसका अर्थ ऊपर लिख आये हैंः—तत्र स्याज्जीवादिवस्त्वस्त्येवेति—कथंचित् जीवादिवस्तु अस्तिरूपही है. यहां जिस कालमें अस्तित्व है, तिसही कालमें

अपर अनंत धर्म भी वस्तुमें है, इसवास्ते उन धर्मोंकी कालकरके अभेदवृत्ति है. ॥ १ ॥ जौनसा अस्तित्वको वस्तुका गुण होना यह आत्मरूप है, वोही अन्य अनंत गुणोंका भी है, इति आत्मरूपकरके अभेदवृत्ति. ॥ २ ॥ जो अर्थ (द्रव्याख्य), अस्तित्वका आधार आश्रय है, वोही अर्थ द्रव्य, अन्य धर्मोंका आधार है, इत्यर्थकरके अभेदवृत्ति. ॥ ३ ॥ जो अविष्वग्भाव अर्थात् कथंचित् वस्तुरूपसंबंध अस्तित्वका है, वोही अपर धर्मोंका है इतिसंबंधकरके अभेदवृत्ति. ॥ ४ ॥ जो उपकार स्वानुरक्तकरण अपनाकरके खचित करना अस्तित्वको करते हैं, वोही उपकार अपर संपूर्णधर्मोंको करा जाता है, इति उपकारके अभेदवृत्ति. ॥ ५ ॥ जो गुणिके संबंधी क्षेत्ररूप देश अस्तित्वका है, वोही गुणिदेश अपर धर्मोंका है, इतिगुणिदेशकरके अभेदवृत्ति. ॥ ६ ॥ जो एकवस्तुरूपकरके अस्तित्वका संसर्ग है, वोही संसर्ग अशेष धर्मोंका है, इति संसर्गकरके अभेदवृत्ति. ॥

प्रश्नः—पीछे कहे संबंधसें संसर्गका क्या विशेष है ?

उत्तरः—अभेदकी मुख्यता और भेदकी गौणताकरके पीछे संबंध कहा, भेदकी मुख्यता और अभेदकी गौणताकरके यह संसर्ग कहा. इति. ॥७॥ जो अस्तिशब्द अस्तित्व धर्मवाले वस्तुका वाचक है, वोही अस्तिशब्द शेष अनंत धर्मात्मक वस्तुका वाचक है, इतिशब्दकरके अभेदवृत्ति. ॥ ८ ॥

पर्यायार्थिक नयके गौण हुए, और द्रव्यार्थिकके प्राधान्य हुए, अभेद होता है. द्रव्यार्थिकके गौण हुए, और पर्यायार्थिकके प्राधान्य हुए, एककालमें एकवस्तुमें नाना गुण न होनेसें गुणोंका अभेद नही होता है, यदि होवें भी तो, उसके आश्रय भिन्नभिन्न होजावेंगे. ॥ १ ॥ नानी गुणसंबंधी आत्मरूपको भिन्न २ होनेसें; यदि आत्मरूपका अभेद होवे, तो, उनका भेद विरुद्ध होजावेगा. ॥ २ ॥ अपने अपने धर्मके आश्रयभूत अर्थको भी नाना होनेसें; यदि नाना, न होवे तो, नाना गुणोंका आश्रय होना विरुद्ध है. ॥ ३ ॥ संबंधका भी संबंधियोंके भेदसें भेद देखनेसें; नानासंबंधियोंने एकवस्तुमें एकसंबंध नही रचनेसें. ॥ ४ ॥ नानासंबंधियोंने करा जो भिन्न २ स्वरूपवाला उपकार तिसको नाना होनेसें; अनेक

उपकारियोंने एक उपकार करना विरोध है. ॥ ५ ॥ गुणिके देशको एक एक गुणप्रति, भिन्नभिन्न होनेसें; यदि गुणिदेश भिन्नभिन्न, न होवे तो, पृथक् २ (जूदे २) अर्थोंके गुणोंका भी गुणिदेश एक होना चाहिये. ॥६॥ संसर्गको भी एक एक संसर्गवाले साथ जूदाजूदा होनेसें; यदि संसर्ग एक होवे तो, संसर्गवालोंका भेद न होना चाहिये. ॥ ७ ॥ शब्दको भी विषयविषयप्रति भिन्नभिन्न होनेसें; यदि सर्वगुण एकशब्दके वाच्य होवे तो, सर्व अर्थोंको एकशब्दके वाच्य होने चाहिये. और अन्य सर्वशब्द निष्फल होने चाहिये. ॥ ८ ॥ वास्तवसें अस्तित्वादिधर्मोंका एक वस्तुमें इस पूर्वोक्त रीतिसें अभेद न होनेसें कालादिकोंकरके भिन्न २ स्वरूपवाले धर्मोंका अभेदोपचार होवे है. सो पूर्वोक्त अभेद अथवा अभेदोपचार, इन दोनोंकरके प्रमाणसिद्ध अनंतधर्मात्मक वस्तुको एककालमें कथन करे, ऐसा जो वाक्य सो सकलादेश है. प्रमाणवाक्य यह इसीका दूसरा नाम है. ॥ इतिसप्तभंगीस्वरूपवर्णनम् ॥

अथ इस पूर्वोक्त सप्तभंगीका खंडन, चार वेदके संग्रहकर्त्ता व्यासजीने, अपने रचे व्याससूत्रके दूसरे अध्यायके दूसरे पादके ३३।३४।३५। ३६। मे सूत्रोंमें जैनमतका खंडन किया है, तिनमें तेतीसमे सूत्रमें "सप्तभंगी" का खंडन लिखा है, सो दिखाते हैं.

तथाहि सूत्रम् ॥ " ॥ नैकस्मिन्नसंभवात् ॥ ३३ ॥ "

अर्थः—एकवस्तुमें सप्तभंग नही हो सकते हैं, असंभव होनेसें. ॥ इस व्याससूत्रका भाष्य शंकरस्वामीने किया है, तिसका खुलासा भाषामें लिखते हैं.

शंकरस्वामी लिखते हैंः—जैनी सात पदार्थ मानते हैं; जीव १, अजीव २, आस्रव ३, संवर ४, निर्जरा ५, बंध ६, मोक्ष ७, और संक्षेपसें, जैनी, दोही पदार्थ मानते हैं. जीव १, अजीव २. पूर्वोक्त सातों पदार्थोंको इन जीव अजीव दोनोंहीके अंतर्भाव मानते हैं. और पूर्वोक्त दोनोंका प्रपंच पंचास्तिकायनाम मानते हैं; जीवास्तिकाय १, पुद्गलास्तिकाय २, धर्मा-

स्तिकाय ३, अधर्मास्तिकाय ४, आकाशास्तिकाय ५. और इनके मतिकल्पनासें अनेक भेद कहते हैं. और सर्व पदार्थोंमें इस सप्तभंगीका समवतार करते हैं. स्यादस्ति, स्यान्नास्ति २, स्यादस्ति च नास्ति ३, स्यादवक्तव्यः ४, स्यादस्ति चावक्तव्यश्च ४, स्यान्नास्ति चावक्तव्यश्च ६, स्यादस्तिच नास्तिचावक्तव्यश्च ७. ऐसेंही एकत्वनित्यत्वादिकोंमें भी सप्तभंगी जोड लेनी.

शंकरस्वामीः–यह पूर्वोक्त जैनीयोंका मानना ठीक नही है. क्योंकि, एक धर्मिमें युगपत् अर्थात् समकालमें सत् असत् आदि विरुद्ध धर्मोंका समावेश नही हो सकता है, शीतउष्णकीतरें. और जो येह सात पदार्थ निश्चित करे हैं, येह इतनेही हैं, और ऐसेंही स्वरूपवाले हैं, वे पदार्थ तथा अतथारूपकरके होने चाहिये. तब तो, अनिश्चयरूप ज्ञानके होनेसें संशयज्ञानवत् अप्रमाणरूप हुआ.

पूर्वपक्षी जैनीः–अनेकात्मक जो वस्तु है, सो निश्चितरूपही है; और उत्पद्यमानज्ञान, संशयज्ञानवत् अप्रमाणिक भी नही होसकता है.

उत्तरपक्षी शंकरस्वामीः–पूर्वोक्त कहना ठीक नही है. क्योंकि, निरंकुशही अनेकांतपणे सर्व वस्तु माननेसें जो निश्चय करना है, सो भी, वस्तुसें बाहिर न होनेसें स्यात् अस्ति स्यात् नास्ति इत्यादि विकल्पोंके होनेसें अनिर्धारितरूपही होजावेगा. ऐसेंही निर्धारण करनेवाला, और निर्धारण करनेका फल भी होजावेगा. पक्षमें अस्ति और पक्षमें नास्ति होजावेगी. जब ऐसें हुआ, तब, कैसें प्रमाणभूत वो तीर्थंकर अनिर्धारित प्रमाण प्रमेय प्रमाता प्रमिति विषय उपदेशक होसकता है ? और कैसें तीर्थंकरके अभिप्रायानुसारी पुरुष तिसके कहे अनिश्चितरूप अर्थमें प्रवर्त्तमान होवे ? क्योंकि, एकांतिक फलके निश्चित होनेसेंही तिसके साधनोंके अनुष्ठानोंमें सर्व लोक अनाकुल प्रवर्त्तते हैं, अन्यथा नही. इसवास्ते अनिश्चितार्थ शास्त्रका कहना उन्मत्तके वचनकीतरें उपादेय नही है. तथा पंचास्तिकायका संख्यारूप पंचत्व है, वा नही ? एकपक्षमें है, दूसरेमें नही; तब तो, संख्या भी हीन वा, अधिक हो जावेगी. तथा पूर्वोक्त पदार्थ अवक्तव्य नही; जेकर अवक्तव्य होवे तव तो, कहने न चाहिये, परंतु कहते हैं.

तब अवक्तव्य कैसें हुए? और कहता थकां तिसही तरें अवधारते हैं, वा नही भी अवधारते हैं? तथा तिनके अवधारणका फल सम्यग्दर्शन, है, वा नही? ऐसेंही उससें विपरीत असम्यग्दर्शन भी है, वा नही? ऐसें कहता हुआ मत्तोन्मत्तपक्षकीतरें होवेगा, परंतु प्रवृत्तियोग्य नही होवेगा. स्वर्गमोक्षपक्षमें भी भावपक्षमें अभाव, नित्यपक्षमें अनित्य, ऐसें अनवधारित वस्तुयोंमें प्रवृत्ति नही हो सकती है. अनादिसिद्ध जीवादिपदार्थोंके निश्चितरूपोंको अनिश्चितरूपका प्रसंग है. ऐसें जीवादिपदार्थोंमें एकधर्मीमें सत्व असत्व विरुद्ध धर्मोंका संभव नही. क्योंकि, जेकर असत् है तो, सत् नही होवेंगे. इसवास्ते आर्हत्मत ठीक नही. इस कहनेसें एक अनेक, नित्य अनित्य, व्यतिरिक्त अव्यतिरिक्तादि अनेकांतका खंडन जानना.

॥ इतिव्यासाभिप्रायानुसारिशंकरकृतसप्तभंगीखंडनम् ॥

अथ व्यासजी, और शंकरस्वामीके खंडनका खंडन लिखते हैं:—व्यासजी, और शंकरस्वामी, जैनमतके तत्त्वके जाननेवाले नही थे; नही तो, ऐसे अयौक्तिक असमंजस वचनोंसें सप्तभंगीअनेकांतवादका खंडन कदापि नही लिखते; इनोंके पूर्वोक्त खंडनको देखके, सर्व विद्वान् जैनी, उपहास्य करते हैं, और करेंगे. क्योंकि, जिसतरें जैनी पदार्थोंका स्वरूप स्याद्वाद सप्तभंगीसें मानते हैं, उनके माननेमुजब जेकर खंडन करते, तब तो, जैनीयोंके मनमें भी चमत्कार उत्पन्न होता; परंतु व्यासजी, और शंकरस्वामीने तो, भैंसकी जगे, भैंसे (झोटे—पाडे)को दोह गेरा! इस खंडनसें तो, जैनीयोंका मत किंचित्मात्र भी खंडन नही होता है. क्योंकि, जिसतरें जैनी सप्तभंगीका स्वरूप मानते हैं, सो उपर लिख आये हैं उससें जानना.

अथ भव्य जीवोंके बोधवास्ते किंचित्मात्र, शंकरस्वामीकी उन्मत्तता, प्रकट करते हैं. शंकरस्वामी लिखते हैं कि, “जैनी जीवादि सात पदार्थ मानते हैं. तथा संक्षेपसें जीव, और अजीव, दो पदार्थ मानते हैं. और पूर्वोक्त सात पदार्थोंको जीवाजीवके अंतर्भूत मानते हैं. और पूर्वोक्त जीव अजीवकाही

प्रपंचरूप पंचास्तिकाय मानते हैं, इन पांचोंके अनेक भेद मानते हैं; और सर्व पदार्थोंमें सप्तभंगीका समवतार करते हैं. स्यादस्तिइत्यादि सप्तभंगी एकत्वनित्यत्वादिकोंमें भी जोडलेनी." यहां तक तो शंकरस्वामीका कहना ठीक है. क्योंकि, जैनी भी इसीतरें मानते हैं. परंतु जो शंकर कहता है, कि एकधर्मीमें युगपत् सत् असत् आदिधर्मोंका समावेश नही हो सकता है, सो कहना महामिथ्यात्वके उदयसें झूठ है. क्योंकि, जैसें जैनी मानते हैं, तैसें तो सत्य है. यथा घट, अपने मृत्तिकाद्रव्यका १, क्षेत्रसें पाटलिपुत्रक क्षेत्रका २, कालसें वसंतऋतुका बना हुआ ३, और भावसें जलधारणजलहरणक्रियाका करनेवाला ४, इन अपने स्वचतुष्टयकी अपेक्षा, घट, 'अस्ति' और 'सत्रूप' है. और पटके द्रव्यक्षेत्रकालभावकी अपेक्षा, घट, 'नास्ति' और 'असत्रूप' है. पटके स्वरूपकी नास्तिरूप घट है, और घटके स्वरूपकी नास्तिरूप पट है. सर्व पदार्थ अपने स्वरूपकरके अस्तिरूप है, और परस्वरूपकी अपेक्षा नास्तिरूप है. जेकर सर्व पदार्थ स्वपरस्वरूपकरके अस्तिरूप होवें, तब तो, सर्व जगत् एकरूप हो जावेगा. तब तो, विद्या, अविद्या, जड, चैतन्य, द्वैत, सत्, असत्, एक, अनेक, नित्य, अनित्य, समल, विमल, साध्य, साधन, प्रमाण, प्रमेय, प्रमुख सर्व पदार्थ एकरूप होजावेंगे. यह तो, महाप्रत्यक्षरूपविरोधकरके ग्रस्त है. क्योंकि, जब शंकरस्वामी ब्रह्मको 'सत्रूप' मानेगा, तब तो, ब्रह्मको पररूपकरके 'असत्' माननाही पडेगा. जेकर पररूपकरके ब्रह्मको असत् नही मानेंगे. तब तो पर जो अविद्या माया तिसके स्वरूपकी ब्रह्मको प्राप्ति हुई, तब तो ब्रह्महीके स्वरूपका नाश हो जावेगा. वाह रे शंकरस्वामी! आपने तो अपनीही आंखमें कंकर मारा!!!

तथा शंकरस्वामी लिखते है, 'जो येह सातपदार्थ निश्चित करे हैं, ये इतनेही हैं, और ऐसें स्वरूपवाले हैं, वे पदार्थ तथा अतथारूपकरके होने चाहिये. तब तो, अनिश्चितरूप ज्ञानके होनेसें संशयज्ञानवत् अप्रमाणरूप हुए.'

इसका उत्तरः—सातों पदार्थ स्वस्वरूपकरके तथा रूपवाले है, और परस्वरूपकरके अतथारूप हैं. जेकर ऐसें न माने, तब तो, ब्रह्म स्वस्वरूपकरके तथारूप है, सो परमायारूपकरके जेकर अतथारूप न माने, तब तो, ब्रह्म मायारूपकरके भी तथारूप सिद्ध हुआ; तब तो, वेदांतकी जडही सड गई. परंतु बिचारे शंकरस्वामीको ऐसा स्वमतका नाश होना कहांसे दीख पडे? अतत्त्ववित् होनेसें. इसवास्ते जैनीयोंका माननाही ठीक है. इसीवास्ते संशय ज्ञानकीतरें अप्रमाणिक ज्ञान भी, नही होता है.

पुनः शंकरस्वामी लिखते हैं, 'निरंकुश अनेकांतपणे सर्व वस्तुके माननेसें जो निश्चय करना है, सो भी वस्तुसें बाहिर न होनेसें अनिर्धारितरूपही होजावेगा. ऐसेंही निर्धारण करनेवाला, और निर्धारण करनेका फल भी होजावेगा; पक्षमें अस्ति, और पक्षमें नास्ति होजावेगा. जब ऐसें हुआ तब कैसें प्रमाणभूत वो तीर्थंकर अनिर्धारित प्रमाण प्रमेय प्रमाता प्रमितिविषय उपदेशक होसकता है? और कैसें तिस तीर्थंकरके अभिप्रायानुसारि पुरुषके कहे अनिश्चितरूप अर्थमें प्रवर्त्तमान होवे? क्योंकि, ऐकांतिक फलके निश्चित होनेसें तिसके साधन अनुष्ठानोंमें सर्वलोक अनाकुल प्रवर्त्तते हैं, अन्यथा नही. इसवास्ते अनिश्चितार्थशास्त्रका कहना उन्मत्तके वचनकीतरें उपादेय नही.

इसका उत्तरः—हमने जो निश्चय किया है, सो, अनिर्धारितरूप नही है. क्योंकि, हमने (जैनीयोंने) जो वस्तु माना है, सो, स्वस्वरूपकरके सत् है, और परस्वरूपकरके असत् है; और यह जो हमने निश्चय किया है, सो निश्चय भी, अपने स्वरूपकरके निश्चित है, और परस्वरूपकरके नही है; तथा निर्धारण करनेवाला, और निर्धारणका फल भी, अपने स्वरूपपक्षमें अस्तिरूपही है, और परस्वरूपकरके नास्तिरूपही है. जैसें ब्रह्म, स्वस्वरूपकरके आस्तिरूप है, और परस्वरूपकरके नास्तिरूप है; जेकर ऐसा न माने, तब तो, ब्रह्मको स्वस्वरूप परस्वरूपदोनोंही करके अस्तिरूपही होनेसें, सत् असत् ज्ञान अज्ञानादि सर्व एकरूपही होजावेंगे, तब तो, ब्रह्मके स्वरूपकाही नाश होजावेगा. इसवास्ते ऊपर लिखेमूजब

माननेसें अर्हन् तीर्थंकर, यथार्थ वक्ता सिद्ध हुआ. उनके कथनमें पुरुषोंको निःशंक प्रवर्त्तना चाहिये. उनके साधन अनुष्ठानोंमें भी अनाकुल प्रवृत्ति सिद्ध होगई. इसवास्ते तीर्थंकरोंका कहनाही, सत्य और उपादेय है, नतु अन्योंका, अयौक्तिक होनेसें.

पुनरपि शंकरस्वामी लिखते हैं, "पंचास्तिकायके संख्यारूप पंचत्व है वा नही ? इत्यादि समाप्तिपर्यंत."

इसका उत्तरः—पचत्वसंख्या पंचत्वरूपकरके अस्तिरूप है, और अन्य संख्यायोंके स्वरूपकरके नास्तिरूप है; इसवास्ते संख्या, हीनाधिकरूपवाली नही है. तथा पूर्वोक्त सात पदार्थ एकांत अवक्तव्यरूप नही है, किंतु कथंचित् अवक्तव्यरूप है. युगपत् उच्चारणकी अपेक्षा अवक्तव्य है, परंतु क्रमकी अपेक्षा अवक्तव्य नही है. इसवास्ते पूर्वोक्त लिखना शंकरस्वामीकी बेसमझीसें है. तथा जो पदार्थ स्वचतुष्टय और परचतुष्टयकी अपेक्षा जैसा है, तिसको वैसाही अस्तिनास्तिरूपसें कथन करना, और मानना, उसका नाम सम्यग्दर्शन है; और इससें विपरीत असम्यग्दर्शन है. सम्यग्दर्शन, अपने स्वरूपकरके अस्तिरूप है; मिथ्यारूपकरके नही. और असम्यग्दर्शन भी, अपने स्वरूपकरके अस्तिरूप है, परस्वरूपकरके नही. स्वर्ग मोक्ष भी, अपने २ स्वरूपकरके अस्तिरूप हैं, और नरकादिरूपकी अपेक्षा नास्तिरूप है. तथा नित्य जो है, सो द्रव्यकी अपेक्षा है; और अनित्य जो है, सो पर्यायरूपकी अपेक्षा है. इसवास्ते हमारे जैनमतमें अवधारितही वस्तु है, इसवास्ते प्रवृत्ति है. अनादिसिद्धजीवादिपदार्थ भी अपने २ स्वचतुष्टयकी अपेक्षा अस्तिरूप है, और परचतुष्टयकी अपेक्षा नास्तिरूप है. इसवास्ते अनिश्चितरूपका प्रसंग नही है, ऐसेंही एकधर्मीमें स्वरूप अपेक्षा सत्, पररूप अपेक्षा असत् धर्मोंका संभव है. स्वरूपकरके वस्तुमात्र सत् है, और पररूपकरके असत् है. इसवास्ते आर्हतमत ठीक सत्य है. इसकहनेकरके एक अनेक, नित्य अनित्य, व्यतिरिक्त अव्यतिरिक्तादि धर्मधर्मीमें द्रव्यपर्याय भेदाभेदनयमतसें सर्व सत्य है. परंतु शंकरस्वामीने जो कुछ जैनमतके खंडनवास्ते खंडन

लिखा है, तिससें जैनमत तो खंडन नही होता है, परंतु वेदांतमत खंडन होता है, सोही दिखाते हैं.

शंकरस्वामी कहते हैं, " तुमने (जैनोंने) जे सात पदार्थ माने हैं, वे अनेकांत माननेसें निश्चित अनिश्चित होजावेंगे. "

इसका उत्तरः–तुमने वेदांतीयोंने जो ब्रह्म माना है, सो एकांतनिश्चित है, वा अनिश्चित है? जेकर एकांतानिश्चित है तो, जैसें सत्रूपकरके निश्चित है, तैसें असत्रूपकरके भी, निश्चित होना चाहिये; तिसको सर्वप्रकारसें निश्चित होनेसें. जेकर अनिश्चित है, तो जैसें असत्रूपकरके अनिश्चित है, वैसेंही सत्रूपकरके भी, अनिश्चित होना चाहिये; तिसको सर्वथाप्रकार अनिश्चित होनेसें. जब ऐसें हुआ, तब तो, ब्रह्मका नियतरूप न रहा, सत् असत्का संकर होनेसें. जेकर कहोगे सत्करके निश्चित है, और असत्करके अनिश्चित है, तब तो, तुमने अपनेही हाथसें अपने शिरमें प्रहार दीया, अनेकांतवादके सिद्ध होनेसें. तथा जैसें ब्रह्म सत्रूपकरके निश्चित है, और असत्रूपकरके अनिश्चित है, ऐसेंही सात पदार्थ, अपने स्वरूपकरके निश्चित है, और परस्वरूपकरके अनिश्चित है.

पुनः शंकरस्वामी कहते हैं, " निरंकुश अनेकांतके माननेसें जो निश्चय करना है, सो भी, वस्तुसें बाहिर न होनेसें स्यात् अस्ति, नास्ति, होना चाहिये. इत्यादि."

इसका उत्तरः–निश्चयस्वरूपकरके अस्ति हैं, संशय विपर्ययरूपकरके नास्ति है. जेकर एकांत अस्ति होवे, तब तो संशय विपर्ययरूपकरके भी, अस्ति होना चाहिये; जेकर एकांत नास्ति होवे, तब निश्चयरूपकरके भी नास्ति होना चाहिये; इससें सिद्ध हुआ कि, कोई भी वस्तु एकांत नही है. ऐसेंही निर्धारण करनेवाला, और निर्धारणके फलको भी, स्वपर-रूपकरके अस्तिनास्तिरूप जानना. जेकर स्वपररूपकरके अस्तिनास्तिरूप वस्तु न मानीये, तब वस्तुके नियतरूपके नाश होनेसें सर्व जगत् सर्वरूप होजावेगा. तब तो, ब्रह्मका भी, नियतरूप नही रहेगा. वाहरे! शंकरस्वामी! अच्छा अनेकांतका खंडन किया, अनेकांत तो खंडन नही हुआ, परंतु ब्रह्मके स्वरूपका नाश कर दिया!!! इतिशंकरकृतखंडनस्य खंडनम्॥

अथ प्रसंगसें व्याससूत्रके ३४ मे सूत्रके भाष्यका खंडन लिखते हैं.॥

तथाहि सूत्रम् ॥ "॥ एवञ्चात्माऽकार्त्स्न्यम् ॥ ३४ ॥"

शंकरभाष्यकी भाषाः—जैसें एकधर्मिविषे, विरुद्धधर्मका असंभवरूप दोष, स्याद्वादमें प्राप्त है, ऐसें आत्माको भी अर्थात् जीवको असर्वव्यापी मानना, यह अपर दोषका प्रसंग है. कैसें? शरीरपरिमाणही जीव है, ऐसें आर्हतमतके माननेवाले मानते हैं. और शरीरपरिमाण आत्माके हुए, आत्मा, अकृत्स्न असर्वगत है; जब मध्यमपरिमाणवाला आत्मा हुआ, तब घटादिवत्, अनित्यता आत्माको प्राप्त होवेगी; और शरीरोंको अनवस्थित-परिमाणवाले होनेसें मनुष्यजीव मनुष्यशरीरपरिमाण होके फिर किसी कर्मविपाक करके हाथीका जन्म प्राप्त हुए, संपूर्णहस्तिके शरीरमें व्याप्त नही होवेगा; और सूक्ष्म मक्खीका जन्म प्राप्त हुए संपूर्ण सूक्ष्म मक्खीके शरीरमें मावेगा नही. जेकर समानही यह जीव है, तब तो एकही जन्मविषे कुमारयौवनवृद्धअवस्थाओंविषे दोष होवेगा; शरीरकी सर्व अवस्थाओंमें शरीर व्यापक नही होवेगा, यह दोष होवेगा. जेकर कहोगे अनंत अवयव जीवके हैं, तिसके वेही अवयव अल्पशरीरमें संकुचित होजाते हैं, और महान् शरीरमें विकाश होजाते हैं.

उत्तरः—उन अनंतजीवअवयवोंका समानदेशत्व प्रतिहन्यत है, वा नही? जेकर प्रतिघात है, तब तो परिच्छिन्नदेशमें अनंतअवयव नही मावेंगे; जेकर अप्रतिघात है, तब तो अप्रतिघातके हुए एकअवयवदे-शत्वकी उपपत्तिसें, सर्वअवयव विस्तारवाले न होनेसें, जीवको अणु-मात्रका प्रसंग होवेगा. अपिच शरीरपरिच्छिन्न जीवके अनंत अवयवोंकी अनंतता भी, नही होसकती है. इति ॥ ३४ ॥

इस पूर्वोक्त व्याससूत्रकी भाष्यका उत्तर लिखते हैं. ॥

तथाहि सूत्रम् ॥

"॥ चैतन्यस्वरूपः परिणामी कर्त्ता साक्षाद्भोक्ता स्वदेहपरिमाणः प्रतिक्षेत्रं भिन्नः पौद्गलिकादृष्टवांश्चायमिति ॥ "

श्रीवादिदेवसूरिकृत प्रमाणनयतत्त्वालोकालंकारे ॥

इस सूत्रके 'स्वदेहपरिमाणः' इस पदकी और 'प्रतिक्षेत्रं भिन्नः' इस पदकी टीकाकी भाषामें व्याख्या लिखते हैं। स्वदेहपरिमाण, इसकरके, आत्माका नैयायिकादि परिकल्पित सर्वगतपणा, निषेध करते हैं. आत्माको सर्वगत मानिये, तव तो, जीवतत्त्वके प्रभेद, जे प्रत्यक्ष दिखलाइ देते हैं, उनकी प्रसिद्धि न होनेका प्रसंग आवेगा; सर्वगत एकही आत्माविषे नानात्मकार्योंकी समाप्ति होनेसें. एककालमें नाना मनोका संयोग जो है, सो नानात्मकार्य है. सो नानात्मकार्य एक आत्मामें भी होसकता है. आकाशमें नानाघटादिसंयोगवत्. इसकरके युगपत्, नानाशरीर इंद्रियोंका संयोग कथन किया.

पूर्वपक्षः—युगपत् नानाशरीरोंविषे, आत्मसमवायिसुखदुःखादिकोंकी उपपत्ति नही होवेगी, विरोध होनेसें.

उत्तरपक्षः—यह तुमारा कहना ठीक नही है. क्योंकि, युगपत् नाना भेरीआदिकोंविषे, आकाशसमवायि विततादिशब्दोंकी अनुपपत्ति होनेके प्रसंगसें; पूर्वोक्त विरोधको अविशेष होनेसें.

पूर्वपक्षः—तथाविध शब्दोंके कारणभेद होनेसें, विततादि नानाशब्दोंकी अनुपपत्ति नही है.

उत्तरपक्षः—सुखादिकारणभेदसें, उस सुखादिकी अनुपपत्ति भी, एक आत्माविषे न होनी चाहिये, विशेषके अभाव होनेसें.

पूर्वपक्षः—विरुद्धधर्मके अध्याससें, आत्माका नानात्व है.

उत्तरपक्षः—तिस विरुद्धधर्मके अध्याससेंही, आकाशका भी नानात्व होवे.

पूर्वपक्षः—उपचारसें आकाशके प्रदेशोंका भेद माननेसें पूर्वोक्त दोष नही है.

उत्तरपक्षः—प्रदेशभेद उपचारसेंही, आत्माविषे भी, दोष नही है. और जन्ममरणादि प्रतिनियम भी सर्वगत आत्मवादीयोंके मतमें आत्मबहुत्वको नही साधेगा; एक आत्मामें भी, जन्ममरणादिकी उपपत्ति होनेसें. घटाकाशादिके उत्पत्ति विनाशादिवत्. नही घटाकाशकी

उत्पत्तिके हुए, पटादि आकाशकी उत्पत्तिही है, तिस समयमें विनाशके भी देखनेसें. और ऐसा भी नही है कि, विनाशके हुए, विनाशही है, उत्पत्तिका भी तिस समयमें उपलंभ होनेसें. और स्थितिके हुए, स्थितिही है, ऐसा भी नही है, विनाश, उत्पाद, दोनोंको भी तिस कालमें देखनेसें.

पूर्वपक्षः—बंधके हुए मोक्ष नही, और मोक्षके हुए बंध नही होवेगा, एक आत्मामें बंध मोक्ष दोनोंका विरोध होनेसें.

उत्तरपक्षः—ऐसा मानना ठीक नही है. क्योंकि, आकाशमें भी एक घटके संबंध हुए, घटांतरके मोक्षके अभावका प्रसंग होनेसें. और एक घटके विश्लेष हुए, घंटातरके विश्लेषका प्रसंग होनेसें.

पूर्वपक्षः—प्रदेशभेदउपचारसें, पूर्वोक्त प्रसंग नही है.

उत्तरपक्षः—तब तो आत्मामें भी तिसका प्रसंग नही है. आकाशके प्रदेशभेद माने हुए, एक जीवका भी प्रदेशभेद होवो; ऐसें कहांसें जीवतत्त्व प्रदेशभेद व्यवस्था, जिससें आत्मा व्यापक होवे ?

पूर्वपक्षः—आत्माके व्यापकत्वके अभाव हुए, दिग्देशांतरवर्त्ति परमाणुओंके साथ युगपत्संयोगके अभावसें, आद्यकर्मका अभाव है; तिसके अभावसें अंत्यसंयोगका अभाव है, तिस निमित्तक शरीरका अभाव और तिसकरके उसके संबंधका अभाव है. तव तो विनाही उपायके सिद्ध हुआ, सर्वदा सर्व जीवोंको मोक्ष होवे. अथवा होवे जैसें तैसेंकरी शरीरकी उत्पत्ति, तो भी, सावयव शरीरके प्रतिअवयवमें प्रवेश करता हुआ आत्मा, सावयव होवेगा; तैसें हुए इस आत्माको पटादिवत् कार्यत्वका प्रसंग है. और कार्यत्वके हुए, इस आत्माके विजातिकारण आरंभक है, वा सजातिकारण आरंभक है ? पूर्वपक्ष तो नही. क्योंकि, विजातियोंको अनारंभक होनेसें. दूसरा पक्ष भी नही. जिसवास्ते सजातिपणा, उनको आत्मत्वअभिसंबंधसेंही होवे हैं, तैसें हुए एक आत्माके अनेक आत्मा, आरंभक ऐसें सिद्ध हुआ, यह तो, अयुक्त है. क्योंकि, एक शरीरमें आत्माके आरंभक, अनेक आत्माका असंभव होनेसें. और संभवके हुए भी स्मरणकी अनुपपत्ति है. क्योंकि, नही अन्यने देखा हुआ,

अन्य स्मरण करनेको समर्थ होता है, अतिप्रसंग होनेसें. तिसकरके आरभ्यत्वके हुए, इस आत्माका, घटवत्, अवयवक्रियासें विभाग होनेसें संयोगविनाशसें विनाश होवेगा. और शरीरपरिमाणत्व आत्माके हुए, आत्माको मूर्त्तत्वकी प्राप्ति होनेसें आत्माका शरीरमें प्रवेश नही होवेगा, मूर्त्तमें मूर्त्तके प्रवेशका विरोध होनेसें. तव तो, निरात्मकही, संपूर्ण शरीर, होवेगा. अथवा आत्माको शरीरपरिमाणत्वके हुए, वालशरीरपरिमाणवाले आत्माको, युवशरीरपरिमाण अंगीकार कैसें होवे? वालपरिमाणको त्यागके, वा न त्यागके? जेकर त्यागके, तव तो, शरीरवत्, आत्माको अनित्यत्वका प्रसंग होनेसें, परलोकादिकके अभावका प्रसंग होवेगा. जेकर विनाही त्यागनेसें, तव तो, पूर्वपरिमाणके न त्यागनेसें, शरीरवत्, आत्माको उत्तरपरिमाणकी उपपत्ति नही होवेगी. तथा हे जैन! तू आत्माको शरीरपरिमाण कहता है, तव तो, शरीरके खंडन करनेसें, तिस आत्माका खंडन, क्यों नही होता है? सो कहो.

उत्तरपक्षः—हे वादिन्! जो तूने कहा कि, आत्माके सर्वव्यापीके अभावसें इत्यादि—सो असत्य है. क्योंकि, जो जिसकरके संयुक्त है, सोही तिसप्रति उपसर्पण करता है, ऐसा नियम नही है. चमकपाषाणकरके, लोहा संयुक्त नही भी है, तो भी तिसके आकर्षण करनेकी उपलब्धिसें.

पूर्वपक्षः—जेकर असंयुक्तका भी आकर्षण होवे, तव तो, तिसके शरीरारंभप्रति, एकमुखी हुए, त्रिभुवन उदरविवरवर्त्ति परमाणुओंका उपसर्पण प्रसंग होनेसें, न जाने कितने परिमाणवाला तिसका शरीर होवेगा?

उत्तरपक्षः—संयुक्तके भी, आकर्षणमें यही दोष, क्यों नही होवेगा? आत्माको व्यापक होनेकरके, सकलपरमाणुओंका तिस आत्माके साथ संयोग होनेसें.

पूर्वपक्षः—संयोगके अविशेषसें, अदृष्टके वशसें विवक्षितशरीरके उत्पादन करनेमें, योग्य नियतही परमाणु, उपसर्पण करते हैं.

उत्तरपक्षः—तव तो हमारे पक्षमें भी तुल्य है. । और जो कहा कि, सावयवशरीरके, प्रतिअवयवमें, प्रवेश करता आत्मा इत्यादि. सो भी,

कथनमात्रही है. क्योंकि, सावयवपणा, और कार्यपणा, कथंचित् आत्माविषे हम मानतेही हैं. परंतु ऐसें माननेसें, घटादिवत्, पहिले प्रसिद्ध समानजातीयअवयवोंकरके आरभ्यत्वकी प्रसक्ति नही है. क्योंकि, नही निश्चयसें, घटादिकोंविषे भी, कार्यसें प्रथम प्रसिद्ध समानजातीय कपालसंयोगकरके आरभ्यत्व देखा है. कुंभकारादि व्यापारसंयुक्त माटीके पिंडसें, प्रथमही, घटके पृथुबुध्नोदरादि आकारकी उत्पत्ति प्रतीत होनेसें. द्रव्यकाही, पूर्वाकार परित्यागनेसें, उत्तराकार परिणाम होना, सोही, कार्यत्व है. सो कार्यत्व, बाहिरकीतरें अभ्यंतर भी अनुभूतही है. और पटादिकोंविषे स्वअवयवसंयोगपूर्वक कार्यत्वके देखनेसें सर्वजगे तैसें होना चाहिये, यह युक्त नही है. क्योंकि, नही तो, काष्ठविषे लोहलेख्यत्वके उपलंभ होनेसें, वज्रमें भी लोहलेख्यत्वका प्रसंग होवेगा. और प्रमाणबाधन तो दोनोंजगे तुल्य है. और उक्तलक्षणकार्यत्व अंगीकार करें भी, आत्माको, अनित्यत्वके प्रसंगसें, प्रतिसंधान (स्मरण)के अभावकी प्राप्ति नही होती है. क्योंकि, कथंचित् अनित्यत्वके हुएही, इस संधानको, उपपद्यमान होनेसें. और जो यह कहा कि, शरीरपरिमाण आत्माके हुए, आत्माको मूर्त्तत्वकी प्राप्ति होवेगी इत्यादि— तहां मूर्त्तत्व किसको कहते हो? असर्वगतद्रव्यपरिमाणको, वा रूपादिमत्वको? तिनमें आद्य पक्ष तो, दोषपोषकेतांइ नही है, संमत होनेसें. और दूसरा पक्ष तो, अयुक्त है, व्याप्तिके अभावसें. क्योंकि, जो असर्वगत है, सो नियमकरके रूपादिमत् है, ऐसा अविनाभाव नही है. क्योंकि, मनको असर्वगत होनेसें भी, रूपादिमत्वके अभावसें. इसवास्ते आत्माकी, शरीरविषे अनुप्रवेशकी अनुपपत्ति नही है, जिसवास्ते शरीर निरात्मक होजावे. असर्वगत द्रव्यपरिमाणलक्षणमूर्त्तत्वको, मनोवत् प्रवेशका अप्रतिबंधक होनेसें, रूपादिमत्वलक्षण मूर्त्तत्वसहित जलादिकोंका भी, भस्मादिविषे अनुप्रवेश नही निषेधीये हैं, और मूर्त्तत्वसें रहित भी आत्माका प्रवेश शरीरमें प्रतिषेध करते हो तो, इससें अधिक और कौनसा आश्चर्य है?

और जो यह कहा कि, देहपरिमाणत्वके हुए, आत्माको बालशरीरपरिमाण त्यागके, इत्यादि—सो भी, अयुक्त है. क्योंकि, युवशरीरपरिमाण-अवस्थाके विषे, आत्माको बालशरीरपरिमाणके परित्यागे हुए, आत्माका सर्वथा विनाशके असंभव होनेसें; विफण अवस्थाके उत्पाद हुए सर्पवत्. तब तो, कैसें परलोकके अभावका अनुषंग होवे? पर्यायसें आत्माके अनित्यत्वके हुए भी, द्रव्यसें नित्यत्व होनेसें. । और जो यह कहा कि, यदि आत्माको शरीरपरिमाणता है, तब तो शरीरके खंडन करनेसें इत्यादि—सो भी, ठीक नही है. क्योंकि, शरीरके खंडनेसें कथंचित् आत्माका खंडन भी इष्ट होनेसें. शरीरसंबद्ध आत्मप्रदेशोंसेंही, कितनेक आत्मप्रदेशोंका खंडितशरीरप्रदेशविषे अवस्थान है, सोही, आत्माका किसी प्रकारसें खंडन है; नतु सर्व प्रकारसें. सो यहां विद्यमानही है. अन्यथा तो, शरीरसें पृथग्भूत अवयवके कंपनकी उपलब्धि नही होवेगी. और यह भी नही है कि, खंडित अवयव प्रविष्टआत्मप्रदेशको पृथग् आत्मतत्वका प्रसंग है; उन आत्मप्रदेशोंका खंडित अवयवसें निकलके पुनः तिसही शरीरमें प्रवेश होनेसें. और यह भी नही है कि, एकत्र संतानविषे अनेकात्माका प्रसंग होवेगा. क्योंकि, अनेकार्थप्रतिभासि ज्ञानोंका एक प्रमाताके आधारकरके प्रतिभासके अभावका प्रसंग होनेसें, शरीरांतर रहे हुए, अनेक ज्ञानावसेय अर्थ संवित्तिवत्.

पूर्वपक्षः—किसतरें खंडिताखंडित अवयवोंका पीछेसें फिर संघट्टन होवे है?

उत्तरपक्षः—एकांत सर्वथाछेदके अनंगीकारसें, पद्मनालतंतुवत्, कथंचित् अच्छेदके भी स्वीकारसें. और तथाविध अदृष्टके वशसें उनका संघट्टन भी फिर अविरुद्धही है. इसवास्ते शरीरपरिमाणही आत्मा अंगीकार करनेयोग्य है, नतु सर्वव्यापक. प्रयोग ऐसें है. आत्मा व्यापक नही है, चेतनत्व होनेसें, जो सर्वव्यापक है, सो चेतन नही है, जैसें आकाश, और आत्मा चेतन है, तिसवास्ते व्यापक नही. आत्माके अव्या-

एकत्वका होना, आत्माके गुणोंका शरीरमेंही उपलभ्यमान होनेसें सिद्ध हुआ, आत्माका शरीरपरिमाणपणा.*

तथा शंकरभाष्यमें और टीकामें जो लिखा है कि, देहपरिमाण परिच्छिन्न आत्माके माने, आत्मा अनित्य सिद्ध होता है,

तथाचानुमानं—"॥देहपरिमाणपरिच्छिन्न आत्मा अनित्यः मध्यमपरिमाणवत्त्वात् घटवत् ॥"

देहपरिमाणपरिच्छिन्न आत्मा अनित्य है, मध्यमपरिमाणवाला होनेसें, घटकीतरें. और जो नित्य है, सो, मध्यमपरिमाणवाला भी नही; यथा आकाश, वा अणुपरिमाणवाला परमाणु. इसवास्ते आत्मा, देहपरिमाणव्यापक नही, किंतु सर्वव्यापक है. इत्यादि—यह पूर्वोक्त कहना ठीक नही है. क्योंकि, पूर्वोक्त अनुमान तो, नैयायिकोंका है, परंतु वेदांतियोंका नही है. वेदांतियोंके मतमें तो, ऐसे अनुमानका उत्थानही नही होता है. क्योंकि, वेदांतियोंने सर्वसें अणुप्रमाणवाले परमाणु, और सर्वसें महाप्रमाणवाला आकाश, यह दोनों मानेही नही है, द्वैतापत्ति होनेसें. तो फिर पूर्वोक्त अनुमान, उनके मतमें कैसें संभवे? अपितु नही संभवे. जब कल्पितवस्तु अनुमानका विषयही नही है, तो फिर, ऐसा अनुमान, वेदांती आत्माकी अनित्यता सिद्ध करनेवास्ते कैसें कह सकते हैं? इसवास्ते व्यासजी, और शंकरस्वामीका जो कथन है, सो स्वमतविरुद्ध, और प्रमाणयुक्तिसें बाधित है. तथा पूर्वोक्त अनुमान भी, व्यभिचारि है.

यथा॥

"॥ वल्मीकं कुंभकारकर्तृजन्यं मृद्विकारत्वात् घटवत् ॥"

जैसें यह अनुमान व्यभिचारि है, जो जो मृद्विकार है, सो सर्व कुंभकारकर्तृजन्य, न होनेसें. ऐसेंही 'मध्यमपरिमाणवत्त्वात्' यह भी हेतु असिद्ध है. क्योंकि, मध्यमपरिमाणवाले चंद्रसूर्यादि, कथंचित् नित्य है; और 'मध्यमपरिमाणवत्त्वात्' यह हेतु, प्रतिवादिजैनोंके मतमें सम्मत

* तैत्तिरीय आरण्यकके दशमे प्रपाठकके अडतीसमे अनुवाकमें भी, 'आपादमस्तकव्यापी' पैरसें लेके मस्तकपर्यंत व्यापी जीव लिखा है.

नही है. और तो हेतु, वादीप्रतिवादी दोनोंको सम्मत होना चाहिये, सोतो, हैही नही. इसवास्ते व्यासजी और शंकरस्वामीका कहना, असमंजस है.

और जो शंकरस्वामी लिखते हैं कि, शरीरोंको अनवस्थितपरिमाणवाले इत्यादि.

तिसका उत्तरः—जीवमें संकोच विकाश होनेकी शक्ति है; कर्मोदयसें जब जीव, स्थूलशरीरको छोडके सूक्ष्मशरीरको धारण करता है, तब जीवके असंख्य प्रदेश संकुचित होके सूक्ष्मशरीरमें समा जाते हैं; जैसें एक कोठेमेंसें प्रकाशक दीपकको लेके एक प्यालेके नीचे रख दिया जावे तो, उस दीपकका प्रकाश उस प्यालेमेंही प्रकाश करेगा; ऐसेंही सूक्ष्मशरीर छोडके महान् शरीरसें जान लेना. और जो शंकरस्वामीने लिखा है, जीवके अनंत अवयव, सो लेख, मिथ्या है. अनंत अवयव नही, किंतु, असंख्य प्रदेश हैं. प्रदेश उसको कहते हैं, जो, आत्माका निरंश अंश होवे; और आत्माके, वे सर्वप्रदेश एकसरीखे हैं; इसवास्ते आत्माकाही संकोच विकाश होता है, प्रदेशोंका नही. जैसें वस्त्रकी तह लगानेसें वस्त्रकाही संकोच है, परंतु तिसके तंतुयोंमें न्युनाधिक्यता नही है. इसवास्ते आत्माही, संकोच विकाश धर्मके होनेसें सुक्ष्मसें स्थूल, और स्थूलसें सूक्ष्मशरीरमें व्यापक होता है. इसवास्ते शंकरस्वामीकी कल्पनामें शंकरस्वामीकी जैनमतकी अनभिज्ञताही, कारण है. इति।

अथ प्रसंगसें 'प्रतिक्षेत्रं भिन्नः' सूत्रके इस अवयवरूप विशेषणकरके आत्मअद्वैतवाद खंडन किया, सो ऐसें है.

वेदांती कहते हैं कि, हम तो एकही परमब्रह्म पारमार्थिक सद्रूप मानते हैं.

उत्तरपक्षः—जेकर एकही परमब्रह्म सद्रूप है, तो फिर, यह जो सरल रसाल प्रियाल हंताल ताल तमाल प्रवाल प्रमुख पदार्थ अध्यगामिपणेकरके प्रतीत होते हैं, वे, क्योंकर सत्स्वरूप नही हैं?

पूर्वपक्षः—येह पूर्वोक्त जे पदार्थ प्रतीत होते हैं, वे सर्व मिथ्या है. तथाचानुमानं—'प्रपंचोमिथ्या' प्रपंच मिथ्या है, प्रतीयमान होनेसें, जो ऐसा है, सो ऐसा है, यथा सीपके टुकडेमें, चांदी. तैसाही यह प्रपंच है,

तिसवास्ते मिथ्या है. इस अनुमानसें प्रपंचमिथ्यारूप है, और एक ब्रह्मही, पारसामर्थिक सद्रूप है.

उत्तरपक्षः—हे पूर्वपक्षिन्! इस अनुमानके कहनेसें तुमारा तर्कवितर्ककार्कश्यसूचन नही होता है। तथाहि। यह जो प्रपंच तुमने मिथ्यारूप माना है, सो मिथ्या, तीन तरेंका होता है. अत्यंत असद्रूप (१) है तो, कुच्छ और और प्रतीत होवे और तरें (२) और तीसरा अनिर्वाच्य (३) इन तीनोंमेंसें कौनसा मिथ्यारूप प्रपंचको माना है?

पूर्वपक्षः—इन पूर्वोक्त तीनों पक्षोंमेंसें प्रथमके दो पक्ष तो हमको स्वीकारही नही है, इसवास्ते हम तो तीसरा अनिर्वाच्य पक्ष मानते हैं, सो यह प्रपंच अनिर्वाच्य मिथ्यारूप है.

उत्तरपक्षः—प्रथम तो तुम यह कहो कि, अनिर्वाच्य क्या वस्तु है? एतावता तुम अनिर्वाच्य किसको कहते हो? क्या वस्तुका कहनेवाला शब्द नही है? वा शब्दका निमित्त नही है? वा निःस्वभावत्व है? प्रथम विकल्प तो कल्पनाकरनेयोग्यही नही है. क्योंकि, यह सरल है, यह रसाल है, ऐसा शब्द तो प्रत्यक्ष सिद्ध है. अथ दूसरा पक्ष है तो, शब्दका निमित्तज्ञान नही है? वा पदार्थ नही है? प्रथम पक्ष तो समीचीन नही है, सरल रसाल ताल तमाल प्रमुखका ज्ञान प्राणीप्राणी प्रति प्रतीत होनेसें, देखनेवाले सर्व जीव जानते हैं; जो सरल रसाल ताल तमाल प्रमुखका ज्ञान हमको है. अथ दूसरा पक्ष तो, पदार्थ, भावरूप नही है? वा अभावरूप नही है? प्रथम कल्पनामें तो, असत्ख्याति अभ्युपगमप्रसंग है, अर्थात् जेकर कहोगे पदार्थ भावरूप नही है, और प्रतीत होता है तो, तुमको असत्ख्याति माननी पडी; और अद्वैतवादीयोंके मतमें असत्ख्याति माननी महादूषण है. अथ दूसरा पक्ष, जो पदार्थ, अभावरूप नही तो भावरूप सिद्ध हुआ. तब तो, सत्ख्याति माननी पडी. और जब अद्वैतवादमत अंगीकार कीया, और सत्ख्याति माननी पडी, तब तो सत्ख्यातिके माननेसें अद्वैतमतकी जडको कूहाडेसें काटा. कदापि अद्वैतमत नही सिद्ध होगा.

पूर्वपक्षः—भावरूप, तथा अभावरूप, येह दोनोंही प्रकारें वस्तु नही.

उत्तरपक्षः—हम तुमको पूछते हैं कि, भाव, और अभाव, इन दोनों-का अर्थ, जो लौकिकमें प्रसिद्ध है, वोही, तुमने माना है? वा इससें विपरीत और तरेंका माना है? जेकर प्रथम पक्ष मानोगे तो, जहां भाव-का निषेध करोगे, तहां अवश्यमेव अभाव कहना पडेगा; और जहां अभावका निषेध करोगे तहां अवश्यमेव भाव कहना पडेगा. जो परस्पर विरोधी है, उनमें एकका निषेध करोगे तो, दूसरेका विधि, अवश्य कहना-ही पडेगा. अथ दूसरा पक्ष मानोगे, तब तो हमारी कुच्छ हानी नही है. क्योंकि, अलौकिक एतावता तुमारे मनःकल्पित शब्द, और शब्दका निमित्त, जेकर नष्ट होजावेगा तो, लौकिकशब्द, और लौकिशब्दका निमित्त, कदापि नष्ट नही होगा; तो फिर, अनिर्वाच्य प्रपंच किसतरें सिद्ध होगा? जब अनिर्वाच्यही सिद्ध नही होगा तो, प्रपंच मिथ्या कैसें सिद्ध होगा? और एकही अद्वैत ब्रह्म कैसें सिद्ध होवेगा? निःस्वभावत्व-पक्षमें भी, निस् शब्दको निषेधार्थके हुए, और स्वभावशब्दको भी भाव अभाव दोनोंमेंसें अन्यतर किसी एक अर्थके अर्थात् भावके, वा अभा-वके वाचक हुए, पूर्ववत् प्रसंग होवेगा.

पूर्वपक्षः—हम तो जो प्रतीत न होवे, उसको निःस्वभावत्व कहते हैं.

उत्तरपक्षः—इस तुमारे कहनेमें विरोध आता है; जेकर प्रपंच प्रतीत नही होता तो, तुमने अपने प्रथम अनुमानमें प्रपंचको प्रतीयमान हेतु-स्वरूपपणे क्योंकर ग्रहण किया? और प्रपंचको अनुमान करनेके समय धर्मीपणे क्योंकर ग्रहण किया? तथा धर्मीपणे ग्रहण करे हुए, वो कैसें प्रतीत नही होता है?

पूर्वपक्षः—जैसा प्रतीत होता है, तैसा है नही.

उत्तरपक्षः—तब तो यह, विपरीतख्याति, तुमने अंगीकार करी सिद्ध होवेगी. तथा हम तुमको पूछते हैं कि, यह जो तुम इस प्रपंचको अनि-र्वाच्य मानते हो, सो प्रत्यक्षप्रमाणसें मानते हो? वा अनुमानप्रमाणसें मानते हो? प्रत्यक्षप्रमाण तो, इस प्रपंचको सत्‌स्वरूपही सिद्ध करता है.

जैसा जैसा पदार्थ है, तैसा तैसाही प्रत्यक्ष ज्ञान उत्पन्न होनेसें. और प्रपंच जो है, सो परस्पर, न्यारी न्यारी, जो वस्तु है, सो अपने अपने स्वरूपमें भावरूप है; और दूसरे पदार्थके स्वरूपकी अपेक्षा अभावरूप है. इस इतरेतरविविक्त वस्तुयोंकोही प्रपंचरूप माना है. तो फिर, प्रत्यक्षप्रमाण, प्रपंचको अनिर्वाच्य कैसें सिद्ध कर सकता है?

पूर्वपक्षः—यह प्रत्यक्ष, हमारे पक्षको प्रतिक्षेप नही कर सकता है. क्योंकि, प्रत्यक्ष तो विधायकही है, तैसें तैसें प्रत्यक्ष ब्रह्मकोही कथन करता है, न कि, प्रपंच सत्यताको कथन करता है; प्रपंच सत्यता तो, तब कथन करी सिद्ध होवे, जेकर प्रत्यक्ष इतर वस्तुमें इतर वस्तुयोंके स्वरूपका निषेध करे; परंतु प्रत्यक्षप्रमाण तो ऐसा है नही, प्रत्यक्षको निषेध करनेमें कुंठ होनेसें.

उत्तरपक्षः—प्रथम तुम विधायक किसको कहते हो?

पूर्वपक्षः—यह ऐसे वस्तुस्वरूपको ग्रहण करे, और अन्यस्वरूपको निषेध न करे, ऐसा प्रत्यक्षही विधायक है.

उत्तरपक्षः—यह तुमारा कहना असत्य है. अन्यवस्तुके स्वरूपके विना निषेध्यां, वस्तुके यथार्थ स्वरूपका कदापि बोध न होनेसें; पीतादिक वर्णोंकरी रहित जब बोध होगा, तबही नील ऐसे रूपका बोध होवेगा, अन्यथा नही. तथा जब प्रत्यक्षप्रमाणकरके यथार्थ वस्तुस्वरूप ग्रहण किया जायगा, तब तो अवश्य अपर वस्तुका निषेध भी तहां जाना जायगा. जेकर प्रत्यक्ष, अन्यवस्तुमें अन्यवस्तुके निषेधको नही जानेगा तो, तिसवस्तुके इदमिति यह ऐसे विधिस्वरूपको भी जान सकेगा. क्योंकि, केवल जो वस्तुके स्वरूपको ग्रहण करना है, सोही अन्यवस्तुके स्वरूपका निषेध करना है. जब प्रत्यक्षप्रमाणविधि, और निषेध, दोनोंहीको ग्रहण करता है, तब तो, प्रपंच, मिथ्यारूप कदापि सिद्ध न होगा. जब प्रत्यक्षप्रमाणसें प्रपंचही मिथ्यारूप सिद्ध न हुआ तो, परम ब्रह्मरूप एकही अद्वैत तत्त्व कैसें सिद्ध होगा? तथा जो तुम प्रत्यक्षको नियमकरके विधायकही मानोगे, तब तो, विद्यावत् अविद्याका भी विधान तुमको मानना पडेगा; सो यह ब्रह्म, अविद्यारहित होनेकरके सन्मात्र

है, प्रत्यक्ष प्रमाणसें ऐसे जानते हुए भी, फिर, प्रत्यक्ष, निषेधक नही है; ऐसे कथन करनेवालेको क्यों नही उन्मत्त कहने चाहिये? इति सिद्ध हुआ प्रत्यक्षबाधित तुमारा पक्ष. । और अनुमानकरके बाधित, ऐसें है. प्रपंच मिथ्या नही है, असत्सें विलक्षण होनेसें; जो असत्सें विलक्षण है, सो, मिथ्या नही है. यथा आत्मा. तैसाही यह प्रपंच है, तिसवास्ते, प्रपंच, मिथ्या नही. । तथा प्रतीयमान जो तुमारा हेतु है, सो ब्रह्मात्माके साथ व्यभिचारी है, क्योंकि, ब्रह्मात्मा प्रतीयमान तो है, परंतु मिथ्यारूप नही है. जेकर कहोगे ब्रह्मात्मा अप्रतीयमान है, तब तो, ब्रह्मात्मा वचनोंका गोचर न होगा; जब वचनगोचर नही, तबतो, तुमको गुंगे बननाही ठीक है. क्योंकि, ब्रह्मविना अपर तो कुच्छ हैही नही, और जो ब्रह्मात्मा है, सो प्रतीयमान नही है; तो फिर तुमको हम गुंगेके विना और क्या कहें? और प्रथम अनुमानमें जो तुमने सीपका दृष्टांत दिया, सो साध्य विकल है. क्योंकि, जो सीप है, सो भी प्रपंचके अंतर्गतही है; और तुम तो, प्रपंचको मिथ्यारूप सिद्ध करा चाहते हो! यह कदापि नही हो सकता है कि, जो साध्य होवे, सोही, दृष्टांतमें कहा जावे. जब सीपकाही अबतक सत्असत्पणा सिद्ध नहीं तो, उसको दृष्टांतमें कैसें ग्रहण किया?

तथा प्रथम जो तुमने प्रपंचको मिथ्या सिद्ध करनेवास्ते अनुमान किया था, सो अनुमान, इस प्रपंचसें भिन्न है? वा अभिन्न है? जेकर कहोगे भिन्न है, तो फिर सत्य है? वा असत्य है? जेकर कहोगे सत्य है तो, तिस सत्य अनुमानकीतरें प्रपंचको भी सत्यपणा होवे. जेकर कहोगे असत्य है, तो फिर क्या शून्य है? वा अन्यथा ख्यात है? वा अनिर्वचनीय है? प्रथम दोनों पक्ष तो, कदापि साध्यके साधक नही है. मनुष्यके शृंगकीतरें (१) तथा सीपके रूपेकीतरें (२) और तीसरा जो अनिर्वचनीय पक्ष है, सो भी, असमर्थ है; अर्थात् साध्यको साध नही सक्ता है. अनिर्वचनीयको असंभविपणेकरके कथन करनेसें.

पूर्वपक्षः—हमारा जो अनुमान है, सो व्यवहारसत्य है; इसवास्ते असत्यत्वके अभावसें अपने साध्यका साधकही है!

उत्तरपक्षः—हम तुमसें पूछते हैं कि, यह 'व्यवहारसत्य' क्या है? व्यवहृतिर्व्यवहारः तब तो, ज्ञानकाही नाम व्यवहार ठहरा. जेकर तिस ज्ञानरूप व्यवहारकरके सत्य है, तब तो, सो अनुमान, पारमार्थिकही है. यदि व्यवहारसत्यकरके अनुमान सत्य है, तब तो व्यवहारसत्यकरके प्रपंच भी सत्य होवे. ऐसे इस पक्षमें सत्ख्यातिरूप प्रपंच सिद्ध हुआ, जब प्रपंच सत् सिद्ध हुवा, तब तो, एकही परमब्रह्म सद्रूप अद्वैततत्त्व किसीतरह भी सिद्ध नही हो सकता है. जेकर कहोगे, व्यवहार नाम शब्दका है, तिसकरके जो सत्य, सो व्यहार सत्य है; तो, हम पूछते हैं कि शब्द सत्यस्वरूप है? वा असत्य है? जेकर कहोगे, शब्द सत्यस्वरूप है, तब तिसकरके जो सत्य है, सो पारमार्थिकही है. तब तो, अनुमाकीतरें प्रपंच भी सत्य सिद्ध हुआ. जेकर कहोगे शब्द असत्यस्वरूप है, तो तिस शब्दसें अनुमानको सत्यपणा कैसें होवेगा? तथा शब्दसें कहे हुए ब्रह्मादि कैसें सत्स्वरूप हो सकेंगे? क्योंकि, जो आपही असत्यस्वरूप है, सो परकी व्यवस्था करने, वा कहनेका हेतु कदापि नही हो सकता है, अतिप्रसंग होनेसें.

पूर्वपक्षः—जैसें खोटा रूप्यक, सत्यरूप्यकके क्रयविक्रयादिक व्यवहारका जनक होनेसें सत्यरूप्यक माना जाता है, तैसेंही हमारा अनुमान, यद्यपिं असत्यस्वरूप है, तोभी जगतमें सत्व्यवहारकरके प्रवर्तक होनेसें, व्यवहार सत्य है; इसवास्ते अपने साध्यका साधक है.

उत्तरपक्षः—इस तुमारे कहनेसें तो, तुमारा अनुमान, असत्यस्वरूपही सिद्ध हुआ. तब तो, जो दूषण, असत्य पक्षमें कथन करे, सो सर्व, यहां पडेंगे. इसवास्ते प्रपंचसें भिन्न, अनुमान, उपपत्ति पदवीको नही प्राप्त होता है. जेकर कहोगे कि, हम अनुमानको प्रपंचसें अभेद मानते हैं, तब तो, प्रपंचकीतरें अनुमान भी, मिथ्यारूप ठहरा. तब तो, अपने साध्यको कैसें साध सकेगा? इस पूर्वोक्त विचारसें प्रपंच मिथ्यारूप नहीं, किंतु

आत्माकीतरें सद्रूप है; तो फिर, एकही ब्रह्म अद्वैततत्त्व है, यह तुमारा कहना क्योंकर सत्य हो सकता है? कदापि नही हो सकता है.

पूर्वपक्षः—हमारी उपनिषदोंमें, तथा शंकरस्वामिके शिष्य आनंदगिरिकृत शंकरदिग्विजयके तीसरे प्रकरणमें लिखा है कि, "परमात्मा जगदुपादानकारणमिति" परमात्माही, इस सर्व जगत्का उपादान कारण है. उपादान कारण उसको कहते हैं कि, जो कारण होवे, सोही कार्यरूप होजावे. इस कहनेसें यह सिद्ध हुआ कि, जो कुच्छ जगत्में है, सो सर्व, परमात्माही आप बन गया है; इसवास्ते जगत् परमात्मारूपही है.

उत्तरपक्षः—वाहरे नास्तिकशिरोमणे! तुम अपने वचनको कभी शोच विचार कर कहते हो, वा नही? क्योंकि, इस तुमारे कहनेसें तो, पूर्ण नास्तिकपणा, तुमारे मतमें सिद्ध होता है. यथा, जब सर्व कुच्छ जगत्स्वरूप परमात्मारूपही है, तब तो, न कोई पापी है, न कोई धर्म्मी है, न कोई ज्ञानी है, न कोई अज्ञानी है, न तो नरक है, न तो स्वर्ग है, न कोई साधु है, न कोई चोर है, सत् शास्त्र भी नही, असत् शास्त्र भी नही, तथा जैसा गोमांसभक्षी, तैसाही अन्नभक्षी, जैसा स्वभार्यासें कामभोग सेवन किया, तैसाही माता बाहिन बेटीसें किया, जैसा ब्रह्मचारी, तैसा कामी, जैसा चंडाल, तैसा ब्राह्मण, जैसा गर्दभ, तैसा संन्यासी; क्योंकि, जब सर्व वस्तुका कारण ईश्वर परमात्माही ठहरा, तब तो सर्व जगत् एकरस एकस्वरूप है, दूसरा तो कोई हैही नही.

पूर्वपक्षः—हम एक ब्रह्म मानते हैं, और एक माया मानते हैं, सो, तुमने जो ऊपर बहुतसें आलजंजाल लिखे हैं, सो सर्व, मायाजन्य है, ब्रह्म तो, सच्चिदानंद एकही शुद्ध स्वरूप है.

उत्तरपक्षः—हे अद्वैतवादिन्! यह जो तुमने पक्ष माना है, सो बहुत असमीचीन है. यथा—माया जो है, सो ब्रह्मसें भेद है, वा अभेद है? जेकर भेद है तो, जड है, वा चेतन है? जेकर जड है तो फिर, नित्य है, वा अनित्य है? जेकर कहोगे नित्य है, तब तो, अद्वैतमतके मूलहीको

दाह करती है. क्योंकि, जब माया, ब्रह्मसें भेदरूप हुई, और जडरूप भई, और नित्य हुई, फिर तो, तुमने आपही अपने कहनेसें द्वैतपंथ सिद्ध करा; और अद्वैतपंथको जड मूलसें काट गेरा. जेकर कहोगे, माया, ब्रह्मसें भेद, जडरूप, और अनित्य है, तो भी, द्वैतता तो कदापि दूर नही होवेगी. क्योंकि, जो नाश होनेवाला है, सो कार्यरूप है; और जो कार्य है, सो कारणजन्य है. तो फिर, उस मायाका उपादानकारण कौन है? सो कहना चाहिये. जेकर कहोगे, अपरमाया, तब तो अनवस्थादूषण है; और अद्वैत तीनों कालोंमें कदापि सिद्ध नही होगा. जेकर ब्रह्महीको उपादानकारण मानोगे, तब तो ब्रह्मही आप सर्वकुछ बन गया; तब तो पूर्वोक्त दूषण आया. जेकर मायाको चैतन्य मानोगे, तो भी, यही पूर्वोक्त दूषण होगा. जेकर कहोगे, माया ब्रह्मसें अभेद है. तब तो ब्रह्मही कहना चाहिये, माया नही कहनी चाहिये.

पूर्वपक्षः—हम तो मायाको अनिर्वचनीय मानते हैं.

उत्तरपक्षः—इस अनिर्वचनीय पक्षको ऊपर खंडन कर आये हैं, इसवास्ते अनिर्वचनीय जो शब्द है, सो, दंभी पुरुषोंने छलरूप रचा प्रतीत होता है; तो भी, द्वैतही सिद्ध होता है, अद्वैत नही.

पूर्वपक्षः—यह जो अद्वैतमत है, इसके मुख्य आचार्य शंकरस्वामी हैं, जिनोंने सर्व मतोंको खंडन करके अद्वैतमत सिद्ध किया है; तो फिर ऐसे शंकरस्वामी, साक्षात् शिवका अवतार, सर्वज्ञ, ब्रह्मज्ञानी, शीलवान्, सर्वसामर्थ्ययुक्त, उनोंके अद्वैत मतको खंडनेवाला कौन है?

उत्तरपक्षः—हे वल्लभमित्र? तुमारी समझमूजब तो जरूर जैसें तुम कहते हो, तैसेंही है; परंतु शंकरस्वामीके शिष्य आनंदगिरिकृत शंकरदिग्विजयमें जो शंकरस्वामीका वृत्तांत लिखा है, उसके पढनेसें तो ऐसा प्रतीत होता है कि, शंकरस्वामी असर्वज्ञ, कामी, अज्ञानी, और असमर्थ थे. तथा तिस वृत्तांतसें ऐसा भी प्रतीत होता है कि, वेदांतियोंका अद्वैत ब्रह्मज्ञान, जबतक यह स्थूल शरीर रहेगा, तबतकही रहेगा; परंतु इस शरीरके पात हुए पीछे वेदांतियोंका ब्रह्मज्ञान, नही रहेगा. जो कि,

पैंतीसमें स्तंभमें संक्षेपसें हम लिखही आये हैं. इसवास्ते हे भव्य! जब शंकरस्वामीका चरित्रही असमंजस है, तो फिर, उनके कहे हुए मतको सयौक्तिक कौन समझ सकता है?

पूर्वपक्षः—"पुरुषएवेदं" इत्यादि श्रुतियोंसें अद्वैतही सिद्ध होता है.

उत्तरपक्षः—यह भी तुमारा कहना असत् है. क्योंकि, जो पुरुषमात्ररूप अद्वैततत्त्व होवे, तब तो, यह जो दिखलाइ देता है, कोई सुखी, कोई दुःखी, इत्यादि सर्व परमार्थसें असत् होजावेंगे; जब ऐसे होगा, तब तो, यह जो कहना है,

"॥ प्रमाणतोधिगम्य संसारनैर्गुण्यं तद्विमुखया प्रज्ञया तदुच्छेदाय प्रवृत्तिरित्यादि ॥"

इसका अर्थ संसारका निर्गुणपणा प्रमाणसें जानकर तिस संसारसें विमुखबुद्धि होकरके तिस संसारके उच्छेदवास्ते प्रवृत्ति करे इत्यादि—सो आकाशके फूलकी सुगंधिका वर्णन करनेसरीखा है. क्योंकि, जब अद्वैतरूपही तत्त्व है, तब नरकतिर्यंचादिभवभ्रमणरूप संसार कहां रहा? जिस संसारको निर्गुण जानकर तिसके उच्छेद करनेकी प्रवृत्ति होवे!

पूर्वपक्षः—तत्त्वसें पुरुष अद्वैतमात्रही है, और यह जो संसार निर्गुण वर्णन किया है, और पदार्थोंके भेदका दर्शन, सदा सर्व जीवोंका जो प्रतिभासन हो रहा है सो, सर्व चित्रामकी स्त्रीके अंगोपांग उच्चनीचकीतरें, भ्रांतिरूप है.

उत्तरपक्षः—यह जो तुमारा कहना है, सो असत् है. क्योंकि, इस बातमें कोई यथार्थ प्रमाण नही है. तद्यथा—जेकर अद्वैत सिद्ध करनेवास्ते कोई पृथग्भूत प्रमाण मानोगे, तब तो, द्वैतापत्ति होवेगी; और प्रमाणके विना किसीका भी मत सिद्ध नही हो सकता है. यदि प्रमाणके विनाही सिद्ध मानोगे, तब तो, सर्ववादी अपने अपने अभिमतको सिद्ध कर लेवेंगे. तथा भ्रांति भी, तुमको प्रमाणभूत अद्वैतसें भिन्नही माननी चाहिये; अन्यथा तो, प्रमाणभूत अद्वैतही अप्रमाण होजावेगा. जब भ्रांति अद्वैतकाही रूप हुई, तब तो,

पुरुषकाही रूप हुई. जब भ्रांतिस्वरूपवाला पुरुषही है, तब तो तत्त्व-व्यवस्था कुछ भी सिद्ध न हुई. जेकर भ्रांति भिन्न मानोगे, तब तो द्वैतापत्ति हो जावेगी; और अद्वैतमतकी हानी होजावेगी. तथा जो यह स्तंभ, इभ कुंभ, अंभोरुह आदि पदार्थोंका भेद दिखता है, सो भ्रांत है, ऐसे कहो तो, नियमसें सोही पदार्थभेददर्शन, किसी जगे सत्य मानना चाहिये, अभ्रांतिके देखे विना कदापि भ्रांति देखनेमें नही आनेसें. पूर्वे जिसने सच्चा सर्प्प नही देखा है, तिसको रज्जुमें सर्प्पकी भ्रांति कदापि नही होवेगी.

तदुक्तम् ॥

नादृष्टपूर्वसर्पस्य रज्ज्वां सर्प्पमतिः क्वचित् ॥
ततः पूर्वानुसारित्वाद् भ्रांतिरभ्रांतिपूर्विका ॥ १ ॥

इस कहनेसें भी, भेद सिद्ध होगया. तथा पुरुष अद्वैतरूपतत्त्व, अवश्यकरके दूसरेको निवेदन करने योग्य है, अपने आपको नही, अपनेमें व्यामोहना होनेसें. जेकर कहनेवालेमें व्यामोह होवे, तब तो अद्वैतकी प्रतिपत्ति कभी भी नही होवेगी.

पूर्वपक्षः–जिसवास्ते अपने आपको व्यामोह है, इसीवास्ते तिस व्यामोहकी निवृत्तिवास्ते, अपने आपको, अद्वैतकी प्रतिपत्ति, करने योग्य है.

उत्तरपक्षः–यह कहना अयुक्त है. क्योंकि, ऐसे हुए, अद्वैतकी प्रतिपत्ति होनेकरके, अपने आपके व्यामोहके दूर होयाहुआ, अवश्यमेव पूर्वरूपका त्याग, और अमूढतालक्षण उत्तररूपकी उत्पत्ति कहनी पडेगी. तब तो अवश्य द्वैतापत्ति होजावेगी. तथा जब अद्वैततत्त्वका उपदेशक पुरुष परको उपदेश करेगा, तब तो, परका अवश्य मानेगा; फिर अद्वैततत्त्वपरको निवेदन करना, और अद्वैततत्त्व मानना, यह तो ऐसें हुआ जैसें मेरा पिता, कुमारब्रह्मचारी है. इसवचनके कहनेसें जरूर वो पुरुष उन्मत्त है; जेकर अपनेको और परको, इन दोनोंको मानेगा, तब तो अवश्य द्वैतापत्ति होवेगी; इसवास्ते जो अद्वैत मानना है, सो युक्तिविकल है.

पूर्वपक्षः—परब्रह्मरूपकी सिद्धिही, सकलभेदज्ञान प्रत्ययोंके निरालंबनपणेकी सिद्धि है.

उत्तरपक्षः—यह कथन भी तुमारा ठीक नही है, परम ब्रह्महीकी सिद्धि न होनेसें; जेकर है तो, स्वतःसिद्धि है, वा परतःसिद्धि है? तहां स्वतःसिद्धि तो है नही, जेकर होवे, तब तो, किसीका भी विवाद न रहे; जेकर कहोगे परतःसिद्धि है तो, क्या अनुमानसें है, वा आगमसें है? जेकर कहोगे, अनुमानसें है तो, वो अनुमान कोनसा है?

पूर्वपक्षः—सो अनुमान यह है. विवादरूप जो अर्थ है, सो प्रतिभासांतःप्रविष्ट है, अर्थात् ब्रह्मभासके अंदर है, प्रतिभासमान होनेसें; जो जो प्रतिभासमान है, सो सो प्रतिभासांतःप्रविष्टही देखा है. जैसें ब्रह्म प्रतिभास स्वरूप प्रतिभासमान है, सकल अर्थ सचेतनअचेतन विवादरूप, तिसकारणसें प्रतिभासांतःप्रविष्ट है.

उत्तरपक्षः—यह तुमारा अनुमान, सम्यक् नही है. (१) धर्मी, (२) हेतु, (३) दृष्टांत, इन तीनोंके प्रतिभासांतःप्रविष्ट होनेसें, साध्यरूपही हुए. तब तो (१) धर्मी, (२) हेतु, (३) दृष्टांत, इन तीनोंके न होनेसें, अनुमानही नही बनसकता है. जेकर कहोगे कि (१) धर्मी, (२) हेतु, (३) दृष्टांत, येह तीनों, प्रतिभासांतःप्रविष्ट नही है; तब तो इनोंहीके साथ हेतु व्यभिचारी होगा.

पूर्वपक्षः—अनादि अविद्यावासनाके बलसें, हेतु दृष्टांत जो है, सो प्रतिभासके बाहिरकीतरें निश्चय करते हैं; जैसें प्रतिपाद्य, प्रतिपादक, सभा, सभापतिजनकीतरें. तिस कारणसें अनुमान भी, होसकता है; और जब सकल अनादि अविद्याका विलास दूर होजावेगा, तब तो प्रतिभासांतःप्रविष्टही, प्रतिभास होगा; विवाद भी न रहेगा. प्रतिपाद्य, प्रतिपादक, साध्य, साधन भाव भी नही रहेगा, तब तो अनुमान करनेका भी कुछ फल नही. आपही अनुभवमान परमब्रह्मके होते हुए, देशकाल अव्यवच्छिन्न स्वरूपके हुएथके, निर्व्यभिचार सकल अवस्था व्यापकपणेवालेमें, अनुमानका कुछ प्रयोग भी नही चाहिये हैं.

उत्तरपक्षः—जो अनादि अविद्या, प्रतिभासांतःप्रविष्ट है, तब तो विद्याही होगई; तब तो असद्रूप (१) धर्मी, (२) हेतु, (३) दृष्टांत, आदिक भेद, कैसें दिखा सके? जेकर कहोगे, प्रतिभासके बाहिरभूत है, तब तो अविद्या प्रतिभासमान है, वा अप्रतिभासमान है? तिस अविद्याको प्रतिभासमानरूप होनेसें, अप्रतिभाससान तो नही; जेकर कहोगे, प्रतिभासमान है तो, तिसहीके साथ हेतु व्यभिचारी है. तथा प्रतिभासके बाहिरभूत होनेसें, तिसके प्रतिभाससान होनेसें जेकर तुमारे मनमें ऐसा होवे कि, अविद्या जो है, सो न तो प्रतिभासमान है, न अप्रतिभासमान है, न प्रतिभासके बाहिर है, न प्रतिभासांतःप्रविष्ट है, न एक है, न अनेक है, न नित्य है, न अनित्य है, न व्यभिचारिणी है, न अव्यभिचारीणी है, सर्वथा विचारके योग्य नही, सकल विचारांतर अतिक्रांतस्वरूप है, रूपांतरके अभावसें, अविद्या, जो है, सो निरूपतालक्षण है. यह भी तुमारी बडी अज्ञानताका विस्तार है. तैसी निरूपतास्वभाववालीको यह अविद्या है, यह अप्रतिभासमान है, ऐसें कथन करनेको कौन समर्थ है? जेकर कहोगे, यह अविद्या प्रतिभासमान है, तो फिर, क्योंकर अविद्या, नीरूप सिद्ध होगी? क्योंकि, जो वस्तु जिस स्वरूपकरके प्रतिभासमान है, सो तिसही वस्तुका रूप है. तथा अविद्या जो है, सो विचारगोचर है, वा विचारगोचररहित है? जेकर कहोगे, विचारगोचर है, तब तो नीरूप नही; जेकर विचारगोचर नही, तब तो तिसके माननेवाले महामूर्ख सिद्ध होवेंगे. जब विद्या, अविद्या, दोनोंही सिद्ध है, तब तो, एक परमब्रह्म, अनुमानसें कैसें सिद्ध हुआ? इस कहनेसें जो उपनिषद्में एकब्रह्मके कहनेवाली श्रुति है, सो भी खंडन होगई. तथा "सर्वं वै खल्विदं ब्रह्मेत्यादि" वचनको परमात्मासें अर्थांतर होनेसें, द्वैतापत्ति होजावेगी. जेकर कहोगे, अनादि अविद्यासें ऐसा प्रतीत होता है, तब तो पूर्वोक्त दूषणोंका प्रसंग होगा; तिसवास्ते अद्वैतकी सिद्धि वंध्याके पुत्रकी शोभावत् है. इस कारणसें अद्वैतमत, युक्तिविकल है; इसवास्ते सुज्ञजनोंको अनुपादेय है. । इत्यद्वैतमतखंडनम् ॥

तथा (३५) और (३६) इन सूत्रोंमें, और भाष्यमें, जो पक्ष जैनीयोंके तर्फसें किया है, तैसें जैनी मानते नही है, इसवास्ते, अनभ्युपगमसेंही निरस्त हैं. ॥ ३३॥३४॥३५॥३६॥

इति वेदव्यासशंकरस्वामिकृत जैनमतखंडनस्य खंडनं अद्वैतमतखंडनं जैनमतमंडनं च समाप्तं तत्समाप्तौ च समाप्तेयं वेदव्यासशंकरस्वामिलीला ॥ ॐसत् ॥

अथ इससें आगे जैनमतका संक्षेपसें किंचिन्मात्र स्वरूप लिखते हैं. प्रथम तो आत्माका स्वरूप जानना चाहिये; यह जो आत्मा है, सोही जीव है, यह आत्मा स्वयंभू है, परंतु किसीका रचा हुआ नही, अनादि अनंत है, (५) वर्ण, (५) रस, (२) गंध, (८) स्पर्श, इनकरके रहित है, अरूपी है, आकाशवत्, असंख्यप्रदेशी है. प्रदेश उसको कहते हैं, जो, आत्माका अत्यंत सूक्ष्म अंश, जिसका फिर अन्य अंश न होवे, ऐसे असंख्य अंश कथंचित् भेदाभेदरूपकरके एकस्वरूपमें रहे हैं, तिसका नाम आत्मा है. सर्व आत्मप्रदेश ज्ञानस्वरूप है, परंतु आत्माके एकएक प्रदेशऊपर (१) ज्ञानावरण, (२) दर्शनावरण, (३) सुखदुःखरूपवेदनीय, (४) मोहनीय (५) आयु, (६) नाम, (७) गोत्र, (८) अंतराय, इन आठ कर्मकी अनंत अनंत कर्मवर्गणा आच्छादित है, जैसें दर्पणकेऊपर छाया आजाती है. जब ज्ञानावरणादि कर्मोंका क्षयोपशम होता है, तब इंद्रिय, और मनोद्वारा आत्माको शब्द, रूप, गंध, रस, स्पर्शका ज्ञान, और मानसिक ज्ञान उत्पन्न होता है. कर्मोंका क्षय, और क्षयोपशमका स्वरूप देखना होवे तो, कर्मग्रंथ, कर्मप्रकृति, और नंदिकी बृहट्टीकादिसें देखलेना. इस आत्माके एकएक प्रदेशमें अनंत अनंत शक्तियां है, कोई ज्ञानरूप, कोई दर्शनरूप, कोई अव्याबाधरूप, कोई चारित्ररूप, कोई स्थिररूप, कोई अटलअवगाहनारूप, कोई अनंतशक्तिसामर्थ्यरूप, परंतु कर्मके आवरणसें सर्व शक्तियां लुप्त होरही है; जब सर्व कर्म, आत्माके साधनद्वारा दूर होते हैं, तब यही आत्मा, परमात्मा, सर्वज्ञ, सिद्ध, बुद्ध, ईश, निरंजन, परमब्रह्मादिरूप होजाता है; तिसहीका नाम मुक्ति है. और जो कुछ

आत्मामें नर, नारक, तिर्यग्, असर, सुभग, दुर्भग, सुस्वर, दुःस्वर, ऊंच, नीच, रंक, राजा, धनी, निर्धन, दुःखी, सुखी, इत्यादि जो जो अवस्था संसारमें जीवोंकी पीछे हुइ है, जो अब होरही है, और आगेको होवेगी, सो सर्व, मुख्यकरके कर्मोंके निमित्तसें है; वास्तवमें शुद्धद्रव्यार्थिकनयके मतसें तो आत्मामें लोक तीन, थापना, उच्छेद, पाप, पुण्य, क्रिया, करणीय, राग, द्वेष, बंध, मोक्ष, स्वामी, दास, पृथिवीरूप, अपूकायरूप, तेजस्कायरूप, वायुकायरूप, वनस्पतिकायरूप, द्वींद्रिय, त्रींद्रिय, चतुरिंद्रिय, पंचेंद्रिय, कुलधर्मकी रीति, शिष्य, गुरु, हार, जीत, सेव्य, सेवक, इत्यादि उपाधी नही हैं; परंतु इस कथनको एकांत वेदांतियोंकीतरें माननेसें पुरुष अतिपरिणामी होके सत्स्वरूपसें भ्रष्ट होकर मिथ्यादृष्टि होजाता है, इसवास्ते पुरुषको चाहिये, अंतरंग वृत्तिमें तो शुद्धद्रव्यार्थिकनयके मतको मानें, और व्यवहारमें जो साधन, अष्टादश दूषणवर्जित परमेश्वरने कर्मोपाधि दूर करनेवास्ते कहे हैं, तिनमे प्रवर्त्ते. यही स्याद्वादमतका सार है.

तथा यह जो आत्मा है, सो शरीरमात्रव्यापक है; और गिणतीमें आत्मा भिन्न भिन्न अनंत है, परंतु स्वरूपमें सर्व चैतन्यस्वरूपादिककरके एकसदृश है; परंतु एकही आत्मा नही तथा सर्वव्यापी भी नही. जो आत्माको सर्वव्यापी, और एक मानते हैं, वे प्रमाणके अनभिज्ञ हैं. क्योंकि, ऐसे आत्माके माननेसें बंध मोक्ष क्रियादिकोंका अभाव सिद्ध होता है, जो, प्रथम लिखही आये हैं, और जैनमतवाले तो, आत्माका लक्षण ऐसें मानते हैं.

तदुक्तम् ॥

यः कर्त्ता कर्मभेदानां भोक्ता कर्मफलस्य च ॥
संसर्त्ता परिनिर्वाता सह्यात्मा नान्यलक्षणः ॥ १ ॥

अर्थः—जो शुभाशुभ कर्मभेदोंका कर्त्ता है, जो करे कर्मका फल भोगनेवाला है, जो कर्माधिन होके नानागतिमें भ्रमण करनेवाला है, और जो साधनद्वारा सर्व उपाधियां दग्धकरके निर्वाण मोक्षको प्राप्त होता है, सोही

आत्मा है; अन्यलक्षणवाला नही. यदि इन पूर्वोक्त बातोंमेंसें एक बात भी, न माने तो, सर्व शास्त्र, झूठे ठहरेंगे, और शास्त्रोंके कथन करनेवाले अज्ञानी सिद्ध होवेंगे. तथा पूर्वोक्त आत्मा पुण्यपापकेसाथ प्रवाहसें अनादिसंबंधवाला है, जेकर आत्माकेसाथ पुण्यपापका प्रवाहसें अनादिसंबंध, न माने, तब तो, बहुत दूषण मतधारीयोंके मतमें आते हैं; वे येह हैं. जेकर आत्माको पहिला माने, और पुण्यपापकी उत्पत्ति आत्मामें पीछे माने, तब तो, पुण्यपापसें रहित निर्मल आत्मा प्रथम सिद्ध हुआ. (१) निर्मल आत्मा संसारमें उत्पन्न नही होसकता है. (२) विनाकरे पुण्यपापका फल भोगना असंभव है. (३) जेकर विनाकरे पुण्यपापका फल भोगनेमें आवे, तब तो, सिद्ध मुक्तरूप परमात्मा भी पुण्यपापका फल भोगेंगे. (४) करेका नाश, और विनाकरेका आगमन, यह दूषण होवेगा. (५) निर्मल आत्माके शरीर उत्पन्न नही होवेगा. (६) जेकर विनापुण्यपापके करे ईश्वर जीवको अच्छी बुरी शरीरादिककी सामग्री देवेगा, तब तो, ईश्वर अज्ञानी, अन्यायी, पूर्वापरविचाररहित, निर्दयी, पक्षपाती, इत्यादि दूषणोंसहित सिद्ध होवेगा; तब ईश्वर काहेका? (७) इत्यादि अनेक दूषणोंके होनेसें प्रथम पक्ष असिद्ध है. ॥ १ ॥

अथ दूसरा पक्षः—कर्म पहिले उत्पन्न हुए, और जीव पीछे बना, यह भी पक्ष मिथ्या है. क्योंकि, प्रथम तो जीवका उपादानकारण कोई नही. (१) अरूपी वस्तुके बनानेमें कर्त्ताका व्यापार नही. (२) जीवने कर्म करे नही, इसवास्ते जीवको फल न होना चाहिये. (३) जीवकर्त्ताके विना कर्म उत्पन्न नही होसकते हैं (४) जेकर कर्म ईश्वरने करे हैं, तब तो, उनका फल भी ईश्वरको भोगना चाहिये (५) जब कर्मका फल भोगेगा, तब ईश्वर नही (६) जेकर ईश्वर कर्मकरके अन्य जीवोंको लगावेगा तब तो ईश्वर निर्दयी, अन्यायी, पक्षपाती, अज्ञानी, इत्यादि दूषणयुक्त सिद्ध होवेगा (७) तथाहि—जब बुरे कर्म जीवके विनाकरे जीवको लगाए, तब जो जो नरकगतिके दुःख, तिर्यंचगतिके दुःख, दुर्भग, दुःस्वर, अयशः, अकीर्त्ति, अनादेय, दुःख, रोग, सोग, धनहीन, भूख, प्यास, शीत, उष्णा-

दि नानाप्रकारके दुःख जीवने भोगे हैं, वे सर्व, ईश्वरकी निर्दयतासें हुए. (१) विना अपराधके दुःख देनेसें अन्यायी, (२) एकको सुखी, एकको दुःखी करनेसें पक्षपाती, (३) पीछे, पुण्यपापके दूर करनेका उपदेश देनेसें अज्ञानी, (४) इत्यादि अनेक दूषण होनेसें दूसरा पक्ष भी असिद्ध है. ॥ २ ॥

अथ तीसरा पक्षः—जीव, और कर्म, एकही कालमें उत्पन्न हुए; यह भी पक्ष मिथ्या है. क्योंकि, जो वस्तु साथ उत्पन्न होती है, उनमें कर्त्ता कर्म नही होते हैं. (१) उस कर्मका फल जीवको न होना चाहिये. (२) जीव और कर्मोंका, उपादानकारण नही. (३) जेकर एक ईश्वरही, जीव और कर्मका उपादानकारण मानीये तो, असिद्ध है. क्योंकि, एक ईश्वर जड चेतनका उपादानकारण नही होसकता है. (४) ईश्वरको जगत् रचनेसें कुछ लाभ नही. (५) न रचनेसें कुछ हानि नही. (६) जब जीव, और जड, नही थे तब ईश्वर किसका था? (७) जीव कर्म स्वयमेव उत्पन्न नही होसकते हैं. (८) इसवास्ते तीसरा पक्ष भी मिथ्या है. ॥ ३ ॥

अथ चौथा पक्षः—जीवही सच्चिदानंदरूप अकेला है, पुण्यपाप नही; यह भी पक्ष मिथ्या है. क्योंकि, विनापुण्यपापके जगत्की विचित्रता कदापि सिद्ध नही होवेगी. इसवास्ते चौथा पक्ष भी मिथ्या है. ॥ ४ ॥

अथ पांचमा पक्षः—जीव, और पुण्य पाप, येह हैही नही; यह भी कहना मिथ्या है. क्योंकि, जब जीवही नही है, तब यह ज्ञान किसको हुआ? कि कुछ हैही नही! इसवास्ते पांचमा पक्ष भी असिद्ध है. ॥ ५ ॥

इन पूर्वोक्त पांचों पक्षोंके असिद्ध होनेसें, छठ्ठा यही पक्ष सिद्ध हुआ कि, जीव और कर्मोंका संयोगसंबंध, प्रवाहसें अनादि है. तथा यह आत्मा कर्मोंके संबंधसें त्रसथावररूप होरहा है. थावरके पांच भेद हैं. पृथिवी (१), जल (२), अग्नि (३), पवन (४), और वनस्पति (५). इन पांचों थावरोंको एकेंद्रिय जीव कहते हैं. त्रसके चार भेद हैं. द्वींद्रिय (१), त्रींद्रिय (२), चतुरिंद्रिय (३), पंचेंद्रिय (४), तथा नारक,

तिर्यंच, मनुष्य, देवता; उनमें नरकवासीयोंके (१४) भेद, तिर्यंचगतिके (४८) भेद, मनुष्यगतिके (३०३) भेद, और देवगतिके (१९८) भेद हैं. येह सर्व मिलाके जीवोंके (५६३) भेद हैं.

तथा यह आत्मा कथंचित् रूपी, और कथंचित् अरूपी है. जबतक संसारीआत्मा कर्मकर संयुक्त है, तबतक कथंचित् रूपी है; और कर्मरहित शुद्ध आत्माकी विवक्षा करीये, तब कथंचित् अरूपी है. जेकर आत्माको एकांत रूपी मानीये, तब तो, आत्मा जडरूप सिद्ध होवेगा, और काटनेसें कट जावेगा; और जेकर आत्माको एकांत अरूपी मानीये, तब तो, आत्मा, क्रियारहित सिद्ध होवेगा; तब तो बंध मोक्ष दोनोंका अभाव होवेगा; जब बंध मोक्षका अभाव होवेगा, तब शास्त्र, और शास्त्रके वक्ता झूठे ठहरेंगे; और दीक्षा दानादि सर्व निष्फल होवेंगे. इसवास्ते आत्मा कथंचित् रूपी, कथंचित् अरूपी है. ।

तथा प्रमाणनयतत्त्वालोकालंकारसूत्रमें आत्माका स्वरूप ऐसा लिखा है. ।

" ॥ चैतन्यस्वरूपः परिणामी कर्त्ता भोक्ताद्भोक्ता स्वदेहपरिमाणः । प्रतिक्षेत्रं भिन्नः पौद्गलिकादृष्टवांश्चायमिति ॥ "

भावार्थः—साकार निराकार उपयोगस्वरूप है जिसका, सो चैतन्यस्वरूप (१). समयसमयप्रति, पर अपर पर्यायोंमें गमन करना, अर्थात् प्राप्त होना, सो परिणाम, सो नित्य है इसके, सो परिणामी (२). इन दोनों विशेषणोंकरके आत्माको जडस्वरूप कूटस्थ नित्य माननेवाले नैयायिकादिकोंका खंडन किया, सो देखना होवे तो, प्रमाणनयतत्त्वालोकालंकारकी लघुवृत्ति स्याद्वादरत्नाकरावतारिकासें देख लेना. कर्त्ता, अदृष्टादिकका (३). साक्षात् उपचाररहित, सुखादिकका भोक्ता, सो साक्षाद्भोक्ता (४). इन दोनों विशेषणोंकरके कापिलमतका निराकरण किया, सो भी, पूर्वोक्त ग्रंथसें जानलेना. स्वदेहपरिमाण, अपने ग्रहण करे शरीरमात्रमें व्यापक (५). इस विशेषणकरके नैयायिकादि परिकल्पित आत्माका सर्वव्यापिपणा निषेध किया, जो पूर्वसंक्षेपसें लिख आये हैं. शरीरशरीरप्रति भिन्न

भिन्न (६). इस विशेषणकरके आत्माद्वैतवाद परास्त किया, सो भी संक्षेपसें पूर्व लिख आये हैं. और अलग अलग अपने अपने करे कर्मोंके अधीन (७). इस विशेषणकरके नास्तिकमतका पराजय किया, सो पूर्वोक्त ग्रंथसें जान लेना. इन पूर्वोक्त विशेषणविशिष्ट यह आत्मा है. तथा यह आत्मा, संख्यामें अनंतानंत है. जितने तीनकालके समय, तथा आकाशके सर्व प्रदेश हैं, उतने हैं. इसवास्ते मुक्ति होनेसें संसार, सर्वथा कदापि खाली नही होवेगा. जैसें आकाशके मापनेसें कदापि अंत नही आवेगा. तथा येह अनंतानंत आत्मा, जिस लोकमें रहते हैं, सो लोक, असंख्यासंख्य कोडाकोडी योजनप्रमाण लंबा चौडा उंचा नीचा है.

तथा इन आत्माके तीन भेद है. बहिरात्मा (१), अंतरात्मा (२), और परमात्मा (३). तहां जो जीव, मिथ्यात्वके उदयसें तनु, धन, स्त्री, पुत्र, पुत्र्यादि परिवार, मंदिर (महलगृहादि), नगर, देश, शत्रु, मित्रादि इष्ट अनिष्ट वस्तुयोंमें रागद्वेषरूप बुद्धि धारण करता है, सो बहिरात्मा है; अर्थात् वो पुरुष भवाभिनंदी है. सांसारिक वस्तुयोंमेंही आनंद मानता है. तथा स्त्री, धन, यौवन, विषयभोगादि जो असार वस्तु है, उन सर्वको सार पदार्थ समझता है; तबतकही पंडिताईसें वैराग्यरस घोंटता है, और परमब्रह्मका स्वरूप बताता है, और संत महंत योगी ऋषि बना फिरता है, जबतक सुंदर उद्भटयौवनवंती स्त्री नही मिलती है, और धन नही मिलता है. जब येह दोनों मिले, तत्काल अद्वैतब्रह्मका द्वैतब्रह्म बन जाता है, और अन्य लोकोंको कहने लगजाता है कि, भइया ! हम जो स्त्री भोगते हैं, इंद्रियोंके रसमें मगन रहते हैं, धन रखते हैं, डेरा बांधते हैं, इत्यादि काम करते हैं, वे सर्व मायाका प्रपंच है; हम तो सदाही अलिप्त हैं. ऐसे २ ब्रह्मज्ञानीयोंका मुंह काला करके, गर्दभपर चढाके देशनिकाला करदेना चाहिये !!! क्योंकि, ऐसे ऐसे भ्रष्टाचारी ब्रह्मज्ञानी, कितनेक मूर्ख लोकोंको ऐसे भ्रष्ट करते हैं कि, उनका चित्त कदापि सन्मार्गमें नही लगसकता है. और कितनीक कुलवंती स्त्रियोंको ऐसे बिगाडते हैं कि, वे कुलमर्यादाको भी लोप कर, इन भंगीजंगी फकीरोंकेसाथ दुराचार

करती हैं. और येह जो विषयके भिखारी, धनके लोभी, संतमहंत भंगी-जंगी ब्रह्मज्ञानी बने रहते हैं, वे सर्व, दुर्गतिके अधिकारी होते हैं. क्योंकि, इनके मनमें स्त्री, धन, कामभोग, सुंदरशय्या, आसन, स्नान, पानादि-पर अत्यंत राग रहता है; और दुःखके आये हीनदीन होके विलाप करते हैं; जैसें कंगाल बनीया धनवानोंको देखके झूरता है, तैसें येह पंडित संतमहंत भंगीजंगी लोकोंकी सुंदर स्त्रियोंको और धनादिसाम-ग्रीको देखकर झूरते हैं; मनमें चाहते हैं, येह हमको मिले तो ठीक है. इस बातमें इनोंका मनही साक्षीदाता है. इसवास्ते जो जीव बाह्यवस्तु-कोही तत्त्व समझता है, और तिसहीके भोगविलासमें आनंद मानता है, सो प्रथम गुणस्थानवाला जीव, बाह्यदृष्टि होनेसें बहिरात्मा कहा-जाता है. ॥ १ ॥

अथ जो पुरुष, तत्त्वश्रद्धानकरके संयुक्त होता है, और कर्मोंके बंधन होनेका हेतु अच्छितरें जानता है; जिसवास्ते यह जो जीव इस संसारा-वस्थामें है, सो जीव, मिथ्यात्व (१), अविरति (२), कषाय (३), प्रमाद (४), और योग (५), इन पांचों कर्मबंधके हेतुयोंकरके निरंतर कर्मोंको बांधता है; जब वे कर्मउदयमें आते हैं, तब यह जीव, स्वयमेवही भोगता है; अन्य जन कोई भी तिसमें साहाय्य नही करसकता है. इत्यादि जो जानता है, तथा किंचित् किसी द्रव्यादिवस्तुके नष्ट हुए मनमें ऐसें विचारता है कि, इस परवस्तुके साथ मेरा संबंध नष्ट होगया है, परंतु मेरा द्रव्य तो, आत्मप्रदेशमें अविष्वग्भावसंबंधकरके समवेत, ज्ञानादिलक्षण है, सो तो कहीं भी नही जासकता है. तथा किंचित् द्रव्यादि वस्तुके लाभ होनेसें ऐसें मानता है कि, मेरा इस पौद्गलिकवस्तुकेसाथ संबंध हुआ है, इससें मुझको इसपर क्या प्रमोद करना चाहिये ! और वेदनीय कर्मके उदयसें जब कष्ट प्राप्त होवे, तब समभाव धारण करे, आत्माको परभावोंसें भिन्न मानके उनके त्यागनेका उपाय करे, चित्तमें परमात्माके स्वरूपका ध्यान करे, आवश्यकादि धर्मकृत्योंमें विशेष उद्यम करे, सो चौथे गुणस्थानसें लेके बारमे गुणस्थानपर्यंतवर्त्ती जीव, अंतर्दृष्टिमान् होनेसें अंतरात्मा कहे जाते हैं. ॥ २ ॥

अथ पुनः, जे शुद्धात्मस्वभावके प्रतिबंधक कर्मशत्रुयोंको हणके निरुपमोत्तम केवलज्ञानादि स्वसंपद् पाकरके करतलामलकवत् समस्त वस्तुके समूहको विशेष जानते, और देखते हैं, और परमानंदसंदोह-संपन्न होते हैं, वे तेरमे चौदमे गुणस्थानवर्ती जीव, और सिद्धात्मा, शुद्ध स्वरूपमें रहनेसें परमात्मा कहे जाते हैं. ॥ ३ ॥

अथ बहिरात्मपणा छोडके अंतरात्माके होनेवास्ते तत्त्वज्ञान करना चाहिये; वे तत्त्व जीवाजीवादि नवतरेंके हैं. अथवा देव, गुरु, और धर्म येह तीन तत्त्व हैं. इनका स्वरूप जैनतत्त्वादर्शमें लिखा है, इसवास्ते यहां नही लिखते हैं. * अथवा धर्मास्तिकाय (१), अधर्मास्तिकाय (२), आकाशास्तिकाय (३), काल (४), पुद्गलास्तिकाय (५), और जीवास्तिकाय (६), येह षट् द्रव्यतत्त्व है. इन छहोंही द्रव्योंको जैनमतमें द्रव्य कहते हैं. जेजे अवस्था द्रव्यकी पीछे होगइ है, जेजे वर्त्तमानमें होरही है, और जेजे आगेकों होवेगी, उनहीको जैनमतमें द्रव्यत्वशक्ति कहते हैं. यह द्रव्यत्वशक्ति, द्रव्यसें कथंचित् भेदाभेदरूप है. जैसें सुवर्णमें कटक कुंडलादि है. इस द्रव्यत्वशक्तिहीको, लोकोंने ईश्वर, जगत्स्रष्टा, कल्पन किया है; इसवास्ते भव्यजीवोंके बोधार्थ, किंचिन्मात्र, द्रव्यगुणपर्यायका स्वरूप, लिखते हैं. इस कथनमें जो आवेगी, सोही द्रव्यत्वशक्ति जान लेनी.

तहां प्रथम द्रव्यका स्वरूप लिखते हैं. ।

" ॥ सद्द्रव्यलक्षणम् ॥ " ' सत् ' जो है, सोही द्रव्यका लक्षण है. 'सत्' किसको कहते हैं ? " ॥ सीदति स्वकीयान् गुणपर्यायान् व्याप्नोतीति सत् ॥ " अपने गुणपर्यायको, जो व्याप्तहोवे, सो 'सत्' है. अथवा " ॥ उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत् ॥ " जो उत्पति, विनाश, और स्थिरता, इन तीनोंकरी संयुक्त होवे, सो ' सत् ' है. अथवा " ॥ अर्थक्रियाकारि सत् ॥ " जो अर्थक्रिया करनेवाला है, सो ' सत् ' है.

* देखो जैनतत्त्वादर्शके १ । २ । ५ । मे परिच्छेदमें.

तदुक्तम् ॥

यदेवार्थक्रियाकारि तदेव परमार्थसत् ॥

यच्च नार्थक्रियाकारि तदेव परतोप्यसत् ॥ १ ॥

भावार्थः—जो अर्थक्रियाकारि है, सोही, परमार्थसें सत् है; और जो अर्थक्रियाकारि नही है, सो परतः भी असत् है. इति. ॥

अथवा अन्यप्रकारसें द्रव्यका लक्षण कहते हैं. ।

"॥ निज निज प्रदेशसमूहैरखंडवृत्त्या । स्वभावविभावपर्यायान् द्रवति द्रोष्यति अदुद्रुवदितिद्रव्यम् ॥"

भावार्थः—अपने अपने प्रदेशसमूहोंकरके अखंडवृत्तिसें स्वभावविभावपर्यायोंको प्राप्त होता है, होगा, और पीछे हुआ, सो द्रव्य है.

अथवा "॥ गुणपर्यायवद् द्रव्यम् ॥" गुणपर्यायवाला द्रव्य होता है.

यदुक्तं विशेषावश्यकवृत्तौ ॥

दवए दुयए दोरवयवो विगारो गुणाण संदावो ॥

दव्वं भव्वं भावस्स भूयभावं च जं जोग्गं ॥ १ ॥

व्याख्याः—तिनातिन पर्यायोंको प्राप्त होता है, वा छोडता है; अथवा अपने पर्यायोंकरकेही प्राप्त होवे, वा छूटे, अथवा द्रुसत्ता तिसकाही अवयव, वा विकार, सो द्रव्य; अवांतरसत्तारूपद्रव्य, महासत्ताके अवयव, वा विकारही होते हैं. अथवा रूपरसादि गुण तिनोंका संद्रावसमूह, घटादिरूप, सो द्रव्य. तथा भाविपर्यायके योग्य जो होनेवाला, सो भी, द्रव्य; राज्यपर्याययोग्य कुमारवत्. तथा पश्चात्कृतभावपर्याय जिसका, सो भी, द्रव्य; अनुभूतघृताधारत्वपर्यायरहित घृतघटवत्. च शब्दसें भूतभविष्यत् पर्याय द्रव्य, भूतभविष्यत् घृताधारत्वपर्यायरहित घृतघटवत्. भूतभावके, भाविभावके, और भूतभविष्यत् भावोंके, इस समय न हुए भी, उन भावोंके जो योग्य है, सोही, द्रव्य है, अन्य नही. अन्यथा तो, सर्वपर्यायोंको भी, अनुभूतत्व होनेसें, और अनुभविष्यमाणत्व होनेसें, पुद्गलादि सर्वको भी द्रव्यत्वका प्रसंग होवेगा. इति गाथार्थः । इतिद्रव्याधिकारः ॥

अथ प्रसंगप्राप्त स्वभावविभावपर्याय, कथन करते हैं. तहां अगुरुलघु-द्रव्यके जे विकार हैं, वे स्वभावपर्याय हैं; उससें विपरीत, अर्थात् स्वभावसें अन्यथा होनेवाले, विभाव हैं. तहां अगुरुलघुद्रव्य स्थिर है, यथा सिद्धिक्षेत्रं, जो कहा है समवायांगवृत्तिमें. गुरुलघुद्रव्य सो है, जो तिर्यग्गामि, तिरछा चलनेवाला है, यथा वायु आदि. अगुरुलघु सो है, जो स्थिर है; यथा सिद्धिक्षेत्र, तथा घंटाकारव्यवस्थित ज्योतिष्कविमानादि. गुणके जे विकार हैं, वे पर्याय हैं; और वे बारां प्रकारके हैं. अनंतभागवृद्धि (१), असंख्यातभागवृद्धि (२), संख्यातभागवृद्धि (३), अनंतगुणवृद्धि (४), असंख्यातगुणवृद्धि (५), संख्यातगुणवृद्धि (६), अनंतभागहानि (७), असंख्यातभागहानि (८), संख्यातभागहानि (९), अनंतगुणहानि (१०), असंख्यातगुणहानि (११), संख्यातगुणहानि (१२), इति.। नरनारकादि चतुर्गतिरूप, अथवा चौराशी लक्ष (८४०००००) योनिरूप, विभावपर्याय है. इति. ॥

अथ गुण लिखते हैं. अस्तित्व (१), वस्तुत्व (२), द्रव्यत्व (३), प्रमेयत्व (४), अगुरुलघुत्व (५), प्रदेशत्व (६), चेतनत्व (७), अचेतनत्व (८), मूर्त्तत्व (९), अमूर्त्तत्व (१०). येह द्रव्योंके सामान्य गुण हैं. प्रत्येक द्रव्यमें आठ आठ गुण, पाते हैं. अब इनका अर्थ लिखते हैं. अस्तित्व, सद्रूपपणा, नित्यत्वादिउत्तरसामान्योंका, और विशेषस्वभावोंका आधारभूत. ।१। वस्तुत्व, सामान्यविशेषात्मकपणा. ।२। द्रव्यत्व, द्रव्याधिकारोक्त 'सत्' और सत् द्रव्यका लक्षण है. ।३। प्रमाणकरके, जो मापनेयोग्य है, सो प्रमेय है. ।४। अगुरुलघुत्व, जो सूक्ष्म, और वचनके अगोचर है; और प्रतिसमय षट्षट्गुणी हानि, और वृद्धि, जो द्रव्यमें होरही है, जो केवल आगमप्रमाणसेंही ग्राह्य है, सो अगुरुलघुगुण है.।

यतः ॥

सूक्ष्मं जिनोदितं तत्त्वं हेतुभिर्नैव हन्यते ॥
आज्ञासिद्धं तु तद् ग्राह्यं नान्यथावादिनो जिनाः ॥ १ ॥

भावार्थः—सूक्ष्म, जिनोक्त तत्त्व, जो हेतुयोंसें खंडित नही होता है,

सो तो जिनाज्ञासेंही माननेयोग्य है. क्योंकि, जे रागद्वेषसें रहित हैं, जिन, भगवान्, सर्वज्ञ, अन्यथा नही कहते हैं. । ५ । प्रदेशत्व, क्षेत्रपण जो अविभागीपरमाणुपुद्गल जितना है. । ६ । चेतनत्व, जिससें वस्तुका अनुभव होता है. ।

यतः ॥

चैतन्यमनुभूतिः स्यात् सत्क्रियारूपमेव च ॥
क्रिया मनोवचःकायेष्वन्विता वर्त्तते ध्रुवम् ॥ १ ॥

भावार्थः—चैतन्य जो है, सो अनुभूति है, और सत्क्रियारूप है, और क्रिया निश्चयकरके मनवचनकायामें अन्वित होके वर्त्ते है. । ७ । अचेतनत्व, ज्ञानरहितवस्तु. । ८ । मूर्त्तत्व, रूपरसगंधस्पर्शवाला. । ९ । अमूर्त्तत्व, रूपादिरहित. । १० ।

अथ द्रव्योंके विशेष गुण लिखते हैं. ज्ञान (१), दर्शन (२), सुख (३), वीर्य (४), स्पर्श (५), रस (६), गंध (७), वर्ण (८), गतिहेतुत्व (९), स्थितिहेतुत्व (१०), अवगाहनहेतुत्व (११), वर्त्तनाहेतुत्व (१२), चेतनत्व (१३), अचेतनत्व (१४), मूर्त्तत्व (१५), अमूर्त्तत्व (१६). येह सोलां विशेष गुण हैं. इनमेंसें जीवके १ । २ । ३ । ४ । १३ । १६ । येह ६ गुण है. पुद्गलके ५ । ६ । ७ । ८ । १४ । १५ । येह ६ गुण है. धर्मास्तिकायके ९ । १४ । १६ । येह ३ गुण है. अधर्मास्थिकायके १० । १४ । १६ । येह ३ गुण है. आकाशास्तिकायके ११ । १४ । १६ । येह ३ गुण है. कालके १२ । १४ । १६ । येह ३ गुण है. अंतके जे चार गुण है, वे स्वजातिकी अपेक्षा तो सामान्य गुण है, और विजातिकी अपेक्षा विशेष गुण हैं. इनका अर्थ प्रकट है, इसवास्ते नही लिखा है.

अथ प्रसंगसें जीवादि द्रव्योंके स्वभाव लिखते हैं. अस्तिस्वभाव (१), नास्तिस्वभाव (२), नित्यस्वभाव (३), अनित्यस्वभाव (४), एकस्वभाव (५), अनेकस्वभाव (६), भेदस्वभाव (७), अभेदस्वभाव (८), भव्यस्वभाव (९), अभव्यस्वभाव (१०), परमस्वभाव (११), यह इग्यारें

(११) द्रव्योंके सामान्य स्वभाव है. तथा चेतनस्वभाव (१), अचेतनस्वभाव (२), मूर्त्तस्वभाव (३), अमूर्त्तस्वभाव (४), एकप्रदेशस्वभाव (५), अनेकप्रदेशस्वभाव (६), विभावस्वभाव (७), शुद्धस्वभाव (८), अशुद्ध स्वभाव (९), उपचरितस्वभाव (१०), येह दश द्रव्योंके विशेषस्वभाव है. एतावता दोनों मिलाके एकवीस (२१) स्वभाव हुए. तिनमें जीवपुद्गलके एकवीस (२१) स्वभाव; धर्मास्तिकाय १, अधर्मास्तिकाय २, आकाशास्तिकाय ३, इन तीनोंके चेतनस्वभाव १, मूर्त्तस्वभाव २, विभावस्वभाव ३, अशुद्धस्वभाव ४, उपचरितस्वभाव [प्रत्यंतरमें—एकप्रदेशस्वभाव—द्रव्यगुणपर्यायके रासमें शुद्धस्वभाव] ५, इन पांचोंको वर्जके सोला स्वभाव. कालके पूर्वोक्त पांच, और बहुप्रदेशस्वभाव, एवं छ (६) स्वभावको वर्जके पंचदश (१५), स्वभाव जानने.

तदुक्तम् ॥

एकविंशति भावाः स्युर्जीवपुद्गलयोर्मताः ॥
धर्मादीनां षोडश स्युः काले पञ्चदश स्मृताः ॥ १ ॥

इति स्वभाव भी, गुणपर्यायके अंतर्भूतही जानने; पृथक् नहीं. परंतु इतना विशेष है कि, 'गुण' तो गुणीमेंही रहता है, और 'स्वभाव' गुण गुणी दोनोंमें रहता है. क्योंकि, गुण गुणी अपनी अपनी परिणतिको परिणमता है; और जो परिणति है, सो ही, स्वभाव है.

अथ स्वभावोंके अर्थ लिखते हैं. अस्तिस्वभाव, स्वभावलाभसें क्दापि दूर न होना. । १ । नास्तिस्वभाव, पररूपकरके न होना. । २ । अपने अपने क्रमभावी नानाप्रकारके पर्याय, श्यामत्वरक्तत्वादिक, वे, भेदक हैं; उनके हुए भी, यह द्रव्य, वोही है, जो पूर्व अनुभव किया था; ऐसा ज्ञान जिससें होता है, सो नित्यस्वभाव. । ३ । द्रव्यका जो पर्याय परिणामीपणा, सो अनित्यस्वभाव. अर्थात् जिस रूपसें उत्पादव्यय है, तिस रूपसें अनित्यस्वभाव है. । ४ । सहभावीस्वभावोंका जो एकरूपकरके आधार होवे, सो एकस्वभाव. जैसें रूपरसगंधस्पर्शका एक आधार, घट है, तैसें नानाप्रकारके धर्माधारत्वकरके एकस्वभावता. । ५ ।

एकमें जो अनेक स्वभाव उपलंभ होवे, सो अनेकस्वभाव. अर्थात् मृदादिद्रव्यका स्थास कोस कुशूलादिक अनेक द्रव्य प्रवाह है, तिससें अनेकस्वभाव कहीये; पर्यायपणे आदिष्ट द्रव्य करिये, तब आकाशादिक द्रव्यमें भी, घटाकाशादिक भेदकरके यह स्वभाव दुर्लभ नहीं है। ।६। गुणगुणी, पर्यायपर्यायी, आदिका संज्ञासंख्यालक्षणादिक भेदकरके सातमा भेदस्वभाव जानना. ।७। संज्ञा संख्या लक्षण प्रयोजन गुणगुणी आदिका एक स्वभाव होनेसें, अभेदवृत्तिद्वारा अभेदस्वभाव. ।८। अनेक कार्यकारणशक्तिक जो अवस्थित द्रव्य है, तिसको क्रमिकाविशेषता आविर्भावकरके अतिव्यंग्य होना, अर्थात् आगामिकालमें परस्वरूपाकार होना, सो भव्यस्वभाव. ।९। तीनों कालमें परद्रव्यमें मिले हुए भी, परस्वरूपाकार न होना, सो अभव्यस्वभाव. ॥

यदुक्तम् ॥

अन्नोन्नं पविसंता देंता ओगासमण्णमण्णास्स ॥
मेलंताविय णिच्चं सगसगभावं णविजहंति ॥१॥ इति. ॥१०॥

स्वलक्षणीभूत परिणामिक भावप्रधानताकरके परम भावस्वभाव कहिये; तात्पर्य यह है कि, जिस जिस द्रव्यमें जो जो परिणामिकभाव प्रधान है, सो सो, परमभावस्वभाव है. यथा ज्ञानस्वरूप आत्मा. ।११। यह सामान्यस्वभावोंका संक्षेपार्थ है. विशेषार्थ देखना होवे तो, बृहत्नयचक्रसें देखलेना.

जिससें चेतनपणाका व्यवहार होवे, सो चेतनस्वभाव. ।१। चेतनस्वभावसें उलटा, अचेतनस्वभाव. ।२। रूपरसगंधस्पर्शादिक जिससें धारण करिये, सो मूर्त्तस्वभाव. ।३। मूर्त्तस्वभावसें उलटा, अमूर्त्तस्वभाव. ।४। एकत्वपरिणति अखंडाकारसन्निवेशका जो भाजनपणा, सो एकप्रदेशस्वभाव. ।५। जो भिन्नप्रदेशयोगकरके तथा भिन्नप्रदेशकल्पनाकरके अनेकप्रदेशव्यवहारयोग्यपणा होवे, सो अनेकप्रदेशस्वभाव. ।६। स्वभावसें अन्यथा जो होवे, सो विभावस्वभाव. ।७। जो केवल शुद्ध होवे, अर्थात् उपाधिभावरहित अंतर्भावपरिणमन, सो शुद्धस्वभाव. ।८।

इससें विपरीत, अर्थात् उपाधिजनित बहिर्भावपरिणमन योग्यता, सो अशुद्धस्वभाव. । ९ । नियमितस्वभावका जो अन्यत्र अपरस्थानमें उपचार करना सो, उपचरितस्वभाव. । १० । उपचरितस्वभाव दो प्रकारका है; एक कर्मजन्य, और दूसरा स्वाभाविक. तहां पुद्गलसंबंधसें जीवको मूर्त्तपणा, और अचेतनपणा, जो कहते हैं, सो 'गौर्वाहीकः' इसतरें उपचार है, सो कर्मजनित है; इसवास्ते कर्म, सोही उपचरितस्वभाव है. और दूसरा जैसें सिद्धात्माको परज्ञातृत्व, परदर्शकत्व, मानना.

अब जो कोई वादी इन पूर्वोक्त स्वभावोंको न माने, तिसके मतमें जो दूषण आवे है सो, लिखते हैं. जेकर एकांत अस्तिस्वभावही माने, तब तो, नास्तिस्वभाव, न मानेगा, तब तो, सर्वपदार्थकी भिन्नभिन्न नियत स्वरूपावस्था नही होवेगी; तब संकरादि दूषण होवेंगे; जगत् एकरूप होजायगा. और सो तो, सर्वशास्त्रव्यवहारविरुद्ध है. इसवास्ते परपदार्थकी अपेक्षा, नास्तिस्वभाव भी, माननाही पडेगा; । १ ।

जेकर एकांत नास्तिस्वभाव माने, तब सर्व जगत् शून्य सिद्ध होवेगा. । २ ।

जेकर एकांत नित्यही मानेगा, तब नित्यको एकरूप होनेसें अर्थक्रियाकारित्वका अभाव होवेगा, अर्थक्रियाकारित्वके अभावसें द्रव्यकाही अभाव होवेगा. । ३ ।

जेकर एकांत अनित्य मानेगा, तब द्रव्य निरन्वय नाश होवेगा; तब तो, पूर्वोक्तही दूषण होगा. । ४ ।

जेकर एकांत एक स्वभाव माने, तब विशेषका अभाव होवेगा; जब विशेषका अभाव होवेगा, तब अनेकस्वभावविना मूलसत्तारूप सामान्यका भी अभाव होवेगा.

तदुक्तं ॥

निर्विशेषं सामान्यं भवेत् खरविषाणवत् ॥
सामान्यरहितत्वाच्च विशेषस्तद्वदेवहि ॥ १ ॥

भाषार्थः–विशेषविना सामान्य गर्दभके सींगसमान असद्रूप है, और सामान्यबिना विशेष भी असद्रूप है, खरशृंगवत्. ॥ ५ ॥ जेकर एकांत

अनेकरूप माने, तब द्रव्यका अभाव होवेगा, निराधार होनेसें; और आधाराधेयके अभावसें वस्तुकाही अभाव होवेगा. । ६ ।

जेकर एकांत भेदही माने, तब विशेषोंके निराधार होनेसें, निःकेवल गुणपर्यायका बोध न होना चाहिये. क्योंकि, आधाराधेयके अभेदविना दूसरा संबंध, घटही नही सकता है; एसे हुए अर्थक्रियाकारित्वका अभाव होवेगा, और तिसके अभावसें द्रव्यका भी अभाव होवेगा. । ७ ।

जेकर एकांत अभेदपक्ष माने, तब सर्व पदार्थ एकरूप होजावेंगे; तिसकरके 'इदं द्रव्यं' यह द्रव्य 'अयं गुणः' यह गुण 'अयं पर्यायः' यह पर्याय, इत्यादि व्यवहारका विरोध होवेगा; और अर्थक्रियाका अभाव होवेगा, अर्थक्रियाके अभावसें द्रव्यकाभी अभाव होवेगा. । ८ ।

जेकर एकांत भव्यस्वभावही माने, तब सर्वद्रव्य परिणामी होके; द्रव्यांतरके रूपको प्राप्त होवेंगे, तब संकरादि दूषण होवेंगे. संकरादि दूषण येह हैं. संकर (१), व्यतिकर (२), विरोध (३), वैयधिकरण (४), अनवस्था (५), संशय (६), अप्रतिपत्ति (७), अभाव (८).

इनका अर्थः–सर्ववस्तुकी एकवस्तु होजावे, तब संकरदूषण होवे. १. जिस वतुस्की किसीप्रकारसें भी स्थिति न होवे, सो व्यतिकरदूषण. २. जडका स्वभाव चेतन होवे, और चेतनका स्वभाव जड होवे, सो विरोधदूषण. ३. जो अनेकवस्तुकी एकके विषे विषमताकरके स्थिति होवे, सो वैयधिकरणदूषण ४. एकसें दूसरा उत्पन्न होगा, दूसरेसें तीसरा, तीसरेसें चौथा उत्पन्न होगा, इसतरें जडसें चेतन, चेतनसें जड, सो अनवस्थादूषण. ५. इसको चेतन कहें कि, जड कहें ? ऐसा जो संदेह, सो संशयदूषण. ६. जिसका किसही कालमें निश्चय न होवे कि, यह जड है कि चेतन है सो अप्रतिपत्तिदूषण. ७. सर्वथा वस्तुका नाशही होवे, सो अभावदूषण. ८. इसवास्ते इन पूर्वोक्त दूषणोंके दूर करनेवास्ते, कथंचित् अभव्यपक्ष भी माननाही योग्य है. । ९ ।

जेकर एकांत अभव्यस्वभावही माने, तब सर्वथा शून्यताकाही प्रसंग होवेगा. । १० ।

यादि परमभावस्वभाव न माने तो, द्रव्यमें प्रसिद्धरूप कैसें दिया जाय? क्योंकि, अनंतधर्मात्मक वस्तुको एकधर्मपुरुषकारकरके बुलाना कथन करना, सोही परमभावस्वभावका लक्षण है. । ११ ।

जेकर एकांतचैतन्यस्वभाव माने तो, सर्व वस्तु चैतन्यरूप होजावेगी; तब ध्यान, ध्येय, ज्ञान, ज्ञेय, गुरु, शिष्यादिकका अभाव होवेगा. क्योंकि, जब जीवको सर्वथा चेतनस्वभावही कहें, अचेतनस्वभाव न कहें तो, अचेतनकर्मका जो कर्मद्रव्योपश्लेष तिसकरके जनित चेतनके विकार विना, जीवको शुद्ध सिद्धसदृशपणा होगा; तब तो, ध्यान ध्येय गुरु शिष्य इनकी क्या जरूर है? ऐसें तो सर्वशास्त्रव्यवहार निष्फल होजायगा. शुद्धको अविद्यानिवृत्तिपणे, क्या उपकार होवे? इसवास्ते 'अलवणा यवागूः' इस वचनवत्, अचेतन आत्मा, ऐसा भी कथंचित् कहना योग्य है. । १२ ।

जेकर एकांत अचेतनस्वभाव माने, तब सकलचैतन्यका उच्छेद होवेगा. । १३ ।

जेकर एकांत मूर्त्त माने, तब आत्माकी मुक्तिकेसाथ व्याप्ति न होवेगी. । १४ ।

जेकर एकांत अमूर्त्त माने, तब आत्मा संसारी कदापि न होवेगा. । १५ ।

जेकर एकांत एकप्रदेशस्वभाव माने, तब अखंड परिपूर्ण आत्माको अनेककार्यकारित्वकी हानि होवेगी. जैसें घटादिक अवयवी, देशसें सकंप, और देशसें निष्कंप देखते हैं; सो द्रव्यको अनेकप्रदेशी न माननेसें कैसें सिद्ध होवेगा? यदि अवयव कंपते हुए भी, अवयवी निष्कंप है, ऐसे कहो तो 'चलती' यह प्रयोग कैसें सिद्ध होगा? प्रदेशवृत्तिकंपका जैसें परंपरासंबंध है, तैसें देशवृत्तिकंपाभावका भी परंपरासंबंध है, तिसवास्ते देशसें चलता है, और देशसें नही चलता है, इस अस्खलित व्यवहारमें अनेक प्रदेश मानना; तथा अनेक प्रदेश स्वभाव न मानीये तो, आकाशादि द्रव्यमें परमाणुसंयोग कैसें घट सके? क्योंकि, एकवृत्ति तो देशसें है, जैसें कुंडल इंद्रको, यहां

कुंडल तो कानमें प्रवृत है, और कान इंद्रका एक देश है, तो भी, इंद्र कहके बुलाया जाता है. और दूसरी वृत्ति सर्वसें है, जैसें सामान्य वस्त्र-द्वयकी, अर्थात् जामा अंगरखा सर्वअंगमें पहिरा है, सो देवदत्त, यह सर्वसें वृत्ति जाननी. तिहां प्रत्येकमें दूषण, सम्मति वृत्तिमें कहे हैं. यथा— परमाणुकी आकाशादिकके साथ देशसें वृत्ति माने तो, आकाशादिकके प्रदेश नही इच्छते भी मानने पडेंगे; और सर्वसें वृत्ति माने तो, परमाणु, आकाशादि प्रमाण होजायगा; और उभयाभाव माने तो, परमाणुको अवृत्तिपणा होजायगा; इसवास्ते द्रव्यको कथंचित् अनेक प्रदेशस्वभाव भी मानना ठीक है. । १६ ।

जेकर एकांत अनेक प्रदेशस्वभाव माने तो, अर्थ क्रियाकारित्वाभाव, और स्वस्वभावशून्यताका प्रसंग होवेगा. । १७ ।

जेकर एकांत विभावस्वभाव माने, तो मुक्तिका अभाव होजावेगा. । १८ ।

जेकर एकांत शुद्धस्वभाव माने, तब तो, आत्माको कर्मलेप न लगेगा और संसारकी विचित्रताका अभाव होवेगा. । १९ ।

जेकर एकांत अशुद्धस्वभाव माने तो, आत्मा कदापि शुद्ध न होवेगा. । २० ।

जेकर एकांत उपचरितस्वभाव माने, तब आत्मा कदापि ज्ञाता नही होवेगा. जेकर एकांतअनुपचरित माने तो, स्वपरव्यवसायीज्ञानवंत आत्मा नही होसकेगा. क्योंकि, ज्ञानको स्वविषयत्व तो अनुपचरित है, परंतु परविषयत्व परापेक्षासें प्रतीयमानपणे, तथा परनिरूपित संबंधपणे उपचरित है. । २१ ।

इसवास्ते स्याद्वादमतकरके सर्वही स्वभाव, कथंचित् द्रव्यमें मानने चाहिये.

उक्तंच ॥

नानास्वभावसंयुक्तं द्रव्यं ज्ञात्वा प्रमाणतः ॥
तच्च सापेक्षसिद्ध्यर्थं स्यान्नयैर्मिश्रितं कुरु ॥ १ ॥

भाषार्थः—नानास्वभावसंयुक्त द्रव्यको प्रमाणसें जानके, तिस द्रव्यको सापेक्ष स्वद्रव्यादिचतुष्टयापेक्षा अस्तिरूप, परद्रव्यादिचतुष्टयापेक्षा नास्तिरूप, इत्यादि सिद्धिकेवास्ते 'स्यात्' शब्द और 'नय' इनसें मिश्रित करो. ॥

इसवास्ते नयके मतद्वारा स्वभावोंका अधिगम संक्षेपमात्रसें द्रव्योंमें दिखाते हैं.

द्रव्यका जो अस्तिस्वभाव है, सो, स्वद्रव्यादिचतुष्टयके ग्रहणसें, द्रव्यार्थिक नयके मतसें, जानना. । १ ।

परद्रव्यादिचतुष्टयके ग्रहणसें, द्रव्यार्थिक नयके मतसें, नास्तिस्वभाव है. । २ ।

उक्तंच ॥

"॥ सर्वमस्तिस्वरूपेण पररूपेण नास्ति च ॥"

उत्पादव्ययकी गौणताकरके सत्तामात्रके ग्रहणसें, द्रव्यार्थिकनयके मतसें, नित्यस्वभाव है. । ३ ।

उत्पादव्ययकी मुख्यतासें, और सत्ताकी गौणतासें, ऐसें पर्यायार्थिक नयके मतसें अनित्यस्वभाव है. । ४ ।

भेदकल्पनाकी निरपेक्षतासें, शुद्धद्रव्यार्थिकनयके मतसें, एक स्वभाव है. । ५ ।

अन्वयद्रव्यार्थिकसें, अनेकस्वभाव है. कालान्वयमें सत्ताग्राहक, और देशान्वयमें अन्वयग्राहक नय, प्रवर्त्तता है. । ६ ।

सद्भुतव्यवहारनयसें, गुणगुणी, पर्यायपर्यायीका भेदस्वभाव है. । ७ ।

गुणगुण्यादिभेदनिरपेक्षतासें, शुद्धद्रव्यार्थिकनयके मतसें, अभेदस्वभाव है. । ८ ।

परमभावग्राहकनयके मतसें, भव्य, अभव्य, स्वभाव जानने, भव्यता, सो स्वभावनिरूपित है; और अभव्यता, सो उत्पन्नस्वभावकी तथा परभावकी साधारण है; इसवास्ते यहां अस्तिनास्तिस्वभावकीतरें स्वपरद्रव्यादिग्राहकनयोंकी प्रवृत्ति, नही होसकती है. । ९ । १० ।

परिणामिक प्राधान्यतासें, परमस्वभाव, द्रव्योंमें है. परिणामका स्वरूप ऐसा है.

सर्वथा न गमो यस्मात् सर्वथा न च आगमः ॥
परिणामः प्रमासिद्ध इष्टश्च खलु पंडितैः ॥ १ ॥

भाषार्थः—सर्वथा जिससें जाना न होवे, और सर्वथा आगमन, न होवे, सो परिणाम, प्रमाणसिद्ध है; ऐसा पंडितोंको इष्ट है. जैसें सुवर्णके कटक कुंडल कंकणादि. । ११ ।

शुद्धाशुद्धपरमभावग्राहक नयके मतसे, चेतनस्वभाव जीवको; और असद्भूतव्यवहारनयसें, ज्ञानावरणादि कर्म, तथा नोकर्म मनवचनकायापणा, इनको चेतन कहिये. चेतनसंयोगकृतपर्याय वहां है, इसवास्ते 'इदं शरीरमावश्यकं जानाति' यह शरीर आवश्यक जानता है, इत्यादि व्यवहार इसीवास्ते होता है. घृतं दहतीतिवत्. । १२ ।

परमभावग्राहकनयके मतसें कर्म नोकर्मको, अचेतनस्वभाव; यथा घृत अनुष्णस्वभाव. और असद्भूतव्यवहारनयसें जीवको भी, अचेतनस्वभाव. इसीवास्ते 'जडोयमचेतनोयम्' इत्यादि व्यवहार है. । १३ ।

परमभावग्राहकनयके मतसें कर्म नोकर्मको मूर्त्तस्वभाव असद्भूतव्यवहारनयसें जीवको भी मूर्त्तस्वभाव; इसीवास्ते 'अयमात्मा दृश्यते' यह आत्मा दिखता है, 'अमुमात्मानं पश्यामि' इस आत्माको मैं देखता हूं, इत्यादि व्यवहार है. तथा 'रक्तौ च पद्मप्रभवासुपूज्यौ' इत्यादि वचन भी इसी स्वभावसें है. । १४ ।

परमभावग्राहकनयसें, पुद्गलवर्जके अन्योंको अमूर्त्त स्वभाव; और पुद्गलको उपचारसें भी, अमूर्त्तस्वभाव नही, तो एकवीसमा भाव नही होगा; तब तो, 'एकविंशतिभावाः स्युर्जीवपुद्गलयोर्मताः' इस वचनके व्याघातसें अपसिद्धांत होवेगा, तिसको दूर करनेवास्ते, असद्भूतव्यवहारनयसें परोक्ष, पुद्गलपरमाणु है, तिसको अमूर्त्त कहिये. व्यवहारिकप्रत्यक्षके अगोचरपणा, सोही, परमाणुका अमूर्त्तपणा, अंगिकार करिये हैं.

तदुक्तम् ॥

"॥ व्यावहारिकप्रत्यक्षागोचरत्वममूर्त्तत्वं परमाणोर्भाक्तं स्वीक्रियतइत्यर्थः ॥" ।१५।

कालाणु, और पुद्गलाणुको परमभावग्राहकनयके मतसें, एकप्रदेशस्वभाव; और भेदकल्पनानिरपेक्षतासें शुद्धद्रव्यार्थिकनयसें एकप्रदेशस्वभाव, कालपुद्गलसें इतर धर्माधर्माकाशजीवोंको भी, अखंड होनेसें है. ।१६।

भेदकल्पनासापेक्षसें शुद्ध द्रव्यार्थिकनयसें, एक छूटे परमाणुविना सर्वद्रव्यको अनेकप्रदेशस्वभाव; और पुद्गलपरमाणुको भी अनेकप्रदेश होनेकी योग्यता है, तिसवास्ते उपचारसें तिसको भी अनेकप्रदेशस्वभाव कहिये. और कालाणुमें सो उपचार कारण नही है, तिसवास्ते तिसको सर्वथा यह स्वभाव नही है. ।१७।

शुद्धाशुद्धद्रव्यार्थिकनयके मतसें, विभावस्वभाव है. ।१८।

शुद्धद्रव्यार्थिकनयके मतसें, शुद्धस्वभाव है. ।१९।

अशुद्धद्रव्यार्थिकनयके मतसें, अशुद्धस्वभाव है. ।२०।

असद्भूतव्यवहारनयके मतसें, उपचरितस्वभाव है. ।२१।

येह नयोंके मतसें स्वभावोंका वर्णन कथन किया. अथ किंचिन्मात्र नयका स्वरूप लिखते हैं.

"॥ नानास्वभावेभ्यो व्यावृत्त्यैकस्मिन् स्वभावे वस्तुनयनं नयः ॥"

भावार्थः—नाना स्वभावसें हटाके, वस्तुको एक स्वभावमें प्राप्त करना, सो नय है.

अथवा । "॥ प्रमाणेन संगृहीतार्थैकांशो नयः ॥"

भावार्थः—प्रमाणकरके जो संगृहीतार्थ है, तिसका जो एक अंश, सो नय.

अथवा। "॥ ज्ञातुरभिप्रायः श्रुतविकल्पो वा इत्येके ॥"

भावार्थः—ज्ञाताका जो अभिप्राय, वा श्रुतविकल्प, सो नय. ।

अथवा। "॥ सर्वत्रानंतधर्माध्यासिते वस्तुनि एकांशग्राहको बोधो नयः ॥"

भावार्थः—सर्वत्र अनंतधर्माध्यासितवस्तुमें एक अंशका ग्राहक जो बोध है, सो नय है.—इत्यनुयोगद्वारवृत्तौ. ॥

अथवा। "॥ अनंतधर्मात्मके वस्तुन्येकधर्मोन्नयनं ज्ञानं नयः ॥" इति नयचक्रसारे ॥

भावार्थः—अनंतधर्मात्मक जो वस्तु अर्थात् जीवादिक एक पदार्थमें अनंतधर्म है, उसका जो एक धर्म ग्रहण करना, और दूसरे अनंतधर्म उसमें रहे है, उनका उच्छेद नही, और ग्रहण भी नही, केवल किसी एक धर्मकी मुख्यता करनी, सो नय कहिये.

अथवा। " ॥ नीयते येन श्रुताख्यप्रमाणविषयीकृतस्यार्थस्यांशस्तदितरांशौदासीन्यतः सप्रतिपत्तुरभिप्रायविशेषो नयः ॥ "

अर्थः—यह सूत्र स्याद्वादरत्नाकरका है। प्रत्यक्षादि प्रमाणसें निश्चित किया जो अर्थ, तिसके अंशको, अंशोंको, वा ग्रहण करें, और इतर अंशोमें औदासीन रहे, अर्थात् इतर अंशोंका निषेध न करे, सो नय, कहिये हैं. यदि मानें अंशके सिवाय तदितर दूसरे अंशोंका निषेध करे तो, नयाभास हो जावे. जैनमतमें जो कथन है, सो नयविना नही है.

यदुक्तं विशेषावश्यके ॥

णत्थि णएहिं विहुणं सुत्तं अत्थो य जिणमए किंचि ॥
आसज्जउ सोआरं नए नयविसारओ बूआ ॥ १ ॥

अर्थः—जिनमतमें नयविना कोई भी सूत्र, और अर्थ, नही है; इसवास्ते नयविशारद, नयका जानकार गुरु, योग्य श्रोताको प्राप्त होकर, विविध नय कथन करे. इति. ॥

अथ प्रसंगसें नयाभासका लक्षण कहते हैं.

" ॥ स्वाभिप्रेतादंशादितरांशापलापी नयाभासः ॥ "

भावार्थः—अपने इच्छित अंशसें पदार्थके अन्य अंशको जो निषेध करे और नयकीतरें भासन होवे, सो नयाभास है; परंतु नय नही. जैसें अन्य-

तीर्थीयोंके मतमें एकांत नित्यअनित्यादिके कथन करनेवाले वाक्य हैं. इति. ॥

वे नय, विस्तारविवक्षामें अनेक प्रकारके हैं. क्योंकि, नानावस्तुमें अनंत अंशोंके एकएक अंशको कथन करनेवाले जे वक्ताके उपन्यास है, वे सर्व; नय हैं. ।

यदुक्तं सम्मतौ अनुयोगद्वारवृत्तौ च ॥

जावइया वयणपहा तावइया चेव हुंति नयवाया ॥
जावइया नयवाया तावइया चेव परसमया ॥ १ ॥

अर्थः–जितने वचनके पथ–रस्ते हैं, उतनेही नयोंके वचन हैं, और जितने नयोंके वचन है, उतनेही परमत हैं, एकांत माननेसें. इसवास्ते विस्तारसें सर्व नयोंके स्वरूप लिख नही सकते हैं, संक्षेपसें लिखते हैं.

सो, पूर्वोक्तस्वरूप नय, दो तरेंके हैं. द्रव्यार्थिकनय (१), और पर्यायार्थिकनय (२).

यदुक्तं ॥

णिच्छयववहारणया मूलिमभेदा णयाण सव्वाणं ॥
णिच्छयसाहणहेऊ दव्व पज्जत्थिया मुणह ॥ १ ॥

अर्थः–निश्चयनय, और व्यवहारनय, येह सर्व नयोंके मूल भेद हैं. और निश्चयनयके साधनहेतु, द्रव्यार्थिक, और पर्यायार्थिक, जानो. इति. ॥

इनमें पूर्वोक्त द्रव्यही अर्थ प्रयोजन है, जिसका, सो द्रव्यार्थिक. उसके युक्तिकल्पनासें दश भेद हैं.

तथाहि ॥

अन्वयद्रव्यार्थिक–जो एकस्वभाव कहिये; जैसें एकही द्रव्य गुणपर्यायस्वभाव कहिये, अर्थात् गुणपर्यायके विषे द्रव्यका अन्वय है, जैसें द्रव्यके जाननेसें द्रव्यार्थादेशसें तदनुगत सर्वगुणपर्याय जाने कहिये; जैसें सामान्यप्रत्यासत्ति परवादीकी सर्वव्यक्ति जानी कहै, तैसें यहां जानना. यह अन्वयद्रव्यार्थिकः । १ ।

स्वद्रव्यादिग्राहक—जैसें अर्थ, जो घटादिकद्रव्य सो स्वद्रव्य, स्वक्षेत्र, स्वकाल, स्वभाव, इन चारोंकी अपेक्षा सत् है, स्वद्रव्य मृत्तिका, स्वक्षेत्र पाटलिपुरादि, स्वकाल विवक्षितहेमंतादि, स्वभाव रक्तादि, इनोंसें जो घटादिककी सत्ता, सो प्रमाण है, सिद्ध है. इति स्वद्रव्यादिग्राहक द्रव्यार्थिकः। २।

परद्रव्यादिग्राहक—जैसें अर्थ जो घटादिक, सो, परद्रव्यादिचतुष्टयकी अपेक्षा सत् नही है; यथा परद्रव्य तंतुप्रमुख, परक्षेत्र काशीप्रमुख, परकाल अतीत अनागतादि, परभाव श्यामतादि, इन चारोंकी अपेक्षा, घट, असत् है, इति परद्रव्यादिग्राहकद्रव्यार्थिकः। ३।

परमभावग्राहक—जिस नयानुसार आत्माको ज्ञानस्वरूप कहते हैं; यद्यपि दर्शन, चारित्र, वीर्य, लेश्यादिक आत्माके अनंत गुण है, तो भी, सर्वमें ज्ञानस्वभाव सार उत्कृष्ट है. क्योंकि, अन्य द्रव्यसें आत्माका भेद ज्ञानस्वभाव दिखाता है, तिसवास्ते शीघ्रोपस्थितिकपणे आत्माका ज्ञानही परमभाव है, इसवास्ते 'ज्ञानमय आत्मा' यहां अनेक स्वभावोंके वीचसें ज्ञानाख्यपरमभाव ग्रहण किया. ऐसें दूसरे द्रव्योंके भी परमभाव, असाधारण गुण लेने. इति परमभावग्राहकद्रव्यार्थिकः। ४।

कर्मोपाधिनिरपेक्ष शुद्धद्रव्यार्थिक—जैसें सर्वसंसारी प्राणीमात्रको सिद्धसमान शुद्धात्मा गिणीयें कहियें, अर्थात् सहजभाव जो शुद्धात्मस्वरूप उसको अग्रगामी करिये, और भवपर्याय जो संसारके भाव उनको गिणिये नही, अर्थात् उनकी विवक्षा न करिये. इति.।

यदुक्तं द्रव्यसंग्रहे ॥

मग्गणगुणठाणेहिं चउदसहिं हवंति तह असु द्धणया ॥
विण्णेया संसारी सव्वे सुद्धा हु सुद्धणया ॥ १ ॥

चतुर्दशमार्गणा. औरगुणस्थानकरके अशुद्ध नय होते हैं, ऐसे जानना, और सर्वसंसारी, शुद्धनयापेक्षा शुद्ध है, ऐसे जानना. इति कर्मोपाधिनिरपेक्षशुद्धद्रव्यार्थिकः। ५।

उत्पादव्ययकी गौणतासें, और सत्ताकी मुख्यतासें, शुद्धद्रव्यार्थिक: जैसें द्रव्य नित्य है, यहां तीनोंही कालमें अविचलितरूपसत्ताका मुख्यपणे ग्रहण करनेसें, यह भाव संभव होता है. क्योंकि, यद्यपि पर्याय, प्रतिक्षण परिणामी है, तो भी, जीवपुद्गलादिकद्रव्यसत्ता कदापि चलती नही है. इति उत्पादव्ययगौणत्वे सत्ताग्राहकः शुद्धद्रव्यार्थिकः । ६ ।

भेदकल्पनानिरपेक्ष शुद्धद्रव्यार्थिक—जैसें निजगुणपर्यायस्वभावसें, द्रव्य, अभिन्न है. । ७ ।

कर्मोपाधिसापेक्ष अशुद्धद्रव्यार्थिक—जैसें क्रोधादिकर्मभावमय आत्मा, जिस समय जो द्रव्य जिस भावे परिणमे, तिस समय सो द्रव्य तन्मय जानना; यथा लोहपिंड अग्निपणे परिणत हुआ तिस कालमें अग्निरूप जानना, ऐसेंही क्रोधमोहादि कर्मोदयकेसमय क्रोधादिभाव परिणत आत्मा क्रोधादिरूप जानना. इसी वास्ते आत्माके आठ भेद सिद्धांतमें प्रसिद्ध है. इति । ८ ।

उत्पादव्ययसापेक्ष सत्ताग्राहक अशुद्धद्रव्यार्थिक—जैसें एकसमयमें द्रव्यको उत्पादव्ययध्रुवयुक्त कहना, यथा जो कटकादिका उत्पादसमय, सोही केयूरादिका विनाशसमय, और कनकसत्ता तो, अवर्जनीयही है. इति । ९ ।

भेदकल्पनासापेक्ष अशुद्धद्रव्यार्थिक—जैसें ज्ञानदर्शनादिक शुद्ध गुण आत्माके हैं. यहां षष्ठी विभक्ति, भेद कथन करती है. ' भिक्षोः पात्रमितिवत् ' भिक्षुसाधुका पात्र; यहां साधु, और पात्रका भेद है. इसीतरें आत्मा, और गुणका भेद षष्ठी विभक्ति कहती है; और गुणगुणीका भेद है नही, तो भी, भेदकल्पनाकी अपेक्षासें अशुद्धद्रव्यार्थिकनयके मतसें ऐसें कथन करनेमें आता है. इति । १० ।

येह द्रव्यार्थिकके दश भेद हुए. ॥

अथ पर्यायार्थिकनयके भेद लिखते हैं:—पर्यायनाम, जो उत्पत्ति, और विनाशको प्राप्त होवे.

यदुक्तम् ॥

अनादिनिधने द्रव्ये स्वपर्यायाः प्रतिक्षणम् ॥
उन्मज्जंति निमज्जंति जलकल्लोलवज्जले ॥ १ ॥

भावार्थः—अनादि अनंतद्रव्यमें स्वपर्याय समयसमयमें उत्पन्न होते हैं, और विनाश होते हैं, जैसें जलमें जलकल्लोल, तरंग इत्यर्थः।

पूर्वोक्त षट् २ हानिवृद्धिरूप, और नरनारकादिरूप, यहां पर्यायशब्दकरके ग्रहण करिये हैं. पर्याय दो प्रकारके हैं, सहभावी पर्याय (१) क्रमभावी पर्याय (२). जो सहभावीपर्याय है, तिसको गुण कहते हैं. पर्यायशब्दसें पर्यायसामान्य स्वव्यक्तिव्यापीको कथन करनेसें दोष नही. तहां सहभावीपर्यायोंको गुण कहते हैं; जैसें आत्माका विज्ञान व्यक्तिशक्तिआदिक. और क्रमभावीको पर्याय कहते हैं; जैसें आत्माके सुख दुःख शोकहर्षादि.

पर्याय भी, स्वभाव (१) विभाव (२) और द्रव्य (१) गुण (२) करके चार प्रकारके हैं. । तथाहि—स्वभावद्रव्यव्यंजनपर्याय, यथा चरमशरीरसें किंचित् न्यूनसिद्धपर्याय. । १ । स्वभावगुणव्यंजनपर्याय, यथा जीवके अनंतज्ञानदर्शन सुखवीर्य आदि गुण. । २ । विभावद्रव्यंजनपर्याय, यथा चौरासीलाख योनि आदि भेद. । ३ । विभावगुणाव्यंजनपर्याय, यथा मति आदि. । ४ । पुद्गलके भी द्व्यणुकादि विभावद्रव्यव्यंजन पर्याय है. । ५ । रससें रसांतर, गंधसें गधांतर, इत्यादिकका होना, सो पुद्गलके विभावगुणव्यंजनपर्याय है. । ६ । अविभागी पुद्गलपरमाणु जे हैं, वे स्वभावद्रव्यव्यंजनपर्याय है. । ७ । एकएक वर्ण गंध रस और अविरुद्ध दो स्पर्श येह स्वभाव गुणव्यंजनपर्याय है. । ८ । ऐसें एकत्वपृथक्त्वादि भी पर्याय है.

उक्तंच ॥

एगत्तं च पहुत्तं च संखा संठाणमेवय ॥
संजोगो य विभागो य पज्जयाणं तु लक्खणं ॥ १ ॥

भावार्थः—एकका जो भाव, सो एकत्व; भिन्न भी परमाणुआदिकमें जैसें यह घट है, ऐसी प्रतीतिका हेतु, सो एकत्व. पृथक्त्व यह इससें पृथक् (अलग) है, ऐसे ज्ञानका हेतु. संख्या, संस्थान, संयोग, विभाग, च शब्दसें नव पुराणादि, येह सर्व पर्यायके लक्षण है.

पूर्वोक्तस्वरूप, पर्यायही है, अर्थ प्रयोजन जिसका, सो पर्यायार्थिक नय. सो छ (६) प्रकारका है.

तद्यथा॥

अनादि नित्य शुद्धपर्यायार्थिक—जैसें पुद्गलपर्याय मेरुप्रमुख प्रवाहसें अनादि, और नित्य है. असंख्याते कालमें अन्योन्य पुद्गलसंक्रम हुए भी, संस्थान वोही है, ऐसेंही रत्नप्रभादिक पृथिवीपर्याय जानने. ।१।

सादि नित्य शुद्धपर्यायार्थिक—जैसें सिद्धके पर्यायकी आदि है. क्योंकि, सर्व कर्म क्षय हुए, तब सिद्धपर्याय उत्पन्न हुआ, तिससें आदि हुइ; परंतु तिसका नाश अंत नही है, इसवास्ते नित्य है. एतावता सिद्धपर्याय सादिनित्य सिद्ध हुआ. । २ ।

सत्ताकी गौणतासें, उत्पादव्ययग्राहक अनित्य शुद्धपर्यायार्थिक—जैसें समयसमयमें पर्याय विनाशी है. यहां विनाशी कहनेसें विनाशका प्रतिपक्षी उत्पाद भी, आगया; परंतु ध्रुवताको गौणकरके दिखाइ नही.।३।

सत्तासापेक्ष नित्यअशुद्धपर्यायार्थिक—जैसें एकसमयमें, पर्याय, उत्पाद व्यय ध्रुव तीनोंकरके रुद्ध है, ऐसा कहना. परंतु पर्यायका शुद्ध रूप तो, तिसकोही कहिये, जो सत्ता न दिखलानी. परंतु यहां तो, मूलसत्ता भी दिखाइ, इसवास्ते अशुद्ध भेद हुआ. । ४।

कर्मोपाधिनिरपेक्ष नित्य शुद्धपर्यायार्थिक—जैसें संसारीजीवके पर्याय, सिद्धके जीवसदृश है. यद्यपि कर्मोपाधि है, तथापि तिसकी विवक्षा न करिये; और ज्ञानदर्शनचारित्रादिक शुद्धपर्यायकीही विवक्षा करिये, तबही पूर्वोक्त कहना बनसकता है. । ५।

कर्मोपाधिसापेक्ष अनित्य अशुद्धपर्यायार्थिक—जैसें संसारवासी जीवोंको जन्ममरणका व्याधि है. यहां जन्मादिक जीवके जे पर्याय कर्मसंयोगसें है, वे अनित्य और अशुद्ध है, तिसवास्तेही जन्मादिपर्यायके नाश करनेके वास्ते, मोक्षार्थी जीव, प्रवृत्तमान होता है. । ६।

येह पर्यायार्थिकके षट् (६) भेद कथन किये.॥

अथ इन पूर्वोक्त दोनों नयोंके स्थानप्रधान कहते हैंः—

द्रव्यार्थिक जो नय है, सो, नित्यही स्थानको कहता है; द्रव्यको नित्य, और सकल कालमें होनेसें. पर्यायार्थिक जो नय है, सो, अनित्यही स्थानको कहता है, प्रायः पर्यायोंको अनित्य होनेसें.

तदुक्तं राजप्रश्नीयवृत्तौ ॥

" ॥ द्रव्यार्थिकनये नित्यं पर्यायार्थिकनयेत्वनित्यं द्रव्यार्थिकनयो द्रव्यमेव तात्त्विकमभिमन्यते नतु पर्यायान् द्रव्यं चान्वयि परिणामित्वात् सकलकालभावि भवति ॥ "

भावार्थः—द्रव्यार्थिकनयसें नित्य और पर्यायार्थिकनयसें अनित्य वस्तु है. द्रव्यार्थिकनय द्रव्यहीको तात्त्विक वस्तु माने हैं, परंतु पर्यायोंको नही. क्योंकि, द्रव्य अन्वयि है, परिणामी होनेसें, तीनों कालमें सद्रूप है.

पूर्वपक्षः—गुणप्रधान, तीसरा गुणार्थिक नय, क्यों नही कहा ?

उत्तरपक्षः—पर्यायोंके ग्रहण करनेसें साथ गुणका भी ग्रहण हो गया, इसवास्ते गुणार्थिक नय, पृथक् नही कहा.

प्रश्नः—पर्याय तो द्रव्यहीके हैं, तब द्रव्यार्थिक, और पर्यायार्थिक, येह दो नय कैसें होसकते हैं?

उत्तरः—द्रव्य और पर्यायके स्वरूपकी विवक्षासें कुछक विशेष है. तथाहि—पर्याय, द्रव्यसें भी सूक्ष्म है. एक द्रव्यमें अनंत पर्यायोंके संभव होनेसें. द्रव्यकी वृद्धिके हुए, पर्यायोंकी निश्चयही वृद्धि होती है. प्रतिद्रव्यमें संख्याते असंख्याते पर्याय, अवधिज्ञानसें परिच्छेद होनेसें. और पर्यायोंकी वृद्धि हुए, द्रव्यवृद्धिकी भजना.

तदुक्तं ॥

भयणाए खेत्तकाला परिवड्ढंतेसु दव्वभावेसु ॥
दव्वे वट्टइ भावो भावे दव्वं तु भयणिज्जं ॥ १ ॥

भावार्थः—द्रव्यभावकी वृद्धिमें क्षेत्रकालकी वृद्धिकी भजना है, द्रव्यकी वृद्धि हुए भावकी वृद्धि अवश्यमेव होती है, और भावकी वृद्धिमें द्रव्यवृद्धिकी भजना है. तथा क्षेत्रसें द्रव्य अनंतगुणे हैं, और द्रव्यसें अवधिज्ञानके विषयभूत पर्याय, संखेयगुणे असंखेयगुणे हैं.

तदुक्तं ॥

खित्तविसेसेहिंतो दव्वमणंतगुणियं पएसेहिं ॥
दव्वेहिंतो भावो संखगुणो असंखगुणिओ वा ॥ १ ॥

भावार्थः–क्षेत्रप्रदेशोंसें द्रव्य अनंतगुणा है, द्रव्यसें भाव संख्यातगुणा, वा, असंख्यातगुणा है; इत्यादि नंदिटीकामें विस्तारसहित कहा है. इसवास्ते द्रव्यपर्यायोंका स्वरूपाविवक्षासें भिन्न होनेसें, नय भी दो तरेके है. यद्यपि दोनों नय, परस्पर मिलते भी है, तो भी, पृथक्भावको नही त्यागते हैं. इनका स्वभावभेद आगे कहेंगे.

प्रश्नः–द्रव्यपर्यायसें व्यतिरिक्त सामान्य विशेष है, तो फिर, सामान्यार्थिक, और विशेषार्थिक, नय क्यों नही ?

उत्तरः–द्रव्यपर्यायसें व्यतिरिक्त सामान्यविशेष है नही, इसवास्ते सामान्यार्थिक विशेषार्थिक नय नहीं कहे.

तद्यथा । तहां प्रसंगसें सामान्यका स्वरूप लिखते हैं. सामान्य दो प्रकारके हैं. तिर्यक्सामान्य (१) और ऊर्द्धतासामान्य (२).

प्रथमका लक्षण कहते हैं. ।

" ॥ प्रतिव्यक्तितुल्यापरिणतिः तिर्यक्सामान्यं यथा शबलशावलेयपिंडेषु गोत्वमिति ॥ "

गवादिकमें गोत्वादिस्वरूप तुल्यपरिणतिरूप तिर्यक्सामान्य है; उदाहरण जैसें, तिसही जातिवाला यह गोपिंड है, अथवा गोसदृश गवय है. ॥ १ ॥

दूसरे सामान्यका लक्षण. ।

" ॥ पूर्वापरपरिणामसाधारणद्रव्यमूर्द्धतासामान्यम् यथा कटककंकणाद्यनुगामिकांचनमिति ॥ "

उर्द्धतासामान्य सो है, जो, पूर्वापरविवर्त्तव्यापि मृदादिद्रव्य यह त्रिकालगामि है.

तदुक्तं ॥

" ॥ पूर्वापरपर्याययोरनुगतमेकं द्रवति तांस्तान् पर्यायान् गच्छतीति व्युत्पत्त्या त्रिकालानुयायी यो वस्त्वंशस्तदूर्द्धतासामान्यमित्यभिधीयते ॥ "

पूर्वापरपर्यायोंमें एक अनुगत उन उन पर्यायोंको प्राप्त होवे, इस व्युत्पत्तिसें त्रिकालानुयायी, जो वस्त्वंश है, सो उर्द्धतासामान्य कहा जाता है. उदाहरण जैसें कटककंकनमें सोही सोना है. अथवा सोही यह जिनदत्त है. तहां तिर्यक्सामान्य तो, प्रतिव्यक्तिमें सादृश्यपरिणतिलक्षण व्यंजनपर्यायही है. क्योंकि, व्यंजनपर्याय, स्थूल है, कालांतर स्थायी है, शब्दोंके संकेतके विषय है, ऐसें प्रावचनिकोंमें अर्थात् जैनाचार्योंमें प्रसिद्ध होनेसें. और उर्द्धतासामान्य तो, द्रव्यहीको विवक्षासें कहता है. और विशेष भी, सामान्यसें विसदृश विवर्त्तलक्षण व्यक्तिरूप पर्यायोंके अंतर्भूतही कहे हैं. इसवास्ते द्रव्यार्थिक पर्यायार्थिक नयोंसें, अधिक नयोंका अवकाश नही है.

अथ सात नयकी संख्या कहते हैं:—द्रव्यार्थिकनयके तीन भेद हैं. नैगम (१) संग्रह (२) व्यवहार (३). पर्यायार्थिकनयके चार भेद हैं. ऋजुसूत्र (१) शब्द (२) समभिरूढ (३) एवंभूत (४). येह सर्व सात नय हुए. पांच भी नयभेद होते हैं, षट् भेद भी हैं, चार भेद भी हैं; यह कथन प्रवचनसारोद्धारवृत्तिमें विस्तारसहित है, सो आगें कहेंगे.

यदुक्तमनुयोगतद्वृत्त्यादिषु ॥

णेगेहिं माणेहिं मिणइ इति णेगमस्स य निरुत्ती सेसाणंपि णयाणं लक्खणमिणं सुणह वोच्छं ॥ १ ॥

संगहियपिंडियत्थं संगहवयणं समासओ विंति वच्चइ विणिच्छियत्थं ववहारो सव्वदव्वेसु ॥ २ ॥

पच्चुपन्नग्गाही उज्जुसुओ णयविही मुणेयव्वो इच्छइ विसेसियतरं पच्चुपन्ननओ सद्दो ॥ ३ ॥

वत्थूओ संकमणं होइ अवत्थू णए समभिरूढे वंजणअत्थतदुभए एवंभूओ विसेसेति ॥ ४ ॥

णायंमि गिण्हियव्वे अगिण्हियव्वे य इत्थ अत्थंमि जइयव्वमेव इइ जो उवएसो सो नओ नाम ॥ ५ ॥

अर्थः—जो एक मान महासत्ता सामान्यविशेषादि ज्ञानोंकरके वस्तु, न मापे, न परिच्छेद करे, किंतु सामान्यविशेषादि अनेक रूपसें वस्तुको माने, सो नैगम; यह नैगमकी निरुक्ति व्युत्पत्ति है. अथवा निगम, लोकमें वसता हूं, तिर्यग्लोकमें वसता हूं, इत्यादि जो सिद्धांतोक्तही बहुत परिच्छेदरूपही निगम है, उनमें जो होवे, सो नैगम. । १ ।

सम्यक्प्रकारसें जो ग्रहण करा है पिंडित एक जातिको प्राप्त हुआ अर्थविषय जिसने, सो गृहितपिंडितार्थ संग्रहका वचन, संक्षेपसें तीर्थंकर गणधर कहते हैं. यह नय, सामान्यही मानता है, विशेष नही. इसवास्ते इसका वचन सामान्यार्थही है. और सामान्यरूपकरके सर्ववस्तुको क्रोडी-करता है, अर्थात् सामान्यज्ञान विषय करता है. । २ ।

वच्चइइत्यादि—'चयनं चयः' पिंडरूप होना, सो चय है. 'निराधिक्येन' अधिक जो चय सो कहिये निश्चय. ऐसा सामान्य है. सो, सामान्य, गया है जिससें, सो विनिश्चय, अर्थात् सामान्याभाव, तिसके अर्थे जो सदा प्रवर्ते, सो व्यवहारनय है. यह व्यवहार, सर्वद्रव्यमें प्रवर्त्ते है. क्योंकि, जगत्में घट स्तंभ कमलप्रमुख विशेषही प्रायः जलहरणादि क्रियामें काम आते हैं, परंतु तिससें अतिरिक्त सामान्य नही; इसवास्ते यह नय सामान्य नही मानता है. इसवास्तेही लोकव्यवहारप्रधान जो नय, सो व्यवहारनय.। अथवा विशेषकरके जो निश्चय, विनिश्चय, गोपालस्त्रीबालकादि भी जिस अर्थको जानते हैं, तिस अर्थमें जो प्रवर्त्ते, सो व्यवहारनय है. यद्यपि निश्चयसें घटादिवस्तुयोंमें पांच (५) वर्ण, दो (२) गंध, पांच (५) रस, आठ (८) स्पर्श, है; तो भी, गोपालांगनादि जिसमें जिस वर्णादिककी अधिकता देखते हैं, तिसही नीलादि वर्णवाली वस्तु कहते हैं; शेष नही मानते हैं. इतिव्यवहारनय. । ३ ।

वर्त्तमान कालमें जो वस्तु होवे, तिसको ग्रहण करनेका शील है जिसका, सो प्रत्युत्पन्नग्राही ऋजुसूत्रनय है. सो, अतीत अनागतको कुटिल जानके त्याग देता है, और ऋजु सरल वर्त्तमानकालभावीवस्तुको जो माने, सो ऋजुसूत्रनय, अतीत अनागत दोनों, नष्ट अनुत्पन्न होनेसें असत् है. और असत्का जो मानना है, सोही कुटिलता है, इस-

वास्ते नही मानता है. अथवा ऋजु अवक्र श्रुत है इसका, सो ऋजुश्रुत, शेष ज्ञानोंमें मुख्य होनेसें. तथाविध परोपकार साधनसें, श्रुतज्ञानहीको ज्ञान मानता है. परकी वस्तुसें अपना कार्य सिद्ध नही होता, इसवास्ते परकी जो वस्तु है, सो वस्तु नही. तथा भिन्नलिंग भिन्नवचनवाले शब्दोंकरके एकही वस्तु कहता है, 'तटः तटी तटं' इत्यादि; 'गुरुः गुरू गुरवः' इत्यादि. तथा इंद्रादिके नामस्थापनादि जे निक्षेप भेद हैं, उनको पृथक् २ मानता है. आगे जे नय कहेंगे, सो अतिशुद्ध होनेसें लिंगवचनके भेदसें वस्तुका भेद मानते हैं, और नाम स्थापना द्रव्य इन तीनों निक्षेपोंको नही मानते हैं. इति ऋजुसूत्र. । ४ ।

अर्थको गौणपणे, और शब्दको मुख्यपणे जो माने, सो नय भी, उपचारसें शब्दनय कहा जाता है. यह नय, वर्त्तमान वस्तुको ऋजुसूत्रसें विशेषतर मानता है. तथाहि । 'तटः तटी तटं' इत्यादि शब्दोंके भिन्नही वाच्य मानता है, भिन्नलिंगवृत्ति होनेसें, स्त्रीपुरुष नपुंसक शब्दवत्. ऐसें यह नय मानता है. तथा 'गुरुः गुरू गुरवः' यहां भी अभिधेयका भेद है, वचनका भेद होनेसें 'पुरुषः पुरुषौ पुरुषाः' इत्यादिवत्. तथा नाम १, स्थापना २, द्रव्य ३, निक्षेप नही मानता है, कार्यसाधक न होनेसें; आकाशपुष्पवत्. पिछले नयसें विशुद्ध होनेसें इसका मानना विशेषतर है, समानलिंगवचनवाले बहुतसें शब्दोंका एक अभिधेय शब्दनय मानता है, जैसें इंद्र शक्र पुरंदरइत्यादि. इति शब्दनय. । ५ ।

वत्थूइत्यादि—वस्तु, इंद्रादि, तिसका संक्रमण अन्यत्र शक्रादिमें जब होवे, तब अवस्तु होवे; समभिरूढनयके मतमें. यह नय, वाचकशब्दके भेद हुए, वाच्यार्थका भी भेद मानता है. शब्दनय तो, इंद्रशक्रपुरंदरादि शब्दोंका वाच्यार्थ एकही मानता है, परंतु यह समभिरूढनय, वाचकके भेदसें वाच्यका भी भेद मानता है. 'इंदतीति इंद्रः, शक्नोतीति शक्रः, पुरं दारयतीति पुरंदरः'. परमैश्वर्यादिक भिन्नही यहां प्रवृत्तिके निमित्त हैं. जेकर एकार्थिक मानीये तो, अतिप्रसंगदूषण होता है. घटपटादि शब्दोंको भी एकार्थिताका प्रसंग होवेगा. ऐसे हुए, जब इंद्रशब्द शक्रशब्दके साथ

एकार्थी हुआ, तब वस्तु परमैश्वर्यका, शकनलक्षणवस्तुमें संक्रमण करा, तब वे दोनोंको एकरूप कर दीया, तिसका संभव है नही. क्योंकि, जो परमैश्वर्यरूप पर्याय है, सोही, शकनपर्याय नहीं हो सकता है. जेकर होवे तो, सर्व पर्यायोंको संकरताकी आपत्ति होनेसें अतिप्रसंगदूषण होवे. इति समभिरूढनयः । ६ ।

वंजणइत्यादि–जो पदार्थ, क्रियाविशिष्टपदसें कहा जाता है, तिसही क्रियाको करता हुआ, वस्तु, एवंभूत कहा जाता है. एवंशब्दकरके, चेष्टा क्रियादिकप्रकार कहते हैं; तिस 'एवं' को 'भूतं' अर्थात् प्राप्त होवे जो वस्तु, तिसको 'एवंभूत' कहते हैं. तिस एवंभूत वस्तुका प्रतिपादक नय भी, उपचारसें एवंभूत कहा जाता है. अथवा 'एवं' शब्दसें कहिये, चेष्टा-क्रियादिकप्रकार; तद्विशिष्टही वस्तुको स्वीकार करनेसें, तिस 'एवं' को, 'भूतं' प्राप्त हुआ जो नय, सो एवंभूत. उपचारविना भी ऐसें एवंभूत-नयका व्याख्यान है. प्रकट करिये अर्थ इसकरके, सो व्यंजन अर्थात् शब्द. अर्थ जो है, सो शब्दका अभिधेयवस्तुरूप है. व्यंजन, अर्थ, और व्यंजन अर्थ दोनोंको, जो नैयत्यसें स्थापन करे. तात्पर्य यह है कि, शब्द-को अर्थकरके और अर्थको शब्दकरके जो, स्थापन करे. जैसें 'घटचेष्टायां घटते' स्त्रीके मस्तकादिऊपर आरूढ हुआ चेष्टा करे, सो घट; जो चेष्टा न करे, सो घटपदका वाच्य नही. चेष्टारहित घटपदका वाचक शब्द भी, नही. इति एवंभूत. । ७ ।

जब यह सातोंही नय, सावधारण होवे, तव दुर्नय है; और अवधार-णरहित, सुनय है. जब सर्व सुनय मिलें, तब स्याद्वाद जैनमत है. इन सर्व नयोंका संग्रह करिये तो, द्रव्यार्थिक (१) पर्यायार्थिक (२) येह दो नय होते हैं. तथा ज्ञाननय (१) क्रियानय (२) होते हैं. तथा निश्चयनय (१) व्यवहारनय (२) होते हैं. क्योंकि, सप्तशतारनामा नय-चक्राध्ययन पूर्वकालमें था, तिसमें एक एक नयके सौ सौ (१००) भेद कथन करे थे; सो तो व्यवच्छेद गया, परंतु इस कालमें द्वादशारनय-चक्र है, तिसमें एक एक नयके द्वादश (१२) भेद कथन करे हैं. यदि किसीको विस्तारसें देखना होवे तो, पूर्वोक्त पुस्तक देख लेना. जिसकी श्लोकसंख्या

अनुमान अष्टादशसहस्र (१८०००) प्रमाण है. यहां तो, विस्तारके भयसें ज्ञाननय क्रियानयका किंचिन्मात्र स्वरूप लिखते हैं.

नायंमिइत्यादिव्याख्या—सम्यक्प्रकारसें उपादेय हेयके स्वरूपको जानके पीछे, इस लोकमें उपादेय, फूलमाला स्त्री चंदनादि; हेय त्यागनेयोग्य, सर्प विष कंटकादि; और उपेक्षा करनेयोग्य, तृणादि; परलोकमें ग्रहण करनेयोग्य, सम्यग्दर्शन चारित्रादि; नही ग्रहण करनेयोग्य, मिथ्यात्वादि; उपेक्षणीय, स्वर्गलक्ष्म्यादि; ऐसे अर्थमें यत्न करना, अर्थात् ज्ञानसें इन वस्तुयोंको यथार्थ जानना, ऐसा जो उपदेश, सो ज्ञाननय जानना. इत्यक्षरार्थः॥

भावार्थ यह है कि ज्ञाननय, ज्ञानको प्रधान करनेवास्ते कहता है. इसलोक परलोकमें जिसको फलकी इच्छा होवे, तिसको प्रथम सम्यग्ज्ञान हुएही अर्थमें प्रवर्त्तना चाहिये, अन्यथा प्रवृत्ति करे फलमें विसंवाद होनेसें, अयुक्त है.

यदुक्तमागमे ॥

"॥ पढमं नाणं तओ दया इत्यादि ॥" प्रथम ज्ञान पीछे दया. ।

तथा । "॥ जंअन्नाणीत्यादि ॥"—जितने कर्म, अज्ञानी क्रोडों वर्षोंमें जपतपादिकसें क्षय करता है, उतने कर्म, ज्ञानवान्, त्रिगुप्त हुआ, एक उत्स्वासमें क्षय करता है.

तथा ॥

पावाओ विणिउत्ति पवत्तणा तहय कुसलपक्खंमि ॥
विणयस्स य पडिवत्ती तिन्निवि नाणे विसप्पंति ॥ १ ॥

भावार्थः—पापसें निवर्त्तना—हटजाना, कुशलकाममें प्रवृत्त होना, विनयकी प्रतिपत्ति, येह तीनोंही ज्ञानके आधीन है. ।

अन्योंने भी कहा है. ।

विज्ञप्तिः फलदा पुंसां न क्रिया फलदा मता ॥
मिथ्याज्ञानप्रवृत्तस्य फलासंवाददर्शनात् ॥ १ ॥

भावार्थः—पुरुषोंको ज्ञानही फल देता है, क्रिया फल नही देती है. क्योंकि, विनाज्ञानके क्रिया करे तो, यथार्थ फल नही होता है. इसवास्ते ज्ञानहीको प्राधान्यता है. तीर्थंकर गणधरोंने भी, एकले अगीतार्थको विहार करना निषेध करा है.

तथाच तद्वचनम् ॥

गीयत्थो य विहारो बीओ गीयत्थमीसिओ भणिओ ॥
इत्तो तइओ विहारो नाणुन्नाओ जिणवरिंदेहिं ॥ १ ॥

भावार्थः—गीतार्थ विहार करे, वा गीतार्थके साथ विहार करे, इन दोनों विहारोंके विना, अन्य तीसरा विहार, तीर्थंकरोंका अननुज्ञात है, अर्थात् तीसरे विहारकी तीर्थंकरोंने आज्ञा नही दीनी है. अंधा अंधेको रस्ता नही बता सक्ता है, इति. यह तो क्षायोपशम ज्ञानकी अपेक्षा कथन है. क्षायिकज्ञानकी अपेक्षासें भी, विशिष्टफलका साधन ज्ञानही है. क्योंकि, अर्हन्‌भगवान्‌को भवसमुद्रके कांठे रहे दीक्षा लेके उत्कृष्ट तप चारित्रवान् होनेसें भी, मुक्तिकी प्राप्ति नही होती है, जबतक केवलज्ञान नही होता है. इसवास्ते ज्ञानही, पुरुषार्थका हेतु होनेसें, प्रधान है. । इति ज्ञाननयमतम् ॥

अथ क्रियानय । नायम्मीत्यादि—यहां ज्ञान ग्रहण करने योग्य अर्थमें, और न ग्रहण करने योग्य अर्थमें, सर्व पुरुषार्थकी सिद्धिवास्ते यत्न करना. यहां प्रवृत्तिनिवृत्तिलक्षण क्रियाहीकी मुख्यता है. और ज्ञान, क्रियाका उपकरण होनेसें गौण है. इसवास्ते सकल पुरुषार्थकी सिद्धिवास्ते क्रियाही, प्रधान कारण है. ऐसा जो उपदेश, सो क्रियानय जानना. यह नय भी, अपने मतकी सिद्धिवास्ते युक्ति कहता है. क्रियाही, प्रधान पुरुषार्थकी सिद्धिमें कारण है. क्योंकि, आगममें तीर्थंकर गणधरोंने क्रिया रहितोंका ज्ञान भी, निष्फल कहा है.

तदुक्तम् ॥

सुबहुंपि सुयमहीयं किं काही चरणविप्पमुक्कस ॥
अंधस्स जह पलित्ता दीवसयसहस्सकोडीवि ॥

भावार्थः—चारित्ररहितको बहुत पढ्या भी ज्ञान क्या करेगा? जैसें अंधेको लाख क्रोड दीवे भी प्रकाश नही कर सकते हैं. तथा कोई पुरुष रस्ता तो जानता है, परंतु चलता नही तो, क्या वो मजलसिर इच्छित ग्राम वा नगरको पहुंचेगा? कदापि नही. तथा जो, तरना जानता है, परंतु नदीमें हाथ पग नही हिलाता है तो, क्या वो पार हो जायगा? नहीं डूब जायगा? ऐसेंही क्रियाहीन ज्ञानी, जानना. ॥

तथा॥ "जहा खरो चंदनभारवाही इत्यादि"—जैसें गदहे ऊपर चंदन लादा, परंतु गर्दभको चंदनका सुख नही, ऐसेंही क्रियाहीन ज्ञानवान्को सुगति नही. अन्योंने भी कहा है. ॥

क्रियैव फलदा पुंसां न ज्ञानं फलदं मतं ॥
यतः स्त्रीभक्ष्यभोगज्ञो न ज्ञानात् सुखितो भवेत् ॥ १ ॥

भावार्थः—क्रियाही पुरुषोंको फलदात्री है, ज्ञान नही. क्योंकि, स्त्री और मोदकादिके ज्ञानसें कामी और भूखे, तृप्त नही होते हैं.

यह तो क्षायोपशम चारित्रक्रियाकी अपेक्षा प्राधान्यपणा कहा. अब क्षायिकी क्रियापेक्षा कहते हैं. अर्हन् भगवान्को केवलज्ञान भी होगया है, तो भी, जबतक सर्वसंवररूप पूर्णचारित्र चतुर्दशगुणस्थान नही आता है, तबतक मुक्तिकी प्राप्ति नही होती है. इस वास्ते क्रियाही प्रधान है.। इति क्रियानयमतम्॥

इन पूर्वोक्त दोनों नयोंको पृथक् २ एकांत माने तो, मिथ्यात्व है; और स्याद्वादसंयुक्त माने तो, सम्यग्दृष्ट है. ऐसेंही सर्वनयभेदमें निष्कर्ष जानना.

अब द्रव्यार्थिक पर्यायार्थिकका थोडासा विस्तार लिखते हैं. उनमें नैगमद्रव्यार्थिकनय, धर्मधर्मी द्रव्यपर्यायादि प्रधानअप्रधानादि गोचर-करके ग्रहण करी वस्तुके समूहार्थको कहता है.। १।

संग्रहद्रव्यार्थिकनय, अभेदरूपकरके वस्तुजातको एकीभावकरके ग्रहण करता है.। २।

व्यवहारद्रव्यार्थिकनय, संग्रहने ग्रहण किया जो अर्थ, तिसके भेदरूप-करके जो वस्तुका व्यवहार करे, सो व्यवहार द्रव्यार्थिकनय है.। ३।

नैगम; और व्यवहार, अशुद्ध द्रव्यार्थिक है. और संग्रह शुद्ध द्रव्यको कहता है, इसवास्ते, शुद्धद्रव्यार्थिकनय है.

तदुक्तमनुयोगवृत्तौ ॥

" ॥ नैगमव्यवहाररूपोऽविशुद्धः कथं यतो नैगमव्यवहारौ अनंतद्व्यणुकाद्यनेकव्यक्तात्मकंकृश्नाद्यनेकगुणाधारं त्रिकालविषयं चाविशुद्धं द्रव्यमिच्छतःसंग्रहश्च परमाण्वादिसामान्यादेकं तिरोभूतगुणकलापमविद्यमानपूर्वापरविभागं नित्यं सामान्यमेव द्रव्यमिच्छत्येव तच्च किलानेकताभ्युपगमकलंकेनाकलंकितत्वात् शुद्धं ततः शुद्धद्रव्याभ्युपगमपरत्वात् शुध्धमेवायमिति ॥ "

भाषार्थः—नैगमव्यवहाररूपनय, अविशुद्ध है. क्योंकि, नैगमव्यवहार, अनंतद्व्यणुकादि, अनेकव्यक्तात्मक. कृश्नादि अनेक गुणोंका आधार, त्रिकालविषय, ऐसें अशुद्ध द्रव्यको द्रव्य मानते हैं. और संग्रहनय, परमाणुआदि सामान्यसें एक तिरोभूत गुणसमूह अविद्यमान पूर्वापरविभाग नित्यसामान्यही द्रव्य मानता है. सो संग्रहनय, अनेकता माननेरूप कलंकसें अकलंकित होनेसें और शुद्ध द्रव्य माननेसें शुद्धद्रव्यार्थिक है.

अथ नैगमनयकी प्ररूपणा करते हैंः—नही है एक गम, बोधमार्ग, जिसका, सो नैगमनय है. पृषोदरादि होनेसें ककारका लोप जानना. तिस नैगमनयके तीन भेद हैं. धर्मद्वयगोचर (१) धर्मिद्वयगोचर (२) धर्मधर्मिगोचर (३). यहां धर्मीधर्म शब्दकरके, द्रव्य और व्यंजनपर्यायोंको कहते हैं. अथ प्रथमभेदमें उदाहरण कहते हैं. "। सच्चैतन्यमात्मनि इति । " आत्मामें सत् चैतन्य धर्म है, यहां चैतन्य नाम व्यंजनपर्यायको, विशेष्य होनेसें, तिसकी मुख्यताकरके विवक्षा करी; और सत्ताख्यव्यंजनपर्यायको, विशेषण होनेसें, तिसकी अमुख्यता, गौणताकरके, विवक्षा करी है. । इतिधर्मद्वयगोचरोनैगमः प्रथमः । १ ।

अथ दूसरे नैगमका उदाहरण कहते हैं:—"। वस्तु पर्यायवद्द्रव्यम्।" पर्यायवाला द्रव्य, वस्तु है. यहां पर्यायवाले द्रव्याख्यधर्मिको, विशेष्य होनेसें, प्रधानपणा है; और वस्तुनामक धर्मिको, विशेषण होनेसें, अप्रधानपणा है. अथवा 'किं वस्तु' वस्तु क्या है? 'पर्यायवद् द्रव्यम्' पर्यायवाला द्रव्य. ऐसी विवक्षामें, वस्तुको, विशेष्य होनेसें प्रधानपणा है. और पर्यायवद् द्रव्यको, विशेषण होनेसें, गौणपणा है. इतिधर्मिद्वयगोचरोनैगमो द्वितीयः।२।

अथ तीसरे भेदका उदाहरण कहते हैं:—। "।क्षणमेकं सुखी विषयासक्तजीव इति।" एक क्षणमात्र सुखी विषयासक्त जीव है. यहां विषयासक्त जीव द्रव्यको, विशेष्य होनेसें, प्रधानपणा है; और सुखलक्षणपर्यायको, विशेषण होनेसें, अप्रधानपणा है. इति धर्मिधर्मालंबनोनैगमः तृतीयः।३।

अथवा निगम, विकल्प, तिसमें जो होवे, सो नैगम. तिसके तीन भेद हैं. भूत (१) भविष्यत् (२) वर्त्तमान (३). जिसमें अतीत वस्तुको वर्त्तमानवत् कथन करना, सो भूतनैगम. यथा। आज सोही दीपोत्सव (दीवाली) पर्व है, जिसमें श्रीवर्द्धमानस्वामी मुक्ति गये.।१। भाविनि अर्थात् होनहारमें, होगईकीतरें उपचार करना, सो भविष्यत्नैगम. जैसें अर्हंत सिद्धपणेको प्राप्तही होगये हैं।२। करनेका आरंभ करा, वा थोडासा निष्पन्न हुआ, तिसको हुआ वस्तु, जिसमें कहना, सो वर्त्तमाननैगम. जैसें, 'ओदनः पच्यते.'।३।

अथ नैगमाभासका स्वरूप कहते हैं:—दो आदिधर्मोको एकांत पृथक् २ जो माने, सो नैगमाभास, इति. आदिपदकरके दो द्रव्य, और द्रव्यपर्यायों दोनोंका ग्रहण है. उदाहरण जैसें, आत्मामें सत्, और चैतन्य, परस्पर अत्यंत पृथग्भूत है, इत्यादि. आदिशब्दसें वस्तुपर्यायवाले द्रव्य दोका, और क्षणएक सुखी, इति सुखजीवलक्षण द्रव्यपर्याय दोनोंका ग्रहण है. इन दोनोंकी सर्वथा भिन्नरूपप्ररूपणा करनेसें, नैगमाभास दुर्नय है. नैयायिक, वैशेषिक, येह दोनों मत नैगमाभाससें उत्पन्न हुए हैं, इति.॥

अथ द्रव्यार्थिकनयका दूसरा भेद संग्रह नामा, तिसका वर्णन करते हैंः—"सामान्यमात्रग्राही परामर्शः संग्रहः" सामान्यमात्रग्राही जो ज्ञान, सो संग्रह 'मात्रं कात्स्न्येंऽवधारणे च' मात्रशब्द संपूर्णका और अवधारणका वाचक है, 'सामान्यमशेषविशेषरहितं' सामान्य संपूर्णविशेषरहित सत्त्व द्रव्यत्वादिक ग्रहण करनेका शील है 'सं' एकीभावकरके पिंडीभूत विशेष राशिको ग्रहण करे, सो संग्रह. तात्पर्य यह है "स्वजातेर्दृष्टेष्टाभ्यामविरोधेन विशेषाणामेकरूपतया यद्ग्रहणं स संग्रहः इति" स्वजातिके दृष्टेष्टकरके अविरोध विशेषोंको एकरूपकरके जो ग्रहण करे, सो संग्रह, अर्थात् विशेषरहित पिंडीभूत सामान्यविशेषवाले वस्तुको शुद्ध अनुभव करनेवाला ज्ञान विशेष, संग्रहकरके कहा जाता है. सो संग्रह दो प्रकारका है. परसंग्रह (१) अपरसंग्रह (२). संपूर्ण विशेषोंमें उदासीनता भजता हुआ, शुद्धद्रव्यसन्मात्रको, जो माने, सो परसंग्रह है. जैसें विश्व एक है, सत्सें अविशेष होनेसें.

अथ परसंग्रहाभासका लक्षण कहते हैंः—सत्ता अद्वैतको स्वीकार करता हुआ, सकलविशेषोंका निषेध करे, सो परसंग्रहाभास. जैसें उदाहरण, सत्ताही तत्त्व है, तिससें पृथग्भूत विशेषोंके न देखनेसें, इति. अद्वैतवादियोंके जितने मत है, वे सर्व, परसंग्रहाभासकरके जानने; और सांख्यदर्शन भी ऐसेंही जानना.

अथ दूसरे अपरसंग्रहका लक्षण कहते हैंः—द्रव्यत्वादि अवांतरसामान्योंको मानता हुआ, और तिसके भेदोंमें उदासीनताको अवलंबन करता हुआ, अपरसंग्रह है. जैसें धर्म अधर्म आकाश काल पुद्गल जीवद्रव्योंको द्रव्यत्वके अभेदसें एक मानना. यहां द्रव्यसामान्यज्ञानकरके अभेदरूप छहोंही द्रव्योंको एकपणे ग्रहण करना, और धर्मादि विशेष भेदोंमें गजनिमिलिकावत् उपेक्षा करनी. ऐसेंही चैतन्याचैतन्य पर्यायोंका एकपणा मानना, पर्यायसाधर्म्यतासें.

प्रश्नः—चैतन्यज्ञान, और तद्विपरीत अचैतन्य, येह दोनों एक कैसें होसकते हैं?

उत्तरः—चैतन्याचैतन्यकी विशेष विवक्षा न करनेसें, और द्रव्यत्वकरके अभेदबुद्धि माननेसें.

अथ अपरसंग्रहाभासका लक्षण कहते हैंः—द्रव्यत्वको एकांत तत्त्व जो मानता है, और तिसके विशेषोंको निषेध करता है, सो अपरसंग्रहाभास है. जैसें द्रव्यत्वही तत्त्व है, और धर्मादि द्रव्य नही है. यथा वस्तु है, परंतु सामान्यविशेषत्व कहां वर्ते हैं? ऐसेंही सामान्यविशेषात्मक वस्तुको जानना.

अथवा संग्रहनय दो प्रकारका है. सामान्यसंग्रह (१) विशेषसंग्रह (२). सामान्यसंग्रहका उदाहरण जैसें, सर्वद्रव्य आपसमें अविरोधी है. ।१। विशेषसंग्रहका उदाहरण जैसें, जीव आपसमें अविरोधी है. ।इतिसंग्रहद्रव्यार्थिकनयः ।२।

अथ व्यवहारद्रव्यार्थिक नयका स्वरूप लिखते हैंः—

"॥ संग्रहेण गृहीतानां गोचरीकृतानामर्थानां विधिपूर्वकमवहरणं येनाभिसंधिना क्रियते सव्यवहारइति ॥"

भावार्थः—संग्रहने ग्रहण किया जो सत्त्वादि अर्थ, तिसका, विधिसें जो विवेचन करे, सो अभिप्राय विशेष, व्यवहारनामा नय है. उदाहरण जैसें, जो सत् है, सो द्रव्य है, अथवा पर्याय है. आदिशब्दसें अपरसंग्रहगृहीतार्थ व्यवहारका भी उदाहरण जानना. जैसें जो द्रव्य है, सो जीवादि षड्विध है, इति. पर्यायके दो भेद है. क्रमभावी (१) और सहभावी (२), इति. ऐसें जीव भी मुक्त (१) और संसारी (२). जे क्रमभावी पर्याय है, वे दो प्रकारके हैं. क्रियारूप (१) और अक्रियारूप (२), इति. ॥

अथ व्यवहाराभास कहते हैंः—जो अपारमार्थिक द्रव्यपर्यायविभागको मानता है, सो व्यवहाराभास है. जैसें चार्वाकमत. क्योंकि, नास्तिक जीवद्रव्यादि नही मानता है. स्थूलदृष्टिसें चारभूत यावत् जितना दृष्टिगोचर आवे, उतनाही लोक मानता है. ऐसें स्वकल्पित होनेकरके झूठ होनेसें चार्वाकमत व्यवहाराभास है.

तथा अन्यग्रंथसें व्यवहारनयका कितनाक स्वरूप लिखते हैं:—भेदोपचारकरके जो वस्तुका व्यवहार करे, सो व्यवहारनय. गुणगुणिका (१) द्रव्यपर्यायका (२) संज्ञासंज्ञिका (३) स्वभावस्वभाववालेका (४) कारककारकवालेका (५) क्रियाक्रियावालेका (६) भेदसें जो भेद करे, सो सद्भूतव्यवहार. । १ ।

शुद्धगुणगुणिका, और शुद्धपर्यायद्रव्यका भेद कथन करना, सो शुद्धसद्भूतव्यवहार. । २ ।

उपचरित सद्भूतव्यवहार. तहां सोपाधिक अर्थात् उपाधिसहित गुणगुणिका जो भेदविषय, सो उपचरितसद्भूतव्यवहार. जैसें जीवके मतिज्ञानादिक गुण है. । ३ ।

निरुपाधिक गुणगुणिकाभेदक, अनुपचरितसद्भूतव्यवहार. जैसें, जीवके केवलज्ञानादि गुण है. । ४ ।

अशुद्ध गुणगुणिका, और अशुद्ध द्रव्यपर्यायका भेद कहना, सो अशुद्धसद्भूतव्यवहार. । ५ ।

स्वजातिअसद्भूतव्यवहार. जैसें, परमाणुको बहुप्रदेशी कथन करना. ।६।

विजातिअसद्भूतव्यवहार. जैसें, मतिज्ञान मूर्त्तिवाला है, मूर्त्तिद्रव्यसें उत्पन्न होनेसें. । ७ ।

उभयअसद्भूतव्यवहार. जैसें, जीव अजीव ज्ञेयमें ज्ञान है, जीव अजीवको ज्ञानके विषय होनेसें. । ८ ।

स्वजातिउपचरितासद्भूतव्हवयार. जैसें, पुत्र भार्यादि मेरे हैं. । ९ ।

विजातिउपचरित असद्भूतव्यवहार. जैसें, वस्त्र भूषण हेम रत्नादि मेरे हैं. । १० ।

तदुभयउपचरित असद्भूतव्यवहार. जैसें, देश राज्य कीर्ति गढादि मेरे हैं. । ११ ।

अन्यत्र प्रसिद्ध धर्मका अन्यत्र समारोप करना, सो असद्भूतव्यवहार. । १२ ।

असद्भूत व्यवहारही उपचार है, जो उपचारसें भी उपचार करे, सो उपचरित असद्भूतव्यवहार. जैसें, देवदत्तका धन. यहां संश्लेषरहित वस्तुसंबंध विषय है. । १३ ।

संश्लेषसहित वस्तुसंबंधविषय, अनुपचरित असद्भूतव्यवहार. जैसें, जीवका शरीर. । १४ ।

उपचार भी नव प्रकारका है. द्रव्यमें द्रव्यका उपचार (१) गुणमें गुणका उपचार (२) पर्यायमें पर्यायका उपचार (३) द्रव्यमें गुणका उपचार (४) द्रव्यमें पर्यायका उपचार (५) गुणमें द्रव्यका उपचार (६) गुणमें पर्यायका उपचार (७) पर्यायमें द्रव्यका उपचार (८) पर्यायमें गुणका उपचार (९). यह सर्व भी, असद्भूतव्यवहारका अर्थ जानना. इसीवास्ते उपचारनय, पृथक् नही है, इति. ।

मुख्याभावके हुए, प्रयोजन, और निमित्तमें उपचार वर्त्तता है; सो भी संबंधके विना नही होता है. संबंध चार प्रकारका है. संश्लेषसंश्लेषीसंबंध (१) परिणामपरिणामिसंबंध (२) श्रद्धाश्रद्धेयसंबंध (३) ज्ञानज्ञेयसंबंध (४). उपचरित असद्भूतव्यवहारके तीन भेद है. सत्यार्थ (१) असत्यार्थ (२) सत्यासत्यार्थ (३) इति. येह १४ भेद व्यवहारनयके जानने. यही व्यवहारनयका अर्थ है. व्यवहारनय भेदविषय है. ॥ इतिद्रव्यार्थिकस्य तृतीयोभेदः ॥ ३ ॥

अथ पर्यायार्थिकनयके चार भेद लिखते हैं. उनमें प्रथम ऋजुसूत्रका स्वरूप लिखते हैं:-

" ॥ ऋजुवर्त्तमानक्षणस्थायिपर्यायमात्रप्राधान्यतः सूत्रयन्नभिप्रायऋजुसूत्रनय इति ॥ "

अर्थः-भूतभविष्यत्क्षणलवविशिष्ट कुटिलतासें विमुक्त होनेसें, ऋजु सरलही, द्रव्यकी अप्रधानताकरके, और क्षणक्षयीपर्यायोंकी प्रधानताकरके, जो कथन करे, सो ऋजुसूत्रनय है. उदाहरण जैसें, संप्रति सुख विवर्त है. इस वचनसें क्षणिक सुखनामा पर्यायमात्रको मुख्यताकरके कहता है, परंतु तदधिकरण जीव द्रव्यको गौणत्वकरके नही मानता है, इति.

अथ ऋजुसूत्राभास कहते हैंः—सर्वथा द्रव्यका जो निषेध करता है, सो ऋजुसूत्राभास है. उदाहरण जैसें, तथागतमत. क्योंकि, बौद्ध क्षणक्षयिपर्यायोंकोही प्रधानतासें कथन करते हैं, और तत्तत्आधारभूत द्व्योंको नही मानते हैं; इसवास्ते बौद्धमत, ऋजुसूत्राभासकरके जानना.

ऋजुसूत्रके दो भेद है. सूक्ष्मऋजुसूत्र, जैसें पर्याय एकसमयमात्र रहनेवाला है (१) स्थूलऋजुसूत्र, जैसें मनुष्यादिपर्याय, अपने २ आयुःप्रमाणकालतक रहते हैं. । इतिपर्यायार्थिकस्य प्रथमोभेदः ॥ १ ॥

अथ दूसरा भेद लिखते हैंः—

"॥ कालादिभेदेन ध्वनेरर्थभेदं प्रतिपद्यमानः शब्दइति ॥"

अर्थः—व्याकरणके संकेतसें प्रकृतिप्रत्ययके समुदायकरके सिद्ध हुआ काल कारक लिंग संख्या पुरुष उपसर्गके भेदकरके ध्वनिके अर्थ भेदको जो कथन करे, सो शब्दनय है. कालभेदमें उदाहरण जैसें, 'बभूव भवति भविष्यति सुमेरुरिति' हुआ, है, होवेगा, सुमेरु. यहां कालत्रयके भेदसें सुमेरुका भी भेद, शब्दनयकरके प्रतिपादन करीये हैं. द्रव्यरूपकरके तो, अभेद इसके मतमें उपेक्षा करीये हैं. । कारकभेदमें उदाहरण जैसें, 'करोति क्रियते कुंभ इति.'। लिंगभेदमें 'तटस्तटीतटमिति'। संख्याभेदमें 'दाराः कलत्रं'। पुरुषभेदमें 'एहि मन्ये रथेन यास्यसि नहि यास्यति यातस्ते पिताइत्यादि'। उपसर्गभेदमें 'संतिष्ठते अवतिष्ठते.'। इति ।

अथ शब्दनयाभास लिखते हैंः—कालादिभेदकरके विभिन्नशब्दके अर्थको भी, भिन्न मानता हुआ, शब्दाभास होता है. उदाहरण जैसें, 'बभूव भवति भविष्यति सुमेरुः' इत्यादिक भिन्नकालके शब्द, तिनका भिन्नही अर्थ कहता है, भिन्नकालशब्द होनेसें. तैसें सिद्ध अन्यशब्दवत्, इति. । 'बभूव भवति भविष्यति सुमेरुः' इसवचनकरके शब्दभेदसें अर्थका एकांत भेद मानना, शब्दाभास है. ॥ इतिपर्यायार्थिकस्य द्वितीयोभेदः ॥ २ ॥

अथ पर्यायार्थिकका तीसरा भेद समभिरूढनयका स्वरूप लिखते हैंः—

"॥ पर्यायशब्देषु निरुक्तिभेदेन भिन्नमर्थं समभिरोहन् समभिरूढइति ॥"

अर्थः—शब्दनय, शब्दपर्यायके भिन्न भी हुए, द्रव्यार्थका अभेद मानता है. और समभिरूढनय, शब्दपर्यायके भेद हुए, द्रव्यार्थका भी, भेद मानता है. पर्यायशब्दोंके अर्थतः एकत्वकी उपेक्षा करता है. उदाहरण जैसें, 'इंदनादिंद्रः, शकनात् शक्रः, पूर्दारणात् पुरंदरइत्यादिः' इस वाक्यकरके इंद्र शक्र पुरंदर इत्यादि एकार्थ पर्यायशब्दमें भी, व्युत्पत्तिभेदसें इसके अर्थका भी, भेद मानता है. शब्दके भेदसें, अर्थका भेद, यह नय मानता है. इतितात्पर्यार्थः । ऐसेंही अन्यत्र कलश घट कुट कुंभादिकोंमें जानना.

अथ समभिरूढाभास कहते हैंः—पर्यायध्वनियोंके अभिधेयको एकांत नानाही मानना, सो समभिरूढाभास है. उदाहरण जैसें, इंद्रशक्रपुरंदर इत्यादि शब्दोंके भिन्नही अभिधेय हैं, भिन्नशब्द होनेसें. करिकुरंग तुरंग करभशब्दवत्. यहां इंद्रशक्रपुरंदर नाम एक भी है, तो भी भिन्नशब्द होनेसें वाच्यार्थ भी, भिन्न है. जैसें हाथी हिरण घोडा ऊंट आदि भिन्नवाच्य है, तैसें यह भी है. यह समभिरूढाभास है । इतिपर्यायार्थिकस्य तृतीयोभेदः ॥ ३ ॥

अथ चौथा भेद लिखते हैंः—

॥ " शब्दानां स्वप्रवृत्तिनिमित्तभूताक्रियाविशिष्टमर्थं वाच्यत्वेनाभ्युपगच्छन्नेवंभूतइति ॥ "

अर्थः—समभिरूढनयसें इंदनादि क्रियाविशिष्ट इंद्रका पिंड होवे,अथवा न होवे,परंतु इंद्रादिकका व्यपदेश लोकमें, तथा व्याकरणमें,तैसेंही रूढी होनेसें, समभिरूढ. तथाच रूढशब्दोंकी व्युत्पत्ति शोभामात्रही है. 'व्युत्पत्तिरहिता शब्दा रूढा इति वचनात्' एवंभूतनय, जिस समयमें इंदनादिक्रियाविशिष्ट अर्थको देखता है, तिसकालमेंही इंद्रशब्दका वाच्य मानता है; परंतु तिससें रहित कालमें नही मानता है. इस नयके मतमें तो सर्वक्रिया शब्दही है. यद्यपि भाष्यादिकमें जाति (१) गुण (२) क्रिया (३) संबंध (४) यदृच्छा (५) लक्षण पांचप्रकारकी शब्दप्रवृत्ति कही है, सो

व्यवहारमात्रसें जाननीः परंतु निश्चयसें नही. ऐसें यह नय, स्वीकार करता है. जातिशब्द जे हैं, वे क्रियाशब्दही हैं. 'गच्छतीति गौः' जो गमन करे सो गौ. 'आशुगामित्वादश्वः' आशु-शीघ्रगामी होनेसें अश्व. गुणशब्द जैसें 'शुचिर्भवतीति शुक्लः' शुचि होवे, सो शुक्ल. 'नीलभवन्नान्नीलः' नील होनेसें नील. । यदृच्छाशब्द जैसें 'देव एनं देयात् यज्ञ एनं देयात्'। संयोगी समवायीशब्द जैसें 'दंडोस्यास्तीति दंडी, विषाणमस्यास्तीति विषाणी' अस्ति क्रियाको प्रधान होनेसें अस्तिअर्थमें प्रत्यय है. यह सर्व क्रियाशब्दही हैं. अस्ति भू इत्यादि क्रियासामान्यको सर्वव्यापी होनेसें. उदाहरण जैसें, इंदनके अनुभवनसें इंद्र, शकनक्रियापरिणत शक्र, पूर्दारणप्रवृत्तको पुरंदर कहते हैं, इति.

अथ एवंभूताभास कहते हैंः-अपनी क्रियारहित, सो वस्तु भी, शब्दका वाच्य नही. तत्शब्दवाच्य यह नही है. ऐसा एवंभूताभास है. उदाहरण जैसें, विशिष्टचेष्टाशून्य घटनामक वस्तु, घटशब्दका वाच्य नहीं. घटशब्दप्रवृत्तिनिमित्तभूत क्रियासें शून्य होनेसें, पटवत्. इस वाक्यसें अपनी क्रियारहित घटादिवस्तुको घटादिशब्दवाच्यताका निषेध करना प्रमाणबाधित है. ऐसें एवंभूताभास कहा है, इति.

इन सातों नयोंमेंसें आदिके चार नय, अर्थ निरूपणेमें प्रवीण होनेसें, अर्थनय हैं. अगले तीन नय, शब्दवाच्यार्थगोचर होनेसें, शब्दनय हैं.

अथ इन पूर्वोक्त नयोंके कितने भेद हैं, सो लिखते हैंः—

गाथा ॥

इक्केक्को य सयविहो सत्त नयसया हवंति एमेव ॥
अन्नो वि य आएसो पंचेव सया नयाणं तु ॥ १ ॥

अर्थः-नैगमादि सातों नयोंके एकैकके प्रभेदसें सौ सौ भेद हैं, सर्व मिलाके सातसौ (७००) भेद होते हैं. प्रकारांतरसें पांचही नय होते हैं. सो यदा शब्दादि तीनोंको एकही शब्दनय, विवक्षा करीये, और एकैकके सौ सौ भेद करीये, तब पांचसौ भेद नयोंके होते हैं. ऐसेंही

छसौ, चारसौ, दोसौ भी, भेद नयोंके होते हैं. तथाहि—जब सामान्यग्राही नैगमकी संग्रहके अंतर्भूत, और विशेषग्राही नैगमकी व्यवहारके अंतर्भूत विवक्षा करीये, तब मूल नय छ होते हैं. एक एकके सौ सौ भेद होनेसें, छसौ भेद होते हैं. । जब नैगम १ संग्रह २ व्यवहार ३, तीन तो अर्थनय और एक शब्दनय, ऐसी विवक्षा करीये, तब चार ४ नय; एकैकके सौ सौ भेद होनेसें चारसौ भेद होते हैं. । और द्रव्यार्थिक, पर्यायार्थिक, इन दोनोंके सौ सौ भेद होनेसें, दोसौ भेद होते हैं. यदि उत्कृष्ट भेद गिणीये तो, असंख्य भेद होते हैं.

यदुक्तम् ॥

जावंतो वयणपहा तावंतो वा नया वि सद्दाओ ॥
ते चेव परसमया सम्मत्तं समुदिआ सव्वे ॥ १॥

व्याख्याः—जितने वचनके प्रकार है शब्दात्मक ग्रहण किया हैं सावधारणपणा जिनोंने, वे सर्व नय, परसमय अन्य तीर्थियोंके मत है. और जो अवधारणरहित 'स्यात्' पदकरी लांछित है, वे सर्व नय, इकठे करें, सम्यक्त्व जैनमत है.

प्रश्नः—सर्वनय प्रत्येक अवस्थामें मिथ्यात्वका हेतु है तो, सर्व एकठे मिले महामिथ्यात्वका हेतु क्यों नही होवेंगे? जैसें कण कणमात्र विष एकठा करे तो, बृहद्विष हो जावे है.

उत्तरः—परस्पर विरुद्ध भी सर्व नय, एकत्र हुए, सम्यक्त्व होते हैं, एक जैनमतके साधुके वशवर्त्ति होनेसें. जैसें नाना अभिप्रायवाले राजाके नौकर, आपसमें धन धान्य भूमि आदिकके वास्ते लढते भी हैं, तो भी, सम्यग् न्यायाधीशके पास जावें, तब पक्षपातरहित न्यायाधीश, युक्तिसें झगडा मिटायके मेल कराय देता है, तैसेंही यहां परस्पर विरोधी नय, स्याद्वादन्यायाधीशके वश होके परस्पर एकत्र मिलजाते हैं. तथा बहुते जहरके टुकडे बडे मंत्रवादीके प्रयोगसें निर्विष हुए कुष्ठादिरोगीको दीए अमृतरूप होके परिणमते हैं, तैसें नयस्वरूप भी जानलेना.

तदुक्तम् ॥

सत्थे समिति सम्मं वेगवसाओ नया विरुद्धावि ॥
णिच्चवूवहरिणो इव राओ दासाण वसवत्ती ॥ १ ॥

इति. ॥

पूर्वोक्त नयोंमें पूर्व पूर्व नय बहुविषयवाले हैं, और उत्तर उत्तर नय अल्पविषयवाले हैं. यह नयका स्वरूप, नयप्रदीपादिकसें किंचिन्मात्र लिखा है. विशेष देखनेकी इच्छा होवे तो, शब्दांभोनिधिगंधहस्तिमहाभाष्यवृत्ति, (विशेषावश्यक), द्वादशारनयचक्रादि शास्त्रोंसें देख लेना.

इति नयस्वरूपवर्णनम् ॥
तत्समाप्तौ च समाप्तोयं षट्त्रिंशः स्तंभः ॥ ३६ ॥

दृष्टिदोषान्मतेर्मांद्यादनाभोगात्प्रमादतः ॥
यज्जिनाज्ञाविरुद्धं तच्छोधनीयं मनीषिभिः ॥ १ ॥
यदशुद्धमिह निरूपितमार्यैस्तत्क्षम्यतां प्रसादं मे ॥
कृत्वा विशोध्यतां यत् को न स्खलति प्रमादविवशो हि ॥ २ ॥
यद्यपि बहुभिः पूर्वा–चार्यैरचितानि विविधशास्त्राणि ॥
प्राकृतसंस्कृतभाषा-मयानि नयतर्कयुक्तानि ॥ ३ ॥
तदपि मयेदं शास्त्रं, पूर्वमुनेः पद्धतिं समाश्रित्य ॥
भव्यजनबोधनार्थं, रचितं सम्यक् स्वदेशगिरा ॥ ४ ॥

युग्मम् ॥

श्रीमन्मोहनपार्श्वनाथविमले पट्टीपुरे प्रस्तुतः ॥
श्रीचिंतामणिपार्श्वनाथनिरघे जीरेतिनाम्ना पुरे ॥
ग्रंथोऽयं परिपूर्णतां च गमितश्चंद्रेषुनंदैणभृ-
द्वर्षे (१९५१) भाद्रपदे च शुक्लदशमीघस्रे गभस्तौ शुभे ॥५॥

सुनक्षत्रपुरे रम्ये धर्मनाथप्रतिष्ठिते ॥
घस्रेंजनशलाकायाः पादोनद्विशतार्हताम् ॥ ६ ॥
शिखिबाणांकचंद्राब्दे (१९५३) वल्लभेन मुमुक्षुणा ॥
राकायां प्रथमादर्शेऽलेखि माधवमासके ॥ ७ ॥

युग्मम् ॥

सूर्याचंद्रमसौ यावद् यावच्छ्रीवीरशासनम् ॥
ग्रंथोऽयं नंदतात्तावत् परोपकृतिहेतवे ॥ ८ ॥
कियानप्यस्य शास्त्रस्य श्राद्धैः पट्टीनिवासिभिः ॥
पंडितामृतचंद्राद्यैर्भागोऽस्ति परिशोधितः ॥ ९ ॥

॥ इति शुभं भूयात् ॥

॥ इतिश्रीमद्बुद्धिविजयगणिशिष्यश्रीमद्विजयानंद-
सूरिविरचिततत्त्वनिर्णयप्रासादग्रंथः समाप्तः ॥

यह ग्रंथ मरुदेशवासी (हाल मुंबई निवासी) ओसवाल बालफेना (बाफणा) परमार गोत्रीय जैन (श्वेतांबरी–तपगच्छीय) अमरचंद पी० (पन्नाजी) परमारने स्वमत्यनुसार पदच्छेद प्रूफ आदि शोधन करके प्रसिद्ध किया. याचना है कि पाठक वर्ग दृष्टिदोषकी क्षमा करे.

श्रेयांसि सन्ति बहुविघ्नहतानि लोके ।
कस्येदमस्त्यविदितं भुवि मानवस्य ॥
श्रेयस्तरोऽयमिति यः समयात्ययोऽभूत् ।
तं क्षन्तु मर्हति सदा विदुषां समूहः ॥ १ ॥

अर्थः–किसको विदित नही है कि "अच्छे कार्योमें बहुत विघ्न होते हैं." यह ग्रंथ एक बडा सत्कार्य है, जिससें (कीतनीक आफत–मुश्केलीके सबबसें) प्रसिद्ध करनेमें विलंब हुवा जिसकी सुज्ञ साक्षरवर्ग क्षमा करेंगे.

अंतर्लापिका अगम धरमचंद्र दनपत दन मान जीन ।
पकर क्षमाधरम सुपरद तन तलीन ॥

॥ शुभम् ॥

अथ प्रस्तावना शुद्धिपत्रम्.

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
३	१०-१४	पाणिनी	पाणिनि
,,	१२	व्योर्लघु	व्योर्लघु
४	२	श्चंद्रकाश	श्चंद्रःकाश
,,	२३	श्चद्रकाश	श्चंद्रःकाश
,,	,,	शाकटायनः	शाकटायनः
,,	,,	न्यगर जैनें.	न्यगरजैनें.
५	१९	श्रेष्टोत्तम	श्रेष्ठोत्तम
६	२२	सन्यनिष्ट	सत्यनिष्ठ
,,	२७	सम्यकबो.	सम्यक्वो
७	२१	सुक्ष्म	सूक्ष्म
८	१०	ग्रंथोसें	ग्रंथोंसें
,,	१२	सद्ग्रंथोंके	सद्ग्रंथोंके
,,	२२	महान्त	माहात्म्य
,,	३१	निष्ठवान	निष्ठावान्
९	९	अग्रेजी	अंग्रेजी
१०	१४	ऋग	ऋग्
,,	,,	यजुस्	यजुस्,
,,	२६	बौधकी	बौद्धकी
,,	३१	विनयत्रीपी	विनयत्रयीपी
११	२	ऐक	एक
,,	२१-२९	ऋषभ	ऋषभ
१२	३	ऋषि	ऋषि
१३	२	(तीर्थोंकी स्थापन करने वाले है)	(तीर्थों) की स्थापना करनेवाले हैं
,,	९	प्रमाण	प्रणाम
,,	१०	स्वस्तिनः	स्वस्तिन
,,	,,	वृद्धश्रवा	वृद्धश्रवाः
,,	११	स्ताक्षों	स्तार्क्ष्यो

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
,,	१२	वलायु	वलायु
,,	१३	वामदेव सांत्यर्थम	वामदेवशांत्यर्थम
,,	,,	सोऽस्माक अरि	सोऽस्माकमरि
,,	,,	पुरुहुत	पुरुहूत
,,	२७	शिष्टान्नपि	शिष्टानपि
,,	२८	महामुनीना	महामुनीनां
१४	३	उनक	उनके
,,	२९	होनसे	होनेसे
१५	११	ऋषिकृत	ऋषिकृत
,,	१६	वेस भी	वे सभी
,,	३०	कुण्डसना	कुण्डासना
,,	३१	जिनेद्रा	जिनेंद्रा
१६	२	सरस्वती हंस,	सरस्वती, हंस
,,	९	तत्त्वः	सत्वतः
,,	१२	विप्रैः य	विप्रैर्य
,,	१४	ब्राह्मणोंको	ब्राह्मणोंको
,,	१९	मरूदेवी	मरुदेवी
,,	,,	भरतेः	भरतः
,,	२०	मरूदेव्यां	मरुदेव्या
२०	१७	मूल	मूलक
,,	१८	मूलके	मूलकके
,,	२३	धर्मकी	धर्मको
,,	२७	पंडितोमें	पंडितोंमें
२२	२१	कचा	काचा
,,	२४	जीज्ञासु	जिज्ञासु
२३	१	हें	है
,,	२	कीसी	किसी

इति प्रस्तावना शुद्धिपत्रम्

अथ तत्त्वनिर्णयप्रासादस्य शुद्धिपत्रम् ।

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१	१२	जीन	जिन
,,	२२	समकित	सम्यक्त्व
२	१	पारगामी	पारगामी
,,	३	ऋपभदेव	ऋषभदेव
,,	१९	जीन	जिस
,,	,,	देवप्रधान	देवार्य
,,	१	चिन्ताचिताः	चिन्तांचिताः
३	९	रुपमद	रूपमद
,,	२०	मुद्रामुत्रिको	मुद्रा मूर्त्तिको
,,	२३	देवकी	देवीकी
४	१०	ससारिक	सांसारिक
५	२५	भद्रबाहू	भद्रबाहु
६	१५	और जो	और
,,	१९	प्रमख	प्रमुख
,,	२०	अनपांगादि	अंग उपांगादि
१	८	कोठे कीतने	कोठेकी तर्रे
९	६	कालेमें आचारादि	कालमें आचारादि
,,	२७	उपासक	उपाशक
१०	१०	पाणिनी	पाणिनि
१२	२५	लिखत	लिखते
,,	२८	कोई अजाण	केई अनजान
१४	६	ऋचान्चे	ऋचामें
,,	२४	शुनःशेपादि	शुनःशेपादि
,,	,,	रक्तस्रावमें	रक्तस्रावमें
५	१०	तदन	तदनु
,,	,,	ऋचामे	ऋचामें
,,	१२	ऋत्विजो	ऋत्विजो
१६	२०	दुत	दूत
२४	५	जैमिनीयाः पनः	जैमनीयाः पुनः
,,	६	मान	मान्य
,,	१९	जसें	जैसें
,,	२२	जनमतवाले	जैनमतवाले
२५	९	कोइ लोक	केइ लोक
,,	२१	सर्व	सर्वे

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२७	७	पृछकके	पृच्छकके
,,	१२	एकानिष्ट	एकनिष्ठ
,,	१९	परवादियेंकौ	परवादियोंको
,,	२३	प्तहां	तहा
२८	७	मास	भास
,,	१०	अघकारक	अघकारका
,,	१८	अनिवडा	अनिया
,,	१९	द्रव्य	द्रव्य
२९	४	स्वमावसें	स्वभावसें
,,	५	के	०
३२	४	कयीये	करीये
३५	४	जीवनमोक्षावस्थामें	०
३६	२	द्रव्यार्थक	द्रव्यार्थिक
३९	७	ओर	और
४०	४	कारण	क्रियाकारण
४१	१	ब्रह्म	ब्रह्मा
,,	२३-२५	सम्यक्तं	सम्यक्त्व
,,	२६	गुणमयी अर्हनकी	गुणमय अर्हन्का
४२	२१	परन्तप	परन्तपः
४३	१०	सुष्टयार्थी	सृष्ट्यर्थं
,,	२१	यावदब्दशतं	यावदब्दशतं
४४	२८	अध्याय	०
४७	६	सवासा	सर्वासां
,, ४८	२१-१६	क्रियाओंके-को	स्त्रियोंके-को
५०	१९	भुकुटी	भृकुटी
५७	१०	मुत्यं	भृत्यु
६१	१९	पुरुपा	परुषा
६२	१	मुखातटः	मुखावटः
,,	१९	चामद्दीता	चाभद्दीता
६६	१६	पिङ्गला	पिंगला
६७	२१	योजम्	योजनम्
६९	१९	प्रमाण	प्रणाम
७१	१५-१७	अद्रुत	अद्भुत
७३	३	प्रसन्नात्	प्रपन्नात्

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
"	१६	ओर	और
"	२४	कहे	कह
७४	२६	अतीष्ट	अभीष्ट
७५	१५	-दाकाशः	-दाकाश
७७	१३-२७	देवष्मुणि	देवङ्गुणि
७९	१६	श्रीमहादेब	श्रीमहादेव
"	२२	विवुधार्चित्त	विवुधार्चित
८०	७	जगत्रीतयस्य	जगत्रितयस्य
"	१७	पुरुषोत्तम	पुरुषोत्तमः
८३	२३	अयोग्य-योग्य	अयोग-योग
८५	१	'सात्यतगमने'	'सातत्यगमने'
८६	१७	समीचा नही	समीचीनही
८७	६	अर्थवालीया	अर्थवालीया
८८	२५	उपदेशकपणे	उपदेशकपणेका
		काव्य व छेद	व्यवच्छेद
८९	२०	धर्मास्तिकाय आ-	धर्मास्तिकाय अधर्मास्तिकाय आ-
९०	१९	पर्यायोंकी	पर्यायोंकी
९०-९१	२४-२६ २-९	श्रृंग	शृंग
९१	२	प्रवत्तन	प्रवर्त्तन
"	१२	पाच ज्ञानेंद्रिय, (पांच-	(पाच ज्ञानेंद्रिय, पांच-
९२	६	योग्य	योग
"	१९	(भवत्तु)	(भवतु)
"	२१	अथात्	अर्थात्
"	२५	प्रवर्त्त-	प्रवृत्त
९३	१७	मसूयान्वा	मसूययान्वा
"	१८	करको	करके
९५	२७	(स्वादौ अत्यंत)	(स्वादौ) अत्यंत
१००	१७	नहीं क्या? खद्योत	नहीं. क्या खद्योत
१०१	११	ऐसें	सूत्र
१०६	२५	करता है.	कराता है.
१०७	२५	-स्वामी फेर अयोग्य	-स्वामीमें फेर अयोग्य
१०९	११८	जितना चिरयोगीनाथ	जितनाचिर योगीनाथ

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
"	१९	तितना चिरयोगी जनोंको	तितनाचिर योगीजनोंको
११०	९	शक	शख,
१११	३	वा सना	कुवासना
"	४	सम्यक्त	सम्यक्त्व
"	१२	सर्वकूजाना;	सर्वकुच्छ जाना;
"	१६-१८	परीक्षमाणा	परीक्ष्यमाणा
"	२०	(तब)	(तव)
११२	२	-षण्णौर्वि-	-षण्णौर्वि-
"	१७	-बधः	-बंधाः
११६	१५	हरभ द्रसूरीपादैः	हरिभद्रसूरिपादैः
"	२४	चन्द्राशु	चन्द्रांशु
"	२६	(तमस्पृशाम्)	(तमःस्पृशाम्)
११८	१	राग	रागसें
११९	१	जिनोत्तमरूप	जिनोत्तमरूप
"	२६	मुद्रशेलवत्	मुद्गशैलवत्
१२४	१	येवै नेया	ये वैनेया
"	८-९-१०-१७	सुवेण	सुवर्ण
"	१३	बाह्य	प्राह्य
१२६	२४	ऋषभदेब	ऋषभदेव
१२७	६	समुद्धत-	समुद्घत-
"	७	-पाली	-माली
"	१८	पूर्वोक्त	पूर्वोक्त
"	२६	श्रीमवीर	श्रीमहावीर
१३०	१८	त्राछगया	त्राछगया
१३८	५	गौतमऋपिने	गोतमऋषिने
१३९	१०	निरच्छयमवच्छयं	निरत्ययमवत्यय
"	१५	अच्छावत्ती	अत्यावत्ती
"	१६	पदच्छ	पदत्य
"	२५	डिच्छादिवत्	डित्थादिवत्
१४३	१८	चद्रास्तेप्यागरी	चन्द्रास्तेप्यामरी
१४५	१	एकात	एकांत
१४७	१६	जगन्मनुष्याद्यम्	जगन्मनूत्पाद्यम्
१४९	२७	आपके	आपको
१५१	१९	कालकृत्	कालकृत
१५२	९	एको	एकोहं
१५४	५	स्ट्रासि	स्त्वांसि

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१९६	१२	स्थलरूप	स्थूलरूप
१९८	१३	म्राणीयोइ	श्राणीयोइ
,,	,,	कश्चिदृक्ष	कश्चिदक्ष
,,	१४	स्तब्धोदिवि	स्तयोदिवि
१६०	३	अमरणभव	अमरणभाव
१६२	१७	विचित्रितां	विचित्रतां
१६३	९	क्षरका	०
१६६	१८	श्रीहरी	श्रीहरि
१७१	१४	नहीं है.?	नहीं है.
१७६	,,	अश्वत्रिमः	अकृत्रिमः
,,	,,	शास्वत	शाश्वतः
१७७	१	निर्म्मितनैका	निर्म्मितानेका
,,	१२	अरे !	अरे,
,,	२०	दिले	दले
१८५	१२	बह्मादि	ब्रह्मादि
१८६	१२	बतलाउ	बतलाओ
१९१	१८	तदानीमम्	तदानीम्
१९५	१	तौ	तो
१९७	२१	द्विर-	द्विरा-
२००	५	यद	यह
२००	१८	जायान्	ज्यायान्
२०४	१८	साम्येद	सौम्येद
२०५	१७	अनित्यं	अनित्य
२०८	५	वा अभावका	या अभावका
,,	९	वा असत्	या असत्
,,	१२	सो–जो	जो–सो
,,	१७	एकात	एकांत
२०९	९	पंचरूप	प्रपंच
२१०	१	जाळ	जाळा
२१२	८	जीवों करके	जीवोंके करे
,,	,,	पचं	पंच
	२५	अप्समार, क्षयी	अपस्मार, क्षय
२१३	१४	सपादन	उपादान
,,	२१	विचारोंकेही	विकारोंकेही
,,	२६	जिसमें	जिससे

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२१५	४	आपना	अपना
,,	१४	करेंनेसें	करनेसें
२१७	१	सीन्नोसीत्-	सीन्नोसदासीत्
,,	२	ठहरेगी	ठहरेगा
२१८	२	होवेंगी;	न होवेंगी;
२२३	१५	इत्यदि	इत्यादि
,,	१८	चक्खु	चक्षु
२२४	११	शूद्रणी	शूद्री
,,	१५	ब्राम्हणी	ब्राह्मणी
२२५	७	कोंकीं	कोंकी
२२९	४	अधार	आधार
,,	९	तदएडम	तदण्डम
२२९–२३०		सर्वाश्च व्युष्टी:	सर्वाश्च व्युष्टी:
२३२	९	ऋग्वेग	ऋग्वेद
,,	१५	भाषानुसार	भाष्यानुसार
२३४	१७	हुआ, था,	हुआथा,
२३५	२३	इसमें	इससें
२३८	६	हैं	है
२३८	१७	भस्मथन्नाग्नि	भस्मच्छन्नाग्नि
२३९	२२	सर्वशक्तिमान	सर्वशक्तिमान्
२४१	२१	विवस्वान	विवस्वान्
२४३	६	स्कम्मन्तम्	स्कम्भन्तम्
२४४	९–१२	उत्स्वास	निःश्वास
२४५	१२	(आजायत)	(अजायत)
२४६	४	करता	कराता
२४७	१	दुसरा	दूसरा
,,	१७	ऋग्वेद	ऋग्वेदं
२५७	८	शृ	शृ
२५८	१७	पठण	पठन
२५९	७	प्रणित	प्रणीत
२६०	१०	वसिष्टके	वसिष्ठके
२६५	१	उदेश्यके	उद्दिश्यके
,,	८	इसमें	इससें
२६६	२२	स्वैचके	स्वैचके
२६७	१	वर्गमें	वर्ग ६में

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२७०	१४	सर्वोंकी	सर्पोंकी
२७०-२७१	२५-१	नमस्कारहै ?	नमस्कार करताहै ?
२७२	१९	मेऽव्यस्तु	मेऽस्तु
२७५	२६	सुरांत् 'पिवेइति श्रुतिः	सुरा पिवत्'इति श्रुतिः
२७९	१४	रचे	रच
२८१	१	(ॐम्)	(उम्)
"	८	भूर्भवः	भूर्भुवः
"	२१	उवब्माय।	उवज्झाया
"	"	पचरकर	पचक्ख
"	"	परमेष्ठी	परमिट्ठी
२८४	५	ब्रह्माका भी	ब्रह्मा कामी
२८६	५	इंद्रिया	इंद्रिया
२८७	१७	अमर्त्त	अमूर्त्त
२९२	२७	साक्षाद्द्राष्ठा	साक्षाद्द्रष्टा
२९३	१९	ताइ	ताई
"	२४	किंविष्टे	किंविशिष्टे
२९४	१६	प्रर्यायमेंही	पर्यायमेंही
२९४	२७	जिसवेद	जिस वेदमें
२९९	१९	वद	वद्द
३००	२	वेदान्छदासि	वेदारछदासि
३०४	१०-१२	करै	करें
"	१५	१८८९	१८८४
३०७	२५	धर्मही है.	ही धर्म है.
३१२	११	तमसा	तपसा
"	१५	||४२||	||१४२||
३१३	२७	हिंसको	हिंसाके
३१८	१४	चौसष्ठ	चौसठ
३२०	१	स्वच्छ	सव्वत्थ
"	११	सात्रज्ज	सावज्ज
"	"	वज्झणाओ	वज्जणाओ
"	१८	परकपहो	पक्खपहो
"	२५	गिहच्छ	गिहत्थ
"	२६	सविग्र	सविग्ग
३२१	८	खद्योय	खज्जोय
"	९	गिहच्छ	गिहत्थ

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
"	२५	व्यवहारो	ववहारो
"	"	छनुमच्छं	छउमत्थं
३२३	३	विचय	विज्जय
"	४	त्रिया	विज्जा
३२४	६	श्लोकः	श्लोक
३२५	१८	स्वांत	स्वस्ति
३२८	७	श्रीमदिजिन	श्रीमदादिजिन
३२८	१५	करता	कराता
३२९	४	विस्सुऊ	विस्सुओ
"	५-६	च्छ—च्छे	त्थ—त्थे
"	१५	कौसुंमसुत्र	कौसुंमसूत्र
३३२	१९	यशःच	यशः सुखंच
"	२५	श्रुक्रःसूर्यसतो	शुक्रःसूर्यसुतो
३३३	७	द्दा	द्धा
"	१०	वृद्धे	वृद्धचै
३३७	१५	सौष्टव । वर्द्धतां	सौष्ठवं वर्द्धतां ।
३३८	२	स्तभमें	स्तंभमें
३४०	२१	ददता	ददतां
३४२	१३	पर्यन्त	पर्यन्तं
३४३	२०	जातकर्म	नामकर्म
३४५	२	वब्रस्त	वज्रहस्त
"	६	वासरकेवंकरेह	वासक्खेवंकरेह
"	१९	ऽष्ठ	ऽष्टम
३,४६	१७	षट्विक्रयोंको त्याग करे	षट्विकातियोंको एकत्र करे
३४८	२७	भयात्	भूयात्
३४९	१६	बुध,	बुध, गुरु,
३५०	१४	ध्रव	ध्रुवं
३५१	७	सवच्छ	सव्वत्थ
३५१	७	साडूाणं	सट्ठाणं
"	१३	उम्मग्रेण	उम्मग्गेण
"	"	जणवऊव्व	जणवओव्व
"	२१	भिरकाग	भिक्खाग
३५२	१	उग्रकुलेसु	उग्गकुले
"	२	ईरकाग	इक्खाग
"	४	ईंति	इंति
"	"	अच्छि	अत्थि

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
"	"	लोगच्छेय	लोगच्छेरय
"	५	उसप्पिणि	ओसप्पिणि
"	"	समुपद्यइ	समुप्पज्जइ
"	६	अरकीणस्स	अक्खीणस्स
"	"	अणिचिणस्स उदर्ण्ण	अणिजिण्णस्स, उदएण
"	८	भिरकाग	भिक्खाग
"	"	आयाइंसुं वा	आयाइंसु वा
"	९	निरकमणेण	निक्खमणेणं
"	"	निरकमिसु	निक्खमिंसु
"	१२	कुल	कुले
"	१३	उग्र	उग्ग
"	"	इरकाग	इक्खाग
३५४	६	शूद्रोंको	शूद्रोको
३५७	२४	पितृतिथि	पित्रतिथि
३५९	१८	स्वकरकारणा	स्वकरणकारणा
३६०	१५	अरकरेसु	अक्खरेसु
"	१६	द्विउ	द्विओ
"	१७	चिंतियमत्तोइ	चिंतियमित्तोवि
३६१	१४	सापाने मत्रे	सोपानं मत्रं
३६२	१	मत्रनत्यागे	मंत्रत्यागे
"	१०	वेद	वेदी
३६३	१९	समार्दिष्टं	समादिष्टं
"	२७	भगवत्	भगवन्
३६४	१२	सामायिक	सामायिक
३६५	१६	परमेष्टि	परमेष्ठि
३७३	२-२०	दश	एकादश
३७७	१९	पर्णानुज्ञा	पूर्णानुज्ञा
३७८	१	वेदिकरण	वेदीकरण
३७९		चतुविंश	चतुर्विंश
३७९	१४	त्याग न	त्यागन
३८७	३	ताइ	तांइ
३८८	२८	पाणिग्रंहत्रय	पाणिग्रहत्रयं
३९०	२	स्सक्कुज्ज- ल्पन्ति	स्सक्कज्ज- ल्पन्ति
"	३	राजाओं	राजे
"	१३	वृद्धने	वृद्ध

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
३९१	१०	पूर्वैवत्	पूर्ववत्
३९५	९	पीपकी	पीपलकी
३९६	१०	स्नातकयोप	स्नातकायोप
४००	१२	निविडा	निविडो
४०१	१४	निबिड	निविड
४०४	५	निबिडेन	निविडेन
४०७	१४	विवेयस हिया	विवेयसहिय
४०८	२	समच्छो	समत्थो
"	६	सम्रहसीलो अभिग्रह	सग्गहसीलो अभिग्गह
"	७	अविकच्छणो	अविकत्थणो
४१०	३ ४- ५-६	उ; ड्डो; च्छो; दहं; न्नू; बड्ढाच्छ	ओ; ढो; त्थो; हदं; ण्णु वुड्ढा; त्थ
४११	३	गर्तिते	गर्हिते
४१२	१९	क्षमाश्रवण	क्षमाश्रमण
४१३	१७	स्वचरमें	स्वरघसें
४१२	२५	वायणच्छं	वायणत्थं
४१३	२४	टइयाइं	ठइयाइं
"	२५	मुरख	मुक्ख
४१४	९	मच्छएण	मत्थएण
"	१६	सम्स	सम्म
"	१७	वंदावहे	वदावेह
"	२१ २२	वत्तियाण	वत्तियाए
४१५	७ २०	अनच्छ	अनत्थ
"	१४	खवउ	खवेउ
४१६	८-१६	अन्नच्छ	अन्नत्थ
"	१३	युक्तानां	युताना
"	२०	शासने	शासनं
४१७	१०	निरुड्ड	निरुद्ध
४१९	१९	निद्दाविम	निद्दाविय
४२०	८	महच्छ पुव्वच्छ परमच्छो	महत्थ पुव्वत्थ परमत्थो
"	१९	अनच्छ	अनत्थ
४२१	२-१९	अहणं	अहण्ण
"	५	अद्य	अज्ज
"	६	च्छि	त्थि
"	१०	च्छ	त्थ